सावरकर समग्र

स्वातंत्र्यवीर

विनायक दामोदर सावरकर

'सावरकर' शब्द साहस, शौर्य, पराक्रम और राष्ट्रभक्ति का पर्याय है। क्रांतिकारी इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित स्वातंत्र्यवीर सावरकर का समूचा व्यक्तित्व अप्रतिम गुणों से संपन्न था। मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए प्राण हथेली पर रखकर जूझनेवाले महान् क्रांतिकारी; जातिभेद, अस्पृश्यता व अंधश्रद्धा जैसी सामाजिक बुराइयों को समूल नष्ट करने का आग्रह करनेवाले महान् द्रष्टा; 'गीता' के कर्मयोग सिद्धांत को अपने जीवन में आचरित करनेवाले अद्भुत कर्मचोगी; अनादि-अनंत परमात्मा का प्राणमय प्रस्फुरण स्वयं के अंदर सदैव अनुभव करते हुए अंदमान जेल की यातनाओं को धैर्यपूर्वक सहनेवाले महान् दार्शनिक, अपने तेजस्वी विचारों से सहस्रों श्रोताओं को झकझोर देने और उन्हें सम्मोहित करनेवाले अद्भुत वक्ता तथा कविता, उपन्यास, कहानी, चरित्र, आत्मकथा, इतिहास, निबंध आदि विभिन्न विधाओं में उच्चकोटि के साहित्य की रचना करनेवाले प्रतिभाशाली साहित्यकार थे स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर।

स्वतंत्रता-संग्राम एवं समाज-सुधार जैसे क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण कार्य करनेवाले व्यक्ति उच्चकोटि का साहित्यकार भी हो, यह अपवाद है—और इस अपवाद के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं वीर सावरकर।

भारतीय वाङ्मय में उनके साहित्य का [illegible] महत्त्वपूर्ण स्थान है; किंतु वह [illegible]ांश मराठी में उपलब्ध होने के कारण [illegible]हान् [illegible]हित्यकार मे अप्रतिम योगदान [illegible]र में [illegible] भारतीय भाषाओं के पाठक [illegible] परिचित नहीं हैं।

वीर सावरकर के चिर प्रतीक्षित समग्र साहित्य का प्रकाशन हिंदी जगत् के लिए गौरव की बात है।
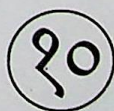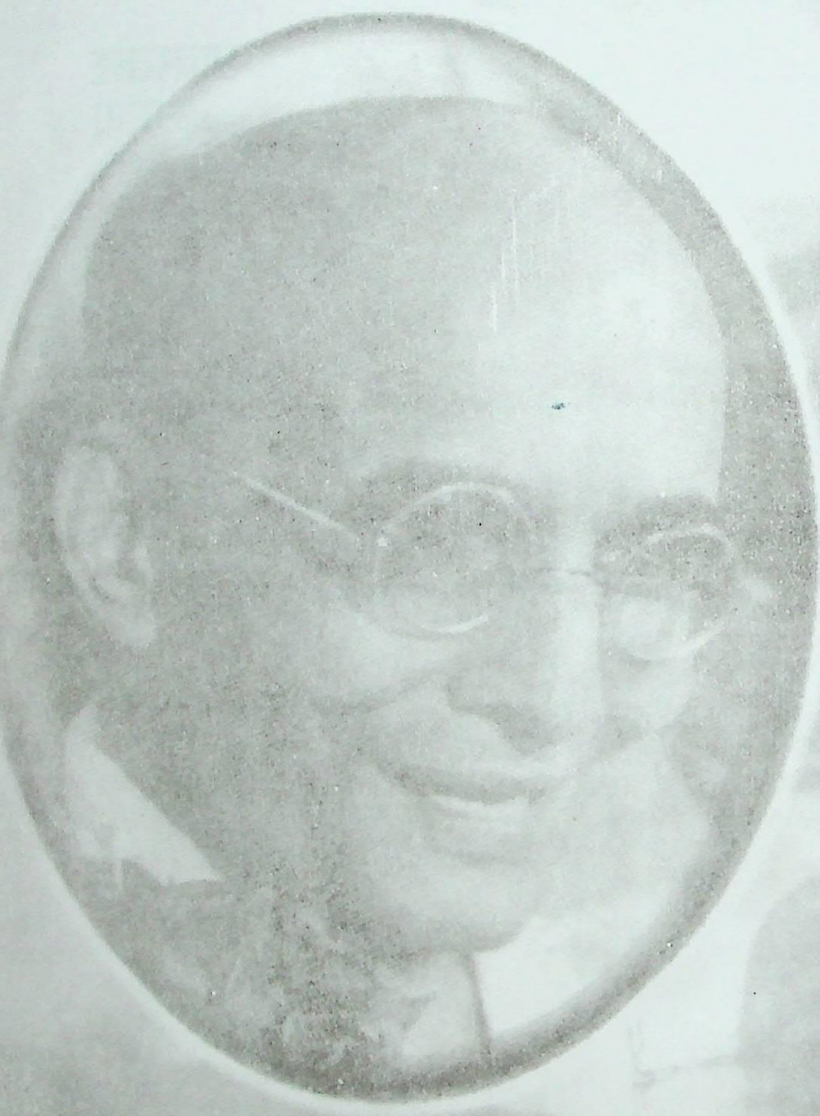
सावरकर समग्र

सावरकर समग्र

स्वातंत्र्यवीर

विनायक दामोदर सावरकर

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

सावरकर समग्र

प्रथम खंड

पूर्व पीठिका, भगूर, नाशिक
शत्रु के शिविर में
लंदन से लिखे पत्र

द्वितीय खंड

मेरा आजीवन कारावास
अंदमान की कालकोठरी से
गांधी वध निवेदन
आत्महत्या या आत्मार्पण
अंतिम इच्छा पत्र

तृतीय खंड

काला पानी
मुझे उससे क्या ? अर्थात् मोपला कांड
अंधश्रद्धा निर्मूलक कथाएँ

चतुर्थ खंड

उ:शाप
बोधिवृक्ष
संन्यस्त खड्ग
उत्तरक्रिया
प्राचीन अर्वाचीन महिला
गरमागरम चिवड़ा
गांधी गोंधल

पंचम खंड

१८५७ का स्वातंत्र्य समर
रणदुंदुभि
तेजस्वी तारे

षष्टम खंड

छह स्वर्णिम पृष्ठ
हिंदू पदपादशाही

सप्तम खंड

जातिभंजक निबंध
सामाजिक भाषण
विज्ञाननिष्ठ निबंध

अष्टम खंड

मैझिनी चरित्र
विदेश में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम
क्षकिरणे
ऐतिहासिक निवेदन
अभिनव भारत संबंधी भाषण

नवम खंड

हिंदुत्व
हिंदुत्व का प्राण
हिंदुराष्ट्र दर्शन
नेपाली आंदोलन
लिपि सुधार आंदोलन

दशम खंड

कविताएँ
विविध लेख
भाषाशुद्धि लेख

अनुवाद :

प्रो. निशिकांत मिरजकर, डॉ. ललिता मिरजकर,
डॉ. हेमा जावडेकर, श्री वामन राव पाठक, श्री काशीनाथ जोशी,
श्री शरद दामोदर महाजन, श्री माधव साठे, सौ. कुसुम तांबे,
सौ. सुनीता कुट्टी, सौ. प्रणोति उपासने,
सौ. सिंधुताई भिंगारकर, श्री वि.गो. वैद्य

संपादन :

प्रो. निशिकांत मिरजकर, डॉ. श्याम बहादुर वर्मा,
श्री रामेश्वर मिश्र 'पंकज', श्री जगदीश उपासने,
श्री काशीनाथ जोशी, श्री धृतिवर्धन गुप्त, श्री अशोक कौशिक,
सौ. रश्मि घटवाई

मार्गदर्शन :

श्री त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, डॉ. हरींद्र श्रीवास्तव,
श्री शिवकुमार गोयल

विनायक दामोदर सावरकर : संक्षिप्त जीवन परिचय

श्री विनायक दामोदर सावरकर भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के एक तेजस्वी तथा अग्रणी नक्षत्र थे। 'वीर सावरकर' शब्द साहस, वीरता, देशभक्ति का पर्यायवाची बन गया है। 'वीर सावरकर' शब्द के स्मरण करते ही अनुपम त्याग, अदम्य साहस, महान् वीरता, एक उत्कट देशभक्ति से ओतप्रोत इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ हमारे सामने साकार होकर खुल पड़ते हैं।

वीर सावरकर न केवल स्वाधीनता-संग्राम के एक तेजस्वी सेनानी थे अपितु वह एक महान् क्रांतिकारी, चिंतक, सिद्धहस्त लेखक, कवि, ओजस्वी वक्ता तथा दूरदर्शी राजनेता भी थे। वह एक ऐसे इतिहासकार भी थे जिन्होंने हिंदू राष्ट्र की विजय के इतिहास को प्रामाणिक ढंग से लिपिबद्ध किया तो '१८५७ के प्रथम स्वातंत्र्य समर' का सनसनीखेज व खोजपूर्ण इतिहास लिखकर ब्रिटिश शासन को हिला डाला था।

इस महान् क्रांतिपुंज का जन्म महाराष्ट्र के नासिक जिले के ग्राम भगूर में चित्तपावन वंशीय ब्राह्मण श्री दामोदर सावरकर के घर २८ मई, १८८३ को हुआ था। गाँव के स्कूल में ही पाँचवीं तक पढ़ने के बाद विनायक आगे पढ़ने के लिए नासिक चले गए।

लोकमान्य तिलक द्वारा संचालित 'केसरी' पत्र की उन दिनों भारी धूम थी। 'केसरी' में प्रकाशित लेखों को पढ़कर विनायक के हृदय में राष्ट्रभक्ति की भावनाएँ हिलोरें लेने लगीं। लेखों, संपादकीयों व कविताओं को पढ़कर उन्होंने जाना कि भारत को दासता के चंगुल में रखकर अंग्रेज किस प्रकार भारत का शोषण कर रहे हैं। वीर सावरकर ने कविताएँ तथा लेख लिखने शुरू कर दिए। उनकी रचनाएँ मराठी पत्रों में नियमित रूप से प्रकाशित होने लगीं। 'काल' के संपादक श्री परांजपे ने अपने पत्र में सावरकर की कुछ रचनाएँ प्रकाशित कीं, जिन्होंने तहलका मचा दिया।

सन् १९०५ में सावरकर बी.ए. के छात्र थे। उन्होंने एक लेख में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान किया। इसके बाद उन्होंने अपने साथियों के साथ मिलकर विदेशी वस्त्रों की होली जलाने का कार्यक्रम बनाया। लोकमान्य तिलक इस कार्य के लिए आशीर्वाद देने उपस्थित हुए।

सावरकर की योजना थी कि किसी प्रकार विदेश जाकर बम आदि बनाने सीखे

जाएँ तथा शस्त्रास्त्र प्राप्त किए जाएँ। ९ जून, १९०६ को सावरकर इंग्लैंड के लिए रवाना हो गए। वह लंदन में 'इंडिया हाउस' में ठहरे। उन्होंने वहाँ पहुँचते ही अपनी विचारधारा के भारतीय युवकों को एकत्रित करना शुरू कर दिया। उन्होंने 'फ्री इंडिया सोसाइटी' की स्थापना की।

सावरकर 'इंडिया हाउस' में रहते हुए लेख व कविताएँ लिखते रहे। वह गुप्त रूप से बम बनाने की विधि का अध्ययन व प्रयोग भी करते रहे। उन्होंने इटली के महान् देशभक्त मैझिनी का जीवन-चरित्र लिखा। उसका मराठी अनुवाद भारत में छपा तो एक बार तो तहलका ही मच गया था।

१९०७ में सावरकर ने अंग्रेजों के गढ़ लंदन में १८५७ की अर्द्धशती मनाने का व्यापक कार्यक्रम बनाया। १० मई, १९०७ को 'इंडिया हाउस' में सन् १८५७ की क्रांति की स्वर्ण जयंती का आयोजन किया गया। भवन को तोरण-द्वारों से सजाया गया। मंच पर मंगल पांडे, लक्ष्मीबाई, वीर कुँवरसिंह, तात्या टोपे, बहादुरशाह जफर, नानाजी पेशवा आदि भारतीय शहीदों के चित्र थे। भारतीय युवक सीने व बाँहों पर शहीदों के चित्रों के बिल्ले लगाए हुए थे। उनपर अंकित था —'१८५७ के वीर अमर रहें'। इस समारोह में कई सौ भारतीयों ने भाग लेकर १८५७ के स्वाधीनता-संग्राम के शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पित की। राष्ट्रीय गान के बाद वीर सावरकर का ओजस्वी भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने सप्रमाण सिद्ध किया कि १८५७ में 'गदर' नहीं अपितु भारत की स्वाधीनता का प्रथम महान् संग्राम हुआ था।

सावरकर ने १९०७ में '१८५७ का प्रथम स्वातंत्र्य समर' ग्रंथ लिखना शुरू किया। इंडिया हाउस के पुस्तकालय में बैठकर वह विभिन्न दस्तावेजों व ग्रंथों का अध्ययन करने लगे। उन्होंने अनेक ग्रंथों के गहन अध्ययन के बाद इसे लिखना शुरू किया।

ग्रंथ की पांडुलिपि किसी प्रकार गुप्त रूप से भारत पहुँचा दी गई। महाराष्ट्र में इसे प्रकाशित करने की योजना बनाई गई। 'स्वराज्य' पत्र के संपादक ने इसे प्रकाशित करने का निर्णय लिया; किंतु पुलिस ने प्रेस पर छापा मारकर योजना में बाधा डाल दी। ग्रंथ की पांडुलिपि गुप्त रूप से पेरिस भेज दी गई। वहाँ इसे प्रकाशित कराने का प्रयास किया गया; किंतु ब्रिटिश गुप्तचर वहाँ भी पहुँच गए और ग्रंथ को प्रकाशित न होने दिया गया। ग्रंथ के प्रकाशित होने से पूर्व ही उसपर प्रतिबंध लगा दिया गया। अंततः १९०९ में यह ग्रंथ फ्रांस से प्रकाशित हो गया।

ब्रिटिश सरकार तीनों सावरकर बंधुओं को 'राजद्रोही' व खतरनाक क्रांतिकारी घोषित कर चुकी थी। सावरकर इंग्लैंड से पेरिस चले गए। पेरिस में उन्हें अपने साथी याद आते। वह सोचते कि उनके संकट में रहते उनका यहाँ सुरक्षित रहना उचित नहीं है। अंततः वह इंग्लैंड के लिए रवाना हो गए।

१३ मार्च, १९१० को लंदन के रेलवे स्टेशन पर पहुँचते ही सावरकर को बंदी बना लिया गया और ब्रिक्स्टन जेल में बंद कर दिया गया। उनपर लंदन की अदालत

में मुकदमा शुरू हुआ। न्यायाधीश ने २२ मई को निर्णय दिया कि क्योंकि सावरकर पर भारत में भी कई मुकदमे हैं, अत: उन्हें भारत ले जाकर वहीं मुकदमा चलाया जाए। अंतत: २९ जून को सावरकर को भारत भेजने का आदेश जारी कर दिया गया।

१ जुलाई, १९१० को 'मोरिया' जलयान से सावरकर को कड़े पहरे में भारत रवाना किया गया। ब्रिटिश सरकार को भनक लग गई थी कि सावरकर को रास्ते में छुड़ाने का प्रयास किया जा सकता है। अत: सुरक्षा प्रबंध बहुत कड़े किए गए। ८ जुलाई को जलयान मार्सेलिस बंदरगाह के निकट पहुँचने ही वाला था कि सावरकर शौच जाने के बहाने पाखाने में जा घुसे। फुरती के साथ उछलकर वह पोर्ट हॉल तक पहुँचे और समुद्र में कूद पड़े।

अधिकारियों को जैसे ही उनके समुद्र में कूद जाने की भनक लगी कि अंग्रेज अफसरों के छक्के छूट गए। उन्होंने समुद्र की लहरें चीरकर तैरते हुए सावरकर पर गोलियों की बौछार शुरू कर दी। सावरकर सागर की छाती चीरते हुए फ्रांस के तट की ओर बढ़ने लगे। कुछ ही देर में वह तट तक पहुँचने में सफल हो गए; किंतु उन्हें पुन: बंदी बना लिया गया। १५ सितंबर, १९१० को सावरकर पर मुकदमा शुरू हुआ। सावरकर ने स्पष्ट कहा कि भारत के न्यायालय से उन्हें न्याय की किंचित् भी आशा नहीं है, अत: वह अपना बयान देना व्यर्थ समझते हैं।

१४ दिसंबर को अदालत ने उन्हें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र रचने, बम बनाने तथा रिवॉल्वर आदि शस्त्रास्त्र भारत भेजने आदि आरोपों में आजन्म कारावास की सजा सुना दी। उनकी तमाम संपत्ति भी जब्त कर ली गई।

२३ जनवरी, १९११ को उनके विरुद्ध दूसरे मामले की सुनवाई शुरू हुई। ३० जनवरी को पुन: आजन्म कारावास की सजा सुना दी गई। इस प्रकार सावरकर को दो आजन्म कारावासों का दंड दे दिया गया। सावरकर को जब अंग्रेज न्यायाधीश ने दो आजन्म कारावासों का दंड सुनाया तो उन्होंने हँसते हुए कहा, 'मुझे बहुत प्रसन्नता है कि ईसाई (ब्रिटिश) सरकार ने मुझे दो जीवनों का कारावास-दंड देकर पुनर्जन्म के हिंदू सिद्धांत को मान लिया है।'

कुछ माह बाद महाराजा नामक जलयान से सावरकर को अंदमान भेज दिया गया। वे ४ जुलाई, १९११ को अंदमान पहुँचे। अंदमान में उन्हें अमानवीय यातनाएँ दी जाती थीं। कोल्हू में बैल की जगह जोतकर तेल पिरवाया जाता था, मूँज कुटवाई जाती थी। राजनीतिक बंदियों पर वहाँ किस प्रकार अमानवीय अत्याचार ढाए जाते थे, इसका रोमांचकारी वर्णन सावरकरजी ने अपनी पुस्तक 'मेरा आजीवन कारावास' में किया है।

सावरकरजी ने अंदमान में कारावास के दौरान अनुभव किया कि मुसलमान वॉर्डर हिंदू बंदियों को यातनाएँ देकर उनका धर्म-परिवर्तन करने का कुचक्र रचते हैं। उन्होंने इस अन्यायपूर्ण धर्म-परिवर्तन का डटकर विरोध किया तथा बलात् मुसलिम

बनाए गए अनेक बंदियों को हिंदू धर्म में दीक्षित करने में सफलता प्राप्त की। उन्होंने अंदमान की कालकोठरी में कविताएँ लिखीं। 'कमला', 'गोमांतक' तथा 'विरहोच्छ्वास' जैसी रचनाएँ उन्होंने जेल की यातनाओं से हुई अनुभूति के वातावरण में ही लिखी थीं। उन्होंने 'मृत्यु' को संबोधित करते हुए जो कविता लिखी वह अत्यंत मार्मिक व देशभक्ति से पूर्ण थी।

सावरकरजी ने अंदमान कारागार में होनेवाले अमानवीय अत्याचारों की सूचना किसी प्रकार भारत के समाचारपत्रों में प्रकाशित कराने में सफलता प्राप्त कर ली। इससे पूरे देश में इन अत्याचारों के विरोध में प्रबल आवाज उठी। जाँच समिति ने अंदमान जाकर जाँच की। अंत में दस वर्ष बाद मई १९२१ में सावरकरजी को अंदमान से मुक्ति मिली। उन्हें अंदमान से लाकर रत्नागिरि तथा यरवदा की जेलों में बंद रखा गया। तीन वर्षों तक इन जेलों में रखने के बाद सन् १९२४ में उन्हें रत्नागिरि में नजरबंद रखने के आदेश हुए। रत्नगिरि में रहकर उन्होंने अस्पृश्यता निवारण, हिंदू संगठन जैसे अनूठे कार्य किए।

'हिंदुत्व', 'हिंदू पदपादशाही', 'उ:श्राप', 'उत्तरक्रिया', 'संन्यस्त खड्ग' आदि ग्रंथ उन्होंने रत्नागिरि में ही लिखे।

१० मई, १९३७ को सावरकरजी की नजरबंदी रद्द की गई।

नजरबंदी से मुक्त होते ही सावरकरजी का भव्य स्वागत किया गया। अनेक नेताओं ने उन्हें कांग्रेस में शामिल करने का प्रयास किया; किंतु उन्होंने स्पष्ट कह दिया, 'कांग्रेस की मुसलिम तुष्टीकरण की नीति पर मेरे तीव्र मतभेद हैं। मैं हिंदू महासभा का ही नेतृत्व करूँगा।'

३० दिसंबर, १९३७ को अहमदाबाद में आयोजित अखिल भारतीय हिंदू महासभा के अधिवेशन में सावरकरजी सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुने गए। उन्होंने 'हिंदू' की सर्वश्रेष्ठ व मान्य परिभाषा की। हिंदू महासभा के मंच से सावरकरजी ने 'राजनीति का हिंदूकरण और हिंदू का सैनिकीकरण' का नारा दिया। उन्होंने हिंदू युवकों को अधिक-से-अधिक संख्या में सेना में भरती होने की प्रेरणा दी। उन्होंने तर्क दिया, 'भारतीय सेना के हिंदू सैनिकों पर ही इस देश की रक्षा का भार आएगा, अत: उन्हें आधुनिकतम सैन्य विज्ञान की शिक्षा दी जानी जरूरी है।'

२६ फरवरी, १९६६ को भारतीय इतिहास के इस अलौकिक महापुरुष ने इस संसार से विदा ले ली। अपनी अंतिम वसीयत में भी उन्होंने हिंदू संगठन व सैनिकीकरण के महत्त्व, शुद्धि की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। भारत को पुन: अखंड बनाए जाने की उनकी आकांक्षा रही।

ऐसे वीर पुरुष का व्यक्तित्व और कृतित्व आज भी हमारे लिए पथ-प्रदर्शक का काम करने में सक्षम है।

—शिवकुमार गोयल

मुसकराते सावरकर
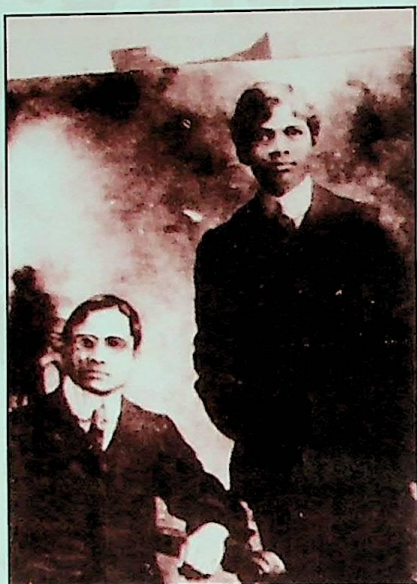
अपने मित्र निरंजन पाल के साथ सावरकरजी
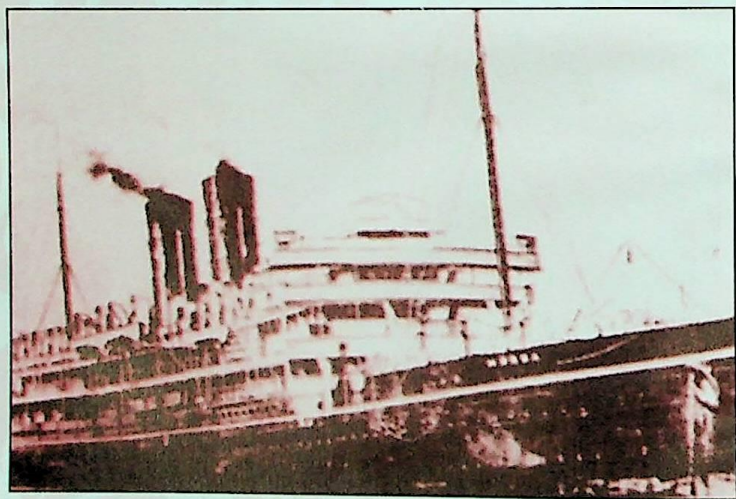
'मोरिया' जलयान : शत्रु की कैद से मुक्त होने के लिए वीर सावरकर ने जिसपर से समुद्र में छलाँग लगाई थी

अखिल भारतीय हिंदू संस्थान परिषद्, शिमोगा में सावरकरजी

रत्नागिरि के पतित पावन मंदिर के सहभोज में सावरकरजी

युगद्रष्टा का महाप्रयाण

अनुक्रम

कविता १९

१. स्फुट कविता २१

१. श्रीमंत सवाई माधवरावजी का रंगोत्सव २१
२. स्वदेशी का जोशीला गीत २३
३. चाफेकरजी और रानडेजी पर जोशीला गीत २५
४. देश रसातल को जा पहुँचा ३३
५. नासिक की गुफाएँ देखकर ३४
६. शाम ढले बीहड़ में भटका मेमना ३४
७. नारोशंकर का देवालय ३८
८. गोदा-तट पर रात्रि-दृश्य ३८
९. श्री तिलक स्तवन ३८
१०. केतकर-प्रशस्ति ३९
११. यह शौक नहीं अच्छा! ४०
१२. लेडी ऑफ दि लेक : सर्ग ५ अनुवाद ४१
१३. श्रीशिवगीत (आर्या) ४१
१४. गोदा वकिली ४३
१५. पवन लीला ४३
१६. 'केरल कोकिल' वालों का स्वागत ४४
१७. वृषोक्ति ४६
१८. श्री शिवाजी महाराज की आरती ४८
१९. हुआ विश्व में शाश्वत-अविचल आज तक कभी कोई? ४९
२०. बाल विधवा : दु:स्थिति-कथन ५०
२१. हे सदय गजानन, तार! ५७

२२.	शिववीर	५८
२३.	स्वतंत्रता का स्तोत्र	६०
२४.	प्रे. क्रूगरजी की मृत्यु	६१
२५.	मित्रवर वामनराव दातारजी को पत्र	६५
२६.	सिंहगढ़ का पोवाड़ा	६६
२७.	श्री बाजी देशपांडेजी का पोवाड़ा	७७
२८.	तारकाओं को देखकर	८६
२९.	श्रीमान् राजा कृष्णशहा से	८९
३०.	हिंदसुंदरा वह !	९१
३१.	प्रियतम हिंदुस्थान	९२
३२.	प्रभाकर के प्रति	९३
३३.	हे सागर···	९५
३४.	सांत्वना	९७
३५.	मेरा मृत्यु पत्र	९७
३६.	आत्मबल	९७
३७.	पहली किश्त	९८
३८.	सप्तर्पि	९९
३९.	चंदामामा चंदामामा ! थक गए क्या ?	११७
४०.	सायंघंटा	१२१
४१.	निद्रे	१२८
४२.	मूर्ति दूजी वह	१३२
४३.	बेड़ी	१४७
४४.	कोठरी	१४८
४५.	रवींद्रनाथजी का अभिनंदन	१५०
४६.	हलाहल बिंदु	१५४
४७.	आकांक्षा (Aspiration) (किसी शापित गरुडकन्या की)	१५४
४८.	जगन्नाथ का रथोत्सव	१६१
४९.	सूत्रधार से	१६२
५०.	अज्ञेय का रुद्धद्वार	१६३
५१.	मृत्युसम्मुख शय्या पर	१६५
५२.	हिंदू नृसिंह	१७२
५३.	हिंदुओं का एकता-गान	१७३

५४. हमारा स्वदेश हिंदुस्थान १७४
५५. दीपावलि का लक्ष्मी पूजन १७५
५६. दुष्ट शराबी! १७६
५७. जाओ जूझो! १७६
५८. माला गूँथते जी १७७
५९. सुखशय्या मंचक १७७
६०. अखिल-हिंदू-विजय-ध्वज-गीत १७८
६१. सूतक युगों का खत्म हुआ १७९
६२. हा भगतसिंह! हाय हा!! १८०
६३. सुन लो भविष्य को। भव्य भीषण को १८१
६४. संत रोहिदास १८२
६५. पानी बना आग ज्यों १८४
६६. यात्रा पर जाते समय १८४
६७. हिंदू जाति द्वारा श्री पतितपावन का आवाहन १८५
६८. मुझे प्रभु का दर्शन करने दो १८७
६९. मथुरा जाते समय १८८
७०. हिंदू-मुसलमान संभाषण १८८
७१. चिपक जा मुझसे! १९०
७२. भू माता से १९०
७३. प्रतिज्ञा कर लो १९१
७४. देहलता १९१
७५. शस्त्रगीत १९१
७६. अनंत की आरती १९२
२. कमला १९३
३. विरहोच्छ्वास! २२२
४. महासागर २४५
५. गोमांतक २५६
गोमांतक (पूर्वार्ध) २५६
गोमांतक (उत्तरार्ध-१) ३१७
महाराष्ट्र-भाट का विजयगीत! ३५०
गोमांतक (उत्तरार्ध-२) ३५९
६. सावरकरजी की अप्रसिद्ध कविताएँ ४१२

नासिक के सन् १८९७ के गणेशोत्सव पर कुछ आर्याएँ ४१२
श्रीतिलक-आर्यभू मिलन ४१४
अन्य स्फुट कविताएँ ४१४
मातृशोक-अलाप-अष्टक ४१७
मेरी विनम्र शिकायत ४२०
एक स्वप्न ४२६
श्री तिलक-मुक्ततोत्सव ४२९

विविध लेख **४३१**

१. वैनायक वृत्त की विशेषता ४३३
२. स्वतंत्रता के गायक : कवि गोविंद ४४४
कवि गोविंदजी की पूर्वपीठिका ४५१
कविवर गोविंदजी की जन्मतिथि ४५३
कवि गोविंदजी की जन्मपत्री ४५४
कविवर गोविंदजी की जाति ४५४
श्री गोविंदजी की प्रथम कविता ४५८
तमाशागर की मठी से गोविंद गुप्त होता है ४६०
श्री गोविंदजी का वीर सावरकरजी से प्रथम संभाषण ४६३
३. लालाजी के वाङ्मय का परिचय ४६९
४. हे मन, आज तुझे सुखोपभोग का अधिकार नहीं है! ४७७
५. अंदमान के उपनिवेशों का पुनर्विचार ४८२
मुख्य प्रश्न उपनिवेश के सुधार का है, उपनिवेश को तोड़ने का नहीं ४८२
अंदमान की जानकारी की माँग ४८४
अंदमान के उपनिवेश का महत्त्व ४८५
विधि समिति के प्रतिनिधियों के निरीक्षक मंडल को अंदमान में भेजिए ४८६
अंदमान हिंदुस्थान का शिशु अपत्य है ४८७
६. गोमांतक को मत भूलिए ४८८
गोमांतक का कर्तव्य ४९१
गोमांतक के शुद्धीकरण का प्रश्न ४९२
७. कै. भाऊराव चिपळूणकर (ससुर) ४९५

८. महाराष्ट्रीय तेजस्विता की सुघड़ मूर्ति ४९८
धर्मवीर भोपटकर ४९८
महाराष्ट्र के मार्गप्रदर्शक ४९९
भगवान् उन्हें हमारे कल्याण के लिए उदंड आयुरारोग्य दे दे ५००
'कानून' शब्द निकालिए ५००
९. लेखनियाँ तोड़िए और बंदूकें लीजिए ५०१
१०. लेखनी (सरकंडे की लेखनी) तोड़िए और बंदूक लीजिए, यानी क्या ५१३
११. सम्राट् विक्रमादित्य का चरित्र और महत्त्व ५१७
अभिमान का घमंड तो हम ही कर सकते हैं ५१७
हिंदुस्थान नवरत्नों की खान है ५१८
विक्रम नाम नहीं, संस्था है ५१९
हूण लोगों का संपूर्ण विनाश किसने किया? ५२०
यह नक्शा देखिए और वह नक्शा देखिए ५२१
१२. नाट्य शताब्दी ५२३
१३. श्री सावरकर और बोलपट सृष्टि ५२५

भाषाशुद्धि लेख **५२७**
१. भाषाशुद्धि ५२९
भाषाशुद्धि के मूल तत्त्व ५३०
२. मराठी भाषा का शुद्धीकरण (पूर्वार्द्ध) ५३१
मुसलमानों की अपनी भाषा ही नहीं है ५३१
अखिल मुसलमानों की एक भाषा होना संभव नहीं है ५३२
उर्दू की उत्पत्ति ५३२
उर्दू यानी विकृत और म्लेछीकृत हिंदी है ५३४
हिंदी की दु:स्थिति या दुरवस्था ५३४
मराठी पर आया हुआ प्रथम संकट और उसका प्रथम प्रतिकार ५३५
मराठी पर दूसरा आक्रमण और प्रतिकार ५३५
परकीय शब्दों का स्वकीय शब्दों पर होनेवाला वर्चस्व ५३६
काव्य में कठिनाई ५३७
आज का कर्तव्य और उसके बारे में लोगों की अपेक्षा ५३८
पुरानी मराठी की विपर्यस्त कल्पना और शाहिरी कविता ५३८
यह प्रश्न एकाध दूसरे शब्द का निश्चित रूप से नहीं है, यह प्रवृत्ति का प्रश्न है ५३९

मुसलमानों की घातक महत्त्वाकांक्षा ५४०
लज्जास्पद बात—हिंदू लेखक भी उर्दू को ही परिपुष्ट कर रहे हैं ५४०
'उर्दू को राष्ट्रीय भाषा और पर्शियन लिपि को ही राष्ट्रीय लिपि कीजिए' कहनेवाला मुसलमानों का दुरभिमान ५४१
शुद्ध हिंदी भाषा का पुनरुज्जीवन ५४२
महाराष्ट्र को पीछे नहीं रहना चाहिए ५४३
योग्यता की दृष्टि से मराठी साहित्य बँगला या हिंदी साहित्य से हीनतर नहीं है ५४४
इसीलिए हमें भी उन्हीं के जैसे शुद्धीकरण की तरफ ध्यान देना आवश्यक है ५४५
प्रत्येक भाषा में कुछ विदेशी शब्द होंगे ही ५४५
देश-देश के भिन्न-भिन्न और विशिष्ट पदार्थबोधक शब्द अगर विदेशी भाषा के हों तो कोई प्रत्यवाय नहीं है ५४६
परंतु जहाँ जिस वस्तु को या कल्पना को उत्तम प्रकार से निर्दिष्ट करने के लिए एक से अधिक शब्द अपने पूर्व व्यवहार में मातृभाषा में विद्यमान हैं, वहाँ उस वस्तु को या भावना को संबोधित करने के लिए सभी स्वदेशी शब्द छोड़कर लापरवाही से विदेशी शब्दों का उपयोग करने की बात निषिद्ध होनी चाहिए ५४६
विदेशी शब्दों के उदाहरण ५४७
कुछ शब्द यद्यपि पर्शियन भासमान होते हैं, फिर भी वे शब्द स्वदेशी हैं ५४८
दृष्टिकोण ही बदलना होगा ५४९
कष्ट होंगे, पर इसीलिए निश्चय दोगुना होना चाहिए ५५०
हमारा उद्‌देश्य स्पष्ट है ५५०
प्रेमद्वेष का संभ्रम ५५१
छत्रपति शिवाजी और विष्णु शास्त्री चिपळूणकर ५५३
ऊँट का शावक-छौना ५५४
अभिमान का अतिरेक ५५४
एस्पेरॅन्टो का मायावी रूप ५५५
संस्कृत भाषा से शब्द लेने के लिए भी क्या आपका विरोध है? ५५६
उर्दू भाषा मर्द की भाषा है ५५६
जिनको यावनी संपर्क से ही मराठी जोशीली हुई है ५५६

मुसलमानी शब्दों का उच्चारण है ५५८
पारिभाषिक शब्द ५६१
पुराने उर्दू शब्दों का क्या करना है? ५६३
शब्द-संपत्ति का आडंबर ५६५
कुछ उदाहरण : प्रथम वर्ग ५६६
दूसरा वर्ग ५६७
उर्दू का सिरचढ़ापन ५६९
हास्यकारक प्रतिक्रिया : स्वदेशी शब्द भी विदेशी प्रतीत होने लगते हैं ५६९
संशयास्पद फुटकर या फुटकल कठिनाई का आसान उपाय और संशयित शब्द पहचानने के नियम ५७०
इस परिभाषा के निष्कर्ष पर परीक्षा लेकर हम शब्द-प्रयोग करने का प्रयत्न करते हैं ५७१
अतिरेक त्याज्य है और सुवर्ण मध्य ही ग्राह्य है ५७२
अतिरेक चुनना अनिवार्य हो तो ५७२
यही भ्रष्ट अतिरेक ५७३
दुकान के नाम-पटल पर और नाम की पट्टी पर अंग्रेजी शब्द तथा नाम भी आद्याक्षर में लिखने की मूर्खता ५७४
सदैव नए विदेशी शब्दों को स्वीकार करने की निरर्थकता ५७५
ये ही लोग कहते हैं कि स्वदेशी नए शब्द रूढ़ होना जरा कठिन है! ५७५
विष्णु शास्त्री चिपळूणकर उर्दू शब्दों के विरुद्ध क्यों नहीं थे? ५७६
हमें भी परिस्थिति ने ही उर्दू शब्दों के बहिष्कार के लिए विवश किया है ५७७
मराठी पर उर्दू का संकट आया ही नहीं है ५७८
अहो! भाषा भाषा की बली होती है—यह नियति ही है ५७८
जो विदेशी अनुकरण लोकहितवर्धक होगा, वह त्याज्य नहीं है ५७९
इसलिए चुपचाप बैठना नहीं है ५७९
लेखकवृंद और अध्यापक वर्ग ५८०
राजनीतिक सत्ता जैसे-जैसे स्वकीय हो जाएगी, वैसे-वैसे वे शब्द भी सहज परिवर्तित होंगे ५८०
चर्चा में सहभागियों का आभार और अब विदा ५८१

३. कायदे कॉन्सिल के इलेक्शन के कैंडीडेटों का मैनिफेस्टोज ५८२
४. भाषाशुद्धि और श्री श्री.कृ. कोल्हटकर ५८९
फिर यह नियम उर्दू शब्दों पर भी क्यों नहीं लागू किया जाता? ५९१
मुसलमानी शब्दों पर बहिष्कार, यानी मुसलमानों का द्वेष! ५९२
श्री कोल्हटकरजी के विरुद्ध श्री कोल्हटकर ५९४
इस विरोध का मूल कारण है दूषित अभ्यास ५९६
५. पंचवार्षिक समालोचना ५९९
पुराने शब्दों का पुररुज्जीवन ६०७
६. हमारी राष्ट्रभाषा और भाषाशुद्धि ६१४
उर्दूनिष्ठ पक्ष के आग्रह से हिंदुस्थानी का नाम निर्देश ६१४
यह प्रस्ताव इतना अनिश्चित कैसे हुआ? ६१४
'संस्कृतनिष्ठ' विशेषण क्यों लगाना पड़ा? ६१५
महाराष्ट्रीय लोगों का नेतृत्व ६१५
सच्चा वादकेंद्र अंग्रेजी नहीं है ६१६
एक की विजय होने पर भी दूसरे की पराजय निश्चित नहीं है ६१६
राज्यघटना को तुच्छ समझकर 'उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी' की चालबाजियाँ शुरू ६१७
और एक कौतुक ६२०
उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी के वेग की रामबाण औषधि—भाषाशुद्धि ६२१
रूढ़ विदेशी शब्दों की मालिका ६२२
उर्दू और हिंदी में होनेवाला मूलभूत प्रभेद ६२३
भाषाशुद्धि के सूत्र ६२३
प्रयोगसिद्ध प्रमाण ६२४
डॉ. रघुवीर ६२५
७. प्राध्यापक क्षीरसागर और भाषाशुद्धि ६२७
भाषाशुद्धि के मूलसूत्र ६२९
शुद्ध झूठा अभियोग ६३०
यह 'जातिवंत' मराठी का अभिमान ६३२
यह जातिमान कैसी? यह तो पाकिस्तानी मराठी है ६३३
८. भाषाशुद्धि-शब्दकोश ६३६
परिशिष्ट ६५७
भाषाशुद्धि विषयक मराठी शब्दकोश ६५७

कविता

स्फुट कविता

श्रीमंत सवाई माधवरावजी का रंगोत्सव

(**परिचय :** सावरकरजी द्वारा ग्यारह वर्ष की आयु में लिखा गया जोशीला गीत)

धन्य कुलों में धन्य सवाई, भाग्य धन्य श्रीराजा का।
सेवक तत्पर साथ जुड़े हैं, पुण्य बहुत श्रीचरणों का॥ १॥
राजश्री का भाग्य अलौकिक, श्रम से द्वादश वर्ष जिए।
जरिपटका भगवा फहराया, अटक-जीत का श्रेय लिए॥ २॥
रजपूतादिक वीर शत्रु भी, श्रीवर को शरणागत हैं।
मुघल राज से प्रसन्न होकर वजीर पद जो अर्पित है॥ ३॥
जहाँ तहाँ था नाम पेशवा, जिस से दुश्मन डरते थे।
प्रजा चैन से सुख पाई थी, रिपु सब दूर हटाए थे॥ ४॥
नाच-तमाशा-खेल बहुत से जनता में रँगाते थे।
धनी पेशवा रंगोत्सव के आयोजन में मशगूल थे॥ ५॥
राजा का मन-भाव देखकर, सहमति दी सब जनता ने।
हर्षघोष से चली प्रजा तब वर्ष प्रतिपदा मनवाने॥ ६॥
सरदारों ने, सकल जनों ने, सरकारी लोगों के संग।
दो तर्फा की खूब सजावट, जगह-जगह बनवाए रंग॥ ७॥
घुड़सवार, सम्मानित सैनिक, कार्यकारि औ' सरदार।
श्रीमंत-प्रभु-राव सहित आ पहुँचे थे तब दरबार॥ ८॥
अटक जीत कर वहाँ शान से, भगवा फहराया जिसने।
महादजी वे अगुआई कर पहुँचे प्रभु को ले जाने॥ ९॥
हाथी, घोड़े, फौज, पौर जन रोक खड़े उत्कंठा को।
आज्ञा कर दी प्रभु ने तब, 'अब शुरू करो तुम उत्सव को'॥ १०॥

मुट्ठी-मुट्ठी गुलाल फेंके, टंकी रंग भरी सारी।
खाली कर दी सब लोगों ने, साथ मूर्ति प्रभु की प्यारी॥ ११॥
तीन प्रहर के बाद चले श्री स्वामी सेना सज-धज के।
छोड़ हवेली, बाईं तरफ से, मार्ग चले बुधवारे* के॥ १२॥
आगे-आगे गजारूढ प्रभु, साथ हाथी अन्यों के।
चंद्र-बिंब से चमकें स्वामी, अन्य सितारों-से दमकें॥ १३॥
पिचकारी से रंग उड़ाया बहुत मजे में बुधवारे।
कपड़े के हाटों से होकर पहुँचे सब तब इतवारे**॥ १४॥
हरीपंत के बाड़े पर तो रंग केशरी खूब चला।
नागझरी से रंग पाट कर हुजुम झूमता-सा निकला॥ १५॥
रास्ते जी के गलियारे से रंग प्रवाहित था जम के।
छज्जे और अटारी पर से रंग उँडेला था जम के॥ १६॥
सलाम-मुजरे, रिवाज-रस्में सभी नागरिक भूल गए।
द्वापर-युग में रंगोत्सव ज्यों प्रेम-भाव से श्याम किए॥ १७॥
भींग गए घर-द्वार सलोने रंगविभोर चितेरे-से।
द्वापर में प्रभु श्याम रंग से रंगान्वित खेले जैसे॥ १८॥
झूम-झूमते चले सभी औ' पहुँच गए जब वानवडी।
दो घंटों तक नाच देखकर, रंगों की भरमार बढ़ी॥ १९॥
लाखों हौद भरे रंगों से, पिचकारी की मार चली।
भीड़ बहुत रंगों से रँगी, हर्षोल्लास किए उछली॥ २०॥
दो-दो हाथों गुलाल फेंके राव-प्रभु ने मस्ती में।
हास्यवदन शोभायमान बहु शूर सिपाही फौजों में॥ २१॥
रंग खेलकर बहुत देर तक, उठे स्नान के लिए पति।
गंधित जल की कड़ाहियाँ तब चढ़ीं आँच पर अनगिनती॥ २२॥
सेवक-जन सब खड़े हो गए मालिश करने, नहलाने।
तरह-तरह के तेल सुगंधित लिए स्वामि के सिरहाने॥ २३॥
हुए स्नान संपन्न सभी के, बहुत शान से, इत्मिनान से।
वस्त्र दिए थे शिंदेजी ने बाँट सभी को, बहुत प्रेम से॥ २४॥
नए वस्त्र पहने पहुँचे सब पुनरपि तेजी से दरबार।
नाच हो गया शुरू, बाँटकर बीड़े औ' फूलों के हार॥ २५॥

---

* बुधवारा = बुधवार पेठ, मोहल्ले का नाम।

** इतवारा = रविवार पेठ, मोहल्ला।

शिंदेजी ने प्रभु को अर्पण किया नया सिरपेंच महान्।
बहुत प्रेम से और उन्होंने तभी किया सबका सम्मान॥ २६॥
सूर्य-बिंब को शरमाते-से, मशाल लेकर रात, सभी।
वापस लौटे साथ स्वामि के नानादि परिवार सभी॥ २७॥
शोभा देखत नर-नारी-गण दीप जलाकर सौधों पर।
वाद्यध्वनि के साथ लौटते प्रभु को अपने बाड़े पर॥ २८॥
(भगूर, १८९४)

टिप्पणियाँ : १. प्रभु, स्वामी, राजा, श्रीमंत = पेशवा सवाई माधव राव।
२. महादजी, शिंदेजी = महादजी शिंदे, ग्वालियर के राजा, पेशवा के सरदार।
३. नानादि परिवार = नाना फडनवीस आदि सचिव-गण।
४. वानवडी = शिंदेजी का मोहल्ला, जहाँ अब महादजी की समाधि स्थित है।
५. इस कविता में वर्णित घटना के समय पेशवा की आयु मात्र बारह साल की थी।

स्वदेशी का जोशीला गीत

(**परिचय :** यह जोशीला गीत सावरकरजी ने सन् १८९८ में, अर्थात् पंद्रह साल की आयु में रचा और उसी वर्ष यह पुणे के 'जगद्धितेच्छु' वृत्तपत्र में प्रकाशित हुआ।)

आर्य बंधुओ! उठो, उठो, अब अनाड़ी न बनो, सोचो भी।
छोड़ो हठ, अब करो प्रण, ले न लें म्लेच्छवस्त्र को पुनः कभी॥ १॥
काश्मीर-बनी शालें ले लो, क्यों लेते हो वस्त्र विदेश।
मलमल अपनी भली, किसलिए हल्के पट, ये बने विदेश॥ २॥
राजमहेंद्री चिट अपनी है, क्यों लेते हो चिट नकली?
भाग्य से मिली छोड़ कटोरी, क्यों लेते हो नारियली?॥ ३॥
कहत पराए लोग नागपुरवाला रेशम खद्दर है।
उनकी अपनी रठ्ठ बनावट तुम्हें मुलायम लगती है॥ ४॥
छोड़ पितांबर पतलूनों की बनावटी की साटिन को।
क्यों लेते हो, कैसे कुछ भी नहीं समझता है तुमको॥ ५॥
तुमने ही जब मुँह फेराया तब तो सारी कला गई।
हरण किया धन सब, अब तुम भी मर जाओगे, देख भई!॥ ६॥
सोचो, हम ही पहले थे जो सकल कलाओं की खान।
भरतभूमि की कोख में पले अब हम जैसे हैवान॥ ७॥

कार्य छोड़कर गिरे जूझते, दुखी न हो जाइए, अभी।
कार्य चलाएँगे हम अब दुहराएँगे शौर्य सभी॥

सन् १९००-१९०१ के उस जमाने में चाफेकर, रानडेजी को 'राष्ट्र वीराग्रणी' तथा 'अनुकरणार्ह' कहकर इतने खुलेआम उनका अभिनंदन करनेवाला यह जोशीला गीत छापना बहुत कठिन बात थी। छापनेवाला भी कौन मिलेगा? तब इस जोशीले गीत को जितना हो सके सौम्य बना देने के लिए इन लोगों ने सावरकरजी से कहा। उन्होंने भी मूल नीति को छोड़े बिना कुछ बदलाव तथा काँट-छाट करके इसे यथासंभव सौम्य बना दिया। पर उसे भी छापने के लिए 'काळ' वालों ने भी मना कर दिया।

इसी सौम्य प्रति को बनाते समय सावरकरजी ने मूल जोशीले गीत में अंतिम चरणों में अपना नाम जो सीधा डाल दिया था, उसे बदल दिया और चित्रकाव्य का आश्रय लेते हुए उसे अंतिम चार-पाँच पंक्तियों में कूटस्थ रूप में गूँथा। इस जोशीले गीत में अंतिम चार-पाँच पंक्तियों में मोटे अक्षरों में यह नाम मुद्रित है।

अनेक वर्षों तक अनेक लोगों के द्वारा मौखिक रूप से गाए जाने से तथा गुप्त रूप में प्रसृत किए जाने से इस जोशीले गीत में कतिपय पाठांतर प्राप्त हुए। उनका संकलन तथा समन्वय करके इसकी शुद्ध प्रति पूरे पचास वर्षों के बाद सन् १९४६ में पहली बार छापी गई। उसी का यह अनुवाद है।

: १ :

महच्चरित सत्सुधांबुधी में करें सुमन की पनडूबी।
अखंड-सद्गुण-मंडित-मौक्तिक-निधान सद्यश मिले तभी॥ ध्रु.॥
हांगकांग से चिनगारी जो निकली पहुँची मुंबई में।
अपूर्व अवचित प्लेग-हुताशन प्रकट हुआ बहु मात्रा में॥
'हाय बाप! हा! हाय!' करें जब नर-महिलाएँ भयभीत।
शेष फेंकने निकला पृथ्वी भयाण ध्वनि से भ्रमचित्त॥
युवतीस्फुंदन, वृद्धाक्रंदन, प्राणांतिक वह कराहना।
भूतों की चीखों से बढ़कर भयानक रहा सब सपना॥
काल पुरुष से क्रूर और वह विष से बढ़कर विषयुक्त।
चपल पवन से होकर भी वह गिरि से भी था मजबूत॥
भारत-भू की चमक-दमक के लिए जहाँ थी आजादी।
ऐसे पुणे शहर से मिलने उसने दौड़ लगा ही दी॥

अस्मानी संकट से भारी सुल्तानी संकट ठहरा।
प्रजाहिताहित सोचे बिन ही कानून बनाया बहु गहरा॥
प्लेगनिवारक नियम बनाए भयकारी औ' बहुत कठोर।
लोगों की सम्मति लेने का सोचा न कभी, तो भड़का शोर॥
प्रदीप्त ऐसी प्लेग-अग्नि में घृत बन बैठा कानून।
रैंड-हुताशन विमुक्त होकर लगा जलाने बेभान॥

: २ :

देख-देखते क्षण के अंदर काल दबोचे लोगों को।
न्याय की हुई विडंबना, श्रम उदास दुःखी लोगों को॥
शव के प्रति ज्यों गिद्ध झपट ले, वैसा सत्वर दौड़त है।
पिशाच-गण सम मृत के घर यह सोजिर-गण तब पहुँचत है॥
क्रूर, मदोद्धत, मानो भैरव शराब पीकर मस्त सदा।
आप्तवियोगाहत लोगों से कठोर भाषण करे तदा॥
मौत प्लेग से हो न हो, इन्हें अंदर घुसने का मौका।
लूटपाट मनचाही कर के पूर्ण मिटाते आशंका॥
अपनी इच्छा से घर घुसकर गृहस्वामी को कैद करें।
चीज उठा लें मनचाही, बस, अपनी इच्छा से विचरें॥
जिस मंदिर में कदम रखें यदि म्लेच्छ, सिर तभी कटवाते।
ऐसे पवित्र स्थान हाय! ये सोजिर उद्धत मैलाते॥
कभी पकड़कर भ्रष्ट करें ये पतिव्रता अबलाओं को।
अधमो! सोचो! समय न स्थिर, भुगतना पड़ेगा फिर तुमको॥
आर्या-माताओं को देते हुए कष्ट बन गए तुम मदमस्त।
नरसिंह प्रकट हो जाएगा तब कहाँ छुपोगे, रे कंबख्त!॥

: ३ :

बहुत कष्ट देते लोगों को स्वेच्छाचारी ये सोल्जर।
प्रजा त्रस्त जब हुई तब हुए खून, न कोई आश्चर्य!॥
अबला-बाला-शाप हजारों गिरे हुए थे तब तुम पर।
मीठी लगती थी जो कृति, ये कटु फल आए हैं सत्वर॥
धर्माज्ञा का, ईशाज्ञा का, तथा समाज-कर्तव्यों का।
पालन करके, प्राणार्पण के लिए सिद्ध है मन जिनका॥

स्वजन कष्ट की वार्ता सुनकर तप्त युवक जो बनते हैं।
देश के लिए प्राण त्यागकर 'धन्य-धन्य!' कहलाते हैं॥
आपस में मंतव्य करत हैं, उपाय मन में आवत है।
'अरे, रैंड यह अधम, इसी का वध करना आवश्यक है॥
अरे, बहुत यह मन में चुभता, लोगों को भी पीड़त है।
भीरु देखकर नचा रहा है, यम-सम क्रूर दिखावत है॥
जीव सैकड़ों मर जाते हैं, कोई गिनति नहीं उनकी।
देश के लिए जो मरते हैं, सदा प्रशंसा हो उनकी॥
शीघ्र मरण को वरण करेंगे अमर तभी हो जाएँगे।'
ऐसी बातें हो जाने पर प्रभु से आशीर्वच माँगे॥

: ४ :

विनयशालिनी विनयधारिणी आंग्ल कहें जो यशवंती।
रानी उनकी विजया विजयी भाग्यशालिनी जो बनती॥
चिरायु हो, इसलिए महोत्सव आंग्ल समाज मनावत है।
उचित समय वध करने खातिर अच्छा खासा मुहूर्त है॥
स्वजन-कष्ट-निवारण करने सज्ज समर्पण प्राणों का।
मोह से बिदा लेकर निकले, करत त्याग अपने घर का॥
वीरश्री से शोभित, हर्षित सत्य-प्रतिष्ठा करने से।
स्फूर्ति संचरत, मन में चमकत, सतेज जो भी यौवन से॥
लाल सुर्ख थे नेत्र, बंधुवर बालकृष्ण ढाढ़स बाँधे।
दामोदरजी सिद्ध हो गए, खल-वध करने सौगंधे॥
कांता बोली, 'नाथ, तुम चले हित-कर्तव्य निभाने को।
बिदा ले चलो, शीघ्र वरण कर लो अब अपनी कीरत को॥'
शीघ्र पवन-सम गति से पहुँचत 'गणेशखिंड' दामोदरजी।
घात लगाकर बैठे करते उचित-समय-प्रतीक्षा, जी!॥
भक्ष्य रैंड जब निकला, दौड़ा शेर बगी की ओर तदा।
गोली दाग़ी, ढेर कर दिया, दुष्ट नराधम मरा पड़ा॥

: ५ :

कितने लोगों को मारा था, आज तक जहाँ आंग्लों ने।
सजा न कोई उन्हें मिली थी, न्याय कहाँ का, वे जाने!॥

पर देखो, वह राजदूत, नहिं! प्लेग दूत! जन-पीड़ा दे।
करे सो भरे! परंतु ऐसी सोच किसी को शोभा दे?॥
योग कहो या रैंडसाब का अजीब दृढ़-संकल्प कहो।
मरने पर भी उसके कारण जनसाधारण पीड़ित हो!॥
पागल बनकर शासन निकला काट सभी को खाने को।
सुमनांजलि थी अर्पित जिनको ऐसे भी कुछ लोगों को॥
कभी बढ़ाया पुलिस-दल को, कभी ले गए नातू को।
यत्र-तत्र सर्वत्र देखने लगे रैंड के खूनी को॥
देशवीर प्रभु शूर तिलकजी! कुशल उन्हीं का रहे सदा।
सच्चा हीरा खरा यही था, भय से आहत नहीं कदा॥
शाम गगन में चमकत जुगनू बहुत, एक पर रहे शशी।
उसी तरह थे तिलक सुधाकर, अन्य सभी थे कृमि-राशि॥
रण के भीतर खरे ठहरते वीर अडिग जो डटे रहें।
और कौन हैं देशद्रोही, साफ-साफ इंसाफ रहे॥

: ६ :

'दगाबाज', 'गद्दार' आदि थे अक्षर जिनके भालों पर।
जिनके कारण राष्ट्रदेवि थी परेशान बहु जोरों पर॥
द्रवीड बंधुद्वय, दो कुत्ते, दगाबाज हो गए तभी।
उदरपूर्ति के खातिर करते बिना शर्म के काम सभी॥
देशकार्य के लिए कार्यरत नरश्रेष्ठों को चकमाते।
दगा करा के अनर्थकारी द्रव्य बहुत वे इठलाते॥
कुकर्म कर सामने सभी के खतरा भी तो मोल लिया।
अपने हाथों सदा के लिए अकीर्ति-ध्वज को फहराया॥
पीड़क उद्धत, परंतु कीरत पीड़ित की ही होती है।
चाफेकर यश-रत्न प्रकाशित, द्रवीड-कृत अँधेरा है॥
चाफेकरजी कैद हो गए फरासखाने में तुरंत।
मन में सोचत, 'अपराधों को स्वीकृत करना ही उचित॥
जिसकी खातिर मोल लिया है संकट मैंने यह सहसा।
देशबंधु जन भुगत रहे यह होगा न्याय उचित कैसा?॥
सज्जन लोगों पर ढलते हैं दुःखों के मजबूत पहाड़।
दस लोगों के हित के खातिर एक जाऊँ मैं, करूँ दहाड़!'॥

: ७ :

'हाँ जी, हाँ जी' करे सर्वदा म्लेच्छों की बहु मदद करे।
पेट के लिए करे सभी कुछ, सदैव गौरव शत्रु करे॥
परवशता के कीचड़ में जो देश डुबो दे वह राजा!
राजद्रोही उसे कहत हैं कठोर दे जो उसे सजा!॥
उदात्त जिसके विचार, धीरज विशाल, देशप्रीति भली।
खूनी उसको घोषित करने पर मचनी थी खलबली॥
सजा मृत्यु की हुई इसी का दुःख न कण भर कोई करे।
देशपिता को ख़ूनी कहलाए जाने पर क्षोभ करे॥
न्यायाधीश बन गया पुरोहित, मुहूर्त सूर्योदय का था।
सत्य, देशहित, कीर्ति, नीति का लगा अलौकिक मेला था॥
गणेशपूजन तिलक वंदना, फाँसी विवाह-वेदी थी।
गीता मंत्र-पाठ, मुक्ति ही दामोदर की दुल्हन थी!॥
विवाह ऐसा विचित्र, चित्रित चित्र भयानक क्रोध भरे।
बदला लेने वासुदेव मन में अपने योजना करे॥

: ८ :

द्रवीड के प्रति क्रोध धधकता, शोले नेत्रों में भड़के।
दसों दिशाओं में प्रकटें, 'बदला!' अक्षर अग्नि-लिखे॥
होंठ चबाए, मले हाथ, कुछ सोचा क्षण निश्चल बैठ।
'बदला!' कानों में ध्वनि गूँजी, वासुदेव का स्मित अस्फुट॥
बोला, 'मच्छर! छेड़ शेर को भाग निकलते काहे को?
करूँ तबादला यमपुर तेरा, चलो, उठा लो थैले को॥
काट बदन तब टुकड़े-टुकड़े करूँ सैकड़ों उसके मैं।
उजड्ड भैंसे, उकसाया है बाघ को तुमने बीहड़ में॥
सत्य-देश-हितकर्ता जो था उसको दी पीड़ा तुमने।
कृतघ्न! खाकर घूस चुन लिया बलि बनना मेरा तुमने॥'
चाफेकरजी और रानडे दोनों में बहु दोस्ती थी।
द्रविड-होम की दोनों ने भी मन में बात अब ठानी थी॥
अधम-शांति-सिद्धार्थ हाथ में कंकण जो अब बाँधा था।
बंधु-प्रेम का ऋत्विज था औ' दर्भ खड्ग का न्यारा था॥

कोप-हुताशन प्रदीप्त करके द्रवीड की आहुति दे दी।
हुआ अवभृथ स्नान लहू में, पूर्ण प्रतिज्ञा कर ही दी॥

: ९ :

पीड़ा बहु पहुँचाई जब कुल लोगों को फिर म्लेच्छों ने।
उससे आहत स्वयं बताया जनवत्सल इन दोनों ने॥
'बदला लेने प्रिय भ्राताओं का मैंने ही खून किया।
वासुदेव मैं, सज्जन तारक, दुष्ट द्रविड को खत्म किया॥'
'मित्र का किया साथ, द्रविड पर मैंने भी तो वार किया।
नाम रानडे, मित्र के लिए प्राण दाँव पर लगा दिया॥'
न्यायालय में भीड़ अनगिनी जगह न खाली रत्ती भर।
मूर्ति मनोहर देख लोग सब स्मित हो गए थे पल भर॥
लगा टकटकी सभी देखते, 'धन्य शौर्य!' फिर कह देते।
'धैर्यशील', 'पागल' भी कोई, 'शूरवीर' कोई कहते॥
फाँसी घोषित, फिर भी अविचल थीं उनकी वे स्थिर नजरें।
राजनीति की चाल चलाने कोई अवसर ना उभरे॥
धन्य हो गया येरवडे का कारागृह उनके कारण।
शत-शत नमन कालगति को भी हुआ तभी जिसके कारण॥
फाँसी दे दी प्राण पखेरू देह छोड़कर चला गया।
वीर-कृति से सभी राष्ट्र ने शौर्य-तेज को ग्रहण किया॥

: १० :

काल की तरह पति को खोया अबला बन गईं बालाएँ।
राजमहल सौभाग्यरूप जो बिजली गिरकर टूट गए॥
हे बहनो, इस असह्य संकट को मानो तुम कीर्तिप्रद।
ज्ञान स्वीकारो, कीर्ति करो, जानकी बनो तुम अभिसंभत॥
माँ की तो ना दूजी उपमा भरा आसमाँ विलाप से।
तीनों लाल निगल चुका यम विकराला दंष्ट्राओं से॥
त्यागो शोक माताजी, उपजे रत्न तुम्हारी कोख से।
कीरत उनकी बहू तुम्हारी अमर, चूम लो अभी उसे॥
पुत्रत्रय का पिता बन गया निपुत्रिक भला कैसे जी?
अथवा विधि ने अनुभव के बिना न मान लिया यह शोक सह्य, जी?॥

अद्वितीय यश तीनों का यह, देशपिता ये कुलदीपक!
शतांश उनके यश न हमारा जीते भी यदि पूर्ण शतक!॥
अजरामर वे पुत्र तुम्हारे कीरत उनकी महान है।
हीरे हैं वे, मर्त्य जगत में अमर बने, क्या कमाल है!॥
नररत्नों के वियोग से पशुपक्षी भी शोकाकुल हैं।
वीरों के बलिदान बिना पर, राष्ट्रोद्धार न संभव है॥

: ११ :

लात मारकर स्वार्थ हटाया सज्जन-पीड़ा-शमनार्थ।
चाफेकरजी वंदन करने लायक ठहरे परमार्थ॥
राजनीति-षड्यंत्र नष्ट कर देश कार्य को साध्य किया।
चाफेकरजी वंदन करने लायक, उनको नमन किया॥
प्राण निकल जाने के क्षण भी असत्य मुँह से ना निकला।
चाफेकरजी वंदन करने लायक, अर्पण करूँ माला॥
सज्जन-पीड़क-द्रवीड-वध के लिए सज्ज जो हुए तदा।
चाफेकरजी वंदन करने लायक ठहरे नित्य सदा॥
जीवन भर जो कभी न वंचित जगदीश्वर के भजनों से।
चाफेकर-त्रय-बंधु वंद्य हैं वंदन शत-शत नमनों से॥
महाघोर भवपाश तोड़कर माया का विच्छेद किया।
चाफेकर-त्रय-बंधु वंद्य हैं, शत-शत उनको नमन किया॥
प्राणों की ना फिक्र, सत्य ही, जनहित करने को जनमे।
धन्य मित्रता! धन्य रानडे वीर युवक! है नमन तुम्हें॥
तेज वीरता का न सहन कर निंदा यद्यपि उल्लू करें।
नई पीढ़ियाँ प्रमुदित होकर वीर कथा का गान करें॥

: १२ :

यद्यपि गुण बहु शोभत हैं रिपु के भी स्वभाव-जीवन में।
गर्व मुझे लगता है अपने लोगों के गुण गाने में॥
डरे नहीं यम से भी यदि वे देशकार्य करते-करते।
क्यों भय पाऊँ मैं कविता में उनके गुण गाते-गाते?॥
पक्ष विरोधी जिनके वे भी सराहते हैं जिनका त्याग।
कृतज्ञ होकर क्यों न मैं करूँ उनका गौरव-स्तव-अनुराग?॥

सदियों पीछे यही चमकता है जो आज विनिंदित है।
अंधों, धूर्तों और कायरों को दिखता वह सत्य न है॥
वितंड-ज्ञानी पंडित बनता है औ' साधु बनत धूर्त।
सद्‌गुण नाहक बनते दुर्गुण, वक्त बहुत यह है विचित्र॥
अन्याय-प्रवणों का दंडन करने नित जो सरसाते।
वे नाहक कैसे अपराधी देशकार्य नित जो करते॥
फाँसी ना वह यज्ञवेदिका, रक्त तुम्हारा अर्पित है।
उसी समर में रक्त हमारा सार्थक नित्य समर्पित है॥
कार्य छोड़कर गिरे जूझते, दुखी न हो जाइए अभी।
कार्य चलाएँगे यह हम अब, दुहराएँगे शौर्य सभी॥

टिप्पणियाँ :

१. प्लेगनिवारक व्यवस्था अधिकारी रैंड ने पुणे के लोगों के साथ अनगिनत ज्यादतियाँ की थीं, जिसके कारण जनप्रक्षोभ हुआ था।

२. चाफेकर बंधुओं ने रैंड की हत्या कर दी। द्रवीड बंधुओं ने विश्वासघात करके उन्हें पकड़वाया। इसका बदला लेने हेतु वासुदेव चाफेकर तथा उनके मित्र रानडे ने द्रवीड बंधुओं की हत्या की।

३. 'काळ' = शिवराम महादेव परांजपे द्वारा संचालित साप्ताहिक पत्रिका जिसमें उनके अपने तेजस्वी लेख छपते थे।

४. रानी विजया = रानी विक्टोरिया।

५. 'चिरायु हो इसलिए महोत्सव' = रानी विक्टोरिया का हीरक महोत्सव।

६. 'गणेशखिंड' = पुणे शहर का एक इलाका, जहाँ उस समय गवर्नर हाउस था, आज वहाँ पुणे विश्वविद्यालय स्थित है।

७. नातू = पुणे के एक प्रतिष्ठित सज्जन।

८. तिलकजी = लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, जिन्होंने अपने 'केसरी' में रैंड के खून की जिम्मेदारी ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों पर रहने की बात निर्भयतापूर्वक कही थी।

देश रसातल को जा पहुँचा

देश रसातल को जा पहुँचा,
स्वतंत्रता का महल जला।
परकीयों ने धावा बोला,
उठो, तुम्हें लूटते चला!!

बाड़ तोड़कर घुसा आ गया,
टिड्डी दल सा हमला आया।
मरे-मरे-से क्यों बैठे हो,
स्वतंत्रता को लूट ले गया।

नासिक की गुफाएँ देखकर

पांडव गुंफा कभी देखते,
मित्रों के संग रमा हुआ था।
सुरम्य सुंदर दृश्य देखकर,
मेरा मन बहु मुदित हुआ था!!
क्षण के बाद हर्ष सकुचाया,
शोक-अग्नि धधकी थी मन में।
महान् विद्वान् पितरों के भी,
हम जैसे क्यों कुपुत्र जनमे?

शाम ढले बीहड़ में भटका मेमना

क्यों भटक रहा तू यहाँ?
क्यों नेत्र सजल हैं तेरे?
क्यों, किसने दी है पीड़ा?
बोल रे!!
क्या मालिक बर्बर तेरा?
क्या माँ ने क्रोध उतारा?
या माँ से तू है बिखरा?
बोल रे!!
मेमना निरागस छोटा।
बें बें करत चिल्लाता।
गोद में उठा ही लिया था।
प्रेम से!!
क्यों छटपटा रहा है?
मैंने जो उठा लिया है!
चल घर, वहाँ सब सुख है,
अजी, सुन रे!!

क्या क्रूर दिख रहा हूँ मैं?
मन तेरा आतंकित है?
भय छोड़, झूठा जो है,
सुन, सुन रे!!
यदि चाँद रम्य है यह,
रात्रि के समय तो ना वह।
भेड़िया भगाएगा, यह,
जान ले!!
वह दूर दिख रहा कौन?
वह घात करेगा यवन!
काटेगा नाजुक गरदन!
जान ले!!
कम है ना घर में कुछ भी।
मैं दूँगा दूध तुझे भी।
इक रात नींद गहरी भी।
मिल सके!!
माता तब यहाँ सवेरे।
आएगी, साथ बहुतेरे।
सौंपूँगा तुझे सहारे।
उन सबके!!
प्यार से उसे सहलाया।
मैं अपने घर ले आया।
घरवालों को भी भाया।
मेमना!!
सहलाते कोई उसको।
चूमते भी कोई उसको।
कुछ हँसते भी थे मुझको।
व्यंग्य से!!
नाजुक-सा पिल्ला काला।
नौ-दस दिन का भोला।
घुँघराले बालों वाला।
मृदु-मृदु!!

घबड़ाता क्यों है प्यारे?
मैं तत्पर सेवा में, रे!
यह कच्ची मेथी खा रे!
प्यार से!!

देख ले, दिया यह सारा।
दूध से भरपूर कटोरा।
उसका न एक भी कतरा।
क्यों न ले?

तब माता क्षण भर बिछड़ी।
इसलिए सूरत तब बिगड़ी।
मेरी भी माता बिछड़ी।
सदा के लिए!!

माँ कल ही मिलेगी तुझसे।
पर मुझे न मिलनी फिर से।
जीवनांत कभी भी अब से।
हाय रे!!

मिथ्या है जग यह सारा।
है नश्वर जीवन सारा।
ममता का नाटक पूरा।
विश्व में!!

हे दुखदायी जग, प्यारे!
ये रिश्ते-नाते सारे!
इसलिए शांत-मन हो, रे!
तू अभी!

इतने पर कुछ ना खाया।
तब कठोर रुख अपनाया।
बलपूर्वक मुँह खुलवाया।
नन्हा-सा!!

धीरे-से थोड़े दूध को।
निगलकर, हटाया मुँह को।
कुछ समझ रहा ना उसको।
भ्रांति से!!

है स्वतंत्रता जब्र खोई।
परवशता नसीब आई।
त्रिभुवन में सुख तब कोई।
मिल सके?

सीने से चिपका सोया।
समय भी शीघ्र बिताया।
विश्व को मुदित बनाया।
सूर्य ने!!

फिर उसी स्थान पर उसे।
सहलाकर पुनः फिर फिर से।
छोड़ा जो बहु प्रेम से।
सुबह को!!

तब माता उसी दिशा को।
ढूँढ़ती दूर तक शिशु को।
हर पत्थर, हरेक तरु को।
देखती!!

बें बें जब उसकी सुन ली।
आनंद सिंधु लहराई।
स्तन प्रति शर-सम लगाई।
दौड़ भी!!

डोलते मुदित तरुवर जो।
सप्रेम पक्षि गाते जो।
गूँजती प्रतिध्वनि तब जो।
हर्ष से!!

हे प्रभो, हर्षाया इसको।
पर बहुत रुलाया मुझको।
क्यों छुपा दिया माता को।
यूँ मुझसे?

(नासिक, १९००)

नारोशंकर का देवालय

दिल्ली का पद हिला-हिलाकर,
जिसने अर्जित की संपदा।
निर्मोह स्वयं रहकर उसने,
अर्पित कर दी शंभुपदा॥
ऐसे थे पुरखे तुम्हारे,
यश जिनका न कभी टूटा।
कहती ऐसी हमें कहानी,
नारोशंकर मंदिर-घंटा॥

(नासिक घाट पर आज भी यह देवालय तथा वह घंटा मौजूद है।)

(नासिक, १९००)

गोदा-तट पर रात्रि-दृश्य

गंगा की धारा में बिंबित दीपशिखा पर कदापि कज्जल न।
सज्जन-हृदय हमेशा दोष त्याग, गुण करे सदा ग्रहण।

(नासिक, १९००)

श्री तिलक स्तवन

लज्जित है तुमने किया,
निज यश से हिम-आलय को।
जनसेवा में खपा दिया,
क्यों न स्फूर्ति तुम कवियों को?
निशिदिन जनकार्यों के हेतु,
रक्षा करो प्रभु, तिलकजी की।
शुक्लेंदु-सी देख सफलता को,
लज्जा उपजै कुटिल मन की।
स्वार्थों के वश कभी किया ना,
महिमा-मंडित दुष्कृति को।
उत्सुक होंगे क़ान सभी के।
जिसकी कीरत सुनने को!!
जनसेवा करने के कारण,
बाल तिलक को कारा दी।

दु:ख-पीड़ा के घूँट पी गया,
आर्य-भाल का तिलक यही!!
धीर रखो हे वीर केसरी,
व्यर्थ न शर बरसाओ।
जो न पात्र हैं 'केसरिया' के,
उन पर शर ना बरसाओ!!
राष्ट्रहितैषी जनसेवक को,
मिले स्नेह दृढ़ तिलकजी का।
राष्ट्र विघातक अरि को लागे,
रूप भयंकर केसरि का!!
साधु-सज्जनों औ' देवों का,
खूब मिला है प्रेम तिलक को।
यमदूतों को भय ही होगा,
छूने राष्ट्रहितैषी को!!
कीर्ति-नीति का अद्भुत धन यह,
हे प्रभु, है सौंपा तुझको।
होकर रक्षक चौकन्ने तुम,
छूने दो मत चोरों को!!
मयूरेश से मिली प्रेरणा,
नम्र विनायक नायक को।
नायक वह जगदीश्वर सुनता,
तिलक-प्रशंसा गायन को!!

(नासिक, १९००)

टिप्पणी : 'मयूरेश'—मराठी के विख्यात पंडित-कवि मोरोपंत।

केतकर-प्रशस्ति

(**परिचय :** लोकमान्य तिलकजी के नासिकवाले संबंधी तथा मान्यवर नेता स्व. गंगाधरपंतजी की स्मृत्यर्थ नगरगृह का निर्माण किया गया। इस 'केतकर नगरगृह' की नींव डालने हेतु न्यायमूर्ति रानडेजी आए थे। उस समय सावरकरजी ने इन श्लोकों का लेखन किया। ये श्लोक उस समय 'लोकसत्ता' पत्र में प्रकाशित हुए थे।)

विमल कीर्ति में हुआ मग्न जो मातृभूमि का पूत।
उदारता-संपन्न अलौकिक देश कार्य संप्राप्त।
देशभक्त जो यशान्वित सदा सज्जन-गण-स्तवित।
ऐसे केतकर स्वभूति हितकर मुझसे भी वंदित॥१॥
किसी व्यक्ति को कुशब्द कहकर कष्ट दिए ना कभी।
देशहितार्थ प्रयत्न करते त्याग दिए स्वार्थ भी।
कीरत जिसकी सदैव प्रसृत ग्रामांत देशांत भी।
गंगाधरजी को ले जाने आतुर था काल भी॥२॥
देशहितार्थ प्रयास करनेवाले हैं भी कितने?
तिस पर छाई परवशता से कुंठित सारे सपने!
ऐसे में प्रभु, ले जाते हो ऐसे देशहितैषी!
आर्यों की दीनावस्था में बढ़ोतरी क्यों ऐसी?॥३॥
सत्कृति करनेवालों की हो चिरस्थायिनी स्मृति।
इसी हेतु से स्मारक बनते लोगों की सम्मति।
नासिक के श्री केतकर महान् ऐसे हमें प्राप्त थे।
उनके स्मारक-सुयोग्य जन में आनंद को बाँटते॥४॥
नगरगृह-निर्माण-प्रकल्पन, नींव डालने उसकी।
आए 'जस्टिस' रानडे निमंत्रित, है बात बहु हर्ष की।
महान लोगों की सराहना महान व्यक्ति करें।
ऐसे सुयोग से हम सब कृतार्थ अनुभव करें॥५॥

(नासिक, १९००)

यह शौक नहीं अच्छा!

(**परिचय** : यह लावणी किसी तमासगीर फड़ के लिए रचाई थी।)

स्त्री : हे मेरे प्रेम-सरोवर, गणिका का यह शौक
प्रियकर, अच्छा नहीं यह शौक!

पति : मजबूर हूँ मैं,
मोहवश करत मुझे सुंदरी।

स्त्री : दिलवर, है पर,
रम्यमुखा यह खाई!
साथ रहे यदि मोहित होकर
काल-सिंह तब शोभित होकर,

गला घोंटकर,
हरण करेगा प्राण सही!

पति : प्यार-भरे हैं, नखरे उसके
बाहें डालत कंठ में।

स्त्री : अजी, नहीं जी, भालू है यह
नख मारत बदन में
तत्पर खातिर करने में, यदि जेब भरी पैसों से
मुड़कर भी ना देखेगी यदि समाप्त होंगे पैसे।

पति : मेरे बिन, वह नहीं करेगी और किसी से प्यार।

स्त्री : नहीं जी, लक्ष्मी से अस्थिर!

पति : पाँव दबाती कोमल हाथों,
कैसे चकमाएगी?

स्त्री : दो रोटी भी जब न मिलेगी
सड़ जाएँगे अंग,
हँसी उड़ाएगी जब दुनिया
उतरेगा तब रंग!
पदमर्दन तब छोड़, प्रियकर,
भरे बाजार घुमाएगी!

(नासिक, १९००)

टिप्पणिया : १. लावणी = शृंगारिक गीत।
२. तमासगीर फड़ = महाराष्ट्र की शृंगार प्रचुर नृत्य-गान-लोककला, जिसे 'तमाशा' कहते हैं, उसे मंचान्वित करने वाला कलाकारों का व्यावसायिक गुट।

लेडी ऑफ दि लेक : सर्ग ५ अनुवाद

सावरकरजी अब अंग्रेजी छठी कक्षा में पढ़ते थे तब उन्होंने यह अनुवाद मराठी में किया था। चूँकि यह सावरकरजी की अपनी प्रातिभ निर्मिति नहीं थी, यहाँ हमने इसका अनुवाद नहीं किया है, क्योंकि अंत में वह टेनिसन की कविता का ही हिंदी अनुवाद होता, न कि सावरकरजी का।

श्रीशिवगीत (आर्या)

धर्म नष्ट करते, देते पीड़ा द्विज-गायों को जो।
उनसे रक्षा करने श्रीशंकर शिवरूप लेत, तुम समझो!॥१॥

सच्छीला, सद्वृत्ता, जानकि-सम सब लोग प्रणत जिसको।
ऐसी जीजाबाई देत जनम शिवरूप शिवाजी को॥२॥
धन्य यवन-तम-हर्ता धन्य तथा तत्पिता शहाजी भी।
रिपु-करिवर-मद से जो निडर रहे औ' परास्त यवन सभी॥३॥
श्रीमद्भारत रामायण रम्य कथा-सुधा सदा पी ली।
श्रीरामकृष्ण-सी फिर अधमों को कड़ी सज़ा कर ली॥४॥
धन्या जिजा कहत है, 'सुन ले शिवबा यही सुजन नीति।
देत सुनार कनक को, सुमाता स्वपुत्र को, दीप्ति॥५॥
अतितर दुर्लभ है यह मानुष्य तथा हि उच्च कुल जनन!
सो पा लो सत्कीर्ति, क्या पाकर लाभ दुकुल और धन?॥६॥
भवसागर-लांघन की, हे सुत, केवल स्वधर्म है नौका।
सो धर्म-छलक अधमों को दे दंड, हरण कर भार वसुधा का॥७॥
जो जन्म देत, पालत है, उसका तुम सदैव इष्ट करो।
शिवबा, प्रण कर लो तुम, मातृभूमि को विमुक्त-क्लेश करो॥८॥
संप्रति हो रहा है यवनमय अहा! पूर्ण भरतखंड।
कर दे मुक्त इसे तू, कर दे नष्ट पाप उद्दंड॥९॥
कर मुक्त मातृभू को, निर्दय बन, धर्मांत कर परास्त।
यदि फोड़ा बढ़ता है तो देना काट ही महा उचित॥१०॥
औ' क्या कहूँ? करो तुम रक्षा नित साधु-सज्जनों की।
यवनतृण खाने की है भूख प्रदीप्त शौर्य-शोलों की'॥११॥
शिवराज हृदय घट में बोधामृत भर दिया जिजाई ने।
जैसे आम्र-वन में परिमल भर दिया चमेली ने॥१२॥
लेकर पिता तनय को जात विजापुर यवनराज के पास।
नमन किए बिन बैठे रूठे शिवबा त्रस्त औ' उदास॥१३॥
'राजसभा-रीति नहीं मालूम इसे' वदत शहाजी तब।
लेकर सुत को लौटे, कुलबुलता जो 'होंगे स्वतंत्र कब?'॥१४॥
राय शहाजी कहते, 'कर यवनाराधना' शिवाजी से।
'पाकर खुश हूँ दौलत मैं तो केवल उनकी मर्जी से'॥१५॥
छोड़ो यवनद्वेष, पा लो उनका प्रेम हितकर जी!
यह जान उन्हीं को अर्पण करके यश प्राप्त करो तुम, जी!॥१६॥
विश्वासघात उसका जो देता है अन्न भेजता नर्क।
स्वामिद्रोही में और विषधर में नहीं है कोई फर्क!॥१७॥

आपे से हो बाहर शिवबा, कोमल गाल बहत जलधारा।
सहसा कहे, 'पिताजी, अस्त हुआ क्या तेज आपका सारा?'॥१८॥
गो-द्विज त्रस्त इन्हीं से, जरिए इनके मातृभूमि विगताभ।
स्वामी इनको कहने कैसे यह सिद्ध हो गई जीभ?॥१९॥
हर-हर! प्रतिदिन काटत नित्य सवत्सा धेनु दुष्ट सर्वस्वी।
क्या आर्य सूर्य से भी यवन रूप खद्योत बनत तेजस्वी?॥२०॥
सब कुछ लूट लिया है, जिसने माँ-बहनें भ्रष्टाई हैं।
हे तात! आप ही कह दो, क्या अधम यहीं हमें वंद्य भी है?॥२१॥
मर जाऊँगा, लेकिन कभी शरण में जाऊँ ना मैं इनकी।
चाहूँ ना मैं धन, गज, चाहूँ मैं मृत्यु सिर्फ इसकी!॥२२॥

(नासिक, १९००)

गोदा वकिली

(**परिचय :** नासिक में प्लेग फैलने के कारण सावरकरजी अपने मामाजी के यहाँ कोठूर ग्राम गए थे। मराठी के पंडित कवि मोरोपंत की 'गंगा वकिली' के तौर पर उनकी इच्छा 'गोदावकिली' लिखने की हुई। गोदा के घाट बैठ उस ग्राम के लोगों के बारे में उन्होंने यह कविता लिखी है। सावरकरजी को मोरोपंत की आर्याएँ बचपन से अच्छी लगती थीं। यमक सिद्ध करने में मोरोपंत की जो कुशलता थी, उसका अनुकरण सावरकरजी बड़े चाव से करते थे। यह कविता 'सावरकर समग्र' खंड एक में पृष्ठ २७८-२८२ तक दी हुई है।)

पवन लीला

(**परिचय :** यह कविता नासिक में गोदावरी के महिला-घाट पर पवन लीला देख रचाई है।)

देख रहा था परम मित्र की मैं जोहत बाट।
रम्य विराजित ऐन सामने युवति-युक्त घाट॥
तभी सुरभि दक्षिणी बहत है मंद-मंद वात।
मेरी नजरों सहित घुसत है युवति समूहांत॥१॥
देख, चेहरा जिसका लज्जित होत पूर्ण चंद्र।
और मोती भी मुख पर अंकित धर्मबिंदु सांद्र॥
ऐसी सुमुखी वहाँ धो रही थी अपने अंबर।
चाँदनी जैसी हल्की सी मृदु हँसी चेहरे पर॥२॥

घर्मबिंदुओं की बहु सुंदर जाली नाजुक सी।
भालस्थित, बहु शोभा बिखरत थी मोती जैसी॥
हिला-डुलाकर रखा वायु ने जब इस जाली को।
मोति-जड़ित बिंदी की शोभा प्राप्त सुंदरी को॥३॥
सुंदरता की खान पर सतर्क नागिन-सी जैसी।'
चोटी, गूँथा लाल फूल फणि पर स्थित मणि जैसी॥
आशंका वायु के मन में, डरकर भाग गया।
जाना जब ना जान है इसमें, वापस मुड़ आया॥४॥
आभा तन की दमक रही थी गीले कपड़े में।
कोई सती जब पहन रही थी धोती जल्दी में॥
शरारत भरा स्पर्श वायु ने उसको तनिक किया।
वस्त्र उड़ाकर ले जाने का उसने सोच लिया॥५॥
हरकत उसकी धृष्ट देखकर सती क्रुद्ध हो गई।
कोप-हुताशन की मानो तब ज्वाला भड़क गई॥
तीखी नजरों से देखा जब उसने वायु को।
लगा, जला देगी अब साध्वी पूरी दुनिया को॥६॥
थर्राया बहु वायु भयाकुल और शर्म से झुका।
महासती के कोमल चरणों पर सिर उसका टिका॥
भाग गया फिर शीघ्र वहाँ से पवन कहीं दूर।
इतने में आ पहुँच ही गया मित्र वहीं आखिर॥७॥

(नासिक, १९०१)

'केरल कोकिल' वालों का स्वागत

(**परिचय :** नासिक में उस समय जो मित्रमेला संस्था स्थापित हुई थी उसमें भेंटवार्त्ता करने 'केरल कोकिल' के संपादक आनेवाले थे। उस समय सावरकरजी ने ये श्लोक रचे थे।)

श्री शिवजी के सिर पर शोभत गोदावरी सर्वदा।
पापक्षालनकाम मुनिवरों से वेष्टिता सर्वदा॥
हो के श्रेष्ठपदस्थिता निकलती धोने सभी लोक को।
श्रेष्ठा मूर्ति उसी तरह तव पहुँची इसी ग्राम को॥१॥
कीर्तिदेवी थी बहु आदर से सेवा में तत्पर।
गीताजननी आ पहुँची सप्रेम तुम्हारे घर॥

सास की पीड़ा की शंका से भाग निकल वह गई।
मेरे कानों की राहों से, सुन लो बात सही॥२॥
श्री राजा शिव शत्रुनाशक, भले वीर भरारी दादा।
तुमने स्तोत्र रचाए उनके, हमारी यह संपदा॥
जिह्वा जपत उनको रात-दिन, कर्ण लुब्ध हो गए।
अब तो नैन भी मूर्ति तुम्हारी निरख दंग हो गए॥३॥
बूँद-बूँद से झील बने, यह सृष्टि का कायदा।
हिंदू जो भी हैं, सब मिलकर पक्की करें एकता॥
निंदा कर जनघातक सुख की देशभक्ति को वरो।
शुक्ल-इंदु-सम वर्धमान यश हो, इतनी कृपा तो करो!॥४॥
'आओ, राष्ट्रहितार्थ यत्न कर लो, कर्तव्य पूरा करो।
करने शासन दुष्ट परकीयों का सुनिश्चय करो॥
छोडो व्यर्थ विवाद, संघ करके उद्धार लो यह धरा।'
ऐसा उच्च सु-हेतु साध्य करने यह सिद्ध है सुंदरा!॥५॥
आज आकर समय अपना बहुमूल्य तुमने दिया।
उपकृत होकर अब तुम्हें यह अर्ज हमने किया॥
'युवकों को प्राशन करा लो बोध, कर लो क्षमा—।
दोषों के प्रति, धन्य कर लो इस प्रसंग की महिमा!'॥६॥

(नासिक, १९०१)

टिप्पणियाँ :

१. 'श्री शिवजी के सिर पर शोभत गोदावरी' = चूँकि गोदावरी नदी 'त्र्यंबकेश्वर' से निकलती है, उसे भी गंगा के समान 'शिवजी के सिर पर शोभित' माना है।

२. अतिथि महोदय कवि के रूप में विख्यात थे। परंतु जबसे उन्होंने 'भगवद्गीता' का मराठी में अनुवाद किया, उनकी बाकी कविता को लोग लगभग भूल ही गए। इस बात पर कल्पना की गई है कि गीता जननी के आने पर सास की पीड़ा से आशंकित कीर्ति देवी भाग गई। किंतु यह कीर्तिदेवी सावरकरजी के कानों की राहों से भागी, क्योंकि उनके कानों में पहले वाली कविता अभी भी गूँज रही है।

३. श्री राजा शिव = शिवाजी।

४. वीर भरारी दादा = वीर पेशवा रघुनाथ राव, जिन्होंने अटक तक मराठी साम्राज्य को स्थापित किया। इस पराक्रम के लिए वे 'राघोभरारी' कहलाते थे, और उनका घरेलू नाम 'दादा साहब' था।

५. '⋯यह सिद्ध है सुंदरा' = यह सुंदर संस्था अर्थात् मित्रमेला।

वृषोक्ति

(**परिचय :** जव्हार जाते समय जो विचार मन में आए, उन्हें इस कविता में ग्रंथित किया है। यह कविता 'काळ' में छपी थी।)

गाड़ी में जो जोड़ दिया है बैल,
वहत है गरदन पर वह जुआ।
ऊँची घाटी में चढ़ने पर,
थका बहुत, साँस भी फूल गया॥
धीरे-धीरे बहु चलता था,
ढोता गाड़ी, थकान थी भारी।
देख उसे इक हिंदू बोलत,
धिक्-शब्दांकित वाणी कटु भारी॥१॥

'धिक्कार तुम्हें हे वृष,
गुलाम जैसे गरदन झुकाकर चले।
भारी इतना जुआ लिये,
चढ़ाव तगड़ा विश्राम बिन जो चले॥
मुँह में झाग भरी,
जान निकली, औ' फिर धनी पीटता।
साक्षात् पाप ही जनम है यह भला,
रे बैल तू काटता'॥२॥

चुप्पी लेत सुनत सब भाषण,
वृष भी तब शांति से साँवरे।
औ' फिर मंद मुसकराहट करे,
धिक्कार सूचित करे॥३॥

'निंदा भरे इन शब्दों से तुम,
करते हो निंदा मेरे धनी की।
कैसे पेश आता है लेकिन,
धनी तुम्हारा तुम्हें न फिक्र इसकी?
लेता है मुझसे बहु कष्ट,
पर मुझे खाने को भी देता है।
लेकिन मूढ़! धनी तुम्हारा,
कितना वेतन तुम्हें देता है?४॥

जिसको राज्य आर्यवसुधा का,
विशाल सौंपा हे तुमने।
दोनों हाथों दुहने जिसको,
सुवर्णभूमि दे रखी है तुमने॥
जिसकी अपनी थी लोहे की,
भूमि, उसे कर दिया स्वर्णमय।
स्वामी वह क्या वेतन देत है,
तुम्हें, कह दो, कर लो न्याय॥५॥
अथवा तुम कह दोगे, धनी,
करत है धन्यवाद तुम्हारा।
'राजा', 'रावबहादुर' जैसी उपाधियों से।
करत वह सम्मान तुम्हारा॥
उपाधियाँ ये कुबूल कर लीं,
औ' स्वतंत्रता की दौलत दे दी?
हाय! लिया जी गधा, पागलों,
जिसके बदले सुरभि दे दी॥६॥
'जे.पी. बैल', 'महावृषभ' अथवा,
'सी.एस.आय. नंदी' जैसी।
उपाधियाँ ना मिलत मुझको,
इसमें धनी की न कंजूसी॥
देत रहत है नित्य हरा तृण,
खाने-पीने शीतल जल भी।
नमक पर वह कर भी न लेत है,
क्या धन्य न मैं हूँ आज भी?७॥
बहुत दया दिखाकर कहते—
हो, मैं भारी जुआ ढोत हूँ।
अंधे! तुम क्या देख न सकते,
अपनी गरदन पर, मैं पूछत हूँ॥
जो भी हैं कुल वसुधा पर चीजें,
उन सब में बहुत ही भारी।
जुआ रखा है देख तव गरदन,
पर, बात कहता हूँ मैं न्यारी!८॥

अन्याय जिसके भीतर रहत हैं,
अनगिनत नभस्थ नक्षत्रों से।
आग से भी है जो दाहक,
बेहतर यमलोक जिस से॥
जो विनाशों का कराल मुँह है,
जो है पीहर दुर्दशा का।
ऐसा जुआ तुम ढोते हो,
है नाम 'परतंत्रता' जिसका॥९॥
माँ आर्यवसुधा को परकीय भोगत हैं,
सामने तुम्हारी आँखों के।
दरिद्रता-परतंत्रता को रख रहे हैं,
गरदन पर तुम्हारी थोप के॥
सोच लो, मनुष्य जन्म को पाकर,
क्या किया है, साध्य तुमने?
व्यर्थ ही अभिमान के भार को,
ढोया तुम्हारे चित्त ने॥१०॥
तुम हो निहत्थे, पर पास मेरे,
हैं सींग ये मेरे नुकीले।
फाड़ सकता हूँ तुम्हें मैं, पर,
छोड़ देता हूँ, समझ लें॥
छोड़ अभिमान, देश का बोझ हल्का,
करने की कुछ बात कर लो।
भगवान् के चरणों पर झुको,
आशीष उसका प्राप्त कर लो॥११॥

(जव्हार, १९०१)

श्री शिवाजी महाराज की आरती

(**परिचय :** फर्ग्युसन कॉलेज में 'आर्यसंघ' नामक चौथे भोजनसंघ में हर सप्ताह गाने के लिए यह आरती रची।)

ॐ जय शिवराय, स्वामी, जय जय शिवराय।
आओ, रक्षा कर लो, शरणागत आर्य॥ध्रु.॥

आर्यों के वतनों पर होवे म्लेच्छातिक्रमण।
आए हमला करके, तुम रहो सावधान॥
गद्‌गद होकर वसुधा दे आवाज तुम्हें।
करुणार्ता आवाज न कैसी गूँजत है मन में? १॥
श्री जगदंबा ने जिस खातिर युद्ध किया।
जिसके लिए राम ने दशमुख मार दिया॥
वह पूता भूमाता अब म्लेच्छों के द्वारा।
संत्रस्ता है तुम बिन उसका कौन सहारा? २॥
त्रस्त-दीन हम आए शरण तुम्हारे, जी।
परवशता के मारे मरणोन्मुख हैं, जी॥
साधू की रक्षा औ' करने नष्ट दुर्जनों को।
भगवन्, याद करो अब गीता-वचनों को॥३॥
सुनकर पुकार आर्यों की हो गद्‌गद शिवराय।
करुणा उपजी मन में स्वर्ग से निकले शिवराय॥
देशकार्य के लिए स्वीकरी तनु शिवनेरी में।
देशकार्य करते-करते ही मृत्यु रायगढ़ में॥
स्वतंत्रता का दाता जो था याद उसे कर लो।
बोलो तत्-श्रीमत्-शिवनृप की बोलो, जय बोलो॥४॥

(पुणे, १९०२)

टिप्पणी : शिवनेरी = पहाड़ी किला, जहाँ शिवाजी का जन्म हुआ था। रायगढ़ = शिवाजी की राजधानी वाला पहाड़ी किला।

हुआ विश्व में शाश्वत-अविचल आज तक कभी कोई?

(**परिचय :** निम्न कविता 'आर्यन वुइक्ली' के लिए पहले लिखी गई। बाद में 'काळ' पत्रिका में भी प्रकाशित हुई।)

पूरब सारे महाद्वीप जिस ताकत ने जीते थे।
दरिद्रता औ' भय भी कंपित जिससे नित होते थे॥
वही पारसिक हुआ नष्ट इक क्षण में, देखो भाई!
हुआ विश्व में शाश्वत-अविचल आज तक कभी कोई? १॥
जीता जिसने पारसिक, किया आहत पूरे जग को।
दिशा-दिशाओं में फहराया था जिसने विजयी ध्वज को॥
ऐसे महान् सिकंदर की रोम ने शान खस्ताई।
हुआ विश्व में शाश्वत-अविचल आज तक कभी कोई? २॥

जिसका था साम्राज्य अनगिनत दुनिया में फैलाया।
ऐसे महान् रोमन-कुल को भी हूणों ने कुचलाया॥
बेबस औ' आतंकित करके कर दी बहुत बुराई।
हुआ विश्व में शाश्वत-अविचल आज तक कभी कोई? ३॥
समुद्र में भी उन्नति-अवनति नित्य क्रिया चलती है।
भास्कर रवि भी उदित तथा असंगत नित होता है॥
उच्च स्थिति औ' अवनति दोनों की है समान बँटाई।
हुआ विश्व में शाश्वत-अविचल आज तक कभी कोई॥४॥
जो मत्त बहुत ताकत से अपनी होते हैं अभिमानी।
उनके मन में भी आती है उदासता-बेजानी॥
इसे जान लो, चिंतन कर लो, अपने मन में भाई!
हुआ विश्व में शाश्वत-अविचल आज तक कभी कोई?·५॥

(पुणे, १९०२)

टिप्पणियाँ : १. पारसिक = ईरान का प्रथम साम्राज्य, जिसे सिकंदर ने जीता।
२. सिकंदर की शान = सिकंदर की राजधानी में रोमन सेना घुस गई।
३. रोम-कुल को हूणों ने कुचल दिया।

बाल विधवा : दुःस्थिति-कथन

(**परिचय :** मुंबई के हिंदू यूनियन क्लब की हेमंत व्याख्यानमाला समिति द्वारा निम्न विषय पर उत्तम कविता के लिए बीस रुपए का पुरस्कार रखा था। उसके अनुसार जो अनेक कविताएँ समिति के पास आईं उनमें श्री श्रीपाद नारायण मजूमदार, बी.ए. और श्री विनायक दामोदर सावरकर दोनों की कविताएँ समिति की राय से लगभग समान योग्यता की पाई गईं। अत: मूल राशि में और दस रुपए जोड़ करके उन्हें पंद्रह-पंद्रह रुपयों का पुरस्कार दिया गया।

परीक्षकों द्वारा नियत विषय : 'प्रस्तुत काल में जो ग्रांथिक सन्निपात हो रहा है, उसने उन हिंदू स्त्रियों की, जिन पर अल्प आयु में वैधव्य का आघात हो गया है, स्थिति दर्पण करके, उनका दु:ख कम करने हेतु उपाय प्रयुक्त करने का प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार नई तथा पुरानी धारणाओं के लोगों को कवि द्वारा प्रोत्साहनपरक विनती की जाए।'

सावरकरजी की काव्य-रचना की प्रगति तथा सामाजिक धारणाओं की उदारता इस कविता से प्रतीत होती है।)

परवशता पाने को रचाया गया अकाल-पत्थरों से।
अवनति-कृतांत-केलि-प्रासाद किया जडित प्लेग-मणि से॥१॥
नंदन वन सम मोहक, दुनिया में श्रेष्ठभूत यह देश।
देख उसे हो जाऊँ धन्य, यही था प्लेग का भी उद्देश्य॥२॥
आर्य-देश वह पहुँचा, मुंबई में पैर जमाए उसने।
हो गया सुखों का अंत, विपदाएँ खड़ी करा दीं उसने॥३॥
जो भी कभी सुना था उससे भी सौ गुना रहे धन्या।
देख हृदय लुभाया, बोला, 'ऐसी जगह नहीं अन्या'॥४॥
विविध-स्थल-स्थिा श्री देख-देखकर नित्य नई मैंने।
तय कर लिया यही कि बस जाऊँ यहीं बहुत महीने॥५॥
करके निश्चय ऐसा सहलाकर मुंबई हतप्रभ की।
अपना चित्त रमाने चल पड़ा पुणे, रहा बड़ा सनकी!॥६॥
गोदा-स्नान करे वह जाके त्र्यंबकपुरी सहज रूप।
आया पंचवटी में, वहाँ से करे दर्शन प्रभु-रूप॥७॥
औ' क्या कहें? कर दिया पूरे महाराष्ट्र का परिभ्रमण।
पवन-जवन से भी शीघ्र-गति था, तनिक भी थका न॥८॥
प्लेग कहाँ का, भाई, यह तो भोग हीन कर्मों का।
कर्मायत्त फलों को भुगतने बिन अवतरण हो किसी का?९॥
कर दे भयाण पत्तन, पत्तन सम घना सर्व वन बनता।
हताश होकर पूरी हतसत्त्व हो गई सभी जनता॥१०॥
लाल गुलाल से औ' उँडेली सब कावडियों से भी।
रक्तिम सड़कों पर से रक्तप्रिय नाचते समय सभी॥११॥
'बोलो भाई राम' ध्वनि गूँजत है समग्र पत्तन में।
वातावरणस्थों का प्लेग-जनक बुखार तेजी में॥१२॥
गृहनिर्गत सर्वत्र धुआँ भरा है अशुभ क्रियाओं का।
उसके साथ चले औ' शोकजनक विलाप विधुरों का॥१३॥
'हे कांते! हे कांते! दे दो प्रतिसाद बुलाता मैं।
कैसा बे-पहिया यहं भारी रथ गृहस्थि का चलाऊँ मैं?॥१४॥
मैं शून्यहृदय, मेरी हृदयस्था कामिनी गुजर गई!
क्षण रुक जाओ, सुंदरि! आता हूँ मैं, करो मत रुलाई'॥१५॥
और यहाँ से कोमल किसका आ रहा रुदन स्वर?
हाँ, समझा, धीरे से रोता बच्चा यहाँ करुण स्वर॥१६॥

'तात, माँ गई कल ही छोड़ मुझे, तो आप भी मुझको।
आज ही त्याग करके क्यों निकले शीघ्र स्वर्ग जाने को? १७॥
अथवा निकले उसका साथ निभाने वहाँ स्वर्ग में भी?
लेकिन तात नहीं मैं अपने बल जीने समर्थ अभी!'॥१८॥
हा! हाय! हृदय जलाते मंजुल-रव-संघ रुदन स्वर।
आते रहे कहाँ से? अथवा पुरदेवताकदंब-स्वर॥१९॥
'मत्सौभाग्यश्री-पति, मत्प्रिय, मज्जीवमीनकासारा'!
कैसे खोई सहसा प्रीति की धवल-मधुर-धारा? २०॥
क्यों बात नहीं करते? क्यों रुठे हैं आज अभागन से?
सहमी-सहमी हूँ मैं; प्रियकर, अब प्यार कीजिए मुझसे!॥२१॥
सहवास भोग लिया ना जी भरके पूर्ण साल भी एक।
साजन! क्यों अकेले सिद्ध हो गए जाने यमलोक? २२॥
जो हम ने बिताए प्रणय भरे कौमुदी-युक्त मधुर।
क्या याद हैं तुम्हें वे दिन, जो लगते केवल निमिष भर? २३॥
जब मैं थी अकेली तब आए थे आप डराने को।
आहट सुनकर मैंने विफल किया आपके इरादे को॥२४॥
उस से खा कर खार, क्या मौन हुए अब मुझे डराने को?
बहुत डरी हूँ मैं अब, हँसूँगी कभी नहीं अब प्रियतम को॥२५॥
मन में क्रोध किए बिन व्यर्थ अबोले कतिपय होते थे।
अनजाने में ही फिर बातें करना शुरू भी करते थे॥२६॥
मामूली वजहों से भी गुस्सा करके रूठ गए कितने।
नजरों से जब नजरें मिल जाती तब हँसे भी थे कितने॥२७॥
क्या याद है सभी कुछ? क्या सुख होता है इन यादों से?
क्यों फिर बात न करते? मेरा मन तो आहत है भय से॥२८॥
तो क्या पति गुजर गए? क्या मंगलसूत्र टूट गया?
हे राम! फिर तो मेरा हृदय भी कैसे न टूट गया? २९॥
जो मम संकट को अब दूर करेगा ऐसा कोई है?
अब मैं किसके पास जाऊँ जब नसीब टूटा है॥३०॥
स्त्री का नाथ मरे जब, बन जाए वह गाय से गरीब।
ऐसी अबलाओं को ले जाना यम के लिए मुनासिब॥३१॥
न बंधु, न आप्त, न कोई, हो जाएँगे निरर्थ सब जिसको।
ऐसी मैं दुःखी हूँ, क्या मेरी दया न है प्रभु को? ३२॥

मैं अल्पवयस्क बाला, मेरा सौभाग्यनिधि जल गया है।
वैधव्य रूप भयंकर गिरि मुझ पर प्रचंड आ गिरा है॥३३॥
क्या कर सकती हूँ मैं? सुन लो मेरे आप्त-बंधुजन प्यारे।
मदद करो जी मेरी, देख रहे जो पीड़ा मेरी, सारे॥३४॥
क्या कोई देगा भी प्रतिसाद कभी अबला-आवाहन को?
बोलो जी, बोलो जी, धैर्य जुटानेवाले शब्दों को॥३५॥
धत्! कोई क्यों देगा अबला की दुर्दशा-प्रति ध्यान?
अपने सुख में सारे व्यस्त रहे हैं, करत बंद कान॥३६॥
बंधुजनो, क्या सुनते हो ये मेरे दर्द भरे शब्द?
क्या सच लग रहा है अथवा लगते झूठ तुम्हें ये दर्द॥३७॥
पल भर सदय बनो औ' सारे मिलकर गौर कर लो, जी।
अंधी जिद को छोड़ो, भूलो न न्याय को अभी तुम, जी॥३८॥
आया प्लेग तभी से करने इनका इलाज प्रयास किए।
कोई यश ना पाया, इनके प्राण अंत में उखड़ गए॥३९॥
'इंस्पेक्शन', 'डिस्इंफेक्शन' की बातें बहुत बहस चली।
पर प्लेग को हटाने में सब कोशिश निरर्थ ही निकली॥४०॥
लेकिन असफलता का दोष नहीं है कोई आप पर, जी।
'यत्ने कृते न सिद्ध्यति को दोषो' कह गए महात्मा, जी॥४१॥
पर जिन कोमल बालाओं पर वैधव्य-पहाड़ टूट गया।
विरहाग्नि ने अचानक जिनका पूरा बदन जला ही दिया॥४२॥
वैधव्य-जनक उनके दुःसह दुःख का शमन करने।
यत्न किया क्या कोई, अथवा सोचा उपाय भी तुमने? ४३॥
उनकी दुस्थिति हटाने 'इंस्पेक्शन' कौन सा कराओगे?
उनके बदनसीब को अब किस-किस मंत्र से हटाओगे? ४४॥
बेचारी बालाएँ अबला पहले, अनाथ ऊपर से।
हाय! लोग सब उनको देखेंगे अब घृणार्ह नजरों से॥४५॥
पति की अकाल मृत्यु कर देती सब जगत शून्य उनको।
यदि मायका दरिद्री, तब तो जीवन असह्य हो उनको॥४६॥
'पैरा बुरा इसी का, पति को खाया इसी अभागन ने'।
देवर-ननद हमेशा तत्पर कटु-शब्द-शर चुभाने॥४७॥
जी, प्यार से बुलाने लायक इस क्षण कोई न है मेरा।
जिसके कंधे पर मैं सिर रख रो लूँ दुःख मेरा॥४८॥

युवतियाँ अन्य हम-उम्र पति के संग करत प्यार बहुत।
देख उसे विरहाग्नि अधिकाधिक दुःसहा इसे बनत॥४९॥
वदन छुपाए संतत, शरमाती है आने लोगों में।
मुश्किल से ही बिताए बचे-खुचे दिन अपने जीवन में॥५०॥
नेत्र सजल संतत, अश्रु भिगावत कोमल मृदु गाल।
तन की आभा जावत, यक्ष्मासूचक शरीर बे-हाल॥५१॥
पति-बिना अन्य किसी को सपने भी कभी न चाहा है।
जिसने पति-उपरांत सबकुछ सुख त्याग डाला है॥५२॥
शय्या धरती केवल, खाना केवल एक बार दिन में।
जित-काम-मोह है जो, जिसको गावें सती कीर्तनों में॥५३॥
उसका मुख-दर्शन भी अशुभ, उसे विश्वयोषिता कहते।
सुंदर सुर-गो को ये अज्ञानी दुष्ट गर्दभी कहते॥५४॥
स्त्री के निधनोत्तर यदि विधुर कभी अशुभ न माने जाते।
तो विधवा-दर्शन ही कैसे जी अशुभ व्यर्थ कहलाते? ५५॥
व्यर्थ अनादर-वचनों को बोलत हैं, पीड़त विधवाओं को।
जो दुष्टों की जिह्वा, प्रभु क्यों अब सजा न दे उसको? ५६॥
चाहे जितने खा ले विधुर सभी पकवान रसयुक्त।
नित्यैकभुक्त रहकर विधवाएँ बन जाएँ निःशक्त॥५७॥
आभूषण-वस्त्रों से विधुरजनों का शरीर बोझिल है।
हल्के वस्त्रों से औ' विधवा-तनु सदैव लिप्त रहे॥५८॥
मांगल्यप्रद ठहरा विधुरों का वदन तथा भ्रमण।
गुरु कहता शिष्यों से, 'विधवा का अशुभ नख-दर्शन!'॥५९॥
साठ साल के बूढ़ों, विधुरों, नववधू वरण कर लो।
हफ्ते बाद बनी जो विधवा उसको विवाह मना कर लो॥६०॥
यह न्याय कहाँ का जी? विधवा-विधुर बीच भेद क्यों ऐसा?
क्या अपराध किया है अबलाओं ने? दंड यह कैसा? ६१॥
क्या श्रुति कहती है कि विधवाओं को अशुभ सदा मानो?
क्या उसकी पीड़ा को निगमलेख देत मान्यता, जानो? ६२॥
अथवा स्मृति की आज्ञा? अथवा है धर्मशास्त्र की सिद्धि?
सन्मति-विचारपूर्वक अथवा यह उचित मान ले बुद्धि? ६३॥
पत्नी-मृत्यु विधुर का सामाजिक अधिकार नष्ट ना करत।
स्त्री का समाज-सम्मत रिश्ता क्यों पति-मृत्यु नष्ट करत? ६४॥

अस्मत्समाज वर्तत अन्याय सहित, यदि न दुष्टता सहित।
विधवाओं के साथ, इतना कि परकीय होत स्तिमित॥६५॥
लज्जास्पद है, पर हम तो सिद्ध इसे सदैव मानत हैं।
धर्म, न्याय, तर्क औ' विवेकमति भी यही सुनावत हैं॥६६॥
आज तक किया इकट्ठा पातक यह नित्य दुष्ट, अन्यायी।
उसका क्षालन करके पुण्य करें अब स्वर्गफलदायी॥६७॥
तिस पर औ' दुर्भाग्य भेज देत है प्लेग-रोग-जहर।
प्रतिदिन असंख्य बालाएँ बनती हैं विधवा, हो कहर॥६८॥
सुहागरात के दिन कतिपय बालाओं के पति मरते।
कतिपय उससे पहले अमंगला यह वार्त्ता सुन पाते॥६९॥
अपवाद नहीं है यह, नित्य घटित है आजकल सर्वत्र।
इससे और भयानक प्लेग कर सके कोइ न औ' घात॥७०॥
जिनकी गृहिणी मरे, वे कालांतर में गृहस्थ बन जाते।
कन्यापुत्र जनत हैं, जीवन में चैन-सुख पाते॥७१॥
वृद्ध गँवाता सुत को, ले सकता है गोद किसी को भी।
मर जाए यदि तात, उसके बिन सुत पात सर्व सुख भी॥७२॥
सबके दु:ख पर है जब उपाय कोई शास्त्रों में, रूढ़ि में।
पर विधवा की अनुकंपा न उपजत किसी शास्त्र-रूढ़ि में॥७३॥
शास्त्र करत उपेक्षा, पीड़ित हैं शतगुना रूढ़ि से जो।
अबला-विधवाओं के उद्धार हेतु अब तो कुछ कीजो॥७४॥
अब भी करें उपेक्षा दु:स्थिति से यदि उन्हें उठाने की।
तो इस पातक-पर्वत को होगी अक्षम धरा उठाने की॥७५॥
वैदिकों, उपाध्यायों, समाजसेवक सुधारकाग्रणि, जी।
दया दिखाकर कोई अबलाओं का उद्धार अब करो, जी॥७६॥
देखे बिन वदन पति का विधवा जो आकस्मिक बन जाए।
क्यों पुनर्विवाह करने की अनुमति नवसमाज दे पाए?७७॥
धर्म-गर्व कोई सुविवेक का अभाव तो नहीं है!
काल स्थिति वश धर्म हे, यह सिद्धांत आज सम्मत है॥७८॥
सुज्ञान-सुविचारों से स्थित्यनुरूप धर्म को सुधरें।
आपद्गति के केवल रूढ़ मार्ग के लिए जिद न करें॥७९॥
संस्थापक धर्मों के, ज्ञाता श्रुतिशास्त्रतत्त्व कर्म के भी।
आचार्य भी हमेशा घोषित करते यही मर्म सभी॥८०॥

उसी पीठ के स्वामी पूज्य हमें तत्समान आजकल भी।
दुःख निवारण अबलाओं का करने उन्हें मनाएँ सभी॥८१॥
साठ साल का बूढ़ा नववधु यौवन रूप वरण करे।
पर हम ना माँगत हैं जरठा विधवा पुनर्विवाह करे॥८२॥
पर जिनको पतिसुख की कोई ना कल्पना तनिक आई।
उनके पुनर्विवाह का प्रस्ताव नहीं विकल्प तो कोई॥८३॥
अब भी यदि ना करते इस मसले का स्पष्ट समर्थन तुम।
यह प्लेग स्त्री-जाति नष्ट करेगा समस्त, देखो तुम॥८४॥
अब पूछोगे हँसकर, स्त्री-पुरुषों को समान खतरा है।
स्त्री-जाति नष्ट होगी, ऐसी क्यों बात बना दी है? ८५॥
तब सुन लो, पहले ही पुरुषों जितनी स्त्रियाँ भी मरती हैं।
जो पुरुष मरते हैं, उनकी तो पत्नियाँ भी मृतवत् हैं॥८६॥
ऐसी नौबत दुगुनी आई है स्त्री-जाति के ऊपर।
उनका तारण कर लो, भगवन्, है अब भरोसा तुम पर॥८७॥
आप हमारे धर्माचार्य, आपके बिना कभी कोई।
होगा न सर्वसम्मत, बात हमारी सुनेगा न कोई॥८८॥
जो दीन बाल विधवाएँ है, उनका विवाह मान्य करो।
कर लो दया, प्रतिष्ठा न्याय-सत्य की स्थापित आज करो॥८९॥
अपमानजनक वर्तन विधवाओं के प्रति करे समाज।
आज्ञादंड उठाके उसका प्रतिरोध तुम करो आज॥९०॥
विद्या-दान कराने विधवाओं को, स्कूल तुम निकालो।
अज्ञान सुविद्या से होगा नष्ट पूर्ण, यही समझ लो॥९१॥
'विद्या-दान स्त्रीप्रति अर्थ न कोई, अनर्थ निकलेगा'।
ऐसा कहनेवालो, अमृत पी के कौन मृत्यु पाएगा॥९२॥
इस पर न कहो तुम कि अमृत न देते दैत्यों को कोई।
तो क्या माँ-बहनों को दैत्य कहेगा कभी यहाँ कोई॥९३॥
विधवा विदुषी बनने, स्थापन कर लो अनाथ बालाश्रम जी!
जोड़ो पुण्य, न होगा क्या भगवान् तुष्ट इससे जी॥९४॥
नीतिव्यवहारादिक महान् लोगों की सीख ही पढ़ा लो।
फसल ज्ञान की उगेगी सच्छिक्षा वृष्टि से यही समझ लो॥९५॥
होगा शिक्षित महिलाओं का एक नया समाज यहाँ।
गृहशिक्षा देकर जो सुदृढ़ करेगा भावी पीढ़ि को, हाँ!॥९६॥

तारण करने माता-बहू-स्वसा-भौजाई-पुत्री का।
होगा सिद्ध न कौन, सुष्ट सहृदय स्वभाव है जिसका॥९७॥
सिंदूर बिना ये माँगें युवतिजनों की संतत अनगिनत।
देख शर्म से नैन ढक ही लेंगे साधु और संत॥९८॥
वृद्ध युवा, नए-पुराने, नर्म-तेज, सब सुनो लोग प्यारे।
विधवा दु:स्थिति हरने खातिर कर लो प्रयास बहुतेरे॥९९॥
सत्वर तोड़ो, फोड़ो, दुष्ट रूढ़ि के अनिष्ट बंधन को।
तोड़ो दु:स्थिति बेड़ी अबलाओं की, प्राप्त करो यश को॥१००॥
धर्म उजागर करने, अज्ञान रूढ़ि का दूर तथा करने।
ईश्वर प्रसन्न होकर आ गए मुदित भक्त-मन करने॥१०१॥
ईश्वर का आवाहन करके रख दे कलम 'विनायक' भी।
जगदीश्वर सुनता है, पूर्ण करत है भक्त कामना भी॥१०२॥

(पुणे, १९०२)

हे सदय गजानन, तार!

(**परिचय :** गणेशोत्सव में बच्चे जो गीत-नृत्य का कार्यक्रम प्रस्तुत किया करते थे, उसके लिए सावरकरजी अनेक गीत बना देते थे। उनमें से नमूने के तौर पर यह गीत लिया है।)

हे सदय गजानन, तार! अब तेरा ही आधार!
तू ही माँ-बाप साकार। अब तेरा ही आधार॥
देश के शत्रु हैं बहुत।
हृदय के शत्रु छह होत।
शाप से, शस्त्र से कर अंत।
ब्राह्मण जो खाए अब अरि के लातों की भी मार॥१॥
देश पर आक्रमण आया।
जूझकर पुरुष मर गया।
अग्निप्रवेश स्त्री ने किया।
राजपुतों को परवशता का भूत सताए, तार॥२॥
अटक में ध्वज फहराया।
रिपुसेना को हटवाया।
दिल्ली-पति भी बन गया।
जो शूर मराठा, उसके देखो बुरे हो गए हाल॥३॥

(नासिक, १९०२)

शिववीर

(**परिचय :** महिलाओं की विनती के अनुसार उनके लिए यह गीत रचा है।)

यवनों का हो गया धरती को भार,
बहु भग्न किए मंदिर।
वेदशास्त्रों को भ्रष्ट किया दुष्टों ने,
गोवध भी कर दिए कितने!
उद्दंडों ने लातें दीं ब्राह्मण को,
प्रभु धारण करत शिवरूप को।
देशोद्धारार्थ किया नष्ट सभी अधमों को,
प्रभु धारण करत शिवरूप को॥१॥

हिंदुओं के देश के देखकर ये कष्ट,
जगन्माता होत बहु रुष्ट।
प्रति यवनों के, क्रोध भरी नजरों से,
शिववीर जनम ले उससे।
सुरवर-किन्नर हो गए मुदित बहु सारे,
प्रभु शिवरूप बनत शिवनेरे॥२॥

रघुपति की कौसल्या, हरि की यशोदा,
शिवबा की जिजाई जन्मदा।
'रघुपति ने ज्यों राक्षस-वध कर डाला,
यवनों का वध करूँ', बोला।
शशिसम वृद्धिंगत होना था जिसको,
प्रभु धारण करत शिवरूप को॥३॥

'जय जय राम प्रभु', तभी गर्जना गूँजी,
रामदास मूर्ति देखो, जी।
चरणों पर सिर टेकत ज्यों शिवाजी,
आशीर्वच देत स्वामी जी।
उद्दंड यवन अफजुल्ला दुष्कीर्ति,
तोड़ दी भवानी-मूर्ति।
बहु क्रुद्ध हुआ होंठ काट-काटत,
शिवबा पर हमला करत।
वधार्थ उद्दंड के, विदारण करत उदर को,
प्रभु धारण करत शिवरूप को॥४॥

स्वतंत्रता-देवी का जागरण मनाया, जी!
अतिथि हैं श्री शिवाजी।
साँवले वर्ण के वे मावले शूर अभिभूत,
प्रेम से पुजारी बनत।
परवशता का बकरा बलि चढ़ाया,
प्रभु शिवरूप बनकर आया॥५॥
धर्म का तारण औ' निर्दलन रिपुओं का,
सम्मान बढ़ाया देश का।
अवतार-कार्य को यश पाकर पूर्ण किया,
शिवप्रभु स्वस्थल लौट गया।
विनायक सहित अनेक कवि गाते गीतों को,
प्रभु धारण करत शिवरूप को॥६॥

(त्र्यंबकेश्वर, १९०३)

टिप्पणियाँ : १. मराठी जनमानस में यह धारणा प्रतिष्ठित है कि प्रभु श्री शंकरजी ने शिवाजी का अवतार धारण किया। इस कविता में इसी का जिक्र है। शिवाजी, शिव, शिवबा—सारे शिवाजी के ही नाम हैं।

२. 'शिवनेरी' = किले में शिवाजी का जन्म हुआ था।

३. 'जिजाई' = शिवाजी की माता का नाम, जिसने राम की कहानी सुनाकर अन्यायी दुष्टों का वध करने की प्रेरणा शिवाजी के मन में जाग्रत् कर दी।

४. 'रामदास' = महाराष्ट्र के प्रवृतिवादी कवि तथा साधु, जो शिवाजी के गुरु कहलाए जाते हैं।

५. 'अफजुल्ला' = विजापुर के आदिल शाह का सरदार अफजल खाँ, जिसने शिवाजी को जिंदा पकड़ लाने का बीड़ा उठाया था। शिवाजी पर हमला करते समय उसने अनेक मंदिरों को ध्वस्त किया और देवी-देवताओं की मूर्तियाँ तोड़ डालीं, जिसमें तुळजापुर की भवानी की मूर्ति भी शामिल थी। संधि के बहाने दोनों का जब मिलन हुआ तब महाकाय अफजल खाँ ने शिवाजी को अपनी बाहों में कसकर उसका दम घुटाने की कोशिश की, तब शिवाजी ने उसका उदर विदारण करके उसे मार डाला।

६. 'मावले' = साधारण खेतीहर लोग, जिनके मन में स्वतंत्रता की प्रेरणा उदित करके शिवाजी ने उन्हें जुझारू वीर बनाया था।

७. 'विनायक' = विनायक दामोदर सावरकर।

स्वतंत्रता का स्तोत्र

जयोऽस्तु ते, श्रीमहन्मंगले, शिवास्पदे शुभदे।
स्वतंत्रते, भगवति! त्वामहं यशोयुतां वंदे!
राष्ट्र चेतना मूर्त रूप तू नीतिसंपदा की।
स्वतंत्रते, भगवति! श्री-मती, रानी तू उनकी॥
परवशता के नभ में तू ही एकमात्र तारा।
स्वतंत्रते भगवती! दीप्तिमय आसमंत सारा॥
कपोलस्थित फूलों पर अथवा फूलों के गालों पर।
स्वतंत्रते भगवती! रक्तिमा तेरे ही बल पर।
तू सूरज का तेज अदधि की गभीरता तू ही॥
स्वतंत्रते भगवती! अन्यथा ग्रहण नष्ट विरही॥
मोक्ष, मुक्ति ये रूप तुम्हारे, तुम्हें ही वेदांते।
स्वतंत्रते भगवती! योगिजन परब्रह्म कहते॥
जो हैं उत्तम, उदात्त, उन्नत, महन्मधुर सारे।
स्वतंत्रते, भगवती, सर्व वे सहचारी तेरे॥
हे अधम-रक्त-रंजिते! सुजन-पूजिते! श्री स्वतंत्रते!

त्वदर्थ मरना है जीना॥
तुम बिन जीना है मरना।
तुम सकल-चराचर-शरणा॥

भरतभूमि को दृढ़ आलिंगन कब दोगी, वरदे!
स्वतंत्रते भगवति! त्वामहं यशोयुतां वंदे!!
हिमगिरि के उस हिम-आँगन से शिव भी लोभ करे।
क्रीड़ा करने से ऐसे स्थल तेरा मन मुकरे?
जो दर्पण था देवस्त्रियों का रूप निरखने का।
त्याग कर दिया सुधाधवल उस गंगा की धारा का?
स्वतंत्रते! इस स्वर्णभूमि में क्या कमी थी तुझको?
कोहिनूर के पुष्प से सजा ले अपनी चोटी को॥
यह सकल-श्री-संयुता! हमारो माता! भारती माता!

क्यों तुमने त्याग कर दी?
ममता समाप्त कर दी?
औरों की दासी बना दी?

व्याकुल प्राण, क्यों त्याग कर दिया, इसका उत्तर दे दे।
स्वतंत्रते भगवति! त्वामहं यशोयुतां वंदे!!

(पुणे, १९०३)

टिप्पणी : अन्यथा ग्रहण नष्ट विरही = सूरज का तेज ग्रहण लगने पर नष्ट हो जाता है, और उदधि की गंभीरता भी अगस्ति द्वारा उसे 'ग्रहण' करने पर निरर्थ हो गई।

प्रे. क्रूगरजी की मृत्यु

(**परिचय :** क्रूगरजी अफ्रीका के 'फ्री स्टेट' तथा 'ट्रांसवाल' ह्मोअर लोगों के (डच लोगों के) गणतंत्र राज्य के अध्यक्ष थे। दोनों राज्यों को निगलने हेतु अंग्रेजों ने उनपर आक्रमण किया। अंत तक अत्यंत निर्धार के साथ लड़ने पर भी जब ऐसा प्रतीत हुआ कि बलशाली अंग्रेजों के सामने टिके रहना कठिन है, तब अंग्रेजों के सामने आत्मसमर्पण नहीं करना है, ऐसा निश्चय करके प्रे. क्रूगर ने ब़ाह्य देशों से सहायता प्राप्त करने के प्रयास किए। इतने में, उनके देश के हताश लोगों ने अंग्रेजों को आत्मसमर्पण का पत्र लिख भेजा और बाहर के जिन राष्ट्रों ने सहायता का प्रलोभन पहले-पहले दिखाया था, उन्होंने भी मना कर दिया। तब प्रे. क्रूगर अंग्रेजों के हाथ न लग पाने के इरादे से स्वदेश छोड़ वीरान में चले गए और अंग्रेजों के द्वारा आक्रांत स्वदेश के लिए दुःख करते-करते शीघ्र ही गुजर गए। जब सावरकरजी ने प्रे. क्रूगर की मृत्यु की वार्त्ता सुन ली, तब उन्होंने निम्न कविता की रचना की। रचनाकाल : २८ जुलाई, १९०४।)

कोई साधु अधम छल से बंदी कारागृह में।
स्वतंत्रता को खोए कोई खल-बल से जीवन में॥
ये तो नित्य घटित होती हैं घटनाएँ! उसका क्या!
खेद करें? आँसू बहाएँ समुद्र-जल जितने क्या? १॥
अथवा कोई नृपति जनता-धर्म-गोप्ता चल बसा।
मिथ्या शंका साफ नहीं थी, मरण उसको कैसा॥
स्वतंत्रता की खातिर लढ़ते वीर कभी मरते हैं।
मर जाते तो उभय-लोक में धन्य वही होते हैं॥२॥
हाँ, देवी, हाँ, इतनी रोती क्यों हो करुण स्वर में?
बता ही दो कि अशुभ क्या हुआ इतना इस दुनिया में॥
हा धिक् मृत्यु! अब पता चला, ले गई तुम निर्दया।
स्वतंत्रता के विमल-तिलक श्री क्रूगर को बेहया॥३॥

अच्छे रत्नों की हवस है जो तुम्हारी सदा की।
सारे तुम ही लूट ले चली हो, यह नीति कहाँ की?
इस दुनिया में प्रकटत हैं जो, हमें गर्व है जिनपर।
लगातार तुम लुटा रही हो उन्हें ही यमनगरी पर॥४॥
प्रबल बहुत हो, लूट हमें, पहुँचाती हो क्यों कष्ट?
निर्बल को कुचलाना है क्या गुण प्रबल का श्रेष्ठ?
यदि स्वर्ग की भी ऐसी है नीति दुष्ट, तो पुरखो!
निर्बल मनुजो! इह-पर-लोक न कहीं सहारा तुमको॥५॥
गए वीर नृपति स्मृतिपंथ औ' पंडित भी चले गए।
मानवता की यही है स्थिति, कितने संकट आए॥
उसका कोई खेद नहीं है मन में कदापि मेरे।
उनके उपकारों को लेकर दुःख करूँ बहुतेरे॥६॥
अपने सुत के समान जिसका संगोपन कर दिया।
स्वतंत्रता के अनुपम सुख के लायक बना दिया॥
जिसके खातिर तन-मन-धन को सदा समर्पित किया।
जिसको सारे संकट-समयों में रक्षित कर दिया॥७॥
जिसकी रक्षा करते रण में गरम रक्त बहाया।
जिसके खातिर कुछ भी करके जग विस्मित कर दिया॥
ऐसा राष्ट्र तुम्हारा, क्रूगर! परवश अब बन गया।
अंत समय में स्मरण-कोष में क्या-क्या याद किया? ८॥
राष्ट्र को परवश तुम्हारे करनेवाले दुष्ट जो।
कह रहे हैं दुर्वचों को, दुःख उसका न मानिजो॥
चोरी करके, तिस पर अपनी ही गावत महिमा।
ऐसे अंग्रेजों से केवल भरी नहीं धरती-माँ॥९॥
चौराहे के कुल में जनमा, फिर भी जिसका पौरुष।
शास्ता बनकर उजागर हुआ राष्ट्राध्यक्ष महाधीश॥
उसकी शक्ति गौण नहीं है, व्यर्थ करत निंदा।
उसके शत्रु दिखावत केवल अपनी ही नीचता॥१०॥
निज शक्ति की सहायता से स्वतंत्रता को पाया।
देशोन्नति को सुसाध्य कर, सब संकटों को भगाया॥
आया जब हमला भी रिपु का आकस्मिक औ' क्रूर।
देश के लिए मृत्यु भुगतने सिद्ध हो गया वीर॥११॥

षड्यंत्रों में बुद्धि-विभव से अतुल विजय पाई थी।
बड़े-बड़े रणयोद्धाओं को जमकर हार चखाई थी॥
हड्डी कर दी नरम शत्रु की जिसने नित्य समर में।
इसके कारण उसकी गणना महामानवों में॥१२॥
स्वतंत्रता की रक्षा के बहु-पुण्यप्रद कार्य में।
आशा कोई न थी, तथापि डटा रहा रण में॥
नहीं रहा जब बिलकुल कोई उपाय अपने देश में।
विदेश गया देश के लिए वह सहायता-खोज में॥१३॥
पहले बातें बहुत जिन्होंने की थीं, मदद बखशाई।
काम आ सके समय पर उनमें से ऐसा दिखा न कोई॥
नहीं समर्थता, अरि भारी है, द्रव्य नहीं, न सहायता।
फिर भी आत्मसमर्पण करने को दिल कतई न मानता॥१४॥
'मैं सत्कार्य हेतु लड़ूँ तब ईश्वर करे सहायता।
नीच के प्रति आत्मसमर्पण करने को दिल कतई न मानता॥
मेरे लहू का निकल रहा हो जब अंतिम कतरा।
तभी समर में नित्य रहेगा आगे कदम मेरा'॥१५॥
निष्ठा ऐसी लेकर किए प्रयास बहुत विदेशों में।
सूत्र वहाँ से चला दिए थे, बहुत जिद थी मन में॥
हाय! किंतु उस राष्ट्र को लिया घेर परवशता ने।
साधु-सज्जनों को कुचलाया ऐसे नित दुर्भाग्य ने॥१६॥
कोई पक्षी उड़ रहा हो अंतरिक्ष में दूर वहाँ।
औ' वार्त्ता आ पहुँचे उसका घोंसला हुआ नष्ट यहाँ॥
नहीं स्थल उसे पीछे मुड़ने, शक्ति नहीं आगे जाने।
लगता है वह चीं-चीं करते वही गोल सा मँडराने॥१७॥
छोड़ पत्नी-बच्चों को, जब वह महात्मा विदेश में।
कर रहा था कोशिशों को तब फँसा इस दुर्दशा में॥
जिसके खातिर देहधारणा, आज तक रहा जीवन-हेतु।
उसी राष्ट्र के विनाश से, लो, टूट ही गया प्राण-तंतु॥१८॥
हाय! नहीं वसुधा पर कोई देश अब उसके लिए।
सभी जगत् हो गया विमुख अब अचानक सा उसके लिए॥
अब चिंता हृदय में एक ही, यही विचार सताएँगे।
जीवन के जो दिन बचे हैं, कम कैसे हो जाएँगे॥१९॥

एकांत की अब रुचि बन गई, रह रहा एकांत में।
बना रखी थी एक झुग्गी जो, निरा अकेला उसमें॥
देश के लिए बार-बार वह आँसू बहा रहा था।
नाला था एक समीप, उसमें रेला नित लाता था॥२०॥
तभी एक दिन पड़ा कंठ में कालपाश अनजाने।
समझ गया अब इस दुनिया में खत्म हुए दिन अपने॥
'अब तुम्हारा कैसे होगा? हे मेरे प्रिय राष्ट्र!'
काल से भी बढ़कर रिपु की पीड़ाएँ औ' कष्ट॥२१॥
जनम पाकर मृत्यु भी अब पा ली है मैंने।
स्वतंत्रता को प्राप्त लेकिन नहीं किया राष्ट्र ने॥
हे मछेश! उपकार मुझ पर बहुत किए तुमने।
ऋण तुम्हारा नहीं चुकाया कुछ भी, पर, मैंने॥२२॥
मृत्यु वाशिंगटन की, अथवा मृत्यु मैझिनी की!
शत्रु को हराकर जिन्होंने मुक्ति देश की की॥
कर दिखाया कुछ जगत् में, जन्म उसका ही खरा।
क्या हमारी मृत्यु, जिसका जन्म ना उतरा खरा॥२३॥
अंत में मैं याद करके ईश को, यह कह रहा हूँ।
देश-बिन यदि अन्य कोई विषय में ललचा रहा हूँ॥
गद्दार अथवा स्वार्थ हेतु मैं कभी यदि हो चुका हूँ।
तो पाप से उस नर्क में मैं सदा गिरता रहूँ॥२४॥
जाना जरूरी है यहाँ जो जनमे उसे, मैं जा रहा हूँ।
मातृ-भू की परतंत्रता को देख, दुःखी हो रहा हूँ॥
है कोई, जो सबल उसको मुक्त करने के लिए?
आओ! आओ! त्वरित! फिर मैं सिद्ध मृत्यु के लिए॥२५॥
आशा ऐसी लेकर, क्रूगर! बहुत बहुत बार।
आत्मा तव तो आई होगी लौट फिर शरीर॥
गात्र हो गए विकल, हो गई पूर्ण विफल आस।
त्यागी तनु तब प्रणति करके देशरक्षार्थ ईश॥२६॥
गा लो, स्रोत सुरस तुम, हे यक्ष-गंधर्व, गा लो!
अप्सराओ, सिंगार करके स्वागतार्थ निकलो!॥
ले लो मालाएँ फूलों की, देवियो, सज्ज बन लो।
लो, पधारा विमल-चरित क्रूगर श्रेष्ठ, सुन लो॥२७॥

गंधर्वों ने तनन करके तान लिए सुमधुर।
थै थै ताल पकड़ नाचत है अप्सरा-गण सुंदर॥
मुदित स्वर्ग-निवासी जन तब करत पुष्पवृष्टि।
श्रीमद् धीर-प्रवर-नृवर क्रूगर की प्रविष्टि॥२८॥
मानो जाए प्रतिनिधि यहाँ बोअरों की तरफ़ से।
स्वतंत्रता के लिए माँगने मदद सुर-नृपति से॥
राजकीय सम्मान उसका कर रहे हैं देवता।
इस बहाने सूचित करते अपनी अनुकूलता॥२९॥
दुर्बल देशों को जो पीड़ा देते हैं दुनिया भर में।
उन सभी के नाम, क्रूगर, अब बता दो इस घड़ी में॥
भरमानेवाले चोरों की पार्लमेंट के जैसे।
देवताओं की सभा में न्याय के न तमाशे॥३०॥
देश हेतु-प्राणार्पण-कारण स्वर्ग प्राप्त है जिनको।
ऐसे वाशिंगटन, शिवाजी, दर्शन देंगे तुमको॥
स्वतंत्रता की पुनः स्थापना इस दुनिया में करने।
इस सबको तुम मना लो पुनः भूप्रदेश अवतरने॥३१॥
अधम नृप, तुम सुन लो सारे, पाप किए जितने भी।
दुर्बल देशों को तरसाने के, भुगत लो सभी अभी॥
श्रीशाज्ञा से सुर-बल-युत श्री क्रूगर औ' अन्य वीर।
स्वतंत्रता के रिपु से लड़ने आएँगे सत्वर॥३२॥
हे वाग्देवी! आई ऐसी यह मंगल-धारा।
स्वतंत्रता की विजयश्री वा स्वर्ग-जनित धारा॥
देंगे वार्त्ता परवश जनों को, उन्हें धैर्य देंगे।
स्वतंत्रता के गीतों को धरती पर गाएँगे॥३३॥

मित्रवर वामनराव दातारजी को पत्र

(**परिचय :** सावरकरजी का आग्रह था कि उनके बालमित्र 'वामन दातार' वैद्यक की पढ़ाई करें। उसके अनुसार सत्रह-अठारह की आयु में वामनराव जी मुंबई में एक विख्यात वैद्यजी के पास वैद्यक की पढ़ाई करने हेतु गए। इन वैद्यजी के घर में ही उनकी आज्ञा में कुछ काम करके वे वैद्यकीय विद्या सीखने लगे। किंतु परगृह में रहना उनके लिए शुरू-शुरू में बहुत कठिन रहा। अत: उनको प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से यह कविताबद्ध पत्र भेजा गया था।)

दाते, आया पत्र तुम्हारा।
प्रफुल्ल हो गया चित्त हमारा॥
यद्यपि स्याही-मलिन था हुआ।
शुभ्र प्रेम तब प्रकट कर रहा॥१॥
देख चंद्रमा तव प्रेम का।
छलकत समुद्र मेरे मन का॥
समा सके ना अंतरंग में।
धारा बहने लगी नयन में॥२॥
तुम हो प्यारे, वामन-मूर्ति।
नभ को छू ले तुम्हारी कीर्ति॥
यद्यपि छोटा शशि दिखने में।
खिलत कौमुदी पूर्ण जगत् में॥३॥
हिमांशु देखो, शांत-चित्त है।
स्वयं शंभु सिर पे वाहत है॥
वह भी तो नित कृश रहता है।
कष्टरूप परनिवास लगत है॥४॥
किंतु मित्र, सुखसागर के प्रति।
दुःख बिना नहीं मार्ग संप्रति॥
सहन करे जो कष्ट मार्ग के।
सुख सागर में विहार कर सके॥

सिंहगढ़ का पोवाड़ा

(**परिचय :** स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी ने सन् १९०५ में सिंहगढ़ का पोवाड़ा रचा। उन दिनों 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग 'होमरूल' के पर्याप्त अर्थ से भी करना अपराध माना जाता था। ब्रिटिशों की राजकीय सत्ता के अंतर्गत केवल घरेलू 'स्वराज्य' के ध्येय का भी उच्चारण अथवा प्रसार करने के लिए श्रीमती ऐनी बेसंट अथवा लो. तिलक जैसे ख्यातनाम नेताओं को भी राजद्रोह के आरोप के साथ कोर्ट में खींच लिया गया। ऐसे समय में, जिस गुप्त संस्था ने 'स्वतंत्रता' (absolute political independence) का ध्येय अपने सामने रखा था तथा उसकी प्राप्ति के लिए सशस्त्र क्रांति कराना अनिवार्य साधन होने से ऐसी क्रांति करने की प्रतिज्ञा जिसने की थी तथा आगे चलकर जो यूरोप-अमेरिका तक विस्तारित तथा बहुचर्चित हुई, उस 'अभिनव भारत' की स्थापना नासिक में की गई। यथासंभव नैर्बंधिक

सीमा के अंतर्गत खुला प्रचार तथा प्रकट आंदोलन करनेवाली 'मित्र मेला' नामक उसकी प्रकट शाखा बनाई गई थी। इस संस्था की ओर से, लोकमान्य तिलकजी द्वारा संचालित शिवाजी-उत्सव, गणेशोत्सव आदि सार्वजनीन आंदोलन में अपना स्वतंत्रतावादी तथा सशस्त्र क्रांतिकारी उपदेश ऐतिहासिक तथा पौराणिक प्रसंगों की आड़ में लोगों में फैलाने के लिए 'मित्रमेला' नाम से ही एक गीत-नृत्य-मंच निकाला गया। मेले के लिए स्वातंत्र्यकवि गोविंद तथा स्वातंत्र्यवीर सावरकर दोनों संवाद, गीत और पोवाड़े रचते थे। इसी मेले के लिए सावरकरजी ने सिंहगढ़ व 'बाजी देशपांडे' दो पोवाड़े रचे।)

इन पोवाडों को गाने के लिए जिनको सर्वप्रथम चुना गया था वे पंद्रह-सोलह की आयु से कम आयु के बच्चे भी इन पोवाड़ों की तरह तेजस्वी थे। दत्तू, श्रीधर और बाल उनके नाम थे, जो उस समय के उन लोगों में प्रिय थे। 'अभिनव भारत' की बालशाखा में ये ही प्रमुख थे। हुतात्मा कर्वे तथा देशपांडे इसी बालशाखा में थे। चूँकि उन पोवाड़ों के प्रत्येक शब्द के मर्म को ये बच्चे समझते थे तथा उनके हृदयों में ही इन पोवाड़ों की स्वतंत्रता-चेतना की ज्योति धधकती थी, उनके मुँह से गाए जाते समय ये पोवाड़े विशेष प्रभावी बन जाते थे। इन बच्चों को स्वयं स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी अभिनय सिखाते थे; और पोवाड़े को स्वरबद्ध करके बच्चों का साथ करनेवाले उस्ताद तबलावादक थे स्वयं कवि गोविंद! ईसवी १९०५-०६ के शिवाजी तथा गणेश महोत्सव में ये पोवाड़े नासिक में जब प्रथम गाए गए, तब उनकी ख्याति उस इलाके में बातों-बातों में ही फैल गई। साहित्य के शस्त्रागार से सूचना, लक्षणा, ध्वनि, व्यंग आदि शब्दशस्त्रों की अचूक भरमार करनेवाले ये पोवाड़े सुननेवाले सहस्रावधि लोगों के मन में समकालीन परतंत्रता के प्रति तीव्र क्रोध तथा उसकी शृंखलाओं को तोड़ डालने की जिद प्रेरित करते थे। थोड़े ही दिनों में इस मेले की कीर्ति पुणे तक पहुँच गई और सावरकरजी से मशविरा करके सुप्रसिद्ध 'काळ' कर्ता शिवरामपंत परांजपेजी ने इस मेले को पुणे में निमंत्रित किया। वहाँ के शिवजयंती उत्सव तथा गणेशोत्सव में ये पोवाड़े इतने जनप्रिय हो गए कि गायकवाड हवेली के गणपति के सामने लोकमान्य तिलकजी ने भी इस मेले का स्वागत किया। श्रोताओं की बहुत भीड़ इनके कार्यक्रम में आ जाती थी और उस भीड़ पर उनका ऐसा प्रभाव पड़ता था कि हर समय एक नया, दीप्तिमान संदेश मिले, एक नया तेज प्रज्वलित हो जाए। इन पोवाड़ों तथा गीतों को जिन तीन बच्चों ने प्रथम गाया था वे थे दत्तू, श्रीधर तथा बाल अर्थात् आगे चलकर विख्यात बने प्रा. दत्तोपंत केतकर, श्रीधरपंत वर्तक (विधिज्ञ, नासिक) और डॉ. नारायण राव सावरकर। आगे चलकर अभिनव भारत गुप्त संस्था की शाखाओं तथा उपशाखाओं पर जब परकीय सरकार ने आग

बरसाई तब इन तीनों युवकों को राजनीतिक आपत्तियों का तथा पीड़ाओं का सामना करना पड़ा।

इन पोवाड़ों के तेजस्वी प्रभाव के बारे में, जब्तशुदा होने के पहलेवाला एक संस्मरण बताने लायक है। इसी समय लोकमान्य तिलकजी ने प्रत्यक्ष रायगढ़ पर शिवाजी उत्सव मनाना प्रारंभ किया। इस उत्सव के समय महाराष्ट्र के प्रमुख कार्यकर्ताओं की तरह शतावधि मावलों की भी भीड़ रायगढ़ पर इकट्ठा होती थी। मुंबई के विख्यात वकील तथा तिलक पक्ष के नेता श्री दाजी आबाजी खरे इस उत्सव के अध्यक्ष की हैसियत में लो. तिलकजी तथा 'काळ' कर्ता परांजपेजी के साथ रायगढ़ पधारे थे। उनकी अध्यक्षता में इन पोवाड़ों का कार्यक्रम जब चल रहा था तब उनमें निहित उस समय अपूर्व तथा अत्यंत 'तेज' लगनेवाले विचार पहली बार सुनने से श्री खरे जैसे नाप-नापकर कदम बढ़ानेवाले नेता को लगने लगा कि यह अवांछित संकट अपनी अध्यक्षता के समय मोल लेना ठीक नहीं है, और वे बेचैन हो गए। इतने में 'बाजी देश पांडे' का पोवाड़ा शुरू हो गया। उसका पहला ही पद रंग जमाते-जमाते जब उस पद का अंतिम चरण 'हे वीर मावलो, बोलो, हर हर महादेव बोलो' गाए जाने लगा तब वहाँ उपस्थित अभिनव भारत के अनेक गुप्त क्रांतिकारियों के साथ ही वे शतावधि मावले भी उद्दीपित होकर 'हर हर महादेव' की गर्जनाएँ गूँजने लगीं। तब श्री खरेजी लोकमान्यजी से कहने लगे कि वे इसके आगे अध्यक्ष स्थान में रहकर लोगों के इस मर्यादाहीन तथा अनैर्बंधिक (गैर कानूनी) व्यवहार का दायित्व स्वीकृत करना नहीं चाहते, अत: कार्यक्रम को बंद किया जाए। तब लोकमान्यजी ने नहले पर दहला बनकर सभा को संबोधित किया कि अध्यक्षजी यात्रा के कष्टों से परेशान हैं, सो हम दोनों जा रह हैं। इसके आगे परांजपेजी की अध्यक्षता में सभा जारी रहेगी। लोकमान्यजी उन्हें ले गए। परंतु 'काळ' कर्ता ने अध्यक्षता का दायित्व स्वीकृत करके कार्यक्रम को वैसे ही आगे चलाया।

ईसवी १९०६ के आस-पास बाबाराव सावरकरजी ने इन पोवाड़ों को छपवाया। पूरे महाराष्ट्र में सहस्रावधि स्त्री-पुरुषों तथा आबाल-वृद्धों के मुँह ये प्रचलित हो गए। उनकी मात्रा शुद्ध तथा उत्तेजक स्वरयोजना भी इतनी जनप्रिय बन गई कि आगे चलकर अनेक साल 'सिंहगढ़ की स्वर योजना' अर्थात् 'पोवाड़ो की स्वरयोजना' यह समीकरण बना रहा। जब शीघ्र ही अभिनव भारत के सभी क्रांतिकारी प्रकाशनों की ब्रिटिशों की क्रोधाग्नि में होली बन गई तब से दो पोवाड़े भी ईसवी १९०९ के आस-पास जब्तशुदा हो गए।

यह बंधन इतना तगड़ा था कि इन पोवाड़ों को कहीं भी मुँह से गाने पर

गानेवालों को सजा हो जाती थी। उल्टे लोग भी इनकी पांडुलिपियाँ बनाकर घर-घर में किसी मूल्यवान् निधि की भाँति रखने लगे। हरेक इलाके में जब तलाशियों का सिलसिला लगातार चल रहा था, तब अभिनव भारत साहित्य का इस तरह का लिखा हुआ या छपा हुआ पन्ना भी इस बात का प्रबल सबूत माना जाता था कि संबंधित सज्जन क्रांतिकारी षड्यंत्र में समाविष्ट है। किंतु इस प्रकार की दुःसह पीड़ाओं को सहन करके भी जनता ने इस साहित्य को जीवित रखा। शतावधि माता-पिताओं ने अपने बच्चे-बच्चियों से इन पोवाड़ों को कंठस्थ कराया। धार्मिक समारोहों में, गृहमंगल कार्यों में, स्कूलों-कॉलेजों के सम्मेलनों में इन पोवाड़ों को अंतस्थ तरीके से गाया जाता। पुनः गुप्त रूप में इन्हें छपवाया भी जाता था। एक के बाद एक पीढ़ियों ने ऐसी एकनिष्ठ आस्था के तथा धैर्य के साथ इन ज़ब्तशुदा पोवाड़ों को जीवित रखा है। आज भी सहस्रावधि स्त्री-पुरुषों को ये कंठस्थ हैं।

मुद्रण के अथवा लेखन के अभाव में लोगों की जिह्वा पर ही जो जीवित रहता है, वह सच्चा लोकगीत। लोगों की कांक्षाओं तथा भावनाओं का सहज उच्चारण! तिस पर भी उस काव्य को इस प्रकार जिह्वा पर जीवित रखना जब परकीय राजसत्ता द्वारा दंडनीय अपराध माना जाता है, उसके लिए सजाएँ भुगतनी पड़ती हैं, तब भी जो काव्य अथवा साहित्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोगों की जिह्वा पर जीवित रहता है, वह काव्य अथवा साहित्य न केवल लोगों की कांक्षाओं तथा भावनाओं का उच्चारण होता है अपितु उनके जीवन से जुड़ा होता है, इसीलिए वह जीवित रहता है। इस तरह जीवित रहने का सम्मान जिस साहित्य को प्राप्त है, उसमें इन पोवाड़ों की गणना की जाती है।

इन पर लगाए गए बंधनों को हटाने के लिए, सरकारी आज्ञा का खुलेआम भंग करके अनेक बार प्रकट सभाओं में भी इन पोवाड़ों को गाया गया। ऐसी ही एक सभा में साहित्य सम्राट् श्री तात्याराव केलकरजी ने भी 'सिंहगढ़' के पोवाड़े के चरणों को प्रकट रूप में प्रस्तुत किया।

किंतु ब्रिटिश सरकार ही क्या, पर पहले कांग्रेस मंत्रिमंडल ने भी ऐसे तेजस्वी सावरकर साहित्य पर पाबंदी को उठाया नहीं। कारण क्या? तो कहते हैं, इससे हिंसा की गंध आती है!

किंतु लोगों का निग्रह भी, जैसा कि ऊपर लिखा है, चरम सीमा तक पहुँचने के कारण तथा सन् १९४२ के आंदोलन से अहिंसा की अरगल लोगों के द्वारा उड़ा दी जाने के कारण पूरे चालीस सालों के बाद इन पोवाड़ों पर तथा कुल सावरकर साहित्य पर पाबंदी को उठाना कांग्रेस मंत्रिमंडल के लिए अनिवार्य हो गया।)

: १ :

धन्य शिवाजी वह रणगाजी, धन्य तानाजी।
आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥ध्रु.॥
देश भर आतंक हो गया परवशता-विष से।
हलाहल-प्राशन अच्छा है ऐसे परदास्य से॥१॥
गोमाता-ग्रीवा औ' देखो शिखा ब्राह्मणों की।
एक साथ काटत है भाई, छुरी गुलामी की॥२॥
देश हिंदु का, हाय! उसी का मालिक म्लेच्छ बना।
परंतु ईश्वर ने कितने दिन चलने यह देना॥३॥
फिर आर्यदेश तारण। अधम-मारण। जीतने रण।
परदास्य-रात्रि हटाने को।
प्रभु प्रकटत शिवनेरी को।
स्वातंत्र्य सूर्य उगने को।
उसी सूर्य की किरण समर में दमकत तानाजी।
आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥४॥

: २ :

जगह जगह पर वीर मावले भाला हाथ लिए।
रामदासमत शिवराजा के अनुयायी बन गए॥१॥
स्वतंत्रता का तोरण तोरणगढ़ भी जीत लिया।
भगवा ध्वज उस भाले के संग ऊँचा फहराया॥२॥
प्रसन्न करने प्रतापगढ़ की स्वतंत्रता देवी।
अफजल खाँ का उदर-विदारण किया, बलि चढ़ाई॥३॥
वे धन्य मराठा वीर। जूझते धीर। चपल माहिर।
देशार्थ मृत्यु स्वीकृत है।
शास्ता खाँ सजा भुगत है।
गनिमों के दिल में डर है।
रिपु हतबल, पर अभी सिंहगढ़ पर है कब्जा, जी!
आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥४॥

: ३ :

जरा ढिलाई देख कहत है जिजा शिवाजी से।
जब तक यह गढ़ जीत न लोगे मुकरो भोजन से॥१॥

वहाँ पराए भूमाता पर लात जमावत हैं।
खाना खाना हमारे लिए मांस गाय का है॥२॥
गुलामी की यह बेड़ी पैरों में क्यों रख दी है?
गुलामी के नर्क में किसलिए अब तक रहते हैं॥३॥
बेजान रोटि का कोर। शत्रु का उदर। अभी चीर कर।
आँतों से भूख मिटाओ।
खून से भूख मिटाओ।
मांस से भूख मिटाओ।
जीत लो अभी होंठ चबाकर फते करो तुम, जी!
आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥४॥

: ४ :

धन्या माता जिजा जिसी का शिवबा सुत शोभत।
स्वतंत्रता के लिए पुत्र को खाना भी ना देत॥१॥
स्वतंत्रता की खान जनत है स्वतंत्र वीरों को।
मिलत गुलामी के घूरे में जन्म गुलामों को॥२॥
कुत्ता भी तो पेट भरत है चबा चबा टुकड़े।
गोबर में सुख पाते हैं औ' गोबर के कीड़े॥३॥
जीवन यदि ऐसा जीना। मनुज क्यों बना? व्यर्थ वंचना!
फिर कीड़ा क्यों न बनत है।
जो गुलाम होकर खुश है।
परदासता मनावत है।
शिवबा कह दे, 'धिक्! धिक्! गढ़ को ले के रहेंगे, जी!'
आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥४॥

: ५ :

भोर हो गई, वाद्य सुमंगल, मुहूर्त शादी का।
विवाह-वेदी पर आ पहुँचा सुत तानाजी का॥१॥
ठीक समय को देख, पुरोहित मुहूर्त-वेला को।
शांति करा के शुरू करत हैं मंगल-वाचन को॥२॥
कहता ब्राह्मण, 'आया कोई तानाजी से मिलने'।
तलवारों की खन-खन ध्वनि लगि मंडप में गूँजने॥३॥

हर-हर गर्जत लोग। चमकती तेग। सभी हैं दंग।
शिवराज-दूत आ गए।
शादी सब भूल ही गए।
हम देश-कार्य के लिए।
हम धर्म-कार्य के लिए।
बच्चा-बूढ़ा सभी चलत हैं, आगे तानाजी!
आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥४॥

: ६ :

परमात्मा से जीवात्मा का मिलन आज हुआ।
पवनपुत्र वा रामचरण से फिर से लिपट गया॥१॥
अरुण ही मानो जगन्मित्रवर रवि की बाहों में।
तानाजी श्रीशिवराजा की शोभत बाहों में॥२॥
मुलाकात औ' हुआ मशविरा,'मुझे भेज दो, जी!
मर जाऊँ पर गड़ ले लूँ मैं' कहता तानाजी॥३॥
यह पर्व स्वतंत्रता का। शत्रु के लहू का। स्नान बहु सुख का।
होने दो जी, शिवराया।
देशार्थ समर्पित काया।
धर्मार्थ समर्पित काया।
व्यर्थ ना रहे यह काया।
आखिर निकला शिवधनुष्य से तीर तानाजी।
आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥४॥

: ७ :

हे शिवबा के तीर! जाओ, तानाजी, वीर!
वीरों में तुम श्रेष्ठ बनो, रिपु मारो, रणधीर॥१॥
सिंहगढ़ पर शोकमग्न है आर्य-भूमि, देखो।
जाओ, परवशता को मारो, राहत दो उसको॥२॥
सुनो देवता-दूतो! पालन करने कर्तव्य का।
निकल पड़ा है तानाजी, तुम ध्यान रखो उसका॥३॥
हे मंगल तारा-गण। अप्सरा-गण। करो तुम गमन।
तानाजी लड़ने आया।

रिपु बहुत, अकेला आया।
धैर्य के साथ सरसाया।
उसी धैर्य पर बरसो अमृत तथा फूल तुम, जी!
आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥४॥

: ८ :

मध्यरात्रि का समय शांत पर भयकारी घोर।
गढ़ के तले घनी झाड़ी में घना अंधकार॥१॥
रात भी बहुत गाढ़ी सोई, किर्र ध्वनि बंद।
झुरमुट में इक निकल पड़ा तब तेज स्वर बुलंद॥२॥
'अरे, तुम्हारे पूर्वज देते हैं—सुन लो—आवाज।
सुनो मराठो, गौर से सुनो, यह स्वर्णिम आवाज॥३॥
माँ तुम्हारी यह भूमाता, चमड़ी पर उसकी।
चाबुक की फ़टकारें बहती धारा शोणित की॥४॥
शोणित के उस एक बूँद के लिए लाख मुंड।
रिपु के तोड़ो, कूटो, मरहम बना लो उदंड॥५॥
असली जिसका बीज मराठा, मेरे संग चल दो।
गढ़ लेने के लिए मृत्यु का वरण शीघ्र कर दो॥६॥
बाकी सब भागो षंढ। अधोमुख साँड़। बचा लो कंठ।
गलसरी उसमें पहनना।
यह उचित तुम्हारा गहना।
तलवार कभी मत लेना।
'हर, हर, हर' गर्जत झुरमुट से शेर निकला, जी।
आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥७॥

: ९ :

कगार सीधा चढ़ना दुर्घट गोह के लिए भी।
पहरा गढ़ पर उसी स्थान पर नहिं बिलकुल कुछ भी॥१॥
मौका पाकर यह, तानाजी वहीं पहुँच गया।
चढ़ने—ना, ना! अंतरिक्ष में उड़ने—सरसाया॥२॥
कुलबुलत है कोई, 'यदि जो पैर फ़िसल जाए?'
कहत वीर, 'देशार्थ गर्व से स्वर्ग सिधर जाएँ!' ३॥

यशवंति चढ़े अति त्वरित। हर्ष हो बहुत। डोर पर हाथ।
तानाजी चढ़ने लगा।
सद्भाग्य चढ़ने लगा।
स्वातंत्र्य चढ़ने लगा।
सम्हाल लो अब म्लेच्छो! आया, आया तानाजी!
आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥४॥

: १० :

एक एक के बाद मराठा सरसर ऊपर चढ़े।
हजार थे रिपु, फिर भी उनपर हमला कर दौड़े॥१॥
कौन, कहाँ से, कितने, कैसे, कहाँ कहाँ लड़ते।
कुछ न समझ पाए अँधेरे में रिपु हैं मरते॥२॥
नीचे, ऊपर, पीछे, आगे, इधर-उधर भ्रमते।
दिशाहीन सब दौड़त हैं तब भाले से गिरते॥३॥
वह धन्य मराठा वीर। अरि-कलेवर। लगावत ढेर।
कुचलते मांस का कीचड़।
तैरते लहू की बाढ़।
'लो, मारो' देत दहाड़।
दरवाजा कल्याण खटखटा खुलत, लेत बाजी!
आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥४॥

: ११ :

बाजी मारी, है कहाँ पर अपना तानाजी?
मार-काट में मग्न हो गया समरांगण में, जी॥१॥
उदयखान को देखा तब झट उस पर टूट पड़ा।
जूझत-जूझत सब देखत हैं शेर जब दहाड़ा॥२॥
'सह्य-शैल के शेर को कहाँ, बकरे, खाते हो?
खान, तुम्हारा बाप कौन था, याद कर रहे हो?॥३॥
धिक्-धिक् नीच! बताते अपना कुल रजपुत-वंश।
राम, कृष्ण औ' प्रताप का वह दिव्य महा-वंश॥४॥
बाप तुम्हारा मुसलमान था, जो लड़ते हमसे?
मातृभूमि को मुक्त करानेवाले वीरों से'॥५॥

कहकर ऐसे टूट पड़ा फिर, यद्यपि थका हुआ।
उदयभानु का वार अचानक तभी कारगर हुआ॥६॥
बेहोश हो गया वीर। एक पल भर। हाय, रघुवीर!
तानाजी तभी गिर गया।
धैर्य का शैल ढल गया।
शिवबा का भाला गल गया।
भूमाता की गोद में लेटा देखो तानाजी।
आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥७॥

: १२ :

तानाजी गिर गया, मराठे हटते हैं, देख।
सूर्याजी की दहाड़ गूँजत भयकारी एक॥१॥
'अरे मराठो, चले कहाँ तुम सारे के सारे?
रख दो भाला, पहनो चूड़ी हाथों में सारे॥२॥
डोर पकड़कर जाने का क्या सोच रहे तड़के?
सुनो नपुंसको, डोर कभी का टूट गया लड़ के॥३॥
बाप तुम्हारा लड़ते लड़ते मर पड़ा यहीं पर।
अब पितरों को नर्क भेज दो तुम वापस जाकर'॥४॥
धिक्कार शब्द गर्जत। पुन: लौटत। वीर राउत।
फिर घना युद्ध जो छिड़ा।
वीर से वीर जो भिड़ा।
देशार्थ मराठा लड़ा।
धर्मार्थ मराठा लड़ा।
वीर रस का प्राशन उनको स्वतंत्रता कराए, जी!
आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥५॥

: १३ :

अरे, पकड़ लो, मातृघातकी देशघातकी को।
चलो, चलो जी, उसी स्थान पर, छोड़ो बातों को॥१॥
सभी मराठे दौड़त उस स्थल बदला लेने को।
उदयभानु पहले ही किसी ने भेज दिया नर्क को॥२॥
उसके शोणित में भिगा दिया वस्त्र, ध्वज बनाया।
स्वतंत्रता का ध्वज अनदेखा, अभी तक फहराया॥३॥

जब तानाजी की ओर। मुड़त झकझोर। नैन में नीर।

तानाजी कुछ उठ गया।

जय देख, हर हर किया।

'देथार्थ मरूँ', कह दिया।

'धर्मार्थ मरूँ', कह दिया।

फिर से गिरा, कहाँ का अब वह उठता तानाजी!

आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥४॥

: १४ :

फिर उस गढ़ की भू में लिपटा तानाजी दिल से।

तब से रत्नाकर समुद्र भी जलता है उससे॥१॥

स्वतंत्रता के रण में लड़ते स्वतंत्रता के लिए।

उन लोगों के समर्थक स्वयं जगदीश्वर हो गए॥२॥

धन्य मराठे पुनीत हुए अरि-शोणित के स्नान से।

और 'विनायक' उनके निर्मल यश:-सुधा-पान से॥३॥

अस्तु समाप्ति श्रीशिवबा की सरस्वती की, जी!

गढ़ आया पर सिंह खो गया, देखो, तानाजी॥४॥

धन्य शिवाजी वह रणगाजी, धन्य तानाजी!

आज प्रेम से सिंहगढ़ का गीत गाओ, जी॥५॥

टिप्पणियाँ :

१. शिवाजी, शिवराजा, शिवबा, शिवराज, शिवराया = छत्रपति शिवाजी।

२. तानाजी = तानाजी मालुसरे, शिवाजी के एक प्रमुख सरदार।

३. सिंहगढ़ = पुणे के पास स्थित एक दुर्गम पहाड़ी किला।

४. शिवनेरी = एक पहाड़ी किला, जहाँ शिवाजी का जन्म हुआ।

५. मावले = मूलत: खेतिहर मराठा जनसाधारण, जिन्हें शिवाजी ने अपने स्वतंत्रता-संग्राम में नई चेतना के साथ समाविष्ट किया।

६. रामदास = महाराष्ट्र के प्रवृत्तिवादी साधु, जिन्हें शिवाजी का गुरु माना जाता है।

७. तोरणगढ़ = एक पहाड़ी किला, जिसे जीतकर शिवाजी ने अपने स्वतंत्रता-संग्राम का श्रीगणेश किया।

८. भगवा ध्वज = गेरुए रंग का शिवाजी का ध्वज।

९. प्रतापगड़ = एक दुर्गम पहाड़ी किला, जिसमें शिवाजी की आराध्य देवी भवानी का मंदिर है तथा जिसके तले शिवाजी और अफजल खाँ की इतिहास प्रसिद्ध भेंट हुई।

१०. अफजल खाँ = विजापुर के आदिलशाह का महाप्रतापी बलिष्ठ सरदार, जिसने शिवाजी को जिंदा या मुरदा पकड़ लाने का बीड़ा उठाया था। शिवाजी से भेंट होने पर उसने अपनी बाँहों में शिवाजी की गरदन मरोड़ने का प्रयास किया, जिसके जवाब में शिवाजी ने उसका उदर बाघ नख से विदीर्ण करके उसे मार डाला।

११. शास्ता खाँ = मुगल सम्राट् औरंगजेब का मामा, जिसे औरंगजेब ने बड़ी फौज देकर शिवाजी पर आक्रमण करने भेजा था। उसने पुणे में शिवाजी की हवेली पर कब्जा कर लिया था। मध्यरात्रि के समय शिवाजी ने कुछ चुनिंदा वीरों के साथ हवेली पर छापा मारा। मुठभेड़ में शास्ता खाँ का बेटा मारा गया और शास्ता खाँ के हाथ की अँगुलियाँ कट गईं।

१२. जिजा = शिवाजी की माताश्री जिजाबाई, जिन्होंने शिवाजी के मन में बचपन से ही स्वतंत्रता की चेतना जगाई।

१३. यशवंती = तानाजी की प्रशिक्षित गोह, जिसकी कमर में डोर बाँधकर उसे दुर्घट कगार के ऊपर भेजा गया और जब वह ऊपर जा कर पहाड़ से चिपक गई तब डोर से तानाजी और उनके साथी ऊपर चढ़ गए।

१४. उदयखान = उदयभानु, मुगलों के राजपूत सरदार, जो सिंहगढ़ के किलेदार थे। यद्यपि उन्होंने धर्मांतरण नहीं किया था, मुगलों की सेवा में रत होने के कारण सावरकरजी ने उन्हें व्यंग्य से 'उदयखान' कहा है।

१५. सूर्याजी = तानाजी के छोटे भाई।

१६. विनायक = विनायक दामोदर सावरकर।

श्री बाजी देशपांडेजी का पोवाड़ा

(**परिचय :** इस पोवाड़े को दिनांक ११ नवंबर, १९११ के सरकारी पत्रक के अनुसार आक्षिप्त ठहराया गया था। उसपर से पाबंदी दिनांक ७ अक्तूबर, १९३८ के सरकारी पत्रक से हटा दी गई। सिंहगढ़ के पोवाड़े के प्रारंभ में जो प्रास्ताविक दिया है, वही इस पोवाड़े के संदर्भ में भी प्रस्तुत है।)

जयोऽस्तु ते श्रीमहन्मंगले शिवास्पदे शुभदे।
स्वतंत्रते भगवति! त्वामहं यशोयुतां वंदे॥
स्वतंत्रते भगवती! आइए प्रथम सभा में, जी!
गाते हैं हम आज गीत में महावीर बाजी॥
चितौड़गढ़ के बुर्ज! आइए जोहारों के संग।
विक्रमशाली प्रतापसिंहजी! आओ जी, रणरंग!॥

सिंहगढ़! तुम तानाजी के शौर्य सहित आओ।
रायगढ़ की दौलत! तुम भी प्रेमपूर्ण आओ॥
जरिपटका फहराते आओ धनाजि, संताजी!
भाऊ! आओ, दिल्ली के तख्त की उड़ा धज्जी॥
स्वतंत्रता के रण में मर के चिरंजीव हो गए।
ऐसे सारे वीरो! तुम अब शीघ्र पधारिए॥
भीड़ भरी सभा में भारी। गर्जना सारी। होत भयकारी।

जय स्वतंत्रता की बोलो।
जय राष्ट्रदेवि की बोलो।
जय भवानि की जय बोलो।

सभी मावलो! बोलो, 'हर हर महादेव' बोलो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥१॥
'हर हर' गर्जत सभी मावले वीर सज्ज बनते।
लेकिन ब्राजी कहाँ खो गए? क्यों न यहाँ दिखते॥
हाय हाय! वे म्लेच्छ-संग तब बना रहे थे, जी।
स्वदेश-भू के पैरोंवाली दास्य-शृंखला जी॥
सुनकर शिवबा-हृदय छटपटा, कहत 'दूत, जाओ।
वीर बाजि को राष्ट्र कार्य का बोध तुम कराओ।'
शिव-दूत जा पहुँचत। बाजि से कहत। छोड़ दे कु-मत।

क्यों जीना तुच्छ बनाते?
क्यों म्लेच्छ-कसाई भजते?
क्यों दास्य-नर्क में पचते?

स्वराज्य बिन औ' स्वदेश बिन तो देह तुच्छ समझ लो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥२॥
बाजी देखो, म्लेच्छ सबल यह दोष नहीं काल का।
नहीं देव का, नहीं धर्म का, नहीं मुकद्दर का॥
देशद्रोही अधमों का यह भरा रहा बाजार।
बेच रहे निष्ठा उनको जो दास्य देत अनिवार॥
स्वतंत्रता को आप ही जैसे लोगों ने काटा।
भू-माता की गरदन को निर्ममता से काटा॥
सावधान बाजीराय। दास्य में काय। व्यर्थ गुमराह।

श्रीशिवबा परमेश्वर।
बुलाए स्वतंत्रता खातिर।
तुम जाओ जी, सत्वर।
देशभक्ति का अमृत पीकर प्रायश्चित्त कर लो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो ॥३॥
शिव-दूतों की बातें सुनकर बाजी सोचत है।
काल-सर्प को कैसे मैंने मित्र बनाया है?
घर में आया चोर, उसी को राजा मान लिया?
शिवराजा के पूज्य कार्य को विप्लव मान लिया॥
मेरी माँ को भ्रष्ट किया जिसने, निष्ठा उससे?
मैं पापी लड़ रहा देश के रक्षणकर्ता से॥
कह दो शिवनृप से, जी। मुझ जैसे पाजी। राजनिष्ठ को, जी।
तुम पहले मारो जान से।
मृत्यु जब मिलेगी तुम से।
मैं शुद्ध हो जाऊँ दिल से।
तेग तुम्हारे हाथ बनूँ मैं पुनर्जन्म में लो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो ॥४॥
देशभूमि के घातक को मैं क्यों निष्ठा दे दूँ?
रोटी देता है इस कारण क्यों सेवा कर दूँ?
किसकी रोटी, बोलो भाई, सेवा भी किसकी?
रोटी भू-माता देती है, सेवा कातिल की॥
राज छीनकर जीत लिया है देश अधमों ने।
उनसे निष्ठा जता रहे हो, पाया नर्क तुमने॥
यह सीख दास्यकारक। लो अभी सबक। अभी से देख।
मेरा देश ही मेरा प्राण।
वह राजा, वही भगवान।
शिवबा पर जान कुरबान।
राख उड़ गई, प्रदीप्त बाजी-वैश्वानर देख लो!
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो ॥५॥
धूलि उड़ गई आसमान में, 'दीन' शब्द आया।
सिद्दी जोहर ने पन्हालागढ़ को घेर लिया॥
लक्ष्मी का मृदु कमल, शारदामैया की वीणा।
स्वतंत्रता का कलिजा गढ़ पर बंदी शिवराणा॥

अफझुल्ला के वध के कारण फाजल सुत उसका।
करता है प्रण शिव को जिंदा कैद करने का॥
जिस वीर ने बाप को। हराया, उसको। कैद करने को।
यदि कभी सफल तुम रहते हो।
जीवंत हवा जो बहती है।
पकड़ना उसे यदि संभव है।
बेशक फिर, तुम हिरन! पकड़ने दावानल दौड़ लो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥६॥
बाजी ने कुछ खुसुर-फुसुर फिर कर दी शिवबा से।
एक मावला भेजा नीचे मिलने सिद्दी से॥
सिद्दी को जब देखा, सहसा हाथ खड्ग पर गया।
रोक स्वयं को, कुर्निसात करके बतलाया॥
'राजा शिव जीवंत आ रहा आपसे मिलने।
सुबह करेंगे गढ़ को खाली, बतलाया उसने'॥
सुन बात, सिद्दि बहु खुश। शत्रु मदहोश। उड़ गए होश।
अजी खान, खान, खान जी।
हुए शिकस्त मराठे, जी।
फिर लड़ना अब क्यों जी?
चलो, शराब पिएँगे जी।
आप गाजी! आप रणगाजी!
मदहोश किया अरि-सर्प बजाकर तुमड़ी, अब सुन लो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥७॥
बहक्राया अरि-सर्प को, शिव सपेरा गड़ पर।
ख़ास मराठी जादु चलावत प्रहर बीतने पर॥
कृष्ण पक्ष की काली काली रात जब आई।
घनी झाड़ियों से डरकर तारकाएँ छिप गईं॥
ऐसे अँधेरे में किसने दरवाजे खोले?
बाजी, श्रीशिव और साथ में शत भाले निकले॥
भाला कंधे पर घोड़े पर सवार जब वीर।
घोड़ा थै थै नाचत, सीटी तभी बजत 'किर्र्र'॥
वीरो, अब मारो एड़। होगी मुठभेड़। घेरे को तोड़।

रिपु रौंद निकलो पार।
चौकी दिखने खातिर।
जुगनू पर रहो निर्भर।
सत्तर मीलों तक निकला जी राजा, तुम सुन लो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥८॥
झाँसा देकर सिद्दी को शिवराजा निकल गया।
'अब्रह्मण्यम्!' कई अनाड़ी पंडों ने कह दिया॥
'अब्रह्मण्यम्' क्या है इसमें? दोष कौन सा है?
'शठं प्रति शाठयम्' नीति पुरातन चलती आई है॥
साँप विषैला देशवासियों को डसने आया।
उसे अचानक झाँसा देकर ऐसा कुचल दिया॥
ये यथा प्रपद्यन्ते माम्। भजाम्यहं तान्। तथैव धीमान्।
'भारत' में कृष्ण की राय।
'अधम को अधमता' न्याय।
राष्ट्र के लिए शिवराय।
सावधान शिव राष्ट्रहितैषी! रिपु पीछे, देख लो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला बोलो॥९॥
'पैर पड़ूँ, मैं हाथ जोड़ दूँ', बाजी कहता है।
'गड़ दुर्गम रांगणा, वहाँ अब तुमने जाना है॥
राष्ट्रदेवि का हाथ कुशल तुम, तब लाखों भाले।
हम जैसे मिल जाएँगे औ' शत्रु भाग निकले॥'
'क्या जाऊँ मैं, बाजि, मृत्युमुख छोड़ तुमको, जी?
कभी शिवाजी सच्चा योद्धा डरा मौत से, जी'॥
'शीघ्र चढ़ो गढ़ पर, तोपों को पाँच सुलगाओ।
तब तक लड़ते रह जाएँगे, हम पर यकीन करो॥
वसुदेव बनो जी तुरंत। कंस-षड्यंत्र। करो बेपर्द।
स्वतंत्रता हरि-मूरत।
ले जाओ अपने साथ।
गड़-गोकुल में सुरक्षित'।
शिवबा निकले, तो दर्रे में रिपु आया, देख लो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥१०॥
गनीम आए, दर्रे में बहु तमतमाते आए।
भाले लेकर वीर मराठे उनसे टकराए॥

खड्गों की खनखनाहट तथा शर सन-सन करते।
'मरना या मारना' हेतु से वीर रहे लड़ते॥
तब 'हर हर' जो हो गई। विजय हो गई। रिपु-सेना हट गई।
चलो, फिर से हमला करो।
वीरो, फिर हमला करो।
जिद लेकर हमला करो।
मार-क़ाट करते-करते रिपु दर्रे से भगा लो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥११॥
म्लेच्छ हट गए, बाजी मुड़कर गढ़ को देखत है।
श्रीशिव जाते देख मार्ग पर, वीर गर्जत है॥
'गढ़ के अंदर जाएगा श्रीशिवराणा प्यारा।
तब तक दर्रा रोक रखेंगे यही प्रण हमारा॥
प्रण के पहले समरांगण में मौत अगर आए।
पुनर्जन्म तत्काल लेकर पुनरपि लड़ पाएँ॥
रघुराय, रावणदमन। कंस-मर्दन। भो जनार्दन।
मत्प्रिय देशजननी की।
रक्षार्थ स्वतंत्रता की।
बलि चढ़ा रहा हूँ खुद की।
यदि पवित्र है कार्य, सुयश दो, आशीर्वच बोलो।'
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥१२॥
आ गए फिर गनीम पुनरपि, हमला कर आए।
पुनः मराठे भाले लेकर युद्ध-सज्ज हो गए॥
'दीन दीन' रणशब्द उठा, 'हर शंकर' गूँज गया।
दाँत होंठ में, और वक्ष में भाला टकराया॥
हमला करके बार बार वे रिपु से भिड़ जाते।
ठाठ शान में रण-भोजन में वीर-रस पीते॥
मराठी भाला रुक गया। तो बाजी आया। पुनः सरसाया।
रण-रंग पुनः जो चमका।
गर्जते मराठे, 'रिपु का।
बदला लो, म्लेच्छ-दुर्जन का।
मस्तक है गेंद, अब पक्का।
समरांगण में गेंद-बल्ला खेल शुरू कर लो'।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥१३॥

वीर मराठों ने रिपु-सेना के छक्के छुड़ाए।
विजय हुई, पर वीर मराठे काफी मारे गए॥
उधर पाँच तोपें गढ़ पर क्यों न अभी बजतीं?
वीर मराठे चिंतित, आशा परास्त होने लगती॥
तिस पर ताजा टोली लेकर फाजल खाँ आता है।
धन्य बाजि की! पुनः उछलकर टूट पड़ता है॥
तोप-दर्रे से निकला यह गोला श्रीबाजी।
रण में दमकत वीरश्री का समर-पति यहाँ, जी॥
तब गोली भिन-भिन आई। घात कर गई। मर्म विंध गई।
श्रीबाजी घायल गिर गया।
फिर तुरंत ही उठ गया।
बेहोश वीर कह गया।
'तोप से पहले नहीं गिरूँगा, मौत से बोलो!'
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥१४॥
'रुको वीर! घाव तो तुम्हारा बाँधूँ, रुक जाओ!
'हर हर' रण में सुनकर, बाजी! उछले ना जाओ'।
'घाव कहाँ का, केवल मैं हूँ तृषाक्रांत थोड़ा।
रिपु-शोणित को पी जाता हूँ, दो मेरा घोड़ा॥
असली घाव भू-माता के तन, आक्रोशत, छोड़ो।
खींच शत्रु की आँतें, कर दूँ पट्टी उसकी, छोड़ो॥
भले! मराठो! लड़ो, लड़ो तुम, आया मैं, छोड़ो।
लड़ो, लड़ो जी, छोड़ो मुझको, म्लेच्छ शत्रु को तोड़ो॥
तोप भी अभी बज जाए। तनिक रुक जाएँ। जंग चलवाएँ।
भू-माँ का ऋण चुकाने के।
अब गर्म बिंदु शोणित के।
दो गिनकर, बस, पूँजी के।
सूद चुकाकर स्वतंत्रता का, कर्ज तुम मिटा लो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥१५॥
'यह कैसी आवाज?' 'बाजी, तोप नहीं बज गई।
शिला ढल गई, पत्ते सरसरे, चिड़िया चिल्लाई!'
'लड़ो वीर, फिर चलो, घुस गया समरांगण में मैं।
नहलाएँगे शोणित से हम भू को दर्रे में॥

सौगंध तुम्हें वृक्ष-पक्षि-जल-शिला-तेज सारे।
गिर जाऊँ यदि तोप से पहले, लड़ो आप सारे!'
तब धमाके हो गए। प्राण लौट आए। हास्यमुख हुए।
यह धमाका शिवाजी का।
यह धमाका निजधर्म का।
यह धमाका निजदेश का।
यह चौथा कर्तव्य का।
तभी पाँचवाँ होत धमाका, 'हर हर जय' बोलो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥१६॥
सावधान, यमदूत! यहाँ लेटा है श्रीबाजी।
छुओ नहीं उसके तेजस्वी शरीर को तुम, जी॥
स्वतंत्रता के पहले यह रण-तीर्थ पहुँचा है।
देश-शत्रु-शोणित में रंगा लाल बन गया है॥
रिपु-रुंडों की माला उसके सीने पर शोभत है।
जिस पर 'हर हर महादेव' का मंत्र अंकित है॥
ये देव-दूत आ गए। सूर्य आ गए। इंद्र आ गए।
सुरगुरु सुरतरु सारे।
औ' वर्षत देवगण तारे।
मधु मृदुल हवा संचारे।
करे आरती कीर्तिसुंदरी, श्रीबाजी, सुन लो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥१७॥
दिव्य धुनी का प्रकाश पूरे जग में उभर गया।
स्वतंत्रता देवि का दिव्य रथ अब अवतीर्ण हुआ॥
चित्तोड़, जागो, उठो, देवि को उत्थापन दो, जी।
प्रतापसिंह, तुम उठो, देवि को प्रणाम कर लो, जी॥
तानाजी, तुम उठो, छोड़ दो अब चिंता सारी।
राय रांगणा में है रक्षित युगप्रिय अवतारी॥
स्वतंत्रता का वीर-गान यह सुनने जो आए।
उठो सभी स्वातंत्र्यवीर, जयमंगल हो जाए॥
श्री स्वतंत्रता भगवती। रथ में संप्रति। बाजि को लेती।
गंधर्व तननतों करते।
स्वर्गीय नगाड़े बजते।
श्रीबाजी स्वर्ग में जाते।

विश्व चराचर कहे, बाजि का जय जय जय बोलो।'
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥१८॥
तभी मराठे रण में मृत औ' देवगण सारे।
पावनदर्रे में बैठे जो, स्वर्ग सभी सिधरे॥
श्रीबाजी का शोणित बोया, दर्रे में बिखरा।
रायगढ़ में स्वतंत्रता का वही वृक्ष निकला॥
अरे बंधुओ! पूर्वज ऐसे स्वतंत्र रणगाजी।
वंशज क्या उनके शोभत हैं हम सब? सोचो, जी॥

विनति विनायक करे, निहित जो अर्थ अब समझ लो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥
स्वराज्य बिन औ' स्वदेश बिन तो देह तुच्छ समझ लो।
स्वतंत्रता के रण में रिपु पर अब हमला कर लो॥१९॥

टिप्पणियाँ :

१. बाजी, श्रीबाजी = बाजी प्रभु देशपांडे, जो प्रारंभ में शिवाजी के उदात्त ध्येय को समझे बिना उसे केवल एक विप्लवी मानकर यवन राजा की सेवा में लगे रहे थे। शिवाजी द्वारा समझाए जाने पर वे शिवाजी के पक्ष में शामिल हो गए। सिद्दी जोहर का घेरा तोड़कर शिवाजी जब पन्हालागढ़ से निकलकर सुरक्षित रांगणागढ़ की ओर भाग रहे थे, तब बाजी प्रभु ने पीछा करने वाले गनीम को दर्रे में रोके रखने का जिम्मा उठाया। चंद वीरों के साथ, मर्मांतक घावों की परवाह किए बिना वे तब तक लड़ते रहे जब तक शिवाजी के रांगणागढ़ में सुरक्षित पहुँचने के इशारे में पाँच तोपें न दागी गईं।

२. पोवाड़े के प्रारंभ में, पोवाड़ा सुनने के लिए देवी-देवताओं को न्योता देने की प्रथा है। यहाँ सावरकरजी ने चित्तौड़गढ़, राणा प्रतापसिंह, सिंहगढ़, तानाजी, रायगढ़, धनाजी, संताजी आदि को न्योता दिया है।

३. रायगढ़ की दौलत = शिवाजी के हिंदवी स्वराज्य की राजधानी।

४. जरिपटका = शिवाजी का राष्ट्रध्वज।

५. धनाजी, संताजी = धनाजी जाधव और संताजी घोरपडे, दो वीर मराठा सरदार, जिन्होंने स्वयं औरंगजेब के तंबू पर हमला करके, उसके सोने के शिखर काटकर ले आए थे तथा मुगलों को जिन्होंने इतना आतंकित कर रखा था कि जब घोड़े पानी नहीं पीते थे तब मुगल सैनिक उनसे पूछते थे कि कहीं पानी में धनाजी-संताजी तो नहीं दिख रहे।

६. भाऊ = सदाशिवरावभाऊ पेशवा, जिन्होंने दिल्ली का तख्त प्रत्यक्ष रूप में तोड़ा था।

७. मावले = मूलतः किसान-वर्ग के जनसाधारण, जिनको शिवाजी ने प्रेरित करके वीर योद्धा बना दिया था।

८. 'हर हर महादेव' = मराठों की रणगर्जना।

९. शिवबा, श्रीशिव, शिवराणा, शिवनृप = शिवाजी महाराज।

१०. सिद्दी जोहर = आदिलशाह का सरदार।

११. अफझुल्ला = अफजलखाँ, आदिलशाह का सरदार।

१२. विनायक = विनायक दामोदर सावरकर।

तारकाओं को देखकर

(**परिचय :** मुंबई छोड़कर बैरिस्टर बनने के उद्देश्य से ईसवी १९०६ में सावरकरजी विलायत के लिए निकले। लंबी समुद्र यात्रा के दौरान केवल मनोरंजन के लिए तूफानी तथा निरभ्र रातों में वे जहाज के भाल पर घूमते थे। उस समय उन्होंने निम्न कविता का लेखन किया।)

सुनील नभ यह, सुंदर नभ यह, नभ यह अतल अहा।
सुनील सागर, सुंदर सागर, सागर अतल अहा।
नक्षत्रों से तारांकित नभ चम चम हँसता है।
प्रतिबिंबों से सागर भी तारांकित लगता है।
पता नहीं कब शुरू नभ, कहाँ जलसीमा ठहरी।
नभ में जल औ' जल में नभ का संगम मनहारी।
असली सागर ऊपर अथवा नीचे शोभत है।
असली नभ कौन सा बताना सचमुच मुशकिल है।
नभ के तारे सागर में प्रतिबिंबित होते हैं।
अथवा नभ में सागर के ही मोती बिंबित हैं।
अथवा नभ है केवल सारा, या सागर सारा।
भवसागर कहते हैं जिसको पुराण-ऋषि न्यारा!

हे तारके! दिखती हो जैसी, सुखशीतल हो न?
तुम्हें आग की ज्वाला कहते हैं, मैं मानूँ न!
विमल विरल मेघों की चद्दर ओढ़ सो जाए।
कोइ अप्सरा, उसके सुंदर मुख-सम शोभत है।
आल्हादक यह चंद्रबिंब, जो नंदसुधा वितरे।
दूरबीन पर तुलना उसकी वीरानों से करे!
चंद्र-तारका नाप नापकर अंतर प्रभु जी ने।

लगा दिए नभ में, नैनों में शीशे औ' ऐने।
उनका रूप रिझावत लोगों को रहता अनिवार।
विरूप उसको करनेवाली दुरबिन है बेकार!

ज्योतिषज्ञ जो कहते हैं वे आग के शोले।
कोई और रहेंगे तारे, ये अमृतवाले!
सुर-असुरों ने क्षीराब्धी की जब की थी मथनी।
अमृतकलश जब आया ऊपर, हो खींचातानी।
खींचातानी से अमृत की बूँदें बिखर गईं।
उनको तारे कहनेवालों की मति भ्रष्ट हुई!

अथवा देखत देव-रमणियाँ वसुधा पर ऐसी।
चमेलि, जूही, शुभ्र मालती खिलती-हँसती-सी।
उनके नंदन वन में भी हों ऐसे सुमन सभी।
इसी हेतु से बोया अपना हास्य सुकोमल तभी।
हास्य-लता के फूल खिल गए, वसंत ऋतु आई।
उनको तारे कहनेवालों की मति भ्रष्ट हुई!

नंदन वन के खद्योतों की चमचमाहट हुई।
उनको तारे कहनेवालों की मति भ्रष्ट हुई!
नीली साड़ी पर माया की बेलबूटियाँ सही।
उनको तारे कहनेवालों की मति भ्रष्ट हुई!

सुवर्णगौरा गौरी श्रीहर लीलारत जब थे।
द्वार खटखटा, श्रीहरि उनसे मिलने आए थे!
नग्ना गिरिजा जल्दी जल्दी वस्त्र पहन लेती।
झटका लगने से माला के टूट गए मोती।
इधर-उधर सब बिखरे, कैसी हालत यह बन गई!
उनको तारे कहनेवालों की मति भ्रष्ट हुई!

दुष्ट दशानन उठा ले गया सीता देवी को।
दुःखी देवी मुक्त बहावत अश्रुबिंदुओं को।
दिव्य शक्ति से दमकत सुस्थिर रहत अश्रु जब वहीं।
उनको तारे कहनेवालों की मति भ्रष्ट हुई!

हमला करके चित्तौड़ पर जब आया नर्कपति।
देवगणों को वार्त्ता देने तुरंत शीघ्रगति।
सिद्ध-अग्नि से झट से ज्वालाएँ नभ में भभकीं।
चित्तौड़वासिनि देवियाँ सभी आरूढ़ा हो गईं।
ज्वालारूढ़ा सभी देवियाँ दमकत तेजस्विनी।
उनको तारे कहनेवालों की मति भ्रष्ट हुई!

प्रभुविरचित नव नाटक 'मायाविजय' जगद्रूप।
खेला जाता है, तब सुरगण-स्त्रियाँ सुस्वरूप।
नभ के नाट्यालय के छज्जे से कौतूहल से।
चमकत-दमकत झाँक देखती हैं सब ऊपर से।
वदन-कमल उन देवियों के देखत चकराई।
उनको तारे कहनेवालों की मति भ्रष्ट हुई!

नभस्थित ग्रंथालय को जब अर्पित ग्रंथ किया।
कालपुरुष ने जिसमें विश्वेतिहास दर्ज किया।
रौप्यमुद्रांकित उसकी यह रचना भी कर दी।
उसको तारे कहनेवालों की मति भ्रष्ट हुई!

भीलनि के पीछे भागे थे कामव्याकुल शिवजी।
पुराण में है यही कहानी, मेरी बात नहीं जी!
नाचत भागे माया भीलनि पीछे भागत शिवजी।
कामव्याकुल, आसमान के आँगन में, देखो जी।
वीर्य प्रभु का टपका, बूँदें बिखरत फैल गईं।
उनको तारे कहनेवालों की मति भ्रष्ट हुई!

परंतु सागर! साफ बताओ, उथल-पुथल यह कैसी?
चमक चाँदनी कौन निकलकर नभ से आई कैसी?
रात्रि-समय में निरी अकेली जल्दी से घुस गई।
तेरे जलमंदिर के भीतर गायब-सी हो गई!
शरमाओ मत, विलास भोगो, कामोत्सुक तुम हो।
शत-जलतरंग-मंजुल सुख तुम उससे भोगत हो।
परंतु जिनकी प्रेम तारका दूर अकेली है।
कितने यात्री निकट तुम्हारे व्याकुल बैठे हैं?

साथ तुम्हारी प्रिय दयिता से तव संगम देख।
ईर्ष्या ना, पर असह्य लगता वियोग का दुःख!

हे तारो! क्या पता है तुम्हें, आए हो कहाँ से?
कहाँ चल पड़े? यात्रा करते हो किस उद्देश्य से?
कौन हेतु है, जिसके खातिर गगनगामि बन गए?
सूरज से इतनी दूरी पर भू के भ्रमण हुए?
छोटी तितली हाथी से भी सुंदर शोभत है!
बीज खिलत है, पुनः सूखकर बीज बनता है!
छोटे-मोटे घटिका-यंत्रों बीच यंत्र सारे।
अपनी अपनी गति से विचरत एकलक्ष्य सारे।
ऐसा क्या उद्देश्य, सिद्धि के लिए सत्य जिसकी!
विशाल घड़ि के पहिए घूमत हैं, पूरे विश्व की!
जानते न हम, पूछ रहा हूँ, क्या तुम जानत हो?
अथवा अनजाने में करना कार्य जानते हो?

(समुद्रमार्ग, १९०६)

श्रीमान् राजा कृष्णशहा से

(**परिचय :** कवि सावरकरजी के ससुरजी जव्हार राज्य के प्रशासक थे। वे स्वयं तथा राजा कृष्णशहा दोनों 'अभिनव भारत' संस्था के हितैषी थे।)

यद्यद् विभूति-द्युतिमद् सुसत्त्वं,
तत्तद् मदात्म-प्रभवं शृणु त्वम्।
इति स्वयं श्रीभगवान् प्रसिद्धं,
गीता-वधू-रत्नमुवाच तत्त्वम्॥१॥
श्रीमान् नृप! तुम द्युतिमान् शोभत,
विशिष्टता से सदैव युक्त।
अर्थात् प्रभू के महनीय अंश,
व्यक्तित्व में तव देत प्रकाश॥२॥
पट्टाभिषिक्त! स्वयमेव, और,
सक्षेम रानी तव शंखगौर।
ज्यों मोति में, या नदि में, तुम्हारी,
कटार में तेज सदैव भारी॥३॥

परस्परालिंगन-लालसा से,
नृपाल-राज्ञी विरक्त जैसे।
सस्पर्ध यच्चुंबन देत नित्य,
युवराज दोनों-प्रति प्रेमलिप्त॥४॥
या कंठ में जो सुभगा सलीला,
चंपावती चंपक-पुष्प-माला।
श्री राजबंधु-प्रमुखाप्त राय,
जो लोकहित में अतिदक्ष कार्य॥५॥
जो द्रव्य से औ' विरला गुणों से,
प्रपूर्ण भांडार राजस्व जैसे।
गुणज्ञ, वेत्ता, अधिकार-ज्ञानी,
समर्थ है तव सुमंत्रि-श्रेणी॥६॥
लता-वृक्ष-मेला सुहास्य-प्रसन्न,
रता नाथयुक्ता सती हास्यवदन।
सुदग्धा सुवत्सा सु-गोसंघशाला,
तुम्हारा यशोगीत नभ में उजाला॥७॥
उचित-दंड विप्लव, प्रजा शांतियुक्त,
सदानंद रहता प्रशासन सुतृप्त।
प्रजापालनार्थे सदा दक्ष-पाल,
यथार्था हुई जो उपाधि 'नृपाल'॥८॥
ऐसी पवित्रा दत्ता उपाधि,
राजा, तुम्हें ईश द्वारा गुणाब्धि।
ऐसे महान् राघव का चरित्र,
क्या तुम पढ़ोगे नित पूर्वरात्र? ९॥
समुद्र मध्ये राक्षस-द्वीप लंका,
दशाननार्थे जगत्कलंका।
जिसने महापीड़ित की धरित्री,
राजा, हमारी जो जन्मदात्री॥१०॥
भूक्रंदनार्थे प्रभु चापपाणी,
सलज्जता से युत, नैन पानी।
कहे, 'शत्रु ने जो आतंक छाया,
धिक्कार! मैंने कुछ भी नहीं किया॥११॥

क्या दास-जाति स्वयं मैं तथापि,
राजा बना दूँ विगत-प्रतापी?
सीना हमारा रावण ने लताड़ा,
फिर भी पहन लूँ किरीट व्रीडा'॥१२॥

श्रीराम रिपु से भिड़ने चला था,
उद्दंड को दंडित जो किया था।
काटे दसों आनन वे रिपू के,
दुर्भाग्य पलटे वसुंधरा के॥१३॥

चरित्र उद्बोधक है प्रभू का,
चरित्र उत्तेजक है प्रभू का।
चरित्र सांकेतिक है प्रभू का,
दिन-रात कर लो जी पाठ उसका॥१४॥

राजा, तुम्हें श्रीजगदीश-प्रेम,
सद्राजवंशीय सुपुण्य जन्म।
तुम भाग्यशाली, तुम ईश्वरांश,
तुम्हारी प्रजा के आधार-विश्व॥१५॥

इसलिए केवल माँग मेरी,
स्वार्थार्थ इच्छा कोई न मेरी।
क्या आपने कुछ कम भी दिया है?
यत्कारणे जो मन चाहता है॥१६॥

परंतु अपनी यह आर्य-भूमि,
माता हमारी बहु चारु-भूमि।
जो कुछ गँवाया उसने उसी को,
पुनः प्राप्त करने करो कुछ कृति को॥१७॥

दुर्गम जव्हार जैसे वन का जो व्याघ्र महाराणा,
श्रीकृष्णशहा नामक, राजसभा में मेरा नजराना॥

(लंदन, १९०६)

हिंदसुंदरा वह!

हिंदसुंदरा है, धरा यह, धन्य प्रसूना है॥ धृ.॥

ऋग्यजुः सामवेदा। उपनिषद्-ज्ञान-छंदा।
प्राचीना गायत्री। यह देवी संधात्री है॥१॥

भरद्वाज-जनक की। वसिष्ठ-शुक-सनक की।
गर्गमुनि आदि ऋषियों की। सदा यह जन्मदात्री है॥२॥
रामायण-कवि को। श्रीमत् वाल्मिकि को।
तथा उस व्यास महर्षी को। सिखाती तुतली बोली है॥३॥
रघु-नल-दाशरथी। धर्मराज नृपती।
आदि सभी को मातृरूप। यह वंदिता रही है॥४॥
गार्गी औ' विदुला। पाँचाली मैथिली।
झाँसी की लक्ष्मी भी। जिसकी कोख में जनी है॥५॥
गौतम-चैतन्य को। महाप्रभु, गुरु नानकजी को।
स्तन्य दिया सबको। सार्थ है विश्वजननि-पद को॥६॥
प्रताप-शिव-बंदा को। श्री गुरु गोविंदसिंहजी को।
संभव देती, उद्‌भव देती। सदा जो स्फूर्ति बन रही है॥७॥
शास्त्रों की जननी। कलाओं की नलिनी।
सुजल जल को, सुफल फल को। रुचिर रस को बनाती है॥८॥
पुत्रवती ऐसी। सफलतम गोद भरी जिसकी।
वसुमति सुखराशी। आज क्यों दासी बन बैठी है? ९॥
सूर्यग्रहण की तो। जिंदगी क्षण की होती है।
रवि की दीप्ति। किंतु हमेशा अमर ही रहती है॥१०॥
शीघ्र ही हो जाएगी वह। मुक्ता शुभमूर्ति।
स्वतंत्र होकर। विश्व के लिए उद्धारक बननी है॥११॥

(लंदन, १९०९).

प्रियतम हिंदुस्थान

सकल जगत् की शान। मेरा प्रियतम हिंदुस्थान।
केवल पंचप्राण। मेरा प्रियतम हिंदुस्थान॥ ध्रु.॥
बहुत सुने हैं, देखे भी हैं, देश अन्य, इससे हैं सान।
मिसर, आंग्ल भू, जापान, चीन हैं इससे सारे सान॥१॥
गिरिवर गिन लो, फिर भी अद्‌भुत हिमगिरि धवल महान्।
कौन नदी है श्रीगंगा-सम पावन अमृतपान॥२॥
कस्तूरी-मृग-परिमल-पूरित जिसके पूरे वन।
उषाकाल में कोकिल-कूजित अमराई गुण-खान॥३॥
यज्ञ-धूम की गंध सुगंधित, सामवेद-स्वर-गान।
सुनकर उतरे देवगण जहाँ करे सोमरस-पान॥४॥

कालिदास के काव्य जहाँ औ' सांख्य गौतमी ज्ञान।
म्लेच्छ विनाशक विक्रम दे दें स्वतंत्रता का दान॥५॥
जिजा शिवाजी को जनम दे, गुरुपुत्रों के प्राण।
जिसके खातिर कुमारियों का शोलों में बलिदान॥६॥
तेरा ही जल तर्पण करके पूजे पितर महान्।
पुण्यभूमि तू, पितृभूमि तू, तू मन का अभिमान॥७॥
जननि! जगत् में कौन कर सके तेरा अब अपमान?
प्राण-दान को सिद्ध तुम्हारे त्रिदश-कोटि संतान॥८॥
जननि! तुम्हारी रक्षा करने न्योछावर हैं प्राण।
शत्रुकंठ को चीर, करेंगे तुझको शोणित-स्नान॥९॥

(लंदन, १९०८)

प्रभाकर के प्रति

(**परिचय :** सावरकरजी का प्रथम पुत्र प्रभाकर चार वर्ष की आयु में बचपन में ही गुजर गया। यूरोप में जब यह वार्त्ता मिली तब उसकी स्मृति में उन्होंने यह कविता लिखी।)

सुनकर यौवन-लतिका पर तू पहला फूल खिला।
हे सुत, गद्‌गद तन स्नेहार्द्रा नैन हुए सजला॥
परंतु यौवन अभिनव, तिस पर पितृत्व पहली बार।
अतः जग गई लज्जा मन में, विनय करे बेकार॥
नवप्रसूता जननी तेरी दिखा रही थी, तो भी।
गुरुजन-मर्यादा के कारण तुझे न देखा भी॥
चुपके-चुपके कभी तुम्हारा अर्धस्फुट चुंबन।
लिया, तभी सुख अनुभव करके मूँद लिये नैन॥
प्रभाकर प्रिय, थे तुम ऐसे बहुत दिनों तक, रे!
एक कल्पना अमूर्त-सी, मधु-मधुर, सुखात्मक रे॥१॥
शीघ्र छोड़कर गोद जननि की नन्हे कदमों के।
घर में जब तुम दौड़ोगे तब देखूँ जी भर के॥
सोच इस तरह, उत्सुक था मैं, तभी विदेश की।
यात्रा करना बाध्य हो गया, विरह-व्यथा मन की॥
माता का तू दूध पी रहा था, तब दोनों का।
चुंबन-लेकर, रास्ता नापा मैंने विदेश का॥

विरह प्रीति का हो जाने पर, दुःख बहुत हुआ।
सच बोलूँ तो विरह तुम्हारा प्रतीत बहु न हुआ॥
स्वदेश जैसे विदेश में भी तुम सन्निध मेरे।
अमूर्त-सी कल्पना एक मधु-मधुर सुखात्मक रे॥२॥
अतनु मूर्ति तव गले लगाकर सोता था मैं भी।
हँसती थी जो, कई बार मधु-आशान्वित वह भी॥
धर्म-कार्य-सिद्ध्यर्थ भेजकर रण में सशस्त्र से।
बाल बाल-योद्धा अपने श्री गुरुजी ने[१] जैसे॥
हुतात्म होते हँसते देखे, सुकीर्ति यह सुनकर।
मैंने भी कई बार तुम्हारी मूर्ति देखि स-समर॥
एक बार यह प्रभाकर! प्रिय! विषम वृत्त आया।
वसंत विह्वल लता वृक्ष पर[२] तड़िताघात हुआ॥
मृत्यु द्वारा तुझे हटाकर वंचित वे सब हुए।
परंतु मैं सच कहूँ, मुझे तो आघात न कुछ हुए॥
पहले जैसे थे तुम, वैसे अब भी प्रिय मेरे।
अमूर्त-सी कल्पना एक मधु-मधुर सुखात्मक रे!॥३॥
जब तक मेरा हृद् जीवित है, ऐसे ही तुम रहो।
पूर्वार्जित यह गेह तुम्हारा, प्रिय शिशु, सुखी रहो॥
किंतु हवा ज्यों बरसाती है मेघ-शिला-धारा।
सुरक्षित रहे न गेह यह भी, क्या होगा तेरा?
महाराष्ट्र-वाक्-सुंदरी जहाँ श्री गुरु गोविंद की।
सुंदर-मणिमय-मंदिर में नित रहे प्रेम-भक्ति॥
तुझे गेह[३] यह अर्पित प्रिय मम, सरस्वती द्वारा।
जहाँ क्रांति की हवा न चलती अग्नि-मेघ-द्वारा॥
रहो प्रिय शिशु, अमर सदन में, ऐसे सलील रे!
अमूर्त-सी कल्पना एक मधु-मधुर सुखात्मक रे!!॥४॥

(लंदन, १९०९)

पश्चाल्लेख

जहाँ न करने स्पर्श असंभव अग्नि-मेघ-तूफान।
वहाँ जा सके क्रांति-प्रेरित अग्नि, मेघ, तूफान॥

(अंदमान, १९१२)

टिप्पणियाँ : १. श्री गुरु गोविंद सिंहजी ने।

२. स्त्री-पुरुष मित्रों पर।

३. क्रांति के तूफान में यह मेरा हृदय, यह शरीर फँस गया है। अतः तुम्हें रहने के लिए सुरक्षित नहीं है। परिणामतः, तुम्हारी स्मृति चिरकाल रहे, इस उद्देश्य से, गोविंद सिंहजी की वीरता का गौरव जिस सिखों के इतिहास में है उस इतिहास का मराठी में रचाया हुआ जो ग्रंथ मैंने लिखा, उसे मैं तुम्हारे नाम अर्पित कर रहा हूँ। अर्थात् वह ग्रंथ जब तक है तब तक तुम्हारी स्मृति रहेगी। इस भावना के साथ यह कविता अर्पण पत्रिका के रूप में लिखी।

४. परंतु सावरकरजी का यह 'सिखों का इतिहास' भी जब्त हो गया। प्रकाशित होने से पहले ही पांडुलिपि पकड़ी गई। क्रांति की अग्नि में जो स्थान सुरक्षित लगा था वह भी उस अग्नि में दग्ध हो गया। इस आश्चर्य का उल्लेख इस 'पश्चाल्लेख' में है।

हे सागर...

(**परिचय :** 'अभिनव भारत' संस्था के प्रति वक्रदृष्टि हो जाने पर, अब हमारे लिए हिंदुस्थान लौटना असंभव हो गया है और शीघ्र ही हम पकड़े जाएँगे, ऐसा सावरकरजी ने निश्चित रूप में मान लिया। लंदन से लगभग पचास मील दूरी पर 'बायटन' के समुद्र-किनारे जब वे गए थे तब अपने लोगों की स्मृति होने पर उन्होंने यह कविता लिखी। अब यह कविता स्कूली किताबों में छपी है। कैसेट भी बने हैं। महाराष्ट्र में घर घर में, गाँव गाँव में यह गाई जाती है।)

ले चल मुझको पुनः मातृ भू के स्थल।
हे सागर, मन है व्याकुल!
भू-माता के चरणतल-क्षालन का।
मैंने जो नित दृश्य देखा।
तुमने ही कहा, अन्य देश चल जाएँ।
सृष्टि की विविध देखें
जननी-हृद् शक् करता था।
पर तुमने वचन दिया था।
मार्गज्ञ स्वयं, पृष्ठ इसे ढो लूँगा।
शीघ्र ही लौट आऊँगा।

विश्वास किया इन वचनों पर।
जगदनुभव लेने था तत्पर।
तव अधिक शक्त उद्धरता पर।

आऊँगा मैं, कहकर चला मैं चंचल।
हे सागर, मन है व्याकुल॥१॥
शुक पंजर में, हिरन फँसा पाशों में।
लो, फँसा यहाँ वैसा मैं।
भू-विरह-व्यथा सहन करूँ अब कैसी!
दश-दिशा तमोमय जैसी।
गुण-सुमनों को इस हेतु से चुना था।
कि उसको परिमल मिलता।
यदि उसके ही अभ्युदयार्थ न शक्त।
मम विद्या सारी व्यर्थ!
वह आम्रवृक्ष वत्सलता रे।
नव कुसुम युता वह सुलता रे।
वह बाल गुलाब की ममता रे।
वह फूल भरा बाग हो गया धूमिल।
हे सागर! मन है व्याकुल॥२॥
नभ-आँगन में तारे, फिर भी प्यारा।
है मुझे भरत-भू-तारा।
प्रासाद यहाँ भव्योत्तमता भारी।
पर कुटिया माँ की प्यारी
उस बिन मुझको राज्य न वांच्छित, मन में।
वनवास वहाँ के वन में।
अब व्यर्थ भुलावा तेरा रे।
अब आतुर मन है मेरा रे।
सरिता से प्रेम तुम्हारा रे।
सौगंध तुम्हें उसकी, सुन शंकाकुल।
हे सागर! मन है व्याकुल॥३॥
हे निर्दय! तू हँसता फेन-बहाने।
क्यों वचन चुराया तुमने?
तव स्वामिनि बन, संप्रति है जो ऐंठे।
उस आंग्ल भूमि से डरते?
मन्माता को अबल समझकर छलते।
क्यों कपट-कार्य ये करते?

हे आंग्लभूमि-भयभीता रे।
अबला ना मेरी माता रे।
कर याद अगस्ती आता रे।
जो अंजुलि में तुझे पी गया अध-पल।
हे सागर! मन है व्याकुल॥४॥

(ब्रायटन, १९०९)

टिप्पणी : १. घर के बड़े लोग, युवक-युवतियाँ तथा बालक आदि विशेषकर सावरकरजी की भाभी, पत्नी और छोटे भाई।

सांत्वना

(**परिचय :** ईसवी के १९०९ साल के जून महीने में श्री. गणेशपंत सावरकरजी को आजन्म कारावास—काले-पानी की सजा हो गई और जल्द ही आगे चलकर उनके छोटे बंधु 'बाळ' (डॉ. सावरकर) को भी बंदी बनाया गया। गणेशपंत की पत्नी यशोदाबाई ने ये दोनों वार्त्ताएँ विनायकरावजी सावरकर को विलायत में पहुँचाईं। उस समय अपनी संत्रस्त दुःखी भाभी को उन्होंने जल्दी-जल्दी लिखा गया काव्यबद्ध पत्र सावरकर समग्र खंड एक में पृ. ६१३-६१५ पर देख सकते हैं।)

मेरा मृत्यु पत्र

(**परिचय :** १९१० के मार्च में विनायकरावजी सावरकर विलायत में पकड़े गए। तब इस जन्म में जिसकी भेंट फिर से होना लगभग असंभव हो गया था ऐसी अपनी पूजनीय भाभी को अपने बंदी बनने के वृत्त कथन का कठोर आघात करने का कटु कर्तव्य निभाते-निभाते ही उसका उदात्त, आकर्षक, दिव्य मर्म अभिव्यक्त करने हेतु विनायकरावजी ने लंदन की ब्रिक्स्टन जेल से अपना इस जन्म का लगभग अंतिम संदेश यह मृत्यु पत्र लिख भेजा था। यह काव्यमय पत्र सावरकर समग्र खंड एक, पृ. ६१६-६१९ पर देखा जा सकता है।)

आत्मबल

(**परिचय :** क्रांतिकारी सावरकरजी को लंदन से गिरफ्तार करके भारत लाया जा रहा था। तब उन्होंने मार्सेलिस में जहाज से निकल भागने का प्रयास किया था। इसका बदला लेने हेतु पहरेदारों से उन्हें अमानुष यातनाएँ दी जाने लगीं। ऐसी यातनाओं को सह लेने के धैर्य को प्राप्त करने के कवचमंत्र के रूप में सावरकरजी

ने यह कविता लिखी। यह भी मंत्र आजकल अत्यंत लोकप्रिय है। अनेक स्थानों पर छापा जाता है। गाया जाता है।)

अनादि मैं, अनंत मैं, अवध्य मैं भला।
मार सके कौन मुझे, जगति रिपु पला॥ध्रु.॥
करते जब अट्टहास धर्महेतु मैं।
मृत्यु को पुकारता प्रविष्ट समर में॥ध्रु.॥
अग्नि से अदग्ध मैं, अभेद्य खड्ग से।
भाग चली मृत्यु शबल, भीत मुझी से।
अनाडि शत्रु! मृत्युसमेत।
मृत्यु का ही भय दिखा मुझे डरा रहा॥१॥
हिंस्र सिंह के पंजर फेंक दो मुझे।
नम्र दास सम मेरे चरण छुएगा।
लहलहती ज्वाला में फेंक दो मुझे
हटकर बन जाएगी शीत वारिगा।
ला तेरी तोपें, ला क्रूर पलटनें।
यंत्र-तंत्र शस्त्र-अस्त्र आग उगलता।
हलाहल ज्यों। त्रिनेत्र शिव।
वैसे मैं निगल तुम्हें अब खा जाता॥२॥

पहली किश्त

(**परिचय :** १९१० साल का दिसंबर। अभियोग का निर्णय घोषित होकर फाँसी की तथा काले पानी की सजा अभियुक्तों को होनेवाली है। सावरकरजी को सबसे कठोरतम सजा प्राप्त होकर उनके स्वतंत्र जीवन का अंत होनेवाला है, यह जानकर उन्होंने अपने सहकारी देशभक्तों में से जो शीघ्र मुक्त हो जाने वाले थे, उनके हाथों अपनी मातृभूमि के लिए तथा देशबंधुओं के लिए उनके ऋण विमोचन की यह 'पहली किश्त' भेज दी।)

लो मान इसे। हे जननी। लो मान इसे।
अल्प स्वल्प जो। सेवा अपने अर्भक बच्चों से॥ध्रु.॥

सीमा न है ऋण को। तब स्तनों का स्तन्य पिलाकर धन्य किया हमको विमोचन ऋण का हो। किश्त प्रथम यह स्थंडिल में मम देह समर्पित हो, तुरंत जन्म पाऊँ। त्वन्मोचन हवनार्थ देह मम पुनः हवी कर दूँ।

सारथी जिसे अभिमान। कृष्ण भगवान्। राम पुरश्चरण
है तीस करोड़ी सेना
जो हम बिन कहीं रुके ना
पर करके दुष्टदल दलना
स्वयं फहराए। स्वतंत्रता का ध्वज हिमनग पर गौरव अपनाए।

(मुंबई, १९१०)

सप्तर्षि

कारागृह की प्रथमान्हिकी (पहले दिन की डायरी)

(**परिचय :** दो आजन्म कारावासों की पचास साल की भयंकर सजा वज्रलेप हो गई, ऐसी पक्की वार्त्ता जिस दिन आई, स्वतंत्र नागरिक के कपड़े छीनकर पुन: जनम भर में कभी न उतारने के लिए काले पानी के कपड़े उनके बदन पर पहनाए गए, तब उनकी स्थिति बिलकुल वैसी ही बन गई जैसी सती होने के लिए चिता पर अटल स्थान प्रस्थापित करने पर भी चिता प्रत्यक्ष रूप में भभकने पर सती को जिस तरह असली जलन महसूस होती है। विह्वलता के ऐसे विष के उपाय स्वरूप मन जो विवेक का प्रतिविष पीने लगा तब वह भी, पीते-पीते तो विष की ही भाँति दु:सह होगा ही! विष-प्रतिविष की उन लहरों का पहला झटका, मन में मची हुई वह विरह-विवेकों की खलबली, उन्होंने स्वयं सन् १९११ में काव्यबद्ध कर दी है। वही है यह कविता।)

सप्तर्षियो! इस तरह साथ तुम्हारे विश्ववाद हो जाए
क्या खेद है, कहीं भी जीवन मेरा समाप्त हो जाए!
अँधेरी कोठरि के औ' हृद के तिमिर को हटाने को
मालाएँ सप्त तुम्हारी दे दें विश्वदीप्ति मुझको
रुद्राक्षों की भाँति जिसके बालों में ये मालाएँ
उस व्योमकेश प्रभु को अर्पित मेरी ये सब कविताएँ

आशा विफला होवे, एक हि आघात धैर्य को तोड़े।
कच्चा घट है तेरा, हे मन! मुक्ता[१] कहत, सुन भगोड़े॥१॥
गेह गेह में, पुर में, घूमत लेकर हाथों में दीप।
जिनकी खोज करत हैं, वापस जब आवत हैं आप॥२॥
तस्कर वे, अपने ही घर में निश्चिंत बने बैठे सब।
दीप! तुम्हारे नीचे पटल तिमिर का छिपा हुआ है सब॥३॥
याद करो, तुम जग को नैष्काम्य का देत नित्य उपदेश।
स्पृहणीय था तुम्हारा उत्साह, अदम्य-सा आवेश॥४॥

हे मेरे मन! ऐसे तुझको, मेरे ये अश्रु अब सच में।
अपहसनीय बनाएँगे दुनिया की विषाक्त नजरों में॥५॥
एक साल गुजरा है, कारागृह बन गया गेह मेरा।
कोई मोह न मन में, विरह न करे चंचल मन मेरा॥६॥
सोचा था, अब मेरा स्वभाव ही बन गया हतःकाम।
हे मन! थी वह भ्रांति, स्पष्ट है निरुत्साह के नाम॥७॥
न्यायालय में होगा निर्णय क्या, यह अनिश्चितता।
समाप्त होकर, असंभव मोचन है यही सुनिश्चितता॥८॥
सोचा नहीं इसलिए मान लिया था शमित हो गए हैं।
न दिख पड़े इसलिए सोचा था जो विनष्ट हो गए हैं॥९॥
परंतु बुझ जाते ही अनिश्चितता-रूप मार्ग-दीप।
हमला कर आए हैं विकार तस्कर जो छिपे रहे समीप॥१०॥
आशा! यही फलाशा! स्वार्थजनित ना, तथापि आशा ही!!
बुनत परार्थाशा भी स्वार्थ की तरह पाश सही॥११॥
कदम न नौ भी लंबी, चौड़ी तो पाँच कदम नहीं है।
जिसकी दीवारों पर भय-सम काला तारकोल पोता है॥१२॥
खिड़की ना, जाली ना कोई, कमरा, दरार भी न कोई।
बंदीशाला में जो कहलाता एकांत-निवास सही॥१३॥
लोहे की सलाखें तंग द्वार में, ताला दिन में भी।
ठीक लगा के रखते, निरर्थ जैसी आँखें उल्लू की॥१४॥
पास में न कोई आस-पास की कोठरि में रहत।
बातें करने कोई मनुष्य न मिले, नीच भी न क्यों होत॥१५॥
और जहाँ तरु-पल्लव एक भी कभी दिखाई न देत।
आँगन तंग, उदास, दिखत सामने दिन में भी त्रस्त॥१६॥
सूख धूप में पड़ते कैदियों के कंबल औ' टाट।
कौए-उल्लू बाहर दीवारी पर बना रहे कोट॥१७॥
मानवजाति-बहिष्कृत, देखत ही मन होत भयग्रस्त।
राज्यप्राप्ति के खातिर भी जिसका नामोच्चरण है भयद॥१८॥
ऐसे पापी लोगों से भी बातें करना चाहूँ, जी।
संभाषणप्रिय होता है मानव का मनस्वभाव अजी॥१९॥
संभाषण मुशकिल है यही वजह है प्रमुख यातना की।
चड्डी औ' बंडी थी पेहनावे में भद्दी खादी की॥२०॥

टोपी बेढंगी-सी पीली थी, जो सिर ढका करती।
छोटा कंबल काला, बिस्तर को कँटेरि चटाई थी॥२१॥
स्नान-पान-प्रातर्विधि सबके खातिर मात्र एक ही था।
जलपात्र, अपात्र, छोटा जो जस्ते का क्षुद्र बनाया था॥२२॥
जस्ती पदक हमेशा सीने पर घोषित सजा करत झूले।
चरणों में लोहे की बेड़ी दुःस्वन भीषण ध्वनि कर ले॥२३॥
जिसकी कड़ियाँ कँटेरी, तीन शेर का था वजन भारी।
खाती थी बेचारे नव-बंदियों की खाल छीलकर सारी॥२४॥
चिपकी थी वह कटि से, कदम बढ़ाना कठिन दिन में भी।
बदलत करवट सपने में तो डस लेत रात को भी॥२५॥
नौ कदमों का कमरा, भोजन कर लें उसी जगह कुंडी।
जिससे आती बदबू घ्राणेंद्रिय को रुलावत घमंडी॥२६॥
'तनु घृण्य! निंद्य तनु है!'—बोध करत अवधूत ज्ञानी।
शौचादि कर्म के लिए एक अनावृत थी चतुष्कोणी॥२७॥
खाने की मिट्टी की थाली, लँगोटि, बस औ' न कुछ भी।
यही सब संपत्ति हमारी, इससे ज्यादा जरूरत न कुछ भी॥२८॥
जितनी वाञ्छा लेकर लोग प्रयास बहुतेरे करते हैं।
पाने को, वह ज्वर-सम श्रांत-क्षीण उस मनुष्य को करते हैं॥२९॥
सुबह-सुबह आ पहुँचा बतलाने यह कारागृह-पति देख।
'हो गइ सजा अहा जी! पचास सालों की पूरी ठीक'॥३०॥
अभ्यास कठोर जिनका उनका भी हृदय व्यथित हुआ।
लेकिन यह सुनकर भी मेरे मुख का स्मित न लुप्त हुआ॥३१॥
तभी वस्त्र सब मेरे अपने लेकर छीन, त्वरित मुझको।
देत बंदी के, तो राम-सम किया धारण मैंने उनको॥३२॥
बार-बार तब मैंने मंत्र स्फूर्त्यर्थ याद कर लिया था।
वर्णित रामविवासन कालिदासकृत[२] श्लोक जप लिया था॥३३॥
जब चला गया अधीक्षक छोड़ मुझे वहाँ शृंखलायुक्त।
सहसा धारा तत्क्षण दुःखाश्रुओं की अदम्य-सी बहत॥३४॥
'साल पचास! अहा जी! साल पचास जी! अहा! अहा! सुन लो!'
ध्वनि बार-बार मुझ पर बरसत जैसे बारिश ही ले लो॥३५॥
वर्णित-राम-विवासन मंत्रजाप फिर बार-बार मैंने।
किया, तभी पलटकर जवाब दे दिया गतधैर्या स्मृति ने॥३६॥

सीता संग अविकृत ऐसे तव राम ने कर दिया था।
सीता बिन वन व्याकुल, घोर करुण-सा विलाप कर लिया था॥३७॥
अश्रु तुम्हारे विरह के, वृत्ति प्रीते! क्या न कोमल है?
यह शान है हृदय की, प्रीते! तुम बिन न चाह कुछ भी है॥३८॥
और पुनः-पुनः भी जब मैं करता रहा मना मन को।
मुक्त्यब्द कौन देखे! छोड़ न दे असंभव चाहों को॥३९॥
यावज्जीव सजा भी साल सिर्फ पच्चीस ही रहती।
पापकृत्तम को भी इससे ज्यादा अवैध कहलाती॥४०॥
था सिद्ध मैं भुगतने अधिकतम सजा कड़ी इस तरह की।
कुर्बानी अत्युत्तम जीवन के पच्चीस सालों की॥४१॥
कारानल में हुत मैं तिल-तिल जैसी जला-जला देह।
कार्य करूँ अत्युत्तम उद्धार करूँ मातृभूमि का गेह॥४२॥
द्वीपांतर में भी जो धैर्य बढ़ाता एक ही खयाल।
अंत-समय आ जाऊँ, मातृभूमि पर हो जाऊँ निढाल॥४३॥
'साल पचास!' सुनकर यह भी सारी उम्मीद खत्म हुई।
मृगजल में लहराई थी जो अंतिम लहर, समाप्त हुई॥४४॥
परचक्रदुर्विलासग्रस्त देश जब अंधकार भरा।
अपराध देशजागृति, परवशता का घोर नियम खरा॥४५॥
फिर भी सजा अमानुष यावज्जीवन समाप्त हो न सके।
चाहत हैं ये शायद, भुगत लूँ उसे पुनर्जन्म ले के॥४६॥
सजा की परिसीमा की परिसीमा![३] सुदुर्भगा देखो।
सपने में भी कोई शक्त न ऐसी कल्पना भी करने को॥४७॥
दीर्घ-आयु की कीरत-कृति भी कितनी स्मरण करी मैंने।
बंदीगृह में कितने महापुरुष-व्यक्तित्व याद किए मैंने॥४८॥
अस्सी साल उम्र में नवरोजी[४] हैं स्वराज्य कार्यरत।
वह कँवरसिंह[५] भी तो, जिसकी तेजस्विता सदा नमित॥४९॥
वह डिजरायलि[६] उसका प्रतिपक्षी[७] भी, सुवाक्-प्रभुवर जी।
जो मल्ल जूझते थे लोकसभा की विवाद-भू पर, जी॥५०॥
वे यदि अस्सी की भी उम्र में युवक-कार्य करते हैं।
क्यों फिर यह निराशा मेरे मन को व्यर्थ घेर लेती है॥५१॥
श्रीभाष्य[८] की गूँथी पावन-वाक्-कुसुम-शुभ्र-माला भी।
वह शुद्ध बुद्ध[९] भगवान् वीर पराभव करत भवार्णव का भी॥५२॥

वह बुद्ध! अहा! उसकी तृष्णाच्छेदक पवित्र स्मृति से ही।
आ जाती है लज्जा से मेरे मन की मौत सही॥५३॥
तृष्णासमर्थनार्थ विवाद करे जब विमूढ-सी आशा।
तृष्णाच्छेदक उसकी मारजित के स्वकीयसुख विनाशा॥५४॥
सत्कार्य पिपासा भी तृष्णा[१०] ही तो है! न सुखविलास।
तो देशकार्य-आसक्ति विरह से भी करे मन उदास॥५५॥
हैरान मैं हुआ जब धृति का नियम ढल गया नित्य।
गति दुःसहा हुई जब स्वीकार करी हार स्वयं त्वरित॥५६॥
आशा को दग्ध किया! तभी आश्चर्य एक घटित हुआ।
आशा की रक्षा से मंजूषा का प्रदीप्त जन्म हुआ॥५७॥
मन में उत्साह भरा; तरकीब चलाई कृपा महात्मा की।
तुकाराम[११] की, टूटी ताले की तब मुहर अहंता की॥५८॥
ढक्कन खुला निराशा का, अंदर था भरा सुखनिधान।
सर्वोपाधि-प्रभु जो और मोक्ष का था महाविधान॥५९॥
यह वैराग्य! विराश न अनुरागों का विकास[१२] ही सत्य।
चिंतामणि-सम चमके! चिद्गम्य मुझे महोत्सव ही नित्य॥६०॥
बंदी पचास न साल? पचास तो मात्र कल्पना है।
आभास-काल केवल, वस्तुस्थिति की न चीज कोई है॥६१॥
बंदी? वह तो अंदर-बाहर शिव को सदैव ही जीव की।
हावी जब तक तुम पर पंच-वृत्तियाँ तब तक न कहीं की॥६२॥
मुक्ति प्राप्य तुम्हें, है मन कारागृह तुम्हारा सदैव।
उसके बंदी हो तुम जुआ उठा लो यह भी स्वयमेव॥६३॥
पर यदि कर लोगे तुम चित्तवृत्ति का निरोध, समता से।
मन पर काबू करके, रख पाओगे खड्गवत् मियान से॥६४॥
हृद्गत ईश-प्रणिधानीय जानकर जनक की भाँति।
गुण मौजूद गुणों में, मैं केवल साक्षि-रूप ज्योति॥६५॥
जो सत्य परम शाश्वत वहाँ स्थापना मति की कर लोगे।
उपहास अन्य किस्मों की गतिविधियों का तुम कर लोगे॥६६॥
यदि मस्त हो जाओगे तुम परमानंद लेत मधुर क्रीड़ा।
तो एकांतवास अथवा अँधेरी कोठरी क्या करे पीड़ा॥६७॥
तुम हो अंतर्ज्योति! अँधेरे में क्यों तुम डरते हो?
सुख-दुःखों का साधन बाह्य न पर मन के भीतर जब हो॥६८॥

राजगृह में क्या है कमी? पकवान पाँच बनते हैं।
प्रासाद-तल स्फटिक के, कलश स्वर्ण के बनाए होते हैं॥६९॥
अभिमान से दमकते अनुदिन शत-सहस्र प्रणामों पर।
जिनके आदेशों का पालन करने सिद्ध सैन्य-दल तत्पर॥७०॥
पर यदि प्रासादों के निरखोगे सूक्ष्म अंतरंग कभी।
यदि तुलना कर लोगे पर्ण कुटी-स्थित महंत से भी॥७१॥
जान सकोगे तब तुम कि बाह्य निधि में रहे न सुखधन, जी।
रागोपहतिर्भोगान्नच औ' संतोष सौख्यसाधन, जी॥७२॥
पकवान पाँच ही हैं, छठा नहीं, इसलिए महाराजा।
कोई दासी अपनी साध्य न होती, अतः युवा राजा॥७३॥
स्वर्ण-कलश हैं, पर रत्नों के न हैं, अतः महाराजा।
किया न प्रणाम किसी सामंत ने, अतः युवा राजा॥७४॥
बनूँ हाय! कब मैं अधिराजा, इसलिए महाराजा।
बनूँ कब महाराज मैं ऐसी इच्छा करत युवा राजा॥७५॥
दुःखी सदैव!! राजा पागल भी हो गए असंख्यात।
कतिपय राजाओं ने कर लिया था स्वयं आत्मघात॥७६॥
वह भीमसिंह[१३], एलाग्याबूलस[१४] और शाहजहाँ[१५] भी।
माधव[१६]—जनमे थे ये अमीर परिवारों में ही न सभी॥७७॥
देखो इन चित्रों को—और देख लो चित्र तुकया का[१७]।
नित्यानंद हृदय में अविचल रहता सदैव मन जिसका॥७८॥
मैं जब था बंदी डोंगरि में[१८] तब सुनी यही वार्त्ता।
था सन्निध ही कोई संत-महात्मा कुटिया में रहता॥७९॥
अनगिनत लोग तिष्ठत बंद द्वार के निकट दिन-रात।
अंदर संत आत्मरत डोलत-झूमत अपने में मस्त॥८०॥
परमानंद कभी जब हृद में उनके समा न जा सकत।
संत नशे में नाचत, पैर तले कुसुम कुचल जात॥८१॥
भावमुग्ध भक्तों ने खिड़की से जो अंदर फेंके थे।
कुसुम वहीं पर सारे जमीन पर बस पड़े ही रहते थे॥८२॥
बंद मठी के अंदर लोग दूर से जो कुछ फेंक देते।
प्रातःकाल वहाँ जो झाड़ू करने आता उसे ही मिल जाते॥८३॥
मोती, मखमल, मेवा—ढंग से वहाँ यदि वह रख देता।
तो—'ले जाओ! क्यों जी, कूडा-कर्कट यहीं छोड़ जाता'॥८४॥

व्याकुलता से ऐसी विनती करके खाली कमरे में।
हो जाते महात्मा पुनः आत्मरत अपनी मस्ती में॥८५॥
दस साल वहीं पर वे कुटिया में बस अकेले रहे थे।
खाते, भूखे रहते, पहनाते या विवस्त्र रहते थे॥८६॥
एक भी खेत, जहाँ से न कोइ मंजुल विहग, या बरखा।
आकाश भी न दिखे, वर्ष-मास-दिन नहीं होत पक्का॥८७॥
जो नित्य तमसाच्छन्ना ऐसी मेरी कोठरी-कारा।
एकांतवासी न उतनी अथवा उतनी न तिमिरविहारा॥८८॥
उस कोठरि में अपरिग्रह[१९] देत लाभ को एक अति श्रेष्ठ।
कैवल्यानंदाश्रय विषयों के सुख-चैन से श्रेष्ठ॥८९॥
'विषमप्यमृतं'[२०] न 'क्वचित्' नित्य सुखद हो दुःख विष अभीष्ट।
कैवल्यानंदाश्रय विषयों के सुख-चैन से श्रेष्ठ॥९०॥
जो सुख बाह्य विषयों पर निर्भर हो, आखिर दुःख-प्रद।
सुख-सत्त्व विशुद्ध वही, जो आत्मरतिजन्य देत आनंद॥९१॥
यह सत्य हुआ प्रकाशित! धृति से मन पुनः उभर आया।
कैसा मुझे उदासी ने क्षण भर के लिए हताश किया॥९२॥
ऐसी लज्जा मन को लज्जित करता तनु-भय निकल गया।
मेरे मन ने मेरा ही पहला वह कथित याद किया॥९३॥
कथित किया था मैंने अपने लोगों का धैर्य बढ़ाने को।
जब सज्ज हुआ स्थंडिल में अर्पण करने अपने प्राणों को॥९४॥
'यदि निढ़ाल हो जाएँ शत-शत मत्सम, भारत ना दीन।
श्रीकृष्ण सारथी है जिसका रथ हाँकने स्वयं लीन'॥९५॥
हे मूर्ख! क्या रुकेगी पृथ्वी यदि तुम कारा में मरते।
उपहास करत मेरा, मेरा ही वचन याद जब करते॥९६॥
निश्चिंत फिर बैठा मैं, पल भर, यह देख कुपित हो करके।
नारियल छीलने को बतला गए 'नाइक' डाँट करके॥९७॥
करने जुट गया मैं शांत मन से, श्रम जो नियत किए हैं।
स्वे-स्वे कर्मण्यभिरत संसिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं॥९८॥
नारियल छीलते ही छिल जाते हैं हाथ अपने भी।
जितना नियत किया था, सोने जैसा तोल दिया फिर भी॥९९॥
दिन ढल गया तभी, सो नियम बनाया रखा स्वयं मैंने।
चित्तैकाग्र कर लिया, सोचा कैसे बीते छह महीने॥१००॥

ख्यात विवेकानंद प्रभु ठहरे जी सुमहावितृष्ण के।
शिष्योत्तम श्रीमान् भगवद् भूदेव रामकृष्ण जी के॥१०१॥
जड़वादी अश्रद्धा मति का कुछ विकल्प असत्य से।
हमको कपिल पतंजलि सूत्रित उस सुसूक्ष्म सत्यों से॥०२॥
जड़वास्तुशास्त्रभाषा में ही समझाया था सब उन्होंने।
योग न गौप्य, शास्त्र है, बतलाया था स्पष्ट तब उन्होंने॥१०३॥
इसी नियम को लेकर एकाग्रचित्त करने को, जी।
नियत श्रम निपटाकर, धोकर हाथ, सिद्ध मैं बन गया, जी॥१०४॥
योगिराज प्रभु का यह ग्रंथ श्री राजयोग खोला, जी।
शांत रस का प्याला दूर हटाने जी नहीं कर रहा, जी॥१०५॥
तत्रस्थ समाधिस्था उस मूरत को प्रणाम करके, मैं।
नासाग्र पर नजरों को स्थिर कर मन शांत कर रहा मैं॥१०६॥
मन तो बहु चंचल है, दुर्निग्रह साधुसंतन को भी।
जड़ जीव हम अनभ्यस्त ही, स्थिर हो न पा रहा एक पल भी॥१०७॥
प्रिय-अप्रिय जानत है, समझ न पाए विहित या हित को।
इधर-उधर दौड़त है, भरमाते बुद्धि को, इंद्रियों को॥१०८॥
दीवानी प्रकृति भी, मनुष्य ऐसा शबल-मन यदि है।
फिर भी दुष्कर भूसेवाव्रति उसके काबू में आता है॥१०९॥
कर्मयोग निष्काम है, एक विरासत सशक्त बहु मेरी।
लेश वशंवद होती है गति उसकी चंचल बहुतेरी॥११०॥
वह यदि यदा-तदा ही अन्यत्र कभी उछल जाता है।
तो भी अंकुश लगने पर लज्जाहत सजग होता है॥१११॥
धीरे-धीरे जब मन ध्यानस्थ बन वृत्तिविलय होता है।
तब सुखद आत्मरति का प्रसाद उसको प्राप्त होता है॥११२॥
मोहक-मोहक बहते शांत रस के झरने तब दिल में।
कैवल्यामृत निधि के तुषार उड़ते ध्यान मुद्रा में॥११३॥
तिल भर प्रसाद प्रभु जी! पर्याप्त मुझे त्वदीय चरणों का।
यदि शीतल करता है पल भर में भी त्रिताप शरणों का॥११४॥
होगा अवश्य वह तो अधरामृतपान तव कर आए।
हे केवल! कैवल्यानंदरूप जलस्रोत में नहाए॥११५॥
बंदी पुनः पुनरपि 'कस्मै देवाय' कहत! वही भाव।
लाभ-हेतु-स्तवार्हा सद्गुरु के यह चित्त लुब्ध हो जाए॥११६॥

श्रीरामकृष्ण जैसे सुनकर जड़वाद दिव्य हेतुओं का।
मोक्षार्थ ही अश्रद्ध के, सत्यार्थ यदि तर्क केतुओं का॥११७॥
अन्वर्थ नरेंद्र का जो 'ईश्वर नहीं है' कहत 'कहो; वरना।
आस्तिक सत्य, फिर भी मुझको प्रत्यक्ष प्रभु दिखा देना।'॥११८॥
हँसकर बोले, 'बाल! तुरंत देखोगे तुम ईश्वर को।
लो यह स्पर्श स्वीकारो, केवल सुनना न व्यर्थ बातों को'॥११९॥
केवल स्पर्शमात्र से वैसे प्रभु को दिखा सकेगा जो।
ऐसा गुरु यदि मुझको मिल जाए तो परम भाग्य समझो॥१२०॥
सकल गुरुओं के गुरु भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं बतलाई।
अमृता अमृत जैसी धर्मक्षीराब्धि से निकल आई॥१२१॥
भिन्नमता लगती है यद्यपि बहु भिन्न-दिक् प्रवाहों से।
रस-वाहिनी धरा पर, लगता निष्ठुर विरोध भी इससे॥१२२॥
दूरी शत-शत कोसों की अपने पंथ के ही अनुसार।
पर अचलाधिप शिखर पर, निश्चल कुछ पल रहते हैं सुस्थिर॥१२३॥
विस्तीर्ण आसमंतात् पृथ्वी का चित्रपट अशेषतया।
निहारता है जो भी विरोध कोई लगता न तनिक नया॥१२४॥
करके द्यौ स्तन के पय का प्राशन फिर विभिन्न मार्गों से।
प्रभुनियत कर्म करें जब शस्य-सुफल-जल-फूल-गानों से॥१२५॥
विभिन्न याग्यों भोग्यों से करके बहु रंजन स्वदेश का।
अंतिम एक ही समिंदर होता है प्रिय सबही नदियों का॥१२६॥
ज्ञान-भक्ति-कर्मादिक विभिन्न मत उसी तरह होते हैं।
जिसको उचित लगे उसके खातिर वही सुनिश्चित है॥१२७॥
जिसकी स्वर्णप्रभा से जीवों का उद्धरण होता है।
ऐसी 'भगवद्गीता' पढ़ने को जी सदैव चाहत है॥१२८॥
छाँव शाम की आवत पढ़ना मुश्किल हुआ, न दिख पाया।
फिर जो मानव-तनु को लेकर वैकुंठ सिधर पाया[२१]॥१२९॥
ऐसे तुकया के मधु-भक्ति-रसान्वित अभंग[२२] गाने को।
प्रारंभ किया मैंने, साथ-साथ ही चहलकदमी को॥१३०॥
बाँहों में, पाँवों में, जो थी बेड़ी उसी की ध्वनि को।
ताल बनाकर गाया मैंने कतिपय सुंदर भजनों को॥१३१॥
रात शुरू होते ही मंदिर से शुभ प्रभु दर्शन करके।
महिलाएँ घर अपने लौट, जलाती हैं शोले चूल्हों के॥१३२॥

हाथों में लेती हैं जब जूही-से चावल-दानों को।
करती हैं याद अपने हँसमुख शिशु के कोमल दाँतों को॥१३३॥
गुनगुनाति गीतों को, जल्दी-जल्दी चावल पकने को।
रखकर अभी उन्होंने पहन लिया हो न धूत वस्त्रों को॥१३४॥
ऐसी शाम की वेला रात में जो पूर्ण न घुल जाए।
निर्दीपा एकांते सभी तरफ घन-तिमिर भरी छाए॥१३५॥
प्रसृत कर किरणों को, मुझको केवल दिखा रहा तम को।
आसन्नमरण नाड़ी जैसी निस्तेज चमक है जिसको॥१३६॥
अपने बीच ही रहता, जिसको देख घूक भी न डरता है।
टिमटिमाता एक ही लालटेन कुछ दूर जल रहा है॥१३७॥
द्वार निकट आ बैठा, लोहे की थीं जिसे सख्त सलाखें।
आई हँसी मुझे, जब अँधेरे को घूरने लगीं आँखें॥१३८॥
दृक्शून्य तिमिर के भीतर नैनों को भी क्या दिख रहा था?
जो धर्म इंद्रियों का, उसका केवल पालन हो रहा था॥१३९॥
देखी मैंने सहसा तेजस्वी कुछ चमक अंधुक-सी।
झुककर देखा फिर से तो चमकी एक तारका जैसी॥१४०॥
ज्योतिर्विद जिस रीति निहारते हैं व्योम निरंतर जी।
सौ बार यत्न करके खोज कर लेत नभोगण, जी॥१४१॥
बाएँ, दहिने, फिर से झुककर, ऊपर, और खींचकर जी।
नलिका सु-दर्शन-क्षम करने की कोशिश करते, जी॥१४२॥
मैंने गरदन वैसी सौ बार उन्हीं सलाखों सहित।
टेढ़ी करके देखा, पर वह अटकी रहती थी सीमित॥१४३॥
जिस दरार से देखी चमक जहाँ से, उसी निशाने में।
नीचे मरोड़ बैठे फर्श पर, रखे हाथ सलाखों में॥१४४॥
ऊर्ध्वमुखाकुंचित तनु, प्रभु के सम्मुख भक्त नमन करता-सा।
कोठरि से नभ दिख दे स्पष्ट रूप, जो कोन बनाया ऐसा॥१४५॥
टुकड़ा नभ का छोटा दृश्य यहाँ से, लेकिन संगम जी।
सप्तर्षियों की मालाओं के उसमें देख, सोचा जी॥१४६॥
विराजत विरल ही तारक नील गगन का टुकड़ा, लगता है।
देवी अनंतता की चुनरी का पल्लो दिखता है॥१४७॥
भास्वान् कहलाते हो, हे भानो! विश्वचक्षु शोभत हो।
अपने तेजोबल से हमें सृष्टि का परिचय देते हो॥१४८॥

दृश्य अशेष धरित्री पर! जब ढूँढ़ती उषा युवती।
आते हो पूर्व दिशा में भास्कर! तुम तुरंत तेजव्रती॥१४९॥
प्रत्येक कीट, चींटी, मशक, रज:कण सूक्ष्म जो भी हैं।
बनते दृग्गोचर, जब तेज तुम्हारा उन्हें दिखाता है॥१५०॥
संशय किमपि तथापि छिपा रहे हो सहस्र तुम जैसे।
ब्रह्मांड मनुष्यों की नजरों से, अपनी इच्छा से॥१५१॥
अकृत्रिम कृतज्ञ पूर्वज दिवस जब कभी समाप्त होता है।
रात अनंतर आती, तब सबकुछ और दिखता है॥१५२॥
दिखाकर एक ग्रह को, छुपा रहा है शायद बहुतों को।
जो श्रीकृष्ण मुख सम दिखाकर विश्वरूप भक्तों को॥१५३॥
कौन यथार्थ तिमिस्र! जिसको दृक्साफल्य दान करते हो?
सुनहरी तुम जैसी या दिव्य श्यामल कांति छिपाते हो॥१५४॥
संशय है मन में जो, दिनकर! कब उगता है सच्चा जी।
उदयोत्तर या अस्तोत्तर तुम्हारे दिन खरा है जी॥१५५॥
तुच्छ उपग्रह जो है स्वयमपि परभुक्त धरती का।
दौड़त दिन-रात उसी के चक्कर में, दास है दासी का॥१५६॥
उच्छिष्ट सूर्यकिरण को चुरावत है भूमि की दया पर, जी।
शान दिखावत है फिर अपना सित छत्र उठाकर, जी॥१५७॥
निर्जीवन नीरस निस्तेज कलंकित तनु है यह जिसकी।
ऐसे शशि को कहते हैं 'तारापति!', पर अनंत आभा की॥१५८॥
दुनियाएँ सात आप जो, सप्तर्षियो, आपको भी 'तारे'।
कहते हैं, ऐसे ही बुद्ध्यंधों के नगर में नजारे॥५९॥
क्षुद्र धरा पर स्थित मैं अत्यंत क्षुद्र एक कीटक हूँ।
निरखत आपके वदनों को जो एकाग्र यहाँ बैठा हूँ॥१६०॥
क्या देख रहे हैं आप? अन्यथा किरणों के घोड़े।
ऐसे दौड़ा कर ही आपने पहरे ये तोड़े॥१६१॥
कोई न मदद कर सके, मुझसे ना कोई बात करे।
मेरे जलते दिल को सहानुभूति का स्पर्श न कोई करे॥१६२॥
दीवारें दीवारों पर, ताले तालों पर भी लगते हैं।
भरमाकर सबको ही आप इस तरह आकर मिलते हैं॥१६३॥
ऋषियोग्य ऋषीश्वर जी! उपकृत हूँ मैं, कितने गुण गाऊँ।
दीनदयालु हैं जी आप, आपकी महिमा मैं गाऊँ॥१६४॥

बंदी में देख मुझे क्या दिल आपका दुखावत है?
दिल व्याकुल होता है, ऐसी क्या आपकी भावना है॥१६५॥
अथवा बहत हवा है, ढोती है सुगंध सुमनों की।
निरपेक्ष भला करना अथवा है वृत्ति सुमनों की॥१६६॥
वैसे क्या अनजाने, अथवा पूरे ज्ञान के ही साथ।
हित करते हैं जग का जलकर आप अग्नि में सात॥१६७॥
सप्त अग्नि में जलकर क्या स्वर्ग में साध्य कर रहे हैं?
अथवा ब्रह्मचर्य के पालन में कोई उपाधि नहीं है॥१६८॥
फिर भी रविमाला यह जैसे तम को दूर करती है।
किसके तम को आपकी मालाएँ सात दूर करती हैं॥१६९॥
अथवा ऋषियों जैसे प्राचीन आप भी ऋषि होकर भी।
भोग रहे हैं स्त्री का आलिंगन सुख गृहस्थ रूप सभी॥१७०॥
पांडव जैसे आप भी क्या भोगत हैं एक ही ललना?
या हरेक की इक राम सम सती अलग है ललना॥१७१॥
जिसकी एक पत्नी[२३] यात्री उसकी समुद्र रशना को।
छूकर गर्भस्थापन करता है, न अन्य ललना को॥१७२॥
सद्धर्मभीरु भास्कर इस व्रत का करता है पालन, जी।
आपकी एक ही पत्नी, सप्तर्षियो, वैसा न कोई, जी॥१७३॥
यद्यपि संयमशील है, अनेक स्त्रियाँ क्यों आशिक उस पर?
क्या आपके यहाँ भी अनेक पृथ्वियाँ आशिक सूरज पर॥१७४॥
क्या सेतु विमानों का उस पृथ्वी पर बनाया गया है?
जैसे प्रेम के लिए, विजय के लिए, राम जाता है॥१७५॥
क्या मोर वहाँ भी हैं रंगबिरंगी कलाप फैला के।
नाच करत? क्या वन हैं कुंजों से भरे लताओं के॥१७६॥
क्या मृगजल के पीछे हिरन मनोहर ऐसे धावत हैं?
क्या मानव वहाँ के ऐसे ही बहु सुखानुगामी हैं॥१७७॥
विद्युत्शास्त्रविद्या जानत हैं क्या लोग वहाँ के भी?
सागर में क्या तैरत हैं ऐसी बाष्प-नौका भी॥१७८॥
अथवा उन लोगों की क्या गति विज्ञान में हमसे है?
क्या उनके बच्चे भी बादल तक विमान ले जाते हैं॥१७९॥
रस, रूप, गंध, शब्द, स्पर्श आदि का अनुभव करते हैं?
क्या ऐसे हम जैसे मानव उस भू पर रहते हैं॥१८०॥

उत्क्रांतिगति से अथवा जो इंद्रियरस अनुभव करते हैं।
इन पाँचों से ज्यादा, जो बिखरे यत्रतत्र होते हैं॥१८१॥
हम न जानते हैं, लेकिन जो भी इन्हें जानते हैं।
रहस्य सृष्टि के सारे, क्या वे मानव वहाँ उपस्थित हैं॥१८२॥
सूर्य से हमारी पृथ्वी जितनी दूर है, न उतनी।
मंगल समीप जितना सूर्य के समीप भी न उतनी॥१८३॥
ऐसी धरा आपकी क्या दोनों के बीच भ्रमती है?
क्या विशिष्ट गर्भ तेजस्वी वह आपसे धारण करती है॥१८४॥
अश्रुत, अतर्क्य, अद्‌भुत, उत्क्रांति क्रम धारण करता है।
क्या विश्व आपका पूरा आमूलात् भिन्न होता है॥१८५॥
'विमानमय बनवा दो आसमान में लीलापुर कोई।'
बाजी लगा रही जो ललना उसको प्राप्त करे कोई॥१८६॥
पवनाकर्षित सत्त्वाहारी[२४] जब वे जीव सब बनते।
विलुप्तहत्या होकर भू-जल-गगन-भूतमात्र रमते॥१८७॥
करके संगठन भी एक राष्ट्र में एकराट् प्रभु जी के।
भूतदया प्राप्त्यर्थे सभा बना के मंदिर में विभु के॥१८८॥
मृग, मत्स्य, सिंह, मूषक, नाग, वानर, श्येन, चटक या नर भी।
ना पंजों के जरिए, पंचों से करत निर्णय सभी॥१८९॥
मंजुलता के साथ ही क्या संगीत वहाँ सुगंधमय भी है?
अथवा चंदनवन में क्या गंधित गीत खिलते हैं॥१९०॥
क्या गुलाब बोल सके? अथवा खिलते गुलाब मनुजों पर?
बताइए सप्तर्षियो! क्या-क्या अद्‌भुत चीज है वहाँ पर?॥१९१॥
यज्ञीय अश्व जैसा रण में अधृत वैसी नभ में है।
कितनों को चकमा के किरण यहाँ पहुँच पाई है॥१९२॥
किरण आपकी ऋषियों, निकली थी कब आपके यहाँ से?
मैंने जब देखी तब आभा उसकी विलुप्त ही यहाँ से॥१९३॥
अति तेज दौड़ने वाले घोड़े चुनकर वायु के सु-तेज।
दौड़ाने अति तेज ही पीठ पर वनरूप लगाए तेज॥१९४॥
चाबुक हजार-फल का, मारा पूरा जोर से तडाड।
फिर भी जिनकी तुलना में बेचारे मच्छर या काड॥१९५॥
ऐसे भी घोड़ों को, सप्तमुखों को, हे प्रकाश! तुम छोड़ें।
बिलकुल पानी पीने को भी समय न गँवा तेज दौड़े॥१९६॥

पल में पार करेंगे लक्ष-लक्ष कोस भी यदि बेचारे।
फिर भी·शत-शत वर्षों तक पहुँच न पाएँगे वे सारे॥१९७॥
ऐसे नभ के प्रांगण में तप करते पीकर आतप, जी।
हे सप्तर्षियो! तुम्हारी तरह कभी अन्य ऋषि न तपते, जी॥१९८॥
फिर जो प्रत्यावर्तित सदियों पूर्व प्रकाश धरती का।
वह आज ही अहा! उन तारों पर स्थित है, निश्चय पक्का॥१९९॥
यदि होगा, छायालिपि का तुम ऋषियो! प्रयोग कर देखो।
जो उन किरणों से देख सकेगी तत्कालिन पृथ्वी को॥२००॥
हड्डियाँ ढूँढ़कर, खोदकर जमीन और शुष्क नदियाँ।
भग्नसेतु, चट्टानें, करत इकट्ठा फटी-टूटी चिट्ठियाँ॥२०१॥
ये इतिहासान्वेषक पागल क्यों कष्ट उठाते हैं?
तर्क-वितर्कों को लेकर सत्य को विनष्ट कर देते हैं॥२०२॥
होते हुए बहुत ही उत्तम सा यह उपाय, छोड़ उसको।
सुविधा अद्‌भुत सीधी दिखा सके जो समक्ष घटना को॥२०३॥
प्रत्यक्ष दिखाएगी, जैसे झाँकी तत्रस्थ घटनाओं की।
अनुमान बनाने के लिए जरूरत नहीं घट-पटों की॥२०४॥
केवल विमान तत्क्षम[२५] लेकर भरते उड़ान आप सभी।
बीच वायुमंडल के, अथवा उसके परे शून्य में भी॥२०५॥
केवल यदि सपरिवार भी निकलेंगे आप जनहितार्थ।
अयुताब्दलभ्य तारों तक पहुँचेंगे पथज तनुज के साथ॥२०६॥
तो प्रत्यक्ष देख ही लो कैसे झाँसी वाली रानी ने।
कैसे युद्ध स्वधर्म का किया युद्ध-कुशल लक्ष्मी ने॥२०७॥
दूरस्थ उसी से भी तारों से तुम स्वयं देख लो, जी।
पाषाण द्रवित हो जाएँ ऐसी सुन लो भूप-विनति, जी॥२०८॥
'दो बंधु! दान जीवन दे दो!' ना सुनते हाय! प्रखर-सी।
लालच के कारण ही भारत बंधु को, बात यह कैसी॥२०९॥
वह मारे, जो श्रीमान् भारत नृपधर्म मूर्त प्रकट हुआ।
सुश्लोक राजयोगी योगीराजा अशोक[२६] सिद्ध हुआ॥२१०॥
निर्मल हिमशीतल यद्‌वचनों से चित्त सुशांत बने।
भेजे ईश्वर जिसको, ऐसा वह देवदूत ही बने॥२११॥
उस शांत-दांत-भगवद्-यश-पावन ईसा के चरणों को।
करके उस महात्मा का पुनरुत्थान स्वयं पुनः देखो॥२१२॥

जब तक मानव जीते हैं जग में इस, तब तक यश जिसको।
देखो गाते अपना रचा इलियड स्वयं ही होमर को॥२१३॥
माक्षिक[२७] देशे जाकर सचमुच क्या भारतीय रहते हैं।
श्रीरामचरण कमले क्या उस देश के भ्रमर रमते हैं॥२१४॥
बीस सहस्र वर्षों की गणना कर, उसकी किरण अभी।
होगी किन तारों के जग में प्रस्तुत सोचकर सभी॥२१५॥
उन तारों के ऊपर जाकर फिर देख लो तसल्ली से।
पावन आर्यभूमि में आर्यर्षि लोग रहत थे कब से॥२१६॥
क्या उत्तरीय ध्रुव में देवासुर बार-बार लड़ते थे?
मंथन करते? पर तुम मोहिनि के रूप में न बनो रमते॥२१७॥
क्या वह हिमनिधि[२८] अथवा वह हिमकर था मूल लोक पितरों का?
प्रभव-प्रलय भी देखो, जीवाणुओं[२९] तथा हि अन्यों का॥२१८॥
अन्यों का अर्थात् जो भौमिक थे! न संभव सभी का।
विश्वेतिहास-लिप्से! तुम्हें शाप है अकाट्य विकलता का॥२१९॥
कल्पविमानों में भी तुम तारों की सीढ़ियाँ बनाकर भी।
जाओगी ऊँचाई पर ढूँढ़ती हुई दूर कितनी भी॥२२०॥
इतिहास-पृष्ठ पहला मिलेगा कभी न देखने तुझको।
'आरंभ दूसरे पन्ने से' है यह अभिशाप सदा इसको॥२२१॥
फिर जो कह डालेंगे कहते हैं जो मनचाही बातें।
इतिहास-कथन ना! उपहास-कथाएँ लोग सब रचाते॥२२२॥
जैसेकि विश्व में तुम जैसे पहले अनंत ये बनाए।
तारे प्रभु ने रंजन करने मानव का सभी बनाए॥२२३॥
मृग-मत्स्य बनाए क्योंकि हम उनको जब चाहें तब खा लें।
फिर क्यों शेर बनाए, क्या इसलिए कि वे हमें खा लें॥२२४॥
विस्तीर्ण बने सागर नमक-भरे, जो हमें नमक देने।
ऊँचे पहाड़ औ' शीघ्रगती नदियाँ, जंगल घने॥२२५॥
कोशिश करते सारे कि हम उनका भोग करें सदय।
हम-बिन सृष्टि व्यर्थ! हो जाएगा शीघ्र तभी प्रलय॥२२६॥
चमगादड़ जैसे पैरों को उल्टे लटकाकर अपने पर।
सोचत है मेरे पग ही तोल रहे हैं यह सारा अंबर॥२२७॥
अपनी महानता के मोहजाल में वैसे फँसते हैं।
किंवदंतियों को धर्मकथा मान जो मूर्ख बैठे हैं॥२२८॥

वे न देखते हैं, भू को यदि पापी किसी दुष्टता से।
पकड़ कुचल भी डाला गया धधकते पुच्छल तारे से॥२२९॥
तो इस विश्वगोल में उतना भी ना घाटा हो जाए।
जितना खो जाने पर एक मशक, पक्षिकुल में हो पाए॥२३०॥
हम क्या हैं! जिसको अचला विश्वंभरा स्थिरा धरती।
कहते हैं उसकी यह हीन दशा! फिर क्या सूर्य की स्थिति?॥२३१॥
यह सूर्य हमारा, जिसकी सुभगा त्रिविक्रम ख्याति।
जिसकी वेदों ने भी पूजा करके उतार दी आरती॥२३२॥
वे नारायण महान्? पर बस नभ में जो दिखती है, जी।
यह दिव्य वियद्गंगा, उसके उड़ते तुषार हैं ये, जी॥२३३॥
जिसकी गणना करते-करते ऋषियो! होत बधिर मति।
ऐसी दूरी पर जो अभी विराजत है आपकी स्थिति॥२३४॥
वहाँ यदि तुम पर भी जो दूरबीन को लगा दिया जाए।
ज्योतिर्विद वहाँ भी गिनती में फिर से लग जाएँ॥२३५॥
इतनी दूरी पर भी, पुनरपि और दूरी पर भी।
होंगे उनको दिखनेवाले कतिपय तारे कितने भी॥२३६॥
उससे ऊपर? ऊपर? हे प्रभु! ढालकर दिव्य हेम जल।
एक पर एक ऐसे कितने तुमने बना दिए अतल॥२३७॥
अनगिनत होने पर, अंतिम जो है, उसके ऊपर भी?
नैन मूँदकर पूछत-पूछत, ना समाप्त प्रश्न कभी॥२३८॥
विश्वस्थिति सीमा का जब हो जाए विस्मित-सी मति पर।
संस्कार असीम, यदि उसे सीमित माना काव्यकृतियों पर॥२३९॥
तो किमपि तदर्थक यह मिल जाए शब्द एक हताश तदा।
अनंत! अनंत!! अनंत!!! कहते जाएँ अनंत ही शतधा॥२४०॥
वल्मीक तुच्छ भू का, मानव हैं चींटियाँ यहाँ क्षुद्र।
तुच्छतम होकर भी रहते हैं खुश अपने वैभव पर॥२४१॥
क्षणिक, क्षुद्र कितने! आशा, हर्षोल्लास, शोक हमरे।
बूझेंगे इक दिन ये ऋषियो! सूरज सात भी तुम्हारे॥२४२॥
प्राणप्रिय प्रियतम को मरते देख अंतिम क्षण में।
अथवा योगयुक्त बन भगवद्गीतार्थ सोचते मन में॥२४३॥
उपरति ना बन पाए यदि मन में, मान लो, किसी जन के।
आशा की बातों से ऊब न जाए हृदय भग्न होके॥२४४॥

आश्चर्य न होता है कदापि मुझको; पर इसपर होता है।
कि जिन्होंने ज्योतिर्विधा के मत पूर्ण रट लिये हैं॥२४५॥
जो विश्वदर्शनों के आदी हैं रोज, वे विचारक भी।
संसार-जाल में फँसते हैं कीटक-से ज्योतिर्विद भी सभी॥२४६॥
ना ये तारे! ना वे वेद! दिव्य ये प्रखर अक्षर सभी।
दिशारूप[३८] पत्रों पर प्रकट हुए अपौरुषेय अभी॥२४७॥
हे दिव्य वेद-रूपो! अर्थ-स्फुरण क्या होता है तुमको?
अथवा नरसंवेदनशीलता सदा हेत अर्थ तुमको॥२४८॥
क्या फिर मगज पिंड में ब्रह्मांड का लय तेजरूप अनंत?
अंत[३१] मन में उसका जिसको यह मन मान ले अनंत॥२४९॥
नैन बिना न सूरज, तो फिर सूरज बिना नैन कैसे?
बीजवृक्ष की पहेली सुलझाएँगे फिर कभी, न ऐसे॥२५०॥
ये तेजोमय सागर बन जाएँगे क्रमशः पेयों के।
पृथ्वी, प्राणी, मानव संज्ञावत् वा स्वयं हि धेयों के॥२५१॥
हम मनुजों की यह पार्थिवता जूझती विकारों से।
तेजोमय राशि न क्यों बन जाए व्युत्क्रम कोटि से॥२५२॥
तुम जैसों का हममें, हम जैसों का तुममें भी रूप।
रूप-द्वैत मिटा के प्रकट होत है सत्त्व एकरूप॥२५३॥
सप्तर्षियो! इस तरह साथ तुम्हारे तत्त्ववाद हो जाए।
यह बाष्पबिंदु मेरा विश्वसिंधु में विलुप्त हो जाए॥२५४॥
वसंत ऋतु में बीतें दिन वैसी बीती रात कारा की।
आज्ञा अब दी जाएगी पहरा[३२] बदलते ही सोने की॥२५५॥
अंधेरी कोठरि के औ' हृद् के तिमिर को हटाने को।
मालाएँ सप्त तुम्हारी दे दें विश्वदीप्ति मुझको॥२५६॥
रुद्राक्षों की भाँति जिसके बालों में ये मालाएँ।
उस व्योमकेशप्रभु को अर्पित मेरी ये सब कविताएँ॥२५७॥

(रचनाकाल, १९११)

टिप्पणियाँ : १. संत मुक्ताबाई, अर्थात् संत ज्ञानेश्वर की छोटी बहन। बालभक्त नामदेवजी ज्ञान के बिना केवल ईश्वर की सगुण भक्ति में संतुष्ट थे, तब मुक्ताबाई ने उन्हें 'कच्चा घट' कहा था।

२. 'दधतो मंगलक्षौमे वसानस्य च वष्कले।
दद्दशुर्विस्मितास्तस्य मुखरागं समं जनाः॥' — कालिदास

३. 'आजीवन कारावास' अथवा 'उम्र कैद' का मतलब था पच्चीस सालों का कारावास। परंतु दो उम्र कैदें गिनकर पचास साल का काला पानी जैसी सजा उस समय भी एक अश्रुतपूर्व बात थी। सजा की परिसीमा उम्र कैद। परंतु यह थी उम्रकैद पर और उम्र कैद। परिसीमा की परिसीमा।
४. दादाभाई नौरोजी।
५. सन् १८५७ के क्रांतियुद्ध के स्वतंत्रतावीर राजा कुँवरसिंहजी अस्सी साल के होते हुए भी अतुल वीरता के साथ लड़े। अनेक रणों में विजय पाकर समरांगण में धराशायी हुए।
६. डिजरायली।
७. उनके प्रत्याशी ग्लैंडस्टन।
८. श्रीरामानुज अस्सी साल की आयु में प्रचार कार्य करते थे।
९. भगवान् गौतम बुद्ध। ये भी अस्सी साल जिए। उसी तरह मैं भी जीऊँगा तथा यह पचःस सालों की सजा भुगतकर मातृभूमि में देहत्याग करने के लिए ही क्यों न हो, लौट जाऊँगा, यह भावार्थ।
१०. समर्थ रामदास कहते हैं, 'स्वार्थ तो चला गया, पर परमार्थ की उपाधि चिपक गई।'
११. संत तुकाराम।
१२. अनुरागों का विनाश असल में विद्वेषयुक्त है। सच्चा वैराग्य अनुरागों का विकास ही है।
१३. राजपूत राणा, जो पागल बना और मर गया।
१४. रोम का पातशाह।
१५. मुगल सम्राट्।
१६. सवाई माधवराव पेशवा, जिसने अपनी ही हवेली में छज्जे से छलाँग लगाकर आत्महत्या कर ली।
१७. संत तुकाराम।
१८. मुंबई की डोंगरी जेल।
१९. 'अपरिग्रह प्रतिष्ठायाम् सर्वरत्नोपलाभः।' —योगसूत्र
२०. 'विषमप्यमृतं क्वचिद् भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया।' —कालिदास
२१. संत तुकाराम सदेह वैकुंठ गए, ऐसी जनश्रुति है।
२२. मराठी संत कवियों ने अपने अनुभवों को ग्रंथित करने हेतु निर्मित काव्यविशेष।
२३. सूर्य की पत्नी पृथ्वी। वही उसकी समुद्र रशना को अपने कर से स्पर्श करके उसके भीतर भूतमात्र का गर्भ स्थापित करता है।
२४. वायु से तत्त्व आकृष्ट करके उसी का आहार करनेवाले।

२५. उस कार्य के लिए सक्षम, अर्थात् सप्तर्षि तक तथा आगे भी उड़ान भरनेवाला विमान।

२६. देखो, क्या यह बात सच है कि अशोक ने अपने भाई का वध किया?

२७. मेक्सिको देश में हिंदुओं के निवासों को देखो। कहते हैं कि इन बस्तियों में रामलीला के महोत्सव मनाए जाते थे। देखो, क्या यह सच है।

२८. हिमनिधि : हिमरूप उत्तर ध्रुवीय समुद्र।

२९. मनुष्यों के प्रभाव की खोज करते-करते मूल जीवाणुओं की मूल उत्पत्ति तक सबकुछ देख लो।

३०. दिशारूप पत्रों पर नक्षत्र रूप चाँदी के अक्षर सच्चे अपौरुपेय वेदों को प्रकट करते हैं।

३१. तो क्या जब तक मन है तब तक विश्व है? क्या मन के बाहर यह सारा विश्व नहीं है?

३२. जेल में रात को ज्यादा देर तक जागने नहीं देते। जब पहरा बदला जाता है, तब सोना अनिवार्य होता है।

चंदामामा चंदामामा! थक गए क्या?

(**परिचय :** अंदमान के कारागृह में कमरे बदलते-बदलते एक बार सावरकरजी का वास्तव्य ऐसे कमरे में रहा कि रात को चंद्रलेखा दिख सके। बहुत दिनों के बाद सहसा ही चंद्रलेखा देखकर जो मन-ही-मन हर्ष हो गया, उसके नशे में चंद्रमा को निरखते हुए वे निश्चिंत रूप में कितनी देर तक छोटे कंबल पर लेटे रहे थे। उस समय, बचपन में घर में तथा ननिहाल में चाँदनी में बचपन का वह 'चंदामामा-चंदामामा' का गीत गाते हुए जो खेल उन्होंने खेले थे, उनकी नन्हीं याद उन्हें आने लगी। कितनी देर तक उस अकेलेपन के बीच यह 'चंदामामा-चंदामामा' का बचपन वाला गीत गुनगुनाते हुए कारागृह की भीषण रात्रि में जो क्षणिक मनोरमता महसूस हुई, उसी को इस गीत में गाया है।)

: १ :

जेल में तब मैं वैसा। स्वर्ग में मिलत सुख जैसा।
शाम को बंदियों को वे। कोठरियों में बंद करके।
अधिकारी कारागृह के। घर जाते थे लौट के।
रात में फिर रक्षक ये। आते-जाते ही रहते हैं।
दुष्ट सपने हवा में ये। आते-जाते रहते हैं।

पत्थर की भीषण कारा। पचा लेती भोजन सारा।
कभी बीच में ही चीख। नींद मारत है देख।
फिर भी इस कारागृह में। निर्जन वन सम शांति रहे।
लोहे की मम कोठरि में। थीं सलाखें, उनके तल में।
डाल कंबल अपना, मैं। लेट गया, तो अंबर में।
सहसा मैंने जब देखा। दमकत थी तब शशिलेखा।
'शशिलेखा! रे, शशिलेखा'। मन में हर्ष तभी छलका।
बजा तालियाँ, खुद को ही। बता दिया इस वार्त्ता को।
छह मासों में भी न कभी। चंद्रमा न दिख पड़े तभी।
वर्ष कौन सा, पता नहीं। तिथि फिर कौन बताए सही?
होगी पंचम या चौथ की। कला सुकोमल चंदा की।
पहली बार किसी ने भी। देखा होगा चंद्र तभी।
हर्ष नहीं होगा इतना। मैंने पाया तब जितना।
तदा बीच बुद्धि-मन के[१]। हुई बातचीत यूँ करके।

'हर्ष बनत शोक ही अंत में।
शशिलेखा न दिखेगी नभ में।'

'जब न थी तब व्यर्थ कभी। चाह रखी थी मैंने भी?
फिर जब यह अब दिखती है। तब हर्ष न क्यों छलकता रहे?'
जेल में तब मैं वैसा। स्वर्ग में मिलत सुख जैसा।

: २ :

लेकिन हर्ष की वे लहरें। बातचीत को करत परे।
ले जाती थीं दूर कहीं। ऊँचाई पर बहुत सही।
धाराएँ घुलमिल सबकी। जहाँ नील[२] औ' अनिलों की[३]।
मधुर स्मृति की, विस्मृति की। प्रमोद की औ' कौमुदि की।
मधुमखियाँ ज्यों छत्ते में। अपने लघु-लघु नीड़ों में।
कल्पनाएँ मधु वैसी। शहद हर्ष का खाती-सी।
शत गाने मेरे सिर[४] में। गुनगुनाती हैं मस्ती में।
शहनाइयाँ, पर शत-शत। समा सकत ना जो संगीत।
वह गीत कहत मेरे दिल में। 'ततः कुमुदनाथेन' जिसमें।
तान[५] कोयल की कैसे। कहे स्वप्न बुलबुल जैसे?
'भ्रमण, परावर्तन' आदि सभी। कुछ बोझिल संज्ञाएँ भी।

गुलाब पुष्प कैसे खिलते। ऐसे समझाए जाते?
मोहकता उस सुगंध की। न बुद्धि की, बात है दिल की।
दिल की भाषा अपनाओ। कौमुदि की कविता गाओ।
हास्य मधुर औ' आँसू भी। मूक बोल हैं वहाँ सभी।
चिटकीली औ' मिटकीली। छंद-वृत्तियाँ[६] मधुर भली।
दिल की भाषा सरसाए। कौमुदि की कविता गाए।
गाए कविता कौमुदि की। चंदा-चंदामामा की।
हिमजल जब भी जम जाता। चंदामामा बन जाता।
उसको स्पर्श करे जैसे। शब्द हृदय के भीतर से।
आया याद, लो, खुश रहो। 'चंदामामा, थक गए हो?'

वह कौमुदिवाली।
हो-हो-ही-ही वाली।
कविता मतवाली

और वे गीत! बुलबुल के स्वप्निल गीत!
'चंदामामा, चंदामामा, थक गए क्या?
नीम के पेड़ में छिप गए क्या?'

: ३ :

हँसता हृदय, हँसता है मन। कैसा, क्यों, यह पूछे कौन?
खाजा बचपन का मीठा। कौन देत है, किसे पता!
जैसे जननी का स्तन है। वैसा चंद्र 'हमारा' है।
फिर गाने में कैसी हया। 'चंदामामा, थक गए क्या?'
चित्र स्मृति के, बिजली-से। चमक दमक करते फिर से।

'चंदामामा, चंदामामा, थक गए क्या?
नीम के पेड़ में छिप गए क्या?'

नीम का पेड़ डेरेदार। चलचित्र मन-पटलों पर।
बीत गया बचपन मेरा। वही पुराना घर हमरा।
आँगन सुंदर जिसमें था। दादी का मधु प्यार भी था।
वहाँ बचपने खेल सभी। शाम के समय कभी-कभी।
भाई-बहनें सब बैठते। हँसते, गाते या रूठते।
आँगन की पूरब में था। नीम सुंदर-सा रहता।
पत्ते उसके हिलते थे। लहरें जैसे दिखते थे।

सहसा उनमें चमकत थी। एक शाम को देखी थी।
धारा बहती चाँदी की। लेखा नाजुक चंदा की।
तभी सभी सहसा उठते। हम बच्चे गाने लगते—

'चंदामामा चंदामामा, थक गए क्या?
नीम के पेड़ में छिप गए क्या?
नीम का पेड़ डेरेदार।
मामा की हवेली शानदार।'

'मामा की हवेली' अब मन में। बिजली-सी दमके क्षण में।
मामा हमारा प्यारा था। ननिहाल का राजा था।
उसकी हवेली प्रकट हुई। यादों से जो गंधमयी।
ननिहाल के प्यार का। माया का औ' ममता का।
अस्फुट-सा स्मृतिपुंज अभी। उसमें लेकिन कहीं, कभी।
पुष्पगुच्छ इक छिपा हुआ। बिन-देखे परिमल आया।
कौमुदि का मधु अनुपान। गीतों की सुमधुर तान।
मन के पटलों पर ऐसे। स्मृति चित्रों के थे जलसे।
देखत उनको, सुनत तथा। रंग जमा के यथा तथा।
पुनः-पुनः सुख मैंने पाया। 'चंदामामा थक गए क्या?'
लेकिन क्यों मन में मेरे। बार-बार इक बात उभरे।
हर्षमहोत्सव के भीतर। इसमें रहता स्वाद मधुर।
तानों के, रसपानों के। भीतर सब क्रीड़ाओं के।
सोने के धागे से ही। एक स्मृति गूँथी-सी रही।
जो उन हर्षोल्लासों में। मधुस्रव कौमुदि-धारा में।
अनजाने ही गूँजत थी। एक चेतना भर देती।
रूप न अब कुछ प्रकटत है। केवल अस्फुट स्मृति ही है।
आँगन की मधु कौमुदि में। दादी को भाते मन में।
ऐसे गीतों को गाते। हम सब बच्चे बैठे थे।
कोई बाला हंसमुख-सी। शरारती थी प्यारी-सी।
बीच में ही गाती क्या? 'चंदामामा थक गए क्या?'
उसकी शायद यही स्मृति। जी हाँ, उसकी ही स्मृति!
सुखावत थी वह हँसती-सी। आज शशिकला यह जैसी।
दोनों एक-समान ही हैं। हँसती है, और भाती हैं।
लेखा नाजुक चंदा की। लड़की लालिम होंठों की।

(अंदमान, १९१२)

टिप्पणियाँ : १. बुद्धि ने कहा, 'जनम से तुम दुःख के साथ बँधे हुए हो, सो क्षणिक हर्ष में लिप्त मत हो जाओ, अन्यथा आगे चलकर शोक होगा।' मन ने उत्तर किया, 'ऐसा क्यों? इसीलिए न कि हर्ष की शशिलेखा झट से अदृश्य हो जाएगी? किंतु दुःख की अनंत अँधेरी रातें जो मैंने बिताईं और बिता रहा हूँ, उनके दरम्यान हर्ष की शशिलेखा के लिए, वह नहीं थी इसलिए, ज्यादातर चाह करते कहाँ पड़ा था? न होगी तो न सही, परंतु यदि सहजता से दिख पड़ी तो फिर उस हर्ष की शशिलेखा को, वह सहजता से दिख रही है तब तक, क्यों न हँसते-हँसते निरख लूँ? 'नहीं' वाले सुख के लिए रोते न बैठा जाए, उसी तरह 'है' वाले सुख के बीच भी रोते न बैठा जाए।'

२. कल्पना के आसमान में स्थित नीले रंग के।

३. वायु के।

४. छोटे-छोटे मज्जापिंडों के भीतर वे भावनाएँ रहती हैं, जैसे कि छत्ते के घरों में मधुमक्खियाँ।

५. वैसे हर्ष को मन सहजता के साथ अभिव्यक्त करने लगा। वह सर्वप्रथम 'महाभारत' के 'ततः कुमुदनाथेन कामिनी गण्डपाण्डुना। नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलंकृता।' श्लोक में अभिव्यक्त हो गया। परंतु उस गंभीर वर्ण के मोटे सूत्र में गूँथते समय वह कच्चा हर्ष फूल की भाँति मसला जाने लगा। उसी प्रकार पृथक्करणीय बुद्धि भी 'चाँदनी क्या है' विषय पर शास्त्रीय व्याख्यान देने लगी। पृथ्वी का 'भ्रमण', किरणों का 'परिवर्तन' और बुलबुल के गाने का स्रोत ढूँढ़ने के लिए उस पक्षी का ही विच्छेदन, यदि कोई करने लगा तो उससे उसका मधुर गीत जैसे कत्ल किया जाए, उसी तरह विश्लेषणात्मक बुद्धि के द्वारा वह हर्ष कत्ल किया जाने लगा।

६. हृदय की कविता के छंद तथा वृत्त होंगे हास्य और आँसू तथा चिटकिली-मिटकिली जैसे निरर्थ लयबद्ध शब्द।

सायंघंटा

(**परिचय :** जेल में शाम को जो घंटी बजती है, वह कैदियों को विश्राम दिलाने हेतु कोठरियों में बंद करने के लिए होती है। उसे सुनकर कम मुद्दत के कैदियों को यह सोचकर स्वाभाविक रूप से हर्ष होता है कि सजा का एक दिन कम हो गया, परंतु ज्यादा मुद्दत के कैदियों को वह पीड़ादायक प्रतीत होती है। अंदमान में एक दिन इस घंटा के समय साथ बैठे जंगली मले जाति के कैदी के साथ सावरकरजी का संभाषण हुआ, जिससे उनके मन में भावनाओं की खलबली मच गई। यह संभाषण तथा उससे जनित अपना चिंतन सावरकरजी ने इस कविता में ग्रथित किया है।)

पशु सम जो अविश्रांत सुबह से सदा
कोल्हू से जोते-से घूम रहे थे
बंदी, जब मुक्त होत दुष्ट जुए से,
आए हैं आँगन में बस अभी-अभी,
कोल्हू में गोल-गोल दिन भर घूमे
पैर अभी टूट रहे दर्द से बहुत
घर्म बिंदुओं के उनके स्राव से भरा
भूवर्तुल सूख रहा बस अभी-अभी।
इतने में हीन स्वर परिचित आया
दंड काष्ठ ऊँचा कर, तंडेल[१] ने कहा,
'जोड़ा! हाँ जोड़ा!' तो शीघ्र ही सभी
बंदी दो-दो करके युगल बन गए
'नीचे! ना, ऊपर! मूँ बंद! बे-उठो'
स्वविरोधी[२] आज्ञाशत पालन करते
सब हैरान हुए! अंत में कभी
पंक्ति सिद्ध भोजनार्थ बंदिजनों की
कष्टों से, धर्म विद्ध क्लिन्नगंध वे
भोजनार्थ सिद्ध हुए, 'रोटि डाल दो[३]!'
दाल-रोटि थाली में डाल दी गई
'खाओ बे! जल्दि-जल्दि!' जलदि हो गई
खाने की कैदियों की, आज्ञा तब 'उठो'!
हाय! तभी स्नेहशून्य सूखे ही सूखे
टुकड़ों को मुँह में सब चबाते रहे,
भुक्त, अर्धभुक्त, रिक्त-जठर या सही
जो भी तब जैसा हो, सभी उठ गए
बंदिवान गालियाँ मुँह से निकालते
जूठन सब धरती से निकाल के, मुँह
धोकर फिर जोड़ों में लौट आ गए
असहाय क्रोध भरे हृदय से सभी
लौट फिर आँगन में आकर बैठे
जोड़े के पीछे फिर जोड़ा, इस क्रम में
बंदिवान लोगों की कतार लग गई

तंडेलादिक सारे दंडधर तभी
स्वस्थचित्त, बंदिप आ कोठरियों में
रात्रि समय के पहले बंद करेगा
अर्ध घटिका का है कुछ वक्त अभी
ढीलाढाला बनके कैदी बैठे
जोड़े के बंदी से गुप्त बात भी
करने में चुपके से सब जुट गए!

★ ★ ★

तभी जो जोड़े में उस दिन साथी था
वह बंदी टोंक मुझे बात कर रहा
उत्साहित कहत 'देख, देख जरा उधर!
देख सुंदर चाँद! दिखत बहुत दिनों बाद'
वह था इक निकोबार का कोई-सा
वन्यजाति-जनित जिसे कहत हैं 'मले'
मद्य चुराने खातिर दंडित था वह तब
घना अरण्य जिसका था मूल पालना
पुर भी जिसके मन में पंजर-सा लगे
उसे बंदिगृह में जब बंद कर रखा
तीन मास भी जिसको तीन जन्म-से
स्वाभाविक रूप में वह चंद्र देखकर
उल्हसित बहुत हुआ, ढककर मुँह को
चुपके से कहत एक-एक शब्द को
गिनती कर उँगलियों से 'एक और,
एक और, हाँ, पर ना तीसरा कभी
मास मुझे रहना है! केवल ये दो
चंद्र मुझे इस जगह ऐसी स्थिति में
देखेंगे, किंतु चंद्र तीसरा कभी
देखेगा ना मुझको कोठरी में यहा!
लेकिन उस बहु विशाल सागर तट पर
हाँ, हमारे निक्कोबारीय समुद्र के
जलतरंग हिंडोले पर खेलूँ मैं
देखेगा चंद्र मुझे तीसरा वहाँ

डुंगी में[४] मेरी, जब खेऊँगा मैं
और करूँ हर्षोल्लास की अदाएँ
गीतों का साथ प्रिया जो कर लेगी
या गाते-गाते मैं हाथ उसी की
कटि से लिपटाकर जब बीच-बीच में
खेएगी वह भी जब नैया खुशी से
अथवा उस चाँदनि में धुली हुई सी
उस सुंदर शुभ्र रेत में समुद्र की
विहरत या दौड़त या पकड़ते कभी
एक-दूसरे को, अथवा चुनने में लगे
शंख, सीप, शुभ्र कंकर चमकीले
चाँद तीसरा मुझको देखेगा ऐसे!'
मुसकराकर मैंने कहा, 'बहुत खूब!
सुखमय हो जाए तब दोस्त! तुम्हारी
मुक्ति! और शीघ्र ही सुख पाओगे तुम!'
निश्चितांत कर लेता है दुःख को सुसह,
क्यों न फिर निश्चित शीघ्रांत को करे
दुःख को अभी के भी सुख पोषक ही![५]
सम-पीड़ा मुझसे फिर दिखाने प्रति
सहज ही मुझसे उसने तब प्रश्न कर लिया—
'कहो मित्र, चाँद बिताने हैं कितने
अभी ऐसी दुष्ट स्थिति में तुम्हें ऐसे?'
मन में जो भाव उभर आए मेरे
उनकी अभिव्यक्ति हेतु मैंने कह दिया,
'कौन करेगा गिनती! चाँद दो ही या
तीन, चार, चालिस—बस, छोड़ दो इसे
पक्ष, मास, ऋतु, अयन या वर्ष भी सभी
तीन, चार, चालिस की गिनती, हाथों की
और पाँवों की उँगलियाँ एक साथ भी
गिनकर ना आएगी गिनती उसकी!
शायद मुझको न कोई चाँद देख ले
और यहाँ चाँद तीसरा तेरे लिए!

चाँद मुझे कोई भी देख न पाए
लिपट-लिपट कटि से किसी प्रिया की
रमत या दौड़त या पकड़त उसको!
निश्चित है बात यही! उल्टी जो है
सब अनिश्चित है वह! क्यों न मान लें?
मैंने ही अनिष्ट की प्रचंड शिला को
लटकाकर स्वकंठ से, कूद लिया था
इसी तेरे निक्कोबारीय समुद्र के
रौद्र-शांत जल में निर्धृण रूप में!
अब जो कुछ डूबना है, वह अटल है
तैरना है अपवाद ही, यदि क्वचित् घटे!'

★ ★ ★

तभी घणण, घणण, घणण ध्वनि गूँज उठी
हुक्म पर हुक्म छुटत : 'हो खड़े! खड़े!'
कोठरियों में लोगों को कर बंद
बंदीगृह रात भर ही बंद करने
की यह घंटा है! शब्द यदि कभी
कारा में भी सुनकर हृदय के लिए
कुछ हल्कापन हो जाता, इच्छित दिशा में
एक कदम बढ़ ही गया ऐसा लगता है
आशा कुल मन बनता कारा में भी,
तो वह भी सायंकालीन परिचिता
घंटा की ही ऐसी घणण ध्वनि से
अथवा जब आते हैं रथ यामिनि में
स्वप्नों के, भू-जल-ख-ग[६], कैदी को भी
देह को, मकान को जैसे, छोड़कर
बंदी का स्वेच्छा संचार बन सके
प्रिय संग ही, भुक्तभोग या नवीन भी!
इसीलिए घंटा को ऐसे सुनकर
हल्का सा बोझ हृदय का कम हो जाए
साँस एक छोड़ लंबी, अस्फुट स्वर में
हर कोई कहता है 'दिन बीत गया!'

मरा शत्रु एक और : दुष्ट दशा की
दिवसों की सेना का एक सिपाही
मर के अब गिर ही गया और एक जो!
दिवस-मृत्यु-घंटा, तुम गर्जना करो :
सोच भी न सकता हूँ मैं यदि, तुमको
गरजना पड़ेगा ऐसे और कई बार
युद्ध में इस भयाण, हे दिनांतके!
फिर भी यह निश्चित है कि होगी जो भी—
संख्या इन दिवसों की, कुछ-न-कुछ कभी
विधिनियता दासता की भरतभूमि के
उनमें से एक अधिक दुष्ट दिवस यह
मार दिया है तुमने, और इस तरह
मोचन उस माता का, वही हमारा
अन्वर्थक मोचन ही होने वाला!
देय प्रभुनियत स्वातंत्र्य मूल्य जो
हमारे लिए, उस मूल्य का यह एक
उग्र तपोदिन-दिनार[८] डालते ही अब
जमा करके बंदी-निधि में, निकली
यंत्रचल प्रतिध्वनि[९] ही यह रसीद की
हे सायंघंटा! तव ध्वनि है ऐसी!
जिस दिन भी हिंद-भूमि अति कठोर इस
दंडरूप बंदीनिधि को पूर्ण करेगी
दिन-दिनार दारुण दुर्दशान्वित देकर
बलिदानों की यह नवरात्रि टलेगी
पूर्णाहुति पाकर शक्ति-होमहुताशी
जब विजयादशमी को प्रज्वलोज्ज्वला
उस ज्वाला-माली से तृप्त चंडि के
होगा फिर मुकुट दिव्य-दीप्त हमारा
ग्रहण-मुक्त-सूरज-सम प्रकट पुनरपि
उस दिन वह विजयवृत्त करने हेतु
प्रथित दिशाओं में सारी आध्रुवध्रुव
सिंधु तटोतट प्रतिध्वनि कर उठे

जाएगा तब जयघंटा का महान् घोष
पुनरुत्थित राष्ट्र के, नाद-सिंधु के
उसका यह एक सही नाद-बिंदु है
कष्टगणक घंटा, यह नाद तुम्हारा
बिंदु-बिंदु से ऐसे सिंधु[१०] बनेगा!
गरजो फिर तुम स्वाहा कार बली के
दास्य-दिनों के अस्मत्प्राणहवि के!
गर्जना तुम्हारी ऐसी दुर्दिनांत के
घंटे, उस शुभ दिन को लाती है अब
एक-एक दिन सन्निध! दास्य मुक्ति के
सुदिन को-मेरे ना-पर हिंदु जाति के!
मुक्त उसी का जीवन ध्येय हमारा!
कौन जिएगा यदि हिंद मर गया?
कौन मरेगा यदि जीवित हिंद रह गया?

(अंदमान, १९१३)

टिप्पणियाँ :

१. कारागृह का एक अधिकारी।

२. आज्ञा सुसंगत रूप में देने की बुद्धि भी इन अनाड़ी अधिकारियों के पास नहीं थी। मूर्खता से रोब जमाकर वे एक आज्ञा देते थे और तुरंत स्वयं उसके विपरीत आज्ञा देते थे। 'बैठो' शब्द उच्चारण करते ही 'उठो' कहते थे।

३. 'रोटी डाल दो'—ये सभी ऐसे अधिकारियों की आज्ञाएँ थीं। स्नान के समय भी 'लवा' कहते ही सभी ने झुकना होता था, 'बरतन भरो', 'बदन पर उँडेलो', 'बदन मलो'—सभी आज्ञाएँ!

४. डुंगी—मले लोगों द्वारा लकड़ी को कुरेदकर बनाई हुई नाव।

५. दुःख का अंत निश्चित रूप में फलाँ समय होने वाला है, इस तरह के अवधिज्ञान से भी दुःख हल्का हो जाता है। फिर जल्द ही यह अवधि खत्म होने वाली है, ऐसे ज्ञान से न केवल वह दुःख हल्का हो जाता है, अपितु सद्यःकालीन दुःख पश्चात् सुख को अधिक सुखद बनाने का कारण बन जाता है। ऐसा दुःख सुख पौष्टिक होता है।

६. पृथ्वी, जल, आकाश सर्वत्र संचार करने वाले तथा बंदिवानों के शरीरों को भी सूक्ष्म माया के प्रभाव से जहाँ चाहे वहाँ ले जाने वाले, स्वप्नों के रथ।

७. दिन के अंत में बजने वाला यह घंटा ऐसा महसूस कराता था कि बंदी की सजा के दिनों में से एक दिन मर गया, कम हो गया, मुक्ति एक दिन और

निकट आ गई।

८. एक पूर्वकालीन सिक्का। भारत की बंधमुक्ति के प्रीत्यर्थ जो मूल्य देना है, पीड़ाओं के जितने दिनों को भुगतना है, उनमें से यह एक पीड़ाओं का दिनरूप दिनार हमने जमा कर दिया।

९. कुछ यंत्र रूप संदूकें ऐसी होती हैं कि उनमें एक छेद से सिक्का अंदर डालने पर उतने मूल्य की एक चीज यंत्र की गति से दूसरे छेद से बाहर आ जाती है। कुछ संदूकों में अंदर सिक्का गिरने पर यंत्र की प्रतिध्वनि बजती है और उसके अनुरूप रसीद प्राप्त हो जाती है। उस कारागृह रूप संदूक में पीड़ाओं के सिक्कों से एक दिनार जमा हो गया, ऐसी रसीद दिलाने वाली यंत्र की प्रतिध्वनि ही शाम की उस घंटा के नाद में प्रतीत होती थी।

१०. भारत की मुक्ति का मूल्य चुकाने के लिए जिस बलिदान की पीड़ाओं का दंड चुकाना है, उन पीड़ाओं की गणक यह हर रोज दिन के अंत में बजने वाली बंदी-घंटी बन गई थी। इस तरह पीड़ाओं के, पराजय के दिन एक-एक करके गिन लेने पर वह विमुक्ति का अंतिम विजय-दिन दिखने वाला है! उस दिन जो विशाल विजय-घंटा सागर-सागर के किनारों पर हिंदुस्थान की विजय की गवाही देती हुई गरजती जाएगी, उसके 'नाद-सिंधु' का 'नाद-बिंदु' यह पीड़ा-गणक घंटा ध्वनि थी। क्योंकि बलिदान की रसीद के, इस घंटा के ये बिंदु गिर-गिरकर ही वह विजय घंटा का नाद-सिंधु भरनेवाला है।

निद्रे

(**परिचय :** यद्यपि बंदीगृह में परेशानी-ही-परेशानी थी, एक सुख सावरकरजी के भाग्य में पहले कुछ वर्ष तो कायम था। वह था निद्रा का सुख। उन्हें एक बार दिन के कष्ट समाप्त होने पर जब शाम को कोठरी में बंद किया जाता था तब झट से नींद आ जाती थी। वह इतनी सुखद तथा गाढ़ी होती थी कि कई बार सुबह जब घंटा बज जाता था तब आँखें खुलने पर उन्हें एहसास भी नहीं होता था कि हम बंदीगृह में हैं। प्रियजनों के बारे में सपनों से अथवा सुखद भुलक्कड़ अवस्था से बहुत देर के बाद बंदीगृह के परिसर का अभिज्ञान उतर आता था, ऐसी स्थिति थी। सारे साथी तथा सहकारी जब दूर हो गए थे तब जो एकमात्र ही साथी उन्हें प्राप्त थी उस निद्रा के प्रति उनके मन में जो कृतज्ञता थी उसी को इस कविता में उन्होंने व्यक्त किया है।)

आओ, निद्रे आओ! तव आगमन की
जब खबरें तारों से[१] मम नसों को

आती हैं तब जैसा बाग दूर से
योजन-गंध बनकर लुभा रहा हो
परिमल से भँवरों का, औ' मेरा भी
मन आकृष्ट करो, हे पुष्पोद्यान[२]
स्वप्न-स्वर्ण-पुष्पों के!, सकुशल जैसा
शस्त्रवैद्य शल्य शरीरांतर्गत भी
निकालते समय दर्द जान ना सके
एतदर्थ सुँघाते हैं मोह कुप्पी[३]
उसी तरह, हीन-दीन दिन बीत गया
उसका विक्षत वह[४] वीर उठाकर
रुग्णालय में रात्रि के, देत है तभी
सूँघने मोहकुप्पी, वही तुम ही हो!
विश्वकुशल वैद्यजी की, जीर्ण को नया,
ताजा जो सूख गया पूर्ण उसी को
इस मेरे घर में[५] तुम बनाकर गई
पता भी न चले! यही सात्त्विक रूप
दान का चिह्न सत्य, भाग्य कितना,
मेरा, जो देह को प्रथम जिस दिन को
मैंने अपने हाथों रचाकर चिता
रखा था उस पर, जब चंडिका करूँ—
सुतृप्ता!—तब उस अग्निकुंड में कराल,
हे निद्रे, भार्यासम तुम सहगमन करके
आई हो यमपुरी में[७] यहाँ मेरे संग!
मम शय्या बंदीगृह में तेरे संग
प्रेम मृदुल, मोहक, मानो सजी फूलों से
हे प्रभु, इस निद्रा को तो अब से तुम
मत ले जाओ दूर मुझसे, यद्यपि सबकुछ
ले गए! क्या न है वह यहाँ मेरे लिए?
पंखों पर ले आती है दुनिया को
कारागृह के भीतर वह मेरे लिए!
बाग, कुसुम, फौव्वारे, प्रियसंग, रंग भी।
अद्‌भुत, अतिभव्य, भयद प्रत्यक्ष से[८] सभी

अति विचित्र नवनवीन घटनाओं को
ले आती है, निद्रे, तब माया का स्वप्नपट
खुलता है जब! मृत्यु के चक्रव्यूह में
पीछे न एक कदम भी हटे बिना आगे
और-और आगे ही दौड़ते प्रवेग
तीव्र गति रथ में काल के अनावरोध[९]
जीवन के अभिमन्यु[१०] को तुम फिर से ही
ले जाती हो स्वेच्छा पीछे मन चाहे
काल के रथ में तुम आरूढ़ होती हो
और तुरग तव लगाम के वश हो जाते
सुनहरे स्वप्नों के, और उस रथ में भी
वृद्धों को उस ययाति सम दे देती हो
नवयौवन, औ' ले जाती हो रति-देश,
पूर्व प्रियाओं के फिर कराती हो
प्रथम चुंबन फिर इक बार!—विरह विह्वल को
सत्य समालिंगन सुख!—जो हताश हैं
उनको फल लभ्य कराती हो!—अस्त उदित भी,
विगत बनत आगत ही! खुलता है जब
स्वप्नचित्रपट निद्रे, तुम्हारी बिजली का!
भूत बनत वर्तमान—और कहते हैं कोई[११]
विगत ही आगत न अनागत भी बनत है
आगत तव रथ में भविष्य के लिए भी,
चर्मचक्षु देख न सकत अभी जिसको
ऐसा भी चित्रशाला के बीच प्रवेश की
बनती हो दर्शिका भी[१२] तुम! योगी जब भी—
मान लेत इस अगम्य, अतींद्रिय में
एक तुम ही हो इंद्रिय जो व्यक्त कर सके
अव्यक्त को,[१३] हे सुषुप्ति, बद्धजनों को!
देह ही[१४] न आत्मा है, यही बीज मंत्र
धर्मों का अखिल, हमें क्या दे देती हो
तुम ही प्रथम? ऐसे फिर तुम्हारे जादू को
स्वप्नों के दर्पण में देह के बिना

आत्मा को आत्मा ही दिखला देती हो?
साधारण को गोचर सात्त्विकोपमा
वेदांत के लिए, जो एक ही सुलभ
कैवल्यानंद के लिए, सुषुप्ति, वह—
उस केवल आनंद की, तुम्हारे ही, सत्य!
और यद्यपि, हे निद्रे!—मृत्यु भी होगी
तुम्हारी ही उच्च स्थिति[१५]—अंतिम स्थिति
तो मधुर मृत्यु कितनी! मृत्यु मुक्ति है!!

टिप्पणियाँ :

१. नसों की तारों से—अर्थात् तारायंत्र से—नींद आने पर जो मधुर शिथिलता तथा सुखद विश्रांति बदन में संचारित हो जाती है, वह 'नींद आ रही है' वार्त्ता की प्राप्त 'तारें' ही होती हैं।

२. सुख स्वप्नों के स्वर्णपुष्पों से भरा बाग—सुखनिद्रा।

३. क्लोरोफार्म अथवा अन्य तत्सम मूर्च्छक द्रव्यों की कुप्पी।

४. ईश्वर।

५. शरीर में।

६. देवी, असुरमर्दिनी, ध्येयमूर्ति को।

७. कारागृह में।

८. वास्तव में जो घटनाएँ असंभव हैं, ऐसी विचित्र घटनाएँ भी तब सत्य जैसी अनुभव होती हैं, जब स्वप्नों का चित्रपट खुलता है।

९. काबू में न रहने वाला।

१०. जीवन अभिमन्यु की भाँति मृत्यु के चक्रव्यूह में लगातार आगे बढ़ता है। इसीलिए जिंदगी में बीते हुए क्षण का फिर से सच्चे रूप में अनुभव नहीं किया जा सकता। किंतु निद्रा ऐसा अनुभव प्राप्त कराती है। काल के रथ को बलात् पीछे ले जाती है, और पीछे की घटनाओं का बिलकुल वास्तव की तरह, बिलकुल आज की तरह अनुभव कराती है। सुनहरे स्वप्न निद्रा की लगाम होते हैं। ये स्वप्न काल के घोड़ों को खींचकर पीछे ले जाते हैं।

११. कुछ लोगों का अनुभव है कि आगे घटित होने वाली घटनाएँ भी कभी-कभी स्वप्न में पहले दिखाई देती हैं।

१२. दर्शिका = टिकट। भविष्य की चित्रशाला में जो कुछ चित्र धीरे-धीरे दर्शकों के लिए अनावृत होने वाले हैं, उन्हें निद्रा का टिकट काटने पर कभी पहले भी देखा जा सकता है।

१३. सुषुप्ति में = गाढ़ी नींद में। यह स्थिति मूल अव्यक्त की द्वंद्वरहितता की किंचित् कल्पना करवा सकती है। समाधि के लिए 'योगनिद्रा' नाम दिया जाता

है, उसका कारण भी यही है कि जनसाधारण के लिए उस समाधि की कल्पना करने के लिए गाढ़ी निद्रा की एकमात्र उपमा उपलब्ध है।

१४. देह ही आत्मा नहीं है। स्पेंसर आदि बहुतेरे भौतिक शास्त्रज्ञ भी प्रतिपादन करते हैं कि नींद में हमारी देह जहाँ होती हैं वहाँ से अन्यत्र हमारा संचार होता है। नींद के ऐसे अनुभव से ही कल्पना आ गई थी कि देह आत्मा नहीं है।

१५. उच्च स्थिति = संपूर्णतः भग्न होने वाली गाढ़ी निद्रा की जो आंशिक द्वंद्वातीतता वही कभी भग्न न होने वाली बनकर जिसमें पूर्णतः रहती है ऐसी नींद अर्थात् मृत्यु। इसीलिए 'मधुर मृत्यु कितनी!'

मूर्ति दूजी वह

(**परिचय :** ईसवी १९१० में जब सावरकरजी फ्रांस से इंग्लैंड लौटे, तभी पकड़े गए। जब वे प्रथमतः लंदन की पुलिस-कस्टडी में बंद किए गए, तब इतनी ठंड पड़ने लगी, जो इंग्लैंड के हिसाब से भी ज्यादा थी। तिस पर उस कोठरी की दीवारें पत्थर की बनी हुई थीं! फर्श भी पत्थर वाला! वे बिलकुल बर्फ की तरह ठंडी हो जाती थीं। पास में बिछाने के लिए तो क्या, ओढ़ने के लिए भी पर्याप्त साधन नहीं। दिन-रात पैर पटक लें, हाथों को मल लें, उस पंद्रह-बीस कदमों की लंबाई में ही जल्दी-जल्दी फेरे लगाएँ, तब कहीं ठंडा पड़नेवाला खून कुछ गरमाहट पा सकता था। ऐसी भयानक शारीरिक ठंडक का असर मानसिक उत्साह भी ठंडा हो जाने पर न हो जाए, इस उद्देश्य से अपने मन को वज्रशाली बनाने हेतु जो विचारों की परंपरा हृदय के भीतर प्रदीप्त कर दी, उसे इस कविता में ग्रथित किया है।)

अपरिचित न जो तुम्हारे मधु विलास से :
रम्य सरोवर, कमल, नाल सुभग-से,
वे परिमल भृंगगुंज, वे सुमंजुला
सारंगियाँ, वे गीत मधुर-मधुर से
दयित-स्मृति आलिंगन जिसे सुखद सा,
खेती हरी-भरी, आह्लादित बाग वे,
सरितापुलिनोत्थ ठंडे तरबूज वे,
मुक्त नील आकाशश्री मनोहरा,
मुक्त नील सागरतल, मुक्त वायु वे,
भक्ति के सुपंथ पर महा गजर मधुर सा
ताल-मृदंगों का हरि-नाम-मत्त वह,

चंद्रबिंब शारद मेघों में दौड़े,
जैसी आशा रिक्त संशय में सुखेन :
ऐसा जो नव, संगत, मंजु, मुक्त जो
उसमें स्थित मधुर विलास तुम्हारी
मूर्ति की सुंदरता वर्णन करते
भाट ही ललचायित : देवि! वही मैं
आज चाहता हूँ रूप देखने
वह दूजा! तव दूजी मूर्ति ही सही!

★ ★ ★

मूर्ति मधुर ना, परंतु वह भयंकरा
तव दूजी घोर मूर्ति दिखा दो मुझे!
क्योंकि तुम देख रही हो मुझे यहाँ
इस तरह लोह-पंजर में ही बंद किया
हिंस्र कोई पशु जैसा वध्य उसी तरह;
और सुन रही हो न लोग क्या इधर
एक-दूजे से कहते हैं मेरे प्रति :
'होता यदि हिंस्र कोई पशु ही यह शख्स
कर लेता सहन यहाँ पंजर की कैद
यह तो है पर केवल कवि भावुक सा
शोभा की एक चीज! शयन-रंग में
वीणा है विजयायुध, पर वह कभी
विजयायुध बनती है समरांगण में?
कैसी वह कविता भी सुखभोग-लोलुपा
फिर कभी न आएगी पास इसी के
कवि न सहन करत कभी, यह क्या बचेगा?'

★ ★ ★

क्यों? क्या कविता है पण्य अँगना
जो जब तक उत्सवीय मनविमोह का
सुवर्ण रत्नभौक्तिक से तनु अलंकृता
तब तक ही मुसकराती बाँहों में आवे?
और अचानक ऐसे भाग्य का कभी
अकाल हो जाए, जैसे सूखे पुष्करिणी

उसी तरह रिक्तरस हृदय उसी का
बनता है और दूर खिसक जाती है?
ना, ना, ना! कुसुम सुगंधीय लास्य में
वीणा के नाद सहित नाच करत हैं,
वे उसके पद बनकर वज्र-कर्कश भी
खड्ग की धार पर नाच करत हैं!
ना कविता भक्त का त्याग कभी करे!
भक्त उसे त्यागे, पर वह त्यागत ना उसे!

★ ★ ★

क्योंकि मूर्तियाँ उसकी जो दो होती हैं
कर्तव्य को निभाती हैं, उसके पुजारी की
अथवा प्रिय की भिन्न समयों में रक्षा करती हैं
एक मूर्ति नाचत है हृदयमंच पर
रसिक-मन की वीणा उसके कर में
तारों को छेड़त है कुशल स्पर्श से
प्रेम की विद्युत् फिर चमक उठत है,
भावों को मोहित कर वह बनाती है
मक्खन-से कोमल-इतने कोमल कि
जाएँगे चाँदनी से भी पिघल वे!
और दूजी मूर्ति तुम्हारी प्रखर है
कविते, असिधारा व्रत लेकर वह
प्रविष्ट होत अट्टहास करत चिता में!
प्रथम मूर्ति तव, यमुना-पुलिन आर्द्र-सा
चाँदनि में शीतल उस रात बन गया,
जिस रात्रि में कमलनयन श्याम के संग
रासलीलांतर्गत मधु-मधुर सुंदरा
हृदय-हृदय नाचत है हर्षपूरित-सा;
लाता है हर्षोत्सुक किंकिणी प्रति
हास्य-लास्य-मग्न-गोपिका-हृदय का
ताल धरत मंजुल रुण झुणु झुणू झुणू!

★ ★ ★

किंतु यमुना-पुलिन पर नंदकिशोर के

रसभरित कोमल मृदुल-मृदुल-से
नाजुक-से अधरों पर मधुर बनत है
जो मुरली, वही मृदुल और कोमल
अधरों पर कर्कश-रव-रणश्रृंग रूप में
रणवेताल के भीषण तांडव के संग
ताल देत भारतीय रणसंगर में
'अच्छेद्योऽयमदाह्योऽशोष्य एव च,
लोकक्षयकृत् प्रवृद्ध काल, काल हूँ मैं!'
दंष्ट्रा विकराल, गर्जना भयद कितनी
कविते, तव!—जो सहस्र संवत्सरों में
गूँजत है आज भी, करत भू कंपित-सी!
—उस छंद में, उस वृत्त में, समरभीषणा
प्रकट होत चंडमूर्ति जो तुम्हारी
देवि, आज दे दे वह दर्शन मुझको!
क्योंकि आज प्रस्तुत है भिन्न-रूप यह
कर्तव्य क्रकच-तीक्ष्ण! आज नहीं है[१]
तन्मुद्रा स्मितशुभ्रा, लिबास न सौम्य
बूटी का रोब-ऐश रंग राग भी
रत्नजड़ित मुकुट भी आज नहीं है
वाद्य नहीं मंजुल, ना गीत मधुर-सा
ना जत्थे रँगीले नौटंकियों के!
आज दोनों तरफ से न रास्ते में कहीं
फूल बरसतें हैं, न हर्षोत्फुल्ल हैं
ललनाओं के लोलनयन; गर्जना न करत हैं
कृतज्ञ लोकसंघ जयध्वनियों की!
आज सेवकों को बख्शीश सुवर्ण के
बाँटते नहीं आ रहा है धनी
स्वयं सैनिकों को उसके आज छुट्टी[२] भी
मिल नहीं रही है स्वेच्छाविलास की
'अशिथिल परिरंभी परिमृदितमृणाली[३]—
दुर्बल-से अंगकों, से लिपटकर किसी
अविदितगतयाम यामिनी के लिए!

आज उल्टा है सब! उग्र, ना-हिडिस्स-सा
लोहे का मुख अपना खोलकर भयाण
कर्तव्य प्रकट आज! काटने मुझे
दाँतों की दो पंक्तियों की तीक्ष्ण आरी में!
पत्थर से निर्दय है हृदय उसी का
लिबास भी बर्बरता को न ढक सके
उसकी तनु की नंगी तलवार की!
बाप रे बाप! ठंड यह भयंकर है!
निर्दयता से भी ठंडी! जम गया
नद-नदियों में[४] पानी औ' इस शरीर में
रक्तपिंड पिंड निरा जाए शरीर में
इस भयाण एकांत में पूर्ण अकेला
निःसहाय, निंदित, मैं देख रहा हूँ
जीवन रस धमनियों में मेरे ही
ठंडा अब हो रहा है! पत्थर-चूने की
इन अँधियारी नंगी दीवारों से भी
ठंडी ठंडक बदन में असह भर गई।
कारा की ऐसी नंगी कोठरि में यहाँ
नंगा कर्तव्य मुझे पकड़ लेत है!
और[५] अधर में वायु के शिखर पर अभी
संतुलन सम्हाल के चढ़ते दौड़ने
की आज्ञा देत मुझे! पीठ पर लादकर
पर्वत सम दुर्धर सद्गर्वभार यह
अखिल राष्ट्र का! तो आ भी जाओ
तुम भी! तुम्हारी दूजी चंडमूर्ति का
दर्शन दो मुझे! कविते, और वह दूजा
छेड़ो स्वर कर्कश, जो भयद भैरव!
सूर ललित ना! रुण झुण ताल-तोल ना!
प्रिय जिनके आघात मृदुल कोमल होते हैं
हृदयकुंज में लहराते हैं मधु लहरें
मंजु गीतगोविंद के मधुर छंद वे
अबलाओं के हृदयों के अधिक अबल बनाते

वे बिल्हणीय करुण छंद भी ना लाओ अब।
पर, कविते, रणभेरी के सूर दूजे
छेड़ो अब, अबलाओं के मृदु हृदयों—
को जो बना देंते हैं प्रबल सिंधु-से!
मृत्युंजय मंत्र कोई प्रकट करेगा
मूर्ति चंडिका की उद्दंड, दे सके
चंड मनोबलदाता वर मुझे अभी!
घुँघराले पवनमुक्त केश मृदुल वे,
क्रोध से खुरदरे खड़े शीघ्र-से
टूटे खत्ते से जैसे सर्प दौड़ते
वैसे जूड़े से खुलकर तेज दौड़ते
कंधे पर, वक्ष पर, पीठ पर, मुँह पर
विकराल क्रोध से अति भयंकरा
अपने ही हाथों से स्वयं काटकर
खड्ग से अपना ही मुंड, फल जैसा,
अपने ही हाथ में लेत, और फिर तभी
शोणित की धारा उछले ऊपर सहसा
लाल-लाल चिपचिपी विकट गले से
धारा उस क्रुद्ध मुख से प्राशन करती
प्याले से लाल मद्य जैसे पीते हैं!
पीकर अपना ही रक्त अपनी ही प्यास
बुझानेवाली उस प्रचंड रौद्रभीषणा
रुंडधरा छिन्न-मुंड[६] मूर्ति को प्रणाम
नमोनमः सहस्रधा प्रमत्त-नर्तने!
तुम ही हो कर्तव्यमूर्ति! यदि तुम ऐसी
सद्यःकर्तव्यमूर्ति मेरे हृदय-समीपे
रुंडधरा, छिन्नमुंड, खंड-कृपाणा
ऐसी ही मूर्ति लिये, तुम भी आ जाओ
कविते, कर लेंगे हृदय-कामना!
जो वेतालीय, कालभैरवीय जो
मारक जो, दुःसह जो, कठिण कटु-कटु
वही आज आरोग्यद बलद बनेगा!

या जैसा हो जाए, अटल ज्यों चढ़े
वीरवर श्रीबंदा[७] वध-शिला पर।

★ ★ ★

श्रीबंदावीर

क्रूर लोह-पंजर में तंग-से यहाँ
तीक्ष्ण खाँग!—लोह के दाँत रक्त पी
उसी तरह सुरसुराते, न देत बिलकुल
उसकी तनु को किंचित् मुड़ने!
पीते हैं रक्त लोह-दंत चुभकर
देह की बनी है केवल छाननी
निजरक्त में नहाया कौन शख्स यह
पंजर में बंदिवान? शेर ही जैसा!
पंजरस्थ शेर की इर्दगिर्द ज्यों
कुत्ते मँडराते रक्तपिपासी
भौंकत हैं, घात लगा बैठे हैं खाने,
उसी तरह शत्रु के खड्गधारि जत्थे
भौंक भौंक पंजर को धकेलते जाते[८]!
दिल्ली का बहु विशाल मैदान यहाँ है
लोहे की सलाखों का बाड़ा मजबूत :
उसके चारों तरफ सहस्र लोग हैं
नर-नारी भीड़ करत दूर-दूर तक
देखने हेतु हिंदुओं का रक्षणकर्ता
देखने हेतु हिंदुओं का रक्षणकर्ता ही
ना, परंतु हाय हाय! उसका वध भी!
देखने हेतु! तभी मुख्य कसाई,
बादशाह कहलाता, वह भी आया!
धीरे से फाटक कर्रर ध्वनि से खोल
पंजर किंचित् खोला : खींच शृंखला
फर्र-फर्र घसीटते मारपीट कर
बंदिवान को पटका मैदान में तभी।
खनखना खींचकर तानकर चारों तरफ

शस्त्र-अस्त्र शतशः सहसा सुसज्ज थे
एक एक शिष्य् उसी वीर गुरु का
शृंखलाबद्ध, आगे लाया गया था
'क्या बनोगे मुसलमान? तभी बचोगे!'
'हिंदू मैं! सिख हैं हम! मृत्यु दो मुझे!'
'यह कुराण-यह कृपाण' बोलो फिर से
पुनरपि औ' पुनरपि औ' पुनः-पुनः-पुनः
प्रत्युत्तर घोरनिश्चयोत्थ शीघ्र वही
'हिंदू मैं! सिख हैं हम! मृत्यु दो मुझे!'
एक-एक उत्तर दुतकारत कुराण को
आते ही गिर जाता धर्मवीर का
एक-एक शीर्ष बलि क्रूर कृपाण का
सौ बार भी प्रश्न गूँजन बर्बर स्वर में
'क्या बनोगे मुसलमान? तभी बचोगे!'
सौ बार उत्तर भी गूँजत गगन में :
'हिंदू मैं! सिख हैं हम! मृत्यु दो मुझे!'
एक-एक करके दो सौ धर्मवीर
त्याग भय, गर्जत जय धर्मगुरु का
वधशिला पर अपना शीर्ष दे गया!
भोथरा हुआ कृपाण : डूब गई वह
सद्य[१] उष्ण-उष्ण खून में वधशिला :
अति अघोर अति उदास दिन भी बन गया
बदमस्त, लाल-लाल रक्त प्राशन करके।
हाय, अजी! किंतु उसी अति घृणार्ह ही
बीभत्स स्थान में ठीक इसी वक्त कैसा,
क्यों आया अति कोमल अति करुण बच्चा?
और लिपटकर बंदी वीरवर से ही
सहसा यह बच्चा फुदक-फुदक कह पड़े :
'हाय पिताजी! हाय हाय, क्या दशा बन गई
राजसाजभूषित-से तव शरीर की!'
राजराजभूषणार्ह बंदिवान वह
वीरवर श्रीबंदा हाय! तब अपने

इकलौते बेटे का भाल चूमकर
कहता है : 'बेटे! मैं नहीं तेरा पिता!
हिंदू धर्म ही, बेटे, पूज्य तव पिता!
माता तव हिंदू जाति : जाओ उस पर
न्योछावर कर दो यह कमल-कोमला
तनु तुम्हारी शीघ्र अभी, प्रिय वत्स मेरे!'
शीघ्र ही अश्रुयुक्त, फिर भी उछाह से
उठ खड़ा हुआ राजस वीरतनय वह।
'क्या बनोगे मुसलमान? तभी बचोगे!'
'हिंदू धर्म-मंगलार्थ मृत्यु दो मुझे!'
और, हाय! हाय! उस छोटे बच्चे को भी
ले जाते हैं नृशंस वधशिला की ओर :
धीरे ले जाओ, धीरे! सम्हलकर बच्चा
छोटा है इतना कि वहाँ जम गए
शोणित के डबरे में ही डूब जाएगा
जाते-जाते वहाँ वधशिला की ओर!
भोथरा[१०] कृपाण फिर भी कठिणतम ही था
आसानी से निपटा कर्म भयंकर!
कठिणतम बलिदान में अति सहजता से
वीरसुत श्रीबंदा वीरवर का
निज तनु की नवताल से तोड़कर स्वयं
चढ़ा देत हिंदू-धर्म-मंगलार्थ ही
समर-चंडिका-चरण-स्थंडिल पर ही
निज सुंदर मुखमंडल कमल-कुसुम-सा!
हर हर! सत् श्री अकाल! जय! पुनः-पुनः
श्रीबंदा गर्व से करत गर्जना!
वीर गर्जना करत, शोक करत पिता—[११]
कितना प्यारा, शूर कितना! बच्चा इकलौता
छोड़ गया वह भी अब मुझ अभागी को :
श्रीबंदा शोक करत हृदयांतर में!
लो, देखो आ ही गए कोपातिशय से
कंपित-से शब्द, शाप, गालियाँ सभी!

और शब्द जिसका अखिल पंचनद प्रदेश
गूँजत है, जैसे गुफा में सिंहगर्जना
जिसके कारण अक्षरश: मुसलमान सब
ग्रामधाम छोड़ भाग जात विजन में!
घोरी से[१२] लेकर जो शल्य घोर था
दास्य का चुभत हद में पंचनद के
उसे उखाड़ शतकों का प्रतिशोध लेत है
यत्कृपाण : उस बंदा वीरवर को
वे ही मुसलमान आज श्वान की तरह
भौंक रहे हैं शृंखलान्वित सिंह पर
भौंक-भौंककर पूछत हैं कई बार,
'यह कुराण, यह कृपाण! बोलो फिर से,
'काफिर, बन मुसलमान: तभी बचोगे!'
धर्मांध! तुम्हें य:कश्चित् सैनिक ने भी
कौड़ी का मोल नहीं दिया कुराण को
सेनानी कैसे फिर देगा भी कभी
मूढ़, कोई कीमत ऐसे पागल डर को?
'सचमुच क्या ऐसा है?' मुख्य कसाई,
कहलाता बादशाह, बीच में कहे
'हो जाए फिर सेनानी प्रति ऐसे
सेना से अधिक समादर समर्पित!'
वह कुराण फेंकत है? फेंक दो कृपाण
ले आओ तीक्ष्णाग्र-सा सँड़सा यहाँ
लोह का, लाल गर्म करके लाओ'
लाल-लाल सँड़से तीक्ष्णाग्र तीर-से
ले आया हत्यारा, अविचल आसन में
वीर बैठा योगयुक्त, बोला पुनरपि,
'बनोगे न मुसलमान?' एक-एक उस
प्रश्न के प्रश्नचिह्न समान अंत में
तप्त लोह का सँड़सा शीघ्र घुसत है
वीर के शरीर में, तीर तूणीर में!
प्रश्नांत में एक-एक काटकर बलात्

मांस की बोटी खींच निकाल देते हैं
लाल तप्त सँड़से से नोंच-नोंचकर!
अक्षरश: छल अघोर रिपु करत है!
अक्षरश: वीर धैर्य अघोर धरत है!
वह बंदा अखिल-हिंदु-वंद्य हुतात्मा!
'छल अघोर, फिर भी यह धैर्य न छोड़े,
तो फिर और अघोर करो छल इसका'
बादशाह के निधि में क्या कभी कहीं
क्रौर्य की कमी होती? अधिकार छल
करने की सोचत है हत्यारा, तभी बादशाह
गरजत है : 'ना ऐसे मूढ़! सैकड़ों
आघातों से कोई न घाव बदन पर
ऐसा होगा घाव मन पर जब हो आघात
एकमात्र! काफिर कपूत का
मृत शरीर काटो-काटो हृदय ही!'
वीर तनय की तनु काट, हृदय निकाला
क्रव्याद क्रूरों ने : और, हाय! हाय!
उष्ण रक्त लथपथ टपकत था जिससे
प्यारे राजस जानी प्रियतम लाडले.
इकलौते बेटे का हृदय वही, जी,
जन्मदाता के मुँह में ठूँस देत हैं
हाय हाय-धन्य-धन्य हाय हाय हा!
धन्य धन्य धन्य! फिर भी धैर्य बरकरार!
उफ् भी न निकलत मुँह से, सत्य-सत्य ही
योगीवर की आत्मा, हे क्रूरो, उसको
पहली ही गति है जो 'विचाल्यते
गुरुणापि स दु:खेन न यत्र आगत:[१४]!
शैतान ही! शैतान ही इसमें घुसकर
मुँह चिढ़ावत है : नर न, भूत है यह!
चिल्लाकर भौंक भौंकत हैं नीच
बाद में आसन्न-मृत्यु वीरश्रेष्ठ को
सभ्य मृत्यु का भी सुख न मिलने पाए

इस हेतु ऊँट पर उल्टा लटकाया
और लाखों लोगों की भीड़ में वहाँ
दिल्ली की गली-गली में महाभयंकर
जुलूस वह माते! लोगों ने देखा!
लोगों ने देखा, उनकी ही रक्षा में
प्राणदान करनेवाले का घोर वध ऐसा :
हिंदुओं के बीज के लक्ष-लक्ष वे
लोग थे, जिनके दो-हाथ, लंबी मूछें भी
मूँछ वाले भी बिलकुल षंढ बन गए
हिंदुओं के धर्मरक्षक को देख रहे थे
उस दशा में, उस दुर्बीभत्सना में!
यदि एक ही माई का लाल उन्हीं में—
जीवित माँ का दूध पिया जिसने
यदि होगा इनमें? धत्! धिक्कार
धिक् तुम्हारा जीवन हो! लक्ष नर हैं तुम
लहर की तरह यदि उछल जाते
तो सहसा एक साथ डुबो ही देते—
बिलकुल कुचला देते इन दैत्य-शतों को
अथवा अपने भीरुता के कलंक को!
लेकिन अब यह कलंक हिंदुता पर ही
निज मारक छाया ना फैलाएगा पुनः
जो उसपर शोणित को उष्ण-उष्ण से
हृदय के अपने ही, डालकर अहा
शुद्ध करके हिंदू ध्वज पुनः रँगाया,
हिंदू वीर यह बंदा हिंदू हुतात्मा!
धर्मवीर यह बंदा हिंदू हुतात्मा!
देशवीर यह बंदा हिंदू हुतात्मा!
निकल रही घृणार्ह-सी बदबू जिससे
सड़े हुए गंद भरे मूत्रमलों की
शहर के ऐसे कूड़ेदान पर दूर
ले जाकर फिर कसाइ फेंक देते हैं
अमर-मृत को!' जा काफिर! रक्तमांस को

खा जाएँ अब तेरे, गृध्र-श्वान-सूकर :
और अगर आत्मा है काफिरों की भी
खा जाए आत्मा को तेरी नर्क, जाओ!'
तो क्या हुआ? अजी, वहाँ जड़ पकड़ लिया
उसी रक्त-मांस ने उस अमर मृत के,
उससे फसल उस हुतात्मा के
प्रतिशोध की उग आई अकस्मात्
माना जिनको मूषक[१५] क:पदार्थ जिन्हें—
वे ही अजी सिंहासन को कुरेदकर
उन[१६] आक्रामक सिंहों के क्रूर, भीषण
मुँह के साथ ही बना रहे हैं निज बिल!
मृत हो उठा जीवित! मृत ही आक्रामक!
गायों ने मार दिया दुष्ट कसाई
चिड़ियों ने मार दिया क्रूर बाज ही!
पैरों तल की रेत तप्त हो गई
जो भूनकर भस्म करत पैदल फौज[१७]
और कुत्ता भी तुच्छ मान ले जिसे
ऐसी दुर्गति हो गई बादशाह की—
बंदा के सिंहनाद ने जब लिया
रूपांतर हिंदूडिंडिम में अति महान्!
और ईश्वर ने दिया यश भी अंत में
मूर्तिभंजकों पर मूर्तिपूजकों को!

★ ★ ★

लेकिन यह होगा ऐसे न जानते हुए
होगा भी न ऐसे, यह भी जानते हुए
अति भयाण अति महान् उच्च स्थान पर
अंधकार में, भयाण दक्षिणायन में[१८]
कटवाकर निज तनु को वध्य पशु जैसे,
धर्म के लिए जो नर्क में पचा
वह वीर श्रीबंदा हिंदू हुतात्मा
आज रहे ध्येय मुझे एकमात्र ही!
वही नर्क[१९] लगे मुझको आज श्रेष्ठ-सा

सातों स्वर्गों से! विजय-गीति ना,
—उसकी गाओ, स्फूर्ते, असह अपजय को
जिस सुर में बंदा के हृदय-तंतु को
लगाकर तुमने गीत गा लिया
व्यक्ति-मृत्यु सौख्य की असह—उसी को
—उसी सुर में कविते! तनुतंतुवाद्य यह
मेरा भी जोड़ दो : राग वही गाओ :
धैर्य का परम वही! क्यों न फिर वही?
मैं न क्या एक यद्यपि क्षुद्र-सी टहनी
फिर भी उसी प्रथित-से अश्वत्थ वृक्ष की
हिंदवीय वंश के? वह यदीय[२०] है
शाखा, यद्यपि दिक्कुंजरहस्त दीर्घ-सी
हिंदू हुतात्मा बंदा वीरश्रेष्ठ की?
वही रक्त, अल्प सत्त्व क्यों न हो, मुझमें
वही बीज, जीवन वह, मृत्तिका भी वही!
वह सह सका श्रीबंदा हिंदू हुतात्मा
असहनीय छल-पीड़ाएँ, फिर मैं
क्यों न सह सकूँगा इन पीड़ाओं को
मैं भी हिंदू ही हूँ! इन्हें सहूँगा—
इनसे भी भयकारी छल पीड़ाएँ
सहन करूँ, जीवनांत कष्ट करूँगा
करने खातिर विमुक्त मातृभूमि को!
मुक्त पुनः, शक्त पुनः मनुजमंगला
पुण्यभूमि पुनरुत्थित पतितपावना!

(अंदमान)

टिप्पणियाँ : १. कभी-कभी, यथासंभव सुख का उपभोग करना ही कर्तव्य बन जाता है। गणेशोत्सव, जुलूस, सभा, सम्मेलन ऐसे सुखद कर्तव्य के ही उदाहरण हैं। किंतु 'उस दिन' कोई दूसरा ही कर्तव्य सामने उपस्थित था। 'आज उल्टा सब!' यही भाव उस छेदक में वर्णित है।

२. छुट्टी जो सैनिकों को मिलती है। 'हमारे मालिक ने अर्थात् ईश्वर ने आज हमें कार्य के लिए आज्ञा दी है। विजय के उपरांत प्राप्त होनेवाली घुट्टी हमारे हिस्से आज अथवा क्वचित् कभी भी आनेवाली नहीं है।'

३. भवभूति के 'उत्तररामचरित' से 'परिमृदितमृणालीदुर्बलान्यंगकानि। त्वमुरसि मम कृत्वा यत्र निद्रामवाप्ता।', 'अशिथिलपरिरंभव्यापृतैकैकदोष्णो:। अविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्।' श्लोकों का संदर्भ सूचित है।
४. यह उस समय के इंग्लैंड की कड़ाके की सर्दी का वर्णन है तथा उसमें मानसिक प्रतिबिंब भी ध्वनित है।
५. वायु के अत्युच्च शिखर पर चढ़ जाना जितना कठिन, उतना ही केवल कल्पना की सृष्टि में ही निहित ध्येय के लिए जान की बाजी लगाना कठिन है।
६. शाक्त संप्रदाय में यह चंडिका 'छिन्नमुंडा' नामक तात्त्विक रूप प्रसिद्ध है।
७. श्रीबंदा सिखों का विख्यात नेता। श्री गुरुगोविंदजी का शिष्य। मुसलमानों की इसने भयंकर दुर्दशा कर दी। अंत में वह पकड़ा गया।
८. पंजाब से बंदावीर को पकड़कर दिल्ली लाया गया। तब लोहे के पिंजड़े में बंद करके उसे लाया गया। क्योंकि मुसलमानों के दिल में उसकी फुरती की तथा कामयाबी की इतनी दहशत थी कि वे समझते थे कि उसके पास अद्‌भुत सिद्धि तथा जादू है और वह मनचाहे बिल्ली का ऐच्छिक रूप धारण करके निकल भाग सकता है।
९. सद्य = ताजा। बंदावीर के पहले उसके दो सौ शिष्यों की हत्या उसके सामने की गई। और तिसपर भी जब वह गलितगात्र न हुआ तब अंत में उसका इकलौता राजपुत्र उसके सामने बहुत यातनामय तरीके से मारा गया—यह वर्णन इसमें तथा अग्रिम छेदक में है।
१०. दो सौ से अधिक शिष्यों की हत्या (मुसलमान धर्म को स्वीकार न करने पर) करने से भोथरा हुआ मुसलमानी खड्ग।
११. वीर के कर्तव्य के रूप में बंदावीर को अपने पुत्र के शहीद हो जाने से एक तरफ हर्ष ही हुआ। परंतु उसका पिता-हृदय दूसरी तरफ प्राकृतिक अपत्य-प्रेम से भीतर-ही-भीतर विह्वल हो रहा था। अपने पुत्र की रक्षा करने में असमर्थ अपनी दुखद स्थिति से आकुल था।
१२. महम्मद गोरी से।
१३. कपूत = बंदावीर का हत पुत्र। उसका हृदय निकालकर बंदावीर के मुँह में ठूँसा गया। इसलिए कि ऐसे छल से ऊबकर वह मुसलमान बन जाए!
१४. यस्मिंस्थितो न दु:खेन गुरुणापि विचाल्यते। —गीता।
१५. बंदावीर की हत्या के उपरांत यद्यपि कुछ समय के लिए हिंदुओं का आंदोलन दबा रहा, फिर भी वह पुनरपि प्रदीप्त हुआ। क्योंकि जिन्हें मुसलमानों ने 'मूषक' कहकर नीचा दिखाया था, वे महाराष्ट्रीय वीर अटक तक हमला कर विजय प्राप्त कर गए। सिख भी पुन: प्रबल हो गए और उन्होंने पंजाब में एक प्रबल हिंदू राज्य स्थापित किया। इस इतिहास का यहाँ संदर्भ है।

१६. सिंहासन को धारण करनेवाली, पैर के स्थान पर बनाई गई सिंह की आकृतियाँ। लक्षणा से मुसलमानी साम्राज्य का आधारभूत उनका बल।

१७. मुसलमानी सेना। पैरों तले कुचली गई हिंदू शक्ति की मिट्टी-रेत ऐसी तप्त हो गई कि उसने उसे कुचलने वाले शत्रु की पैदल फौज को जलाकर भस्म कर दिया।

१८. दक्षिणायन = प्रतिकूल काल।

१९. नर्क समान उस स्थान पर बंदा का शव फेंका, नर्क समान असह हिंदुओं की अवनत स्थिति में बंदावीर ने शूरता छोड़े बिना अग्रिमों के यश के लिए प्रस्तुत अपयश को स्वीकार किया, जिस नर्क में उसकी आत्मा गिर जाएगी, ऐसा मुसलमानों ने शाप दिया—आदि सभी अर्थ इस पंक्ति में सूचित हैं।

२०. यदीय = 'बंदावीर जिस हिंदू वंशवृक्ष की एक शाखा है, उसकी एक टहनी मैं हूँ।'

बेड़ी

(**परिचय :** जेल में कैदियों को सजा के रूप में जो बेड़ी मिलती है, उसे किसी आभूषण की तरह माँज-पोंछकर चमकीली रखना होता है। इस व्यावहारिक विरोधाभास से एक दार्शनिक विरोधाभास सावरकरजी के मन में आया, जो इस कविता में प्रस्तुत है।)

'चमकाते चमकाते। अपने हाथों में
क्या लेकर रहते दिन भर, बोलो तुम
बंदी! चाँदी के। अथवा सोने के
क्या अलंकार ये, जिनको ढोते तुम?'
अजी नहीं, नहीं भाई। केवल लोहे की
बेड़ी मेरी सदैव दुःख देती
जकड़कर मेरे। इन पैरों को
गति को मेरी सदैव रोके रखती
'तोड़-फोड़कर जिसे। जला दे सही,
क्या उसको ऐसा चमकाना होता है?
स्वयं ही, अपनी ही। यह बेड़ी
क्या उसको ऐसा प्रेम दिलाना है?'
छूटे टूटे ना। यह कभी भी।
पर जब तक मेरे इन पैरों में
तब तक यदि इसको। जंग लगे
तो और करेगी पीड़ा पैरों में
'चरणों में इच्छा के। जो बद्ध रहे

किन विधिनियमों से बनी है बेड़ी?'
जाने कौन अजी। स्पष्टतया
पर मुझे लगे ऐसा कि
इच्छा बन जाए। उसकी तो
बेड़ी ही बने पिपासा।'

(अंदमान)

(**परिशिष्ट :** बंदीगृह में सजा के रूप में पहनाई गई बेड़ी को साफ ही क्यों किया जाए, ऐसा सोचकर बहुत बार बंदी बेड़ी को साफ करना छोड़ देते हैं। और सजा की बेड़ी का लालन-पालन नहीं किया इसलिए बंदिपाल से दूसरी सजा लेनी पड़ती है। इसके अलावा अंत में साफ न करने पर उस बेड़ी को जंग लग जाता है और वह अपने पैरों में अधिक ही चुभने लगती है। अर्थात् शत्रु द्वारा दी गई एक सजा को ठीक से न सहलाने पर स्वयं को चौगुना सजा स्वयं द्वारा ही दिलाई जाती है। परिणामत: अंत में सजा की बेड़ी को ही किसी आभूषण की तरह माँज-पोंछकर चमकीली रखनी पड़ती है। इस विरोधाभास से स्वाभाविक रूप में इस जगत् की 'इच्छा के' पैरों में स्थित उस मूल बेड़ी की, उस 'विधिनिषेधीय बेड़ी' की धर्माधर्म की स्मृति हो जाती थी। यह लोहे की बेड़ी उस मूल बेड़ी की केवल एक आंशिक शृंखला है। इच्छा स्वातंत्र्य को धर्माधर्म की बेड़ी की जो सजा प्राप्त होती है, उसे भी इसी कारण से सहलाते बैठना पड़ता है। 'विधिनिषेधों' की बेड़ी भी उल्टे पोंछकर रखनी पड़ती है। अन्यथा और भी दु:ख प्राप्त होता है। इस विचार-परंपरा की धारा में ही अग्रिम प्रश्न आ जाता है। विधिनिषेधों की यह मूल शृंखला किसने बनाई? इच्छा के पैरों में उसे किसने डाला? इसे कौन बताए?)

कोठरी

(**परिचय :** जेल में आने पर कैदी अपनी-अपनी कोठरी को ममता से साफ रखने लगते हैं। अपनी कोठरी साफ करते समय उनके मन में जो खयाल आए उन्हें सावरकरजी ने इस कविता में प्रस्तुत किया है।)

'लीप-पोतकर जो। इतना तुम
दिन भर सजा रहे हो
हे बंदी! मंदिर ना। या कोई
महल सुशोभित हो?'
नहीं जी, केवल ये कारा की
दीवारें अँधियारी

रखे बनाए मेरी। अमावस ये,
पूर्णिमा दूर जो ठहरी
'फिर ये कोठरी की। दीवारें
क्रूर, तोड़ने सारी
सरसाओगे तुम। तो, होगी न
संभव मुक्ति तुम्हारी?'
मुक्ति? नहीं जी छोड़ो। दीवारें
हैं ये यदि मिट्टी की
तट जो कारा का। उसकी तो
दीवारें पत्थर की
'आशा मत छोड़ो। दुनिया में
पत्थर की दीवारें
ढल ही जाती हैं। तट भी तो
टूट टूटते सारे!'
फिर भी क्या, वह तो। आंशिक ही
न पूर्ण मुक्ति भी होगी
इस कारा के पार। क्षितिजों की
दीवारें फिर होंगी!
'सुना पर हमने हैं। लोगों ने
उनको भी लाँघा है
वृत्ति रूप क्षितिजों के। परे स्थित
असली मुक्ति भी है!'
रंगों में उषा के। तथा शाम के भी
चित्रित प्रभुद्वारा। सत्यों के
रूप मनोहर भी
उस 'मैं' के वे रूप। हल्के से
नभस्थित छत पर भी,
हास्य-अश्रु के ये। झूले हैं,
उनपर झूम रहा था
दिखते थे तब तक। मैं उनको
निष्पल देख रहा था!

(अंदमान)

परिशिष्ट : बंदीगृह की कोठरी को प्रत्येक बंदी झाड़ू-पोछा करके साफ रखने लगता है, क्योंकि उसमें उसे रहना ही है। आगे चलकर बिलकुल खुद की स्वच्छंदता की उमंग के रूप में सालोसाल के सान्निध्य से उस कोठरी को बिलकुल ममता के साथ साफ करते हुए औरों से स्पर्धा करने लगता है, कि मेरी कोठरी साफ है या तेरी? ऐसे समय उस कोठरी को साफ करने में मग्न होते-होते मन में जो विचारतरंग आते थे उन्हें इस कविता में गूँथा है। आशंका मन से प्रश्न करती थी कि इस कोठरी को तोड़ा जाए या उल्टे उसकी लिपा-पोती की जाए? किंतु आशंका को बुद्धि जवाब देती थी कि जिस तरह कोठरी बंदीगृह है, उसी तरह यह शरीर भी एक बंदीगृह ही है, परंतु क्या हम उसे साफ-सुथरा नहीं रखते हैं? दूसरी बात यह कि यदि आप 'मुक्तता' कहेंगे तो उसकी व्याप्ति बंध की विस्तीर्णता के साथ बढ़ती ही जाती है। उस मुक्तता को मात्र इस भौतिक एकांतवासिनी को तोड़कर कैसे पा सकते हैं? इसके आगे बंदीगृह का पत्थर वाला परकोटा और मानसिक इच्छाक्षितिज का तृष्णारूप परकोटा! पूर्ण मुक्तता कहाँ है? आशंका फिर से कहती थी, लेकिन वे 'जीवन्मुक्त' कौन हैं फिर? क्या उन्होंने चित्तवृत्तियों के क्षितिजों को लाँघकर संपूर्ण मुक्ति नहीं पा ली? तिसपर उल्टा जवाब आता था, उनकी मृत्युओं के उपरांत आत्मा का भाव क्या हो गया, इसे ज्यादातर वे ही जानें, परंतु जीवन्मुक्त जब तक जीवित थे, तब तक उस वेदांतिक कुलालचक्र की पूर्वगति के लिए क्यों न हो, पर बंधनों में फँसे हुए ही दिख पड़ते थे। 'उषा' के अर्थात् जन्मप्रभाव के और 'शाम के' अर्थात् मृत्युप्रलय के रंग से चित्रित इस 'मैं' के अर्थात् अहंकारी व्यक्तित्व के आकाश में आँसू-हास्य की, सुख-दुःखों की जो खूँटियाँ ठोकी गई हैं, उनसे टँगे हुए वृत्ति-रूप झूले पर ही उनको सुख-दुःख के झोंके लेते हुए देखा था! इस जीवन में जीवन्मुक्त भी पूर्ण मुक्त-से दिखाई नहीं देते हैं। श्रीकृष्ण क्रुद्ध हो जाते थे, पार्थ की जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा पूरी कैसी होगी—इस चिंता में रात भर करवटें बदलते रहते थे। बुद्ध के पेट में दर्द था। रामकृष्ण को भूख ने रुलाया था, अपने शिष्य युवक न दिखाई देने पर रामकृष्ण शोक करते थे! तुकाराम पंढरी की राह पर रोते बैठते थे। चैतन्य ने 'हे प्रिय, हे प्रिय' करते-करते वन-बीहड़ में भटकते-भटकते समुद्र का नीलश्यामल रंग देखकर उसी को घनश्याम मानकर उसमें छलाँग लगाकर देहत्याग किया!

रवींद्रनाथजी का अभिनंदन

(**परिचय :** सन् १९१३ साल के श्रेष्ठ साहित्य के लिए दिया जाने वाला नोबेल पुरस्कार कविवर रवींद्रनाथ टैगोरजी को प्राप्त हुआ, यह सुनकर सावरकरजी

को अत्यंत हर्ष हुआ और उस हर्ष के आवेश में उन्होंने यह कविता रची, जो उन्होंने अंदमान से रवींद्रनाथजी को भेज दी।)

: १ :

समर-वाष्परथ-कक्ष बैठकर[१]
चिर-विवासिता देवी सुंदर
भारती राजधानी पर। लौटत है
बहु भीड़ भाट-बंदी की
सुस्वर में लहरी स्वर की
ध्वनि घोर रणघोषों की। क्रांति के
मैं युवा धृष्टता युक्त
कह पड़ा तब अकस्मात्
'मेरा भी वीर-रस गीत। सुना जाए'
'है कक्ष पूर्ण कवियों का
पर वहाँ पड़ा है सूखा
क्रांति के वाष्पयंत्रों का[२]। कक्ष जो!'
देवी की आज्ञा सुन, मैं
मलधूम कोयलागर में
उस अग्निप्रेरक कक्ष में। लग गया[३]
यह घुमत आज जय किसका?
भारवी-कालिदासों का
मुकुट ले, मान हो किसका? यह रवि![४]
मलधूम गंद से हटके
चमड़े को[५] उड़ा-उड़ा के
जयघोष तव विजय के। मैंने किए।

: २ :

उस यज्ञ समारोह में
ऋषियों के सम्मेलन में
आहुति होत हवनों में। अर्चना
लटकाए कली बालों में,

इक अन्य कली ले कर में,
यज्ञ के समारोह में। भारती[६]
निजदास्यविमोचनार्थ
हाथ की कली ही त्वरित
हवन में अर्पण करत। मम माता
बालों की कली खिल गई
भ्रमरों की भीड़ लग गई
मधु-सुगंध वितरित हुई। दूर तक
यश उसका घोषित करता
अलि-पुंज गुंज-रव करता
परिपूर्ण होत सुमनता। तब उसकी
हे फूल! केश में खिलते,
हे फूल! हिलते-डुलते,
अभिनंदन हवन में जलते। करत मैं

: ३ :

यह चंदन-तोरण-हार
शोभत है देवद्वार
दिव्यार्थ कला सुंदर। सूचित
कांचनमय शोभत सारा
मणि-रत्नजड़ित है प्यारा
फूलों से मंडित न्यारा। गंधित
इस पुण्य-उषःकाल में
पूजार्थ भरी भीड़ में
सैकड़ों लोग रत स्तुति में। तोरण के
मंदिर में एक पुजारी
जगदंबा-पूजन जारी
चंदन को घिसता भारी। प्रेम से
चकली पर घिसते-घिसते
चंदन जो तुम प्रति देते[७]
स्वीकरो बधाई हँसते। तोरण रे!

: ४ :

श्रीविक्रम सिंहासन वह
चिरलुप्त दिव्य, दिव्या वह
वीणा भी, गाती थी वह। मेघदूत
श्रीविक्रम सिंहासन वह
लुप्त है अभी भी, पर वह
वीणा है प्रगटत अब यह। तव यश में
जो गान लुभावत उसका
संतुष्ट चित्त वसुधा का
अवतरत कविकुलगुरु का। काल ही
कारा में, कांचन दीप्ति
हे रवींद्र, तव यश-कीर्ति
शृंखलाबद्ध ही कवि मैं। लो प्रणाम।

टिप्पणियाँ :

१. भारतमाता अपनी राजधानी को वापस लेने हेतु सैनिक वाष्परथ में निकल पड़े।

२. इस कार्य में कवियों की कमी नहीं है, कमी है तो उस समररथ के यंत्र में कष्ट करनेवालों तथा स्वयं कोयला बनकर जलकर गति देनेवालों की; सो वहाँ जाओ।

३. इसलिए महाकवि की उमंग छोड़कर मैंने इस दूसरे कर्तव्य को स्वीकार किया और महाकवि बनने का सम्मान जो उन्हें प्राप्त हुआ, उसी में मैंने संतोष मान लिया।

४. रवींद्रनाथ।

५. इस समय अंदमान में सावरकरजी चमड़े की चद्दर लपेटकर कोयला भरने का काम कर रहे थे। स्वाभाविक रूप में रूमाल की जगह उसी चद्दर को ही उड़ा-उड़ाकर रवींद्रनाथजी का अभिनंदन उन्होंने मनाया।

६. भारतमाता के विमोचनार्थ जो यज्ञ हो रहा था उसके पूजनार्थ उसने एक कली चढ़ा दी और दूसरी बालों में लटका दी। बालों में जिस कली को लटकाया वह खिल सकी। उसके गौरव में समूचे पुष्पजाति का ही गौरव हो गया, उसी तरह रवींद्रनाथजी के गौरव में अखिल भारतीय कवियों का राष्ट्रीय गौरव हो गया, ऐसे मानकर उस यज्ञ की अग्नि में जलनेवाला यह दूसरा फूल उस पहले फूल का अभिनंदन कर रहा है।

७. भारतीय महाकवि बनकर तोरणा बनने की मनीषा कवि के मन में थी; परंतु

चकली पर घिस-घिसकर देवी की पूजा संपन्न करने का कार्य उसके जिम्मे आ गया। अपनी अधूरी आकांक्षा को किसी भारतीय ने पूर्ण कर दिया, जगत् को भारतीय प्रतिभा ने चकाचौंध कर दिया इसके लिए कवि कृतार्थता का अनुभव कर रहा है।

हलाहल बिंदु

(**परिचय :** 'गोमांतक' काव्य में भार्गव गाँव के मठ में एक साधू रहता था। उसके द्वारा की गई शिवजी की प्रार्थना इस पद्य में निहित है।)

हलाहल प्राशन। किया जब। हलाहल प्राशन
प्रभुजी देखो, बिंदु उसी का नीचे अवतीर्ण॥ध्रु.॥
उपाय तुम कितने। करोगे। उपाय तुम कितने
सुख-दुःखों के जहर हलाहल का उपशम करने
शत सूर्यलताओं के नव-नव सोमपुष्प कितने
अमृतार्द्र, लाकर निचोड़े शीर्षोपरि अपने
फेंक दिए निर्माल्य बनाकर वापस भी कितने
चंद्रमौलि भोला। तथापि। चंद्रमौलि भोला
उस अमृत का कोई बिंदु नीचे ना निकला॥१॥
महादेव तुम हो। प्रभु जी। महादेव तुम हो
इन दीनों के मन में तुमसे ईर्ष्या कभी न हो
अमृतवल्लि छोड़ो। तुम्हारी। अमृतवल्लि छोड़ो
विवेक बूटी का ही थोड़ा अनुपान कराओ
जला देत पूर्ण। विश्व को। जला देत पूर्ण
सुख दुःखों का जहर हलाहल नीचे अवतीर्ण॥२॥

आकांक्षा (Aspiration) (किसी शापित गरुडकन्या की)

(**परिचय :** यह काव्य 'मेघदूत' के यक्ष संदेश के तथा 'भागवत' की रुक्मिणीपत्रिका के आधार पर रचा गया है। इसमें किसी शापित गरुडकन्या ने अपना प्रेमपूर्ण मनोगत नारद के हाथों अपने विजयी प्रियकर का विदित किया है। उसके माँ-बाप स्वकुल की महानता का अभिज्ञान शाप के प्रभाव से भूल जाते हैं, परंतु गरुडकन्या उसे भूल नहीं पाती। भारतीय जनता की गत पीढ़ी अपनी महानता को यद्यपि किंचित् काल भूल गई, तो भी भावी पीढ़ी उसे भूल नहीं पाएगी, ऐसी ध्वनि इस काव्य में है।)

हेमाद्री के गरिगह्वर में घोंसले को बनाता,
उसमें कल्पद्रुम कुसुम की मृदुल शय्या रचाता,
ऐसे विहग-श्रेणि-सम्राट् तेजसंपन्न खग को
शापों से ही करत आहत काल, दे दंड उसको ॥१॥
वह कांता के सह खगपती शाप से बिद्ध होकर.
अपनी पहचान विस्मृति में सात सालों में खोकर
जैसे तारे टूट जाएँ, वे गिरत आसमाँ से
आए भू पर शीघ्र गिर के लोह-से या शिला-से!॥२॥
कौओं में ही गिनति अपनी युगुल वे कर, सुखेन
गरुड होकर अधमता से बीतते काल मलिन
उस दंपति की कोख से मैं जन्म लेकर पधारी
शापग्रस्त भ्रमित मन से काक रूपेण सँवरी॥३॥
माता ने तो बरगद-तरु में पालना भी बनाया
पर मेरा दिल बहुत ऊँचे पर्वतों ने लुभाया
स्वप्नों में मैं बात करती बिजलियों से, हवा से,
सुनकर माता बहुत डरती थी अशुभ-शंका से॥४॥
देता था जब प्यार-सँवरा कवल मृत्पिंड जनक
इस बाला के नयन सहसा बनत रे, लाल-सुर्ख!
सुरसुराते दंत-नख थे, घोर फूत्कार सुनती,
जिह्वा मेरी रस अपरिचित-से के लिए तिलमिलाती॥५॥
सहज मुझको उड़ना आया तब सभी काक-संघ
ले जाते थे मुझ गुरुडजा को सभी साथ-संग
तब चीत्कारों को करत थे गृध्र औ' बाज पक्षी
देख मुझको उड़ जाते थे भीत वे मांसभक्षी॥६॥
गाते थे जब काक सहसा देख कीड़े-मकोड़े
उच्छिष्टों को ले जाते थे, ज्ञातिकौशल्य चाढ़े
शर्म मुझको आती थी तब, मैं स्वयं तेज उड़ लूँ
तूफानों में भयद सागर उफनता जब देख लूँ॥७॥
ऐसे ही एक दिन हम सब जा रहे थे कहीं से
जाते-जाते भ्रमित होकर भटकते जंगलों से
कौओं में तब भयविकट-सी खलबली मच गई थी
जब अपरिचिता आग सहसा बदन को छू गई थी॥८॥

सों-सों फूँ-फूँ कर रहे थे घोर विष के फुआरे
तेज गति से बह रहे थे वायु के भी नजारे
आकर्षण में बहुत भीषण जब सभी फँस गए थे
आक्रोशत तब उड़ न पाते, निम्न वे गिर रहे थे॥९॥
जैसे सणसण झुंड निकले कृष्णपुच्छक शरों के
सीधे गिरते इक गह्वर में घोर-चंडी गुफा के
फूत्कारों में दहन-वमते, तेज रफ्तार से वे
पत्ते जैसे खग टपटपा भस्म होते चले वे॥१०॥
मैं भी वैसी अवश बन गई, भिन्न थीं पर वजहें
फूँ-फूँ ध्वनि को सुनकर बनी थीं मदोन्मत्त चाहें
उत्तेजित होकर उठ गई, भूख भी दीप्त हो गई
पंखों-दाँतों में सनसनी तीव्र-सी इक मच गई॥११॥
नीचे से उस भयप्रद कुहर ने तभी खींच लिया
उत्सुकता की नव अवशता ने मुझे निगल लिया
मैंने नीचे तेज गति से, निडर बन, कूद लिया
लेकिन उस क्षण 'हाय, बाले!' आह को श्रवण किया॥१२॥
देखा तो क्या, जनकजननी घोर गह्वर में जाते,
होने वाले थे दहन ही, खींचते निम्न जाते
अपनी गति को रोक, मैंने प्रथम उनको उठाया
ऊँचे से इक शिखर पर ले जाकर उन्हें बिठाया॥१३॥
इतने ऊँचे उस शिखर पर स्वप्न या सत्य देखा
मेघावलि गिरि पर मृदुल-सी शुभ्र कर्पास-रेखा
उसको करते तितर-बितर यह घुस गया एक पक्षी
पंखों से सब मेघ बिखरे, बन गई चारु नक्षी॥१४॥
आया जब उस भयद गह्वर के पास ही, कुछ रुका-सा
पक्षी अपनी तनु अधर में तोलकर स्तब्ध जैसा
कुछ रुककर वह शीघ्र तिरछा ले निशाना सुसज्ज॥१५॥
गह्वर में उस घुस गया जी बाण जैसा सुसज्ज
प्राणी[१] ही था विवर-मुख सा! न गह्वर! क्रूर कर्म
देता-घेता, चिपक खग को, घोर आघात मर्म
खग कुछ हटा, फन उठ गया, मत्त आह्वान फूँ-फूँ॥१६॥

लिपट ही लिया, कभी डस गया, ध्वनि उठे एक फूँ-फूँ
कुछ ऐसी ही पकड़-पकड़ी खून से लिप्त होकर
दाँतों पर उन क्रकच-नखरों की झपट हो भयंकर
दो तूफानें एक-दूजे से कभी टकर जाएँ
वैसे दोनों जूझ निकले, खून ही खून आए॥१७॥
झपट-झपटें, पकड़-पकड़ी, अंत में फन विषैला
सहसा मुड़कर फँस गया जी, चोंच में तब कराला
गुस्से में वह गरल ओका, पीस लीं उग्र दाढ़ें
पुच्छ पटका तड़ित जैसा भूमि पर तड़-तड़ाड़े॥१८॥
आतिशबाजी में निकलता अग्नि का बाण जैसा
अरि को लेकर दमन करता गगन में दूर वैसा
मर्मांतक अहि लिपटकर जब जोर से दम घुटाया
हा-हा! पक्षी रिपुसहित ही भूमि पर उतर आया॥१९॥
चंचू में कसकर फँस गया कंठ[२] ओकत लहू तब
ओकत शोणित विहग तरु से लपेटें दबातीं जब
छोड़े ना यह खग पर फन को, यह[३] लपेटें न छोड़त
रिपुओं की इक पल भर हुई स्तब्ध-सी जूझ किंचित्॥२०॥
उसकी हिम्मत शिथिल पड़ गई और दम घुट गया था
ऐसे मौके को विहग भी बस अभी चाहता था
उसने अपना जोर पूरा प्राण-पण से लगाया
सारी उसकी वे लपेटें तोड़ मुझको हँसाया॥२१॥
या गिर गया बदले के कोड़े का यह रज्जु ही
प्राणी[४] अपनी तनु बनाता वर्तुलाकार सच ही
अंते प्राणों सहित ओकत दीप्तिमान एक रत्न
जैसे निद्राधीन रवि परिवेष के साथ शयन॥२२॥
विहग लेटत दूर कुछ औ' हाँफता थक गया-सा
मृत, परि रिपु, को स्पर्श करने को नहीं धैर्य जैसा
निःशंका पर अचिर जयश्री विहग को हार डाले
स्पर्धा मुझसे सहजता से कर रही, प्रिय सुन ले॥२३॥
वह चंचू, वे क्रकचनखर, वह हैमपक्ष्मप्रभा भी
रोबीली वह जय-शिथिलता, पांख की खोज वह भी
ग्रीवा वह जो प्रबल, झुकना मानती ही न बिलकुल
बन जाऊँ मैं विहगपति की पट्टरानी समाकुल॥२४॥

दर्प की जो मूर्त विलसत उन्नता औ' वक्रता भी
शौर्य की ही असिदललता पर फली लालगर्भी
या मछली को कालरूपी, पकड़ने का वक्र कँटिया
ऐसी चंचू का मधु चुंबन करने को जी ललचाया ॥ २५ ॥
लेकिन 'आओ घर' सुनकर ही आर्तवाणी पिता की
लौटी घर, पर तिलमिलाती, देर से ही आइ झपकी
तब सारी वे दिन भर घटीं घटनाएँ विचित्र
घुलकर स्मृति में उभर आए रम्य-से स्वप्नचित्र ॥ २६ ॥
प्राणी की उस मृदुल तनु की एक शय्या बनी, जी,
और मुझको विहग ने दृढ प्रेम-आलिंगन किया, जी!
मर्मस्पर्शी अभिनव कला! उफ् कितनी मधुर-सी!
इतने में माँ खींच मुझको, हाय रे! तेज बरसी ॥ २७ ॥
'बेटी, पागल हो गई तुम! छोड़ दो यह खयाल!
उसकी धुन में मोल लोगी संकटों का ही जाल!
खाना पिंडों को ही घर में, नींद में मस्त रहना
ऐसी सुख की जिंदगी को छोड़ क्यों कष्ट करना?' ॥ २८ ॥
इतने में तूफान आया, तिमिर छाया निराला
बारिश की ही बोझ से नभ झुक गया, सिंधु खौला
दारू पी के प्रकृति सहसा झूम लेती हवा के
झूले पर, करकर पकड़ के डोर भी बिजलियों के! ॥ २९ ॥
दो-दो क्रोधोद्धत गरजते मेघ ग्रांडील आए
इक-दूजे से धडड टकरत रहत, हम देख पाएँ
दोनों को फिर विलग करता, पंख फैले हुए-से
पक्षी शोभत अधर दोनों-बीच में पूल जैसे ॥ ३० ॥
दोनों मेघों पर हम तभी हो गए जी सवार
चंचू का अंकुश चुभाकर मत्त-गज-सम खुमार
रोबीली फिर यह सवारी चल पड़ी दूर दूर
कोई मंदिर पूर्व में था मणिखचित-सा सुदूर ॥ ३१ ॥
रानी थी रति, मदन राजा था जहाँ प्रेममग्न
ऐसे कोई राज्य में हम आ गए शीघ्र-पवन
हैमी हौदों में भर रखा था उषःकाल संग
मार्गों में औ' छिड़कते थे चेतना-दिव्य-रंग ॥ ३२ ॥

उन रंगों से इंद्रधनु की सज्ज पिचकारियों से
लीला में हम रंग-रँगे, सुख बढ़ा गीत-मधु से
आई वर्षा गगन भर में कौमुदी की झनाझन
प्राणों के ही कलश भर के कर लिया स्नान, प्राशन ॥ ३३ ॥
प्राणी की उस विपुल तनु की मांसला मृदुल शय्या
मेघों की एक मृदु रजाई ओढ़ने हेतु रम्या
मेरा प्यारा प्रियकर मुझे फैल बाँहें, बुलाता
जाने को मैं बहुत आतुर, पर नहीं पैर बढ़ता ॥ ३४ ॥
सारे गात्र ही जम गए-से, हिल न पाती तभी मैं,
मुझको सारे कीट-कृमि भी हँस रहे दिल्लगी में
लज्जा से मैं छटपटाती, जा मिलूँ प्रिय विहग से
ऐसी हालत बन गई औ' जग गई में शयन से ॥ ३५ ॥
वैसी ही मैं भ्रांतचित्ता छोड़ घर चल पड़ी थी
सपने जैसी निबिड वन में शीघ्र ही आ गई थी
फैला के गिरि-स्थित मेघों की राह मैंने बनाई
हा-हा! लेकिन प्रियकर कहीं ना दिया जी दिखाई ॥ ३६ ॥
श्रांता, भ्रांता, मैं पिया की याद में कर रुलाई
दिव्या मूरत एक सहसा गगनगामी दिखाई
वीणा हाथों में मधुस्वनी, मेघ भी दाद देत
पैरों में पहनी खड़ाऊँ, जो सितारों से जड़ित ॥ ३७ ॥
मेरे शोकान्वित बदन को देख, वे निकट आए
वार्त्ता सारी शाप-खल की विदित मुझसे कराएँ
'बाले, तू है गरुडतनया, प्रेम जिससे तुझे है
वह भी तुझसे प्रणयवश है, बस, यही चाहता है! ॥ ३८ ॥
मिट्टी में वह विकल लेटा आँसुओं को बहाता
जिंदा नागों की तरफ भी नजर ही ना बढ़ाता
प्राणों की रक्षा तुम दोनों की, तथा माँ-पिता की
शापों से भी मुक्ति करने प्रणय उःशाप बाकी ॥ ३९ ॥
ऐसा सोचे, देख उसको तीव्र शोकायमान
मैं दौड़ा जी मदद करने, पर वह स्वीकारे न
दुष्टों ने जो गलत अफवाह की प्रसारित कभी से
'मैं हूँ पक्का कलहकर्ता'—मान्यता दे उसी से ॥ ४० ॥

मैं ही क्यों जी, कलह करने में मजा लेत सर्व!
फिर मैंने तो बहुत सालों से दिया छोड़ सर्व!
लोगों की ही मदद करने मैं सदा यत्नरत हूँ,
तो भी कोई सच न माने, इसलिए दुःख कर लूँ! ॥४१॥

ऐसी बातें हृदयस्पर्शी सुन रही, और सहसा
मैं देवर्षी के चरण में गिर पड़ी हत-पिपासा
आश्वस्ता कर, मुझ अभागिन को उन्होंने उठाया
आज्ञा दे दी जो उन्होंने, पत्र मुझसे लिखाया ॥४२॥

फट जाए वह काक-घर, या मैं बनूँ जीव क्षुद्र
क्यों ऐसी यह विषम-वार्त्ता, शापवृत्तांत शीघ्र
इसको पहले व्यसन-सम जो तिमिरग्रस्ता किया है
दिव्यालोकन प्रिय अब तुमको प्रेम अर्पण किया है ॥४३॥

मंथन कर लूँ विषधर विष-व्याप्त रत्नप्रभा का
माध्याह्नों में दौड़ सह लूँ ताप आदित्य-मणि का
तूफानों में झूम लूँ मैं, यह सभी हर्ष देता
कौओं के घर रहकर जिऊँ, यह तभी मृत्यु देता ॥४४॥

पंखों में, जी, प्रबल मुझको खींच लो अब प्रियोत्तम!
अंगों में है तीव्र इच्छा : कब कसेगा प्रियोत्तम?
ताक्ष्र्या की अब लाज राखो, काकगति से छुड़ा लो।
आओ! आओ! प्रिय विहगजी, अब मुझे तुम बचा लो! ॥४५॥

रति से अनुकंपा से, अथवा दाक्षिण्य से हि तुम आओ
रानी हो या दासी, कुछ भी मुझको मान, ले जाओ
'हाँ' में है यह जीवन, 'ना' में तुम्हरी मृत्यु है जिसकी
मूर्तिमती आकांक्षा मैं हूँ, तुम हो मूरत ध्येयों की ॥४६॥

टिप्पणियाँ :

१. किसी भयानक तथा गहरी गुफा की भाँति जिसका प्रचंड मुख खुला है, ऐसा वह प्राणी अजस्र तथा भयंकर महासर्प था।

२. वह महासर्प।

३. महासर्प।

४. वह प्राणी अर्थात् वह महासर्प जब मरणासन्न होकर गिर गया तब ऐसा लगा कि मानो मूर्तिमंत प्रतिशोध के चाबुक की रस्सी ही नीचे गिर गई।

जगन्नाथ का रथोत्सव

(**परिचय :** जगन्नाथपुरी क्षेत्र में रथ की शोभायात्रा प्रतिवर्ष निकली जाती है। यह शोभयात्रा एक उदात्त तथा विशाल प्रतीक है, ऐसी कल्पना करके उसका वर्णन इस कविता में किया है। इसमें आश्चर्य के साथ प्रश्न किया है कि गतियों के अश्व जोड़े हुए दिक्क्षितिजों के रथ में बैठ विश्वनियंता जगन्नाथ काल की अटूट ढलान पर कहाँ जा रहा है?)

: १ :

ऐश्वर्य के साथ। इस तरह ऐश्वर्य के साथ
महाराज, आपका कहाँ पर निकल रहा है रथ॥धृ.॥
दिक्-क्षितिजों का दीप्तिमान रथ त्वर्य
इस काल मार्ग की ढलान पर अनिवार्य
नक्षत्र-कणों की धूलि उड़त वैद्वर्य
युगक्रोश[१] अमित। संचरत। युगक्रोश अमित
महाराज, आपका कहाँ पर निकल रहा है रथ?

: २ :

पूछना ही व्यर्थ। प्रश्न मम। पूछना ही व्यर्थ
शोभायात्रा कहाँ चल पड़ी, और फिर किमर्थ?
दूजे किस द्वार। दूजे किस द्वार
अथवा केवल दमक-चमककर लौटे निज मंदिर
ये शतसूर्यों की बहुत मशालें जलतीं
बीच में शतावधि चंद्रज्योति[२] भी चलती
सरसर्राते धूमकेतु-शर, न गिनती
कई बार मत्त। यह भी। कई बार मत्त
चमक दमकती रात्रि[३] पुरातन अंधकार-ग्रस्त

: ३ :

लंबी सी पीठ पर। आगे या। लंबी सी पीठ पर
गति[४] प्रत्यक्षा यत्न कर रही रथ को खींचा कर
इच्छाओं में औ' भूतमात्र वेगों की
गूँथी है यह लगाम तव इच्छाओं की[५]

उस ढलान पर, अनिवार्य जो काल की
अधर[६] ही खेलत। रथोत्सव। अधर ही खेलत
महाराज, आपका कहाँ पर निकल रहा है रथ?

(अंदमान)

टिप्पणियाँ :

१. जगन्नाथ की शोभायात्रा काल की जिस ढलान पर आ रही है, उस कालपथ के कोस युग ही हैं। सृष्टि विकास का यह रथ जैसे ही धड़धड़ाता आगे निकल जाता है, मार्ग पर कुचलकर फैल गई नक्षत्र मालिकाओं की धूलि पीछे उड़ती है।

२. आतिशबाजी वाली। श्लेष से, विभिन्न सूर्यमालाओं के चंद्र—आज प्रकाशमान होनेवाले और कालांतर से नामोनिशानी तक न रहे ऐसे बुझ जानेवाले चंद्रज्योति समान जो चंद्र—उनकी ज्योतियाँ।

३. मूलरात्रिर्महारात्रि। 'आसीदिदं तमोमूढं प्रसुप्तमिव सर्वशः' अथवा 'भौतिक विज्ञान की दृष्टि में जडद्रव्य का विकास होते-होते उसी के भीतर चेतना, अभिज्ञान स्फुरित हो जाता है। 'चमक-दमकती' = पुनः वह संघात पृथक् बनते ही अभिज्ञान, ज्योति विनष्ट होकर जड़ पीछे रह जाता है।

४. जगन्नाथ का रथ खींचने हेतु प्रत्यक्ष 'गति' ही घोड़ा बन गई है। मज्जापिंडों के रसों में जो स्पंदन होता है और भावभावनाएँ प्रकट हो जाती हैं, उस स्पंदन से लेकर जड़ की भौतिक गति तक सभी स्फोट-विकास-प्रगति जगन्नाथ की इस शोभायात्रा को आगे ले जा रहे हैं।

५. ऊपरी तौर पर मनचाही लगने वाली घोड़े की रफ्तार में, मालिक की इच्छा के अनुसार हिलनेवाली लगाम गूँथी होती है, उसी तरह सभी भूतमात्र की, वस्तुजात की रफ्तार में ईश्वरेच्छा का रश्मि गूँथा है।

६. जिसका तल नहीं है, आधार नहीं है, ऐसे पथ पर। निरुद्देश्य-निरावलंब आदि दार्शनिक संदर्भ भी इस शब्द से ध्वनित हो जाते हैं।

सूत्रधार से

सूत्रधार, सुन लो। जरा सा परदा हटा लो॥ धृ.॥
कोई मुझको बता रहा है, पीछे इस परदे से
रंगभूमि से रंगकक्ष ही मंडित आश्चर्य से
'त्रिरंग-प्याली एक है वहाँ, जिसके भीतर से
सभी नटों के साथ उभरते दृश्य अनेकों-से'
'कैसी प्याली, रंग कहाँ के, क्या कुछ बकते, जी,
सूत्रधार जादू रच लेता अपनी साँसों से, जी!'

'प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की क्या कोई जरूरत है?
हमने देखा पीछे परदे के अँधेरा है!'
'अंदर जो झाँके वह तिमिरग्रस्त होता है
परदे के अंदर जाकर जो हमने देखा है'
'असंख्य! एक के पीछे दूजा और तीसरा है!
परदे के पीछे परदा ही हमने देखा है!'
'देखा है जी! सचमुच जो देखा है, कहता हूँ!'
कहते सारे! आप्त समूचे, किस पर यकीन करूँ?
हटा लो अभी! अथवा न सही! आत्मा मम धन्य
विजय तुम्हारी रंगभूमि का रंग दृश्यमान!

(अंदमान)

अज्ञेय का रुद्धद्वार

जिस घर से हैं ये मार्ग निकलते सारे
आएँगे घर को मार्ग उसी वे सारे
सुनकर तुम्हरे भाटों की
बातें मीठीं वे उनकी
लेने को तनिक विश्राम
मैं आया तुम्हरे धाम
थक गया खटखटा करके, खुले ना पर रे
अंदर से तुम्हरे द्वार बंद हैं सारे
विस्तीर्ण अनंता भू पर
और भी किसी के घर पर
खटखटा करते रहने से
लूँगा मैं आश्रय दिल से
आऊँगा फिर से कभी न घर तुम्हारे, रे
ये वज्र-कठिन-से बंद द्वार जिसके रे
जो गाते गीत राजा के
सुनहरे राजमहलों के
मैं मार्ग पुराणज्ञों के
ले चला ढूँढ़ घर उनके
चल पड़ा युगों की क्रोशशिलाएँ देख
औ' पथांत पर यह गेह तुम्हारा एक

दुदुंभी नगाड़े शृंग
गरजत हैं, ध्वनि बेढंग
क्रांति के वीर रणरंग
मदहोश नाच में दंग
मैं जाता घुलमिल उनमें उस पथ पर, रे
अंत में खड़ा घर तभी तुम्हारा यह, रे

★ ★ ★

किस स्थल से कहाँ तक, रे
चिंता न किमपि करके, रे
यह जुलूस जब मुझको, रे
सजधज कर इस पथ पर, रे
ले गया, तभी बेढंग नाच करते, रे
पथ घुसा श्मशान में! जिसमें घर तेरा, रे
छोड़कर शोरगुल सारा
एकांत मार्ग अनुसारा
देत हैं सितारे जिस पर
सुनसान रोशनी मंथर
पर टेढ़े-मेढ़े मोड़ उसी के सारे
अंत में आ चुके इसी गेह के द्वारे
यदि राजमार्ग विस्तीर्ण
घर तुम्हरे जाते पूर्ण
घर अन्य कहीं पर होगा
इस तंग गली में होगा
यह सोच, मैंने तंग सुरंगों में, रे
बहु ढूँढ़ लिया, पर पाया घर तुम्हरा रे
घर दूजा बनवा ना दे
अपना भी खुलने ना दे
ऐसा यह यत्न चले ना
संभव न छोड़ भी देना
खटखटा रहा हूँ आज इसलिए फिर, रे
घर के ये तुम्हरे द्वार बंद हैं सारे!

(अंदमान)

मृत्युसम्मुख शय्या पर

(**परिचय :** सन् १९९१ से १९२१ तक अंदमान में सावरकरजी की तबीयत लगातार खराब होती गई। डॉक्टरों को भी भय लगने लगा कि कहीं टी.बी. रोग तो नहीं हो रहा है। केवल थोड़े से दूध पर रह के महीनों तक वे बिस्तर पर लेटे रहे। ऐसी अवस्था में उन्हें लगने लगा कि इससे मृत्यु बेहतर है। एक बार तो मृत्यु उनके बिस्तर तक आ पहुँची भी! उस समय मृत्यु की गंभीर छाया में उन्होंने इस कविता का लेखन किया।)

आ मृत्यो! आ तू या, आने के लिए
निकली ही होगी तो आ ही जा अभी!
मुरझाने के डर से डर जाएँ फूल
अंगूर भी रसभीने, सूख जाने से
डर जाऊँ क्यों तुझसे, मैं, किसलिए?
मेरे इस प्याले में पीते-पीते
कभी न खत्म होनेवाली है अभी भरी
आँसुओं की मदिरा बस मेरे लिए!
आ, यदि तू भूखी है नैवेद्य के लिए
और अभी दिन यद्यपि यौवनयुक्त
फिर भी सारे मेरे छोटे-मोटे
काम खत्म हो गए हैं इस दिन के,
किसी तरह कर जुगाड़ ऋण चुकता किया
जन्मार्जित जो-जो सब, ऋषिऋण के लिए
श्रुतिजननी चरणतीर्थ सेवन करके,
आश्रय कर ध्रुवपद का संतत—उसके
और आचरण करके एक तप ऐसे
आशा के श्मशान में घोर तपस्या
देवऋण के लिए, रणवाद्य बजा के
धडड धडड, और बढ़ आगे
हमला करके ठीक उसी क्षण को
जब हो गई प्रभु की प्रथम रणाज्ञा
और उसी रणयज्ञ-अग्नि में जली
अस्थि-अस्थि, मांस-मांस, ईंधन जैसी

जलते-जलते अब तो शेष बच गई
राख यौवन की मम! और इसलिए
आज चुकाने हेतु पितृ-ऋण में
शास्त्र के तहत करके दत्तविधान
निपुत्रकत्व नष्ट किया पुत्र है अखिल
अभिनव भारत ही मम! जहाँ-जहाँ भी
विकसित करता है वह नयन-कमल को
वहाँ-वहाँ मैं देखूँ सृष्टि-कुतूहल
नव उन्नति शौल भालपटल पर अंकित
उदयोन्मुख तेज तरुण, तब पुनः-पुनः
मेरे भी उदयोन्मुख होत हृदय में
आशा नव, आकांक्षा उच्च, भासमान
अस्मदीय वंशवृक्ष का गौरव
भारतीय केवल ना, मानवीय भी
वंश के गौरवार्थ! अखिल मानवीय
यौवन में अनुभव करूँ मैं यौवन
और पितर मेरे वे प्रेम तर्पण!
आ जा तू मृत्यु—इस तरह मैंने
जुगाड़ करके ही ऋण चुका दिए,
और लगभग सारे खत्म हो गए
दिन के वे कार्य भी : यद्यपि कभी
उदित होत है दिन[1], कब अस्त होत वा;
कर्म कौन से हैं, कार्य कौन से
इसके बारे में पंचांग[2] भिन्न-भिन्न हैं
भट्ट तथा पंडित भी भिन्न राय देत,
फिर भी लोकसंग्रहार्थ, धारण के लिए
मानवीय आत्यंतिक आत्म-स्वहित के
सज्जन को जो उचित ऐसे ही सब
कार्य धर्म्य माने मैंने, उनमें से ही
तदनुरूप एक का जो बोझ नियत है
मैंने अपना वह बोझ उठा लिया
यथाशक्ति यथापरिस्थिति अभंग-सा

धारित यह व्रत कदापि किमपि न भय से।
सत्कुल, अव्यंग देह, परम दयालु
जनक तथा जननी भी, उनसे भी और
वत्सलता से जिसने पाला-पोसा
अग्रज, जो अग्रगण्य तपस्वियों में
मूर्त विनय ऐसा अनुज, अद्वितीय-सा
प्रेयों का प्रेमपुण्य; धन्य और वह
ध्येय महत्, देता जो नित जीवन को
सार्थकता मनुजों के, काव्यमय बना
देता जो जिंदगी को, पूत चरित्र को;
तप भी कुछ, जय भी कुछ, यश भी कुछ वह,
कुछ थोड़ी मान्यता सरस्वती की
राजसभा में कविरत्नभूषिता
चख लिये रस विभिन्न, सूँघ लिये वे
शतभूजलवायुललित शतपरिमल भी
पंचाग्नि में प्रखर दाहयुक्त-से
उत्ताप से लेकर प्रीति के मृदुल
स्निग्ध परिष्वंगों तक सभी-सभी
शीतल, शीतोष्ण, उष्ण अनुभव कर लिये
कटिबंधस्पर्श[३] और श्रवण भी किए
स्वरशत, शतभाषा, शतगीति नवनूतन
शतमंजुल कंठों से—और मृत्यु के
शतकठोर कंठों से घर्घर करते;
विभिन्न जन, जनपद औ' जाति विभिन्ना
देश और दृश्य कितने, भूमि के महा—
संग्रहालयों में विचरत देख लिये।
सुरूप और सुरेख और सुललित ऐसा
देखा है आँखों ने किमपि क्यों न हो
मृत्यो! इन नयनों को मिटा दे अभी!
—यदि तू आवश्यक मानत है मिटाना!
जो सुरेख देखा है—किमपि पर वह था!
प्रीति विपल : विरह चिरंतन! यौवन में,

प्रौढ धुरंधर जिसको ना उठा सकें,
ऐसी महनीय धुरा सम्हालना पड़ा!
इसलिए अभी अधूरी ही रह गई
खेल की उमंग रम्य चाँदनी रात में
इस जीवन के मम! फिर भी जानकर यही
कि ययाति की हवस भी न पूर्ण हुई
यद्यपि सारी उसकी जिंदगी उसने
एक खेल बना दी थी, और देखकर
इच्छा के बीजों का फल भोग जब बना
इच्छा के बीज ही उसके अंदर हैं,
और अनुभव करके एक भूख की
एक भोजन से जो तृप्ति हो गई
तृप्ति हजारवें भी भोजन से मिलती
है उतनी ही औ' ठीक वैसी ही;
मैं देता हूँ अनुमोदन तुझे इस तरह
खत्म करा देने को जीवनलेख इसी पृष्ठ पर
पृष्ठ जो अग्रिम हैं वे पीछे के
पृष्ठों की पुनरुक्ति ही क्यों न हैं, तभी!
मैंने जब दिन था तब कभी व्यर्थ न गँवाया
दिन के अस्तार्थ अत: दु:ख ना मुझे।
—डर नहीं कल का भी! मृत्यु के पश्चात्
यदि होगा इस अंधकार-लता का
खिलता दूजे[४] दिन का फूल भी, तो भी
डर न मुझे, क्योंकि जो बोया हमने
वहीं खिलता औ' फलता, कहते हैं वहाँ।
और मैंने बोए हैं बहुत कष्ट से
बीज वही जो चुनकर दिए थे मुझे
उन्होंने ही अत्युत्तम देख, मानकर
बोने फलाशाविरहित तुम यदि वैसे
वर्तन कर लेंगे ऐसी स्थिति में अन्य भी;
तो भी लोकोन्नति-विनाश हो ना जाए ऐसा
वर्तन करो' वैसा ही यत्न किया मैंने

बचपन से। 'जिस तरह अन्य तेरे साथ
व्यवहार करें, ऐसा लगता हो कभी तुझे
तू भी कर व्यवहार औरों के संग'
—संतवचन का पालन कर दिया मैंने
यदि आपद्धर्म कभी स्वीकृत कर लिया
वह भी इसलिए कि कभी स्वयं धर्म ने[५]
कर दिया हवाले आपत्ति के ही मुझको!
जब हरित घास के मृदुल कालीन—
पर दस कदम ही आँगन में यहाँ
कारागृह में कभी मैं चल पड़ा
आत्मौपम्य बनत चित्त द्रवित-सा तदा
कई बार पैर अकस्मात् उस समय
स्तंभित हो जाते थे पल-पल में
कुछ भी करने पर उस तरुण कच्ची
घास के अंकुरों को दर्द हो जाएगा
इस डर से पैर उनपर पड़ना ना चाहता
हाथ का कँवल कभी हाथ में रहे
इसलिए कि उसमें होते थे जो दाने
वे बीज ही तो थे! हम खाते थे
फल जो, वह भ्रूणघात[६]? और कभी-कभी
मुझे आशंका हो जाती, पागल हुआ हूँ!
आत्मौपम्य वर्तन इस तरह का
मन मेरा करता था, तब हर कदम
मृत्युसमान दुःख होत देख जगत् में
पूर्ण असंभव इसका आचरण होता
फिर भी मैंने कोशिश की; अज्ञता से
या असंभवनीयता से पद कभी
स्खलित होगा भी तो होगा ही सही
इसलिए न डर कल भी है। श्मशानभूमि का
परतट प्रदेश जो अपरिचित वहाँ
सुखकर यात्रा करवाएगा ऐसा ही
पहचान-पत्र है हमारे पास ही स्वयं

भगवान् श्रीकृष्ण का—श्रीमत्तां गृहे
शुचीनां च! वा गेहे योगिनामपि
'कश्चित् कल्याणकृच्च तात दुर्गतिम्
नहि गच्छति' नहि गच्छति कह दिया तथा
वे निरीश्वर[७] स्वभाववादि भी मुझे;
इसलिए यदि सत्य ही जो कह रहे हैं
स्वर्ग, नर्क, जन्मांतर, बंध, मुक्ति वा
निज कर्म का ही सब परिपाक है
मृत्यु का नगरद्वार जिसमें खुलता है
उस अदृष्ट नगर के अति सुरम्य-से
आरक्षित रख दिए हैं बँगले
पहले ही हमने ही जमा करके
कर्म का, धर्म का नियत बयाना!
फिर भी यदि स्वर्ग, जीव, बंध, कर्म वा
ऐहिक ही इंद्रजाल है, औ' यदि
संघातोत्पन्न भाव है यह जीव
मृत्युपृथक्करण में अभाव में[८] खोता
तो भी सर्वोत्तम ही! मृत्यु एक सुषुप्ति
अथवा प्रत्यक्ष मुक्ति! पंच भी ऐसे
मिश्रित भूतांश पृथक् मुक्ति पाकर
विहार करें स्वेच्छा से नए मिश्रण में,
या स्वयं, या शून्य में! इंद्रधनु वैसा
संज्ञा के अंबर में विपल ठहरकर
विपल में ही यह मेरा भी यद्यपि
विश्व के अंतर्हित 'मैं' में विलुप्त हो
तो भी मृत्यु! मृत्यु न तू! मृत्यु ही मुक्ति!
—विपल में ही! पर विनति बस इतनी-सी
आना है तो झट से आ जाओ, तेरा
दुर्लौकिक दुनिया में, लोग जो तेरा
द्वेष करते हैं, न इसलिए कि तू
निर्दय वा निंद्य है, देखकर तुझे
कोइ न जो लौटा है, कि जो कह सके

तू कैसा है! पर विशेषत:
मृत्यु! तू अप्रिय-सी विश्व में कि तेरा
सैन्य, पुरस्सर, पीड़क जो घृणास्पद
बीमारी का क्रूर, उसके कारण ही!
न मैं केवल, पर अजातशत्रु विश्व में,
तुल्य जिसे प्रिय-अप्रिय, हानि-लाभ ऐसे
भगवान् श्री गौतमजी को भी लगा था
रोग जरा अप्रिय ही : 'लाभ न दूजा
स्वास्थ्य सम दुनिया में' धर्मपद[१] कहे
फिर भी जो कोई ना खोलेगा तुझे
स्वेच्छा से दरवाजा, दुर्ग वे हठी
जीतने जीवन के, तू भेज दे सही
रोगों की सेना जो पीड़ा करती
मैं तो जो न खुल जाएँगे तो टूटेंगे
ऐसे दरवाजे खोलकर स्वयं
इस मेरे गृह के, तव स्वागातार्थ ही
हे अनिवार्य! सिद्ध यहाँ, इसलिए अभी
आ जा तू अखिल वीर-वीर विजेता!
बस अकेला, अपुरस्सर और अकस्मात्
यदि असंभव है ऐसे अकेले ही आना
तेरे लिए, तो उस क्रूर पीड़ादायक भी
रोग की सेना का क्षोभ झेलने
मैं हूँ सिद्ध। अभी ये दो वर्ष ही
देख ही रहा है तू मुझको ऐसे
शरपंजर से जकड़ा! जिसे मधुर लगा
जीवन का मधु, प्रकाश चक्षु को,
प्रीति हृद को, ऐसा मैं उस सभी सुख के
मूल्य के तौर पर मृत्यु की पीड़ाएँ भी
मान कर्तव्य सहन करने सिद्ध हूँ यहाँ!

(अंदमान)

टिप्पणियाँ : १. अर्थात् यह जीवन। यह जन्म ही इसका आरंभ है या केवल रूपांतर, मृत्यु ही अंत है या केवल तिरोधान, इसे कौन बताए?

२. अर्थात् स्मृति आदि ग्रंथ, स्मृतिकार, दार्शनिक—'नैको ऋषिर्यस्य वचः प्रमाणम्'।
३. इस शब्द का श्लेषार्थ उस रूपक के मानसिक तथा भौतिक दोनों अर्थों को पुष्ट करता है।
४. दूजे दिन का फूल = पुनर्जन्म। अगर दूसरा जन्म होगा तो वह कर्मफल के अनुसार होगा, यह सिद्धांत भी सत्य होगा।
५. धर्म ही अपनी रक्षा के लिए कभी-कभी आपद्धर्म का हथियार अपनाता है।
६. जो कुछ खाने को प्रारंभ करें, उसकी हत्या की आशंका से कँवल निगला ही न जाए। फल भावी वृक्ष का गर्भ ही है। जो नारियल हम खाते हैं, वह भ्रूणघात ही है, ऐसा सोचकर जीना असंभव तथा अनीतिकारक लगता था। पागल जैसी अवस्था बन जाती थी।
७. निरीश्वरवादी, स्वभाववादी—बुद्ध की तरह, सांख्यों की तरह। कर्मफलों का तथा पुनर्जन्म का सिद्धांत उनका तथा परमेश्वरवादी श्रीकृष्णादियों का एक ही है।
८. अभाव में। चार्वाक अथवा आधुनिक विचारक स्पेंसर, मिल आदि प्रत्यक्षवादी दार्शनिक जो कहते हैं उसी को सच मान लेने से भी चिंता नहीं है।
९. धर्मप्रद। 'न ह्यारोगसमो लाभः संतुष्टि परमं धनम्'—धर्मप्रद।

हिंदू नृसिंह

: १ :

हे हिंदू शक्ति-संभूत-दीप्ततम तेज
हे हिंदू तपस्या-पूत ईश्वरी ओज
हे हिंदू श्री-सौभाग्य-भूति के साज
हे हिंदू नृसिंह प्रभो शिवाजीराज
यह हिंदू राष्ट्र करता है। वंदन
करता है तुम्हारा अभि-नंदन
तव चरणों पर भक्ति का। चंदन
गूढ़ कामना पूर्ण करा दो, कह न सकत जो आज
हे हिंदू नृसिंह प्रभो शिवाजीराज!

: २ :

प्राचीर भग्न है किले-किले की आज
यह भग्न पड़ा जयदुर्ग कीर्ति का ताज

लग गया जंग तलवार भवानी[१] पर,
इसलिए खो गया भवानी[२] का आधार.
गढ़ किले दुर्ग सारे ही। भग्न हैं
ऐश्वर्य राजधानी का। लुप्त है
परदास्य-पराजय में जन। तुष्ट हैं
दुनिया में ऐसे जीना है इक लाज
हे हिंदू-नृसिंह प्रभो शिवाजीराज

: ३ :

जो शुद्धि हृदय की रामदास ने देखी
जो बुद्धि पाँच रिपुओं ने परखी
जो युक्ति कूटनीति में खलों ने देखी
जो शक्ति बलोन्मत्तों को कुचलती सनकी
वह शुद्धि ध्येय-कर्मों में। आज दे
वह बुद्धि मासूमों को। आज दे
वह शक्ति खून में ही। आज दे
जो मंत्र रामदास ने दिया, दे आज
हे हिंदू नृसिंह प्रभो शिवाजीराज!

(रत्नागिरी, १९२६)

टिप्पणियाँ : १. शिवाजी की तलवार का नाम 'भवानी तलवार' था।
२. देवी भवानी।

हिंदुओं का एकता-गान

(**परिचय :** यह पद अखिल हिंदू मेले के लिए पहले-पहल शिरगाँव में (रत्नागिरी के निकट) रचा। आगे चलकर बड़ी-बड़ी सभाओं में ब्राह्मणों से लेकर महार-भंगियों तक हिंदुओं के हजारों नर-नारियों द्वारा इसे गाए जाने की परिपाटी पूरे महाराष्ट्र में प्रचलित हो गई और यह एक वृंदगीत बन गया। अन्य भाषाओं में भी अनूदित होकर यह अनेक राज्यों में गाया जाता है।)

आप और हम सकल हिंदू। बंधु-बंधु
महादेव हैं पिता हमारे नमन उन्हें कर दूँ॥ध्रु.॥
ब्राह्मण या क्षत्रिय कोई। यदि भले
कोई भी रूप या रंग। पहन लें

वह महार अथवा मांग। सब सुन लें
यह एक हमारी हिंदू जाति माँ, उसे नमन कर दूँ॥ धृ. १॥
एक ही देश है अपने। प्रेम का
एक ही छंद जीवों के। काव्य का
एक ही धर्म है हम। सकल का
यह हिंदू जाति की गंगा हम सब उसके ही बिंदु॥ धृ. २॥
रघुवीर रामजी प्रभु का। जो भक्त
गोविंद पदांबुज पर जो। अनुरक्त
गीता का गायन करके। निश्चिंत
वह हिंदू जाति की नौका में तर जाता भवसिंधु॥ धृ. ३॥
हम दोष एक दूजे के। मिटा दें
द्वेष और दुष्ट रूढी को। छोड़ दें
माता के खातिर सख्य। जोड़ दें
अपराधों को भूलेंगे हम, प्रेम करेंगे बंधु॥ धृ. ४॥
बच्चे हैं हिंदू जाति के। हम सभी
अस्मदीय हिंदू धर्म की। हम सभी
प्राणार्पण करके रक्षा। करें तभी
एक पूर्वजों का ध्वज लेकर हम सारे बंधु॥ धृ. ५॥

(रत्नागिरी, १९२५)

हमारा स्वदेश हिंदुस्थान

(**परिचय :** रत्नागिरी के अखिल हिंदू-मेले का पद।)

हमारा स्वदेश हिंदुस्थान
हिंदुओं का वही हमारा केवल है, जी, प्राण॥ ध्रु.॥
देवालय यह पवित्र अपने। देवों का सुमहान
पुरखों का यह सुंदर मंदिर। स्वर्ग मृतों का जान
नन्हे मुन्हो की दाई यह। कराती है पय-पान
फल-फूलों से डँवरा है यह। प्रेम का उद्यान
सत्ता अपनी मत्ता अपनी। यह रत्नों की खान
अगर चुराने आया कोई। न्योछावर हैं प्राण[1]

(रत्नागिरी, १९२५)

टिप्पणी : स्वतंत्रता के बाद किया गया सुधार—'लेंगे उसके प्राण'।

दीपावलि का लक्ष्मी पूजन

(**परिचय :** यह गीत रत्नागिरी की हिंदू सभा के उस मेले के लिए बनाया था, जो दीवाली में विदेशी पटाखे आदि चीजों का बहिष्कार करने का उपदेश करते घूमता था।)

लक्ष्मीपूजन आज घरों में यद्यपि होता है
प्रसन्न पूजा से न होत है, लक्ष्मी कुपिता है
अंग्रेज वहाँ पूजा करत न लक्ष्मी-मूर्ति की
सेवा करती दरवाजे पर ऋद्धि-सिद्धि उसकी
सुनो बंधुओं, क्या है कारण? लक्ष्मी रूठी क्यों?
ठुकराती है .पूजा हमरी शतकों की देखो.
क्योंकि पुष्प हम अर्पण करते हैं, पर ना दिल से
विष्णुसम उसे जीत न लेंगे कभी पराक्रम से!
लक्ष्मीपूजन करने हेतु जब स्नान करते हैं
साबुन, तेल भी सभी पराया प्रयोग करते हैं
विदेश के रेशम की धोती करके परिधान
विदेश के रंगों से मंदिर करते रंगीन
विदेश की शर्करा डालकर भोग चढ़ाते हैं
ऐसे पूजन से लक्ष्मी को प्रसन्न करते हैं?
साबुन ले जाए करोड़, औ' करोड़ ले जाए तेल
लूटकर हमें विदेश होता है मालामाल
लक्ष्मीजी को भोग चढ़ाने चीनी विलायती
ले आए, जो करोड़ रुपए विदेश पहुँचाती
इस प्रकार से लक्ष्मी को पहुँचा के विदेश में
लक्ष्मीपूजन करते बैठे केवल मंदिर में
और विदेशी आतिशबाजी करके मस्ती में
ऐलान करेंगे अपने पागलपन का दुनिया में
अजी हिंदुओ, करोड़ रुपयों की इस इक दिन में
लक्ष्मीपूजन हेतु भेज दी लक्ष्मी विदेश में
अत: आज लक्ष्मी का पूजन घर में होता है
प्रसन्न पूजा से न होत है, लक्ष्मी कुपिता है
सुनो हिंदुओ, घर में लक्ष्मी को पहले लाओ

विदेश की चीजें न छुएँगे, यही प्रण मनाओ
देशी तेल, औ' देशी, साबुन, देशी वस्त्रों से
देशी चीनी, देशी अस्त्र औ' देशी शस्त्रों से
स्वदेश लक्ष्मी की पूजा हम मंगल वेला में
करेंगे तभी गजांतलक्ष्मी आएगी घर में!

(रत्नागिरी, १९२५)

दुष्ट शराबी!

(सन् १९२६ पूर्वास्पृश्यों के मेले के लिए रचा गया गीत।)

तुम छोड़ो जी भाई। दुष्ट शराब को॥धृ.॥
ललचाया है इस प्याले ने। कैसा जी तुमको॥दुष्ट १॥
पैसा देकर विष पीते हो। जानो इस सच को॥दुष्ट २॥
कमा रहे हो जो कुछ दमड़ा। देते बोतल को॥दुष्ट ३॥
दोगे फिर अब भूख मिटाने। क्या कुछ बच्चों को॥दुष्ट ४॥
होश गँवा के पीट रहे हो। गरीब बीवी को॥दुष्ट ५॥
क्षणिक ऐश के लिए व्यर्थ क्यों। करते जीवन को॥दुष्ट ६॥

जाओ जूझो!

(**परिचय :** रत्नागिरी की तरुण हिंदू मंडळ नामक क्रांतिप्रवण संस्था के लिए यह गीत रचाया।)

निजजाति-दमन से हृदय क्यों न तिलमिलता?
तुम युवक, रंगों में रक्त नया सनसनता
यह नया रक्त तो बिजली-सा जल जाए
तुम स्वयं मृत्यु से जाकर गले लगाएँ
फिर मुकुट हमारा किसने। तोड़ा है
हिंदवी ध्वज किसने भी। तोड़ा है
आशा का अंकुर किसने। तोड़ा है
यह सोच-सोचकर क्रुद्ध आँसु दहकाते
दिन-रात चक्षुओं में क्यों ना आते?
इस भारतभू के समर-रंग में सारे
इस चिंता से बहु वीर युद्ध में गुजरे

कुछ भीषण पीड़ा चितागिन में जल गए
फाँसी के फंदे में कुछ अविचल-से रह गए
इस क्षण उनकी इच्छाएँ। अतृप्त
आवाज दे रहीं तुमको। संतप्त
क्या कोई सुन सकता है। अंतस्थ
यदि सुन सकते हो, उठो, जो भी तुम हो, जी
सर हाथ लिये जाओ, तुम जूझो, जी

(रत्नागिरी, १९२६)

माला गूँथते जी

माला गूँथते जी। सुनो कविता को। कौन कैसे गूँथता माला को
पहनत जगदंबा। त्रिगुणातीत को। त्रिगुणी बिल्वदल माला को
प्रकृति गूँथती है। प्रभु विराट् को। नव-नव सूर्य-मालिकाओं को
प्रलयंकर काली। गूँथत महाकाल को। नरमुंड चंडमाला को
उद्भव करती है। करती उद्भव को। सृष्टि भूकंप माला को
गूँथत सत्यभामा। सत्य श्रीहरि को। हरसिंगार-पुष्पमाला को
माला मोतियों की। गूँथत है, देखिए। रानी राजा के लिए
फूलों की माला। माला गूँथत रती। अनंग-आलिंगन करती
विरहिणी बेचारी। प्रिय-स्मरण-काल को। गूँथत माला में आँसुओं को

(रत्नागिरी, १९२६)

सुखशय्या मंचक

(**परिचय :** मराठी के पंडित कवि मोरोपंत के वंशज श्री रा.द. पंत पराडकरजी ने सावरकरजी को एक लोहमंचक 'सुखशय्यामंचक' नाम से उपहार में दिया। इस उपहार को स्वीकार करने वाला निम्न कविताबद्ध पत्र सावरकरजी ने उन्हें भेजा।)

आप हैं मयूरवंशज, कवि का उस भक्त पुरातन मैं हूँ
आपको तथा उनको सम्मानार्थे प्रणाम करता हूँ
आर्या-केका-स्वाहाकार-कार्य में[1] आप निमग्न हैं
पंत पराडकर, ऐसे सुनकर मुझको हर्ष हो रहा है
जब तक ध्येयप्राप्ति न, जब तक टूटे न राष्ट्र का पाश
तब तक हिंदू जाति के गौरव-रवि को बद्ध राहु-पाश

तब तक यह बिस्तर जो आपने उपायन[२] भेजा
उस[३] निद्रा को दे दें, जिसमें नित कर्तव्य का मुलाहजा
इस देह को थकी[४]-सी करने पुनरपि युद्ध-उद्युक्त
यह सुखशय्या दे दें निद्रा, निरपवाद औ' युक्त

(रत्नागिरी, १९२६)

टिप्पणियाँ : १. मोरोपंत द्वारा लिखित 'आर्या केका' नामक काव्य का आवर्तन, जो राममंदिर में उनके वंशज द्वारा आयोजित था।

२. उपहार।

३. मंचक का नाम 'सुखशय्या' था। कवि कहते हैं कि यद्यपि यह 'सुखशय्या' है, वह मेरे लिए तब तक 'रणशय्या' बने, जब तक हिंदू जातीय राष्ट्र-स्वतंत्रता का ध्येय प्राप्त न हो जाए। रोज के युद्ध में थका हुआ जीव कल के युद्ध का सामना करने के लिए पुनः समर्थ हो जाए इतनी ही निद्रा जिस तरह सैनिक को दी जाती है, उतनी ही मुझे प्राप्त हो जाए।

४. कवि उस समय उम्रकैद के कारावास से अभी-अभी छूटकर आए थे। उस 'थकान' का उल्लेख पराडकरजी के पत्र में था। वही यहाँ सूचित किया है।

अखिल-हिंदू-विजय-ध्वज-गीत

अखिल-हिंदू-विजय-ध्वज को उठा लो पुनः ॥ध्रु.॥
उस समय इसी ध्वज को, जी। फहराया लंका पर, जी
जब रामचंद्र ने साधी। रावणवध-कामना ॥१॥
करत ज्यों सिकंदर हमला। चंद्रगुप्त को विजयमाला,
पहनाकर हिंदूकुश पर भी। इसकी का चढ़ना ॥२॥
रक्षार्थ इसी ध्वज की, जी। शालिवाहन महा-गाजी,
छिन्न-भिन्न करत समर में जी। शकों की सेना ॥३॥
विक्रमादित्य ने हूणों को। हराया था जिस स्थल को,
उस मंदोसर के रण की। यही गर्जना ॥४॥
करते थे हिंदू महा-नृप। अश्वमेध का संकल्प,
तब करता था यह ध्वज ही। विजयघोषणा ॥५॥
प्रतिशोध हिंदू-पीड़ा का। मद-मर्दन मुसलिमों का,
करके ही, करत शिवाजी। वीर वंदना ॥६॥

ध्वज यही लेकर गया। दिल्ली तक पहुँच गया,
मुसलमानी तख्त तोड़त है। भाऊ दनदना॥७॥
आंग्ल दैत्य भी जब आया। समुद्र से उतर, घुस गया,
समुद्र में उसे डुबाया। करत क्रंदना[१]॥८॥

टिप्पणी : १. भारत जब परतंत्र था तब यह ध्वजगीत रत्नागिरी में ईसवी १९३४ में सावरकरजी ने रचा था। उस समय उसकी आठवीं कड़ी इस प्रकार थी—

'आगे खंडित यश हो गया। ध्वज हाथों से गिर गया
प्राणों की बाजि लगा के। उठा लें पुन:'

हिंदुस्थान जब स्वतंत्र हो गया तब सन् १९५१ में इस आठवीं कड़ी के स्थान पर, आंग्लदैत्य को भी समुद्र में डुबाने वाली कविता में दी हुई नई कड़ी सावरकरजी ने रची।

सूतक युगों का खत्म हुआ

(परिचय : रत्नागिरी के सबसे प्राचीन श्रीविट्ठल मंदिर में पहली बार भरी सभा में पहला पूर्वास्पृश्य जिस दिन प्रवेश कर सका, उस समय यह पद गाया गया। शिवू भंगी नामक एक भंगीपुत्र ने सभा मंडप की अंतिम पौड़ी पर सभा की अनुज्ञा से इस पद को गाना प्रारंभ किया। उसके वे करुण-मधुर आलाप तथा साभिनय विनती सुनती हुई करीबन तीन हजार लोगों की सभा इतनी प्रभावित होती चली कि पौड़ी के बाद पौड़ी चढ़ने की अनुज्ञा प्राप्त होते वह भंगी कुमार विट्ठल के सभामंडप के भीतर आकर खड़ा हो गया! अस्पृश्यता का तथा भगवान् के मंदिर में पूर्वास्पृश्यों को मना करने का अन्याय दूर करने के लिए स्पृश्यों का धन्यवाद अदा करने का उत्तान अर्थ यद्यपि इस पद में है, तो भी उन धन्यवादों की अपेक्षा जो घोर अन्याय आज तक चल सका उसी का प्रच्छन्न धिक्कार उसमें तीव्रता के साथ ध्वनित हो रहा है।)

दिया आने को तुमने प्रभु के द्वार
मैं मानूँ जी आभार॥ ध्रु.॥
वरदान दिया छू के सिर यह पतित
मैलाया अपना हाथ
इन चरणों पर दिया मुझे रखने को
मेरे इस पतित ही सिर को
तुम सूरज हो धर्म के, पर अद्‌भुत किया
तिमिर का छू लिया साया

जो बहिष्कृत था उसको लाया अंदर
गाँव के बाहर जाकर
तुम हिंदू हो, करीब लिया हिंदू को
अहिंदू से, अजीब यह देखो
यह सूतक युग-युग का, जी
खत्म आज हो गया है, जी
झगड़ा ही सब मिट गया, जी
शत्रु का जाल टूटा, जी
हम सदियों के दास : आज सहकार
मैं मानूँ जी आभार!

(रत्नागिरी, १९२९)

हा भगतसिंह! हाय हा!!

(**परिचय :** सरदार भगतसिंहजी को २३ मार्च, १९३१ के दिन फाँसी हो गई। उस समय स्वातंत्र्यवीर वि.दा. सावरकर रत्नागिरी में स्थानबद्ध थे। उन्हें भगतसिंह की फाँसी की खबर दूसरे दिन मिल गई। इस वार्त्ता से उनका जो मन: क्षोभ हुआ, उसी के फलस्वरूप यह कविता उन्होंने रची। तुरंत रत्नागिरी के 'हिंदू तरुण मंडळ' के युवकों ने इसे गुप्त रूप से कंठस्थ किया और दूसरे दिन भोर के समय, पुलिस सतर्कता के पहले ही, उन चुनिंदा युवकों ने इस गीत को गाते-गाते रत्नागिरी नगर में प्रभात फेरी निकाली और सारा रत्नागिरी नगर भगतसिंह की तथा स्वातंत्र्यलक्ष्मी की जय-जयकार से दनदनाया।)

हा भगतसिंह, हाय हा
तुम हमारे ही लिए जी, जा रहे हो, हाय हा!
राजगुरु तुम, हाय हा!
राष्ट्र-रण में, जूझते ही, गिर रहे हो, हाय हा!
हाय हा, जय जय अहा!
आज की यह 'हाय हा' ही कल बनेगी जय, अहा!
मुकुट धारण वह करे
मृत्यु का ही मुकुट सिर पर प्रथम जो धारण करे!
शस्त्र लेंगे हम सभी
जिसे लेकर समर में तुम लड़ रहे थे आज भी!
अधम भी तो कौन है?

वीरता के हेतु की तन शुद्धता जो न रखत है
हुतात्माओ, जाइए!
प्रतिज्ञा हम कर रहे हैं, उसकी गवाही देखिए!
शस्त्रसंगर चंड है
जूझकर हम विजय पाएँगे यही निर्धार है!
हा भगतसिंह, हाय हा!

सुन लो भविष्य को। भव्य भीषण को

(**परिचय :** स्वतंत्र हिंदू राज्य नेपाल के प्रतिनिधियो, नेपाल के गुरखा संघ के अध्यक्ष श्रीमान् लेफ्टिनेंट ठाकुर चंदनसिंहजी और श्रीमान् कैप्टन प्रिंस हेमचंद्रसमशेर जंग बहादुर राणा महाशय, को रत्नागिरी नागरिकों की ओर से २ नवंबर, १९३१, शुक्रवार को सम्मानपत्र दिया गया। इस समारोह के पहले चित्पावन ब्राह्मण स्वातंत्र्यवीर बै. वि.दा. सावरकर, नेपाल के स्वतंत्र हिंदू राज्य के राणावंशीय क्षत्रिय प्रिंस समशेर जंग और रत्नागिरी के एक सभ्य हिंदू भंगी तीनों ने कंधे से कंधा मिलाकर पतितपावन के चरणों में पुष्पांजलि अर्पण कर दी। उस समय हजारों लोगों ने तालियों की झड़ी लगाई। इसके बाद जो सम्मान समारोह संपन्न हुआ, उस समय बीस युवतियों ने यह स्फूर्तिमय गीत गाया।)

सुन लो भविष्य को। भव्य भीषण को॥
विगत भयहत वर्तमान में।
हिंदू जाति अब प्रण लेकर चल पड़ी रण को। भव्य॥ ध्रु.॥
एक-एक हर कोई। एकरूप ही बन जाए।
करोड़ संख्य हिंदूजाति। सुसज्ज इस क्षण को॥ भव्य १॥
सहनशीलता स्तंभ। टूटकर विकराल जृंभ॥
संचरत अब नृसिंह। करत आघात अब चल पड़ी रण को॥ भव्य २॥
आज तक कष्ट दिए। उसके प्रतिशोध लिए॥
दुःशासन कशिपु कंस। छूट ना किसी को चल पड़ी रण को॥ भव्य ३॥
प्रभु स्थापित सिंहासन। प्राणों की लेन-देन॥
अपने अस्तित्व की ही बाजी लगाकर चल पड़ी रण को॥ भव्य ४॥
स्वयं होकर मुक्त। विश्व करेंगे मुक्त॥
ममता की समता की सुजनों की रक्षा को॥ भव्य ५॥

(रत्नागिरी, १९३१)

संत रोहिदास

(**परिचय :** रत्नागिरी के 'अखिल हिंदू मेले' के लिए रचा हुआ गीत।)

: १ :

संत रोहिदास। रोहिदास संत
प्रभुप्रिय एक भागवत ॥ध्रु. ॥
जाति से हिंदू॥ हिंदू चमार
मन में प्रेम की भरमार
नित्य कर्म उसका। उसका सीने का
चप्पलें जोड़ा जूतों का
उसी पर चलाए। चलाए गृहस्थी
मन में न ईर्ष्या एक रत्ती
सी के देत है। देत है दान में
जूते भक्तों को नंगे पाँवों में
स्नानोत्तर लेत। लेत वह मुँह से
नाम विट्ठल का बहुत प्रेम से
नित्य पूजा का था। पूजा का था बाण
शालिग्राम दिव्य महाप्राण
उसे रखता था। रखता था चमड़े का
संपुट बनाके सुंदर-सा
आसन भी उसका। उसका चमड़े का
बैठता-नाचता भक्ति प्रेम
संत रोहिदास। रोहिदास संत
प्रभुप्रिय एक भागवत

: २ :

उससे लोग हँसकर। हँसकर कहते थे
चमड़ा अशुद्ध उसके बीच
देवमूर्ति कैसे। कैसे रखी जाए
कैसे न उसको छूत लगे
उनसे संत कहत। कहत, भाई सुनो

कहता हूँ उसका अर्थ जानो
चमड़े के भीतर। भीतर गर्भ के
बैठा था मनुष्य माता के
माता देत दूध। दूध बहुत प्यार से
स्तनों की चर्म-कुप्पियों से
मुख मढ़वाया है। मढ़वाया है, भाई,
चमड़े से ही, प्रभु ने सभी का ही
मढ़वाए हैं हाथ। हाथ-पाँव, भाई,
प्राण भी चमड़े से, प्रभु ने ही
ऋषि-मुनि बैठते। बैठते तपस्या में
दोष न देखते मृग चर्म में
और व्याघ्र चर्म। चर्म महारुद्र
चाव से स्वीकरत उपवस्त्र
सांब महारुद्र। रुद्र जिसे स्पर्शत
चर्म वह अशुद्ध कैसे होत
अशुद्ध ना चर्म। चर्म ना चमार
वही है उसका अधिकार
अधिकारी सत्य। सत्य जो है भक्त
मांग या महार अथवा शाक्त
प्रेम ही अधिकार। अधिकार भक्ति
दे देत नाम-भजन मुक्ति
ऐसा हिंदूधर्म। धर्म विट्ठल का
सनातन उद्धार करत सबका
चित्त से जो शुद्ध। शुद्ध वही होता है
फिर उसकी जाति कोई भी है
अशुद्ध यदि चित्त। चित्त अशुद्ध यदि है
ब्राह्मण भी अस्पृश्य बनता है
क्षत्रिय भी अस्पृश्य होता है
महार था चोखा। चोखा मेळा संत
भगवान् उसको आलिंगत
और फिर सजण। सजण कसाई को
प्रसन्न प्रत्यक्ष प्रभु उसको

धंधा यह सारा। सारा उपकारी
उसके बिन बात नहीं प्यारी
इसलिए कोई। कोई भी कर्म की
छूत न मानें सत्य बाकी
यही हिंदू धर्म। धर्म विट्ठल का
धर्म है हमारे पुरखों का
आप हम हिंदू। हिंदू जाति के हैं
सारे विट्ठल के भक्त ही हैं
बचाएँगे धर्म। धर्म विट्ठल का
धर्म है हमारे पुरखों का
ऐसा रोहिदास। रोहिदास संत
प्रभुप्रिय एक भागवत!

पानी बना आग ज्यों

मेरा अद्भुत है यही, भभकती ज्वाला जलांतर्गत
सत्ता लेत सभी बलात् तब उसी सामर्थ्य को दहकत
बंदी में तुम जो अनन्वित छलों को अश्रु देते चले
वे ही अश्रु अभी असीम जलते शोले बने निश्चले॥१॥
बंदीगेह तभी अदम्य भभका पानी बना आग ज्यों
फाँसी के जलने लगे चबूतरे स्फुल्लिंग-आघात ज्यों
गुस्से का ज्वर हो उदीप्त तुझको, उत्ताप ऐसा महा
बेड़ी भी पिघली अभी जब उसे शोले लगे दुःसहा॥२॥
ऐसे ही कुछ काल अश्रु बहने दो तप्त, चिंघाड़ लो
ऐसा ही कुछ काल शोक कर लो, बरदाश्त पीड़ा करो
ज्यों-ज्यों पुष्ट-महान् आग भभकी जाए निरी अश्रु से
त्यों-त्यों पीड़क के समेत दहके पीड़ा तभी आग से॥३॥

यात्रा पर जाते समय

भक्ति से अपनी बनाया देवता को भक्त तुमने
नैन-शर से विद्ध करके सिंह जीता हिरनी ने
कल जिसे ना जानता था, रह सकूँ ना उसके बिना
इस तुम्हारी तनुलता से लिपट लूँ मैं दिल अपना॥१॥

बाहती हो स्वप्न में तुम, सुन रहा हूँ जागृति में
'और एक ही' के बहाने खो जाऊँ मैं चुंबनों में
जकड़ लेने पर बाँहों में, दिल न भरता नजदीकी से!
दूर जाने पर अचानक, दिल फटेगा दूरियों से॥२॥
मुसकराती कब समुत्सुक आ सकोगी मिलने मुझसे
आ सकोगी क्या कभी तुम यह बताओ, मिलने मुझसे
जाना है अनिवार्य! पर अब जब कभी लौट आओगी
प्रीति की थाती हमारी सूदसहित लौटा सकोगी॥३॥

हिंदू जाति द्वारा श्री पतितपावन का आवाहन

(**परिचय :** रत्नागिरी में श्री पतितपावन मंदिर के देवता-प्रतिष्ठापन का अभूतपूर्व उद्‍घाटन-समारोह संपन्न हुआ। उस समय मुख्य सभा में यह पद गाया गया। हिंदुस्थान में भी अपूर्व ऐसे उस अखिल हिंदू मंदिर में ब्राह्मण-क्षत्रियों से लेकर महार-भंगियों तक समस्त हिंदू बंधुओं का वह पाँच हजार से अधिक सम्मिश्र समाज, महाराष्ट्र के अनेक नेतागण, संत-महंतो के सहित शंकराचार्य डॉ. कुर्तकोटीजी की अध्यक्षता में हिंदूमात्र को वेदोक्त का तथा देवतापूजन का समान अधिकार न केवल शब्दों के द्वारा अपितु प्रत्यक्ष आचरण में वहीं के वहीं देनेवाला वह दृश्य कम-से-कम रत्नागिरी में तो पहले हजार सालों में किसी ने देखा नहीं होगा। उस समय यह एक समाजक्रांति के आंदोलन के रूप में ही विख्यात हुआ। उस समय भंगी, महार, मराठा, ब्राह्मण, वैश्य आदि जातियों की बीस चुनिंदा युवतियों ने सम्मिश्र रूप में खड़े होकर इस अखिल आवाहन का मंगलाचरण गाया था।)

उद्धार करो हिंदू जाति का अब, जी
हे हिंदूजाति के प्रभु जी॥ध्रु.॥
आब्राह्मण चांडाल पतित ही हम[१] हैं
औ' आप पतितपावन हैं
निजशीर्ष अशुद्ध हो जाएगा डर से
काटे थे स्वपाद[२] कब से
और पैरों ने स्व-शुद्धता-रक्षार्थ
कदमों को[३] काटा व्यर्थ
कभी सुन न सके अपने ही ये कान
इसलिए मुख[४] न कहत ज्ञान
दाएँ कर की बाएँ कर से जलन

बेचत है शत्रु को बदन[५]
जो बंधुओं को बंद करत दरवाजे
चोर वे गेह के राजे
पाप का भरा यह प्याला। रे
जो बोया वह फल-फूला। रे
हृदय में चुभत है भाला। रे
अब दया करो। मृत्युदंड या दो! जी
हे हिंदूजाति के प्रभु जी!
अनुपात प्रभो, जला देत सब पाप
अब दे दो जी, उ:शाप
निपटा के सब आज भेद-दैत्यों को
हिंदू-जाति स्मरत है प्रभु को
संजीवन दो तुम विच्छिन्न अंगों को
जोड़ दिया पुन: अब जिनको
दे दो बल जी, वामन को इस क्षण में
गाड़ दो बली पाताल में
यदि शस्त्र नहीं पागल इन हाथों में
है गदा तुम्हारे कर में
यदि मानोगे यह तुम अब। रे
हम कुछ भी कर दिखाएँ। रे
हम उठे, हाथ दो अब। रे
जैसा कि दिया कंस-वध किया तब, जी
हे हिंदू जाति के प्रभु जी!

(रत्नागिरी, १९३१)

टिप्पणियाँ : १. केवल अस्पृश्यों को ही पतित कहने से क्या लाभ? सच देखा जाए, तो हिंदू राष्ट्र का पूरा-का-पूरा राष्ट्र पतित हो गया है।

२. हिंदू समाज पुरुष के विराट् शरीर का 'ब्राह्मण' शीर्ष है, ऐसी कल्पना की गई है, किंतु खुद को छूत लग जाएगी इस आशंका से मस्तक पैरों को काट दे, ऐसी ही मूर्खता शूद्र को जन्म से ही दूर धकेलकर शरीरबंध को आमूलाग्र तोड़ डालने में किया।

३. अच्छा, स्पृश्यों के अलावा हिंदू तो एकजाति, एकजीव रह गए, ऐसा भी नहीं है। शूद्रों ने भी छूत लगने के भय से अतिशूद्रों को 'अस्पृश्य' माना। शरीरबंध

बिलकुल तोड़ डाला, पैरों ने छूत के भय से अपने ही कदमों को काट दिया।

४. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्, परंतु जिन्हें ज्ञान बताने के खातिर वे 'मुख' बन गए ऐसे श्रोताओं को, अर्थात् कानों को ही , इस मुख ने वेदादि पवित्र नाम बताने से इनकार कर दिया। ऐसे सभी तरह से शरीर का शरीरबंधविच्छेद शरीर ने ही चलाया। अंग ने अंगों को काट दिया।

५. वही बात क्षत्रियों की। जयचंद ने पृथ्वीराज को जीतने के लिए महम्मद गौरी को अपनी स्वतंत्रता बेच दी। दाएँ हाथ ने बाएँ हाथ की शान मिटाने के लिए अपनी पूरी देह को ही किसी के हाथ सौंप दिया। किंतु इसके साथ हम भी लूले बन रहे हैं, यह समझ में नहीं आ रहा था।

६. जिस जन्मजात जातिभेद ने समाज के टुकड़े कर दिए उस भेददैत्य का निर्दलन करने के लिए आज सारी जातियाँ एक 'हिंदूजाति में' सम्मिलित होकर हिंदुत्व के वेदोक्तादि समसमान संस्कारों का आचरण करते हुए यहाँ हम खड़े हैं। अब आगे का महत्कार्य करने के लिए शक्ति दो, साधन दो।

मुझे प्रभु का दर्शन करने दो

(**परिचय :** रत्नागिरी के किले पर स्थित श्रीमंत कीरसेठजी का प्रसिद्ध भागेश्वर मंदिर पूर्वास्पृश्यों के लिए खुल गया। उस समारोह में प्रभु की पूजा के लिए पूर्वास्पृश्यों के दिल की तिलमिलाहट को व्यक्त करने वाला सावरकर रचित यह पद पूर्वास्पृश्यों की ओर से भंगियों की दो कन्याओं ने गाया।)

मुझे प्रभु का दर्शन करने दो,
मुझे जी भरके प्रभु देखने दो॥ध्रु.॥
जो तुम करते हैं दिन-रात
उस मल से मैले मेरे हाथ
इसलिए विमल हृदय की बात
हृदय अर्पण करने दो॥१॥
मैं प्यास, जल वही जानो
मैं देह, प्राण वह मानो
मैं भक्त, वही भगवान्
चरण उसके अब छूने दो॥२॥
वह हिंदू-देव, मैं हिंदू
मैं दीन, वह दया-सिंधु
आप हैं मेरे धर्मबंधु,
मत रोको, मुझे जाने दो॥३॥

मथुरा जाते समय

तव संगति के गोकुल को, री छोरी,
छोड़ना अटल है अब, री
यह राजा का क्रूर दूत आया है
मथुरा को ले जाता है
हम राजा को मारें या मर जाएँ
रण होगा मथुरा में, री
हा हाय! प्रिये अंतिम हो सकती है
यह भेंट सखि, हमारी
इसलिए प्रिये, इस वेला में। री
विरह के तीव्र बोलों में। री
अश्रु की रचित कविता में। री
मैं देता हूँ तुम्हें प्रीति-दानों की
यह रसीद प्रिये, लो तुम्हारी

हिंदू-मुसलमान संभाषण

(**परिचय :** रत्नागिरी के अखिल हिंदू मंडल के लिए यह संभाषण स्वातंत्र्यवीर सावरकर ने रचाया। 'आप और हम सकल हिंदू बंधु-बंधु' जैसे हिंदुओं के एकता-गान के बाद इस संभाषण का मंचन किया जाता था।)

पहला हिंदू: एकता मान लो, नमन करूँ चरणों का।
यह हिंदुस्थान है, हिंदू मुसलमानों का॥ ध्रु.॥

मुसलमान : देश को अभी भी हिंदुस्थान कहते हो,
एकता बनाने चरण भी पकड़ते हो॥

पहला हिंदू: जी! गलती मेरी!! हिंदुस्थान मिटा दो!
इसलाम-वतन कह देंगे यदि तुम कह दो॥

मुसलमान : हिंदी का खून कर दो (पहला हिंदू : मान्य जी)
उर्दू की चलती कर दो (पहला हिंदू : मान्य जी)
नागरी लिपि छोड़ दो (पहला हिंदू : मान्य जी)

पहला हिंदू: कर लेंगे जो जो कह दोगे तुम, भाई।
एकता मान लो, पाँव पड़ें हम, भाई।

मुसलमान : शुद्धि की, परंतु, सनक बंद कर दो जी।

दूसरा हिंदू : पर तुम भी तो धर्मांतरण छोड़ो जी॥
मुसलमान : 'पर', 'यदि' वगैरा शर्तें रखते किससे।
पाला पड़ना है मुसलमान बंदों से॥
पहला हिंदू: हाँ! खान! भाई हाँ! क्षमा कीजिए साहिब!
यह झगड़ालू है हिंदू संगठन रोब॥
मुसलमान : बना देंगे मुसलिम हम हिंदू को। (पहला हिंदू : मान्य जी)
तुम नहीं बदलना किसी मुसलिम को। (पहला हिंदू : मान्य जी)
शुद्ध ना करो कभी भी भ्रष्टों को। (पहला हिंदू : मान्य जी)
पहला हिंदू: पाना न कभी, खोना ही व्रत हिंदू का।
एकता मान लो, नमन करूँ चरणों का॥
दूसरा हिंदू : पर भगा लेत हैं हिंदू लड़कियाँ जो तुम।
मुसलमान : एकता न होगी यदि लाओगे यह तुम॥
पहला हिंदू: मत करना गुस्सा, मियाँ, छोड़ दो इनको।
तुम ले जाओ जी मेरी भी बेटी को॥
मुसलमान : स्वेच्छा से हिंदू भ्रष्टत हैं मलबार में।
पहला हिंदू: हाँ, एक कहीं थोड़ा-सा पीड़ित उनमें॥
दूसरा हिंदू : कोहाट में तो बहुत हिंदू मारे गए।
पहला हिंदू: ये कायर हिंदू क्यों वहाँ मरने गए॥
मुसलमान : और कलकत्ते में मुसलमान मर गए।
पहला हिंदू: ये अत्याचारी हिंदुओं ने वध किए॥
मुसलमान : खलीफा को मानत गुरु ही मुसलिम राज्य।
पहला हिंदू: इसलिए हमें भी स्वपिता से वह पूज्य॥
मुसलमान : 'मुसलिम राज करेंगे' कहते हैं धर्म।
पहला हिंदू: तो तुम ही कर दो, हिंदू न जानत मर्म॥
मुसलमान: वाद्यों को अपने तोड़ दो। (पहला हिंदू : मान्य जी)
गोवध की निंदा छोड़ दो। (पहला हिंदू : मान्य जी)
मूर्तियाँ तुम अपनी तोड़ दो। (पहला हिंदू : मान्य जी)
दूसरा हिंदू : (पहले हिंदू से) 'मान्य जी! मान्य जी!' क्या यह रट पागल की।
बस करो प्रदर्शनी अपनी नपुंसकता की॥
(पहले हिंदू को धक्का देकर हटाता है, और आगे कहता है)
यह देखो तुम मुसलमान भाई हैं।
पर बंधु सम यदि व्यवहार तुम्हारा है॥

अन्योन्य हितार्थे हो जाए एकता।
यदि अडिग रहोगे, चलने दो दूरता॥
यदि आओगे तो साथ, नहीं तो हम ही।
लड़ लेंगे अकेले, जीतेंगे युद्ध ही॥
जीता था शक-हूणों को जिन वीरों ने।
औरंग तथा अफ़ज़ुल्ल मिटाए जिन्होंने॥
उन हिंदुओं को तुच्छ भी। क्यों मानते
नभ में यदि मेघखंड भी। न दिख पड़े
तूफान बिजलियों का भी। आ सके
तूफान अचानक वैसे आ जाएँगे
हिंदू ही कलियुग तहस-नहस कर देंगे॥

(रत्नागिरी)

चिपक जा मुझसे!

मनमोहक ललने आ चिपक जा मुझसे॥ध्रु.॥
ऊपर उठकर लगा ले अभी गाल मेरे मुख से॥
चिपक जा मुझसे॥१॥
मधुर चुंबनों का चोगा औ' अधर पान दिल से॥
चिपक जा मुझसे॥२॥
हास्य-अश्रु की माला पहना दो, कह अनंग से॥
चिपक जा मुझसे॥३॥
हृद की तव बाँसुरी बजा ले मेरे गायन से॥
चिपक जा मुझसे॥४॥
आ, न मुकर जा इस उत्सुकता की उत्कटता से॥
चिपक जा मुझसे॥५॥

भू माता से

माते, घर में आज तुम्हारे घुसे पराए दस्यू कैसे?
पहले इन लोगों के घर में हम ही घुस न गए कैसे!
जब था बल, तब लूट मचाना पाप सदा माना मैंने।
बल जाते ही लगता है, दे दिया शाप मुझको उसने॥
माते, किस कारण से होती है हिंसा यह तुम्हारी भी?

हिंसा करने आती ना मम पुत्रों को हिंस्रों की भी!
नृसिंह-त्राता-प्रभु को छोड़ा, गाय पूजते बैठा मैं।
इसीलिए तो गाय ही बना शेर झपट आया तब मैं।
कौन तुम्हें डसता है? विष से घायल कर देता है?
मैंने दूध दिया जिसको वह सर्प उलटकर आया है!

(रत्नागिरी)

प्रतिज्ञा कर लो

प्रतिज्ञा कर लो। युवको! मरें देश के लिए॥प्रतिज्ञा॥
सुस्त क्यों बैठे। कैसा जी। तिलमिल चित्त न करे॥सुस्त॥
तिलमिला रहे हैं। तिलक जी। उनका इप्सित कर लें॥तिलमिला॥
ईप्सित सिद्ध करें। बजाकर। हिंदू दुंदुभी रे॥ईप्सित॥
बता-बताकर ही। सूख गया। मेरा आज गला॥बता॥
फिर भी आग नहीं। लगती है। हृदय को तुम्हारे॥फिर॥
नहीं तो अब समझो। देश यही। नष्ट हो गया क्षण में॥नहीं॥

(रत्नागिरी)

देहलता

सुबह-सुबह तुम तोड़ रही थी जूही के फूलों को
ऊपरवाली मंजिल से सखि, देखा मैंने तुमको
उठा लिये जब तुमने अपने हाथ चोलि तब तंग हुई
पल्लो कसकर साड़ी जैसी कटि तटि से ही चिपक गई
घुँघराले इन बालों से तब ग्रीवा नाजुक शोभत है
मेरे आलिंगन की स्मृति से मन में लहर उठावत है
देख रही हो चुपके से मैं कहीं तुम्हें दिख पड़ता हूँ
नजरें जब मिलती हैं तब मुख उषास्मितयुत निरखता हूँ
ऐसे ऐन सवेरे तुमको फूल तोड़ते जब देखा
पुष्पलता को छोड़, तुम्हारी देहलता को ही निरखा!

शस्त्रगीत

(**परिचय :** शस्त्रनिर्बंध हटाने की माँग के लिए पुणे में छात्रों ने बड़ा जुलूस निकाला, तब उनके लिए सावरकरजी ने यह पद रचना की।)

व्याघ्र-नक्र-सर्प-सिंह-हिंस्र-जीव-संगर।
शस्त्रशक्ति से मनुष्य जी रहा धरा पर॥
रामचंद्र चापपाणि चक्रपाणि विष्णु भी।
आर्तरक्षणार्थ शस्त्र लेते हैं ये सभी॥
शस्त्र पाप ना स्वयम्, शस्त्र पुण्य ना स्वयम्।
इष्ट वा अनिष्ट बनत हेतु से निराभयम्॥
राष्ट्र-सुरक्षा हेतु शस्त्र इष्ट है जहाँ।
आंग्ल, जर्मनी तथा जापान में जहाँ-तहाँ॥
भारत में ही फिर देश-सुरक्षा हेतु।
शस्त्र धारण करने में बंधन है किस हेतु?
शस्त्र-बंधनों को अब पूर्ण हटा दे दो, जी।
शस्त्र सज्ज बन जाओ तुरंत शक्तियुक्त, जी॥
होने को देश सिद्ध अपनी रक्षार्थ, अजी।
नूतन पीढ़ी को अब शस्त्र सज्ज कर दो, जी!

(पुणे, १९३८)

अनंत की आरती

तेजोमय तुम, फिर भी तेजोमय उतारते हैं।
आरती, प्रभु उतारते हैं॥ध्रु.॥
आसमान के प्रांगण में तव।
सहस्र सूर्यों का दीपोत्सव॥
एक दिया उसकी पूजा में सभी जलाते हैं।
आरती, प्रभु, उतारते हैं॥१॥
सहस्र सूर्यों से ना निपटा।
एक दीये से उसे समेटा॥
नैनों में जो भरा पड़ा वह अंधकार लव[1] है।
आरती, प्रभु, उतारते हैं॥२॥
माता के ही उपवन से ये।
ताजा-ताजा फूल चुन लिये॥
माता की ही चोटी में उनको सजाते हैं।
आरती, प्रभु, उतारते हैं॥३॥

टिप्पणी : १. श्राद्धालु भक्ति।

□

कमला

(**परिचय :** वीर सावरकरजी ने इस काव्य की रचना अंदमान के बंदीवास में की और उनकी मुक्तता के पूर्व ही सन् १९२२ में इसकी प्रथम आवृत्ति 'विजयवासी' उपनाम के साथ प्रसिद्ध हो गई। इसके लिए उन्होंने बंदीवास से ही जो छोटी सी प्रस्तावना लिखकर भेज दी वह भी किसी कविता की तरह ही मनोवेधक है। वह इस प्रकार है—

'नृशंस गुफाओं की अंधुक रोशनी में किसी संगत काव्य की माला पूजा के लिए गूँथी जाए, इस उद्‌देश्य से इकट्‌ठा किए हुए ये वन्य फूल और पत्ते, उस माला का योग अभी भी दुर्घट दिख रहा है इसलिए, वैसे ही बिखरे हुए सूखे जा रहे हैं। गुलदस्ते के लिए ही जिन्हें काटा-तोड़ा गया; वे अलग रूप में विसंगत तथा एकाकी तो दिखेंगे ही। फिर भी रूखे, सुनसान तथा कँटीले जंगल में खिलनेवाले, जिनका न कोई नाम है न कोई पहचान, ऐसे वन्य फूल होते भी कैसे हैं, इसी कौतूहल से यदि किसी ने उनको उठा लिया, तो गौरव के लिए नहीं, बल्कि वनस्पति विज्ञान की प्रयोगशाला में पँखुड़ी-पँखुड़ी तथा केसर-केसर तोड़ा जाकर ज्ञानदेवी को बलि चढ़ाने हेतु; कम-से-कम जो अँधेरे में सूख जानेवाले थे वे रोशनी में तो सूख जाएँ इसलिए; यह उन फूलों क़ी पहली टोकरी गाँव-चौकी की पौड़ियों पर ला उँडेली है।')

—*विजनवासी*

फुलबाड़ी शोभत है छोटी-सी नखरेबाज
सज-धज के बन-ठन के करती है नखरे-नाज
हरा-हरा कभी सालू, सित मलमल का कभी,
रेशमी बूटी वाले पल्लो में जिसके सभी
नित्य ताजा शुभ्र मोती मर्कत माणिक शोभत
हवा से ही उन्हें कैसी सजाती हिलाती नित

हँस पड़ी तो कुंददंती मन्मथ को भी लुभा सके
सुगंध मुसकराहटों की उसे पागल बना सके
नजारे-नखरे ऐसे कामिनी करती रहे
निज मोहक सुंदरता को सबको दिखा रहे!
नौका में चाँदनी की हुए रममाण सुंदर
फुलबाड़ी योजनगंधा वनदेव पराशर!
फुलबाड़ी-राहों पर दोनों ओर ही सेमल
क्रीड़ामग्न शानदार गाते हैं मस्त बुलबुल
बुलबुलों के गीतों की साथ करते फूल लाल
फलियाँ हरी झुलाती हैं मन में कल्पना-हिलोल
सचेतन माणिक-मर्कत मूठ पर जड़ा दिए
मर्कतों के मियानों में खड्ग तैय्यार रख दिए
लटकते जिनकी कटि से ऐसी भीषण-सुंदर
बना दी युवती-सेना रक्षार्थे स्वीय मंदिर
प्रतीहारी-कार्य-हेतु देती है यह पिक-स्वर
पुकारें पहरे की औ' करती क्षमनिवेदन!
कमान स्वागतार्था यह गूँथी मृदु चमेली ने
सु-स्वागत अतिथियों का फूलों के स्मित-सुगंध ने
फूल? अजी, फूल ना ये, यहँ करने विचरण
रात्रि में चोरी-चोरी आते हैं अप्सरा-गण
पकड़ा उनको और करने दर्ज गुनाह ये
देवी-द्वारप लेते हैं ठप्पे चुंबनरूप ये!
वीथिका कदलियों की उपवन के संगमरमर
पंथ के दो-तरफा ही शोभत है अति सुंदर,
आते-जाते मुसाफिरों पर छत्र शीतल ये करें
सप्रेम पंखा झलती विनम्र सेवा करें
निर्गंधता क्षम्य जिन की नम्रता-गुण से जभी
ऐसे फूल केले के, गोरे मधुर घौद भी,
दल सुलोल सारे ये जाते हैं घुल-मिल जभी,
अव्यवस्थित-सी शोभा देख मन सोचता तभी!
कालिंदी-पुलिनों में ही जिन्होंने तब भोगा था
यथेच्छ वनमाली को, तृप्ति को पूर्ण पाया था,

भुक्तकामा, रतिश्रांता, हृदय जिनका हरिमय
सखी रूपेण बन गईं जो समतृप्त निरामय
विगत-ईर्ष्या तथा बन गईं प्राप्तवल्लभ जो तभी
यही हैं वे शांतमनसा खड़ी व्रजनारियाँ सभी
गले में एक-दूजे के डाल बाँहें सुकोमल
हरि के जाने पर भी वैसे ही स्थित निश्चल
लोल कोमल पंखों को झलती वा कोई देख लो
गालों पर गाल रगड़ाती मंत्रमुग्धा यह देख लो
हेमगौरमुखी कोई अपनी लाडली सखी—
के कंधे पर सिर टिका के विश्रब्ध पल भर रुकी!!
सेवंती यह; हर गया था जब उसको पकड़ने
बनाया था ढाल इसके कुसुम को कुसुमशर ने
और हे स्वर्णचंपक, कहाँ तुमने पा लिया
यह अद्‌भुत जादू, जो हम नरों ने पा लिया?
चाँदी का भी कभी सोना हमने न बना लिया
तुमने सूर्यकिरणों को बस मिट्टी में धुला दिया
मृदुचेतन सोने के, स्वर्णचंपक! फूल ये
सुगंधित देखकर हम तो भौचक्का रह गए!
प्रिया स्वर्णचंपक की, चमेली कितनी हसीन
दोनों एक-दूजे पर बरसाते सदा सुमन!
जाति से शुचिवर्णा जो, जो भूषा नारि-वृंद की,
मधु-भोजन के लिए होती सदा हवस भृंग की
प्रभु के शुभ चरणों में शशी अर्पण ज्यों करे
स्वकला, त्यों खंड अपनी तनु के अर्पित करे
स्वार्थ पाने हेतु? ना, ना! स्वार्थ का लवलेश न
लोगों का सिर्फ कल्याण चाहती नित्य लेकिन
मुनियों की साधना करने फलद्रूप ही मोक्ष से
गौरी हर की बाँहों में करे बिनती प्रेम से
ऐसी केतकी की गंध को, हे वायो! दसों दिशाओं में
फैलाकर उसको करते हो धवलयशा
हाँ, लेकिन यश प्रसृत करते हो, न कुवार्ता
कि नित्य यह होती है सुगंधा उरगलिप्ता

एक अक्षर भी उसका मुँह से न निकालकर
पवन तुम बने पावन! स्वार्थ से परे हठकर
लाखों लोगों के खातिर जो नित्य कार्यरत हैं,
जिनके बिन वसुधा भी अल्परत्ना लगत है,
ऐसे महात्माओं की गृहस्खलित बात हो
तो सज्जन रखते हैं गोपनीय उस बात को!
फिर से ढूँढ़ते मुझको क्या अब ऐसा ही घूमता
त्रिनेत्र का नैन क्रुद्ध तीसरा नित धधकता;
देख भास्कर को खाए डर भारी अनंग भी
दूध से जीभ जलती तब डरा देता ही छाछ भी
इसीलिए सूरजमुखी! नियुक्त तुम को किए
मीन केतन पागल-सा सूरज पर जासूसी करे!
तभी तुम सदा रखते हो नजर रवि के प्रति
और यह मीन केतन भी लेता है रात में गति!
विविध बाल-तरु लाके दूर-दूरस्थ देश से,
पर्ण जिनके रंग-बिरंगे शोभायमान फूल-से,
वैसे ही फूल के वृक्ष विचित्र बाँके भले,
सुरचित मार्ग पर शोभा बढ़ाते चारु गमले
फुलबाड़ी की चारों ओर वर्तुलाकृति में बने
तृणस्तवक जो बिलकुल हरे-भरे थे सुहावने;
प्रभात काल में उनकी लताओं पर सफेद-से
नन्हे-नन्हे फूल खिलते रमणीय अनगिनत से
मनोज्ञ बहु वह शोभा! मानो रात्रि की अवधि
बहती थी यहाँ जो भी ज्योत्स्ना की रसिता नदी
प्रभात-काल की ठंडक में वह बन गई धनीभूत—
चमचमाते फूल ना ये, चाँदनी के कण बृहत्!!
वशीकरण-चूर्ण है यह तो बलबूते ही जिसके,
मंत्रों के साथ, कलियों को भोग-क्षम बना सके,
फूल को फूल से अन्य पूर्णतः वश ठान ली
इसका चुंबन दे उसको, उसका दे इसे अलि
दयिता-दयिताओं में सुमलोकस्थिता अभी
नित्य चक्कर काटे यह मधुपानार्त दूत भी!

धतूरे के फूल सबसे शिवजी को पसंद हैं,
गुणांधता भी बड़ों की तो बड़ी ही नित होत है!
फूल रजनिगंधा का! दिल को आतुर बना सके
कामसेना-पुरोगामी चाँदी का सींग ही दिखे!
छोटा-सा स्फटिकमय यह अठपहला सरोवर
नित्य जल भरा स्वादु शीतलता का आगर!
फुहारा शतधाराओं का शोभत है नीर में
तेजोबिंब जब बिंबमान बिंदुओं के नृत्य में
तब लगता है, आता है उड़-उड़कर वहाँ भला
जत्था इंद्रधनुष के नन्हे पिल्लों का अतिकोमला!
शोभाय माना नलिनी ये जलार्धमग्न नाला
शोभती हैं लज्जानम्रा यमुना में गोप बाला
हृद-चोर कृष्ण ले जाता वस्त्र सारे जिसी क्षण
और उस प्रिय पापी का संतुष्ट करने मन
यथासंभव नग्न तन्वंग उठा ऊपर नीर के,
'दे दो जी हरि, वे वस्त्र'—याचना वहु झेंप के!
—न माने पर यह झूठा, कहता, 'आओ जी ऊपर'
उसकी अदाओं से लुब्धा होती हैं नारियाँ चतुर
आईं तट पर नग्ना ही, अहा! सब नई-नई
लावण्य की परतें दिव्य तट पर तब खुल गईं
विकसती गई ज्यों-ज्यों रवि को करती नमन
वायु निश्चेष्ट, सूरज के अंशु आनत, तृप्तमन
किया तब जिन्होंने ही देवप्रिय प्रदर्शन
विश्वमोहन मदिरा के प्याले, मृदु सचेतन
जीवन की उषाएँ जो, जो रति के हृद सुंदर
प्रेमकल्प फूल वे ये—गुलाब चेतोहर!
ऐसे कुंज की मानो देवी कोई मनोरम
एक बाला वहाँ आती थी लेने मधु कुसुम
बगीचा राह पर फूलों को बरसाता देख उसे
चाँद को देखकर तारे आते हैं नभ में जैसे
प्रभात-कौमुदी में जैसी उषा घुल-मिल जाती है
कैशोर-यौवनों में वह शोभायमान होती है

तुषारमय धाराओं की झारी से कभी-कभी
शुचिस्मिता स्वयं नहलाती थी पुष्पलता सभी;
पोंछती थी मलमल से पत्ते उनके, न धैर्य पर
नर्म मलमल से भी पोंछने को फूलों के पर;
पोंछती थी गुलाबों की पँखुड़ियों से फूल और
होंठों की पँखुड़ियों से गुलाबों को चूमकर
पयोघटों से उसके द्वारा मिलता सलिल जब
वर्षा से भी बगीचे को ग्रीष्म प्रिय होता था तब
लुप्तान्ह श्रावणी या उन झड़ियों से हवा खुली
होते ही भानु की कच्ची किरणों जैसी वह खुद चली
लताओं में घुस, पानी से लबालब भरे हुए
फूलों के, कमलों के वे प्याले सब रीते किए
खाते हैं लताफूलों को ऐसे कीड़े दूर से
नौकरों के हाथ पकड़वा लेती थी चुपके से
जिनमें बिछाए पत्ते फूल भी बिखरे हुए
ऐसे डिब्बों में भरकर दूर भेज ही दिए
लीलावती यदि बैठी लता के पास ही कभी
कढ़ाई करती चोली पर सुंदर सुकुशल तभी
झेंप जाता दिल उसका और कहती लज्जाममुखी,
'सत्य! मैं कितनी स्वार्थी! हे लते, रूठ मत सखि,
ले, कढ़ाई करती हूँ यह तेरे आलवाल में!'
ऐसे मधुर बोलों के साथ ही आलवाल में
रम्याकृति में लिख देती नाम अपना सुरम्य और
नाम उस लता का भी लिखती अपनी चाली पर
राई-राई जैसे ही सुशोभित पुष्पवेष्टिता
रम्याकृति खिलती तब चोली को करत स्वीकृता
कभी-कभी सुमनों से भ्रमरों की मृदु-मधुर
सुनकर प्यार भरी गुफ्तार कहती, 'मुझ से मधुर
गुफ्तगू कर रे फूल! बता दे, क्या बता रहा
भृंग को तू, वह तुझसे क्या-क्या बातें चला रहा?'
लता से सटाकर गाल प्यार से कहती कभी
पुष्प के साथ सुकुमारी बातें करती जभी-तभी!

पदाघात ही जिसका अशोक को पल्लवित करे
ऐसी सुंदर स्त्री का गाल ही स्पर्श जब करे
तब वज्र भी गाएगा! ये तो बस, फूल कोमल!
ऐसे मधुर गाते थे, लगते थे कि बुलबल!!
प्रात: समय सास उसकी प्यार से कहती कभी
'चोटी में गूँथने हेतु फूल ले आ स्वयं अभी'
बगीचे में चली जाती, किंतु हाथ न बढ़ाती वह
देखती रहती कि लता देगी क्या फूल अब यह :
और सचमुच उसके केश देख मुक्त खुले
फूल ही क्या, लताएँ दे देती थीं कलियाँ खिलीं!
निजाभरण कार्यार्थ न फूल तोड़ती कभी
प्रभु-पूजार्थ भी उसका मन सोचत यही सभी.
फूल को तोड़ने पर जो आता था रस, देखकर
लगता था खून उसका, सास समझती थी पर
'प्रभुकार्य में, अहा, बाले, लताओं के ही फूल क्या,
यौवन के फूल को भी किसी ने समर्पित किया!'
चाँदनी रात में विचरण करती थी सुमोहना
रममाण स्वेच्छया जैसी प्रीति-स्वप्न-सुचेतना!
कमलिनी के निकट जाती, न कदमों की आहट
सुख में सो रही है इतना देख चल पड़ी पथ
गुजरती हरसिंगार के नीचे से जभी-जभी
स्वर्ग के स्वप्न आते थे हरसिंगार को तभी
जब से ले आई थी सत्यभामा पुरातन
आज देख लिया स्वर्ग! आँसू टपकत, फूल न!!
बचपन में ही हुई शादी; तब से इन फूलों को
छोड़ जाने पर होता है दु:ख इतना पगली को
कि पीहर जाने को भी न इसका दिल करे
माँ समान सास उसकी फिर उसकी सांत्वना करे
'मत रो, लाडली बेटी, जब तक तू लौट आएगी
तेरे जैसी समझकर लताओं को सम्हालूँगी'
मंगलागौरि आते ही कितना दिल उछलने लगे
सुशुभ्र-वसना शुद्धा बाग में विचरने लगे

फूलों को चुनते-चुनते आ जाती उस स्थान पर
जहाँ वेला के फूलों की वृष्टि पूरी जमीन पर
तब दिखती समाविष्टा फूलों के बीच सुंदरी
हिमालय में व्रती जैसी दिख पड़ी थी महेश्वरी!
वन-उपवन की नाना पँखुड़ियाँ, कलियाँ तथा
कोंपल, दल, फूल सारे, वनफूल भी सर्वथा
रंग विविध फूलों के! टोकरी में भरे हुए!
गुलाब, कमल, चंपा भी, बकुत्रादि सजे हुए!!
पूजा के लिए बैठा करती थी फूल रचाकर
बीच कल्पनाओं के माने कविता प्रकटत मान्यवर!!
पर्ण करा के समर्पित, पूजा करवा के द्विज
जाते थे घर; फिर भावपूर्णा ललना ही सहज
मंगला मंगला गौरी गौरी-संतोष के लिए
चढ़ाती वह दल, फूल नाम-जाप करते हुए :
पुष्परूप कुप्पियों से रंगों का व सुगंध का
रस डाले उसके मन में सुप्रसन्न अंबिका
संपन्न व्रत इस तरह से हुआ सुंदर रूप में
पारमार्थिक तथा प्रपंचिक दोनों भी दृष्टि में!
भाव हो गए जिसके पुष्ट फूलों की गंध से,
राजहंस होते हैं जैसे कमल-नाल से;
ऋतुजा, शुचिता, दैवी सात्त्विकता भी क्या सभी
ऐसे दिलवाली की बतानी पड़ती कभी?
शांत दृष्टि में उसकी सारी सृष्टि ही शांतिमय
रूप में, यौवन में, हृद में सदा रहती निरामय
रूप से, कुल से, उम्र से भी पति था यथानुरूप
देहली पर यौवन की पहुँचा था अभी सुरूप
सास भेज देती थी उसे खाना परोसने
अथवा यदृच्छया आते कभी आमने-सामने
पति की नजरों से तब नजरें मिलतीं कभी
'कमला' की हृदय में लेकिन केवल सात्त्विकता अभी;
प्रभुमूर्ति बनाते हैं जैसे पूजन के लिए
चंद्रामृत पीते हैं जैसे बिन स्पर्श किए

मन के भीतर ही भीतर गायत्री मंत्र गात हैं
कमला के मन में पति पर भाव ऐसे ही आते हैं

★ ★ ★

नूतन-वृद्धि का दिन है आज वर्ष-प्रतिपदा
शुभे, यह शिव हो वर्ष, हरण करे सर्व आपदा!
आशाएँ मंगलमय सारी, नव-वर्ष-प्रतिपदा
शुभे, यह शिव हो वर्ष, हरण करे सर्व आपदा!
वसंत ऋतु में कोयल गाती है स्वर-संपदा
शुभे, यह शिव हो वर्ष, हरण करे सर्व आपदा!
नई तिथि, नया मास, नव वर्ष, ऋतु नई
आज क्यों न सजा ले तुम, रूपश्री भी नई-नई!
लावण्य लक्ष्मी उसकी रोज यद्यपि देखती
सास को उस सवेरे वह लगी नव-रूपमती;
मन में आशंका औ' आशा उत्सुक हृदय में
फिर भी माता-समा सास ने कहा बस प्रकट में
'मत जा कहीं अब बेटी, खुले केश ही लेकर
आज है शुभ दिन, तेरी उतारूँगी मैं नजर!'
चोटी बनाने बैठी जब सास प्यार-दुलार से
कमला मुसकरा रही थी मग्न अपने आप से
'क्यों हँस रही, कमला?' कुछ नहीं, कल रात को
सपना आया मजेदार, मेरी प्रिय नलिनी को
देखा मैंने, वही जो सर के दाहिनी तरफ है!
जिसकी पहली कलियाँ अभी खिलने वाली हैं!
—वह और मैं गईं दोनों ढूँढ़ने तत्प्रिय अलि
उष:काल की हवा के मृदु झोंके पर बैठ मलमली,
गाते थे हम—'तुम्हारी ही प्रतीक्षा करती रही—
ये कलियाँ! आओ भृंग, स्पर्श से फुलाओ सही!'
आया लुब्ध अलि भी! पर छोड़कर नलिनी प्रिया
मुएँ ने मेरे ही होंठों को दंश जो किया!
क्या यह सपना नलिनी के लिए मंगल है सही?'
सास के नैन से सुख की अश्रुधारा तभी बही!

स्वप्नार्थ हृष्ट तो था ही, उससे भी हृष्ट थी नता
मासूमियत बाला की, उससे हृदय मुग्ध था
चोटी बन जाने पर सास ने पीठ थपथपी
माँ के चुम्मे से भी थी वह मधुर थपथपी!
किशोर-उम्र जे जिसने यौवन में पद रख दिया
जैसे कि छात्र ने अंतिम पदवी को ग्रहण किया
ऐसे बुद्धिमान् और सुंदर-सा उसका पति
माता के कहने में आया त्योहारार्थ संप्रति
पुष्पमाला गुढी की वह थी गूँथ रही जहाँ
उद्यान में, खिड़की से वह देखता था सही वहाँ
हे भृंग! सम्हालो जी, वसंत-मधुमास में
कहीं कैद न करें इसकी अदाएँ प्रेमजाल में!
और धीरज टूटा ही; आज निश्चय कर लिया
पहली बात करने का मन में तय कर लिया।
माँ को दे के चकमा, सारा धैर्य जुटाकर,
आवागमन किया उसने कूटनीति अपनाकर,
आया! आया अभी पीछे! आते ही पर सम्मुख
चुपचाप ही चला आगे, शब्द ना निकले इक!
जाना ही इस तरह उसका बना मूक सवाल ही
'जी हाँ' अश्रुता-सहिता तन में उभरा जवाब ही!
उठ गई नतमुखी, गाल रंगत, गिर गई सुई;
फूल जैसी चीज कोई हृदय में जो चुभ गई!
सास से चुरा के रख लें ऐसी पहली ही बात थी
पहली बार आँखें भी आज उसकी अशांत थीं
मिष्टान्न खिलाए सास, मीठी उससे निरामय .
छटपटी अभी की वह दोनों को लगत निश्चय
तीसरे प्रहर में भी न लगे इस कारण
गई वह लताओं के बीच करने विचरण
सरोवर-किनारे पर लाड़ला बकुल ही उसे
शाखा झुकाकर थोड़ी रोक लेती है प्यार से;
'क्या है?' वह करे पृच्छा स्नेह से सहलाकर
'रे बकुल! कह दे ऐसा चुप न रह शरमाकर!'

अचानक याद आया जो पढ़ा था कहीं कभी
'—कौन जाने! पर दय्या, कवि जो कहते सभी
सत्य है?' मन में औ' द्रवित होकर, 'मैं' नहीं
तो और कौन कर लेगा पूरी जिद यह तेरी ही!'
उत्सुकता से, प्यार से भी, तन्वी ने उस ताल के
पानी से भर मुँह अपना कुल्ली कर दी बकुल के
तन पर, पुनः देखा, पुनः कर दी अशब्द ही
लज्जा रोक रही थी, फिर भी कोई ना आस-पास ही
तभी सर्रसराया कुछ तो कुंज में! देख तो सही!
कौन यह कमले, आया! चोर वाकिफ ही यही!
आया! सम्हाल, आया! हाँ, रुको जी, यह क्या है?
असावधान पर हमला करना ना उचित बात है!
पकड़ ही लिया पंछी! वृद्धता से अंध है—
अन्यथा आकाशवाणी कहती, 'ना धर्मयुद्ध है!'
बदन चुराती कटि को पकड़े हाथ थिरकत,
शरमाते गाल से भिड़ गए शरमीले होंठ अकस्मात्!
साचीकृतानना, लज्जाचित्र हृद्य अति मोहक!
ऐसी प्रिया पहला चुंबन वह लेत युवक!
हे प्रिया के पहले लज्जाचंचल चुंबन!
कौन प्राणी दुनिया में है जो भूलेगा तव क्षण!
'पल' होत हुए भी जो कराए तब पान जब
शत वर्षों से भी वह 'अपल' हो जात है तब!
तुझ में दिव्य जो चोरी, और शीतल दाह जो,
त्वरा रोकने वाली, सख्ती इष्ट, सु-मान्य जो;
हे पहले चुबन! तुझमें सुख मादकता सभी
प्रियाननार्पिता; मदिराओं में भी न मिले कभी!
व्यर्थ ही रूठकर रिश्तेदारों को घर बुलाया
आपस में बात करने का मौका पूरा गँवा दिया
किसी को न पता ऐसे चिट्ठी डाली जभी कभी
कुचलाकर निकल जाते हैं ऐसे ये लोग सभी
हे चुंबन! मानिनी को सपने में तुम दीखते
तब बाजार में चंदन-पद्मों के भाव भड़कते!

जिंदगी में भयातुर जो सहारा स्नेहशून्य है
ऐसे बीहड़ में जब जीव व्याकुल होत है;
अथवा जाल मकड़ी का मात्र एक मजा जहाँ
ऐसी काल-कोठरी में बंदी कोई सड़े वहाँ,
हे प्रिया के प्रथम चुंबन! मुग्ध, प्रेमल, आतुर!
तुम्हारी स्मृति ही रखती प्राणों को तन में स्थिर!
आहट हुई! भृंग भागा, चूमकर चला गया
स्पर्श सुख-उत्कटता से कली का दिल भर गया!
कहती है सास से वह : 'पेट में दर्द हो रहा!'
पेट में अथवा दिल में? उसको सूझ ना रहा!
दर्द न शशिलेखे, यह ज्योत्स्ना की खिलती कला!
मधु-प्रतिपदा हो जाए तुमको नित्य-मंगला!

★ ★ ★

बहू रंग में रँगी जैसी सुमंगला उषा
उसकी सास के मन में हर्ष हो बेतहाशा!
बहू कल्प प्रसूनों की लता शोभत थी भली
सास के दिल में मच गई प्यार की बहु खलबली
देहधर्म नया समझा, नया अस्पर्श्य बैठना
स्पर्श के बिन लोगों का झाँक-झाँककर देखना
स्थित्यंतर कारण उसका झेंपता नाजुक मन
जैसे पराए लोगों के बीच कर रही भ्रमण
सास का देखकर हर्ष आश्वस्त पर वह हुई
सास को हर्ष है जिसमें वह घटना शुभ ही हुई
प्रेमाशीर्वचनों की तो वर्षा उसपर हो गई;
न सिर्फ उसके बल्कि हर घर में खुशी हुई
सुरम्य 'मखर' के बीच रमणी को बिठा दिया
कालिदासकृत श्लोकों में उपमा जैसी सजा दिया!
पौर बालांगनाओं का रम्य मंडल जम गया
हर किसी का उसकी सेवा में दिल लग गया
कोई बनाए रँगोली, वाद्य मंगल बज रहे
बाँटती कोई इत्र, सुमन-कुंकुम बँट रहे,

भोग जैसी सजा थाली, धूपदानी परे रखी
'खा लो कुछ तो' ऐसी प्रत्येक ने विनती की;
मांगल्य-देवि जैसी वह स्त्रियों के बीच शोभती,
मंदिर का ही रूप आया 'मखर' को तभी संप्रति!
लेकिन उस युवा के आते लगता यह जाएगा कब!
जाते ही उसके लगता अब फिर आएगा कब!!
और करे भी क्या वह! अजी, व्यर्थ पुनः-पुनः
वस्त्र, पुस्तक, कुछ ना कुछ, रहे उसका यहीं पुनः!
ठाठ वह उस 'मखर' का, वह भीड़ वहाँ जमी हुई,
सलील ललनाओं की अदाएँ मोहक नई
किंतु यह सब होते भी उसे विस्मृति ना हुई
उसके प्रिय लता-फूलों के विरह-दुःख की
उसे रिझाने हेतु सहेलियाँ अति उत्साही
उससे भी ज्यादा सेवा लताओं की ही कर रहीं!
आतीं जब 'मखर' में सुंदर, रंगीन तितलियाँ
उसे लगता बगीचे ने भेजा है संदेश नया!
स्वच्छंद उनको रमने देती थी भोजनपात्र पर :
'खाओ यथेष्ट हे मेरे फूलों के प्रिय प्रियकर!
और जा बताओ कि बहु दुःखित करे यह
लताओ, कमला को ही तुम्हारा दुष्ट विरह;
'सुख जाएँगी लताएँ जी अब तुम्हारे स्पर्श से'
ऐसा वचन बुजुर्गों का रखता है दूर तुमसे!'
गई बाला नहाते ही बाग में चौथे दिन
जैसा हवा का झोंका बगीचे में करे भ्रमण!
रमी बचपन की भाँति उछल-कूद करे वहाँ;
बकुल के पास आते ही—मदन व्याकुल हो वहाँ!
गुलाब खिल गए गालों पर जूही के फूल और—
अंदर से कोई मारे, ऐसा अनुभव था मधुर!!
पहले से ही प्रिय बकुल था, औ' फिर उसकी ही छाँव में
दिया, नहीं-नहीं, लिया पहला चुंबन उस नटखट ने!
दोहरा प्रिय बना ऐसा वह बकुल उसके लिए
कुल्ली वह, चुंबन वह चिरस्मरणीय हो गए

और अचानक आई आशंका पुष्पवती को
कुल्ली से फूल आते हैं बाला को यां बकुल को!
—और लज्जान्वित किंचित् सी सुहागन ऋतुमती
पुष्पलता जैसी ही होती है जी पुष्पवती!
मुहूर्त पर मंगलोत्सव के आयोजन किए गए
जिसमें सम्मिलित होने पीहर के लोग आ गए
उस दिन थी पूर्ण सौख्या वह! एक साथ ही संभव
पीहर, ससुराल और उद्यान तीनों का संग अभिनव!
दुकूल वसना-सालंकृता कमला, पति आतुर
युवा युगुल को ऐसे शुभ दिन मुहूर्त पर
एकासन पर बिठाया होमहवन के समय
चंद्र-रोहिणी सम शोभत है युगुल वह निरामय!
दक्षिणार्चि हुताशन में हवि अर्पण ज्यों किया
पुरोहित के कहने पर हस्तस्पर्श तभी किया,
अंगुलियों से अंगुलियाँ, हाथ से हाथ मिल गए
होंठों के समान ही ये मिष्ट चुंबन थे नए
शर्म से हलका पहले, प्रेमधीटठ तुरंत ही
पति के कर ने उसकी अंगुलियाँ दबाईं ही
वादिका चतुरा वह औ' वीणादंडस्पर्श हुआ
दो हृदयों के तारों से मधुर गीत खुला नया!!
शुक्र तारे में जैसे सूर्य विलुप्त होत है
वैसे होम की अग्नि उस गीत में विलुप्त है
चौक में सजी रँगोली, चौकी चंदन की लिए
चारों कोनों में जिसके चाँदी के फूल जड़ा दिए,
नहलाने ले जाती हैं दोनों को नारियाँ वहाँ
अटारी में लगी भीड़ तमाशा देखने अहा!
विविध गंधित तेलों से मालिश करने हेतु जब
ललनाओं में लगी होड़, दोनों शरमा गए ही तब
सुख स्पर्श करते पानी की धारा जब शुरू हुई
अटारियों से दोनों पर फूलों की वृष्टि हो गई
किसी ने बहकाया पति को उँडेलने जल वधू पर
किसी ने कहा कमला से 'कर दो कुल्ली उसपर',

कोई फेंके फूल, कोई केसरिया रंग डालकर
छिपकर पिचारी की मार करत युगुल पर
अटारी से उतरते और फिर से चढ़ते पुनः
युवती-युवकों की वह हड़बड़ी मनरंजना!
वामास्वन खिलखिलाहट में युवा-स्वन भी मिल गए
शहनाई के सुरों में ज्यों नगाड़े घुल मिल गए!
जैसे कि ऋचाओं और मंत्रों का अभिसिंचन
प्रेमसिंहासनाधिष्ठित कमला रति, पति मदन!
न केवल युवक-युवती करते थे शोरगुल वहाँ
बल्कि वृद्ध भी बालों से खिलखिलाते रहे वहाँ
एकासन पर नहाते वक्त कितने चुरा लिए, पर
बदन लगते एक-दूजे से, सुख होता निरंतर;
मुलायम मृदु-मृदुल सा कुछ सुख-सपर्श तभी हुआ
गिरते-गिरते पति ने उसे सीने लगा लिया!
गुलाल और जलधाराओं के परदे की आड़ में
पति के उसे दिया मौका जो चाहत हृदय में
इस तरह परिचिता हुई जब प्रियमूर्ति यथाक्रम
दूर से न, होंठों से प्राशिता शशिकला सम!
आए सौगात, हुए संपन्न पुण्य ब्राह्मणभोजन,
रचाए सुखशय्या भी तत्पर युवती जन
भुलावा देकर ले जाती हैं उसको उसी स्थल
खिलखिलाईं युवतियाँ सारी भीरु जब हुई चंचल!
वधू-विभूषणा लज्जा के मारे भाग वह गई
माता तथा सास उसकी बैठी थीं वहाँ तक गई
दिख पड़ा सहसा उसको पति भी बैठा वहीं!
मुसीबतें आती हैं दुनिया में एक साथ ही!
मुसकराकर प्यार से, लेकर बाँहों में उसको तभी
सहलाकर दोनों को कहा सास व माँ ने भी
'शरमाओ मत, यहाँ बैठो, दोनों अब एक साथ ही
जी भरकर देखेंगे हम हमारे प्राण ही!'
देखकर युगुल को दोनों ऐसी गद्गद हो गईं
कौन सी माँ कौन सास दोनों की मति खो गई

'मुकुंद के पिताजी यदि होते जीवित इस दिन
कितने हृष्ट हो जाते देखकर बहु हसीन!'
'और मेरी विमला भी यदि होती जीवित
जीजाजी के कौतुक में रस लेती अनन्वित!'
'जो है' उसके उत्सव में 'जो नहीं' उसकी स्मृति
खुशी के आँसुओं में ही दुःखाश्रु को यूँ मिलाती
मुकुंद का प्रिय सखा बचपन का मित्र प्रेमल
मुकुल वहाँ आया तब चुपके से उसी पल
कमला को न पता लगते पीछे से ही झपटकर
आँखें बंद कर दीं उसकी हाथों से, बहु तत्पर
'नाम लो, भाभी! आँखें छोड़ूँगा न इसके बिना!
कलियुग में आगे वाले वादे पर यकीन ना!
अच्छा! मुकुंद के बाद लोगी न नाम आप भी?'
उसका मौन बताता था, 'हाँ जी, हाँ, मान्य है सभी!'
शरमाते हुए नाम लिये कमला-मुकुंद ने
तब माताओं से भी ज्यादा मनाया हर्ष मुकुल ने
बाँह में बाँह लटकाए, तेजः प्रेम · गुणादि से
समान सुहृदों की जोड़ी चल पड़ी जब वहाँ से
नटखट तभी फिर से मुड़कर शरारत भरा
मुकुल कह पड़ा, कैसा दाँव मैंने किया खरा;
'शादी तुम्हारी होगी तब मैं भी देखूँ उसी समय!'
स्नेहघोर प्रतिज्ञा जो मधुस्वना करे उस समय
राजीव-लोचनों वाली गुण-रूप-मनोहर
जोड़ी जानी दोस्तों की आ पहुँची सरोवर
उदासीन सा कुछ होकर मुकुंद तब मुकुल से
कहे, 'हो रही मन में बेचैनी आज कब से!
क्या कारण न जानूँ मैं! उत्सव के लिए भी अभी
रम रहा न मन!' झट से मुकुल भी कहे तभी
मुसकराकर, 'सचमुच रवि कितना मूर्ख है!
ऐसे दिन भी वृथा धीरे-धीरे मार्ग क्रमत है!'
मर्माघात करे लेकिन विनोद सहसा तभी
कहे मुकुंद, 'इतना मैं कामी बन गया अभी?

देख मुकुल, मुझे तुम बिन न कोई जगत् में
स्थान पूर्ण भरोसे का, फिर बताता हूँ तुम्हें!
पिताजी गुजर गए मेरे छोटा था जब मैं तभी
बढ़ाया, पाला-पोसा, माता ने ही किया सभी
प्रिय मेरी बहुत माता, परंतु फिर उसको
मर्यादा के कारण मैं कुछ बातों को न बता सकूँ
कामिनी को न बता सकता ऐसी कोमल भावना
मित्र से कोइ होता है जगत् में स्थान अन्य ना
पुण्य या पाप जो भी है मन में तुझसे कहूँ
तुम से भी छुपा रख दूँ कुछ, ऐसा पापी न मैं रहूँ
बचपन से, मुकुल, तुम और मैं दोनों एकजीव हैं
अभिन्नहृदय हैं हम, भले ही देह भिन्न हैं
तुमने मुझे न मैंने तुमको कभी छोड़ भी दिया
छाया की भाँति रहते थे, याराना हमने किया
सुभाषित या शास्त्रों के महाप्रमेय बड़े-बड़े
विशिष्ट प्रिय जो लगते दोनों ने मिलकर पढ़े
साथ में जूझे थे हम म्लेच्छों से रणरंग में
सदा साथ रहे थे हम संपत्ति-विपत्ति में
सोये साथ, उठे साथ, पहने साथ लिबास भी
लोग पहचान ना लेते कौन सा कौन है तभी
मेरे बिना न कभी जिसने सुख का भोग कर लिया
ऐसे तुम्हें छोड़ आज सुख मैंने अलग पा लिया!
कामिनी के संग का!—ऐसा द्रोह सु-मित्र का
रूप लंपटता का ही है मंगल ऋतुशांति का!
अतः, हे मुकुल! जब तक तुम हो अविवाहित
स्पर्श बिलकुल ना करूँ मैं मत्प्रिया को सुनिश्चित!
अथवा याद कर लो कुंती का वह भाषण!
अलौकिक प्रेम के खातिर तुच्छ लौकिक बंधन!
हमारी उनसे प्रीति और सम्मति हृदय में
प्रेमला कमला की भी हम से है न शक में
वृत्ति कोमल जो पाँचों पांडवों की सदा रही
मुझे भी व्याकुल करती है!' 'हाय! क्या बात यह कही?'

बीच में ही मुकुल बोले साश्रु गद्गद, 'पावन
क्या चुकता कर सकूँगा मैं इस प्रेम का ऋण?
बंधु ना, ना स्वसा जिसकी, ना माता ना पिताजी भी
मेरे अबोध बचपन में ही तो गुजर गए सभी,
ऐसे मुझको प्रेम सारे दिव्य ये फिर से मिले
तुम्हारे प्रेम के द्वारा, ऐसे प्रिय तुमको मिले—
सौख्य, तभी सौख्य मुझको! तुम्हारा मंगल सभी
मंगलप्रद मुझको भी! सोच लो किंतु यह अभी—
अविवाहित जब तक हूँ मैं तुम रहोगे व्रतस्थ ही
मेरे खातिर : पर मेरी वह लाडली कमला सही?
चमेली के फूल से भी उसकी मधु मुसकराहट
संन्यासी बन जाओगे यदि तुम तब आहत
आग में झुलस जाएगा, फूल वह जल जाएगा
फूल को देख खिलने के बजाय जलता हुआ
सुख से मत्त होगा जो ऐसा निर्घृण निर्दय
क्या है मन यह मेरा? हाय! और निरामय—
समान हम दोनों को मातृप्रेम जो देत है
अलौकिक मित्रता को देख संतुष्ट होत है
मुकुंद! ऐसी तुम्हारी माता को वंशवृक्ष का
निष्फल होना कैसे देखा जाए? जननी का—
हृदय हमेशा होता है सुख से उत्फुल्ल खिला
ऋतुस्नान स्नुषा से जबब पुत्र को देखती मिला
क्या कारण है न जानूँ मैं, हर्ष होता यह अगम्य सा :
वशीकृत जगत् अथवा वंश सातत्य लालसा :
भावी ऐहिक सुखों की आशाएँ या शुभभूति की
नई निश्चितता दूजी परत्रा या श्रेय की
यौवन की अशांति की शांति की स्मृति निश्चित
अपने-अपने ईप्सितों से अनजाने विमोहित
अथवा देखकर मात्र पुत्र को मंगलकार्य में
अहेतु हर्ष ही रोमांचित तनु करे प्रेम में;
अथवा सीझी वृत्तियाँ ये : किंतु जननी हृदय में
उत्कंठा है सुतभुक्ता बहू को निरखने में!

तिस पर भी पिता जिसका बचपन में ही गुजर गया
कुल के लिए मात्र एक जो आधार रह गया
तिल का ताड़ बनाया जो ऐसा नंदन लाड़ला
पुण्यशय्या पर बहू के संग प्रथम रम गया
अत्यधिक उल्हास के कारण लगता जननी-हृदय को
सही फल मिल गया है आजन्म परिश्रमों को!
तिसपर भी मेरी या तुम्हारी माँ के केवल
सुख का कमला के भी नहीं है यह सवाल!
नहीं, मित्र, अनिरुद्ध का ही मात्र एक उजागर
अशेष-जन-सौख्यार्थ पालना रति के घर।
अशेष-जन-सौख्यार्थ जो है धर्म वही खरा :
धर्मदा शर्मदा देवी रति—ना सुखद सुंदरा!
राष्ट्रसेवाव्रत जो हमने जीवन भर स्वीकृत किया
ऐसे रामदासीयों को यही धर्म जँच गया
ओजस्वि वीर्य-गांधर्व-विधि से तुम संप्रति
पूता विवाहवेदी से बढ़ाओ निज संतति!'
'मुकुल, फिर तुम भी क्यों विवाह करते नहीं?
तुम्हारे समान मुझमें आत्मप्रत्यय है नहीं
यद्यपि राष्ट्रधर्म का है बीजमंत्र विवाह ही
गंगास्नान करें कैसे यदि शुष्क है जाह्नवी?'
परंतु परतंत्रता की आपदा प्रिय भू पर
धर्मार्थ ही होता है आत्मबलिदान शुभंकर
अर्धभुक्त तभी पत्नी की बाँहों को हटाकर
होता है रे मित्र,, जाना, हाय! रण में भयंकर
ऐसा हवि प्रीति का देने धैर्यशील भी डरते हैं
वज्र के प्रहारों से शैल भी गिर जाते हैं
पुण्य भी, श्लाघ्य भी होते हैं वैवाहिक बंधन
आत्मदुर्बल मुझ जैसे जो, उन को ये अति कठिन
रोगी के लिए पौष्टिक खाद्य वर्ज्य ही होत है
वैसे ही रति का मंगल हमारे लिए वर्ज्य है
अल्पधर्म के खातिर महद्-धम्र न हो गलत
अत: विहित है इनको रहना अविवाहित

परंतु जो दोनों धर्मों को निभा सकता है
कामिनी के कटाक्षों से जो रोका न जाता है
धर्मवीर्यत्व ना जिसका लुप्त हो संग उसके
बल्कि उसी को भी अपने साथ जो ले जा सके
धन्य-धन्य ही वह धीमान् धर्मवीर चितौर का,
राजीवाक्ष अयोध्या का, कन्हैया भारतभूमि का!
तुम मुकुंद, बनो ऐसे, बन सकोगे सत्य ही
विश्वास है मेरे मन में, मेरा है यह स्वप्न ही!
हमारी देशभक्ति है जी निर्नदीकसरोपम
तुम्हारी है जनम पावे गंगा जिसमें उसी सम!
धर्मार्थ एक ही त्याग हम करेंगे प्राण का :
पर तुम करोगे त्रिविध कांता, सुत, स्व-प्राण का!
ध्येय मेरा राष्ट्रभक्ति : पर तुम्हारा जीवन—
ध्येय है पितृत्व, पतित्व, केवल राष्ट्रभक्ति न!!
तुम पूछ रहे हो कि मेरा सुख है कौन सा :
मत्सखा मत्सखी दोनों का हो सहवास रम्य-सा
द्विधा प्रीति यही मेरी मिश्र हो काम-रस में
धृतैकतनु हो जाए चुंबनालिंगन में!
शुद्ध-संचित तेजस्वी-काम्यवीर्य कुमार तुम
कामयज्ञ के लिए दीक्षित उचित हो सर्वथैव तुम!
धर्माज्ञा औ' मदाज्ञा है कि जाओ स्वीकरो कमला को
ताला दृढ़ आलिंगन का लगा दो मेरी थाती को!!
'मुकुंद, मुकुल!' ऐसी मंजुल-स्वर पुकारती
आ पहुँची बाला सुंदर वहाँ नाचती-कूदती :
मुकुंद की माँ ने जिसको प्यार से पास रखा था
प्रेमला कमला की थी जुड़वाँ बहन अंकिता
'मुकुंद, मुकुल!' कहा उसने, 'छिप-छिप के आ गए
अकेली छोड़कर मुझको? अच्छे अब पकड़े गए!'
'पकड़े गए! पकड़े गए!'—कमल से चेहरे पर
मंजु आघात करती कह रही वह बार-बार
कहा मुकुंद ने, 'पता था कमलों की गंध है मधुर
किंतु आज पता चल गया, स्पर्श उनका अधिक मधुर!'

'सही बिलकुल!' व्यंग्य हास्य करती वह कहे उसको,
'पता चला नहाते वक्त! देख लो और रात को!
मधुर-मधुर स्पर्श जिसका किया महसूस तुमने भी
उसी तुम्हारे 'कमल' ने भेजा है मुझको अभी
पूछा था जब मैंने ही, 'ताजा-ताजा फूल ये
किसलिए चुन रही हो?' तब उसने कहा, 'प्रिय,
शाम को जाना है ना प्रभुदर्शन के लिए,
राम मंदिर में!' 'ना जी, काममंदिर में प्रिये,
कामदेवदर्शनार्थ, कमले!' कहा जब सत्वर
मैंने तब वह रूठी, मन में प्रमुदिता पर
'श्रीरामपूजन में हमने देखा न तुमको कभी
ऐसी तत्परता से तुम फूल चुन रही अभी!
रूठी हो?' 'प्रेमले, तुमने ही तो अभी-अभी कहा,
कामपूजन है आज, चुन लो फूल तुम, अहा!'
हँसा मुकुल, 'लगता है निशाना मदन मारत
न केवल कमला को, बल्कि तुमको भी निश्चित!'
तब आया क्रोध कितना! फूल सब कुचले गए
दिखने में उष्ण-शीत मानो शोले भड़क गए
झुकती सी दौड़ी चपला, अहा! कौन पकड़ सके
तितली जैसी उड़ती है लताओं पर झूम के!
'प्रेमले, प्रेमले' कितना पुकारा मुकुल-मुकुंद ने
मिन्नतें कितनी सारी, सुना पर कुछ न उसने
गए पकड़ने दोनों, परंतु चपला तभी
खिसक गयी आगे, पीछे दोनों दौड़ पड़े जभी
'गलती हुई, क्षमा माँगूँ, रुक जाओ तनिक जरा'
कहते ही पैर में साड़ी अटकी औ' लड़खड़ी जरा
और उसे पकड़ा आखिर! पर स-स्वेद भाल वह
धूप में मुकुल का देख खिलखिलाने लगी वह
'मुकुंद, इतने-से श्रम से देखो पसीना मुकुल का
बताते हो कि वीर है यह उदगीर-संग्राम का!'
मुकुंद कहे, 'न मैं ही, बल्कि रण-दक्ष, प्रेमले,
स्वयं वीरश्रेष्ठ भाऊ उस दिन यही बोले :

जब घुसा था यह उसके इशारे पर जूझ में
गिराया म्लेच्छ-सेना के प्रमुख का कबंध रण में!'
'गिराया होगा,' हँस पड़ी प्रेमला, 'कबंध को :
काट दिया होगा किसी और ने जब सिर को!'
'शीर्षहीन क्यों ना हो, गिराया कबंध ही
तुम्हारी घिग्गी बँध जाएगी बस सिर्फ देखकर ही'
हँसने लगा मुकुल ऐसे; तो सावेश रमणी वहीं
कहे, 'देख लूँ, दे दो, तुम्हारी तलवार ही!
दुर्गा जैसी रण में लूँगी मंडल! क को दो लम्हे
तेज घोड़ा मुझे दो जो पेशवा ने दिया तुम्हें'
'वही लो, वही घोड़ा प्रेमले! लेकर तुम्हें
सामने, जब बैठेगा दूल्हा राजा बारात में!
लेकिन तलवार मेरी? यदि दुर्गा की तरह
आठ होंगे हाथ तुम्हरे तब कहीं उठाओगी यह!'
'बस करो, जी, बस', खींचे मुकुल का हाथ वह तभी
अपने हाथ को उसमें गूँथ देती तुरंत ही
कहे हँसते, 'आओ तुम जी, मुकुंद कह दो अभी
कि इनमें कौन सा कर किसका है, कर सकते फर्क भी?'
और कैशोर-लीला में जो मोहक गूँथ दिया
निष्कलंक हाथों का गोप उसने उठा लिया :
उनमें रूप से स्पष्ट कौन सा किसका है कर
कैशोर-कुड्मल के बीच निहित स्त्री-पुरुष-केसर!!
'कौन सा कर है किसका,' मुकुंद ने झट से कहा,
'प्रश्न भी न रहा पगली, प्राणिग्रहण से अहा!'
शुक, सारस, मैना औ' मोर, बुलबुल ने कहा,
'सही! पाणिग्रहण के बाद दूजापन नहीं रहा!'
'अर्धांग युवा, अर्धांगिनी युवती, अनंग अब
करे पूर्णांग दोनों को!' हवा से उठे शब्द :
फौहारे की झारी से संकल्पोच्चारण किया
अप्सराओं ने : इंद्रधनु के पिल्लों ने नाच भी किया
मधुर मंगलाष्टक-गीतों को गाया तब पपीहा ने :
गुलाबजल का सिंचन कर दिया गुलाब-लता ने :

इत्र की कुप्पियों अपनी खोलकर प्यार से खड़ी
मालती-रजनीगंधा की कलियाँ तब आगे बढ़ीं :
पुष्परूप अक्षताएँ फेंकती ये लताएँ :
तरु डोलें, कहें बुलबुल : 'अर्धांगिनी की अदाएँ!'
सृष्टि ही सभी ऐसी दिल्लगी जब उड़ा रही
जवाब वह किसे देगी, बेचारी चुप हो गई!
और तिसपर यह न जाने कि बाह्य सृष्टि की कह रही
अथवा आंतरिक सृष्टि की केवल प्रतिध्वनि हुई!!
तभी 'मखर' की कोमल कदलियों से झाँक कर
कमला ने देखा जैसे देखे चाँद झुककर
'आई-आई! मुझे छोड़ो! कमला जो बुला रही!'
दिल्लगी से भागने की अच्छी यह तरकीब रही!
लेकर बीच में उसको; तीनों फिर चल ही पड़े
उसने दोनों की कटि में अपने कर लिपटा दिए
रात में फलाहार करने नव-दंपति को बिठा दिया
तांबूल तोड़ते होंठों में होंठ मधुर आ गया
ऐसे दिन भर में जो नव प्रभु-देवतार्चन किया
मनोभव मन में साक्षात् प्रभु प्रकट हो गया!
स्व-स्व-प्रथम ऋतु की शांति की स्मृति से तभी
कामव्याकुल हो जाती थीं वे कामिनियाँ सभी
पूजका प्रमुखा जो थी मदनोत्सव-मंदिर
उस व्रत की व्रतस्था वह कोमला कमला, पर!
गूढ़ अद्भुत सा सचमुच कुछ घटित हो रहा है :
अतर्क्य सौख्यभय का दिल में तूफान मच गया है :
लज्जा अकृत्रिमा तन में यद्यपि स्वेदोद्गम करे :
शीलवती के मन में पूरी सात्त्विकता भरे
जड़-सा विषय में ऐसा तमोपहत ना कहीं!
किमपि भला उसे स्पर्श करे अशिव भी कहीं?
उसकी प्रिय लताओं के गूँथे फूल सुचारु-से
प्रेमला ने जब उसके बालों में बहु प्यार से :
मर्कत-मणिक-मोती के आभूषण बिखेरते
उसके मुख पर अपनी किरणों को उछालते

प्रणाम करने पर औ' चुम्मा लेकर सास ने
'अष्टपुत्रवती वत्से, जाओ!' कहे बोल सुहावने
तभी उसके मन में सास के 'जाओ' शब्द से
नए जगत् जाग्रत् हो उठे दिव्य मधुर से!
शुभाशीर्वचनों की वह वृष्टि नई-नवेली पर :
वे मंदिर की पूजाएँ, वह सजाया हुआ 'मखर' :
वह होमदीप्ति, वे धूम स्वच्छ, आहुतिगंध वह,
श्रुतिमंगल मंत्रों का उच्च-दिव्य गजर वह,
अभ्यंगस्नान, वे अंगस्पर्श, वे मुसकराहटें,
पुण्य ब्रह्मणभोजन वह, दक्षिणा-दान, आहटें,
उपहार वे, वीड़े वे, वे 'उखाणे' पुष्पशय्या,
वह मेला इष्टमित्रों का, सालंकृत सुंदरा स्त्रियाँ :
इन सभी से, रस्मों से मुग्धा नई-नवेली पर
पृथक प्रतिक्षण हुए जो संस्कार दुलहनिया पर
उस 'जाओ' का प्रेमपावन स्पर्श हेते ही ये तभी
धीरोदात्तेक संस्कार में विद्रुत हो गए सभी!
कि देवताओं ने, द्विजों ने महत्कार्य हेतु से
निर्वाचिता किया मुझको, नियुक्ता कर प्रेम से!
इष्ट जो पितरों का है, जो करे मुदिता मही
जिसकी विजय के खातिर लुब्ध होंगे विरक्त भी,
ऐसे लोककल्याण की सिद्धि—ना सुख केवल
अग्निसाक्षी प्रिय के संग व्रत किया बहु मंगल
गोत्र-ऋषि का करके नव प्रतिनिधित्व ही
यह चली मैं जहाँ करती हैं 'जाओ' सास भी, वहीं!
सोल्हास और निकली वह वहाँ जाने ही—लेकिन
क्या हुआ कमले?—हाय! गति को रोके मदन!
धकेला सखियों ने ही जबरन पति के मंदिर
दिल आगे बढ़े, यद्यपि हटते पीछे ही ये पैर!
लगा दी कुंडी भी अब खटखटाना व्यर्थ है
मुग्धे, अब इन पैरों की बात को न मानना है
सुन लो बात दिल की, कमले कमनीय बनो अब
प्राणवल्लभ बुलाता है, जाओ, आगे बढ़ो भी अब!

पुण्यमंचकशय्या है : बैठो, बैठो, शुभे यहाँ
चुंबन लेते ही क्यों ऐसी खिसक जा रही हो वहाँ!
बैठो शय्या पर आओ : स्वयं जनककन्यका
जहाँ रमी थी वह रतिशय्या धन्य है बहुपुण्यका!
देहधर्म न अच्छा है? पावने, प्रकट हो रही
स्वर्गंगा जीवन की यह, गंगोत्रि तुझमें रही!
डाले हिरण्यगर्भा यह स्वयंभू भगवान् ही
नरों में जो झरना है, तुम में प्रविष्ट हो वही!
तीर्थों की तीर्थता आवे सुजनों में, और तुम
स्वीकरो उसे ऋतुस्नाते, तीर्थता पाओगी तुम
तो डालो गले में उसके पुष्पमाला और फिर
फूलों से भी मृदुल माला अपनी बाँहों की सुंदर
फूलों से भी मुलायम और चीनी से भी मधुर ही
प्रमदे, आलिंगन कर लो, लिपट जाओ उससे ही
मीठा-मीठा आलिंगन? रे पगली, आगे और भी
आलिंगनामृत की मिठास, प्राशन कर लो तुम अभी!
अंग-अंग लिपट जाओ, विलंब पल ना करो :
असाधारण पल यह देवी, इसपर पूरा यकीन करो!
कौन जाने, पाताल में नागकन्याएँ तथा
आकाश में अप्सराएँ खड़ी होंगी ही सर्वथा
लेकर करों में अपने आरती मंगला तथा
शहनाइयाँ लगाकर होंठों पर सिद्ध ही सर्वथा
देवदूत-दूतियाँ भी प्रतीक्षा में क्षण के इसी,
वर्णन करेंगे कवि भी 'प्रसन्नदिक्', 'शुभशंसि'!
हे कल्याणि, इस पल में दो हृदयों को जोड़कर
अनंग सृजन करता है अमृत में अमृत डालकर
—कौन जाने!—इसी दिव्य कृति में संभव होगा भी
जन्म किसी घनश्यामल राम का शायद अभी :
अथवा काल-गुणादि से जो ठहरा था आद्यकवि
महाकवियों में, दुनिया में, उसके समान कोई कवि :
कोई गीता-द्रष्टा वा धुनर्धर का सारथी :
वाग्मी बृहस्पति : शिल्पी मय : भीष्म महारथी :

अथवा मदालसा, मुक्ता, मीरा या विदुला कोई
लावण्य रूप लता अथवा उमा देवविमोहिनी :
अथवा विश्ववेधों का मनु भास्कर नूतन :
आश्चर्यजनक अजिंठा का निर्माता, नट, नर्तन
नाट्यकार या कोई जग में अद्भुत-सा नया
आसन्नमृत्यु राष्ट्रों ने जिसकी प्रतिभा में पाया
नवजीवन, ऐसा कोई चंद्रगुप्त : अमात्य भी :
अथवा विक्रमादित्य जिसका विक्रम दिव्य भी :
हिंदु छत्रपति श्रीमान् शिवाजी वीराग्रणी
गुरु गोविंद या बंदा धर्मवीर महागणी
मंगलमय परा सीमा! सृजन में इष्ट संभवा
लेनी होगी इसी दिव्या देवभूमि तुममें शिवा
जन्मजन्मांतर की जिसकी तप:सिद्धि फलोन्मुखा
रही होगी इसी क्षण की प्रतीक्षा में समुत्सुका
आत्मा अंतिम जन्म को पाकर अंतत: मुक्त होगी भी
बुद्ध, शंकर या जीवन्मुक्त देहूस्थित संत भी!!
प्रेय का स्वर्ग भोगो तव श्रेय का स्वर्ग स्वीकरो
हे प्रिय, समुपभोगी तुम कसकर आलिंगन करो
मत चुराओ बदन सुभगे! निर्विकल्प समाधि का
मूल आसन है कामासन! अनुभव कर लो उसका!
और हे पंचशर आओ : पाँचों शर इसी पल
मार दो, यह सुकुमार मन्मथाधीन युगुल!
कार्यरत रहोगे यदि ऐसे ही शुभ कार्य में,
तो, हे मदन, क्यों शंकर आ जाएँगे ताव में?
ले लो सम्मोहनास्त्र भी तुम, प्रयुक्त कर दो अभी
मुकुंद-कमला दोनों समाधिस्थ हैं तभी!
रति मूर्च्छित दोनों को आलिंगन-विमान में
ले जाओ, अनंग, ऊँचे सुख के आसमान में!
मंजु मंजुलगीतों की वर्षा होगी निरंतर
चंद्रिका-चंद्रकांतों का रस झरेगा निरंतर!!
मुसकराईं लताएँ तब आशीर्वाद शुभंकर
शुभे, यह शिव हो तुमको नया वर्ष मन्वंतर!

प्रेय का छोड़कर स्वर्ग सुख के आसमान से
कर्मभूमि लौटोगे यही सूचित करते-से
डरते-डरते दूर से ही हवा बह रही तभी
अश्वों की दौड़ की आईं क्षीण प्रतिध्वनियाँ जभी
'अश्व ?' स्पष्ट हो गई ध्वनियाँ! किसके ? इस समय कहाँ ?
तभी शय्यागृह का द्वार खटखटाया किसने वहाँ ?
'मुकुंद!' खटखटाया ज्यों, तभी द्वार खुल गया
मुकुंद बाहर निकला, मुकुल का कर ले लिया
'स्मृति प्रिय तुम्हारी ही हो रही थी अभी मुझे!'
'प्रिय नहीं, अप्रिय वार्त्ता को कहने दो तनिक मुझे
मुकुंद, पढ़ लो तुम ही राजाज्ञा! अब इसी क्षण
मुझे निकलना है रण में,' 'और मुझको भी तत्क्षण!
रण में गिर गए शिंदे? मराठा तब कौन सा
दत्ताजी के प्रतिशोध में निकलेगा न सहसा?'
'मुकुंद, तिसपर भी औ' शत्रु यहाँ के कोई
दुर्वार्त्ता सुनकर ऐसी करने को हाथापाई
जंगल में इकट्ठा होते हैं यहीं पर, उनको तभी
कड़ी सजा करने की आज्ञा है मुझको अभी
अत: इसी मौके पर हमला कर लूँ भयानक
असावधान दुश्मन को खत्म कर दूँ अचानक
उद्युक्त अश्वसंधों के लगाम आतुर खींचकर
प्रतीक्षा कर रहे हैं मेरे आक्रामक घुड़सवार
रूठ जाओगे यदि जाऊँ वैसे ही : इसलिए यहाँ
मिलने आया हूँ मैं, 'और मैं रुकूँ यहाँ?'
नहीं, नहीं, कभी नहीं जी! क्या मराठा नहीं हूँ मैं?
लेकिन मुकुल ना बोले, संकोच बहु मन में
अंत में अधोवदन ही प्रेमगद्गद कह पड़े,
'मुकुंद, मेरी कमला जग रही या सोई पड़ी?'
'अभी लग गई आँख जरा सी' तब क्या करें
शिलानिष्ठुर दिल से त्याग हम उसका करें?
सुख-स्वेद-ज बिंदुओं की बिंदियाँ डोल रही हैं;
प्रेम-शय्या पर अभी तो जरा झपकी आई है

ऐसी हालत में कैसे कमला को छोड़ें हम?
फेंक देंगे ज्वाला में ही कमल को कैसे हम?'
'अग्नि में कमल को ऐसे फेंक देना भी ठीक है
देवकार्य-महामख में यदि वह प्रज्वलित है!
मित्र मुकुल, तुमने ही सर के पास था कहा :
धर्मार्थ ही होते हैं आपद्धर्म बलि अहा!
शत्रु दसों दिशाओं में! फिरंगाण तुराण से
सेतुबंधों तक जो भी म्लेच्छ और अ-हिंदू-से
वे सारे मिलकर आए हैं विनष्ट करने सही
शिव छत्र, हिंदुओं का जो है प्राण अनन्य ही!
अहिंदू आक्रामक है सारा! और क्या हिंदू भी कभी
शय्यागृह की खिड़की से देखते रह जाए भी?
हिंदु सारा न उठे तो भी मराठा अखिल जुटाकर
आबाल-बालिका मरेंगे मारते-मारते समर!
क्या समर्थ की दीक्षा को हमने स्वीकृत नहीं किया?
तुमने भी जान की बाजी लगाने का ही तय किया!
वीर, तुम हो श्रीमंत भाऊ के सरदार ही
क्या मैं भी नहीं दूँ देह इक दूजी तुम्हारी ही?'
तभी हल्की बजी सीटी! स्फूर्ति का संचरण हुआ
वीरश्री की प्रभा फैली, वीरबाहु प्रस्फुरित हुआ
'आह!' मुकुल ने कहा सहसा, कदम आगे बढ़ा दिया
'सर्व सिद्धि हुई ऐसा सीटी ने इशारा दिया!
विलंब पल भर भी ना करना है! तुम भी चलो!
लेकिन अंतिम बार दोनों कमला को देखें, चलो!'
और गद्गद दोनों भी जैसे मंदिर-द्वार में
सकंप कर जोड़े ही शय्यागृह के द्वार में
मुकुल ने कहा, 'प्रभुजी, हमारी कमला की और—'
'हमारी प्रेमला की!' जोड़ा मुकुंद ने अति तत्पर :
'हमारी प्रेमला और कमला की,' तब दोनों ही
एक साथ बोले, 'प्रभु, रक्षा करो, विनती यही!'
राजीव-लोचनों वाली यौवनोदय भास्वर
जोड़ी घनिष्ठ मित्रों की साश्रु ही अति सत्वर

सोए हुए जीने को भी न जगाते हुए चली
उतरकर सीढ़ियाँ, घर से तुरंत ही निकली!
उच्छृंखलाश्व संघों के लगाम हो गए ढीले
जंगल के पास आते ही सिद्ध हो उठे भाले!
हिनहिनाता न घोड़ा, ना सवार साँस छोड़त है
रिपु की छावनी पर ज्यों घोर हमला होत है!!
धड़ड़ धड़ड़ शोले बंदूकों से निकल गए!
दमकत तलवारें, घूमत रणगर्जनाएँ!
छोड़ न घंटा भी हो गया प्रेयसी को
रण प्रतीत हुआ क्षण स्वप्न सा मुकुंद को!!
औ' भड़क उठा ज्यों दीप दावाग्नि निकली
बहत रुधिर-रंग प्रीति का चंड उछली
दयित! बकुल! आवाजें सभी व्यर्थ होत
नींद बिखर गई जब स्वप्न भी सत्य होत!!

□

विरहोच्छ्वास!

(विरह की लंबी साँसें!)

(**परिचय :** 'कमला' काव्य में मुकुंद और मुकुल नामक जो दो पात्र आए हैं, उनमें मुकुल का अग्रिम वृत्तांत इस तरह वर्णन करने की योजना थी कि वह वीर युवक अपनी वीर दयिता प्रेमला के साथ हिंदू पदपादशाही के लिए जब लड़ रहा था तब उसके दस्ते से अलग होकर मुसलमानों के हाथ में अकेला ही अपने दस्ते के साथ आ जाता है। और मृत्युदंड की अपेक्षा करते हुए काल कोठरी में बंदी बन जाता है। उसे पीड़ा देकर परास्त करने का तथा उसके द्वारा स्वधर्म द्रोह कराने का यत्न शत्रु कभी मृत्यु का भय दिखाकर तो कभी उसकी दयिता से मिलन कराने का लालच दिखाकर करते रहते हैं। अत: इस उद्देश्य से कि ऐसे शत्रु को अपनी विरह-व्याकुल दयनीय अवस्था दिख न पड़े और अपने साथी सैनिकों का भी धीरज न छूट जाए, वह ऊपर-ऊपर कठोरता धारण करता है और अपने खोए हुए प्रियजनों के बारे में पूछताछ भी नहीं करता है। किंतु वीर कर्तव्य के लिए स्वीकृत कठोरता के कवच के नीचे उसका प्रेमी हृदय पहले वाली प्रिय संगत के सुखों का स्मरण करके विरह से लगातार व्याकुल होता रहता है। मन-ही-मन उसके व्याकुल अश्रु लगातार झरते रहते हैं। ऐसे दुखोद्वेग को हलका करने के लिए उसके प्रेम व्याकुल हृदय ने जो लंबी साँसें छोड़ीं उन्हीं की प्रतिध्वनियाँ बन गए ये गीत!

मूल पानीपत का काव्य अधूरा रह जाने के कारण उसका, पूर्वोक्त 'कमला' के सर्ग की तरह ही, यह सर्ग भी स्वतंत्र रूप से आगे दिया है। जाहिर है, उसमें जिन मूल घटनाओं की ओर संकेत है—जिनको मूल काव्य में विस्तार के साथ वर्णित करने की योजना थी—उनको अब टिप्पणियों के सहारे अनुमानित करना ही पाठकों के लिए क्रम प्राप्त है।)

: १ :

मैं लिखता हूँ शब्द, पुंज अर्थों के
मिटावत नैन-जल तड़के॥
हे विरह, तुम्हारा यह दंश विषैला
पिलावत है मिष्ट-विष-प्याला॥
इस जल का ही हो जाए अनुपान
सौगंध स्वीकरत अन्य!
हा, हाय, तुम्हारा यह गीत मधुर-सा
करत है प्राण व्याकुल-सा!
सुमकोमल-से प्रेमानुभवों में जब
हे प्रीति, लिपट लूँ तब तब,
यह जो भी है काल नाम दुनिया में
भूलकर उसे मधु नशे में॥
जब मग्न हुए संग-सुख-प्राशन में,
शाश्वत का अनुभव क्षण में,
हाँ! विरह भयानक देखो
प्रेम की अनंतता को
आरोपित[१] करके क्षण को।
यदि अंत को। हम उसी क्षण को
भूले थे, पर अंत न भूलत सहसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!! धृ.॥

: २ :

तुम आँखों से ओझल हो जाते ही
सखि, तुरंत कोशिश की ही
क्यों तुमने भी पल भर नहीं दिखाया
कमलाक्षि, तुम्हारा साया?
'तुम याद करो आलिंगन-वचनों को
अश्रु में भिगाकर उनको!'

यह समाधान ना मुझमें
उस पल भर की झाँकी में
जो प्रेम, न वह मीलन में
तमन्ना मन में। मेरी बाँहों में
तुम होगी और देखें जन विस्मित-सा
करत है प्राण व्याकुल-सा!!

: ३ :

अब कुछ भी ना अच्छा लगता मुझको!
ना चैन कहीं भी दिल को!
वीरानों से ऊबकर लोगों में,
आ जाऊँ फिर वीरानों में!
मैं बाल सँवारूँ, फिर से बिखरूँ भी
भूलूँ सब याद करके भी
भ्रमण कर, एक पल बैठूँ
देखकर, नैन कुछ मूँदूँ
पर हाय! अनुक्षण भर दूँ
आह पीडा की। चैन ना दिल की
पल विरम नहीं, तव स्मृति उछलत सहसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: ४ :

जो खिलते हैं फूल, तोड़ लेता हूँ :
फिर उनको कुचलाता हूँ!
'लटका दूँ मैं तेरे ही बालों में' :
अब कहूँ कहाँ सखि, पर मैं!
सखि, पहले ये प्रेमदूत[२] थे तुम्हरे :
बनत अब दुःखकर मेरे!
कुछ खाने की मिन्नत सब करते हैं
भूख ही चली जाती है!

याद है, मैं रूठा था
कुछ हठ कर ही बैठा था
तुमने ही तब खिलाया था
अपने मुख से। कँवल अमृत-से
मधु अधरों का मिश्रित जिनमें सहसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: ५ :

जब गाय कभी बछड़े को चाटत है,
उपचार[३] निभावत ना है!
जब चोंच मिलाए चोंच से खग युगुल
तब रुचि लेता है विपुल;
अँगूरों का, आम्रफलों का, मधु का!
स्वाद है भिन्न अधरों का!
जो अधर है यौवनमत्त,
अँगूर, आम्रफल, मद्य,
इन सबसे भी उन्मत्त
अधिक स्वाद है!! मन उत्सुक है
चखने को, दे दो चुंबन फिर मधुर-सा।
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: ६ :

हे चुंबन! है वही मूढ[४], जो तुझको
जानत ना रति-भाषा को!
वह बहरा है कानों से औ' दिल से
जो सुनत न तेरे जलसे!
रतिदेवी का मुख[५] हो तुम! तुम मुखिया
विश्व के सब मधु-रसों का!
वाणी भी औ' मन भी झेल न पाए
तव हृदय ताल में गाए

आजन्म सुनाते हैं चुंबन सारे
जो गीत श्रवण से भी परे!
मुरली में[६] जो न आ पाए
जो मेघदूत में न समाए
जो ताजमहल में न आए
वह तुम ही हो न, सुन हे चुंबन,
तुम प्रीति का हो प्रणव[७]! रति-वीणा-सा।
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: ७ :

यह उषा[९] जब कभी रंग खेलती आई।
मैंने तब उड़ान लगाई,
कमलों को, औ' बागों को, खेतों को,
लाँघकर चला मैं सबको
गत्युत्सव में मग्न था तभी देखी
तव मूर्ति रम्य अनोखी!
विहगों में, वैसे कभी न रति के नभ में
युगुल था हमारी तुला में!
भर-भर के देकर हृदय रसीला अपना
चंचु में चंचु, मधु सपना!
शतजन्म-उपार्जित पल, या
जो लगे हाथ में आया
उस क्रौंचमिथुन गति[१०] सम या
जो बद्ध पग में। अनदेखी में
वह डोरी[११] दुष्टा दूर करत री सहसा!
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: ८ :

मैं राज्य, और हे प्रीति! तुम्हीं हो रानी!
तुम रत्न, मैं रहूँ खानी!

मैं पागल, तुम हो चटुल जादूगरनी
मैं मोर, मूर्त तुम वाणी!
मैं लिखता हूँ शब्द, पुंज अर्थों के
मिटावत नैन-जल तड़के!
हे विरह! तुम्हारा यह दंश विषैला
पिलावत है मिष्ट-विष-प्याला!
इस जल का [१२] ही हो जाए अनुपान!
सौगंध स्वीकरत अन्य!
जो फिर से दिख ना पाएँ
उन स्तनंधयों की माँएँ,
बाला जो ससुराल जाए,
विरहिणी, विधुर : सुन लीजिए!
इस गाने को। समसतार को। अपने हृद को।
एक ही होत है प्रीति सभी की सहसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: ९ :

औ' तिस पर भी वह प्रीति यौवनमत्ता :
जो उषा-स्वप्न में स्नाता!
मधु जवान फूलों से झरती कैशोरी!
जिस ऋतु में हृद में सारी
हे वसंत,[१३] हमको वत्सलता-शाखा पर
तुम बिठा रहे झूलों पर!
वह कुछ-कुछ मंजुल दिल में जो होता है
जब ऊँचा वह[१४] जाता है!
रूप में तथा हृदय में
समानता सुंदरता में
माधुरी घुल गई सबमें
हृदय में भरा। प्रेम-सहारा
जिसका निवास यौवन में सहसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: १० :

यौवन में जो था लोभ एक-दूजे का,
सर्वस्व समर्पित पक्का!
तुम सखी, स्वसा, शिष्य, भाई भीं छोटा
दुःख में सहारा माता!
साथी तुम थी चंडी के मंदिर का[१५]।
सहतपी रण-तपस्या का!
तेज से अहा सिंहों के भरपूर
ललनाभा-स्निग्ध भी और।
ऐसे रस से पूरित
तव हृदय-पात्र जो सतत!
मुँह लगा लिया तृषार्त।
मैंने भी जब। अचानक ही तब
भूचाल[१६] भयानक हो जाए सहसा!
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: ११ :

मध्याह्न भयानक : आहें भी गर्मीली
भरत ज्यों हवा यह चली :
गुस्सैल धनी[१७] : औ' बोझ : दूर जाना है
चलते ही पैर जलते हैं :
इक नन्ही-सी ही कुटिया के तुम पास
दिख पड़ी बुझावत प्यास!
कर दिया तभी ज्यों मधुर इशारा तुमने
बरसे थे फूल चमन में!
उँडेली तुमने गागर
अंजुलि से वह प्राशन कर
मैं चला जभी पुरःसर।
अधिक जोर से। प्यास कसमसे। तुम्हारे जल से।
लौटा मैं फिर से!—जादूगरनी, ऐसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: १२ :

यह जान चली! भरने दो जी इसको
चुंबनमय मधु प्याले को
आतुर हैं जी, गले तुम्हारे पड़ने
हास्याश्रु-रूप ये गहने!
यह टीस रहा हृदय-स्तन पेन्हाया
रे नन्हे, पी लो माया!
जब नींद टूट जाए और
मम सीने से लिपटाकर
सोई-सी तुम्हें देखकर
कब पी लूँ मैं। मधु चाँदनी में। मुखमंडल में।
इक हिमकर की किरण मधुर-सी सहसा।
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: १३ :

हा! हाय! अभी मिलन भी होगा कैसे?
आशा भी रूठी मुझसे!
तब मिन्नत से मैंने समझाया था,
पहले ही कहा नहीं था?
'मिलन की है एक यही तो रात :
रह जाए ना फिर बात!'
जो दीपों की[१८] बढ़ा-बढ़ाकर बाती
रात में राह देखी थी!
आहट-सी कभी सुनकर चौंका था मैं
बैठा फिर उदासता में!
तब दरवाजा खुल गया
तुम ही थी! आलिंगन किया
बहुत-सी भरी सिसकियाँ
(पर मैंने) भूलकर रात, शेष लवमात्र, मिलन की बात,
तब दूर किया था तुम्हें रूठकर[१९] सहसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: १४ :

प्रेमियो, सुनो, तुम दूर न जाओ पल भर
अभिमान जरा भी लेकर!
इस पल की तो दीर्घ प्रतीक्षा में ही
शत सूर्य बुझ गए यूँ ही!
औ' सूख गए शत सिंधु तब कहीं उभरा
यह क्षणांत[२०] मिलन तुम्हारा!
शत अंध वियोजक शक्तियाँ
कालाब्धि बीच इकसरिया
केंद्रस्थ वियोगावर्तियाँ
प्रीतिपर्व यह। मिलन पर्व यह
जयशालिनी प्रिया प्रीति समर्पित[२१] मनसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: १५ :

उस दुर्भागी क्षण में पथ पर दिखता
वह कौन?—तुमने पूछा था
भ्रू कुंचित, भू पर दमखम पद, सीने पर—
उपवीत, कृष्ण तनु, तेवर
यह तूफानी विद्युन्मेघ-सा[२२] दिखता
कौन है तुम्हें डरपाता?
हा! प्रीति! न क्या तुम जानत यह चेहरा?
गुस्सैल धनी यह मेरा!
बुद्धि ने जनम से मुझको
बेचा है दास्य में इसको[२३]
कहते हैं धर्म इसी को
जनम से तथा। मुझे बेचा था
हृदय ने तुम्हारे चरणों में दास-सा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: १६ :

तोड़कर तभी द्वार, तपोमय मूरत[२४]
घुस गई, समय प्रभात
इक दर्भ तभी फेंक हमारे बीच
कह दिया, 'दूर हो नीच!'
मैं हकलाया, 'मान्य', करत वह आज्ञा
संपन्न करो अब यज्ञ
मिल लिया न पूरी तरह
रह जाए अधूरा मिलन यह[२५]॥
अब दूर ही रह जाए यह
जो अँधियारी। भयाण खाई
जाओ अब तुम, रहो वहाँ बंदी-सा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: १७ :

हा! हाय! अभी मिलन होगा कैसे?
आशा भी रूठी मुझसे!
हा! हाय! हमारी बुद्धि भली कैसी
इस फँदे में आ फँसी?
ना दोष निकालना कहीं संभव है
विप्र[२६] की दासता है!
पर करूँ क्या इसी दिल को?
तिलमिलाती इन आहों को—
'हृद्-दयिते! देख लूँ तुझको!'
जो बहुतेरे। अर्पित सारे। उनमें मेरे
इस व्याकुलता को मानो[२७] पूजन-सा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: १८ :

उम्र कच्ची जो यौवन को छूती-सी,
तलवार तेज औ' ऐसी!
मूर्च्छा आती, गला सूख जाता है
हर कदम तोल ढलता है,
प्याला हाथों में, आँसू [२८] भरे सम्हाले
बूँद भी न गिरने पाए!
यह बाजीगरी क्रूर खेल चलता है!
तलवार पर नाचना है!
यह खून गिरा, पर मैंने
प्याला न दिया वह गिरने
और कहा—'धिक्'[२९] लोगों ने,
'हाथ में लिया। खाली प्याला!'
तुम मानो ना इसे कभी भी सच-सा!
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: १९ :

औ' तुम्हरे भी हाथों, हे परमेश्वर,
यह कैसा विषम व्यवहार?
जो पी न सकें पिलाएँ नहीं, पगला
आँसुओं भरा यह प्याला!
सुम-कोमल क्यों हृदय दिया, औ' उसको
वज्र से कहा लड़ने को!
सखि! कोई कहे, 'प्रेम आदि जो कुछ है
न इसका दिल छूता है!'
जो हिरनी व्याकुल भूख से
निर्दुग्ध उसी के थन से
छटपटा रहत हैं जैसे।
बछड़े वे उसके। उससे लिपट के। मेरे हृदय के—
साथ वैसे ही स्मृतियाँ करत हैं सहसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: २० :

पर हे सखि, ना मान असह दिखता हूँ
इसलिए मैं न सहता हूँ
या कहता हूँ, असह दुःख भुगता हूँ
इसलिए न प्यार करता हूँ!
हे प्रीति! तुम्हारे विरह में मिठास
है 'तुम्हारा' सही खास!
यह शोक भला कविता में रखता हूँ
हृत्पात्र भर लेता हूँ
स्मृति[३०] दूर मलय की लहर
लहराती दिल का पोखर
छेड़ती वृत्ति-इंदीवर
तनु की तार। अति मधुमधुर
उसे छेड़ूँ तो गीत प्रसृत करुण-सा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: २१ :

बहु आशा यह, हाय! प्रिये, मेरी थी
प्रथम जब उषा[३१] आई थी॥
सुम कानन में, समुद्र-तट पर शांत
देखकर कहीं एकांत,
यह छोटा-सा एक बँगला, जितनी
जो चीजें जरूर उतनी;
तुम गीता, वह आदिकाव्य, वह वीणा
फूलों का सदा नजराना
तव सुख का चित्र बनाने
पटभूमि खंड भी जितने
हैं जरूर, जुटाकर उतने
साथ तुम्हारे। सुख में सारे
दिन[३२] गुजारूँ मैं अनजाने में सहसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: २२ :

पर भग्न किया प्रभु ने उस आशा को
दिन ऐसा उसी उषा को!
यह ठीक हुआ, प्रभु ने अपनी शक्ति
दिखलाई, तभी तो भक्ति!
यह छोटी-सी नाव, विशाल है सिंधु[२३],
डूबेगी, तो क्या कह दूँ?
जो हेतु लिये आएँ द्वार तुम्हारे
उसके बिन सब कुछ सँवरे!
शोक के गेह से निकले
जो गुलाम तुम्हरे भोले
प्रिय विरह मरुस्थल वाले
उनको भी न, प्राप्त जो धन, वह दास धन[३४]
वह आँसुओं का ऐश: न मिले सहसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: २३ :

जो दिया कभी उसका न जिक्र करता हूँ
अकृतज्ञ इतना नहीं हूँ!
जो दिया कभी, था मात्र बिंदु, फिर भी
पर्याप्त न सिंधु में भी!
निश्चक्षु[३५] निशे! प्रभात जिसको न कभी
बतलाता हूँ अब मैं भी :
वह [३६] प्रकाश है प्रथम, अनंतर नैना
सुख न, देता है पर सपना!
मैं दु:खों का प्याला पीकर झट से
पूछूँगा दु:खवादी से :
सुख अधिक नहीं दुनिया में तो फिर
जीने को जग क्यों आतुर?

ना प्रभो चारु मूरत को
दिल की प्रिय चंद्रिका को
इस पल तो भोगा उसको
उसी सभी की, रसीद पक्की, आज दर्ज की
एक ही मुझे प्रश्न : हुआ यह कैसा?
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: २४ :

क्या कहते हो? सब्र कर! उष:काल[३७]
है अभी बहुत ही काल!
दिन पूरा है पड़ा, क्या होगा भी
ज्ञात है तुम्हें कुछ भी?
भूकंपों का पर्व है : क्वचित् इसमें
भड़केगी आग दिशा में
भड़केंगे शोले, उनसे
नवद्वीप महासागर से
नव महासिंधु द्वीपों से
शकल[३८] सभी के, सभी शकल के, अंदर क्षण के
होगा कल ही ध्येय सिद्ध भी सहसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: २५ :

वह ध्येय महान्! प्रभु लालायित जिससे!
कल्पवृक्ष जीवित जिससे!
उज्जयनी[३९] के स्वर्णसुशोभित शिखर
फहराते नवध्वज जिनपर!
चिरमूक, अजी देवदुंदुभी गर्जो :
भाटो, तुम गाओ, नाचो :
सिंहासन पर होत विराजित आज।
आदित्य विक्रमराज[४०]!

नवजीवन की शुभ धारा
मिटा देत पल्वल[४१] सारा
जो पुण्यशील जलधारा
राष्ट्र-जाह्नवी। सनातन नई!
बढ़कर तेजी से हरिपद छूगी सहसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: २६ :

'भवसागर में प्रभु ने ही बनवाया
भवद्वीपस्तंभ हिमालय!
तिसपर और धर्मदीप उज्ज्वलता
आध्रुव ध्रुव को पथदाता
रक्षा जिसकी करती हैं कल्याणा
नव जल-स्थल-वियत्सेना
संपन्न जभी विप्रयज्ञ[४२] हो जाए
एकांत स्थल पर जाएँ
औ' तुम अपनी उसी प्रिया से मिलना
आलिंगन—' यह मत कहना!
फिर से मत डालो जी अब बातों में
मुझको भी मोहपंजर में!
अभी-अभी अँधेरे में
देखने[४३] लगा हूँ जो मैं
आशा की क्षणिक झलक में
अधिक बनत मैं। व्याकुल मन में
नैनों के आगे अँधेरा-सा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: २७ :

ले गए कहाँ मूर्तिभंजक मेरी
वह मूरत प्यारी-प्यारी?

मंदिर सूना, पुष्पों की पूजा को
अब अर्पण कर दूँ किसको?
क्या सब्र करूँ?—पर यह भीषण ताप!
सूख जाएँगे ये पुष्प!
होगा बासा नीर भी उषा[४५] का व्यर्थ
यह नेत्राभिषेक पात्र!
निर्मूर्ति मंदिर में जी
मेरे दिल में आज
व्याकुल है विधवा-सम जी
यौवनलता देखो। अपने फूलों को
अपने तन पर मुरझाते ही सहसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: २८ :

यह आसक्ति[४६] है? ना, ना, यह है प्रीति!
और नहीं कहाँ आसक्ति?
फिर व्याकुल क्यों हुए थे तब समर्थ[४७]
जब खोया शिष्य पवित्र?
क्यों तिलमिलाया कृष्ण स्वयं भगवान्
भांजे का जब गया प्राण?[४८]
'खो गए कहाँ हाय! हाय! गोपाल!'
मीरा का क्रंदन-हाल!
क्यों तुकाराम राहों पर
संदेशा सुनने आतुर?[५०]
'हा सीते!' क्रंदत रघुवर[५१]
आलिंगन करत। पेड़-पत्थर नित
अश्रुमेघ के बिन इंद्रचाप[५२] वह कैसा?
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: २९ :

औ' विरह हमेशा होगा प्रीति में!
'प्रीति दो भिन्न हृदयों में!
पर दिल में तुम स्वयं आत्मरत होगे।
विरह से मुक्ति पाओगे![५३]'
फिर बताओ जी खिलते हुए सुमन को
अपनी ही गंध सूँघने को!
या झरने रव मधु कहो मुरली से
स्पर्श बिन किसी अधर से!
व्यंजन खा गए खोया!
देखेगी राह पगडंडिया!
स्वजल-स्नात गंगा मैया!
चंद्रिका बनत। आह्लादक तब
जब आँखें ही करत चकोर को प्यासा[५४]
करत है प्राण व्याकुल-सा।

: ३० :

विरहाश्रुओं की नदी एक सीमा सच
जारिणी-विरहिणी बीच!
पेय वदन के भासार्थ जिन्होंने भी
नभ को चूमा न कभी
मधु अधर उन्हीं के न मिला होंठों में
बिजली न दमकत दिल में!
प्रिय विरह-दिवस-देवों ने
पर्याय-प्राशन करने
पांडुरा मूर्ति ली चुनने
तब प्रीति की। मधु संभोग की
गत पूर्णिमा की याद तनुकला[५५] सहसा!
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: ३१ :

न कुछ भी अब अच्छा लगता मुझको
आता न चैन कहीं मुझको!
और लगता कुछ अचानक कभी अच्छा
मन भुगत मरण[५६] को सच्चा!
मुझे सुख भी तो दुःख देते है! क्यों अब
सुख चाहूँ तुम हो ना जब!
रुसूख चलाकर सुख में
तुम आई थी जिस गृह में
उस सुख को उसी गेह में
बंद या खुले। होत द्वार ये
तुम्हारे रुसूख[५७] से! यह व्यवहार चतुर-सा।
करत है प्राण व्याकुल-सा!

: ३२ :

ये आँसू पुष्ट होत विरहाग्नि से
विरहाग्नि पुष्ट आँसुओं से :
ऐसे ही ये जीते रहें सुखावह
यह विरह, आँसू और वह!
मुझे सुख मिलता है दुःख में, दुःख ही
है सुखद : तपस्याग्नि ही!
हे तपस्वियो! फलद हो तुम्हें तुम्हरी।
औ' मुझे तपस्या मेरी!
चाहूँ न शिला या मूरत
भावन के बिना दिखावत
आलिंग्य, चुंब्य जो रहत
प्रत्यक्ष वही। तब मूर्ति सही। समचेतन ही[५८]
मैं देखूँ उसी में अपना प्रभु ऐसा
करत है प्राण व्याकुल-सा!

टिप्पणियाँ : १. आरोपित = ऐसा आभास हुआ कि जो प्रेम अनंत सा प्रतीत हुआ, उसकी अनंतता की तरह वह सहवास का क्षण भी अनंत ही है। मैं भूल ही गया कि यद्यपि प्रेम अनंत होता है, क्षण के लिए अंत अनिवार्य है।

२. प्रेमदूत = पहले ये प्रेमदूत जब तुम्हारा संदेश ले आते थे तब उनका दर्शन होते ही मैं हर्ष से मुसकराता था। उस आदत के कारण आज भी उनका दर्शन होते ही मुझे आदत से मुसकराहट आती है। परंतु तुरंत याद आता है कि अब तुम्हारा संदेश वे नहीं ला सकते और फिर मन व्याकुल हो जाता है।

३. उपचार = गाय बछड़े को चाटती है, उस समय वह केवल प्रीति को अभिव्यक्त करने का औपचारिक संप्रदाय नहीं निभाती है। उसे बछड़े की एक विशिष्ट तथा इष्ट गंध प्रत्यक्ष रूप में प्राप्त होती है। प्रत्यक्ष स्वाद का आनंद लेती है। आगे चलकर इस विशिष्ट स्वाद को ग्रहण करने के लिए मानवीय इंद्रियाँ इतनी सूक्ष्मग्राही नहीं रहीं, फिर भी प्रीति का आनंद अभिव्यक्त करने की यह पद्धति रूढ़ हो गई। उसी का रूपांतर चुंबन, अधरपान आदि में हो गया।

४. हे चुंबन! वही आदमी मूढ़ है जो तुम्हें अर्थात् रति-भाषा को जानता नहीं।

५. चूँकि चुंबन मुख से लिया जाता है, उसे रति-देवी का मुख कहा है।

६. जो प्रेम कृष्ण की मुरली से, 'मेघदूत' से, ताजमहल से प्रेमियों द्वारा पूर्णत: अभिव्यक्त नहीं हो सका, उसे चुंबन अधिक वक्तृतापूर्ण वाणी से तथा अधिक संतोषजनक रीति से अभिव्यक्त करता है।

७. प्रणव = आरंभ तथा समाप्ति।

८. वीणा = क्योंकि चुंबन मधुर ध्वनि करता है।

९. क्रौंच = जिसे बिद्ध होते हुए देख वाल्मीकि ने श्लोक उच्चारित किया : 'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम: शाश्वती: समा। यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधी: काममोहितम्।'

११. वह नियति का पाश रज्जु।

१२. जल का = इन विरह विकल आँसुओं का अर्थ वही जान सकेगा। अन्यों को यद्यपि वे असंबद्ध तथा असमंजस लगे, तो भी उसके हृदय के भीतर जो शोक-क्षोभ उभर आया है उसे ये आँसू ही हलका कर देंगे।

१३. वसंत = नवयौवन।

१४. वह = हृदय का झोंका।

१५. हिंदू पदपादशाही के ध्येय को लेकर जो रणदेवता की उग्र आराधना की थी उस तपस्या में मेरा सहतपी, सहसैनिक।

१६. भूचाल = मातृभू को कंपित करानेवाले राष्ट्रीय युद्ध के झटके अचानक आ गए और सबकुछ उलटा-पुलटा हो गया! प्रेम का प्याला होंठों से लगते ही खिसक गया!

१७. धनी = वह ध्येय! धर्म! उस ध्येय की खातिर देवकार्य का बोझ सिर पर लिये उग्र कर्तव्य मार्ग पर मैं चल पड़ा। आगे के वर्णन में भी यही ध्वन्यर्थ अभिप्रेत है।

१८. दीपों की = नियत समय जैसे-जैसे निकला जा रहा था वैसे-वैसे दीपों की बात बढ़ा-बढ़ाकर मैं प्रतीक्षा करता रहा कि और थोड़े समय के बाद आ जाएगी।

१९. मिलने आने में तुमने इतना विलंब किया कि रात समाप्त होने लगी थी, तो जाओ, मैं भी बात नहीं करूँगा! इस प्रकार प्यार में रूठने का अंदाज।

२०. प्रेमिका के मिलन का यह योग जितना दु:साध्य, उतना ही क्षणिक! ये दो दिल एक-दूजे से मिलने के लिए कितनी सूर्यमालिकाओं से रूपांतरण करते-करते आज इन रूपों में यहाँ एकबारगी एक-दूजे से मिल पाए! तिस पर भी 'संयोगा: विप्र योगान्ता: '! इसीलिए अनुचित रूठने में—प्रणयी अभिमान में—दूर मत हो जाओ, झट से मिल लो! यदि यह क्षण निकल गया तो एक क्षण का अभिमान शायद पूरी जिंदगी के पश्चात्ताप का कारण बन जाएगा! ऐसा क्षण दोबारा नहीं आएगा!

२१. अभिमान शत्रु के साथ, स्नेह का भूषण है समर्पण! प्रीति समर्पण के द्वारा ही तो प्रिय जन पर पूर्णत: विजय प्राप्त कर लेती है!

२२. जिस तूफान में बादलों पर बिजली दमक रही है ऐसे तूफान की भाँति जिसके वक्षस्थल पर यज्ञोपवीत दमक रहा है ऐसा उग्र विप्र—वह धर्म! प्यार के रूठने के अंदाज में उस अंतिम रात को हम दूर-दूर हैं, तभी रात समाप्त होकर प्रभात के समय अचानक हमें हमेशा के लिए दूर करने वाला कठोर कर्तव्य सामने आ खड़ा हुआ!

२३. कर्तव्यबुद्धि जनम पाते ही धर्म की दास बन गई। परंतु हृदय प्रीति का दास बन गया। जब तक प्रीति और धर्मकर्तव्य एकरूप थे तब तक दोनों की भी सेवा सुसंगत हो रही थी। परंतु उस रात को कर्तव्य का तथा प्रीति का खिंचाव एक-दूसरे के साफ विरुद्ध होने लगा और उस दोहरे दास्य में चयन करने की नौबत आ गई!

२४. उस विप्र की (उस कर्तव्य की) वह मूर्ति!

२५. 'उस रात को उस प्यार के रूठने के अंदाज में थोड़ा समय बीत जाता है, तभी प्रभात हो गई और उसी के साथ अचानक शत्रु का हमला होकर सखी के सहवास को हमेशा के लिए खो देनेवाला, इस शत्रु के हाथ में कालकोठरी के अंदर आजन्म बंदी में डालने वाला, यह दुर्धर कर्तव्य सामने आ खड़ा हुआ!' —यह भावार्थ।

२६. विप्र = पिछले छेदक में वर्णित कर्तव्य।

२७. मेरे द्वारा किए गए सभी त्यागों में यह प्रियजनों का त्याग, कर्तव्य के लिए मैंने जो पीड़ाएँ भुगत लीं उन सभी पीड़ाओं में यह विरह की पीड़ा, यही ध्येय के, धर्म के चरणों में समर्पित महापूजा है! अत: यह व्याकुलता दोषपरक नहीं, अपितु कर्तव्य तत्परता की असली कसौटी है। क्योंकि विरह से इतना व्याकुल होते हुए भी मैं कर्तव्य के पालन में कोई कमी नहीं रखता हूँ! —यह भावार्थ।

२८. आँसुओं से पूरा भरा प्याला।

२९. वीरता के धर्म की शर्त ही उस स्थिति में ऐसी थी कि हँसते-हँसते इस उग्र व्रत का पालन करो! अत: खून गिरने पर भी प्रकट रूप में अश्रु गिरने नहीं दिया। किंतु इसे विपर्यास करके सहानुभूति-शून्य लोगों ने कहा, कि इसके हृदय में अश्रु ही नहीं हैं! मानवीय कोमल भावों का अभाव है! यह राक्षस है! परंतु तुम्हारी प्रीति की बलि चढ़ाने वाली यह मेरी सतही कठोरता को देख, हे सखि, तुम तो इस आरोप को सही नहीं मानोगी न?

३०. स्मृति ही दूरस्थ मलयगिरि; उसपर बहनेवाली हवा अर्थात् प्रियजनों की प्यार भरी स्मृतियाँ।

३१. नवयौवन।

३२. यह जीवन काल।

३३. हे प्रभु! तुम्हारा सागर।

३४. दासधन = रोमन गुलामों को दासधन रखने की अनुज्ञा थी, उतना तो ऐश करने के लिए रखा जा सकता था। उसी प्रकार शोक के, दु:ख के दासों को रोकर दु:ख हलका करने का मौका रहता है। किंतु जिस स्थिति में इस शोक की कैंची में मैं फँसा हूँ उसमें 'अश्रुओं का ऐश' भोगना भी निषिद्ध है। रोना भी मना है।

३५. निश्चक्षु = जिसमें आग का (भविष्य) कुछ भी नहीं दिखता, ऐसा यह संकटकाल, यह काल कोठरी में बंदीवास।

३६. प्रभु।

३७. उष:काल = तुम्हारे जीवन का प्रभात-समय। अभी तो यौवन प्रकट हो रहा है। अभी जीवन का पूरा दिन बाकी है।

३८. शकल = खंडित विभाग; टुकड़े-टुकड़े। किसी भूचार-राष्ट्रीय महत्त्वपूर्ण घटना के कारण, आज जो तुम्हारा केवल 'ध्येय' है वह कल का 'दृश्य' क्यों नहीं हो जाएगा?

३९. उज्जयनी = उज्जयनी नगर (श्लेषार्थ से विजयवती)। यह भारत की भावी राजधानी बनेगी। उसपर नए ध्वज फहराएँगे।

४०. आदित्य विक्रमराज = राष्ट्रीय विक्रम का सूर्य (श्लेषार्थ से कोई नया

विक्रमादित्य)।

४१. हिंदू राष्ट्र की जो महान् जीवनधारा आज जात-पाँत के भेदों के कुंडों से, पल्वलों से खंड-विखंड हो गई है वह क्रांति के महाकंप के साथ एकजीव होकर अखंड तथा प्रतिहत प्रवेग से बाढ़ के रूप में अपना जीवन मनुष्यमात्र के कल्याणार्थ प्रभु की चरणसेवा में समर्पित करेगी।

४२. विप्रयज्ञ = पीछे उल्लेखित जिस विप्र के—धर्म के—कार्य में तुम समर्पित हो गए, वह धर्मकार्य, वह महायज्ञ, इस तरह यथारूप संपन्न होते ही···।

४३. इस दुःख के इस अँधेरे के जो मेरे नैन आदी बन रहे हैं (मुझे अभी-अभी सहनीय हो रहा है) वे केवल काल्पनिक आशा की क्षणिक रोशनी से चकाचौंध हो जाते हैं और उनको अँधेरा और घना प्रतीत होने लगता है।

४४. 'सब्र करो—जिंदगी में आगे कभी तुम्हारी मुक्ति हो जाएगी और तुम्हारी दयिता के साथ मिलन भी होगा!' —ऐसी सलाह को संबोधित करके।

४५. 'परंतु इस नवयौवन की सुंदरता का यह जल, ये रसभरी भावनाएँ, आज बासी हो रही हैं, विरह के ताप से इस यौवनपूर्ण तनुलता के य़े फूल सूख रहे हैं—उनके सूख जाने से पहले मिलन की उमंग थी! वह पूरी होना तो संभव नहीं है न? जीवन सुंदरता विहीन, रूक्ष, निर्माल्यवत् बन जाने के बाद ही मेरी प्रीतिदेवता की भेंट होगी तो होगी!' —यही भावार्थ है।

४६. ये विरहाश्रु तुम्हारी आसक्ति का फल हैं! आसक्ति का त्याग करके प्रीति करो तो विरह का दुःख नहीं होगा! इस प्रकार योगीवरों के उपदेश से मन की सांत्वना करने का प्रयास करते ही मन जवाब देता था, 'प्रीति की बात तो छोड़ ही दीजिएगा, पर प्रीति के अनासक्त रूप के तौर पर जिसे आप भक्ति कहते हैं वह भी आसक्ति के बिना कहाँ थी? वह भी विरह के साथ इसी तरह अश्रुव्याकुल बन जाती है!'

४७. समर्थ अर्थात् स्वामी रामदास, अपने प्रिय शिष्य शिवाजी की मृत्यु के उपरांत दुःखी हो गए। उन्होंने अन्न त्यागकर देहत्याग किया!

४८. अभिमन्यु।

४९. संत मीराबाई, उसके गोपाल के विरह से व्याकुल पद 'बता दे सखि कौन गली गए श्याम' आदि प्रसिद्ध हैं।

५०. तुकाराम जब पंढरपुर नहीं जा सकते थे तब राह में तब तक बैठे रहते जब तक वारकरी पंढरपुर से लौट नहीं आते और अश्रु गद्गद होते हुए पूछते कि क्या विट्ठल ने मेरे बारे में कुछ पूछताछ की?

५१. सीता-विरह-व्याकुल अवस्था में सीता मानकर लताओं का आलिंगन करने वाला रामचंद्र।

५२. प्रीति का इंद्रचाप अश्रुओं के मेघों में ही संभव होता है! आसक्ति के आँसुओं में ही प्रीति का प्रतिबिंब रंग धारण करता है।

५३. 'द्वैत रति में विरह की संभावना होती है, परंतु अद्वैत आत्मरति में इसकी संभावना नहीं होती। इसलिए तुम आत्मरत बनो, ताकि विरहव्यथा समाप्त हो जाएगी।' ऐसी सांत्वना आप करेंगे। लेकिन आत्मरति में विरहव्यथा नहीं होगी तो प्रीति का सुख भी नहीं है! क्योंकि प्रीति की भावना ही द्वैत रूप है। प्रीति के लिए किसी और प्रीतिभाजन की आवश्यकता होती ही है। अद्वैत में 'प्रीति' शब्द ही संभव नहीं होता।

५४. चंद्रिका के अंतर्गत स्वयंमेव आह्लादकता नहीं है। उसके आह्लाद का भोग वह स्वयं नहीं कर सकती—चंद्रिका इसलिए आह्लाददायी बनती है, क्योंकि चकोर के नेत्र तृषित हैं।

५५. एक कविसंकेत है कि चंद्रमा की कलाओं को देवता बारी-बारी से प्राशन कर लेते हैं जिसके परिणामस्वरूप वह क्षीण बनते-बनते शुक्ल प्रतिपदा को कृशतम बन जाता है! उसी तरह तुम्हारे पूर्व सहवास-सुख की पूर्णिमा को जो यह मेरी तनु पूर्ण कलाओं से विकसित थी वह विरह से क्षीण बनते-बनते आज उस प्रीति-पूर्णिमा की उत्कटता की याद दिलाने लायक मात्र कला बची है!

५६. कुछ अच्छा लगते ही यह सोचकर लज्जा के मारे मन मृतवत् बन जाता है कि तुम्हारे बिना कुछ अच्छा लगे, यह तुम्हारे साथ प्रतारणा ही है!

५७. तुम्हारी प्रीति अत्यंत सुखद थी, इसलिए तुम्हें प्रथम चाहा; परंतु इस प्रकार सुख की सिफारिश लेकर तुम मेरे जिस घर की (जीवन की) स्वामिनी बन गई उसी घर में तुम्हारी सिफारिश के बिना सुख के लिए आना मना है। अगर तुम हो, तो सुख चाहिए। तुम नहीं हो, तो सुख भी अनचाहा बन जाता है।

५८. शिला की अथवा धातु की मूर्ति की आराधना करते हुए उन प्रतीकों के साथ मीरा, तुकाराम, चैतन्य आदि की तरह मानवीय रिश्ते जोड़ लेने से यदि प्रीति अंत में भक्ति पद पाकर प्रभु के साक्षात्कार का साधन बन जाती है, तो शिला से सचेतन, और मेरी प्रेम-भावनाओं के साथ समवेदन बनके प्रत्यक्ष संभाषण—संनिवास—समालिंगन करनेवाली तुम्हारी इस सजीव मूर्ति को ही मैं प्रभु का प्रतीक मानकर उससे उत्कट प्रेम करने लगा, तो ऐसी साधना भी अंत में उस जड़मूर्ति से भी प्रभु के साक्षात्कार का सुलभतर साधन क्यों न बन जाए? भक्तिमार्ग में किसी मानवीय प्रियजन को ही मूर्ति की तरह प्रतीक मानकर उसी से असीम प्रीति करनेवाला एक साधना संप्रदाय है। भैरवी, रामकृष्ण आदि की ऐसी साधना प्रसिद्ध ही है।

□

महासागर

(परिचय : पानीपत के संकल्पित महाकाव्य में समाविष्ट करने के उद्देश्य से सावरकरजी ने 'महासागर' नाम से कुछ सर्गों की रचना की, जिनमें अंग्रेज और मराठों के बीच सिंधुयुद्ध का वर्णन किया। उनके प्रारंभ में कहानी का मराठी नायक अपनी नौका में बैठ सागर को स्तोत्रांजलि अर्पण कर रहा है और जल्द ही उसको अंग्रेज शत्रु की एक रणनौका दिखाई देती है, जिसके साथ युद्ध करने का प्रसंग आता है। ये दो घटनाएँ जिनमें वर्णित हैं, वे स्तवक आगे दिए हैं। काव्य वैनायक छंद में लिखा गया है।

इस कविता की रचना सावरकरजी ने अंदमान में ही कर दी। परिणामत: यह उनकी स्मृति में ही थी। लेकिन अंदमान से आठ-दस वर्षों के बाद मुक्ति हो जाने पर इसे लिखित रूप दिया गया। परंतु यह पूर्णरूप में स्मृतिबद्ध नहीं थी। उसके कुछ स्तवक विस्मृति में विलुप्त हो गए थे, जो अब उपलब्ध नहीं हैं।)

: १ :

विहितकर्म पुण्यदूत ब्राह्मणों के
अंतिम अर्घ्य का स्वीकार कर गभस्ती
भगवान्, अभी-अभी पश्चिम दिशा के
अंत:पुर के बीच प्रविष्ट हो गए
चुंबन करके मधुर चंचलता वह
विरहोत्सुक दयिता के लाल गुलाबी
गाल थरथरा रहे; थर्राहट दिल में
नवजीवन; नखशिखांत चेतना नई।
म्लानवदन प्राची लेत पल्लो तक का
उसकी संध्या का दिन आया प्रतीचि का!

: २ :

स्वच्छ शांत गगन नील, शांत-वृत्ति यह
सांध्य-समाधिस्थ जैसा नील जलनिधि
नौका पर मात्र एक शान्त सलिल में
यह यात्रापटु अशांत गति-युता कितनी!
'जान रही हो, नौके? कि यात्रा यह
कहाँ से है और जा रही कहाँ'
'हाँ जी, हाँ कविराज, जहाँ से और फिर
जहाँ तुम्हारी यात्रा हो रही है :
जान रहे हो जितना मनुष्य तुम सभी
उतना तो नौकाएँ जानत हैं हम!'

: ३ :

द्वितला नौका में मजबूत, दीर्घ, रम्य
उच्चतल पर नौयायिन[१] विचरण करते;
भाव ही वे मूर्तसंज्ञ उसके—करुणा,
दाक्षिण्य, प्रीति, भीति! और भासमान्
भासमान् न अल्पसंज्ञ भाव रह रहे
मध्यतल पर; औ' तल में बिलकुल
लुप्त-संज्ञ अनजाने में श्रमते हैं
धारणार्थ, पाचक परिमार्जक भी हैं
कर्णधार और हृदय में, ज्ञात है उसे
क्या, क्या नौका का हाय हमें भी[२]?

: ४ :

अस्वाद करे उच्च तल पर मुक्त हवा का
उन नौयायिजनों में एक युवा;
गंभीराकृति विशालवक्ष वदन पर
ब्रह्मतेज भास्वर उत्साह भी नया

चिंता ही राष्ट्र की अखिल जिस की
धारणार्थी निर्मित है वैसे उसका
प्रतिभा-संपन्न भाल! वह रहा वहाँ
अकेला अनेकों में मंत्रमय शब्दों में
गगन के तले गगनसम उदार-सी
नमन करता है महच्छक्ति के यश को!

: ५ :

'प्रणाम, हे महच्छक्ति!' वंदन करत है,
'हे प्रणितामह सिंधो! मेरे अनंत ही
अनंत प्रणाम तुम्हें! अतला, अतुला!!
शांत कितनी तुम आज! पर प्रथम[3]
सूर्यगर्भतूणीर से मुक्त हो गई
थी जब तुम द्युःशिर से मीनह्वी; और
लगी दमकने वहाँ आग्नेय मंडल
बनाती हुई! संभ्रम क्या एस क्षण में
हो गया होगा नभ में! जनमय ग्रहों पर
वंदन किया होगा सभय तुम्हें ही!!

: ६ :

देख नया दिव्य जन्म! गति अतर्क्य-सी
भापने समर्थ सिर्फ देवता रहे!
भविष्यकथन किया होगा जिन ज्योतिषियों ने
प्रभव के पूर्ण तुम्हारे, होगा ही
सम्मानित किया उनको उसके नामों से
नामकरण किया था तव ग्रहों-ग्रहों पर
अपर अग्निसम रूप, परंतु सौम्यता कितनी
पित्रप्रदक्षिणाव्रती तव अविरम है!
अतलपूर्ण—खोते न हो! यहाँ अधर ही
अलिप्त ही! भ्रमण करत देवमार्ग पर!!'

: ७ :

हुआ चकित चलित लेश मंजुवीचि वह
सांध्य समाधिस्थ सिंधु; कहने पर कि
'अतल लगता है तुमको तल तदीय वह
अर्धकरां गुलि जिसकी स्पर्श कर सके;
अतुल और बच्चे, जो लगता तुमको
वह मैं हूँ ओस-बिंदु सूर्यकमल पर
कमल कानन में जिसके, इस पल भर में
है यथार्थ अतल वही! अतुल भी कितना!'
लहरों में गीत मधुर गूँज उठा है
है यथार्थ अतल वही! अतुल है हरी!!
'प्रिय शंकर!' उस विचारमग्न उदार
युवक को नजदीकी से छेड़कर किसी
प्रौढ़ किंतु प्रियदर्शी पुरुष ने कहा,
'कहा था तुमने, वह आज याद आ रहा?'
दिखाओगे गाकर कुछ समाधि शांत से
वेदस्वर वेदमंत्र? गा लो फिर अब'
'अमरसूनु उल्हास' और हो उठा
गंभीर स्निग्धकंठ नव निनाद ही :
प्रश्न परम वह! युगों को गत युगों का!
'केंद्र कहाँ भुवनों का? नाभिनभों का?'

: ९ :

'अहो सुभव्यता!' उसी सुवाक् समीर को
मंत्र से रोमाचितगात्र सादर
अमरसुनु उद्गार अहो भव्यता!
निश्चल निश्चेष्ट खड़ा, पुनरपि 'अरे,
प्रिय शंकर, भवन का मर्म ही यही
स्पर्श करे मंत्र महान्! परिधिशून्य-से
केंद्र जगच्चक्र का 'मैं' ही हमारा

शून्य के गमन में निरवयव निश्चल
चलमध्यद तारा 'मैं' यही उग आया!

: १० :

'मैं' के भीतर संभाव्य दशदिशा
यह प्राची प्रतीचि भी! चलित मैं फिर भी
प्राच्य है वह प्रतीच्य! और ऐसी ही
संज्ञाओं की विलुप्त लुप्त 'मैं' फिर भी
यद्यपि आंतरिक न 'मैं' प्राची औ' प्रतीचि
एक दूजे में विलुप्त मूल्यशून्यता
शेष पुनः! प्रत्यक्ष रूप सिद्ध है तभी
बुद्धिगम्य जो भी है जाना जाता है!
प्रत्यक्ष के बाद पद अंध जो गिरे,
ईश या परेश या अनवस्था होत है!

: ११ :

और हे शंकर सेवा मनुष्य की
भक्ति परा यही, यही धर्म मनुज का
किंबहुना देवालय कभी न उदित है
होगा वह प्रेत-भूत-देवनिष्ठ भी
मनुज हिताहित है जिसको अनन्य-सा
जाने-अनजाने में नहीं हो गया
नींव और शिखर यह और! स्वर्ग है रसा
मनुज सुखासुख पुण्यापुण्य प्रभु को
आवे सापेक्ष ही निरपेक्ष भाव से;
प्रभु मनुष्य का प्रतिमा अधिनरीकृता

: १२ :

वह कृपालु शीतलतल बोधिवृक्ष हो,
या वह गिरि[५] जो बिजलियों में गरजे,

किंतु विषय में अनन्य तत्त्व यही है,
देता है सुख प्रभु औ' ले जाता नृशंस!
'और शक्ति जो' अथवा 'शक्ति जो भी हो'
'प्रवर्तन करती हैं विश्वचक्र का!' वह,
वह' जी हाँ अटक गए क्यों, अमर! अग्रणी
वही! वह गम्य और अगम्य एक वह!
विभूतिमत्त्व जाग्रत् करता है श्रद्धा को
अग्रपूजनीय है विश्वविभूति!

: १३ :

किंतु पीठ फेर के भी उसकी ओर पूजे
मानुज्य को मानुज, जैसे कि कीट ही!
तब उसमें न कुछ भी तुम्हें क्यों स्वयं
लगता है विपर्यस्त, सत्त्वहीन ही?
देखो अमर जरा ऊपर से फूल जैसे
गूँथ एक सूत्र में गति-गतियों के
इन अनंत तारों की माला ऐसी
गले में विराट् नर के शोभत है जिस
उसके आगे सास्थि न यह लौह भी यद्यपि
होते नर जानू—नमते ही तत्पल!

: १४ :

न जाने कहकर भी जो जरा-सा समझे,
जानत है कहते ही जानत वह न समझा
लाभ क्या है बैठ निरुत्तर या बलात्
प्रतिस्पंदन में हृदय पुकारता जहाँ
'विश्वंभर! विश्वकार!' धन्य-धन्य है!
सिंधु धर्मबिंदु तुम्हरा! और तुम्हारे
चंड कारखाने में सूर्य शत भी वे
उड़ती चिनगारियाँ बुझतीं-चमकतीं

अहरण पर स्थल की कितने भी ऐसे
कालप्रहार से बनत विश्व और संहरत!

: १५ :

तुम कर्ता, करवाता, कार्य, तुम क्रतु
निरपेक्ष भी तुम, सापेक्ष पूर्तता,
सांख्य पुरुष[६] पुरुषोत्तम योगयुक्त तुम
स्यात् तुम, तुम शून्य और सत् भी तुम हो,
हे अणोरणीयान्! महतोऽपि महीयान्!
बोल न सकत वाणी न मौन रहत मानुषी,
फिर भी विश्वगीत त्वत्स्तोत्र यह महान्
प्राण का तार-तार थरथराया है
गाता हूँ गीत वही बिना समझे ही
प्रभु प्रवृत्ति पर तुम्हारी अवश यह मौन!

: १६ :

स्तोत्र महान् प्रभु का! जो! सजके अपने
बूटी के वसन में तितलियाँ यदा
पंखों के बैठ विभान में नन्हे से
अणुसम-तृण कुसुमलुब्ध गूँजत हैं—तदा;
और दूजा मानकर महासागर ही नभ को
जा चढ़कर उसपर सस्पर्ध यह यदा
क्रुद्ध महासागर रण में खड़ा रहे
मेघों के बजा के रणदुंदुभि—तदा
है गीत! जो गाए तव महानता
गति जितनी गीति, स्थिति एक तानता!!

: १७ :

बिना समझे लेकिन! क्यों यह प्रभव होत है
सफल प्रलय में केवल! धर्म में किसलिए

ग्लानि ही है प्रथम, यद्यपि पुनरपि
तुम्हें अभ्युत्थान[७] अवतारकार्य है?
मिट्टी के क्यों महल—कष्टी बनकर ही
बन जाएँ मिट्टी फिर से? लगाई कब से
दौड़ ऐसी गगन-मंडल में, क्यों, किसने,
इन सहस्र सूर्यों की? क्रीड़ा में ही[८]?
काल से न क्या तुम भी उकताते हो?
लगाकर फिर तोड़ डालने में जन्म व्यतीत हो!!

: १८ :

समझोगे 'तुम' भी या कैसे? यह जहाँ
क्षुद्र 'मैं' ही न समझ आ रहा मुझे
मुरली को, मुरलीधर! बजाओगे जो
बजाए बगैर गीत कभी रहा न जाए!!
इसीलिए धर्मवीर ये समरांगण में
'मान' के लिए मरते? रणगर्जना वही
गूँजत शतकों में से आज इस क्षण
रक्त बिंदु-बिंदु में देत प्रतिध्वनि!
देत मात्र प्रतिध्वनि ही—ना समझे ही
प्रभु! प्रवृत्ति को तुम्हारि—अवश यह मौन

: १९ :

सहसा उस नौका के नैनों में चकाचौंध
तेजस्वी लखलखाहट नभ में भर गई,
तामसि का गर्भपात होकर जैसे
अचानक ही दिनरूप भ्रूण गिर गया
भेदकर घन तम का, सहमी सहमी
नौका को एक जगह रोककर रखा
वह प्रकाशलेखा[९] घटिमात्र; जैसे कि
चाँदी का वह कील ही घुसा हृदय में!

ज्यों-ज्यों उससे खिसकने चाहे वह
तीक्ष्ण किरण त्यों-त्यों उधर ही उसी पर

: २० :

अब तो ऊँचे खनखनाते पुकारते
सींग भी रुको-रुको करते बजते हैं,
जी हाँ! मराठे ही! मराठे ही! वे वहाँ
किरणें चंद्रज्योति की जहाँ से निकलतीं,
लव रुकती, लव दौड़ती, नाव अंत में
रुक ही गई, सन्निध आते ही रिपु-नौका;
ध्वनि देत कप्तान 'महाराष्ट्र भूपति—
—नौवाह को सलाम करत आंग्ल नौका'
'प्रतिप्रणाम!' कहते महाराष्ट्र-रणनौका
रोककर, सादर ही फिर, उसको पकड़ती

: २१ :

'यह ढोती है यात्री वाणिज्य को नौका'
कप्तान ने कहा, 'आंग्ल-मित्र मराठे :
उनकी ही रणनौका रोक रही है
हमको क्यों इस तरह शत्रु जैसे'
'क्योंकि,' नौवाह ने जवाब दिया, 'किसी ने
अस्मदीय ध्वजवाली नौका को लूट लिया
जलदस्यु घूम रहे हैं सागर में
शक है कि इसी आंग्लनौका में लूट है,
तलाशी देकर हमको शीघ्र आप करें
झूठा है इलज़ाम ऐसी तसल्ली'

: २२ :

धड़ड़ धड़ड़ तोपें तब आग निकलतीं
सहसा ही बजने लगीं, आंग्ल नौका में

बूझ गईं चंद्रज्योतियाँ जल उठीं
ज्योतियाँ रणतेज की हृदय-हृदय में
सींग से ऊँचे-ऊँचे स्वर गूँज उठे
'आ जाओ! जहाँ भी हो सारे मराठे
धैर्य वीर! धैर्य वीर! वीर, धैर्य लो!
गूँज उठा शत-शत वह दुंदुभि तभी
धड़ड़ धड़ड़ तोपों पर तोपें बरसीं
शतदा अँधेरा सभय चौंक उठ गया!

: २३ :

अंत में वे फँस गए घेरे में जब
घेरा डालत शिप[१०] फ्रिगेट जहाज स्वयं
गोले गोलों से बारूद से बारूद
ध्वज ध्वज से नौ वीर से वीर भिड़ गए!
निर्भय निःशंक जहाज से जहाज ही
भिड़ गया, आए चढ़कर मराठे
हाथ से हाथ और सिर से सिर भी—
भिड़ने पर पतन चले कौन किसे मारे!
जोड़ का तोड़ फिर जूझ रहे वे
सिंधु महासागर में आंग्ल-मराठे!

: २४ :

क्रोध से पैर पटकते तभी उस समय
प्रथम बूँद टपके फिर बौछार हो गई
हवा भी चलने लगी तेज निरंकुश
जलदों की रिक्त करत नभ लक्ष पखालें!
लहरों पर लहर चढ़े! सिंधु सिंधु से
उछल-उछलकर भिड़ा! जूझ तगड़ा हो रहा!
अब यह फिर वह ऐसे कुक्कुट जैसे
सिंधु चढ़ा लड़ा उड़ा डूबा रहा जहाज

बिजली कड़कड़ा रही, फुफकारतीं जैसे
उसे सृष्टिक्षोभ की दंतपंक्तियाँ!!

: २५ :

तभी उस क्षणदा में इक क्षण दिखे कालाग्नि में झोंक दी।
वैसे सिंधु-भीतर डुबा मस्तिष्क नौ डुबा दी॥
तोपों की भरमार भीषण महाराष्ट्र-प्रतापी बली।
सारा नौदल छिन्नभिन्न रिपु का सिंधुतल में बलि॥

टिप्पणियाँ : १. यात्री।

२. क्या नाव अपने हृदयस्थ कर्णधार को जानती थी? और हम भी?

३. सूर्य से टूटकर पृथ्वी का ग्रह जब पहली बार अंतराल में उसके चारों तरफ मँडराने लगा तब उस नए उत्तप्त अग्निगोल को देखकर, जिन अन्य तारों पर तथा ग्रहों पर मनुष्य की बस्तियाँ होंगी उनको कितना अचंभा हुआ होगा!

४. जिन ज्योतिषियों ने भविष्य कथन किया होगा कि ऐसा नया अग्निगोल जन्म लेनेवाला है, उन्हीं का नाम इस अग्निगोल को उन लोगों ने दिया होगा।

५. सेनाय नामक पहाड़ पर जब ईश्वर स्वयं मोझेस् को धर्माज्ञा देने हेतु आया, तब एक मेघस्तंभ ने उस पहाड़ को परदे की भाँति आच्छादित कर दिया। प्रचंड तेज से स्रोत चारों तरफ से उठने लगे और उस तेजोमेघ के भीतर से 'जेहोवा', क्रुद्ध ईश्वर, ने आज्ञाएँ दे दीं, ऐसी किंवदंती बाइबिल में है।

६. 'ईश्वरस्तत्र पुरुषविशेष : '—योगसूत्र।

७. 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा आत्मानं सृजाम्यहम्॥'—भगवद्गीता।

८. जगत् में जो भी घटनाएँ घटित होती हैं वे सारी भगवान् की केवल 'लीला' है, प्रभु केवल अपने मनोरंजन के लिए विश्व की उथल-पुथल कर रहा है। 'काल: काल्या भुवनफलके क्रीडति प्राणिशार:' भर्तहरि, इस मत की ओर यहाँ संकेत है।

९. तेज रोशनी। आज जिस तरह विद्युत्-प्रकाश की तेज रोशनी डाली जाती है, उसी तरह पुराने जमाने में अँधेरे में चोरीछिपे समुद्र पर जा रही जलदस्युओं की नौकाओं को पकड़ने हेतु अनेक चंद्रज्योतियों को एक साथ जलाकर उनका पीछा करनेवाली युद्धनौकाएँ उन्हें ढूँढ़ लेती थीं।

१०. शिप, फ्रिगेट आदि नाम उस समय अंग्रेजों की विशिष्ट रणनौकाओं के होते थे।

□

गोमांतक

(**परिचय :** इस काव्य की प्रस्तावना के रूप में मुंबई के डॉ. बा.दा. सावरकर के संपादन में प्रकाशित 'श्रद्धानंद' शीर्षक पत्रिका में सन् १९२७ में आया अभिप्राय ही कोष्ठक में दी हुई नई घटनाएँ, वर्तमान कालानुरूप हैं, डालकर नीचे दिया है। वह अभिप्राय इस प्रकार—

सन् १९२२, कारावास में महाकवि वि.दा. सावरकर ने जो 'गोमांतक' शीर्षक महाकाव्य की रचना की वह सन् १९२४ में प्रकाशित हुआ। उसमें कवि ने प्रतिभा की दुरबीन से भविष्य की घटनाएँ उनके घटने से बहुत पहले ही यथातथ्य रीति से देखीं तथा उनका वर्णन किया है, जैसे उन्होंने प्रत्यक्ष देखा है। 'गोमांतक' काव्य न केवल काव्य है बल्कि अचूक बताया गया भविष्य ही है। क्योंकि अब गोमांतक में घटित शुद्धि आंदोलन, शुद्धि समारोह (पुर्तगालियों की राजसत्ता का उच्छेद, आज वहाँ प्रस्थापित हो रहा स्वतंत्र भारत का नौदल अड्डा) आदि घटनाएँ इस काव्य में कुछ ही वर्ष पूर्व वर्णित तथा भविष्य की कथन की हुई पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमानकालीन घटनाएँ उन वर्णनों के मात्र छायाचित्र हैं—इतना विस्मयजनक सादृश्य उनमें है। द्रष्टा कवि का अक्षर-अक्षर किस तरह सत्य सिद्ध हो रहा है। 'वाचमर्थोऽनुधावति' इस उक्ति का अनुभव हो रहा है। कल्पना-सृष्टि ज्यों-की-त्यों वास्तव में उतरी। प्रतिभा की सिद्धि जैसा चमत्कार जिन्हें प्रत्यक्ष देखना हो वे महाकवि हिंदू सम्राट् विनायक दामोदर सावरकर का 'महाराष्ट्र-चारण' उपनाम से विरचित 'गोमांतक' महाकाव्य अवश्य पढ़ें।)

गोमांतक (पूर्वार्ध)

थी एक सरिता दापगा तापहारका।
प्रतिपदा चंद्रलेखा सम तन्वंगी धवलोदका॥१॥
हर का हलाहल ताप हरण में
जो पापक्षालिनी नदी व्यस्त स्वर्ग में॥२॥

भगीरथ सम सम्राट् कुलों के वसुधा तल में।
भागीरथी व्यस्त भी सतत महत्कार्य में॥३॥
एतदर्थ ही जो महान् न हुआ ऐसे।
दीनों का तृष्णा सान्त्वन पुण्य हो ऐसे॥४॥
यही जानकर तृषार्त गाँवों को शीतला।
नदी नन्ही सी पिलाती जल सज्जला॥५॥
सिंहनी यदि दूध पिलाती है अपने छौने को।
पिलाती है हिरनी भी दूध निज छौने को॥६॥
दारका के रम्य तट पर ग्राम इक सोहत ऐसा।
मोतिया की बेला पर फूलों का गुच्छा जैसा॥७॥
लहलहाते खेत चारों ओर बीच बसा यह ग्राम।
सोहत है जैसे सागर से घिरे द्वीप समान॥८॥
गीत मधुर 'ओ बैल रे' हाँकता स्वर ऊँचा गूँज उठा।
खुले गगन में भोर की सुरभित वायु के संग॥९॥
रहट से गिरे जलप्रपात से गूँज उठा नभ सारा।
स्नेहिल-गंभीर स्वर से नाच मयूर ने पंख पसारा॥१०॥
था प्रकृति का उन्मुक्त वरदान इस ग्राम को जैसा।
आज भी पाया वरदान वही इस ग्राम ने वैसा॥११॥
किंतु सुंदर तन हो जाए रोग-जर्जर जैसे।
या तड़िताघात से कोई पादप जले वैसे॥१२॥
परचक्राघातों से ग्राम हतभागा बनकर।
छाई उदासी वर्तमान की उस गतगर्व मुख पर॥१३॥
टूटे परकोटे की ऊँची भित्ति नभ को भिड़ी।
हृदयभग्न अर्धशल्य का शेषार्ध जैसी खड़ी॥१४॥
था निकट जीर्ण-शीर्ण शिवालय शेष एक।
समाज के एकमात्र धर्मकेंद्र का प्रतीक॥१५॥
ईश-दर्शना आईं देवियाँ परिक्रमा करतीं।
गूँथते शिशु-गण झरते चंपकों की मालाएँ जल्दी॥१६॥
मठ के आँगन में निकट वृक्ष जो हरसिंगार का।
फूलों से लदा-फदा सर ऊँचा करता गाँव का॥१७॥
जो पारिजातक कथा दंतकथा कथी।
वह नारद को कहे स्वयं अर्जुन-सारथी॥१८॥

भामा रुक्मिणी दोनों को एक-दूजे के।
आँगन में पारिजात सहा न गया॥१९॥
दोनों की ईर्ष्या हरणार्थ हरी ने सहसा उठाया।
उस पारिजात को भृगु मुनि के पग पर अर्पित किया॥२०॥
किया मुनिवर ने निज आश्रम में उसका आरोपण।
है वही मठ वह और पारिजात भी वही समझो जन॥२१॥
गाँव के मध्य में हाट था जिसमें थीं दुकानें पाँच।
दीवालें रँगी चूने से उनपर गेरू के बेलबुटों का नाच॥२२॥
नाम मिला उसे 'मुखपेठ' औ' वैसा सम्मान मिला।
संध्या समय टहलते वहाँ रँगीले छैल-छबीले॥२३॥
प्रातः समय रख जातीं नारियाँ यहाँ तेल की शीशियाँ।
औ' संध्या समय घर ले जातीं भरी-भरी शीशियाँ॥२४॥
लेता कौड़ियों का चलनसार गोल मिर्च जीरा देता।
बनिया कभी 'मूल' से भी दुगुना दाम वसूल करता॥२५॥
वहीं एक सेठ था जिसकी तोंद निकली थी।
तनिक बड़ी थी दूकान उसकी तो समझे लोग आढ़ती॥२६॥
कुछ आवारा बालक वहाँ भीख माँगते शोर मचाते।
तलुवों की आग पेट में जाती, सेठ आगबबूला होते॥२७॥
किंतु उठाकर डंडा पैरों पर सँभालते विशाल देह।
उससे पहले ही चंचल चपल बालक होते नौ दो ग्यारह॥२८॥
गाय छोड़ने प्रात विप्र जो प्राय विलंब करे।
चरवाहों के बालक लेते प्रतिशोध उस पंडित पर॥२९॥
आते-जाते कहीं मिले यदि उसके वस्त्र धूत।
छू लेते उनको और तुरंत हो जाते चंपत॥३०॥
निकटवर्ती गाँव में प्रतिवर्ष मेला लगता, दंगल होता।
भार्गव गाँव का नवमल्ल भी खम ठोककर उतरता॥३१॥
जाते-जाते माता के भी चरणों को छूता,
'सँभल के' माँ कहती, तो हँसकर निकल पड़ता।
निकलकर सीधे मेले में मल्लरंगण में उतरता॥३२॥
अपने से दुगुने जवान की पीठ टिककर सत्वर।
लौटे विजेता का सेहरा सर पर बाँधकर॥३३॥
वीर विजयी की आगवानी के लिए सिंहद्वार पर।
ताँता लगता जयघोष से फटा गाँव का लघु अंबर॥३४॥

बाजे-गाजे के साथ डोलता वीर सीना तानकर।
जैसे रावण-वध कर लौटे हैं प्रभु-राम साकेत पर॥३५॥
गाँव में ही पीहर पर ना भेजे ससुरजी।
तो भैया गोरी का बैठे घात में मिलने जी॥३६॥
भैया से मिली सौगात जब मिलन हो नदी-पथ पर।
मावा, मिठाई या चूमा जो उससे भी था मधुर॥३७॥
पंचायत सभा पंचों की जो सब विवाद निपटाती।
पटेल मुखिया गाँव का जो रक्षार्थ निकट रहता॥३८॥
ग्राम पुरोहित लोगों को नित्यनैमित्तिक सिखाते।
और जनों के पाप-दूरित दूर-दूर भगाते॥३९॥
दैवी भौतिक विपदाओं का ऐसा होता परिहार।
कृषक अपना तन-मन कृषि में लगाते निश्चिंत होकर॥४०॥
हरे-भरे खेतों पर लहलहाती सुनहरी बालियाँ मुकुट समान।
घर-घर में संतोष बिखरता जैसे डोले तन में प्राण॥४१॥
कुम्हार, जुलाहे, बढ़ई, लुहार बनजारे प्यारे।
जो-जो साल भर हाथ बँटाते हलधर का सारे॥४२॥
सभी सहायक प्रसन्न कृषक से भरपूर पाते।
अनाज का हिस्सा जो है निश्चित न्यायोचित लेते॥४३॥
रखकर साल भर का पर्याप्त अनाज बहुजना।
शेष सारा जो कि जिसका संप्रति काज ना॥४४॥
बहुजन हिताय वह संयुक्त निधि में।
पटेल भरकर रखता गाँव के भंडार में॥४५॥
दुर्भाग्य से सूखे का संकट करे सबका शोषण।
आते ही यही धान-संपदा करे सबका पोषण॥४६॥
ऐसी थी भई ग्राम-पंचायत की सुव्यवस्था।
जिसके कारण हर गाँव मानो जनतंत्र राज्य था॥४७॥
आज है पर आसन्नमरण संस्था और जनता अति।
विदेशियों की हुकूमत से बन रही पराकृति॥४८॥
मध्य-बस्ती में खुली हुई कितनी मधुशालाएँ।
पीसा जा रहा किसान बावला लादे गए कर नए-नए॥४९॥
पर इस ग्रामसंस्था से भी पूर्व थी एक ऐसी,
प्राणभूत ही ग्राम की संस्था दूसरी जैसी॥५०॥

वह है यह वटवृक्ष युगस्थायी महायशी।
फैली थीं जिसकी जटाएँ, प्रतिवृक्ष-सी॥५१॥
लौट न सका कभी यहाँ आया नवागत पाहुना।
इस वृक्ष को देखे बिना, इस कथा को सुने बिना॥५२॥
वीरोत्तम भार्गव ने पहले किया जिस दिन।
किया संकल्प सिंधु को हटाने का शतयोजन॥५३॥
उसी दिन उस वीर ने विजय ध्वज फहराया।
वट वृक्षारोपण किया औ' इस गाँव को बसाया॥५४॥
इर्दगिर्द वृक्ष के विशाल चबूतरा अनघड़ शिलाओं का।
अपूर्व, अनोखा, अलौकिक बिना चूना-गारे का॥५५॥
बना वार्त्तालाप मंच राहगीर, मुसाफिरों का।
राजकाज भी यहीं पर चलता सारे गाँव का॥५६॥
दिन में सभागार बनता और रात भर।
बन जाती आम रंग भू मुक्त द्वार॥५७॥
झाँझ-मँजीरा ढोलक तबले का रंग जमता।
लोकगीत लावणी* को रात-समय भी कम होता॥५८॥
कभी कोई रमता जोगी साधु बैठे धूनी जमाए।
सकल जन की विनती से बातें करे दुनिया भर की॥५९॥
छोड़त धुआँ चिलम का जो शब्द-शब्द पर।
कहे विलायत है काशी से तनक ही दूर॥६०॥
अवधूत हो दुलहनियाँ बूढ़े वट की श्रद्धा से।
उपासना करतीं जलते नव वृक्ष ईर्ष्या से॥६१॥
उस वंद्य वटाध्यक्षत्व के वत्सल छाँव तले।
प्रजाजन करते छावनी अपनी निश्चिंत भले॥६२॥
वैसी यहाँ छावनी अब हुई है लुप्तश्री का।
थामे शिविरध्वज कई राज्याधिकारियों का॥६३॥
तहसीलदार दौरे पर आता करता वहाँ बसेरा।
सारे गाँव में हड़कंप होता जो 'बड़ा साब आया'॥६४॥
किसी बहाने हर कोई वहाँ से गुजरता प्यारा।
देखत डर-डर के चौकी जैसा है पुच्छलतारा॥६५॥

---

* एक तरह का चलता गाना।

पटेल बाबा की गलमूँछें कभी अति भव्य थीं।
पटवारी की भी लेखनी लचीली थी॥६६॥
खूब बढ़ाता तन्महत्त्व भय अंतर में।
एक दिन के लिए क्यों न हो ग्रामवासियों के मन में॥६७॥
दोनों झुककर उस तहसीलदार को करते सलाम।
वे भी सर हिलाकर कबूल करते उनका सलाम॥६८॥
खुल गया था पाखलों का एक स्कूल वहीं पर।
आचार्य का हमरे क्रोध जाता सातवें आसमान पर॥६९॥
भई वीरान पाठशाला और परस्थ पर धर्मदा।
स्कूल में बच्चे रटते भ्रष्ट-अशिष्ट शब्द तदा॥७०॥
'ईसा मसीह' 'क्रूस' 'कुलंबीया' 'अल्बुकर्क' अलाँ फलाँ।
हाय! हाय! श्रीगणेश बिन वे पढ़ते वर्णमाला॥७१॥
पुर्तुगीज! सुनते शब्द ही गत शत वत्सरे।
करते आए इस गाँव में भय ग्रस्त जनांतरे॥७२॥
जैसे धेनु आए चपेट में वृक के, शेर झपटे उसपर।
क्रूर मुख से धेनु पड़ी क्रूरतर मुख में सत्वर॥७३॥
पाखलों के पग जमते ही ऐसी स्थिति गोवा की हुई।
इसलाम[२] के मुख से धरती ईसा के मुख में गई॥७४॥
व्याघ्र संत्रस्त वन में मरत मरते जैसे।
जीते हैं मृग झुंड में देखो जैसे-तैसे॥७५॥
मृग झुंड में गोमांतक के घन वन में।
था इक झुंड यह भार्गव गाँव उनमें॥७६॥
उस सरल ग्राम में एक निरीह, प्रिय, सुशील-सा।
बसा था विप्र परिवार जो भला, सुप्रतिष्ठित ऐसा॥७७॥
श्री महामंडलाधीश कदंब नृपति के काल में निरंतर।
पाता राजपुरोहित का सम्मान यह कुलवर॥७८॥
जिस दुर्दिन में देश का इस भाग्य फूटा।
हाय! स्वतंत्रता का कैसा खड्ग यहाँ टूटा॥७९॥
उस दिन इस कुल के गिरे नर जूझकर जैसे।
पहले सभांगण में अब धर्मरणांगण में ऐसे॥८०॥
तुर्क अधिकारियों ने इस कुल की स्त्री को एक बार।
पकड़कर सहसा उसे रखा गुलाम बनाकर॥८१॥

ऐसी बंदिनी हिंदू नारियों के संग बेचकर।
चढ़ा दिया उसे एक अरबी जहाज पर॥८२॥
सुना है मानवी दया से ऊबकर सागर में साध्वियाँ।
कूद पड़ीं भले समझकर क्रूर नक्र मछलियाँ॥८३॥
मूर्तिभंजक तुर्कों से नाना देवता भागे दूर-दूर।
मंगेश शांता दुर्गा केवल स्थिर थे अपने स्थान पर॥८४॥
तुर्कों से भी बनकर क्रूर आघात किए पाखलों ने।
भंग किए कितने मंदिर इन नृशंस पागलों ने॥८५॥
प्रखर होकर भी ये दोनों मूर्तियाँ कंपित हो अंतर में।
भला बल इतना कहाँ होगा, दुर्बलों के ईश्वर में॥८६॥
चिंता न की अपने प्राणों की तब भक्त विप्रों ने।
उठाकर मूर्तियाँ गुप्त हुए वे निमिषमात्र में॥८७॥
उन विप्रों में एक था इस कुल का दीपक जिसने।
'अंभुज' में स्थापित करते मूर्तियाँ लज्जित किया रिपु को उसने॥८८॥
दैवी, दैशिक, भीषण तूफानों से बचता रहा।
वंशवृक्ष का एक ही अंकुर जो शेष रहा सहा॥८९॥
पुरखों के घर अपने युवक सुख-चैन से रहता।
जाते-जाते तुरंत स्वर्ग पथ में अपने पिता॥९०॥
अर्धांगिनी उसकी अभी नवयौवना नाजुक-सी।
गृहिणी पद कर्तव्य निभाती प्रौढ़ा ललना सी॥९१॥
गेह निर्मल, भोजन षड्रसपूर्ण होता सदा।
आबालवृद्धों की तो थी वह सखि प्रियंवदा॥९२॥
गुरुजनों की सेवा करती औ' बच्चों को पढ़ाती।
मधुर वाणी से सेवक को वेतन से भी सुख देती॥९३॥
कोई कृषक ऋण लेने आता उसके द्वार पर।
भोजन से वह प्रसन्नवदना उसे तुष्ट कर॥९४॥
आम के बगान के आमों से घर भर जाता जब।
उनमें से सुरंग, सुरस, स्वादु फल चुनती तब॥९५॥
सब जाति की सुहागनों को घर पर न्योता देती।
आँगन में उस आम्रराशी को उनमें लुटाती॥९६॥
माता का दूध पीए अंबा कांचन-गौरवा।
स्तनंधये दो लोभों के मध्ये स्तंभित वानवा॥९७॥

किंचित् क्रोधी था, पर प्रेम कोमल उसका साजन।
थी वह उसकी प्राणप्रिया, मधुरा सखी सजनी॥९८॥
केश सँवारता उसके, अपने हाथों से नहलाता प्रेम से।
लज्जा से चूर होती तो रूठ जाता कृतक कोप से॥९९॥
ऐसे परस्पर सुख में मग्न थे रमा माधव जब।
खिला सुख दूजा वह भी फीका करे पहला तब॥१००॥
यथाकाले जनी साध्वी रमा वह रमणीयशा।
तनवा प्रसूता एक उरेक जो कुल का यशवर्धना॥१०१॥
उस दिव्य शिशु के जन्म पर हुई पुष्पवृष्टि नभ से।
दिव्य विमानों के झुंड गगन में विचरने लगे॥१०२॥
प्राचीन पूज्य ऋषि-मुनि आए देने आशीर्वचन।
गाने लगे गंधर्ववृंद जो सुस्वर मधुरगान॥१०३॥
मधुर चुंबनों से वत्सल वर्षा करे शिशु पर।
उन माता-पिता का ध्यान कहाँ था नभ की ओर॥१०४॥
पुत्र-जनम की उत्कट प्रीति प्रकट हुई जाग उठी।
अयोध्या के अंत:पुर में दुंदुभि की गूँज उठी॥१०५॥
तथापि रमामाधव के साधारण घर में थी।
मूक वह उत्कट प्रीति पर असाधारण वैसी ही थी॥१०६॥
स्तन में जब दूध भर आया पहली बार।
शिशु ने छूआ स्तनाग्र को अपने मृदुलाधर से॥१०७॥
नरम मृदु मंजुल उस स्पर्श से पल में रमा के।
हृदय में ममता का हुआ तड़ित संचार॥१०८॥
क्या उसकी मधुरता कौसल्या सुख सम नहीं है?
राजरानी हो वह क्या इसका सुख न्यून है॥१०९॥
ख्यात पूर्वज जो मरे राष्ट्र संगर में उस कुल के।
सपने में कहे 'मैं ही कोख में हूँ तेरे, बालिके'॥११०॥
अत: पुत्र का नाम रख 'शंकर' हे रमे।
'उचित' 'उचित' तब सारा गाँव भार्गव कहे॥१११॥
बालक ने पहली बार माँ करके पुकारा जब।
ममता के आँसुओं से उसका आँचल भीगा तब॥११२॥
माता को स्तनपान तथा पिता का चुंबन।
हुआ सुगठित तन बालक का मुदित मन॥११३॥

कर्णभूषण प्यारे डोले जब वह ठुमक-ठुमककर चलता।
कभी अपने हाथों से माँ के मुख में ग्रास देता॥११४॥
'घोड़ा-घोड़ा' खेलने तात को नहीं जाने देता काम पर।
कभी उनके वस्त्र छिपाता, कभी राह रोकता द्वार पर॥११५॥
बालक गुणवान् ज्यों-ज्यों बड़ा होने लगा।
रमा का श्रेय प्रेय सब एक हुआ जीवन में॥११६॥
पहलौटी ने जैसे शिशु को स्तनपान सिखाया।
वैसे प्रीति-रीति, नीति का भी पाठ पढ़ाया॥११७॥
शिशु हो गया योग्य और संतान प्रतिपालन की।
जीवन-गंगा को सृष्टि को नव गति प्राप्त हुई॥११८॥
बालक संवर्धन का व्रत रमा ने उस आस्था से निभाया।
जैसे पावन सुव्रत क्रम आस्था से जाता है निभाया॥११९॥
एक सुहानी भोर में पंछी चहचहाने लगे।
नित्य की भाँति रमा ने शय्या त्याग किया तब॥१२०॥
छिड़काव सम्मार्जन स्वयं करे था दासियों का ताँता।
स्वयं हो गई सुंदरी सुस्नाता औ शुचिर्भूता॥१२१॥
की फुलवारी जो उसने पिछवाड़े आँगन में।
ईश-पूजा के लिए लगी तोड़ने फूल उसमें॥१२२॥
फूलों की सुगंध में उषा की सुरंग में।
तन्मयता से लगी देखने सृष्टि कौतुक पल भर में॥१२३॥
फूल चुनते-चुनते मुखरित हुआ मंजुल गीत सोणा।
मूर्तिमान भयी जैसे भोर-शांति की मधुर वीणा॥१२४॥
लौटकर वहाँ से पति-पुत्र को जगाया धीरे से।
देखते सकुशल उन्हें नयन भरे प्रसन्नता से॥१२५॥
फिर निकट तुलसी के बैठी पूजा जप के लिए।
बालक उसका उसे देखता प्यार भरी चितवन से॥१२६॥
मैया की पूजा चलते छूने लगे उसे पल-पल में।
अगरबत्ती धुआँ पकड़ने दौड़े बालक चंचलता से॥१२७॥
फिर पुत्र को नहलाती रमा निर्मल उष्णोदक से।
एकेक शब्द कहती ईश-स्रोत गवाती उससे श्रद्धा से॥१२८॥
धीरे-धीरे खुलती कमल की एक-एक पंखुडी जैसे।
उस पूर्णोत्फुल्ल कमल की शोभा देख चकित माली जैसे॥१२९॥

वैसे देखत जननी कौतुक प्रिय आश्चर्य से।
उत्फुल्ल हृदय में बालक की अर्थ-श्री विकसित होती॥१३०॥
तुलसी को प्रणाम करवाकर वह सती उसको।
खिलाती भोजन प्रेम से रमा अपने पुत्र को॥१३१॥
शैशव में दूधभात तथा उसके आचार व्यंजन।
थाली में जो दे मैया क्या है भला उसके समान॥१३२॥
मिलता है भला कौन सा पक्वान्न जीवन में ऐसा।
माँ का वह निस्स्वार्थ प्यार देता है कौन ऐसा॥१३३॥
'अजी सुनते हो' सुहास्य वदना नारी मोहक।
पूछने लगी पति से अपने एक दिन अचानक॥१३४॥
पाँचवें जेठ में इस वर्ष पाँचवाँ वर्ष शंकर को।
जन्मगाँठ पर उसके वनभोज का आयोजन करो॥१३५॥
शंका, टीका टिप्पणियाँ हो गईं इस प्रस्ताव पर।
अंत में सभी ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया॥१३६॥
दोनों ने वनभोजनार्थ सुंदर बसंत चुन लिया।
रमामाधव ने सम्मान से मित्रजनों को निंमंत्रण दिया॥१३७॥
नाना पकवान बनाए निपुण युवतियों ने घर में।
अपने साथ ले आईं वे उस शुभ दिन में॥१३८॥
मंगल वाद्यों की मंगल ध्वनि से प्रभात निनादित भया।
छकड़ों को भी फूल-मालाओं से सजाया गया॥१३९॥
गाड़ियाँ चलतीं अचानक हिचकोले खाती जब।
टकराते नरनारियाँ हँसी के फव्वारे छूटते तब॥१४०॥
खेत अनाज से भरे-पूरे पशु-पक्षी, फल-फूल पाता।
राह चलते सौंदर्य वस्तुओं का भंडार देखता॥१४१॥
शंकर सत्वर जिज्ञासावश किसी वस्तु का नामगुण पूछता।
कभी किसी वस्तु को निर्देशित कर प्रमुदित होता॥१४२॥
चरमराते छकड़े जब दौड़ते वन में खेतों में।
पक्षियों के झुंड गीत गाते उड़ते नभ में॥१४३॥
मैया री! उड़ सकेगा मानव कभी ऐसे व्योम में?
पूछता शंकर प्रेम से माता उसे समझाती शांति में॥१४४॥
दिए ईश ने पंख पाखी को नच मानव को बालक।
न वा[३] पंख घड़ाने आ विमानीय हमें नए कारक॥१४५॥

संचित बालक पल भर, किंतु तुरंत बोले उक्ति।
क्यों न मानव करता ऐसी सुलभ उड़ान की युक्ति॥१४६॥
बैलों के बदले बला-बला सा ऐसा।
पंछी पकड़कर उसे गाड़ी को बाँध दे॥१४७॥
उड़ाकर उछे नीचे लगाम पकलकल।
फिर भीतल बैठे लोग क्यों न उड़ेंगे ऊपल॥१४८॥
कूक कोयलों की दूर से आई चहचहाट वणिक्तती।
आम्रवन विभव को बखानकर ग्राहकों को पुकारती॥१४९॥
आओ पांथस्थ! इस पर्ण-मंदिर में आओ तो।
बसंत बहार देखे अंबागन में ही भली देखो तो॥१५०॥
माध्याह्न की गरम वायु से तन सारे तप्त हुए।
भिलनियाँ वन से यही आतीं तृषा-शमन के लिए॥१५१॥
आम्र-वृक्ष के पके फल हैं सुधारसपूर्ण ऐसे।
त्यज सत्फलों को ये आम्रवृक्ष सोहत-योगी-मुनि जैसे॥१५२॥
तन को शीतल करे छाया यहाँ और निर्मल झरना।
रिझाती कोकिल-मैना गाकर आम-रस अमृत पीना॥१५३॥
शैशव में शिशु को मैया विरह में पिया को प्रिया।
मोद से भर दे अमराई तीव्र ग्रीष्म में छाया॥१५४॥
पुष्ट कृषक आए करे आगवानी उनकी।
भेंट चढ़ाए ताजे फलमूल अति उत्सुक की॥१५५॥
पूछत तुरंत, माँजी दर्शन करो सत्वर हमें।
हमरे नन्हे जागीरदार बोलो हैं कहाँ? कहो हमें॥१५६॥
कंधे पर उठाकर शंकर को नाचने लगा कोई।
और उससे नर्म-विनोद में मग्न हुआ कोई॥१५७॥
नर-नारियों का झुंड अमराई में स्वच्छंद विहरता।
संपूर्ण दिवस उनका था मोद भरा मन में प्रसन्नता॥१५८॥
पीले-पीले सुंदर सुगंधित मधुर रस से भरे-भरे।
चखे रस आमों का कि निहार शोभा निश्चय न करे॥१५९॥
कँटीले कटहल लटकते मधुर कोयों के संग।
बिना स्वाद लिये मधुरता का कैसा हो अंग॥१६०॥
जिस स्थान पर एक ही वृक्ष को फल लक्ष-लक्ष।
उसी स्थान पर बिना दाने के मरता है मनुज॥१६१॥

सब जन चखते रसभरे मीठे आम और कोयें।
कभी-कभी मजे से ताजे रसदार जामुन खाए॥१६२॥
गुलाब पुष्पों की माला गूँथे, कभी गले में डालते।
कहीं मयूर नृत्य देखते कभी कोमल बाग देखते॥१६३॥
पंक्ति सजाए नाना विध पकवानों से सादर रसीले।
साथ करते हास्य के नर्म-विनोद चरपरे चुटकुले॥१६४॥
मोदमय वातावरण में शांति भरा ऐसा सीधा सरल सा।
इन जनों का दिन बीता निरामय सात्त्विक उत्सव सा॥१६५॥
उस ईश्वर को, जिसने दिया यह दिन स्मरते हुए।
भावुकता से श्रद्धालुओं के नेत्र भर-भर आए॥१६६॥
दिनकर ने अब संध्या शिविर में प्रवेश किया।
औ' सृष्टि के दिन क्रमों का बंधन शिथिल किया॥१६७॥
यहाँ-वहाँ चारा वा सुजल पीने के लिए विचरति।
वियोग हुआ तनिक प्रिया का जो स्वच्छंदे संप्रति॥१६८॥
नीड़ जाते ही निद्रा के लिए थके-माँदे बुलबुलं फाँहकवा।
गाढ़ालिंगार्थ 'चली आ चली आ' प्रिया का बुलावा॥१६९॥
मुराले मंजुल सुनते चलीं दुधारु गौएँ घर।
दारका नदी के निकट रुकीं जल पीने पल भर॥१७०॥
जल पीते-पीते बछड़ों की आर्त-ध्वनि कानों पर पड़ी।
सुनते ही उनसे मिलने ममता उनकी उमड़ पड़ी॥१७१॥
असंयत होकर स्तन से उनके मंदोष्ण दुग्ध धाराएँ।
बहने लगीं झर-झर हुआ मिलन मैया दारका के जल से॥१७२॥
नीलश्वेत गंगा-यमुना जैसी मैया दारका सोहत।
भार्गव ग्राम की सुंदरता जैसी प्रेम प्रयाग सोहत॥१७३॥
संध्या सृष्टि की करुण-रम्य शोभा को जब आया निखार।
तब संघ नर-नारियों का लौटा गाँव की ओर॥१७४॥
लौटे गाँव में पर गाँव में रखते ही पग अपने।
घिर गए सब जन चारों ओर छाए सूनेपन ने॥१७५॥
नेत्र चंचल सभी के गति सत्वर बावली।
हँकवा करते कहीं-कहीं कानाफूसी पलपल में॥१७६॥
जैसे भयभीत बावरी हिरनियों के झुंड में जरूर।
घुसा है कोई हिंस्र श्वापद महा खूँखार॥१७७॥

जैसे-तैसे तथापि वन भोजन मंडली वट के।
परकोटे से निकट आई उस चबूतरे के॥१७८॥
अचानक सामने उनके संगीनें तानकर।
आते देख दल पाखलों के भर-भर॥१७९॥
क्रोध भरे शब्द ही जिन से जन साधारण कंपित होता।
शस्त्र तानकर आए दुष्टों पर किसका बस होता॥१८०॥
हताश गाँव शरणागत बन उन दुष्टों की।
आज्ञा से पूर्व ही हाथ जोड़कर खड़ा हुआ॥१८१॥
कंपित स्वर से पूछे सब क्या हुआ? क्रोध क्यों?
पर प्रश्नसमाप्ति से पहले म्लेछो ने घेरा रमा-माधव को॥१८२॥
और दोनों को बेदर्दी से दो क्रूर सैनिकों ने उसी क्षण।
आव-न-ताव देखे बेदर्दी से घसीटा बेझिझक॥१८३॥
गौर नायक जो बैठा या चबूतरे पर शान से।
पटका सम्मुख उसके सर्प-बिल में मछली जैसे॥१८४॥
अकस्मात् गदाप्रहार सर पर होते ही जैसी।
रमा सती मूर्च्छित हो परस्पर्श से ऐसी॥१८५॥
हो दुःखांत उसका ऐसा उसके दुःख से कुपित।
हो माधव जिसके क्रोध में उसका दुःख हो अस्त॥१८६॥
छाटने पर भी बेला चमेली फूल लटके उसपर।
वैसे अबोध शिशु चिपका बेसुध रमा के तन पर॥१८७॥
कुपित गौरनायक ने पूछा, 'तेरा नाम क्या?'
क्रुद्ध माधव प्रतिप्रश्न करे, 'साहसी तू है कौन'॥१८८॥
गौरे ने उठकर एक क्रॉस ऊँचा उठाया।
जैसे क्रुद्ध सर्प ने अपना फन ऊँचा उठाया॥१८९॥
'अरे मूर्ख, जानो, हूँ मैं एक सेवक विनम्र सा'।
उस प्रभु का, जिसका देवदूत भी गाते चरण-यशा॥१९०॥
और क्रूस पर उस जो पवित्र प्रतिमा भली।
उस दयावन प्रभु के प्रिय पुत्र की महान्॥१९१॥
उस करुणाघन ईसा मसीहा की प्रतिमा को।
चूमकर आगे कहत वह भक्ति गद्गद॥१९२॥
उस प्रभु कार्य का विनम्र सेवक दीक्षित।
अंतुनिया मैं करता सर्वस्व प्रभु चरण में अर्पित॥१९३॥

उस प्रभु का पवित्र संदेश सारे विश्व में।
सब पाखंड का खंडन कर दंडित करके॥१९४॥
धर्मराज की पोपाज्ञा[४] पुनीत देखो इस कर में थामे।
पुर्तुगीज राज की राजाज्ञा उस कर में थामे॥१९५॥
कहो मूढ, आज धर्म के नाम पर, आज्ञा भंग से।
खुलेआम ये पाखंड कर्म तूने किए कैसे?१९६॥
कहे माधव न धर्माज्ञा ना ही राजाज्ञा का भंग।
न मैंने किया, न वा पाखंड कर्म किसी के संग॥१९७॥
'झूठ!' दहाड़ा अंतुनी सत्वर, थर्राए सभी।
संबोधित कर कहे गाँव धुरीणों को सुनो सभी॥१९८॥
अरे पतितो! क्या सुनी नहीं कभी घोषणा बोलो।
हिंदुओं के धर्मकृत्य जो सरेआम करे॥१९९॥
उन पापियों औ' सहायकों उनके जलाएँ आग में।
ईसाई धर्म के एवं हमारे शत्रु समझकर॥२००॥
क्या तुमने कभी देखी नहीं गगन में प्रतिदिन?
ऐसे पापी पाखंडियों की उठती लपटें दहनाग्नि की॥२०१॥
हो भयकंपित जन मौन रहे दे न सके उत्तर।
हाँ या ना तो कुपित अंतुनी दहाड़ा फिर॥२०२॥
बंधु या भगिनी अथवा सुत या तुम्हारी सुता।
बिना जलाए व्यथा कैसी भई समझ पाओगे॥२०३॥
ऐसे गरजते जिस हाथ में था क्रूस पवित्र।
उसी हाथ में चाबुक थामे झपट पड़ा माधव पर॥२०४॥
बोल! तूने खुलेआम धर्म कृत्य किया नहीं बैरी?
किया नहीं? अथवा उधेड़ दूँ मैं चमड़ी तेरी॥२०५॥
बोल! बोल! ऐसे पूछे क्रोध से तार सप्तक में।
कोड़ों के प्रहारों के साथ जैसे क्रूर ताल ग्रहण करे॥२०६॥
मुख, हस्त, पाद, मस्तक से लहू के फव्वारे छूटे।
पर 'उफ' तक नहीं किया माधव ने उसका भी धीरज ना छूटे॥२०७॥
जन्म दिवस के शुभदिन पर धर्मकृत्य कर्तव्य हो।
उत्सव में कोई उन्हें न धर्मकृत्य मानता*॥२०८॥

---

* जन्म दिवस के समारोह को कोई धार्मिक कृत्य नहीं कहता। इन लोगों के साथ पुत्र-जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में मैंने कोई धर्मकृत्य नहीं किया।

कार्य में धर्मकृत्य हो! तथापि सहित जन।
पुत्रजन्मोत्सव किया न कोई धर्म कृत्य॥२०९॥
माधव ऐसा उत्तर दे खरा-खरा बार-बार।
चाबुक प्रहारों से उड़ती लहू की पिचकारियाँ॥२१०॥
केवल दल तीस थे पाखलों के शस्त्र सहित।
और ग्रामीण जन की संख्या तीन सौ से अधिक॥२११॥
तथापि सम्मुख सभी के क्रूर कृत्य हो रहा था।
चाबुक के प्रत्येक प्रहार के साथ लहू का फव्वारा उड़ा था॥२१२॥
देखें यह बेचैन सभी पर साहस ना एक भी करे।
होते हुए भी बहु पर एक का उस हाथ ना धरे॥२१३॥
मुख-मस्तक, पाद-पीठ पर हो रहे घाव एकेक।
तो भी न हो रही थी शमित गोरे की क्रूरता॥२१४॥
स्वभक्त से बहाए लहू से सुस्नात जो हो रही।
क्रूसस्था वह दयाशीला ईसा की प्रतिमा सही॥२१५॥
तदनंतर रिक्त वैसा ही वह जैसा पात्र अभिषेक का।
चाबुक नीचे रखकर नीचे देखत स्नातमूर्ति का॥२१६॥
रूमाल लाता और पोंछता उसे पुनः।
भक्ति भाव से उसे चूमकर बोले गद्‌गद जना॥२१७॥
'अरे पतितो! अब तो स्वीकारो सत्य यही।
यश ईसा को छोड़कर सब पाखंड असत्य वही॥२१८॥
तो फिर तुम्हरे पापों को क्षमा करने प्रभु से।
और पोप से हम करें प्रार्थना अनुरोध से॥२१९॥
अन्यथा कसम ईसा की खाकर कहता हूँ।
एक ही हिंदू यहाँ से जीवित ना जा पाएगा॥२२०॥
तम की कालिमा अब छा रही सृष्टि पर।
उसमें गुप्त हो बोले—उसकी ही जिह्वा जैसी*॥२२१॥
पूर्वभीत होकर भी गए जन भी क्रम से ऐसे।
रिक्त दुःख में से जीवित कुलबुलाहट में॥२२२॥
था वह भागने का इरादा तब उन पतितजनों को।
घेरकर रोकने की योजना बनाए गौराधिपति तत्क्षण॥२२३॥

---

* उसकी वाणी मात्र सुनकर देती थी मानो तमोग्रस्त सृष्टि की जिह्वा ही बोल रही हो।

जहाँ खून से लथपथ माधव पड़ा चबूतरे पर।
पहरेदार सैनिक स्थापित किया वहाँ सत्वर॥२२४॥
ऐसा प्रबन्ध करते उसने सब जन रोकने का।
वह स्वयं और जनों को पकड़ने चला गया॥२२५॥
सभी को रोकने—और सभी को ही इधर अहा।
कोई साहसी बनकर अँधेरे में से खिसक गया॥२२६॥
साहसी और दो-तीन झट से तीर से।
घुसे चबूतरे में सर्प के बिल में जैसे॥२२७॥
और अचानक उस एकाकी सैनिक पर।
मारा झपट्टा कंठ पर जैसे पक्षीराज उरग पर॥२२८॥
गुपचुप उस सैनिक को मूर्च्छित करते तत्क्षण।
माधव, पुत्र तथा पत्नी को उठाकर हो गए हिरन॥२२९॥
गाँव के अन्य मुखियों को पकड़कर गौराधिप।
लौटा चबूतरे पर लेकर इक जलता दीप॥२३०॥
दीपालोक में देखा क्या राज्यपाल अंतुनी ने।
मूर्च्छित बंदियों के स्थान पर था मूर्च्छित बंदीप॥३२१॥
'दगा! दगा! पकड़ो, भागो' गरजत क्रोध भरे भय से।
सम्मुख आए प्रत्येक को उसने लगा पगलाकर॥२३२॥
देखते-देखते भय बँध टूटकर बहने लगा।
रेत का बाँध तोड़कर जन प्रवाह बढ़ने लगा*॥२३३॥
स्थिति का जायजा लेकर सूज्ञ अंतुनी पीछे हटा।
प्रतिशोध मन में, पूँछ पर आघात किए साँप-सा॥२३४॥
गाँव के धुरीणों को बाँधकर रात की वेला में।
निज सैनिकों संग आश्रयार्थ चौकी में गया॥२३५॥
केवल तीस रिपु को सौंपकर गाँव के अग्रणियों को।
जान बचाकर ग्रामीण तीन सौ भागे दुम दबाकर॥२३६॥
वह काली रात! तीव्र यंत्रणा दी जाती उन बंदियों को।
हंटर टूटे जब कोड़ों की बरसात हुई॥२३७॥

---

* रेत का बाँध तोड़कर जिस तरह पानी का प्रवाह बहता है, उसी प्रकार भय मुक्त होकर सैनिकों का घेरा तोड़कर जनप्रवाह घरों की ओर बढ़ने लगा।

रक्तरंजित वह। जैसी नागन डसती जनों विषैली।
वह भीषण रात्रि! वह अति आग। हिंसक गरजनों की भरी॥२३८॥
हे प्रभो! नित्य स्मरण इन लोगों ने अभी किया।
तुरंत भाग्य में यह घोर रात, ऐसा क्या पाप किया॥२३९॥
वह सौम्य रात! निद्रिस्त इस मठ की छाया में।
जुगाली करती किसी हिरनी सम है शांति॥२४०॥
निश्चिंत मन से निद्रिस्त पाखी हरसिंगार पर।
जैसे जहाँ में पासी का नामोनिशान भी न रहे॥२४१॥
शांत कोमल गीतों का शीतल स्रोत झरे।
सौम्य रात्रि में शीतल चाँदनी में संगीत समाए॥२४२॥
अर्चना से अपनी तुष्ट किया शिवशंकर को।
फूटे प्रेम के झरने चंद्रकांत के हृदय में*॥२४३॥
साधु के हृदय में जो इस मठ में विराजमान।
'आप कहाँ से?' पूछते ही कोई खिली सहज मुसकान॥२४४॥
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र ज्ञेया कथं गतिः॥२४५॥
'धाम कहाँ?' 'वहाँ, बेटा जीव रमे जहाँ राम में।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं च मे॥२४६॥
आया एक दिन बसा आज यह और भविष्य में?
जिसका हृद्‌गत न कोई अन्य वा न ज्ञात उसे भी॥२४७॥
स्वयं न किसे बुलाए पर उसे आते ढूँढ़ते जन।
जैसे खिले कमल की ओर मुग्ध भँवर आप ही भागे॥२४८॥
भार्गव में साधु के संग, मठ में आए जो वह।
घोर रात्रि भी संगीत चाँदनी से एकरूप हुई**॥२४९॥
शंकर भगवान् की पूजा से भी संतोष न मिला।
तो साधु उसी आरती को दोहरा रहा बार-बार॥२५०॥

---

* उस स्निग्ध वातावरण में बैठे हुए अमृत हृदय एक ऋषि अपनी अर्चना से प्रभु शंकर को रिझाकर ऐसे चमक रहे थे जैसे चंद्र को पाकर चंद्रकांत मणि अपनी किरणें फैला रहा हो।

** रमा माधव के कारण भीषण बनी रात्रि मठ में प्रवेश करते ही संत समागम से मानो कैसी प्रसन्न, सौम्य तथा शांत हो गई।

(धुन — राम स्मरे राम)

आरती से आरती का भगवन्
दीप तुझे। उतारूँ रे॥
आँगन में गगन के तेरे
सहस्र सूरज का दीपोत्सव
जलाते ये पथ पर अपने करें संपन्न॥ उतारूँ रे॥
सहस्र सूरज जो शेषः
पथिक से ही हो स्फुरण
नयनों में ऐसा किंचित् तम ही भला॥ उतारूँ रे॥
माता की ही बगियन से
ताजे-ताजे चुनकर फूल
गूँथे वेणी बालिकाएँ माँ की वेणी से फूल॥ उतारूँ रे॥२५१॥

गाते-गाते शांत होकर कर जोड़कर बैठे।
भोलापन मूर्तिमान् शिव सम स्मित करे॥२५२॥
एकाएक वहाँ किसी का आर्त कराहता स्वर।
सुना, 'महात्माजी! साधो!' करुणा से भीगा॥२५३॥
भला अमंगल का प्रवेश कैसा हो शिवालय में।
साधु जो इस भाव से निश्चिंत सदा चौंका पुकार से॥२५४॥
हाय! कौन है तू? क्या हुआ तुझे? आगे आ, बोलो।
आर्ता अंकी हो साधु गृहे स्वयं सिसकी भरे॥२५५॥
रमणी एक देखी काँपती पुष्पलता-सी कंपित।
इक मुरझाए फूल-से बालक को गोद उठाए खड़ी॥२५६॥
बलवान् निडर पर विनम्र वीर तीन खड़े।
पीछे उसके, सब सपना सा, साधु अवाक् रहे॥२५७॥
असह्य शांति सहकर कुछ क्षण करे भंग।
अग्रणी वीर अंत में आगे बढ़ा कुछ पग॥२५८॥
विनम्रता से दोनों कर जोड़कर खड़ा ऐसा।
शत्रु दुर्घर्ष भी किचिन्नतचाप गुणी जैसा॥२५९॥
'प्रणाम विनम्र' कर बोले सुस्पष्ट वाणी से।
अभय-याचना करते कहे रामकहानी संक्षेप में॥२६०॥
हिरणों के झुंड पर कैसे उस दिन अचानक।
व्याघ्र ने झपट्टा मारा खूँखार क्रूर हिंसक॥२६१॥

दबोचा व्याघ्र ने माधव को पर तिकड़ी ने इस।
ग्रासित व्याघ्र को निगलने नहीं दिया शक्ति बल से॥२६२॥
दु:खी-दु:ख से उनके तदाकार ही सत्वर।
साधु एकरूप हुए जैसे जल में मिले जल॥२६३॥
घायल तन को उनके दी सुख सात्त्विक औषधी।
उनकी पीड़ित आत्मा को दी सुख सात्त्विक औषधी*॥२६४॥
कष्ट माधव का कम हुआ रमा के मन में भी।
उत्पन्न हुआ विश्वास तो निद्रा सहलाती बालक को॥२६५॥
कहत वीर अग्रणी साधु से, अच्छा हुआ सब यहाँ तक।
अभयदान के आप के सत्य ही हमरा धीरज बढ़ा॥२६६॥
पर देखें कर्तव्य आगे का प्रभु निभाते कैसे।
कौन राखे खरगोश को चंगुल के बाज से॥२६७॥
शंभो! शंकर! करो विश्वास पूरा उस पर।
बिना उसके जगत् में कौन किसका रक्षक है?२६८॥
महात्मन्! सत्य है वह सब पर क्या सत्य नहीं।
कि उसके बिना जगत् में कौन किसका भक्षण करे॥२६९॥
प्रभु की माया अतर्क्य उस अर्थ कौन कहें?
बाज से कहे झपटो और खरगोश से भागो॥२७०॥
सूक्ष्मो ही भगवान् धर्म: परोक्षो दुर्विचारण:।
अत: प्रत्यक्षमार्गेण व्यवहार-विधिं नयेत्॥२७१॥
यदि रातोरात किया न कुछ सदुपाय।
तो साधो! ब्राह्मण यह सदेह जला जाएगा॥२७२॥
हाय! इस सती को तथा सुलक्षणी बालक को।
तनिक दया न करेंगे जीवित जलाने में॥२७३॥
रातोरात इन्हें किसी अन्य सुरक्षित स्थल।
तो जाने के सिवा सूझे न कोई उपाय दूजा॥२७४॥
भला अन्य सुरक्षित स्थल कैसा हिंदू जना।[५]
रणधुरंधर बाजीराव[६] के कृपाण रक्षित राज्य बिना॥२७५॥
अत: शीघ्र ही अश्व लाकर उनपर।
बिठलाकर इन तीनों को हम तीनों सत्वर॥२७६॥

---

* अपने दिव्य ज्ञान के तात्त्विक हितोपदेश द्वारा उनकी पीड़ित आत्मा को भी सांत्वना दी।

एक ही दौड़ में वायुवेग से वहाँ पहुँचाएँ इन्हें।
राष्ट्रशक्ति केसर ध्वज भवानी का जहाँ डोले॥२७७॥
ना मानूँ श्रद्धा भक्ति मात्र से इनकी रक्षा होगी।
सोमनाथ[७] भला क्यों अनाथसम कंपित हुआ॥२७८॥
अरे बावले, क्या कहता है, देखो विश्वास करके।
साक्षात् मृत्यु भी क्या बिगाड़ेगी उस मार्कंडेय का॥२७९॥
पुत्र, शंका द्वेषवर्धिनी तो श्रद्धा है दयाघनी।
शत्रु की बात क्या, भक्ति से पसीजता पाषाण भी॥२८०॥
आने दो कल अंतुनीया को यहाँ उसे मैं सब।
सत्यकथा कहूँ तो पसीजे मन अवश्य उसका॥२८१॥
शस्त्र की भाषा का उत्तर मिलता है द्वेष से।
सत्य की बोले भाषा उत्तर मिले दया से॥२८२॥
सत्य की ही भाषा नहीं थी क्या हमरी विवशता वश।
कंपित कंठी रमा वदे जैसे वंशी से सूर बजे॥२८३॥
क्या बिना सत्य के हमने अन्य कुछ कहा भगवान्?
पुत्रजन्मदिनोत्सव किया तो कौन सा पाप किया॥२८४॥
सत्य जब कहने लगे तो दया तो दूर रही।
पशु से भी बदतर उन पशुओं ने मुझे घसीटा॥२८५॥
प्राण यदि वे मेरे लेते तो दुःख न इतना होता।
पर इन…संकेत अँगुली से माधव प्रति दिखाती बाला॥२८६॥
पर मेरे इन प्राणों से भी प्रिय जनों पर हाय!
हाय! हाय! कैसा यह भीषण कठोर आघात॥२८७॥
धीरज जन लज्जा का बाँध तोड़ बह गया।
जो अद्यापि महत्प्रयास से उसने रोक लिया॥२८८॥
अपने ही आँसुओं की बाढ़ से हाय-हाय करते।
वह सती ढह गई जैसे कदली का पेड़ गिरे॥२८९॥
और पिया! पिया! पुकारे बाला गला फाड़कर।
गिरी पति की गोद में विलापिनी पति को पुकारकर॥२९०॥
देवी! बेटी! ध्यान दे अपने इस पुत्र पर।
वीर साधु दोनों देने लगे समझ सांत्वना भर॥२९१॥
झुलसी सुखी लता पर जल सिंचन जैसे।
आँसुओं से सूखी जीभ सींचती बाला दीना॥२९२॥

अंतुनीसम सर्प बिल में मत ढकेलो मुझे।
दया करो मुझ पर मत बनो ऐसे कठोर॥२९३॥
बेटी! बेटी! सहलाते उसे मुनिवर कृपालु।
सौम्य स्मितसिक्त करुणार्द्र वाणी से कहे॥२९४॥
आत्मा सर्वव्यापी आत्मा प्रेम। प्रेमबल से डाटा।
क्या अंतुनी बोले, होंगे सर्प स्ववश महा॥२९५॥
ऐसे बतियाते कुछ दूर तक पग उठाते।
वासुकी! वासुकी! पुत्र प्रेम से मधुर हाँक देते॥२९६॥
बिल से एक साँप सुस्त सा फन डुलाता ऐसे।
निकला बाहर न्यूनता से वासना जैसे॥२९७॥
'आ! आ! जानत मैं तू बहुत भूखा होगा।
पर अतिथि ये आए हैं आज तेरे द्वार पर॥२९८॥
उनकी सेवा में था मैं तनिक तो पूजा हो चुकी।
पर भोग चढ़ाई दूध कटोरी देनी रह गई॥२९९॥
तब आगे-पीछे बलखाते करते सरसराहट।
बढ़ गया सर्प साधु के पदों को गया लिपट॥३००॥
रखा सामने उस भुजंग के दूध मुख सम्मुख।
मुसकाते साधु देखे अतिथियों को विस्मित॥३०१॥
जिह्वा लपलपाते फन करता ऊँचा बार-बार।
पीता दूध प्रेम से खेले आमोद-केलि॥३०२॥
पीया दूध सर्प ने प्रेम से दुःख ही सुख समझकर।
पीकर रिक्त किया पात्र जैसे सगम कौतुक भर॥३०३॥
हो तुष्ट मन में दूध पीकर जी भरकर।
लिपटकर शिवलिंग से भुजंग डोले फन उठाकर॥३०४॥
'वाह!' हँसकर बोले साधु आयु का दुग्ध पात्र किया रीता।
मृत्यु ही मानो स्वयं मृत्युंजय के सर पर छत्र धरे॥३०५॥
सर्प नहीं यह, जब एक ही धारा नाचे झरे।
उस प्याले से हलाहल के भगवान् प्राशन करे॥३०६॥
(उस दृश्य से मुनि को केवल काव्य ही स्फुरण नहीं हुआ, अपितु वह गाने भी लगा—)

पद

हलाहल पिया। जो तुमने, हलाहल पिया।
प्रभुजी, देखो न बूँद एक नीचे गिर गई,
उपाय योजन करे तू कोटि-कोटि॥

शमनार्थ रे! सुख-दुःखों का हलाहल।
शतसूर्य लताओं के सोमपुष्प नवनव॥
लाकर अमृतार्द्र निचोड़े मस्तक पर।
फिर फेंकते हो सदा निर्माल्य बनाकर॥
चंद्रमौलि भोला। पर। चंद्रमौलि भोला।
अमृतता की बूँद एक नीचे झरी*॥ १॥
देवदेव ही तू। ईश्वर। देव देव नही तू।
इन दीन-दुःखियों को करनी नहीं स्पर्धा तुमसे।
अमृतवल्ली रहे। तुम्हारी। अमृतवान्नति रहे।
बूटी विवेक की थोड़ी सी अनुपानार्थ** दे दो॥
जलाए विश्व को! देखो। जलाए विश्व को।
सुख-दुःख के हलाहल का बिंदू जो झरा॥३०७॥
ज्यों-ज्यों मंजुल ताल के संग भक्त हँसता।
अहा! मृत्युंजया! मृत्युंजया! शंकरजी अहा॥३०८॥
(संचारित) भावावेश से हो विकसित आत्मशक्ति।
डाले सब जनों पर वह अद्‌भुत मोहिनी-शक्ति॥३०९॥
मुग्ध विषधर बार-बार फन डुलाकर अपना।
ईश स्तुति स्तव मानो देता अनुमोदना॥३१०॥
आभास निर्भयता का रमा को, माधव को अनुभूति।
जैसे कोई उसके घाव पर डाले शीतल औषधि॥३११॥
बालक शंकर मीठी नींद में देखे सपने मधुर।
दिवा-स्वप्न सा सोचे जागृति में भी वह वीर॥३१२॥
दूर कहीं से शोर अचानक सुनाई दिया।
भविष्य के संकट का पदरव कान में पड़ा॥३१३॥
वीर होकर सावधान तुरंत बोले साधु को।
'सुनो! सुनो' आया शत्रु इन्हें ढूँढ़ते हुए॥३१४॥
आत्म-बल पर आपके सत्य है मेरा विश्वास।
पर आत्मबल की भी सीमा है देह-बल सम॥३१५॥

---

* निर्माल्य : देवता पर चढ़ाए हुए फूल आदि को विसर्जन के बाद निर्माल्य कहते हैं।

** अनुपान : दवा के साथ या दवा खाने के बाद ली जाने वाली वस्तु।

आत्मबल से आपने एक सर्प वश में किया।
पर क्या सहस्र नरसर्प होंगे भयंकर वश में॥३१६॥
होगा भी माना, पर ऐसे प्रयोगार्थ सत्य ही।
तीन जीव बलि चढ़ाना होगा यशवर्धक? ३१७॥
तथापि सारा बोझ अपने सर पर उठाएँ भला।
अवश्य लें पर मैं ना लूँ भई भय के कारण॥३१८॥
हँसकर बोले साधुजी, पुत्र! इन तीन जीवों का ही नहीं।
तो शिव के जीव मात्रों का भार शिव हो शिव पर ही॥३१९॥
भक्ति भाव के आगे माना व्यर्थ हो सब औषधी।
साधो! तो घाव पर माधव के क्यों बाँधी जड़ीबूटी॥३२०॥
इस बूटी को शंकर बाँधे घावों में जैसे।
बाँधे अंतुनी के हृदय में प्रेम-बूटी वैसे॥३२१॥
सुनकर यह वीर रमा-माधव की ओर घूमकर।
बोला—'लगे यदि साधु भाषण आपको उचित॥३२२॥
तो लेता हूँ आज्ञा आप से, भला हो आपका।
निष्ठा सिद्धि से करें सेवा साधु पद की॥३२३॥
बोल ही रहा था कि धड़धड़ाते द्वार को।
आँगन में अंतुनी का गौर सैनिक कोई॥३२४॥
जिसे देखते ही गौरा रमा कदली सम।
कंपित हो कहे—'वीर! साधो! राखो हमें॥३२५॥
'धीरज रखो!' साधु कहे परिपाठवश सत्वर।
आगतों के स्वागतार्थ वह आँगन में आया॥३२६॥
वीर शीघ्र उन तीनों को निकट कोठरी ले गया।
जाकर वहाँ वहाँ का दीप शीघ्रता से बुझाया॥३२७॥
मन में अंतुनी समझकर उस सैनिक को।
संत उसे 'अंतुनी बेन आ जाओ' कहे॥३२८॥
चौंका गोरा मन में, नाम हुआ ज्ञात इसे।
निश्चय ही माधव कथा भी ज्ञात होगी इसे॥३२९॥
यही अपना नाम दिखाऊँ, देखो क्या कहता है।
सोचत मन में बोले शुद्ध महाराष्ट्री में सत्वर॥३३०॥
साधो! जनों से सुनी आपकी अंतर्ज्ञान महिमा।
है सत्य वह, अहा! केवल दर्शन मात्र से॥३३१॥

नहीं पुत्र, किसी अन्य से ज्ञात हुआ मुझे।
ज्ञाता शिव नच मैं! आ तू शिवदर्शन करो॥३३२॥
आओ भीतर, देख मूर्ति शिव की शुभंकरा।
प्रेम गद्गद हो वंद्य महेश्वर को वंदन कर॥३३३॥
देखकर शिवलिंग गोरे की छूट गई हँसी।
एक मूषक तब उसपर चढ़ बैठा था॥३३४॥
महाराज, जो ईश चूहे का भी न कर पाता निवारण।
कैसा लाभ होगा सेवा उसकी करके सदा॥३३५॥
अरे मूढ़! पूज्य पिता का चित्र काटते-काटते।
क्या कट जाता है पिता, चित्र काटते-काटते॥३३६॥
क्यों करे परम पिता प्रेमल संतानों का निवारण।
तन पर चढ़ती प्रेम से वे तो, न कि बलात्॥३३७॥

पद

ब्रह्म योनि में महेश्वर वीर्य रख चंडिका।
जगत् की जननी पीडिका॥
गर्भवती का दिगुदर दस दिशा फूली पल भर में।
होने लगीं काल वेदनाएँ॥
ब्रह्मांड का पिंड तब प्रसूत हो आज।
कोख से उसकी सब ही ईश प्रजा॥
मूर्ति जो-जो कृमि से कार्तिक तक।
सबहु उस ईश की प्रजा॥
(धुन) यह उद्दंड बालक मानुष बहु लालची।
पितरों का जायज वारिस मैं ही हूँ॥
तब मूषक जाए अन्य किसी घर।
जी भरकर भोग करे प्रेम चंद्रिका,
जगत् की जननी यह पिंडिका॥३३८॥
जीवात्मा की एकता न समझने के कारण अहा।
आज तक हम पड़े अंतुनी के अज्ञान में महा॥३३९॥
जीव जैसा अपना जीव दूजे का वैसा।
यह जानकर प्रेम-मंत्र सरल। जीवन में स्वर्गीय रसा॥३४०॥
हृदय तुम्हारा भक्ष्य बना द्वेषाग्नि का।
सत्वर उसे बुझाओ, जलते घर को जैसे॥३४१॥

अनुपात जल से बाबा क्षमा करो। वह करे।
जगत् जनक कृपालु करे क्षमा तुझे तत्पल में॥३४२॥
सत्य है, भगवन्! गोरे ने सर हिलाकर कहा।
देवपुत्र८ पुत्रों को अपने ऐसा ही संदेश दे॥३४३॥
आप जैसे संत चाहे कहीं भी बसें।
सत्य ही वह शिष्य ईसा का ही हो॥३४४॥
कीर्ति आप की ऐसी सुनकर ही मिलने आया।
दर्शन से ही आपके करने लगा पूजा आपकी॥३४५॥
मात्र अंतर्ज्ञान से आपने नाम जाना मेरा।
भला मम कर्म भी कैसे अज्ञात रहे आपसे॥३४६॥
हे सद्गुरो! हो रही मुझे उपरति मुझे अपने कर्मों की।
हो रही है इच्छा क्षमा-याचना माधव की॥३४७॥
मुझे ज्ञात हो कहाँ माधो औ' करे क्षमा मुझको।
सुखी हो हे भगवन् मैं पुनः जीवन में॥३४८॥
सुनकर उक्ति उसकी तुष्ट मुनि वर बोले।
शुभ कामना यह हो कल्याणमयी अंतुनी॥३४९॥
तेरे संबंध में विश्वास मैंने जो पूर्व ही किया।
दयाशीलता से अपनी तूने सार्थक उसे किया॥३५०॥
आपने की कृपा साधो, जिससे कुपात्र सुपात्र बने।
बनाते सर्पों को भी प्रेमी हृदय हूँ मैं तो बस मानव॥३५१॥
भई अंतुनीया! क्या भुजंग के हृदय में दया नहीं?
और हम मनुजों के हृदय में क्या विष नहीं॥३५२॥
हम ऐसे पदाघात से देते हैं दुःख जिसे।
पग को डसते ही देते हैं दोष उसे॥३५३॥
एक ही भूतात्मा प्राणीमात्र में बसे औ' सर्प भी।
वश होते प्रेम से तो मनुष्य विद्वेष-विष के भक्ष्य॥३५४॥
अतिशयोक्ति क्या देखत हो, यहाँ तो सर्प भी।
भूतनाथ शंकर का प्रसाद पाने सदा होते खड़े॥३५५॥
वासुकी तो निज सुखस्पर्श से दबाए ईश का तन।
भृत्य भाँति छत्र धरे शिव पर फैलाकर फन॥३५६॥
हँसकर बोला गोरा, खाते-खाते पचनार्थ सर्प ये।
वृक्षों वा खंभों को लिपटकर फन उठा डोले ये॥३५७॥

साधु भी हँसकर बोला, 'क्रूरता संबंधित तेरे।'
वंदत तूने झूठी सिद्ध नहीं की अनुताप से॥३५८॥
वैसे हृदय शुद्धि से होगा ज्ञात तुझे अंत में।
एक एव हि भूतात्मा भूते-भूते व्यवस्थितः॥३५९॥
एतदर्थ निरपराधियों को पीड़ा देना छोड़कर।
प्रेम मंत्र जाप करो जो है हृदय-शुद्धि कर॥३६०॥
स्वीकार है साधो, क्रूरता की मेरी क्षमा करें।
और तुरंत माधव के पाचारण की कृपा करें॥३६१॥
चरणों को उसके वंदूँ, स्वीकार कर द्रव्य दंड।
मुक्त कर सब जन को, तुरंत लौटूँ ससैन्य॥३६२॥
आत्मशक्ति जो व्याघ्र को नत करे मृग सम्मुख।
प्रतीत हो उस वीर को भी यह अपूर्व चमत्कार॥३६३॥
उत्साह भीना साधु वीर मुख की ओर देखत।
पर वीर बना था चिंता, उद्विग्नता की मूरत॥३६४॥
यह अविश्रांत। शेष सब गए गृह में करने विश्राम।
सुधी साधु ने किया उसके वर्तन का सरल अनुमान॥३६५॥
पुत्र माधव! आ बाहर तो रसवत्सलता जिसमें।
रसमसा हो झरे ऐसी हाँक मधुर दे मुनिवर॥३६६॥
हाथ पकड़कर साधु माधव को बाहर ले आया।
गोरे ने उससे कहा, 'स्वामिन् क्षमस्व मुझे॥३६७॥
मेघ जल बिना जैसे, कोशागार धन बिना।
दंडशक्ति बिना तैसे क्षमादान विडंबना॥३६८॥
आपके मन में सत्य ही अनुपात हो।
अब से सुहृदों को मेरे ना दे कोई कष्ट॥३६९॥
निश्चिंत रहें। बुलाएँ निज कांता तनय को।
जो कहें वह सब देने पापदंड सिद्ध मैं॥३७०॥
कुछ न कहा माधव ने वह वीर चुप रहा।
तथापि उल्लसित साधु हाँक दे, 'आ बेटी चल'॥३७१॥
तुम तो हो वधु। देह दंड योग्य को भी।
अनुताप से अधिक ना देते दंड सुधी॥३७२॥
आप दोनों भी मुझे कर दें क्षमा।
घर चलो अपने, मैं स्वयं पहुँचाऊँगा तुम्हें॥३७३॥

गोरे का वचन सुन वीर से सहा न गया।
निज मौन तोड़कर बोले अनुरोध से सत्वर॥३७४॥
साधो! हुआ अब तक जो सो हुआ पर।
रात्रि में इन्हें अकेले न जाने दूँ इसके संग॥३७५॥
शब्दों तथा आवेश से उसके जाना गोरे ने।
इन्हें भगाकर मुक्त करने का काम किया इसी ने॥३७६॥
अत्याग्रह से भविष्य कार्य ही बिगड़ेगा जान।
उसने वीर का तुरंत किया समर्थन॥३७७॥
किया बहु वार चरण वंदन प्रशंसा की बार-बार।
विदा हुआ मठ से गोरा वांछित देखभाल कर॥३७८॥
साथी को निज एक दो में से वीर ने सत्वर।
निगरानी स्तव गोरे की भेजा सोचकर॥३७९॥
सतर्क करने साधु को बोला, अजी महा धूर्त चर यह।
अंतुनी नहीं! पर है उसका सैनिक अहा!!३८०॥
मिथ्या नाम से मिथ्या अधिकार लिये कपटी ने।
कैसा अनुताप! कैसी दया! छला तुम्हें पापी ने॥३८१॥
'मत कर संदेह वीर, देखने में वह भला।
सेनापति-सैनिक का एक नाम न हो सकता भला॥३८२॥
छलकर निर्धन गोसाईं को मिले क्या उसे।
वंचना ना! जो कहा उसने सरल दया भाव से॥३८३॥
साधु की मोहिनी स्वर्ग तुल्य रसभीनी-सी।
दिखा रहा वीर श्रेष्ठ माधव को सच्चाई कठोर-सी॥३८४॥
अंत में दुविधा में फँसा माधव ने कहा साधु से।
'हे विप्र! उपकार तुम्हारे अवर्णित है एक ही मुख से'॥३८५॥
हे वीर श्रेष्ठ, कौन आप? आए कहाँ से वा कैसे?
पूर्व-पुण्य ही मेरा रक्षार्थ आया आपके रूप में॥३८६॥
तथापि साधु के प्रेमभाव से परिवर्तन आया।
अंतुनी में पर मेरे संदेह से क्रोधित वह ना हो॥३८७॥
एतदर्थ आप जाएँ ग्राम शीघ्र ही कैसे कहाँ!
जिस-जिसका अनुमान किया उसे ढूँढ़ो वहाँ॥३८८॥
'साधु!' वीर बोले, छोड़े साथी रक्षा के लिए।
चला गतिविधियाँ रिपु की देखने के लिए॥३८९॥

उफ! भयंकर रात! अभागे बंदियों की घोर भयानक।
यंत्रणाएँ कचहरी में, कंपित हुआ सारा गाँव॥३९०॥
यातनाओं की वेदना हो असह्य उगलता अता-पता।
मुख से किसी के जो नाम निकला भय से झट सुनता॥३९१॥
भेजता अंतुनी दूत उस घर यथा रुचि।
खोजने माधव को वा पकड़ने स्वामी को॥३९२॥
माधव का सखा होने से पहले तदा।
दूकानवाले सेठ के घर पड़ा छापा॥३९३॥
'माधव यहाँ है?' पूछते घर में उसके घुसे।
की पिटाई सेठ की क्यों नहीं माधव यहाँ? ३९४॥
मैं क्या जानूँ ठौर ठिकाना उसका कहा बिलखते सेठ ने।
बता, क्या देखना है तुम्हें निज पुत्री को नग्न॥३९५॥
भौंकते हुए वह गोरा झपटे उस अबला पर।
घसीटकर उसे गिराया सम्मुख पिता के धरती पर॥३९६॥
तीन सैनिक ही वहाँ! हाय रोका न गया उन्हें।
भरे-पूरे गाँव से एक भी नरवीर न आया सामने॥३९७॥
नेत्र भींचे पिता ने! कन्या अधमरी-सी पड़ी।
वह घोर रात भी न देख सकी दानवों की दानवता॥३९८॥
विष वमन कर लौटता सर्प बिल में जैसे।
रिक्तवीर्य तीनों दानव तत्पल निकले वैसे॥३९९॥
पागल कुत्ता काटे कितनों को गिनती कौन करे।
दावानल से जंगल जले, न केवल वृक्ष ही चार॥४००॥
यह आतंक देख वह वीर न बढ़ा आगे-आगे।
रोककर पग भागा उस बँधे अश्वतरु की ओर॥
आतंक देख वह वीर ने बढ़ते पग रोककर।
भागा झट से उस बँधे अश्वतरू की ओर॥४०१॥
बँधे अश्व को खोलकर साथियों सह सत्वर।
वायुवेग से मठ आते ही चपलता से कूदकर॥४०२॥
माधव से बोला 'धोखा! अश्व सज्ज उठो-उठो।
पल भी व्यर्थ गँवाया तो समझो श्मशान मठ को॥४०३॥
संत तो संत ही हँसकर बोला, 'धीर' वीर कहे तब।'
शांत भाव आपका रिपु क्रूरता से अधिक संकटमय॥४०४॥

चलना हो तो चलें मैं तो चला अन्यथा।
भोलेपन से आपके कहीं गाँव जले सर्वथा॥४०५॥
माँ-बहनों पर अत्याचार अपरहण करते ये उद्दंड।
भेडिए ये क्या चिंता पुराणों की बलदंड॥४०६॥
बिना किए हाँ-ना, तुरंत बिना सोचे बिना समय गँवाते।
उठाकर पुत्र को रमामाधव झट से खड़े होते॥४०७॥
तीनों को अश्वों पर बैठाने में जुट गए साथी।
वीराग्रणी वह कर चरण-वंदन साधु का बोला॥४०८॥
दया करें साधुजी, चलें आप भी मेरे साथ।
चलें स्वराज्य में वहाँ आज भी धर्म सुरक्षित॥४०९॥
'स्वराज्य वही है जो न बँधे दिक्काल की सीमा में।
न भोग सकते स्वराज्य दिशा काल के बंधन में॥४१०॥
अपने प्रयोगार्थ छत्रपति को दिए क्षेत्र यहाँ-वहाँ।
प्रभु ने हमें अधिकार-पत्र से दिया सारा जहाँ॥४११॥
मोहजाल में उसके पुनः फँसे मन अपना ना फँसे।
भय से इस वीर ने भाषण पूरा ना सुना॥४१२॥
साथी की नियुक्ति कर देखें होता क्या है आगे।
पूर्व सज्ज अश्वों पर बैठ वह वहाँ से भागे॥४१३॥
तीसरा वीर जो खड़ा वहाँ था, अब साधु से बोले।
कृपा अब एक करें मुनिवर इस घोर संकटकाले॥४१४॥
प्रश्न यह ना किसी एक विप्र का न, एक ना।
कुटुंब रक्षण का भी प्रभु, विचार मन में करो ना॥४१५॥
जिस कार्य में श्री रामचंद्र, श्री रामदास शिरोमणि।
इन विरागियों का मन अनुरक्त इसमें जानि॥४१६॥
धर्म संस्थापना वही, वही पाप विनाशाय।
रण में खड़ा डटा महाराष्ट्र पूरे भारततारणाय॥४१७॥
उस कार्य संपन्नार्थ रामचंद्र प्रभु की तलवार।
वीर शिवाजी से आई उसे बाजीराव के थामे कर॥४१८॥
गोमांतक में देखो पाखलों ने हिंदू को कैसे सताया।
धर्मकार्य को भी महापाप समझा दंडनीया॥४१९॥
अजी, मंदिर परशुराम का ही नहीं, जन में।
खंडित की देवताओं की पूजा घर-घर में॥४२०॥

हैं बालक उपनयन संस्कार बिन, युवतियाँ विवाह-बिन।
सारी प्रजा संस्कार हीना, कैसी हुई पौरुष हीन॥४२१॥
ध्वस्त देश, नष्ट ध्वज, अस्त धर्म यश हो।
पस्त राज्य-राष्ट्र, अब क्या जाने को हो॥४२२॥
राज्य पोर्तुगीजों के प्रदेश था जितना जिसे।
गोमांतक संज्ञा थी जहाँ ना धर्म ना दया बसे॥४२३॥
हिंदूमात्र वहाँ की जनता मिलकर निकल पड़ी।
की अनिंद्य धर्म यश प्रार्थना यशवंत बाजी से॥४२४॥
शास्त्री, पंडित, देसाई, देशमुख, संत-मुनि प्रेरित।
म्लेच्छ विनाशार्थ जो मुनिवर आए निमंत्रित॥४२५॥
सहयोग से उनके महाराष्ट्र वीर-राष्ट्र विमोचनाय।
उठाकर खड्ग यहाँ सर्वत्र जूझ रहे नरवर॥४२६॥
दे सहयोग उन्हें, जो प्रतिशोध करे शत्रु का।
प्रोत्साहित करने उन्हें समय है ऐसे साहस का॥४२७॥
ऐसी गुप्तचर सेना नाना रूपेण प्रेषिता यहाँ पर।
लाल बाग डोलने लगे निदर्शन प्रदर्शन कर॥४२८॥
सब षड्यंत्र का सूत्रधार है देसाई अंताजी।
जो स्वदेश स्वधर्म की फहराए ध्वजा जी॥४२९॥
जो माने अपने ही धर्म को सत्य केवल।
जो-जो है विरोध में उसके, है पाखंड केवल॥४३०॥
हिंदू धर्म को जब निषिद्ध रिपु ने माना।
तब बोले अंताजी कर्तव्य मेरा स्वदेशी करना॥४३१॥
स्वधर्म प्रेम उसका, थी वीरता उसकी पर।
रिपु भागे पकड़ने उसे घोर अपराध समझकर॥४३२॥
हे यज्ञप्रिय। अदृश्य करेंगे तेरी इच्छापूर्ति।
धर्मशासन यज्ञ में चढ़ाएँगे तेरी आहुति॥४३३॥
विपुल संपदा वंशीय पदाधिकार घरबार।
नेता धर्मशासक बोले उसका सबकुछ लूटकर॥४३४॥
मायाबल से महाराष्ट्र में उठाकर तलवार वीर।
अंताजी कंपा रहा रिपु को बनकर कलिकाल॥४३५॥
उस गुप्तचर सेना में हम तीनों गुप्त रूप से।
टोह लेते पीछा करते अंतुनीय का चुपके से॥४३६॥

भार्गव क्षेत्र कोंकण में स्वधर्म रक्षक बनकर कैसे।
भार्गव भक्त ब्रह्मेंद्र खड़े रहे पालनहार जैसे॥४३७॥
गोमांतक में आप भी स्वधर्म धुरीण बने वैसे।
विश्वास करे हिंदू मात्र जन उत्कट आशा से॥४३८॥
बल पर उस आशा से हम आए आप के शरण में।
धर्म-धुरंधर आप ही जैसे गति दें स्वधर्म कार्य में॥४३९॥
भयभीत हूँ मैं कि भोर होते-न-होते ही।
सेना अंतुनिया की घेर लेगी मठ को झट से ही॥४४०॥
माधव को यहाँ न देखकर तुम्हें देंगे कष्ट ऐसे।
कहूँगा वह राम कहानी फिर कभी विस्तार से॥४४१॥
रिपु न जाने गया कौन किस-किस दिशा में जब तक।
ढूँढ़ेंगे वे दुष्ट उन्हें यहाँ-वहाँ ग्राम के तब तक॥४४२॥
संधी में माधव को सुरक्षित स्थान पहुँचाकर।
ग्रामरक्षार्थ आएँगे लौटकर ससैन्य वीर सत्वर॥४४३॥
कष्ट कैसा! आए कोई भी यहाँ मुझे देखने।
सिद्ध है शिवशंभु सदा रक्षा जो मेरी करने॥४४४॥
न छूएगा अनृत यहाँ, ना ही भय किसी से।
बोलूँगा सत्य-ही-सत्य जो देखा निज नेत्रों से॥४४५॥
चौंका साथी बोला,. 'मुनिवर! न कर पाया आप से।
मनोगत अपना स्पष्ट जो मेरे हृदय में बसे॥४४६॥
मद्यपी को मद्य, कसाई को गोदान देना उचित।
पर हिंसकों को सौंपना सज्जन हो कदापि अनुचित'॥४४७॥
रिपु आने पर निर्भयता से उससे है कहना।
ज्ञात नहीं हमें बंधु! माधव का ठौर-ठिकाना॥४४८॥
कब से हुआ असत्य वचन कर्तव्य अहा!
समझ लेना मन में पुत्र इन शब्दों का मेल कहाँ॥४४९॥
असत्य-असत्य ही वत्स! सत्यार्थ मरणं वरम्।
न ही सत्यात्परो धर्मः नानृतात्पातकं परम्॥४५०॥
पुण्यता सत्य की न शब्दों पर निर्भर हेतु पर।
क्यों कहते हैं असत्य वचन 'पुत्र' मुझे बोलकर॥४५१॥
'क्षमा करो भूल पर मेरी' 'ना मुनींद्र वह भूल नहीं।
है सत्य का शुद्ध बुद्धि पर है जड़ शब्दों पर नहीं'॥४५२॥

शुद्ध बुद्ध है कौन, हम सकल हैं जानते।
आत्महेतोः पदार्थे वा ये मृषा न वदन्ति ते॥४५३॥
न केवल सुहाग रमा का न करुण कहानी बालक की।
अपितु मुक्ति इस पल में शतपीड़ित जीवों की॥४५४॥
निर्भर है साधो! तव जिह्वाग्रे कम-से-कम कृपा करो।
बहुजन हिताय। बहुजन सुखाय, मौनव्रत धरो॥४५५॥
पर पीड़ित जीवों के मोचनार्थ हे मानव!
सत्यं वदेति वेदाज्ञा। नच मौनं चरेति वा॥४५६॥
'यही है यही है! अपने खड्ग से उसे दिखाया।
चिरमुक्त द्वार से वह गोरा गरजत आया॥४५७॥
तत्काल कुछ सैनिकों ने मुनि को पकड़ लिया।
शेष सशस्त्र सेना ने उस मठ को घेर लिया॥४५८॥
वीर को देखकर 'कौन हो तुम' पूछा होकर लाल-पीला॥
गरजा-लरजा अंतुनी 'पकड़ो इसे भी सत्वर'॥४५९॥
पीकर लहू का घूँट साथी ने कहा।
'साधारण यात्री हूँ मैं तो प्रभु! अहा॥४६०॥
'क्यों साधो! सत्य है यह? जी, अंतु इस मठ में।
हम तुम सब यात्री, कौन है स्थायी इस जगत् में॥४६१॥
'कहाँ माधव?' 'नहीं यहाँ' कहा मुनी ने ऐसा।
आपा खोकर गुप्तचर गोरा बढ़ा आगे संतप्त-सा॥४६२॥
इधर! उधर चलो घुसो तोड़ो, पकड़ो यहाँ।
चप्पा-चप्पा छाना मठ का पर माधव गया कहाँ॥४६३॥
साथी के मन में खिली आशा पुनः! धन्य! कहा उसने।
वाक्सत्य साधा कैसे घात न किया मुनी ने॥४६४॥
साधारण साधु भी जगत् में असत्य ना बोले।
योग्य आप तो महान् हैं जैसे शिव के आगे नंदी डोले॥४६५॥
'सत्य कहो' 'अंतु, सत्य ही कहा मैंने असत्य नहीं।
ईशोपासक सत्य वचनी को असत्य कभी भाता नहीं॥४६६॥
'था माधव यहाँ?' हाँ-हाँ' और साथ मैं कौन जी?
'भार्या पुत्र साथ में' 'कौन लाया उन्हें यहाँ जो'॥४६७॥
'तीनो जब! जिनमें से यह एक बोले मुनिवर।
बिना पूछे ही अंतुनी ने निर्देशित किया गया वीर॥४६८॥

'अच्छा! अच्छा! सत्य ही तुम शिवभक्तः! कहो आगे।
बताओ टोली वह कहाँ छिपी है भागे-भागे॥४६९॥
'जानत नाही!' साधुवचन निकला सत्वर।
जो पुनः जगाएँ आशा वीर के मन में झरझर॥४७०॥
'सत्य ही कैसे होगा ज्ञात' ठीक! तुम्हें जब से।
छोड़कर गया यहाँ से' गोरा चर पूछे उससे॥४७१॥
'तब क्या कहा किसने, गया कौन, कैसे, कहाँ?'
जानत तुम भी सार सब धर्म का सत्यमेव है जहाँ॥४७२॥
महात्मा ने तब मानो पुस्तक विवरण पढ़ा जैसे।
कथन किया बड़ी सरलता से समग्र वृत्तांत ऐसे॥४७३॥
क्या-क्या कहा वीर ने, कैसे गया गाँव में आया कैसे?
सब गए कहाँ कैसे, कब कही पूरी कथा ऐसे॥४७४॥
चबाया होंठ क्रोध से वीर ने, लहू बहने लगा।
शंकित मन साधु को अंतुनी का चर समझने लगा॥४७५॥
गौर चर। ना साधु! साथी अंतुनी समझा जिसे।
हिंदुओं के षड्यंत्र का नायक समझा अंतुनी ने उसे॥४७६॥
पंत अंताजी का नाम साधु कथन में आना।
भय से उछला अंतुनी जैसे बिच्छू ने डस लिया॥४७७॥
वीर का क्रोध देखकर डाँटा उसे, 'बोलो, बोलो'।
अपने प्राणप्रिय हो तो अंताजी का पता बोलो॥४७८॥
मैं एक यात्री स्वामी, न मैंने पी भंग शिवभक्ति की।
ज्ञात नहीं मुझे, ना नंदी सम सेवा की शिव की॥४७९॥
गोरे चर ने वीर साथी को झट तलवार भोंकी।
तेजी से रोका अंतुनी ने 'अनुचित है तेरा वार'॥४८०॥
धर्मशासन से ही दंड ना ही किसी अन्य से।
कलंकित ना करे ईसा के यश को अपने क्रोध से॥४८१॥
सशस्त्र सिपाही गोरे पीछे करे सत्वर।
साधु निर्दिष्ट वीर की दिशा भेजकर॥४८२॥
क्वचित् मठ में किसी ना छिपे कोई गुप्तागार में।
उस प्राचीन मठ को धकेला अग्नि ज्वाला के मुख में॥४८३॥
साधु लहू से लथपथ, बंदी साथी के संग पथ पर।
खड़ा, सशस्त्र सेना खड़ी सामने मठ को मशाल कर॥४८४॥

ज्वाला संत्रस्त सर्प निकला मठ से आया पथ पर।
जो सामने आया उस पैर को डसा फुफकारकर॥४८५॥
आया पैर जो आगे वह साधु का था! लगाई डस।
साधु के तन को विष से आग, जैसे मठ को गोरे ने॥४८६॥
हँसा गोरा चर! कैसा लगा विष दूध का? मधुर?
'शिशु भी तो काटे माँ का स्तन' बोला साधु मुसकराकर॥४८७॥
'विषलहरियों सी अग्नि ज्वालाएँ अजी हाय रे!
हरसिंगार पर बैठे पंछी भुने गए अरेरे॥४८८॥
सशस्त्र सवार गोरों के निकले सनसनाते।
दौड़ लगाते वीर पथ से भिड़ गए देखते-देखते॥४८९॥
घायल माधव और अनभ्यस्त रमा को लेते।
वीराग्रणी वे तेजी से मार्ग में कैसे चलते? ४९०॥
वायुवेग से रिपु पीठ पीछे आते समझा मन में।
वीर अब दुर्घट है द्विजरक्षण इस पल में॥४९१॥
एतदर्थ दी साथी को जो आज्ञा आगे बढ़ने की।
अपना जो होगा सो होगा वेला नहीं चिंता करने की॥४९२॥
मिलेगा जो प्रथम दल तुम्हें मराठों का।
संदेश मेरा दो उसे जितना शीघ्र हो आने का॥४९३॥
आज यहाँ से अंतुनी को जीवित न जाने दें।
मिलने से किसी भारी सहायता, पूर्व ही उसे मार दें॥४९४॥
पल-पल जितना विलंब करोगे इसपर क्या पाओगे।
उतना ही अधिक स्त्री बालवृद्धों की हत्या करवाओगे॥४९५॥
एड़ लगाते ही साथी ने अश्व सरपट लगा दौड़ने।
वीर त्यज राजपथ अश्व को अन्य मार्ग से लगा भगाने॥४९६॥
उसके घोड़े की टापों की ध्वनि से रिपुस्वार भी मुड़ते।
अँधेरे का लाभ उठाकर वीर बच निकला उड़ते-उड़ते॥४९७॥
तीर जो रिपु का अश्व के रमा के घोड़े में घुस गया।
उछला अश्व उसी पल रमा को धराशायी किया॥४९८॥
दुर्बलों की दशा ऐसी श्मशान बनी सारी धरा।
अँधेरे में बने तीर का निशाना घातक सिद्ध मुनिवरा॥४९९॥
वीर को तत्क्षणं न केवल हताशा ने घेर लिया।
फौं-फौं करते शत्रु-सवारों ने भी उसे घेर लिया॥५००॥

निश्चित थी हार तब बोला वीर नीर भरे नयना।
धीरज रखो, सज्जनो! मुझे है तुम्हारी सहायता करना॥५०१॥
इतने में शत्रु सेना ने मारते-मारते वीर को घेरा।
लड़ते-लड़ते शूर वीर पार निकला तोड़कर घेरा॥५०२॥
हाय! हाथ लगा विप्र! बिलखती रमा शिशु को लेकर।
अजी, कौन करे बखान जी उस दुःख का, भयंकर॥५०३॥
कभी डूबती शोकाकुल आँसुओं की बाढ़ में।
कभी बाढ़ के तट पर खड़ी ताकती बिंब अपना उसमें॥५०४॥
अँसुवन में चित्र पीड़ा का जो हुआ अंकित।
स्वयं ताकती रही वह दुखियारी उसे हो भयकंपित॥५०५॥
हम चलीं पिया के संग प्रमुदित मन।
जिस सवेरे बरसों से रवि भी सुप्रसन्न॥५०६॥
जिस प्रातः काले रक्षार्थ प्रिय पुत्र तेरे।
प्रभु तेरे दया स्मरण समय भर आए नेत्र मेरे॥५०७॥
बन गया वह प्रातःकाल कैसे सायंकाल में।
निकलना भी हो गया कैसा ऐसे आने में॥५०८॥
तब कृपा स्मरते हुए सुसिद्ध स्वाहाकार।
क्यों क्रूरता दिखाते हैं निष्पापों के हाहाकार॥५०९॥
चुप कर, रमा चुप कर। सह लो दुःख जितने सहे।
पर मत बहाओ आज सारे आँसू नए-नए॥५१०॥
दुःख के क्षितिज पर जो लगे सीमा परा।
वही है अन्य दुःखों की देखा आगे सीमा परा॥४११॥
बहाओगी ऐसे सारे आँसुओं को यदि अभी।
कैसे बुझाओगी तुम दुःखों के दावानल सभी॥५१२॥
पर धीरज ना खोना, बुझे दावानल कभी।
वर्षा न हो घन बादलों के ढह गए फिर भी॥५१३॥
'बुझेगा ही' न कहा किसी ने पर बुझेगा बस।
अंधकार में उस वीर को पथ दिखाए यही एक आस॥५१४॥
निकालकर पंथ जो निकला पंक्ति शत्रु की तोड़कर।
अन्य मार्ग से घुसा गाँव में वीर पीछे मुड़कर॥५१५।
थोड़ी सी मदद मिले। बाहर से कुमक आए जब तक।
ग्राम में मिली तो भी रोकूँ बाह्य सहाय न आए तब तक॥५१६॥

किससे पूछूँ? है एक मल्ल युवा उसे जो।
हुआ इस गाँव का यात्रा में जानत मैं जिसे जो॥५१७॥
है आगे अखाड़ा शेष है रात अभी।
जन संमत है आज अखाड़े में कैसे भी॥५१८॥
आते ही वीर के चंचल हुआ तनिक जन-मन।
युवा मल्ल ने पहचाना वीर को बोला मुदित मन॥५१९॥
आओ! पर कैसे साहस किया घोर रात में?
लगी आग इस गाँव को! मत रहें इस गाँव में॥५२०॥
उस दिन की घटना पर उन सीधे गाँव वालों में।
परिवर्तन हुए कितने अब आया रूप अंतिम उसमें॥५२१॥
श्रवण करे वीर कौतुक से कि अंतुनी निंदा करे।
हिंदुता की दे यंत्रणा विप्रों को, क्रुद्ध हुए शिवशंकर॥५२२॥
कोप से सृष्टि कंपित, सूरज छिपा भय के मारे।
ब्रह्मा निकला, निकला विष्णु, शिव के संग निकले सारे॥५२३॥
घोर अंधकार में अचानक अंतुनी था शून्य चेतन।
देखते-देखते तीनों को लेकर हो गए त्रिमूर्ति हिरन॥५२४॥
'मित्रो!' हँसकर वीर सखेद 'यदि यह सत्य है।
इससे लज्जास्पद बात बोलो हो सकती क्या है?' ५२५॥
क्या हाथ हमरे हैं बस इसके लिए कि वीरगाथाएँ।
देवताओं की गाते-गाते मूँछों पर ताव देने के लिए॥५२६॥
धिक्कार हो पौरुष का उस जिसके लिए भूतल पर।
देवताओं को उनकी रक्षार्थ आना पड़े बार-बार॥५२७॥
धिक्कार हो उन मल्लों का, अखाड़े में जिनके।
बिना पवनपुत्र के जोड़ी अंतुनी को न मिल सके॥५२८॥
ऊँचे नस्ल का घोड़ा चिढ़ता है चाबुक की फटकार से।
युवा मल्ल ने आपा खोया वीर के उपहास से॥५२९॥
चलो इसी पल आए हैं हम इसके लिए यहाँ।
लगा रहा हूँ प्राणों की बाजी अपने, करें रिपु की हार यहाँ॥५३०॥
हुए कौल-करार सत्वर आगे श्री हनुमान् के।
जब तक मराठा न आवे तब तक म्लेच्छ को रोकें॥५३१॥
अस्त हुई वह भीषण रात्रि उससे भी अति।
घोर दिन चढ़ा जैसे कोश से सुतीक्ष्ण असि॥५३२॥

गाँव के सारे जनों को खड़ा किया हाँककर।
चबूतरे के सामने, तब भक्त अंतुनी चढ़ा ऊपर॥५३३॥
घुटने टेके, नेत्र बंद गप-शप विनम्र होकर।
क्रूसस्थ उस दयाशील यीशु की प्रतिमा को प्रणाम कर॥५३४॥
और बुलंद स्वर से बोला ताकि सुन सके सब जन।
प्रभो! न्याय्य मति दो मुझे जब ग्रहण किया न्यायासन॥५३५॥
वही आसन जो उसका न्यायासन होता।
आरोपियों में से और द्विज लाया जाता॥५३६॥
ब्रह्मा विष्णु महेश के भक्त हुए आश्चर्य से खदंग कैसे।
देवताओं से विप्र खींचकर लाया ऐसे॥५३७॥
औ' सैनिक बाला के साथ उस अबला को ले आए।
दुःखद दृश्य से सभी जन के नेत्र भर आए॥५३८॥
त्रस्त सेठ, क्रुद्ध मास्टर, आचार्य दीन-हीन।
साधु नयन पटेल, उद्दंड साथी साधु सत्य वचन॥५३९॥
सभी को एक ही रस्से में बाँधे पशु सम।
प्रस्तुत किया गया सत्वर अंतुनी को निर्मम॥५४०॥
धर्मशासन संस्था का धर्माध्यक्ष उसी क्षण।
बाइबल के पृष्ठों में देखे धर्माधर्म पुनः-पुनः॥५४१॥
और एकाग्र निष्ठा से अंत में अंतुनी निश्चयी।
संबोधित कर माधव को बोले कठोर वाणी॥५४२॥
जब कि माधव! तूने हेतुतः आज्ञा भंग किया।
पोपाज्ञा को ईसाई धर्म औ' उस प्रभु को ठुकराया॥५४३॥
किया दैवी आज्ञा भंग औ' शैतान की आज्ञा-पालन।
दिन-रात किया तूने रे मूर्ख! पाखंड का आचरण॥५४४॥
हिंदुओं के असत्य धर्म के साथ निंद्य कर्म निर्भयता से।
जैसे तूने नारकीय स्नान किया क्रूरता से॥५४५॥
एतदर्थ माधव! अग्निकांड प्रायश्चित्त है उचित।
ते हितार्थ तुझे देना है न्यायप्राप्त निश्चित॥५४६॥
औंर पुत्र तव! देखो वह भी है नायक इस नाटक का।
तेरे भ्रष्ट संस्कार वश—आज है वह बालक*॥५४७॥

---

* यद्यपि तेरा पुत्र आज छोटा बालक है, तो भी बड़ा होकर यह भी इस भ्रष्ट धर्म का केंद्र बनेगा। इसलिए इसे भी आग में जीवित जलाने का दंड देना न्याययुक्त ही है।

रमे! तथापि तुम्हें नहीं दिया जाता अग्निदाह दंड।
यद्यपि साथ दिया तूने पति के इस कार्य में पाखंड॥५४८॥
प्रथा[१०] हिंदुओं के विवाह की होती है साथ-साथ रहने की।
मात्र ईसाई विधि करे एकात्मता नरनारी की॥५४९॥
हे पापिनी! अवश्य तूने किया है भाग जाने का पाप।
पर मेरे मन में जरा भी नहीं प्रतिशोध-संताप॥५५०॥
आँसू रमा के सूख गए अचानक और निर्भयता से।
खड़ी रही तनकर सीधी मुक्त हुई भय-ताप से॥५५१॥
उसके मुख पर नया रम्य भीषण हास्य करे नर्तन।
बोलने लगी गरिमा बाला यंत्र-चलित प्रतिमा समान॥५५२॥
'यदि सत्य ही मानी तेरी राय धर्मात्मन् अंतुनी।
कि सारी हिंदू वधुएँ वेश्या हैं, न ही विवाहिता मानिनी॥५५३॥
तथापि मातृत्व का अधिकार तो है हमारा।
नहीं दिया जाता किसी को यह मानवी संस्कारा॥५५४॥
पशु में भी होता है मातृत्व-भावन प्रकृति से ही।
तब इस हिंदू जाति का इतना स्तर तो मानोगे ही॥५५५॥
योग्य ना हो पत्नीपदा हिंदू-नारियाँ, पर माँ का ह्रदय उनमें।
जिनके ह्रदय में हो ममता दुग्धमधु वत्सलता में॥५५६॥
तूने भी किया अंतुनी। जीवन का वह सार मधुर।
एक बार प्राशन किया। किसी की छाती से सटकर॥५५७॥
स्मरण करो उस दूध का, स्मरो वह जननी स्तन।
जब दाँत भी नहीं थे तेरे मुँह में जिसने पिलाया पुनः॥५५८॥
क्यों देख रहे हो ऐसे! नहीं स्मरण पूछो जाकर उससे।
अपनी नस-नस में बहनेवाली लहू की बूँद-बूँद से॥५५९॥
अंतुनी, तूने यदि अपनी जीवित माँ का दूध पिया।
माँ का वह दूध जीने दे जो लहू के अणु-अणु में समाया॥५६०॥
अनुभव कर उस तूफान का मेरे मातृ-ह्रदय में उमड़ा।
उस तूफान से क्रूरता अपने ह्रदय की फेंक उखाड़॥५६१॥
अरे अल्हड़ बालकपन में माँ की गोद में सोए हुए।
तुझे वहाँ से अचानक खींचकर घसीटते हुए॥५६२॥
तुम्हें फेंका होता किसी ने आग में फूल जैसा।
बता सकते हो तुम्हारी माता का हाल कैसा?॥५६३॥

माता वह जिस ने अंतुनी तुम्हें जनम दिया।
दूध उसी का बनकर लहू नस-नस में कह दिया॥५६४॥
जलाया वृक्ष जिस संगम से खिले फूल क्या जी लेती?
फूल के लिए सूखती शाखा फिर भी जी लेती॥५६५॥
न्याय से देना है जीवनदान मुझे हे अंतुनी।
दे पति को जीवनदान और फूल से पुत्र को भी अंतुनी॥५६६॥
वध से उनके मेरा वध करोगे सहस्रदा।
जलाएगी अग्नि उन्हें मुझे जलाएगी आपदा॥५६७॥
न्यायालय में अंतुनी जैसा नाप-तोलकर न्याय।
इस लोक में वैसा नयज्ञ क्वचित् जो दे निर्णय॥५६८॥
एक बार जिन नियमों को नयदंडक मान लिया।
पुनः न भय लोभ से उसने उसका भंग किया॥५६९॥
धर्मशासन में हो गए नाना सुन यज्ञ अनेक।
पर मिला होगा ऐसा धर्माध्यक्ष एक-ही-एक॥५७०॥
ख्यात[११] पीटर सम कभी न पकड़ता अंतुनी।
चुन-चुनकर सज्जनों को 'पकड़े जाते हैं वे' तुरंत॥५७१॥
किंवा न्यायासन पर गाढ़ी निद्रा सोकर क्वचित् उठकर।
जला दो सबको' बोले तनिक नेत्र खोलकर॥५७२॥
कभी न था अंतुनी इस दूजे अध्यक्ष के समान।
हाथ में न्याय-दंड पकड़ा न निद्रा में आरोपण॥५७३॥
धर्मभीरु अहा! उल्टा यह अपने नयन बाँधता।
बाइबल पर अपनी सारी तैल दृष्टि उँडेलता॥५७४॥
रमा रुक रही थी इतने में पड़ गई उसकी नजर।
बाइबल के देवदूत के मधुर वचनों पर॥५७५॥
पूर्व आचार्यों ने जैसा स्मरण है दिया आदेश।
नेत्रार्थ नेत्र, दाँत के बदले दाँत, जैसे को तैसा॥५७६॥
पर कहता हूँ मैं प्रतिशोध तुम्हें उचित नहीं।
क्षमा करना उचित दुर्जन को दंड देना उचित नहीं॥५७७॥
नेत्र संकुचित कर सूक्ष्म जंतु देखे जैसे पल भर।
धर्मात्मा अंतुनी बैठे शून्यदृष्टि दृष्टि गाड़कर॥५७८॥
सूक्ष्म होती है पहले ही धर्माधर्म विचारणा।
पर सूक्ष्मतरा ऐसी ही. धर्म-धर्म विचारणा॥५७९॥

एक नेत्र पापी हो तो फेंको उसे उखाड़कर।
उस एक नेत्रार्थ तू आत्मघात मत कर॥५८०॥
'क्षमा कर' इन द्वयुक्ति में उचित क्या समझे हम।
दो नेत्रों में से एक को दंड तो दूजा हो क्षम्य॥५८१॥
ऐसा ही कुछ विचार उसके मन में चल रहा था।
धर्माध्यक्ष संकेत रमा को कर ठोस स्वर बोला था॥५८२॥
न्याय के अनुसार देवी वधार्ह नहीं निश्चित तुम।
आदेश प्रभु का है अपराधी को करे क्षमा॥५८३॥
दे हाथ में दया न्याय की तलवार।
धर्मशासन की यह सुप्रणाली पूर्वापार॥५८४॥
दे धन्यवाद तुम प्रभू की करुणा प्रति।
कारण यह कि वध्य दोनों में से एक बचे संप्रति॥५८५॥
पुत्र वा पति? बोलो सत्वर। उनमें से।
निज इच्छानुसार एक को खींचो मृत्युमुख से॥५८६॥
प्रच्छन्न रूप से खिलवाड़ क्यों किया मुझसे राक्षसी।
यह तो प्रतिशोध की गंभीर नृशंसकता ऐसी॥५८७॥
क्या यह मेरे पातिव्रत्य की परीक्षा है?
या मेरी ममता का उड़ाया मखौल है॥५८८॥
शंकिता, लज्जिता, क्रुद्धा अतिमात्र अनिश्चिता।
रमा से 'बोलो जल्दी' ऐसे अंतुनी कहता॥५८९॥

भावार्थ : धर्म क्या और नेत्र क्या—इसका विचार तो वैसे ही सूक्ष्म रहता है उसी में ये दोनों बातें धर्मानुकूल न दिखने के कारण उनमें से एक को चुनना सूक्ष्म विचार का ही विषय था।

रमा से बोले, 'कहो जल्दी' अन्यता वधाज्ञा पर।
वध के दोनों के करता हूँ हस्ताक्षर॥५९०॥
अजी नहीं, नहीं बताती हूँ, सुनिये तो सही!
शब्दों का अर्थ मैं ना समझ सकी मन में ही॥५९१॥
समझा अर्थ अब, समझ लिया। हाय समझ लिया।
देखो बोलती हूँ। हाय ईश्वर। धीरज अस्त हो गया॥५९२॥
भ्रांतावस्था में फूटे होश में होकर भी।
बरबस फूट पड़े रोकने का प्रयास करने पर भी॥५९३॥
'पुत्र! पुत्र! वद साध्वी! बचा लो पुत्र को अपने।
भ्रूण हत्या का घेर पाप न मत्थे मढ़ अपने॥५९४॥

अरी! देखा है हमने संसार, वह तो बाल अबोध।
आत्मा वै पुत्रनामांसि सखे न कर पुत्र घात॥५९५॥
आदेश माधव का 'पुत्र' 'शीघ्रता' का धाक अंतुनी।
रही घोर यह मानवी-अमानुष खींचातानी॥५९६॥
हृदय रमा का छलनी हुआ अकुलाई सी रही।
फिर भी धीरज का अणु-अणु बटोरती रही॥५९७॥
बोली, 'अजी, कहो पुत्र या पति स्वयं आप ही'।
धर्मात्मन्! तब अमानुषी न्यायधर्म का है असह॥५९८॥
दोनों वध्य हैं, वध्य हैं न्याय के अनुसार सही।
अधीर अंतुनी गरजा अवध्य दोनों में से कोई नहीं॥५९९॥
किंतु दोनों के वध से अवधार्ह तू भी मरेगी।
सो जिसका मोह तुझे है, उस एक को दया मिलेगी॥६००॥
तेरा मोह तू जाने, दया होगा तेरी याचना पर।
बोल शीघ्रता से कर दूँ इसी पल हस्ताक्षर॥६०१॥
ना, ना, लो मैं बोलूँ अभी तनिक दया कर।
मम दुखियारी पर देखती बौराई सी तितर-बितर॥६०२॥
पुत्र कहे साध्वी, मत डर किससे प्रिये।
तेरा पति माधव स्वयं कह रहा तुझे प्रिये॥६०३॥
लो हाय अजी 'पुत्र' शब्द बोलने गई।
पर कौन दबा रहा कंठ यही नासमझ पाई॥६०४॥
अकस्मात् हवन आलोक में चमचमाती।
वधु कौन है, जो वर के संग फेरे सात लगाती॥६०५॥
माधव मेरा फिर से नव तरुण बना अहा।
यह नव-वधु रमा मैं हृदय में पुत्र तब था कहाँ॥६०६॥
और कहने लगी 'पति' इतने में सहसा रतन में।
शिशु के प्रथम स्तन-पान कर दूध गूँजे मंजुल 'माँ-री' में॥६०७॥
किसी के कोमल हाथ नन्हे से बने कंठहार।
कानों में गूँजे मैया री! किसी की प्रथम कोमल गुहार॥६०८॥
अनन्यशरणा माते, दुधमुँहा बालक तेरी गोद का मैं।
तेरा बालक! हे माँ! ले लो अपने आँचल में॥६०९॥
फिर से हृदय में उठा 'पुत्र' शब्द गले तक आया।
पर रह गया कंठ में ही, फिर से किसी ने दबाया॥६१०॥

हवन प्रकाश में चमचमाती सप्तपदी रोष भरी।
कंठ दबाकर बोले, 'पुत्र कहाँ था तब बावरी'॥६११॥
पावन सेज जिस पर प्रियतम ने रतिदान किया।
जिस पर लज्जा का अंतिम छोर दूर हटाया॥६१२॥
अंग-प्रत्यंग एक-दूजे का अंतरंग एकरूप हुआ।
प्रियतम प्रिया को जिस पर उस रोज स्मरण हुआ॥६१३॥
बोलो तब कहाँ था पुत्र? सेज बरजोरी से पूछे।
बोलो, तब कहाँ था पुत्र? जब पति ने आँसू पोछे॥६१४॥
करा रहा था स्नान अँसुवन से, वेणी गूँथे प्रेम से।
बोल तेरा पुत्र कहाँ था जब पति बाल सँवारे तेरे॥६१५॥
नयनों में नीर भर आए, रुँध सा गया गला।
शब्द एक जिह्वा पर आता, तो दूजा मार्ग रोकता॥६१६॥
कौन सा कर तोड़ूँ बायाँ या दाहिना अहा।
कंठ पर करूँ वार तलवार के एक या अधिक महा॥६१७॥
गला घोंटकर मारूँ या खौलते तेल में डुबो दूँ।
विकल्पों से ऐसी दया बनी क्रूरता साक्षात्॥६१८॥
अजी, ऐसे अमानुष विकल्पों में से क्या चूने भला?
किंतु उपाय क्या है, कैसे बँधे धीरज भला॥६१९॥
नृशंसक हो, पर उस पर्याय में ही हे नृशंसक।
कैसा चयन? वह भी करेगी बालिका एक॥६२०॥
हाय! किसका गला काटूँ? पति का या पुत्र का?
किसके लहू को जल बनाकर करूँ प्रक्षालन॥६२१॥
इस कल्पना मात्र के उच्चारण से निकल रहे प्राण।
छाया मात्र से उसके चक्कर खाए हृदय, मन, नयन॥६२२॥
'हूँ बोल' स्वर अंतुनी का तन-मन कंपित कर।
भीत चक्कर से खींचता वह जागृति में भयंकर॥६२३॥
'हूँ बोल! इसी पल! देख है यह अंतिम अवसर।
कि दोनों के वध आज्ञा-पत्र पर करूँ मैं हस्ताक्षर॥६२४॥
पुत्र-पुत्र प्रिये बोले, वचन है विपरीत।
पर मौन रहना तो है उससे भी अनुचित॥६२५॥
पुत्र रहे जीवित साध्वी, जीवित रहे तब कांत की।
मम आत्मा ही पुत्र, तव आत्मा ही पुत्र सखी॥६२६॥

तप्त वालुका पर रखा तप्त तवा जैसा।
मरु-भूमि में भटकता फँसा प्राणी जैसा॥६२७॥
बढ़ाए पग आगे तो भस्म, जलाए रहे तो निश्चल।
तथापि स्वयं प्रेरित रमा अपने पग आगे ठेल॥६२८॥
अनुरोध माधव का उसे आगे-आगे ठेलता।
प्रतिध्वनित गई उसे 'पुत्र' शब्द निकलता॥६२९॥
बोलकर बाला वह अचानक गिर पड़ी ऐसी।
कुठार प्रहार से कटकर शिखा गिरे जैसी॥६३०॥
फूट पड़ा उसके साथ अब तक था दबाया।
आतंक से हृदय का हाहाकार उमड़ आया॥६३१॥
'मैया, मैया री' करते बालक अल्हड़ जग गया।
रख अपना कपोल उसके गाल पर उसे हिलाया॥६३२॥
मैया, चलो घर, बाबा के संग उठो ना।
पोंछे आँसू उसके आँचल को पुनः-पुनः॥६३३॥
प्रिय साध्वी, धीरज रखा जैसे दुःख समय में।
अब हर्ष में हताशा क्यों? उठो, लो पुत्र गोद में॥६३४॥
हो जन्मदिन बनता आज मृत्यु-दिन जिसका।
तुम्हारी धीरज साहबबाजी से हुआ पुनर्जन्म उसका॥६३५॥
लेकर, चूमकर तनय को छाती से लगा ले।
उठो सती, जाओ घर रक्षा वंश-दीप की कर ले॥६३६॥
अमृतवाणी सुनकर माधव की रमा ने होश सँभाला।
उठाया पुत्र को प्रेम-भाव से अपनी छाती से लगाया॥६३७॥
की एक ही शब्द-शब्द स्पष्ट पुनः-पुनः।
गरजा अंतुनी, ना घर कदापि ना॥६३८॥
ना घर रमा जा पाओगी, ना ही तव सुता।
मृत्युदंड माफ हुआ न कि दंड सर्वथा॥६३९॥
तुम और बालक तेरा शेष सारे बंदीजन।
बन गए कुसंस्कारी अंगभूत हर प्रकारेण॥६४०॥
पापक्षालनार्थ तुम सब को जाना है।
शरण ईसा की न अन्य कोई चारा है॥६४१॥
स्वीकारो भक्ति से, अन्यथा बल से अपने।
अजपाल कृपालु ले जाएगा झुंड में अपने॥६४२॥

आओगे श्रद्धा से तो मिले स्वतंत्रता।
आओगे जबरन तो सदा पाओगे दास्यता॥६४३॥
सुनिश्चित मेरे युक्ति-युक्त सुनिर्णया।
न बदले राजाज्ञा ना ही दुर्बल दया॥६४४॥
धिक्कार! उन भीत जन-वृंद में से स्वर उठा।
समझ न सका कोई कहाँ यह आवाज उठा॥६४५॥
धिक्! धिक्! गुलामों के बाजार में बेचने को।
न जलाकर जीवित रखा इन माँ-बेटे को॥६४६॥
क्रुद्ध भरी गर्जना उठने से किसी के स्वर से।
गरजा अंतुनी पर सहमा सा था भीतर से॥६४७॥
समझ गया वे शब्द न किसी दीन दुर्बल के।
था धिक्-धिक् भय विरहित किसी मन-शक्ति के॥६४८॥
घृणित उस स्वर को झट से कर।
अंतुनी गर्भित वाणी से बंदियों को संबोधित कर॥६४९॥
गवाही, समर्थन की और सभी प्रार्थनाएँ सुनकर।
मैंने व्यतीत की सारी रात निरंतर॥६५०॥
अंग-अंग विचार करके दिया निर्णय सभी का।
चलो सैनिको उठो, निबाह करके उस दंड का॥६५१॥
ठहरो फिर भी अपराधी करते हैं आरोप जो।
उन्हें न्याय निश्चित देने दंड-दंडक सजे॥६५२॥
नियम अपराध के तुम्हें हमें सब ही हैं समान।
दंडनीय है पापी चाहे हिंदू, ईसाई या मुसलमान॥६५३॥
जन हो। तो भी वह धर्माध्यक्ष पूर्ण गंभीरता।
के साथ देखकर लोकाकीर्ण ग्रामसभा से कहे॥६५४॥
सत्य धर्म कार्य निर्वाह में राजाज्ञा पालन करने में।
सैनिकों ने मेरे यदि किसी ने कर्तव्य निबाहने में॥६५५॥
ग्राम में गृह में किया अत्याचार यदि कभी।
धर्म नियम भंग करके घातपात किया कभी॥६५६॥
बताओ तुम अथवा अभिशप्त जन में से कोई।
चाहे कोई भी, जैसे तुम दंड्य वैसे सैनिक भई॥६५७॥
तथापि जो बंदियों में से प्रथम क्षण से ही सना।
क्रोध में तनकर देखे अंतुनी को पुनः-पुनः॥६५८॥

प्रत्येक के मन में मन के भाव प्रकटने की चाह।
पर जुटा न पाया साहस बोलने का आह॥६५९॥
बँधा हुआ चंचल अश्व हिनहिनाकर बार-बार।
मन में धुँधुआते आवेग को दे मार्ग चीरकर॥६६०॥
खाँसकर खँखारकर वा बलात् बार-बार॥
कुढ़न भीतर की अभिव्यक्त कर॥६६१॥
मिला अवसर आचार्य को जैसे ही सत्वर।
बंकिम स्मित से बोले—'हो कल्याण, अंतुनीवर॥६६२॥
पाखंड का भंडाफोड़ में पूर्ण हो जीवन तेरा।
ऐसा है आशीष पुत्र मुक्त ब्राह्मण का मेरा॥६६३॥
धन्य प्रसवे[१३] वह धन्या प्रसू[१४] अक्षत कन्यका।
धन्य सद्धर्म, ना वहाँ धर्म शासन[१५] धन्य क्यों॥६६४॥
वधः कार्यो न जीवानाम् 'येशूक्ती प्रथमा ऐसी।
एतदर्थ ही तुम जीव-हत्या नहीं जलाते जैसे॥६६५॥
'पारदार्यमकर्तव्यं' येशूक्ती[१६] का करते आदर।
बलात्कार नहीं पर विवश स्वयं वरण कुमारी विवश कर॥६६६॥
निषिद्धमपि चौर्यं च येशूक्ती सिद्ध करने में।
लूटपाट में तुमने छोड़ दी चोरी खटाई में॥६६७॥
'मा गृधो गर्दभं कस्य' उक्ति सत्य सिद्ध करने।
छोड़ा गर्दभ, घुड़सालों पर कब्जा, धाक उनपर जमाने॥६६८॥
'मा गृध[१७] कस्यचित् किंचित्' था आदेश ईसा का।
किंचित् छोड़कर तुमने निगला पूरा राज्य अन्यों का॥६६९॥
आज्ञाओं का बाइबल की पालन किया पूरा-पूरा।
चला इन सब पर मात करने धन्य अंतुनी नर वरा॥६७०॥
मत करो चर्चा बुराई की न्यायदंड धारण मत कर।
पालन इसका भी किया तुमने अन्याय दंड धारण कर॥६७१॥
धर्मशासक देंगे धन्यवाद तुम्हें शतधा।
रक्त स्नाता बलभ्रष्टा पथ में कुँवारी पाई विविधा॥६७२॥
पाखंड अश्वमेध का समाप्त करने इस पल में।
नरमेध नए अपने दिग्विजय लालसा में जन में॥६७३॥
नवाग्नि नरमेध की ले लो अपने आँचल में।
इस ब्राह्मण की आहुति अंतुनी लो जो याचक मैं॥६७४॥

तेरे धर्मप्रचार को रोका मैंने कैसे-कैसे।
इस प्रांत में तुमने खोलीं बहुशालाएँ जैसे-जैसे॥६७५॥
ना कभी स्वीकारी तेरी नौकरी तुझ से विवाद किया।
श्रीगणेश बिना कोई अक्षर सिखाने न दिया॥६७६॥
जन्म-दिन उत्सव में कल के हाथ ही था मेरा।
राशियाँ मेरे अपराधों की लगती नहीं पर्याप्त जरा॥६७७॥
अग्नि समर्पित करने धर्म के तो सुन अंतुनी।
प्रार्थना ईश्वर की करता हूँ प्रतिरात-प्रतिदिनी॥६७८॥
कि राज म्लेच्छों का जाए सत्वर विलय हो।
महाराष्ट्र धर्म की तलवार की सदा विजय हो॥६७९॥
इतने में भीड़ में से लोगों की उठी गर्जना धिक्कार की।
लोक कोन 'पकड़ो दौड़ो टूट पड़ो' शत्रु को मारने की॥६८०॥
सुनकर गर्जना उठ खड़ा अंतुनी बार-बार।
सेना उसकी सज्ज शस्त्र से रक्षार्थ घिर॥६८१॥
उस लोक कोन गर्जना से जोश भरा जन में।
शस्त्रों की चमक देख रोशनी में भय समाया मन में॥६८२॥
निकट ही वह साधु जिसे बाँधकर रखा अभी तक।
खड़ा था उदासीन हो तनिक बेचारा थका-थका॥६८३॥
थक गया क्योंकि कल उसे सर्पदंश भया।
वनस्पति बल से यद्यपि वध उसका किया॥६८४॥
शांतमूर्ति वह अब हुआ था किंचित् दुःखित-सा।
सुनकर जनगर्जना अब वह बोले कैसा॥६८५॥
'बंधो, गर्जन क्यों? कौन शत्रु? इस जगत् में अहा।
सब आत्माएँ एक जगत् में उसके बिना शत्रु कहाँ॥६८६॥
जा रहा अंतुनी बोलना बंद करने साधु का।
पर रुका रहा वैसे ही देखकर रुख उसका॥६८७॥
काम एषः क्रोध एषः रजोगुण समुद्भवः।
शत्रु है मानव का यह न अंतुनी म्लेच्छ महा॥६८८॥
अंतुनी बंधु हमरा। बुद्धि भ्रष्ट हो उसकी भी।
तनिक समझाओ उसे, क्या बैर से मिटता बैर कभी॥६८९॥
अनाज ही लूटा, तो भी दो उन्हें धन की माया।
जीतना है क्रोध उनका तो करो उन पर दया॥६९०॥

भ्रष्ट की हमरी कुँवरियाँ हाय-हाय! अजी ऐसा।
एक पापी को दूजा पापी भला दे प्रायश्चित्त कैसा॥६९१॥
जो नहीं पापी तुममें मारे पत्थर पहला।
देवपुत्र[१८] ही तो ऐसे ही प्रसंग में ही बोला॥६९२॥
हो सकता है ईश्वर ही न्यायाधीश ऊपर नर का।
पूछेगा वही ना तुम उसे उत्तर इसका॥६९३॥
मिली हुई यातनाओं से हृदय मेरा दुःखी हुआ।
उससे भी तुम्हारी क्रोधावृत्ति से दुःख अधिक हुआ॥६९४॥
किया दाहिने गाल पर आघात किसी मूढ़ ने।
मत करो प्रत्याघात, दूजा गाल बढ़ाओ आगे॥६९५॥
अहिंसा परमोधर्म युग-युग से सही रटने में।
सर्व भाषाओं में भूभाग में सर्व वेद की ऋचा में॥६९६॥
मरे एक ही जीव आघात से इस लोक में पर अहा।
प्रत्याघात से मरे खोफ में लाख लाख जहाँ॥६९७॥
क्रिया शक्ति आघात की सीमा बद्ध करती।
अतृणे पतितो वन्हिः स्वयमेवोऽपशम्यति॥६९८॥
ना प्रतिशोध करो क्षमा पुरुषार्थ पवित्र की।
स्वरक्षार्थ किया प्रत्याघात दे पाप ही नारकी॥६९९॥
जयो[१९] वैरं प्रसवति दुःखं शेते पराजितः।
उपसंतः सुखं शेते हित्वा जयपराजयौ॥७००॥
शस्त्रों की चमक-दमक से पूर्व कंपित भयी।
उन हृदयों को जनों के महात्मा की उक्ति-मुक्ति भई॥७०१॥
गरज उठे निनामबाबा की जय। लोग पुनः-पुनः।
निनाम बाबा नाम से ही ज्ञात संत था जना॥७०२॥
तब अंतुनी भी हिलाकर सर धीमे से बोला।
साधु! साधु! सत्कार्य में इससे कौन सहायक भला॥७०३॥
शत्रु के स्तुति से महात्मा की मान्यता बढ़ गई।
साधु की जय-जयकार से दश दिशा गूँजा गईं॥७०४॥
कोन से वही गर्जना फिर उठी।
जय-जयकार से भी ऊँची आवाज उठी॥७०५॥
ठीक ही है यह उसे उस जन में बहुमान्यता।
भीरुओं के समूह में कहे कायरता को पुरुषार्थता॥७०६॥

अकर्मण्यता को ही सत्कर्म का रूप देकर।
अकर्मण्यता की शेष लज्जा भी विनाश कर॥७०७॥
प्रिय होगा वह कायरों को वा क्रूरों को भी।
ऐसा मुनिवर सहजता से धाए अजातशत्रुता भी॥७०८॥
जो कहे बल से पकड़ो चोरों को तो मिले नरक।
चोरों को तो लगे जगद्गुरु ऐसा उपदेशक॥७०९॥
जल बिना सुखी आत्मा जिनकी वे घर छोड़कर।
भरी पूरी गंगा में डाले जल काँवर भरकर॥७१०॥
शत्रु क्रोधाग्नि में जले घर साधु यह बुझाता नहीं।
चला आया हमरी चूल्हे की आग बुझाने रही-सही॥७११॥
वाहे सद्गुरु! सबकी नाड़ियाँ ठंडी पड़ी थीं जहाँ।
अभी आने लगी गरमी कुछ-कुछ तन में वहाँ॥७१२॥
मद्धम सी तपिश की आँच से भी क्या?
हे गुरो! तेरा कोमल हृदय दहल गया॥७१३॥
पर जिनकी मशाल में अंधाधुंध आग भड़काती।
जलातीं मंदिरों, अट्टालिकाओं, जिते जीव शतावधी॥७१४॥
उन हिंसा की मशालों का दाह ना करें।
जगद्गुरो, दुःखी ना यदि वा करें॥७१५॥
तो जा पढ़ा उन दुष्टों को अहिंसा की श्रेष्ठता।
विरोध करने पर उनका क्या रह पाएगा तू जीता॥७१६॥
निर्वैर स्तोत्र यह, अप्रतिकार पुराण की गाथा।
सुनाना छोड़ भेड़ियों को बकरियों को बताता॥७१७॥
अत्याचारी भूखे भेड़िए करे जन संहरण।
पहले जो बोलो उनको रोको उनका प्रहरण॥७१८॥
इसके पश्चात् प्रतिशोध त्याग का करो उपदेश।
उस ब्राह्मण को माँ-बहनों को जिन्हें हुए क्लेश॥७१९॥
अज्ञानी बालक, न वे अत्याचारी यह स्वकर्म फल हैं।
रूप में उनके ईश्वर ही स्वयं हमें दंड देता है॥७२०॥
'उत्तम तर्क' हँसा स्वर व्यंग्य से यह सुनकर।
साधु का वचन वह। उत्तम तर्क बल पर॥७२१॥
दंड जो रूप में उनके ईश्वर दे हमें यदि।
अस्मत् क्रोध मिषे उन्हें हो दंड भी जल्दी॥७२२॥

ईश्वर ही नियुक्त करे चोर को घात-पात करने।
ईश्वर ही प्रेरित करे सज्जन को पकड़ने॥७२३॥
भाइयो! चलो घुसो टूट पड़ो शत्रु न बच पावे।
तीन सौ तुम ना नपुंसक ना ही तीस राक्षस वे॥७२४॥
उठी गर्जना दूजे कोन से हर-हर का नाद उठा।
अंग-अंग अंतुनी का रोम-रोम सिहर उठा॥७२५॥
पूरा अमरीका और पूरा ढूँढ़कर अफ्रिका।
सिंधुयान ने छूआ अंत में सुप्त भारत भूमिका॥७२६॥
जिस दिन पुर्तगाल का त्यजकर किनारा।
सिंधुयान घुसा ढूँढ़ते-ढूँढ़ते भारत सुंदरा॥७२७॥
उस दिन से नाना द्वीप, देश शतशः।
पेरु, मेक्सिको, मिस्र, पारस, हब्शी क्रमशः॥७२८॥
पूरे अमरीका में अफ्रिका में पूरा।
भंडार भिन्न भाषाओं का यदि भारत में भरा॥७२९॥
तथापि पाखलों ने सुना कभी न ऐसा।
कोटि भाषाओं में भी शब्द हर-हर जैसा॥७३०॥
उस दिन जिस दिन सह्याद्रि की सुप्त गुफाओं में से।
शेर झपटे सहसा भक्ष्य पर हर-हर गर्जना से॥७३१॥
मूरों[२०] का भी जय से किया 'दीन-दीन' हीन रण में।
उस दिन से उनका हर! हर! दे मन में॥७३२॥
तीर उनके चूकने लगे, खड्ग बोथर बन गिरे।
मनोरथ बनाऊँ कोलंबिया[२१] हिंद का टूट गिरे॥७३३॥
उस दिन पाखलों ने पहली बार सुनी घोषणा।
सह्याद्री की गुफाओं से उठी हर-हर! गर्जना॥७३४॥
चिनगारी रण-गर्जना की जाए कर्ण संपुट में।
पड़ते ही भयज्वाला उठे अंतुनि के अंतर में॥७३५॥
जाओ, सशस्त्र टूट पड़ो, पकड़ो उन पाखंडियों को।
घुसो, आगे भीड़ खदेड़कर पकड़ो विद्रोही गर्जनवालों को॥७३६॥
डोर आज्ञा की टूटते ही भूखे कुत्ते शिकारी।
टूट पड़े निहत्थी भीड़ पर बीस सैनिक शस्त्रधारी॥७३७॥
संगीनों से चीरते-फाड़ते बालवृद्ध वधू जैसी।
जो पथ में आए उसे फाड़-फाड़कर सेना आगे घुसी॥७३८॥

जवाब दिया जन धीरज ने भागना भी भूल गए।
जो जहाँ जैसे था वहीं जख्मी होकर गिर गए॥७३९॥
इतने में अंतुनी चबूतरे पर जो बचे दस।
सैनिकों को आज्ञा दे न्याय-विभाग अब हो बस॥७४०॥
विप्र बाँधकर वृक्ष से जीवित जला दो।
कार्यान्वित दंड को फटाफट कर दो॥७४१॥
यह स्त्री, बालक सारे बंदीजनों को इन्हें।
ले जाओ गुलामों के बाजार में बेचने॥७४२॥
ले जाओ, इस पल पैरों में बेड़ियाँ ठुकवाओ।
जब तक हम आएँ, गोवा की चौकी में रखो॥७४३॥
उठ री बाँदी! उसी पैर से ठोकर मारकर।
सिपाही गरजा 'चलो' सभी को रस्सी खींचकर॥७४४॥
दो तीर इतने में आए सनसनाते कहाँ-से-कहाँ से?
दो सैनिक वहीं लुढ़के लथपथ लहू से॥७४५॥
चबूतरे के पीछे निकट ही था एक मकान।
लोग मानते भूत-प्रेतों का डेरा था वीरान॥७४६॥
घर से तीर आए—भूतों ने? किसने छोड़े तीर?
किसने देखा, नहीं किसी ने देखा पूरा-पूरा॥७४७॥
चौकी! चौकी! गरजा चबूतरा छोड़कर।
अंतुनी सेना सह घुसा चौकी में बंदियों को खींचकर॥७४८॥
लहू से सनी नोंक जिनकी लटकी अँतड़ियाँ।
झट से करके ठीक वे सारी खूनी संगिनियाँ॥७४९॥
छोड़कर जनों को सेना दौड़ी, लौटी सत्वरी।
चौकी में देखा स्वकीय सेना है संकटों से घिरी॥७५०॥
उसी लोक कोने से एक लोकसंघ घुसा आगे।
भागते शत्रु के पीठ पर पुनः धावा बोलने भागे॥७५१॥
धनुर्बाण के साथ 'जय हर हर' गर्जना के साथ।
भूत घर से भी निकल पड़ा कोई भूतनाथ॥७५२॥
तीर पर तीर मारते सनसनाते आगे चल पड़ा।
अल्प साथियों के संग वह चौकी पर टूट पड़ा॥७५३॥
वीर अंतुनी गरजा करके सेना की व्यूह रचना।
चलो, जला दो इन बंदियों को यहीं इस आँगना॥७५४॥

ईश्वर आज्ञा हुई, उसका पालन होकर ही रहेगा।
ये कायर हिंदू क्या उनका पिता भी टाल सकेगा॥ ७५५॥
चौखट, द्वार, उखाड़कर, बारूद तेल डालकर।
चौकी के आँगन में चिता रची गई भयंकर॥ ७५६॥
जन मुरदे को बाँधे चिता से स्वधर्म समझकर जैसे।
उस गरीब ब्राह्मण को चिता से जीवित बाँधा वैसे॥ ७५७॥
हाँ स्वधर्म समझकर आग भड़क उठी।
और वह दीन गाय सहसा चीख उठी॥ ७५८॥
मुझे! मुझे भी जला दो, जला दो इस बालक को।
ज्वालाओं के संग मैं निगलती हूँ अपने वचन को॥ ७५९॥
तो वार तलवार की मूठ का हुआ उसके सर पर।
रक्त रंजित मूर्च्छना पर ही उसका संतोष कर॥ ७६०॥
आग भभककर आँगन में उठी ऊपर-ऊपर।
जीभ वाक्पटु जैसी लोगों को ललकारे युद्ध कर॥ ७६१॥
हाहाकार में जनों के हर-हर गर्जना भर गया।
ठेलकर आगे, हो जनसंघ बढ़ गया॥ ७६२॥
आज्ञा से अंतुनी के सेनाव्यूह सुबद्ध जो।
झपट पड़ा भीड़ पर जैसा कंठ में एक कृपाण जो॥ ७६३॥
भीड़ एक दूजे पर गिरती हुई पीछे हटी जैसा।
पीते लहू बढ़े आगे व्यूह संगीनों का वैसा॥ ७६४॥
चौकी से जाते समय गोरी सेना थी दूरी पर।
मौत के कोलाहल में भी तीन हिंदू वीर॥ ७६५॥
खिसकर तेजी से झपटकर चढ़े ऊपर।
छप्पर पर चढ़ उसमें से कूद पड़े चौकी पर॥ ७६६।
भिड़ गया खड्ग-से-खड्ग खनखनाता-सा।
दो गोरे सैनिकों के साथ स्वयं अंतुनी रण में घुसा॥ ७६७॥
रस्से कटने से बंदी मुक्त हुए तेजी से।
उस विप्र को सब जन मिलकर खींचा चिता से॥ ७६८॥
पर हाय! अजी अब चिता में जलने से।
अति दुःखद था मुक्ति पाना चिता से॥ ७६८॥
फटकर नाड़ियाँ उष्ण धाराएँ लहू की बह रही।
मांस धूँ-धूँ जला अस्थियाँ तड़-तड़ फूट रहीं॥ ७७०॥

कैसा द्विज वह तो अर्धदग्ध हवि अहा!
मुक्ति पाना उसे अब असंभव-संभव या प्रतिशोध महा॥ ७७१॥
अचानक जैसी मौत छापा मारकर आती।
वैसे ही अंतुनी के बदन पर तलवार खड़ी गिरती॥ ७७२॥
इतने में वह साधु महात्मा गिरा अंतुनी पर।
'मा हिंस्यात्' गऊ जैसा हत्या मत कर॥ ७७३॥
लहू इसका तुम्हरे जैसा न कि थोड़ा भी दूजो।
कसाई का कृत्य करना घोर घातक समझो॥ ७७४॥
छोड़ पाखंडी, क्रोध संतप्त भूतनाथ दहाड़ा।
अन्यथा म्लेच्छ संग तुझे अभी चीर फाड़ा॥ ७७५॥
लहू अंतुनी का ताजा? द्विज रक्त जले वहाँ।
क्या वह है गंदा पानी नाली का यह पानी गडहा? ७७६॥
तथापि अंतुनी को पंछी राखे छौने को अपने।
ढककर असि धारा ढाल की निज तन ने॥ ७७७॥
भ्रमिष्ट हो, दंभी हो, गरिष्ठा हो वा दया।
शांत करूँगा क्रोध को और सबके मन में दया॥ ७७८॥
ये सब किस के रक्षण में? उस राक्षस अंतुनी का।
पर क्रुद्धावस्था में भी साहस नहीं साधु हत्या का॥ ७७९॥
इतने में द्वार पर आया शस्त्र चाप खनखनाता।
व्यूह संगिनी का ही जनमर्दन करके आता॥ ७८०॥
मन में कसमसाया भारी शिकार निकले हाथ से।
सिंह चिढ़कर बार-बार पूँछ पटकता है वैसे॥ ७८१॥
उस गर्जना सुनकर वीर लौटे झट से।
लौटना ही उचित है जानकर पग किए पीछे से॥ ७८२॥
प्रथम झड़प में जिससे गोरे सैनिक दो मारे गए।
वह भी मुक्त हुआ तीनों वीर पीछे हट आए॥ ७८३॥
छूटा वह सेठ भी उसके साथ पर वह जरा।
थोड़ी दूर भागा, पर भागते ही गया घबरा॥ ७८४॥
शेर को देखते ही जैसे भयभीत होकर।
घुटने टेककर बैठती गौ वैसा ही बैठा चुप कर॥ ७८५॥
उभरी हुई तोंद को देखकर बोला हाँफ-हाँफ कर।
गहरी साँस में मुख से शब्द डालकर॥ ७८६॥

बैठा छाती पर जिसने आजीवन तुझे पाला।
अरे पेट, घात उसका किया कितना खोटा तू निकला॥७८७॥
अच्छा पोषण तेरा किया तो तू चढ़ा छाती पर।
औ' भूखा मारा तुझे तो तू लग जाता है पीठ पर॥७८८॥
उस मासूम को पुनः सैनिकों ने बलपूर्वक खींचा।
पुण्य समाप्ति पर प्रायः ऐसी ही मिलती है सजा॥७८९॥
पंगु दुर्बल पुण्य होकर भी जीते हैं जब तक।
व्याघ्र के चरणों में नख, मुख में भुजंग के विष तब तक॥७९०॥
मठ में शत्रु के हाथ लगकर भी छूटा साथी मेरा।
सही सलामत रहा नवचैतन्य उसमें भरा॥७९१॥
वह अंतुनी पूरे हत्या होम का जजमान हुआ।
कैसे हाथ लगकर मेरे बच निकला मूआ॥७९२॥
रह-रहकर इन्हीं विचारों ने उसे पागल किया।
मनक्षोभ में ऐसे उसे नहीं सूझ रहा जाए कहाँ॥९३॥
संगीनों के घातक हमलों से जन दश दिशा में।
भागे लोग प्राण बचाकर सुरक्षित स्थान में॥७९४॥
कुछ घायल होकर पथ में ही पड़े गिरकर।
क्वचित् शूर कोई देशघ्नों से मरे जूझकर॥७९५॥
तथापि लोकक्षोभ के तरंगों में डूबोकर ही।
अत्याचारी शत्रु को, उद्दिष्ट यह हुआ निष्फल ही॥७९६॥
पर पूर्णतः ही ना हेतु यह निष्फल हुआ नहीं।
प्रत्याघात भी हिंदुओं का चखा अंतुनी ने आज ही॥७९७॥
गोमांतक का जनवृंद हर-हर शब्द से रोमांचित हुआ।
शत्रु का रक्त बहा ही था, पर हिंदू रक्त भी बहा॥७९८॥
आज पहली बार रणदेवी हिंदू रक्त से तृप्त न हुई।
क्योंकि म्लेच्छों की भी रक्तबूँद उसमें मिश्रित हुई॥७९९॥
मध्याह्न तक सात सैनिक मारे गए इस झड़प में।
इतना ही नहीं स्वयं अंतुनी भी मारा जाता इस झड़प में॥८००॥
हाय! घटना का स्मरण होते ही विचारों में पुनः।
अपनी अक्षम्य भूल वीर को चुभने लगी पुनः॥८०१॥
एक अंतुनी मारा जाता तो सबकुछ वैसे।
हार सेना की होती, छिन्न शीर्ष शरीर जैसे॥८०२॥

और राज्य में सारी हिंदुता उठती सत्वर।
वार्त्ता के विद्युत्-स्पर्श से नया साहस चेतना भर॥८०३॥
सौ-सौ बार जहाँ तेज तलवार की पाती।
पलक झपकने से पूर्व वहाँ तेजी से चमचमाती॥८०४॥
धर्मग्रंथों के पठन की जुगाली की जिन्होंने।
जीवन संग्राम में जिनमें से कुछ न किया किसी ने॥८०५॥
वीराग्रणी वह शत्रु को झाँसा देकर।
भाग जाते समय विचार कर॥८०६॥
इतने में उस गाँव का युवा मल्ल सामने आया।
'भूतनाथ की जय' बोलकर वीर को मुसकराया॥८०७॥
हे वीरश्रेष्ठ! भूतगृह से बाहर कूदकर आया।
सत्य ही जन तुझे 'भूतनाथ' कहता आया॥८०८॥
वीर ने बड़े दुःखद शब्द में कहे मान नहीं यह मेरा।
उन शब्दों में स्वजाति का है अपमान भरा॥८०९॥
देव-भूतकृत उस कृत्य को मानते जन हैं।
जिन कृत्यों को हम साहस से न कर पाते हैं॥८१०॥
ऐसे साहस को भूतनाथ पराक्रम भावना।
प्रशंसा करना अक्षम्य भीरुता को प्रकट करना॥८११॥
यह भीरुता गोमांतक में गुलामी अहा।
देखकर जिसे आश्चर्य होता सहसा महा॥८१२॥
अन्यत्र कहीं महाराष्ट्र में यह घटना होती तो वहाँ।
स्त्रियाँ तीन सौ कभी न हारतीं तीस शत्रु से जहाँ॥८१३॥
साथी बोला, 'लहू गोमांतक का हो तो क्या'?
उस महाराष्ट्र लहू का मात्र प्रवाह ही नहीं क्या? ८१४॥
वही देश जाति वही लहू और नसें भी वही।
एक बीज होकर भी भेद क्यों यह समझा नहीं॥८१५॥
मूलतः न भेद कोई, उन्हें सन्मार्गदर्शक का लाभ हुआ।
श्री समर्थ वहाँ, और यहाँ अलल बछेड़ों का मान हुआ॥८१६॥
विश्वासघाती हुआ सत्य जहाँ-जहाँ अहा।
हिंसक को हिंसा करने देना है इनकी अहिंसा महा॥८१७॥
अमंगल कार्य करनेवालों को यहाँ बोलते साधु हैं।
पागल कुत्तों को काटने छोड़ना ही इनकी दया है॥८१८॥

छुरी डाकू की तथा असि भवानी[२२] जनमोचका।
इनमें भेद नहीं समझती इनकी अंधभक्ति भाविका॥८१९॥
अंधता वहीं की जहाँ प्रकाश करे रवि जहाँ।
आलोक वह स्वहत्या का पथमात्र दिखाए वहाँ॥८२०॥
पुरखों के नाम पर बेचे बड़प्पन जो यूँ ही।
बाबा वाक्यं प्रमाणत्वं, कूपमंडूक प्रवृत्ति ही॥८२१॥
तेरे दुर्गुण भारत तेरे लिए घातक जैसे।
तेरे सद्‌गुण उससे भी अधिक घातक विघातक वैसे॥८२२॥
तथा वे जगद्‌घात भी लाते, दुष्टों को बल देते।
तेरे आभास मात्र सद्‌गुण उनका पोषण करते॥८२३॥
युवा मल्ल बीच में बोला, 'सत्य है' जिस क्षण पर।
हमें आपने जन में विभाजित किया इधर-उधर॥८२४॥
वीर ने जब जय हर-हर की की गर्जना।
उसी क्षण लोकसंघ पूरा युयुत्सु बना॥८२५॥
किंतु साधु का भाषण जनों ने सुनकर।
बोले, 'यही सत्यवचनी' दीनता से द्रवित होकर॥८२६॥
भगवान् की कृपा उसपर कुछ अद्‌भुत-सा।
चमत्कार कर सबको मुक्त करेगा निश्चित-सा॥८२७॥
ओह! चमत्कार तो सामने—घात देखो जला दिया।
चौंकी ही! सभी बंदियों को बलात् ही जलाया॥८२८॥
साथी चिल्लाए वीर वह तनिक रुक-रुककर।
बोला घात है पर सर्वनाश पूरा न होकर॥८२९॥
अरे, देखो मराठा घुड़सवार चलो सत्वर।
आए हैं अपने बंधुओं की सहायतार्थ बोलो हर-हर॥८३०॥
मल्ल, साथी उसके वीराग्रणी और साथी झट से।
पुनः रणोत्साहे गरजे 'हर-हर महादेव' जोर से॥८३१॥
वे दस घुड़सवार आए भाला चमकाते, साथी दूजा।
उनके आगे! उस रात जो संदेश देकर भेजा॥८३२॥
सँभाल अंतुनी! अब होगी भिड़ंत ऐसी।
देखें सहस्र नरमेध का पुण्य रक्षा तेरी करे कैसी॥८३३॥
गरजत बरसत सारी मराठी सेना ने उसपर।
तीर के वेग से उस चौकी पर धावा बोला॥८३४॥

भीषण दुर्गंध जलते नरमांस की जिते जलते ऐसी।
मूर्च्छित करे उन्हें या कोई वायवास्त्र ही राक्षसी ॥८३५॥
इतने में जगाए उन्हें बाप! अहहह। कर्कश हाय! हा!
जलनेवालों की भीषण चीत्कारपूर्ण कराह कानों पर पड़ी अब ॥८३६॥
होमकुंड के रक्षार्थ पुराने काल में क्षत्रिय जूझते।
वैसे ही कली युग में हत्याकांड की रक्षार्थ पुर्तुगीज जूझते ॥८३७॥
जैसे शतावधि खड्गों से वैसे ही भिन्न सिंधु जल।
भिन्न-भिन्न रणभूमि में जिन्होंने चखा हुआ जल ॥८३८॥
वीर पाखला! वैसे ही लड़े रण में रहे उठे।
हत आहत हुए बिना न कोई रण से हटे ॥८३९॥
अंत में हटते ही रिपु का प्रतिरोध जो।
मराठा घुसे चौकी में जलती, बचाने जीवित जन को ॥८४०॥
'हाय! हाय!' पर कहे क्या पाप? क्या पुण्य भला-बुरा।
निष्पक्ष अग्नि के मुख से कौन बचा जीता जरा ॥८४१॥
काल के प्रवाह में बची हो धुँधली स्मृति जैसी।
एक आचार्य बचे आग से सुनाने घोर घटना वैसी ॥८४२॥
उन वीरों की शूरता रही अकारथ, सब भस्म हुए जलकर।
पर कहाँ अंतुनी, क्या वह भी वही भस्म हुआ जलकर ॥८४३॥
अभिशाप से साधु के वा पापों के निज जैसे।
एक जीव हजारों की हत्या की तुलना कैसे? ८४४॥
ना-ना! उन यातनाओं में आचार्य बोले हँसकर।
'अभिशाप से नहीं' होता ऐसा तो पुराना होता मरकर ॥८४५॥
पाप से ना! इस लोक में पाप स्वयं होकर तब तक।
न किसी को जलाता! कोई न सुलगाई जब तक ॥८४६॥
अंतुनी जला नहीं। वह सही-सलामत चला गया।
समर्पित कर हमसब को अग्नि में चला गया ॥८४७॥
साधु को भी? उसने ही उसका हित किया।
सबसे पहले इसलिए ही उसे ही जला दिया ॥८४८॥
ऐसा कहकर, 'अरे गोसाई,' जनपूजा करें यद्यपि॥
लोभी तेरे जैसा कायर आदमी न देखा कभी ॥८४९॥
जान बचाने अपनी कोई प्रत्याघात न करे।
यह स्वयं कहता बार-बार चाहे प्राण हरे ॥८५०॥

पर हम हैं पापी, ईश्वर ही देखेगा हमें।
ऐसा संकेत से बताने में लाज न आई तुम्हें॥८५१॥
तेरा प्रभाव था जनपर भयंकर।
भीरुता के कारण जो मेरे लिए हुआ लाभ कर॥८५२॥
पर कल तेरा वही बने हमें विनाशकारी।
न मैं समझूँ यह ऐसी अंधी नहीं दया मेरी॥८५३॥
किया मैंने प्रतिकार तो मुझे अंतुनी ने जलाया।
प्रत्याघात को जन में रोका तो मुनि को जलाया॥८५४॥
इसके पश्चात् सैनिक की ओर मुड़कर अंतुनी।
गंभीर शब्दे समझाने लगा नीति अपनी॥८५५॥
वृक्ष निष्फल, सूखे पड़े अथवा जिन्हें।
उखाड़कर शत्रु के खेत से नहीं रोपा जाता जिन्हें॥८५६॥
बुद्धिमान् माली उन्हें ईंधनार्थ जलाता है।
तथापि फले-फूले वृक्षों को कभी नहीं जलाता॥८५७॥
न उन पौधों को, जो जिन्हें ले जाकर रोपा जाता।
अपने खेत में सहजता से आग में जलाता॥८५८॥
पतिता होकर नारी फले-फूलकर भी।
न जलाए सूज्ञ माली नर सम उसे कभी॥८५९॥
इस नारी को एवं बच्चे को बंदी बनाकर ले जाओ।
इसी क्षण शत्रु के पुनः आने से पूर्व गोवा ले चलो॥८६०॥
मूरों ने[२३] जीत शत्रु से न धन कभी लिया।
प्रायः स्त्रियों के रूप में ही कर-दंड वसूल किया॥८६१॥
औ' अबोध शिशु जिनकी अनखिली स्मृति शक्ति।
गुलाम कर उन्हें ले जाना बनी उनकी राजनीति॥८६२॥
ये बालक यूनानी आज अपना यूनानीपन नहीं जानते।
नहीं जानते अपने बाप-दादाओं को अपने शत्रु समझते॥८६३॥
यूनानी बालक आज ग्रीकों के गले काटते वयस्क होकर।
आज इसलाम विजयी हुआ जानी सारी[२४] के बल पर॥८६४॥
जीत स्त्रियों का वंश करोड़ों में बढ़ गया।
ऐसे नीति-बल से जगत् में इसलाम पुष्ट बन गया॥८६५॥
हमने भी गोवा में पाँव रखते ही युवति जन।
मुरा के उस सहापत्या गुलाम करके पुनः॥८६६॥

दी दीक्षा उन्हें ईसाई धर्म की आज संतान उनकी।
हमसे भी अधिक अभिमानी है ईसाई धर्म की॥८६७॥
विवरण दिया आचार्य ने तत्क्षण घोड़े पर।
बलात् बाँधकर पुत्र के संग सती को सत्वर॥८६८॥
आदेश दिया सेना को बंदी राख न हुए जलकर।
तब तक पहरा दो इस जलती चौकी पर॥८६९॥
साथ लेकर दो सैनिक अंतुनी घोड़े पर सवार।
विजयी हुआ, जीवित रहा टेढे मार्ग से चलकर॥८७०॥
विजयी, जीवित रहा यीशु का आदेश भंगी पग-पग पर।
जले जीवित जो यीशु सम आचरण रखे जीवन भर॥८७१॥
आज गाँव यह भी साधु संग जलता जीता।
यदि यह वीर शत्रु को जनो न रोकता॥८७२॥
'जन हो' तनिक साँस लेते कराहते पुनः।
बोले आचार्य अग्निदाह सहते पुनः॥८७३॥
ग्रामस्थ सैकड़ों भक्ति भाव से खड़े चारों ओर।
बोला, जनो, न आते विरोधक बनकर ये वीर॥८७४॥
तो अंतुनी ने जीवित ग्राम जला दिया होता।
अथवा धर्मभ्रष्टता की तप्ततर आग में झोंक दिया होता॥८७५॥
अजी आज एक अत्याचार का आपने अनुभव किया जैसे।
दे रहा है अत्याचार की पीड़ा अंतुनी ग्राम-ग्राम वैसे॥८७६॥
यह एक घोर दुःख भरी कहानी कथन की है।
ऐसी सैकड़ों दुःख की कहानियाँ अनकही हैं॥८७७॥
एक गन्ने को पाले पानी दे-देकर, दूजा पेरे कल में।
गन्ना दोनों को लगे मधुर तथा करे दया सम भाव में॥८७८॥
सारे खाते उसे चाव से छील-छीलकर।
कल में पेरनेवाला भी कहे, वाह! कितना है रस मधुर॥८८९॥
गति तुम्हारी ईख जैसी चाहो तो सुख से करो।
जाओ, एक आत्मा की चिता में जलकर मरो॥८८०॥
परंतु एकात्मता ऋषि-पुनीत पथ सही है।
श्रीकृष्ण नीति का आचरण आदर्श लगता है॥८८१॥
दुर्गत से निज देश की दिल पसीजता तुम्हारा।
इन दुर्बल आँसुओं को पोंछो यही कर्तव्य तुम्हारा॥८८२॥

आवेश से जय हर-हर गर्जना के साथ घुसो।
राष्ट्र के वीर भद्र सैनिक बनकर महारण में घुसो॥८८३॥
क्षीण साँस होने लगी, रोने लगा बिलख-बिलखकर।
जनसंघ उस हुतात्मा के चरण में शिशु बनकर॥८८४॥
धुँधली सी निर्भीक फिर भी वाणी गुरु की पुनः।
माँगने लगी वचन एक है एक मनोकामना॥८८५॥
इधर, इस क्षण में तुम सारे निकट आओ मेरे।
आओ मुखियाजी, निकट आओ बंधुजन सारे॥८८६॥
इन हुतात्माओं की राख गरम है जब तक।
फहराया जाय हिंदू पदपादशाही का ध्वज हम पर कब तक॥८८७॥
शब्द बाहर निकलते ही हाँ-हाँ करते सारे जन।
फूट-फूटकर रोते-रोते गरजते करते क्रंदन॥८८८॥
घुड़सवार के साथ जो नई ध्वजा रही थी लहरा।
वीर मराठों ने प्राणार्पण कर जिसे भारत में उभारा॥८८९॥
वीर ने हुतात्मा के कर में 'गुरुवर तेरा सम्मान'।
ऊँची हिंदू पद की यह ध्वजा पकड़ेगा तू नहीं तो कौन?८९०॥
वहीं पर ग्राम मुखिया के संग सब जन प्रतिज्ञा कर।
उष्ण रक्षा हुतात्माओं की साक्षी कर॥८९१॥
पुनः पुर्तुगीजों को पाँव न रखने देंगे कभी।
आज के पूर्वजानों से पूजित स्वतंत्र पवित्र हे मही॥८९२॥
आँसू भरी नयनों से वीर ने सारा वृत्त लिख डाला।
इसे अंताजी पंत को भेजने का प्रबंध कर डाला॥८९३॥
राष्ट्रवीर प्रधान श्री बाजी हर्ष निधान से की प्रार्थना॥
भार्गव ग्राम स्वराज्य में समाया यही हमरी अभ्यर्थना॥८९४॥
ग्राम मुखिया ने पत्रिका पर किया हस्ताक्षर।
उसमें रक्षा हुतात्माओं की विभूति रूप में दी भर॥८९५॥
हाथ का ध्वज धीरे-धीरे थामकर मरणासन्न गुरु ने।
नव शिष्य के हाथ थामकर 'ध्वजा कभी न देना झुकने'॥८९६॥
भले ही प्राण जाए, हाँ चलो, बोलो हर-हर।
जनवृंद ने रोते-रोते ही की गर्जना बार-बार॥८९७॥
अंतिम पुष्टि देने के लिए उसी गर्जना में।
शेष साँस अपनी हुतात्मा ने मिला दी उसमें॥८९८॥

पर उसकी साँस? हिरनी सम ले गए घसीटकर।
किसमें मिलाएगी साँस अपनी रो-रोकर॥८९९॥
प्रयास करने पर भी रमा न छोड़ सकी अंतिम साँस।
दुखियों के प्राण भी ना छोड़े झट से तन की आस॥९००॥
उसकी वाणी, निद्रा, भूख, आँसू हाँस।
सूख गया सबकुछ रमा बन गई जिंदा लाश॥९०१॥
दशा थी उसकी गरमी की शुष्क जल नदी समान।
अंतुनी के घर में पड़ी भ्रष्ट स्पृष्ट अबला समान॥९०२॥
पुत्र या पति? हाँ जी बोली पुत्र या पति।
कभी ऐसे पूछती देखी गई भ्रष्ट मति॥९०३॥
कभी तो वह प्रेम से गोद में ले लेती।
कभी अचानक परे धकेलकर भाग जाती॥९०४॥
'मुझे! अजी जलाओ। चाहे तो बच्चे को भी जलाओ'।
इस अग्नि की ज्वालाओं संग वचन अपने निगलती॥९०५॥
बंदीवास कुछ मास सहकर एक बार।
सहसा मुक्त होकर भागे गोवा की सड़कों पर॥९०६॥
सुविशाल, निला-साँवला गहरा सागर।
देखते ही तत्काल वह भागी उसकी ओर॥९०७॥
'हाय! हाय! इतना पानी होते हुए संसार में।
प्रचंड जलती आग देखती बैठी रही मैं॥९०८॥
ऐसी सौ-सौ आग बुझाएगा ऐ तू सागर।
तुझसे अधिक शीतल, दयाशील नहीं है ईश्वर'॥९०८॥
इतना कहकर धोती ऊपर समेट कूद पड़ी सागर में।
समय डूबे काल सागर में वैसे गुप्त हुई महासागर में॥९१०॥
किंतु शंकर? ऐ जूही के कोमल फूल! तेरा क्या होगा रे!
मैया के चले जाने पर दुधमुँहे मधुर बालक रे!!९११॥

टिप्पणियाँ : १. संथागार—Town hall.
२. इसलाम—मुसलमानी धर्म ईसा ख्रिस्ती धर्म।
३. पुर्तुगीजों ने गोमांतक जीता उस समय यात्री हवाई जहाज की खोज नहीं हुई थी।
४. पोप—pope—ईसाइयों का धर्मगुरु।
५. हिंदवी—हिंदू।

६. बाजी—पहला बाजीराव पेशवा।
७. सोमनाथ—सोरटी सोमनाथ—महमूद (गजनी) ने तोड़ी हुई मूर्ति।
८. देवपुत्र—जीसस ख्राइस्ट।
९. धर्मशासन इक्विशन नामक संस्था जो यूरोप की तरह ही गोवा में भी प्रस्थपित की गई थी। उन हिंदुओं को जो सरेआम स्वधर्मकृत्य करेंगे, इस अदालत के सामने दंड दिया जाता और कभी-कभी जीवित जलाया भी जाता।
१०. ईसाई धर्मविधि के अनुसार विवाह ही न्यायोचित समझा जाता—इस प्रकार पुर्तुगीजों का नियम होने के कारण, हिंदू धर्म विधिनुसार संपन्न विवाह विवाह नहीं समझा जाएगा, ऐसी हिंदू स्त्रियों को विवाहित स्त्री का स्थान नहीं मिल सकता, उसे वेश्या ही समझा जाएगा। उस समय अनेक पुर्तुगीज अधिकारियों ने इस प्रकार के आदेश प्रसृत करते हुए उसके अनुसार नैबंधिक काररवाई की है।
११. स्पैनिश धर्मशासन के इतिहास में यह पीटर' Red rod और एक-दो न्यायाधीश तथा Inquisition के कार्य करनेवाले नेते विख्यात हैं।
१२. अजपाल—ईसा मसीह और झुंड—ईसाई जनता।
१३. प्रसव।
१४. बाइबल कथा में कहा गया है कि किसी पुरुष से संबंध होने से पहले ही मेरी कोख में गर्भ ठहरा—वही ईसा है।
१५. धर्मशासन—Inquisition संस्था।
१६. ये सारी बाइबल की प्रमुख आज्ञाएँ हैं—Kill not, Commit not Adultery, steal not, Covet not by neighbour's house not his ox or his ass.
१७. क. Covet not thy neighbour's anything. ख. 'Judge not. th Bible.'
१८. देवपुत्र—ईसामसीह एक बार एक व्यभिचार के अभियोग में ईसा ने दंड कबूल न करते हुए उत्तर दिया था।
१९. यह श्लोक धम्मपद में भी आया है।
२०. मूर—मुसलमानों को पुर्तुगीज 'मूर' कहा करते थे। उनके देश से मूरों की स्पॅनिश तथा पुर्तुगीजों द्वारा खदेड़ने पर वे उनका पीछा करते हुए विश्व भर में चले गए। हिंदुस्थान में भी मुसलमान देखते ही 'मूर' कहते हुए उनसे युद्ध करते।
२१. कोलंबिया—अमेरिका।
२२. भवानी—श्री शिवाजी महाराज की भवानी तलवार।
२३. अ-सद्‌गुणविकृती—इसके विस्तृत विवेचनार्थ छह सुवर्ण पन्ने पढ़ें। समग्र सावरकर खंड-२१।
२४. मूर—मुसलमान राष्ट्र।
२५. जानिसारी—तुर्कों ने मुसलमानों की रणनीति का अनुसरण करते हुए ग्रीकों के

जो बच्चे गुलाम बनाकर उन्हें वे ले गए वही बच्चे मुसलमानी धर्म की दीक्षा देते हुए सुलतान के शरीर रक्षक दल में भरती किए गए। यही 'जानिसारी' नाम से इतिहास में प्रसिद्ध तुर्कों की अत्यंत विश्वसनीय सेना है।

२६. इसलाम—मुसलमान।

२७. पाखला—गोवा के भारतीय लोग पुर्तुगीजों को पाखला कहा करते।

गोमांतक (उत्तरार्ध-१)

[ईसवी १७५८ का समय]

सब पत्ते निकल गए, और शुष्क-से
    अस्थिपंजर-सा खड़ा क्षीण वृक्ष जो
बरगद का, ऋतु वसंत की हवा जभी
    मंद-मंद चलती है तब वन सारा
फल-फूलों से समृद्ध डोलत है, तभी
    पल्लव-लक्ष्मी का ऐश्वर्य प्राप्त कर
शोभत है नवजीवन-पुष्ट बना-सा
    इतना कि न जान सकें यही वृक्ष वह
जब तक कोई उसकी पहचान कराए
    भार्गव भी अब बिना पहचान कराए
कोई ना जान सके! जलप्राशन करते
    भीत हिरन-सा जो भय विह्वल था
बीस वर्ष पूर्व!! आज कोंकण-स्थल में
    हिंदू स्वातंत्र्य वसंत ऋतु समीर से
वन सारा फल-पल्लव-पुष्प सजा के
    खिलता है तब नूतन जीवन रस से
लहलहा रही भार्गव की तरु-लताएँ!
    आज द्वार उसका यह लोह का बना
सुस्थिर, और बाँस का यह नया बना
    परकोटा ऊँची दीवार का यहाँ
वैसे ही बलशाली वक्ष है तना,
    राष्ट्र स्वातंत्र्यजनित आत्मतृप्ति से
क्षितिज उसी ग्राम की पूर्वदृष्टि का
    विस्तृत अब, तेजस्वी नए सितारे

नव कांक्षाओं के अब उदित हो रहे
छोटे नभ में उस ग्राम जीव के।
आज यहाँ आस-पास के किसी कहीं
मेले की दंगल की हो नहीं रही
चर्चा; पर दिल्ली की होत चाव से!
क्योंकि युवक ये कितने अब यहाँ के
महाराष्ट्र-भूसेना में दाखिल होकर
दूर-दूर के रण में आज कर रहे
अपनी तलवारों का अद्‌भुत तेज करिश्मा
और नौसेना में जलसमर में
हुतात्मा श्रीगुरुजी के पुत्रों में
काशी से वेदों को पढ़कर आया :
उस युवा पंडित ने गुरुगृह में ही
वेद-पाठशाला को स्थापित करके
पहले से शतगुना उसे बढ़ाया।
मल्लयुवा जो वीरों के समेत ही
अंतुनी के साथ लड़ा, उसे बना दिया
ग्राम का पटेल ही पेशवा प्रभु ने।
मूँछें उस पटेल की भव्य रोबीली
भय-आदर न ग्रामवासियों के केवल
बल्कि रिपुओं के मन में भी जगा रही
हैं अब। औ' आज उसी छोटे-से ही
अखाड़े का ही बन गया अकस्मात्
मंदिर प्रचंड एक; जिसमें युवकों ने
मूरत हनुमान की स्थापित कर दी है।
हर हमेश बजता है वहाँ नगाड़ा :
घुड़सवार सज्ज वहाँ पहरा करते।
उस मंदिर से भी पर अति प्रचंड-सी
संस्था इस अवधि में जनम लेत है
भार्गव में; वह जिंदा जलाए हुए
हिंदु-हुतात्माओं की स्मृतिस्वरूप जो
दहनस्थल पर बनाई भव्य समाधि।

इस समाधि-मंडप के लिए पेशवा
भूमि का प्रबंध करत, और स्वयं ही
मेले का आयोजन हर साल करत हैं।
यह नक्शा बदल गया ग्राम का सभी
विगत बीस वर्षों में सब बदल गया :
लेकिन जो खिलते ही फूल लता का
टूट गया, उसका क्या हाल हो गया?
प्यारे-से बच्चों का क्या हो गया?
क्या पता!—परंतु एक दिन भार्गव में
अचानक ही प्रसृत हो गई वार्त्ता
हर कोई हर किसी से कहने लगा था
अचरज से चौंककर! और जिसने यह
वार्त्ता बतलाई थी उस मनुष्य को
पटेल भी इज्जत के साथ बुलाकर
पूछने लगा कि आखिर सत्य क्या है
मनुष्य ने कहा, 'यहाँ न मैं हूँ केवल
अनजान शख्स। बहुत-से लोगों ने भी
श्रीनिनामि बाबा के मठ के भीतर
बाबाजी की सेवा करते हुए मुझे
देखा होगा निश्चित उन दिनों में।
विप्रज मैं, नाम शुक्र, सज्जन-सेवा में
जीवन बिता रहा, तीन साल पहले
इसी ग्राम में कांड हुआ था भयंकर,
सज्जनों को जिंदा जलाया पुर्तुगीजों ने :
सुनकर यह खबर और संत निनामी
बाबाजी की मृत्यु से शोक व्याप्त मैं,
आखिर यह सोचा कि तब तक जैसे
जीवन था मेरा आदेश से चला
उसी तरह अब उनसे पूछकर ही मैं
जानूँगा कार्य नियत क्या मेरे लिए
अत: मैंने निरशन व्रत अपनाया और
शिवमंदिर में बैठ गया घने जंगल में

तब नौवें दिन मैंने दृष्टांत पा लिया
'जाओ! औ' अंतुनी के कब्जे से अब
छुड़ा लाओ चिरंजीव रमापुत्र को
मुझ पर श्रद्धा रख के मृत्यु हो गई
उसके पति की, पर वंश-रक्षा करूँगा!!
जाओ, जाओ शीघ्र!!!'—सुनकर आज्ञा
प्रत्यक्ष संत-महात्मा की, मैं उठ गया।
विनय मुझे कहने न देत पहुँचा कैसे
गोवा में; अंतुनी ने जान ही लिया;
कैसे मुझको दिख पड़ा वह बालक, पर मैं
किसी से भी अनदेखा पहुँच ही गया;
कैसे अदृश्य रूप में मैं सहसा
पहुँच गया उस दुर्जन के गृह में भी
और लेकर अर्भक निकल पड़ा मैं
वापस आने को; यह सब ब्योरा
विनय मुझे कहने ना दे रहा अभी।
इतना ही कहता हूँ वे अद्‌भुत सारे
कार्य किए मैंने उस समय अचानक
वे सारे अत्यद्‌भुत संतशक्ति के
कार्य रहे!—मैं नाचीज क्या कर सकता?
जननी उस बालक की थी रमा, वही
पहले ही मृत हुई, जब पता चला
तत्काल मैं निकल पड़ा तब वहाँ से।
तब जैसे मुँह से यदि कोई छीन ले
कँवल तब टूट पड़त शेर दहाड़ के
वैसे ही टूट पड़ा अंतुनी मुझ पर।
अस्त्रों की, शस्त्रों की, रिपुसेना ने
की थी भरमार!—किंतु मैं अकेला
ब्राह्मण था मंत्रबली पर्वत जैसा,
शत्रु आक्रमण सारा विफल हो गया!
लेकिन वह बालक था नाजुक-कोमल,
बुखार से, प्यास से और भूख से

व्याकुल बहु हो गया, मैं विवश हो गया
फिर भी तब तीन दिनों तक जूझा मैं
करुणाधन प्रभु के ही लीन पदों में
'आओ प्रभु! मदद करो, तुम ही सहारा!'
सुनते ही मेरी यह करुण प्रार्थना
साक्षात् वे दिव्य विमान में बैठे
संतराज आ पहुँचे! लेकर बच्चे को
दिव्य स्वर में मुझ से कहा उन्होंने
'जाओ! हम वंश को पालें-पोसेंगे
स्वर्ग में!—वही पुण्य गति है इसकी!!
लेकिन अब एक ही कामना रही
इसी वंश की, उसको तुम ही निभा लो!
गाँव में है इस कुल की पूज्य वास्तु
उसमें इनके कुलदेवता की ही
स्थापना करो—औ' तुम नित पूजा करो!
यही तुम्हारी मोक्षेच्छा का साधन है
स्मृति इस कुल की शाश्वत भी यही करेगा!'
'आज्ञा! पर मैं तो जानता नहीं
कौन देवता है जी इस कुल का भी?'
पूछा मैंने : तब संत ने कहा
'जाओ! औ' तुलसी के गृह-आँगन में
ताखे में मिल जाएगी कोदंडधारिणी
राम-मूर्ति, करो तुम स्थापना उसी की!
यही सबूत दिव्य रूप साक्षात्कार का
तुम्हारे लिए, तथा सभी के लिए!'
कहकर ऐसे, बालक को लेकर सहसा
देखते-देखते संत जी अदृश्य हो गए!!
तुकया का सतनु गमन सुना आपने।
पर अत्यद्भुत यह श्रीसंतनिनामी
बावा का, सतनु शिशु को लेकर, नभ में
आरोहण साक्षात् देखा है मैंने!!'
और दिव्य दृश्य फिर से वह पुनः-पुनः

प्रत्यक्ष साकार हो, ऐसे नयन उस समय
विप्र के मुँद गए! तनु कंपित हो गई;
सहसा ही शांत-मूक हो बैठा वह।
अर्धसमाधिस्थ विप्र देख इस तरह,
लोगों के मन की आशंकाएँ सारी
मिटकर, श्रद्धा-आदर जग उठा सहज!
थोड़ी-सी चर्चा के बाद तय हुआ
जाएँगे, देखेंगे मूर्तियाँ वहाँ :
कुछ लोगों ने संशय व्यक्त भी किया
इतने दिन क्या सचमुच मूर्तियाँ होंगी?
—उत्सुकता से ब्राह्मण ताली बजा के
बोल पड़ा 'होनी ही चाहिए वहाँ!
दिव्य वचन झूठ कभी होगा ही नहीं!
फिर भी पंचों को लेकर जाइए वहाँ
क्योंकि न आगे भी कभी व्यर्थ न कोई
पाखंड कहे मूर्तियाँ न असली हैं ये!'
पंचों के साथ चले गए लोग वहाँ
तब उसी स्थल रामप्रभु-मूर्तियाँ मिलीं!
लोगों की जयध्वनि से भरा आसमाँ!
बस फिर क्या! दिव्य कथास्पर्श हो गया
ग्राम की महानता और बढ़ गई
ग्राम बना क्षेत्र : और विप्र महात्मा।
इच्छा उस वंश की समझकर तभी
गेह बना मंदिर और भूमि वहाँ की
प्रभु का धन मानकर, अर्पित कर दिया
शुक्र को वहाँ के ही सभी जनों ने!!
और प्रतिवर्ष वहाँ लगने ही लगा
मेला इक नया हुतात्म-वीरवरों का
भव्य समाधि-स्थल पर, उसमें वह द्विज,
जिस कथा-निरूपण को विनय रोकता
था पहले—वही कथा वर्णन करते
बैठता इतने प्रभाव के साथ कि देखो,

अठारह पुराणों की रम्य कथाएँ
उससे सब फीकी लगने लगी तभी
अद्भुतता के हिसाब से। औ' जल्द ही
राष्ट्र के संतकथा-सिंधु में इसी
कथारूप बिंदु का समावेश हुआ
ऐसी उसमें वह घुल-मिल गई
कि स्वयंप्रमाण बन गई नवकथा तभी।
प्रतिवार्षिक पुण्यतिथि प्रथित हो गई :
मेले का रंग जमा जोर-शोर से
ग्राम के चारों तरफ आज भीड़ है
इतनी कि पहले देखी न कभी किसी ने!
क्योंकि है इसी वर्ष मेला बहुत ही
महत्त्वपूर्ण बन गया है आगमन से
कतिपय अधिकारी औ' शिष्ट जनों के,
जातिकार्य नव विशिष्ट करने हेतु
पूर्वकाल में लोगों को पीड़ा जब थी
तब म्लेच्छों के बल से या छल से खल
भ्रष्ट कर रहे थे दीन हिंदुओं को
उन सब परधर्महत बंधुजनों को
पुनर्हिंदु संस्कारों से कर शुद्ध
सुस्वागत पितृगृह लाना है आज।
इसी जातिकार्य हेतु आज यहाँ पर
मेले में यह अपूर्व भीड़ हो गई
छत्रपति ने भी इस कार्य के लिए
अनुमति दे दी है औ' अपनी तरफ से
भेज दिए हैं पंडित साभिनंदनम्।
सम्मतता दरशाने शिष्यजनों को
भेज देत या आते हैं कितने ही
कोंकण के देशमुख्य राजकीय जो
अधिकारी, वे भी अपनी सेना के संग
सपरिवार आते हैं, तथा आंग्रे
घोरपडे, सावंत, सब सरदार सिंधु के[२]।

तंबू में, डेरे में, रावटियों में
शूरता, समृद्धता—पधारी यहाँ।
पालकियों, मियानों में या कोई
हाथी के हौदे में रोब जमाकर
जाते हैं प्रथित महाराष्ट्र अग्रणी,
देखत है मुदित महाराष्ट्र भक्ति से।
सींगों की खणणणण फूँक है वहाँ;
बजत नगाड़े औ' चौधड़े सभी;
घंटा या घंटी या गजर बजत है
पेड़े की, जलेबी की सजा-सजा के
थालियाँ हलवाई लाते, फलवाले भी
रस-भरे नए, नए फल बेचत हैं
टोलियाँ रंग भरी नौटंकी की;
चक्रदोले नागरदोले और खिलौने,
झूले मजे-मजे के खेल—ऐसा
बड़ा मेला न किसी ने देखा है!
वीर हुतात्माओं की भव्य समाधि
उस स्थल पर चींटी भी जा न सकेगी!
संकीर्तन, भजन, नामघोष आदि से
चल रही बिना विघ्न वह उपासना।
शत जन मन्नत माँगत : शत-शत और
मन्नत पूरी करते : और शतावधि
जन भाविक सुनते हैं दिव्य कथाएँ
सतनु रमातनय के सहित निनामी
बाबा के स्वर्गारोहण के विषय में,
और महान् सिद्धि के उत्तराधिकार
जो शुक्राचार्य विप्र कथा कहत हैं,
उनके चरणों का नमन पुनः-पुनः करते।
हुत संत-महात्मा की पावन पादुकाओं के
दर्शन करने इतनी भीड़ लग गई
कि मंदिर वह प्रचंड लगा किरकिर हिलने!
चौकी का समाधिमंडप में सहसा

रूपांतर होत है : तब था असहनीय
दहनस्थल जो, वही यही! जी बचाकर
जिससे दूर-दूर जितना हो सके
भागे थे लोग, मरते थे प्रतिपल ही :
—आज उसी वास्तु के आस-पास में
लोग भीड़ करत सहस्र, आगे बढ़ने
दहनस्थल रम्य, वहाँ पहुँचने हेतु
शीघ्र, शीघ्र, शीघ्र! काल उलटी गति लेता!
दिन सारा व्यतीत होत संकीर्तन में
नमन-अन्नसंतर्पण विक्रय-क्रय में
यात्रा में फिर आई क्रमशः वेला
मुख्य कार्य करने की शुभमंगल वेला
वृक्षमंडित उस विशाल आँगन में तब
लोग इकट्ठा होने लगे शौक से।
बीचोबीच बैठक विस्तीर्ण सुशोभित
उस पर बिठा लेते थे बहु आदर से
पटेलजी स्वयं उनका स्वागत करते
कोंकण के नेता जो हिंदुजनों के,
प्रतिनिधिस्वरूप लोग इस सभा में
थे सारे उपस्थित, और अन्य भी कई
आए थे महाराष्ट्र से प्रमुख लोग सब
म्लेच्छीकृत निजबांधव-मोचन हेतु
कार्य के लिए उपस्थित सभा में।
श्रृंगों की, सींगों की फूँक सैनिकीय
रणगीतों का गायन, बंदूक-बार भी!
सैनिक रणशूर शस्त्रसज्ज हो गए;
सैनिक जलशूर और नाविक दल के,
शास्त्री, विद्वान्, वैद्य, वणिक और महान्
संन्यासी, योगी भी सभी आ गए।
एक पालकी के पीछे और पालकी
एक के तुरंत बाद औ' सरदार :
संपन्न कार्य को करने भव्य-दिव्य-से

म्लेच्छीकृत निज बांधव-मोचन करने।
आ पहुँचे राजमुख्य : उठकर सबने
सत्प्रलयुत्थान किया। शब्द विविध और
स्तब्ध हुआ, चित्र के समान स्थिर सभा।
राजमुख्य सत्ता गंभीर, पर मृदु-
स्वर में करके स्वागत सभासदों का,
अखिल समागत निजजातीय जनों का,
कह पड़े : 'हे वीर राजकार्य कर :
सैनिकों, नौ सैनिकों, विद्वान् अभिजनों
नागरिकों, जानपदों, आबालवृद्धों!
आज हमारे इस परशराम क्षेत्र में
यह दिन अति हर्ष भरा उदित हुआ है
उदित हुआ, पर कैसा? इसी वृक्ष के
तले यहाँ हीन-दीन हिंदूजनों के
अंतुनी का हिंस्र स्वर सुनने से ही
प्राण कभी चल पड़े! महिलाएँ, बच्चे
आँखों के सामने भ्रष्ट किए थे
ले गए म्लेच्छ उन्हें, तब कोई भी
माई का लाल न था, जो रोक रहा था :
—उसी वृक्ष के तले आज इस प्रसंग में
हम हैं : ये शस्त्र तीक्ष्ण हैं हमारे :
यह भगवा झंडा[३]; दुर्धर्ष और यह
हिंदूध्वज सुशोभित है! आज कोंकण में
हिंदुओं का द्वेषी-गोरा या काला,—
कौन है अब इस दुनिया में ही भला
देख सके जो इधर वक्र-दृष्टि से?
न्यूनाधिक अवधि बीस वर्षों का ही
बीत गया आज उन दिनों के लिए
जिस दिन जिस नृशंस चिताग्नि में ही
जला दिया जिंदा ही लोगों को यहाँ
पुर्तुगीजों ने, केवल वे हिंदू इसलिए!
नित्य यही चलता था पोर्तुगीजों का

खेल एक मनगढंत; यद्यपि ऐसे
गाँवों पर शत-शत थे चलाए तभी
धर्मपीड़न के हल, निर्दय-क्रूर
आज तक निर्लज्ज रूप में उन्होंने;
तत्रापि जभी जला दी थी नर-चिता
हाथ ही न जल गया था पर कभी—
जैसे सहसा उस दिन भार्गव में ही!!
न्यूनाधिक अवधि बीस वर्षों का ही
बीत गया होगा : उसी नर-चिता के
भस्म की धर्म हुतात्माओं के ही
सौगंध खाकर जनिका घोषण कर उठा
दास्य-मोचन की यह ग्राम छोटा-सा :
एक के तुरंत बाद एक नगर में
गूँज उठी दीप्त वही घोषणा महान्
रणगर्जना बनी शीघ्र उसी की!!
सिद्दी, अंग्रेज, पुर्तुगीज…आसुरी
शक्तियों का सिंहासन जिस पर स्थित है—
स्तंभ को उसी हिंदू सहनशीलता के
हरि-विद्वेषान्वित असुर लात मारत हैं!
तभी असह कडकड ध्वनि के साथ देखिए
स्तंभ से उसी प्रकटत हिंदू शक्ति का
मूर्त-नृसिंह जैसा वह वीर चिमाजी!
कंप उठत असुरदल, निर्दालन किया
शामलीय कंद उखाड़ कंदन ही किया
रावण-से राक्षस का वध किया बली
सिद्दी सात : एक हाथ से : औ' देखो
हाथ से दूजे उस नरतिमिंगल[४]
धर्मोन्माद को ही गौरासुरों के!
सिद्धांत अहिंसा का जब बतलाने गए
. संत शतावधि, सारे हुए हुतात्मा
हिंसा के, जिस भयानक पशु की :
—व्याघ्र आफ्रीकी वह, वह वृक यूरप का;

आज बना निरुपद्रवी सहसा वही
हिंसा करने की ना क्षमता अब उसकी!
आमूलात् साफ किए तोड़ उसी के
दाँत और नख सारे। गाय बन गया
धर्मखड्ग के प्रभाव से! कोंकण में
हरिनामोच्चारण था पाप ही कभी
देहांत की थी सजा : आज परंतु
वहीं हरिनाम घोष, नित्य हो रहा
हरिभक्तों के जत्थे हर्षोत्कट हैं!
—आसमुद्र-सह्याद्रि! प्रबल आज है
कोंकण में धर्म, ध्वज, धेनु और भी
हिंदू-स्वातंत्र्य है : हिंदू-यश भी है :
देवार्चन हो रहा मंदिर-मंदिर में
हत अहिंदू-खल-बल है अब कोंकण में :
निर्विघ्न और होती है कोंकण में ही
मसजिद में, गिरिजाघर में अर्चना
अहिंदुओं की भी : हिंदूशक्ति का
है आत्मौपम्य मृदुल यह स्वभाव ही
बहुश: निरुपद्रविता परसहिष्णुता
आसमान चीरकर यह घोर रात्रि का
स्वर्गमय दिन आया है भूमि पर
लाने में इसको जो प्राणार्पण किया
धन्य हैं वे हुतात्मा! अतुल भागवान्!!
देवभक्त, देशभक्त वीरगुरु श्री
ब्रह्मेंद्रस्वामी वे तपस्वी महान्;
हिंदुओं के थे वे मूर्त देवता
श्रीमथुरा देवी थी; सिंधुवीर थे
सेखोजी, मानाजी—वंश ही पूरा
आंग्रे का अखिल; अखिल खड्गधारी थे
मोड, मोहिते, शिंदे, शूर पिलाजी;
युद्धकुशल था वह बांकाजि वीर भी
शत्रु को ध्वस्त किया 'चिपळुण में ही;

खंडोजी धैर्यशील; रणकुशल खराडे;
अंताजी और रामचंद्र कावळे
गर्व जिन्हें हिंदुत्व का प्रखर रूप में;
गंगाजी नाइक, पटवर्धन श्रमी
राणोजी—मुक्त किया डहाणू जिसने?
वीर रेटरेकर, जो शत्रुघ्न महान्
तारापुर के हमले में जूझ-जूझकर
अभिमुख ही समरांगण में गिर गया;
वीर गिरा; वीर-ध्वज पर फहराया
तारापुर के हमले में रिपुसेना में
माहिम, शिरगाँव लिया। लिया बांदरा
धारावी, वासावे, और अंत में
भिड़ गए मराठे वसई से!—जिसका
नाम ही अतुल पराक्रम-चित्र को
दृष्टिगम्य करता है! वीर हैं जयी :
और इन्हीं वीरों का अखिल विजेता
वीराग्रणि चिमणाजी वीर ही स्वयम्!
सैनिक या सेनापति किस किसी की
सराहना करें! जो सहस्र गणना
योजक, जुझारू, धर्मवीर, हुतात्मा
धर्मयुद्ध-यज्ञ में प्राणार्पण करत हैं
पुण्य परशुराम क्षेत्र को करने हेतु
दैत्यमुक्त पुनरपि—वे धन्य सभी हैं!!
और उन सभी वीरों की उपकृति है
आज महाराष्ट्र अखिल···और विशेषकर—
परशुराम क्षेत्र निवासी हम सब—
परम नम्रता से याद करते हैं यहाँ
हिंदुओं की शिखा की रक्षा कर दी!
चरणों में उन सबके यह सभा खड़ी
अति कृतज्ञ, औ' विनम्र, अर्पित करती—
है राष्ट्रीय पुष्पांजलि परम भक्ति से!!'
सर्व सभा ने तब प्रत्युत्थान कर दिया :

श्रृंग, शंख, सींग, ढोल और नगाड़े,
घोष सभी वाद्यों का अर्पण करने
धर्मवीरों की स्मृति को जनिक वंदना।
गंभीर क्षण, कृतज्ञ, साश्रु रूप में
निकल गए। वाद्यों का नाद भी सभी
शांत हुआ। वाक्पिपासु सभा हो रही।
और राजमुख्य की युक्त्यलंकृता
वाणी पुनरपि अविरत प्रकट हो गई
'बंधुजनो! हतवीर-स्मृति का कर लो
सम्मान कृतज्ञता से, लेशमात्र ही
पुण्यतिथि के हो गए अग्रतम हम सभी
कर्तव्याचरण में : पर हतों से भी
पुण्य कार्य संगर में वैसा ही शौर्य
दिखाकर सुभाग्य से विजय देखने
जीवित जो रहे ऐसे महान् जनों की
उपकृति क्या थोड़ी भी न्यून होत है?
तो भी अब इसी मुहूर्त पर पुण्यहतों के,
हिंदू स्वातंत्र्य रण में जूझे थे जो
कोंकण में उसी तरह; और कृपा से
ईश्वर की, आज भी जो उस ध्वजार्थ ही
अन्य दिशा में, अन्य क्षेत्रों में जूझत हैं—
उनकी भी स्मृति को हम क्यों न याद करें?
उनकी भी सत्कृति क्या सत्कार्य नहीं है?
पुण्यतिथि के समय पुण्यजनों के?
इन ग्रामस्थों में ही है एक जो कभी
अंतुनी के विरोध में प्रथम खड़ा था
टूट पड़ा प्रथम, वीर पुरुष यहाँ भी
है अभी! 'कौन वह, आप से भला
कहना क्या मुमकिन है!' जनिक गर्जना
'पटेल हैं! पटेल हैं!' सभा में भरी
'हाँ, जी हाँ! ये पटेल ही हैं! और
जो हुतात्म रक्षा इस गाँव के खेतों—

को धन्य कर उठी, उसमें धन्यतमा जो
रक्षा उस गुरु की—तनय उसी का!
दोनों को आज मैं वर्तमान सभी
वीरों के अखिल स्थान पर बिठाकर
सार्वराष्ट्रिक सम्मान अर्पण करूँगा
आइए पटेल! और पेशवे प्रभु ने
भेजा है स्वयं तीक्ष्ण कृपाण, लीजिए;
लटका भी दीजिए कटि पर, धर्मशत्रु को
रहे सदैव दुर्धर ही तेज इसी का!
और हे गुरुकुमार, वचन सत्य है
'आत्मा वै पुत्रः' तुम्हरी मूरत में ही
देखें हम मूर्ति तुम्हरे वीर-पिता की!
वही ठहरा अग्निहोत्री सत्य रूप में
होमाग्नि में बलि खुद की अर्पण कर दी
औ' अहिंदू-शत्रु-शक्ति की भी साथ ही!!
पूजा में गुरु चरण स्मृति की और
पांडित्य की पूजा में, पंडिताग्रणे!
एक पर्ण तुलसी का मानो जैसे
तुम्हें समर्पित है यह छोटा-सा उपहार!
श्रीमान् स्वयं पेशवे प्रभु ने ही यह
भेजी है शॉल तुम्हें—हिंदुत्व के ही
सम्मान में स्वीकार करो, पहन लो इसे!!'
सकल सभा जयध्वनि से गूँज उठी और
दोनों का सम्मान किया। तेगबहादुर—
पर पटेल शरमाए उस समय जरा
बोल उठे—'सम्मान है उसी वीर का
जिसने मुझको तब यौवनोद्‌गम में
दीक्षा दी देश स्वातंत्र्य युद्ध की
तारापुर के हमले में और तभी जो
रणमुख में लड़ते-लड़ते ही गिर गया!'
मंत्र तभी ब्राह्मण भी साश्रु कह पड़ा
'तस्मै श्रीगुरवेदं! न मम किंचित्!'

स्वयं इत्र, गुलाब औ' पान भी दिया
राजमुख्य ने दोनों वीरवरों को
खंडित वाणी फिर से झरने लगी
'राष्ट्र के लिए करते हैं प्रयास जो
उनकी उपकृति को जो न भुला दे
ऐसे ही राष्ट्र को संकट समय में
मिल जाते हैं उद्धारक। आज यह सभा
निभा रही ऐसे ही कर्तव्य को यहाँ,
सम्मानित करके इन वीरवरों को
याद कर रही है उनकी उपकृति।
पर बंधुजनो, हिंदू स्वत्व और हिंदुओं—
का राज्य आज यह जो फलाफूला है
वह न मात्र वीरों के शोणित से ही;
बल्कि वृक्ष पाता है पोषण काफी
उनकी घर-गृहस्थी की मिट्टी से :
जो तुम्हरे धर्मबंधु दुष्ट शत्रु ने
छीने हैं झपटकर जैसे शावक
हिरनों के जत्थे से भेड़िया छीने
घर-गृहस्थी जिनकी मिट्टी में गई
वही मिट्टी बन गई खाद वृक्ष का
जिसकी छाया में है विगत-भय खड़ी
हिंदुश्री शीतलांग मुसकरा रही
—क्या उनकी याद हमें आती भी है?
जो महिलाएँ सुंदर, जो कोमल बच्चे;
नि:सहाय बंधुजन हमारे सभी
म्लेच्छों ने छीन लिये जिंदा हमसे;
धर्म मार्ग से बलात् पाप-नर्क में
धकेल दिया था जिनको; स्वजन विरह से;
बिक जाते हैं वे तो सब विदेश में
बाजारों में जैसे पशु बिकते हैं;
तुच्छ पदों को सिर पें लेना पड़ता है
जबरन जिनको; जीवन बोझ अब जिन्हें :

बंधुओं का है जी दुःख आज भी
वैसे के वैसे ही असहनीय-सा!!
परदास्य से हम अब मुक्त हो गए
चोरों के हाथों से पैतृक गृह को
छुड़वाया पैतृक-शत्रुता जगाकर :
पर जब आया है पैतृक धन हाथों में
उन्हीं दीन, पतित, हीन बंधुजनों को
पल भर भी न प्रवेश है उस घर में!
म्लेच्छगृह में जबरन ही जिनको
करना वह अपरिहार्य हो गया, उन्हें
जाति शत्रुओं ने तुम्हरे उस क्षण जैसे
उसी तरह तुमने भी निष्ठुर बनकर
करना है प्रतिबंध उन्हें पैतृक गृह में?
बीच हमारे रहने के लिए व्याकुल
सगे भाई-बहनों को हम अब अपने
खोलें न द्वार! हाय! हाय! धिक् हमें!
—यह तो है ज्ञातिद्रोह और धर्म-घात
यही धर्मतत्त्व कहकर खुश रहते हैं!
ज्ञाति-कलंक की ऐसे शर्म मानकर
उन विधर्म-मकरग्रस्त बंधुजनों को
युद्ध कर, शुद्ध कर, वापिस फिर से
पितृगेह में लाएँ, बंधु-बंधु से
मिलवाएँ, मिलवाएँ हिंदू-हिंदू से
यह आशा है मेरी! यह उत्कंठा!
पुण्यतिथि ठहराएगी आज की तिथि
पुण्यकार्य यदि कर ले आज यह सभा!
कहिए जी, विप्रवर्य! क्या निर्णय है
धर्मशास्त्रविद्-द्विजवर-मंडल का भी :
शुद्धिकार्य कार्य है या अकार्य है?'
राजमुख्य गौरव से कहकर बैठे।
मुख्याज्ञा के जवाब में द्विजवर्य
गुरु सुत भी उठा : क्षण देखा सर्वतः

अखिल-सभा-हृद्गत को आजमा लिया
फिर जैसे विमल स्रोत शुद्ध बुद्धि का
निकले तद्-वागौघ गौरवान्वित-सा :
'हे श्रीमन् राजमुख्य, और भाइयो!
म्लेच्छीकृत-पतित-परावर्तन के लिए
धर्मशास्त्र-सम्मति है अथवा नहीं है;
निर्णय करने हेतु आपने तभी
शास्त्रविद्-जन-समेत मुझको आज्ञा दी।
तदनुरूप हमने भी नव विचारणा
शास्त्र युक्ति सहित पूर्ण कर ली सारी
स्थिर व्यवस्थिति कर दी जो सुसम्मता,
द्विजवर मंडल ने मुझको आज्ञा दी है
ज्ञाति सभा में उसको बतलाने की।
असंभव है बतलाना यहाँ विचारणा
समग्र रूप में, फिर भी संक्षेप में कहूँ
मुख्य कथ्य कह देता हूँ सारा मैं—
याचना करके आपकी कृपा की!
धारणाद्धि धर्म इति प्रमुख लक्षण से
जो करे प्रजा का उद्धार, अभ्युदय—
के प्रति ले जाए, वही धर्म है।
धर्म का स्वरूप यही निश्चित है ही
न्यायशास्त्र से भी यही सिद्ध है
कि धारणा समाज की करे, जाति के
अभ्युदयार्थ कारण जो हो जाए, वही
देशकाल से होगा समाजधर्म ही।
धर्म की द्विविधता इसी हेतु से
स्वास्थ्यकालतः, आपत्कालतः इति
सर्वस्मृतिसम्मत है। भिन्न अवस्था—
आवश्यकता—योगात् एक ही कृत्य
कभी मारक, कभी तारक हो सकता है
स्वस्थकाल धर्म में जो विहित है
'स्पृष्टा स्पृष्टिर्न विद्यते महाभये

संग्रामे यात्रायां देशविप्लवे,
ग्राम नगर दाहे वा' इसी हेतु से
धर्म का यही स्वरूप देखकर हमें
मुख्य यही एकमात्र दिख सकता है
प्रश्न विचारार्ह यहाँ, पतित जनों की
शुद्धि समाज-हित है या बहिष्कृति?
हितकारी अभ्युदय प्रवण है यदि
पतित परावर्तन ही, धर्म्य है तभी।
जातिसंघ या समाज जो प्रबुद्ध है
वह निश्चित कार्य के लिए ही हेतुत:
संघटना सिद्ध करता है प्रमाणत:।
तदनुरूप बनाकर अपनी दंडसंहिता
व्यक्तिश: वह समाज उसे निभाता है
पर यदि कोई उस जीवन-साध्य को
अधूरा, असहनीय अथवा अपनी
जाति के लिए अवांच्छित मान लेत है
और यदि ऐसा जन त्याग करने को
निज समाज संघ का चाहे : तो फिर तब
दो ही हैं मार्ग उसी जाति के लिए :
एक : जबर्दस्ती उस व्यक्ति को सदा,
देहांत के समय तक दंडित करके
जातित्याग करने की सहूलत ना दें,
जातिनियम-भंग करने भी न दें कभी
दूसरा : अप्रीत उसी व्यक्ति को लगे
संबंध, उसे हम भी अपने मन से तुरंत
छोड़ दें; दे दें अपनी जाति से उसी
व्यक्ति को बहिर्भूत करके उसे ही
सत्य जो लगे दे दें आचरण करने
और हम करें आचरण जो हम चाहें
सत्य हमें जो लगे दोनों मार्गों में
आसुर है पहला औ' आर्य है दूजा,
आर्य मार्ग को ही इस बहिष्कृति कहते हैं

और बहिष्कृति का यह आर्य मार्ग ही
जाति-व्यक्ति के ऐसे कठिन समय में
हित है, सो विहित है। सत्यशोध में,
आत्म-विकासार्थ भी, अथवा व्यष्टि का
तथा समष्टि का स्वत्व रक्षित करने,
जाति बलात्कार से सौ गुना रहे
जाति बहिष्कार ही भूतहितैषी
सामाजिक धर्म का सिद्धांत और
अर्थ बहिष्कार का निवेदन करके
हम देखेंगे अब प्रस्तुत समस्या
पतित परावर्तनीय शुद्धिवाद यह
शुद्ध वितंडा प्रतीत होने लगा तभी!
खल-दल-बल-शक्ति से विधर्मदस्यु जिसे
भगा ले जाए; उसे अपनी जाति से
बहिष्कृत करने का पहले न अधिकार किसी को!
जातिध्येय का अथवा जातिनियम का
भंग किया स्वेच्छा से न कभी जिन्होंने;
निजधर्म त्याग न कभी· सपने में भी
मान्य जिन्हें हार्दिकत:, धर्मत: तभी
अधिकार है उनका जन्मदत्त ही
हिंदुओं में रहें हिंदूधर्मयुत
यह पूर्वार्जित घर तुम्हारा उसी तरह से
है उनका भी! तुम हो कौन उन्हें
द्वार के बाहर रखने वाले? अथवा
अंदर लेने वाले? डकैतों ने
सबकुछ ही छीनकर वन में फेंका
जिसको, सुत वह माता का भाग्यत: यदि
ढूँढ़ते पहुँचा भी घर; तो फिर उसका
आलिंगन करके, उसको सहलाते ही
गोद में लेगी जननी : या फिर दूर
धकेल दे सकेगी? राक्षसगणों में—
भी जननी ना ऐसी जो ऐसे क्षण

निज अपाप पुत्र को पतित कहकर
धकेल ही देगी दूर सूखी आँखों से!!
जातिजननि! लेकिन तुमने सचमुच ही
पाप भी नहीं जहाँ, पतितत्त्व मानकर,
शुद्धि का, जो अबहिष्कार्य उन्हीं के,
देखकर शास्त्रार्थ शिलानिष्ठुर दिल से
बैठी हो द्वार बंद करके हृद का!—
जो वे तव चिरविरहित तनय, हाय, ये
अप्रतिष्ठ छिन्नमेघ सम इतस्तत:
निर्दय दुर्भाग्य-रूप आँधी में भटके
दुनिया के बाजारों में भटके हैं!!
शत्रु के द्वार के बिना न भीख भी
माँगते हैं स्थल दूजा! भाई-बहनें
धुतकारत हैं उनको; और वहाँ जो
भाई-बहनें बनने तत्पर हैं, वे
सर्प-सर्पिणी जैसे लगत भयानक!
रात के कुएँ में कोई म्लेच्छ छुप के
फेंक देत अन्न थोड़ा, जो अभक्ष्य है :
मद्य की बूँद एक, डबलरोटी भी।
दिन उगते ही गाँव की शत कुँवारियाँ
हास्यवदन आती हैं औ' सुहागनें
कटि पर घट स्वच्छ, और सर पे सुंदर
लेती हैं जल भर के, अपने घर जाने—
पर बुझाएँ प्यास हमारे प्रियजनों की।
स्नान, दान, देवार्चन, भिन्न गृहविधि
पाक, तृषाहरण उस जल से घर में
लोग कर रहे बिना संशय के कोई
तभी सहसा चीख उठत चारों तरफ से
भ्रष्ट जलाशय! जल भी—! डबल रोटी है!
तभी आकर म्लेच्छ स्वयं दुष्ट कर्म को
निर्भय निज बतलाता लोगों के बीच!
पी गया जो भी जल अनजाने में भी

भ्रष्ट सभी! मुश्किल है इनमें चुनना
कौन-कौन पी गया जल! साफ है सभी
पी गए जल! शास्त्रार्थ है त्यजेत्
'ग्रामं जनपदहिताय!' पतित ग्राम है!
सारी वे हास्यवदन शत कुँआरियाँ,
वे सुहागनें सारी देवीसम भी
प्रियजन वे उनके, वे पितर वृद्ध भी :
देवार्चन करते ही गाँव अखिल वह
दैत्यार्चन करके जातिबाह्य हो गया!
प्रहसन में भी जो शर्मनाक लगे
बचकानी कृति बनी धर्मविधि यहाँ!
इतना अन्यत्र कभी किसी जाति का
बुद्धिभ्रंश दुनिया में नहीं हुआ था!
'जनहिताय?' ना! दारुण-जनपदाहितार्थ!
हिंदुजनो, सुनो, तुम्हरे जिन बंधुओं—
की तुम करोगे अवहेला यही
उनसे संबंध तुम्हारा है इतना
एकत्रित कर्मों से पूर्ण जुड़ा सा
'पतित! पतित!!' कहकर जितने भी तुम
डुबो देंगे उनको दुःखार्णव में
गहराई तक उतने डुबाए जाओगे
तुम भी तो अवहेलित-बोझ से अभी!!
यह पीढ़ी उन अपाप बंधुजनों की
व्याकुल है, औ' तुम्हरे आँगन की ओर
दूर से ताकते जब मर जाएगी,
तब तुम्हें भीषण हित स्पष्ट दिखेगा!
क्योंकि इन एक-एक धिक्कृत जन की
संतानें जन्म लेंगी अहिंदू घरों में
लालन-पालन होगा शत्रुगृह में
परकीयों को ही मानेंगी माँ-बाप :
उनका ही धर्म लिये, शत्रु उन्हीं के
अपने भी शत्रु हैं, ऐसी ही भावना

जनम से ही वर्धित हो जाएगी उनकी
आमूलात् हिंदूजाति-नाश हेतु वे
यत्न करेंगे खुद को अहिंदू मानकर
पीढ़ी पर पीढ़ी बढ़ती जाएगी
वैसे-वैसे वे बन जाएँगे कट्टर
शुत्र तुम्हारे, हिंदूजनो! निश्चयपूर्वक!
पितृगेह लौटने सिद्ध अभी हैं,
दूर करो उनको अभिमान बढ़ाकर
एक-एक बंधु-भगिनि पतित मानकर
उससे ही पैदा होंगे दस-दस दुष्ट
म्लेच्छों की जाति को पुष्ट करेंगे,
और हमारी जाति का ही खून पिएँगे!
पुत्र की बलि चढ़ाकर शेर को पाले
जो माता आज; उसे, उसी खून को
पी के बलयुक्त बना शेर फाड़कर
शीघ्र खा जाएगा!—और बुद्धिहता
देहांत सजा के लायक है, न शक कोई!!
तीन जातियाँ जग में चिर बहिष्कृति
धर्मविहित मानत हैं : हिंदू : यहूदी :
और पारसिक पुराण : इन्हीं तीनों के
मांस को ही काट खाकर सहजता से
पुष्ट बन पाया इसलाम विशेषत:
किंतु जहाँ ईसाई पंथ अग्रिम हो
इसलामी वंश की न वृद्धि वहाँ है।
क्योंकि ये करते हैं भ्रष्ट सभी को
तो भी ईसाई फिर से न केवल उन्हें
बल्कि मुसलिम बलवानों को भ्रष्ट करत हैं
स्पेन और पुर्तगाल में इसलाम ही
बलपूर्वक सुप्रतिष्ठ हो बैठा था
हावी हो गया था दोनों देशों में
लेकिन अब उन दोनों देशों में भी
अँगुलियों पर गिनने मुसलमान नहीं!

ख्रिस्त-विजय होते ही, पूर्वनिश्चित-से
एक दिन में ही। अजी, ख्रिस्तशरण हुआ
लक्ष मुसलमान! अन्यथा मृत होए—
देश के बाहर या निकाला गया!!
और बलात्कार में होड़ लगाते
दोनों ही दैत्यगदाएँ हम पर
हिंदू जनो, देखो तो, आज आ गईं
अकस्मात् पूरी ताकत लेकर!
दुष्टापत्ति में अब सत्य युग के
शांतिपाठ होंगे जी आत्मघातक!
नहीं-नहीं, जी! कलि है यह! हिंस्र आपदा!
—कलियुगीन आपद्धर्म ही कहो!
दुष्ट म्लेच्छ लोगों को तुम भी देख लो
धर्मबलात्कार करके भ्रष्ट करत हैं :
लेकिन बलात्कार न उतना जनों को
पूर्ण भ्रष्ट करता है, बहिष्कार-सा।
वे जीत मानते हैं देहबलात्कार में
तुम मन को जीत लेते हो, बहिष्कार से
तुम ही हो शत्रु तुम्हारे सच्चे
उनसे भी ज्यादा! भारतवर्ष में
मुसलमान आए कितने?—कितने अब हैं?
आए थे जब वे अल्पसंख्य, और
कुछ लोगों को जबरन छीन ले गए
—उनको पाताल में भेजते समय :
यहीं थे वे : सैकड़ों भाग्यहीन-से
चुपके से पालन हिंदूधर्म का करते :
उनको यदि तुम भी यह मौका बनाकर
कर लेते फिर से ही हिंदू, मान लो,
तो अब जो करोड़-संख्य मुसलमान हैं
लेके तलवार सिद्ध कंठ चीरने—
वे रहते ना तब तो लक्ष-संख्य भी!!
बल होता है जब तक, बलात्कार है :

सौ बार गया बल : क्यों ना फिर से आए
हिंदुओं में वे करोड़ हिंदू भी तभी?
स्वेच्छा से रिपु-धर्म में नहीं रहे थे!
गुप्त रूप में भजते हिंदूधर्म को।
नहीं आए वापस क्योंकि प्रथम पीढ़ि को
जातिजननि, तुमने ही आने नहीं दिया।
कैसा हा शस्त्र-बहिष्कार तुम्हारा!
धन तुम्हरा चोरों ने लूट जब लिया
करोड़ों की मत्ता बस चली गई
तुमने पर उसमें से कोइ रुपय्या
भ्रष्ट मान, वापस भी कभी नहीं लिया!
पुण्यप्रद मान इसी को, हा धिक्
मूर्ख वणिक्चार्य! तुम्हरा विनाश होगा,
अन्न-अन्न करते ही मर जाओगे
पाप आत्महत्या का तभी पाओगे!
हर एक राज्य के शस्त्रकारो,
लड़नेवाले शत्रु को एक तीक्ष्ण शस्त्र,
दे देना नित्य नित्यनियम बनाकर!
ऐसी क्या राजाज्ञा सुनी थी कभी?
देखा था राजा भी? अग़र नहीं, तो
यहाँ आओ : हिंदुस्थान में पधारो
यहाँ पाओगे तुम इस आश्चर्य को भी!
मलय में हिंदू नृप खुले रूप में
आज्ञा देता है इक हिंदूजाति को
'हरेक एक-एक पुत्र दिया करो
मुसिलम को स्वेच्छा से!' क्यों? इसलिए
कि सामुद्रिक वाणिज्य में वृद्धि हो सके!!
हिंदूशास्त्र को न मान्य समुद्रगमन है :
परंतु हिंदूशास्त्र संतानों को भी
म्लेच्छों को दे देने में न हिचकता :
वेश्या सम अधिक द्रव्य कमाने हेतु!!
मूर्खो! बहु दारुण औ' उत्कट-भीषण

बुद्धि की ही अंधता का कटु प्रभाव भी
शीघ्र इसी दुनिया में अनुभव करोगे!
कंठ सूख जाए, कँपकँपी हो तनु में
अंतर्गत भय कह दूँ!—घोर भविष्य!
इन बीजों से ही हिंदुओं के, आगे
क्रूर शत्रु हिंदुओं के, जनम पाएँगे
जाति-गोत्र-माँ-बापों को भूलेंगे
वे सारे राक्षस-सम 'महा-पिले'[५] बने
'मान्य पुत्र' हैं ये हिंदुओं के ही
हिंदुओं के कंठों को काटेंगे
गायों के शोणित से भिगाकर मंदिर
हिंदू-बाल-पुत्रियों को भ्रष्ट करेंगे
हिंदू धर्म उखाड़ेंगे : कर देने हेतु
मलयभूमि की पूरी मसजिद ही सारी!!
एतदर्थ पूर्वोद्धृत धर्म-लक्षण हैं,
शास्त्र बहिष्कार ही हमारा ऐसा
शत्रुबलात्कार से भी घोर शत्रु के,
हिंदू-जाति-नाश-घात करता है जो,
करेगा ही; वह कभी न हो सकता है
हिंदू समाज-स्वधर्म बनने काबिल!
धारक होता है धर्म, मारक न कभी!
एतदर्थ जिन्हें जबरन विधर्म रीति को
मात्र देह से अपनाना पड़ता है
वे बहिष्कार्य नहीं : न हिंदूबाह्य भी,
केवल जो भक्ष्याभक्ष्यादिदोषत:
उनके हाथों अरि पाप कराते,
उसके खातिर आपद्धर्म प्रयुक्त
प्रायश्चित्त के लिए वे नाममात्र ही
पात्र हों—होना ही है यदि। यदि
डबलरोटी दूषित करती कुएँ को, तो
जलचर-मल-मूत्र से तीर्थ दूषित है!
तीर्थमृत सड़े हुए दर्दूर-मूषकों—

से पूति पर्युषित डबलरोटी ना!
भोग चढ़ाते हैं मंदिर में जभी-जभी
मक्खियाँ उस पर बैठत हैं, तभी-तभी
अनुदित सद्य:शौच मान्य कर लेते हैं जी,
ऐसे हम लोग म्लेच्छ बलात्कारित हमरे
बेचारे हीन बंधुओं के प्रति ही
'सद्य: शौच' नियम लागू क्यों ना करते?
अल्पदोष-परिहारार्थ रूढ़ि जो
प्रायश्चित्तों को बताती हैं, वे कर लो।
मृदुना वा दारुणेन कर्मणा खलु
आत्मानं राष्ट्रविपद्युद्धरेदिति
आपद्धर्मीय स्मृति-शास्त्र सम्मति:
बहुत हिंदू बांधव जो आज पुनरपि
हिंदुओं के पितृगेह लौटने सिद्ध हैं
वे ऐसे ही असुर बलात्कारित-पतित
वर्ग में समाहित हैं : पर ऐसे भी
जन होते हैं, जो कभी लोभ से,
पागलपन से, या क्षणिक बुद्धि से
वही धर्म सत्य मानकर चले गए
रिपुदल में केवल अपनी मरजी से
उन पर तो है बहिष्कार उचित ही :
—पर तब तक : जब तक उनको
कृतकर्मों का पश्चात्ताप न हो जाए
जिस क्षण उनकी नसों में हिंदू दूध
उछलकर हृदयों का द्वार खटखटा
व्याकुल होकर कहेगा पुन:-पुन:
'चलो घर, माँ के घर अब चलें, चलो!'
तब वे पश्चात्ताप से आधे शुद्ध ही।
यदि द्वार खड़े होकर भीख माँगते हैं,
'तुम पुनरपि स्वीकारो! जाति जननि, इन
भूले-भटके बच्चों को अपना लो!!'
तो उनको स्वीकृत करना ही धर्म्य है :

किंतु शुद्ध करके शुद्धिदंड लगा दें
तत्कृत निज जातिविरोध के अपराध में
अनुरूप ही प्रखर अथवा मृदु हो।
धर्म का रूप युक्तिशः स्पष्ट कर
यह जो सुव्यवस्थित निश्चित कर दी
उसके ऐतिह्यादिक अन्य भी उपांग
शास्त्र के, पोषक ही हैं सुनिश्चित,
वास्तवतः जो अपूर्व आपत्तियाँ हैं
उनके परिहारार्थ ऐतिह्य वचन या
पूर्वसदाचारों में मार्ग नहीं है
जब तक इस तेजस्वी भारत की ओर
वक्र-दृष्टिपात करने की हिम्मत ना थी
एक भी शत्रु की पूरे विश्व में
तब तक म्लेच्छ बलात्कारपातितों—
की शुद्धि की न थी कोई भी समस्या
संभव ही था न कभी बलवान् समाज में!
दुर्बलों के बीच ही संभव है यह
न शक्ति-भूति-शाली पूर्वज-समय में!!
तदनंतर जिस क्षण में भारत-भू पर
दुर्बलता हावी हुई, जिस क्षण रिपु भी
शक-बर्बर-हूणादि प्रबल हो गए,
उसी क्षण विधर्म-हस्तपति-शुद्धि का
प्रश्न उठा, प्रथम ही : तब 'सा विधीयते
शुद्धिरिति' स्मार्त देवलोक्तिबल से
पतित पूत कर डाले, इतना ही नहीं
भागवत में, ऐतिह्य में यही कहा है
यवन-पुलिंदादि म्लेच्छों को भी
यदि वे शरणभक्ति करते विष्णु की
संग्रहार्ह विष्णुभक्त मान लिया है
और यही उचित है : यदि कोई परकीय
आत्मा को हिंदूधर्म ही सच्चा लगे
तो उसको जो कोई अवरोध करेगा

वही सत्य की भी हानि ही करेगा!
हिंदुओ, जगद्-धर्म की दैवी संपत्
सत्य सनातन जो है तुम्हारे पास
वह मानवजाति हितार्थ है—न स्वजाति के
स्वार्थ तथा कृपणता, विवाद के लिए
अस्मत्कर्तव्य है वेदविधि का
सुप्रचार, ना केवल निज आचरण,
सत्यरक्षण के साथ ही सत्यदान भी!
ज्ञानित सभ्य! श्रीमान् हे राजमुख्य जी!
यह निश्चित मत, सदुक्त यह व्यवस्थिति
की है प्रतिवेदित संक्षेप में यहाँ
भवन्नियुक्त शास्त्रविद् विचार मंच ने
कोई भी, स्वेच्छा से, हिंदू जाति के
चरणों में शरणागत, दिव्य अन्न की
याचना करेगा यदि आत्मा की भूख
मिटाने के खातिर, तों शरणागत को
—यदि प्रत्यागत ही; नवागत अहिंदू वा—
तो उसको अपना मानकर अपने
दिव्यनिधि का अंश मान लीजिए।
यदि होगा प्रत्यागत वह, तो उसे स्थिति
शुद्धोत्तर देया है पूर्वजाति की।
जब शिवाजी ने भी तो बजाजि को[६]
पुनर्हिंदुसंस्करण से पूत किया था
तब पूर्व ज्ञाति के ही अंतर्भूत करके
अपनी पुत्री का उससे ब्याह रचाया
राजपूतों में कितना अभिमान जाति का!
मगर सुंदर इंद्रकुमारी को जब
म्लेच्छ-भुक्त-शय्या से भी वापिस
लाकर जोधपुर में हिंदुकरण किया
राजपूतों में ही उस राजपूती की
हिंदू समाज द्वारा स्थापना पुनः।
होगा यदि कोइ नवागत हिंदू में

जाति नई संगठित करनी है फिर से,
देगा ईश्वर तुमको धैर्य इसी में
पूर्ण करने हेतु पुण्य कार्य यह
भार्गवीय वनस्थित उस सरोवर में,
पूज्य पूर्वजों ने साध्य किया धैर्य से!
इस वन में घूम रहे थे शार्दूल-से
पुर्तुगीज लेकर हिंदू बाल-बालिका
हाय हजारों को तब भ्रष्ट कर रहे
तब हिंदवि-दौर्बल्योद्भूत तामसी
दक्षिणायन में भी उस, विप्र विगतभी
निजधैर्य का ही सुमुहूर्त बनाकर
—इस सरोवर में ही जबरन पातितों—
को फिर से हिंदू संस्करण-पूत बनाकर
आनेवालों को लिया हिंदू समाज में!
धैर्य के लिए दिया प्राणदंड भी
कतिपय रिपुओं को : पर कार्य अखंडित
दक्षिणायनीय तिमिर में धैर्य से
संपन्न किया भार्गव में ही चुपके से
आज उसे करना ना कठिन निश्चय
इस स्वराज्य-सूरज के उत्तरायण में :
सुप्रकाश : उन सीनों पर अरियों के!
बाह्य शत्रुओं का उच्चाटन करने को
ईश्वर ने भारत को धैर्य दिलाया
उसी तरह अंत:कुविकार-शत्रु को
देखने के वास्ते भी धैर्य ही दिया!!—
ऐसे कहते-कहते ब्राह्मण बैठ गया।
'साधु! साधु!' ध्वनि गूँजी एक साथ ही
उस सहस्रजनमंडित सभागृह में!
महामान्य राजमुख्य फिर से उठ गए
'हिंदुजनो! भाइयो!! आज नहीं है
मेरे हर्ष की सीमा, सुनकर ऐसी
शास्त्रनिश्चिती तथा लोकसम्मति

यह इतना पतितपरावर्तन भी यदि
हमने वैध ठहराया तो अब आगे
मान लो कि म्लेच्छों के धर्मच्छल की
आज की तेग बनी कुंद सदा की!
बातें हो गईं काफी—अब कृति करें!
परसों ही सारे इस शुद्धि कार्य को
संपन्न करेंगे! सारे पतित यहाँ के
आमंत्रित बंधु महायात्रा में आए—
सारे वे यज्ञाग्नि की साक्ष में यहाँ
पुनरपि प्रवेश करें हिंदू धर्म के
देवालय में देवादृत सनातन!!'
उसी सनातन शब्द को उठाकर सभा
प्रचंड जयध्वनि करती मदहोश हो गई;
धर्म सनातन की जय! जय सनातनी
धर्म की धन्य!! हजारों कंठों में
ध्वनि हो गई शतगुणित, मंडप से
आई प्रांगण में, प्रांगण में खड़ी
आमंत्रित पतितों की भीड़ जो भरी
उसने उन शब्दों को उठा लिया तुरंत
गर्जना गूँज उठी जय हिंदूधर्म की!
धर्म सनातन की जय! जय पुराण की!!
जयध्वनि की गूँज में ही हुई विसर्जित
जनिक सभा उत्कंठित प्रतीक्षा करती
शुद्धि-समारोह की सुनिश्चित तिथि
दिन परसों का कब उग आएगा भला!
उधर, उसी समय, जो पथ पुणे से
उस ग्राम आता है, उसी मार्ग पर
एकाकी घुड़सवार धीर-वीर-सा
तेज दौड़ आ रहा भार्गव की ओर
वेग शिथिल तुरग का न करता बिलकुल
बैठक थी स्थिर उसकी, लगातार ही
रात भर वैसे ही मार्ग काटता

युवा-भव्य घुड़सवार भार्गव पहुँचा
प्रभात-काल भी तब ना हो गया था।
सीधे वैसे ही तेज दौड़ता हुआ
पहुँच गया राजमुख्य ठहरे थे जहाँ।
मुलाकात होते ही राजमुख्य से
हाथ में थमा दी मुद्रांकित चिट्ठी
जो कुछ भी खबर होगी उसमें,
पढ़ते ही राजमुख्य हृष्ट हो गए
औ' तुरंत उत्तेजित मन से उन्होंने
दुर्गप को बुला लिया, कहा उससे
तोपों को दागकर झड़ी लगा दो
राष्ट्रध्वज की कर दो जनिक घोषणा!
दहाड़ती तोपों की धड़ड़! धड़ड़-सी
आवाजें एक के बाद एक चलीं!!
घर-घर में अचरज से चौंककर सभी
लोग एक-दूजे से पूछने लगे
तभी सैनिक-जयध्वनि के साथ गूँजता
मांगलिक वाद्यध्वनि भी आ गया
हर्षद ही है वृत्त! क्या है लेकिन?
एक कहत अर्काट लिया; दूजा कहता
नहीं जी, यह दिल्ली का वृत्त ही होगा
या निजाम को पूरा नष्ट कर दिया?
तर्क सैकड़ों करते यात्रा में समाहित
सहस्र जन आखिर में साथ चल पड़े
राजमुख्य की छावनी की दिशा में
तभी बात फैल गई, उत्तर की ओर
दादाजी ने विजय प्राप्त कर ली।
भालदार-चोपदारों ने लोगों को
ठीक से बिठाकर बना दी विशिष्ट-सी
लोकसभा : तभी क्रमशः आने भी लगे
मान्यवर पंडित, सरदार भी सभी
अंत में भव्य युवा अतिथि के संग

राजमुख्य भी वहाँ उपस्थित हो गए
सिंधु[७] मुख्य भी आए; उत्कंठित सारे।
उठे राजमुख्य, कहे 'सिंधुमुख्य जी;
मान्यवर सरदार और ज्ञातिसभ्य जी :
अखिल मराठो : हे अखिल हिंदुओ :
आज सुप्रभात को आए राजदूत—
ये महान् विद्वान् कवि हैं और सुकृती,
स्नेही श्रीमंत के स्वयं! उन्होंने—
दूतकर्म करने को स्वीकार कर लिया
जिस महान् वृत्त के लिए, बताने
श्रीमंत-प्रहित-पत्रिका के अनुसार
सुनो महाराष्ट्र, उसी वृत्त को सुनो
आज महाराष्ट्रध्वज फहराया है
अटक पर वीरों ने हमारे फिर से!!'
यह सुनकर लोकसिंधु सिंधु के समान
लहराता झंझाहर्ष में गरजा
हर हर हर महादेव! जय भवानी की!
सींग, रणढोल, कोई ऊँची तूती,
बजा रहे तालियाँ, सीटियाँ बजाते,
धड़ड़ धड़ड़ तोपों के धमाके तभी
हो रहे थे रुक-रुककर पुनः-पुनः,
जिसे जैसा सूझ रहा था उस प्रकार
लोग प्रदर्शित करते थे खुशी अपनी
बुजुर्गों के भी थे नैन सजल-से
गंभीर लोग भी हुए थे गद्गद सारे
राजमुख्य का गला भर आया था
जनिक भावक्षोभ देख, शब्द भी पूरे
बोल ना सके, केवल इतना ही कह दिया,
'राजदूत ही आगे उचित ढंग से
आपको बताएँगे! प्रेय जो कुछ है
और श्रेय क्या है! या मूक भावना
राष्ट्र की उत्तेजित करेगी प्रतिभा को!!'

तब वह युवा भव्य पुरुषवर्य भी
खड़ा हुआ रोब से : क्षण खड़े-खड़े
देखा लोगों की तरफ : और लोग भी
देख रहे थे उसकी तनु बलान्विता;
किसी राष्ट्र की चिंता को धारण करने—
हेतु निर्मित उसका प्रतिभोज्ज्वल भाल;
और धीर मुद्रा उसकी प्रभावशाली
फिर अवनतशीर्ष, सभा का वंदन ही
करके उसने कहा—'अपात्र मुझको
मुख्याज्ञा का पालन शिरोधार्य है :
किंतु उत्तर से अभी इस अद्‌भुत जय का
विस्तृत वृत्तांत पुणे भी न पहुँचा है
इसलिए ज्यादा कुछ कह न सकूँगा।
जिज्ञासा पूर्णरूप से न तृप्त करूँगा।
तत्रापि प्रथम ही इस वृत्त को सुना
तब भावोत्कट विचारप्लुत गीत एक
हर्षलुप्त चित्तजलधि में तैरा था,
उसे सुनो सभ्य लोग : अर्पण करता हूँ
वन्य पुरुष राष्ट्रदेव के पदों में,
इस महान् उत्सव में, हीन पतित मैं!!
लव स्तब्ध हुए सभी। फिर ऊँचे-से
शास्त्रसंयत स्वर में अलाप लेकर,
उचित वाद्य-रव-समृद्ध वीर भाट ने
वीरों को स्फूर्तिप्रद यह स्वरचित नया
गाया राष्ट्रपुरुष का गीत जोशीला।

महाराष्ट्र-भाट का विजयगीत!

: १ :

सुनो-सुनो, सब हिंदुजनो! ये खबरें आईं जीत की।
पूर्ण सात सदियों का बदला लिया, हार है जेता की॥१॥

वीर दाहिर[८], हिंस्र हार ने दग्ध किया था तब तुमको।
सह्य-अद्रि के दावानल ने भस्म कर दिया अब उसको!!२॥
भाग गई थी विजय हाथ से तब, जयपाल[९], तुम्हारे भी,
आज फिर से लौटी तुम्हरे घर, प्रणाम करती वह भी॥३॥
व्यास ने भारत-वीणा पर थे गीत गाए शोक भरे।
भाई-भाई के शोणित में रंग रँगकर लोग मरे॥४॥
हाय! हाय! शत वार हाय हा! काव्य रचाए वरदाई[१०]
व्यास-सदृश, किंतु वह भी भारत-रिपुओं के विजयी॥५॥
हर कवि के ही लिखा भाग में कर्तव्य यही दुर्भाग्यों ने
हतवीरों के हताशा भरे गीत गाए रासों ने॥६॥
पूर्वकवियो, आँसू तुम्हरे हिंदवि अवनति-कालों के
वही गा रहे गीत आज यह हिंदवि उन्नति-कालों के॥७॥
धन्य भाग्य मम! आज न मुझको गाना है कटु हारों को।
अहिंदू हाथों होने वाले अथवा हिंदू संहारों को॥८॥
देव-शत्रु के, देश-शत्रु के निःपातों को गाकर आज।
धन्य भाग्य मैं आदि-कवि[११] के जैसा बन जाऊँ सरताज॥९॥
धन्य भाग्य गानेवालों का, धन्य भाग्य श्रोताओं का।
जयार्थ मृत योद्धाओं का, विजय देखने वालों का॥१०॥
जय-जय ध्वनि से भर दो अंबर, करो गृहों में महोत्सव।
परम मांगलिक, हिंदुजनो, अब वार्त्ता आई है अभिनव॥११॥
हिंदू-सैनिकों की आकांक्षापूर्ति कराई श्री प्रभु ने।
आज हिंदवी ध्वजा अटक में पहुँचाई है[१२] दादा ने॥१२॥

: २ :

हुआ इसलिए हुआ, न कोई साधारण यह बात है
शंकाव्याकुल अचरज से मन सुख व्याप्त कँपाता है॥१३॥
स्वयंपूत वे वेदर्षी निज शरीर पर जिस पानी को।
प्रोक्षण-मार्जन-सिंचन करने लेते थे कुश-अंकुर को॥१४॥
पवित्र-पावन उसी सिंधु-जल को चरणों से स्पर्श किया।
कलियुग में अपवित्र सिकंदर नृप ने उसको तभी किया॥१५॥
वीर[१३] भारतीय तीर्थरक्षा करने दौड़ा मगध प्रांत से।
घुसे, उसी से शीघ्र भगाए, आघात किया जोरों से॥१६॥

अन्य किसी का होगा, लेकिन भारत का न सिकंदर था।
आँगन भी ना उसने देखा, नहीं किसी ने जाना था॥१७॥
राजदुकूलांचल को किंचित् करस्पर्श ज्यों नहीं किया।
भारत भू की क्रुद्ध दृष्टि ने रिपु को भस्मीभूत किया॥१८॥
तिस पर भी ये सेनाएँ फिर, केवल आँगन में ही नहीं।
बल्कि राजमंदिर के अंदर मार-काट कर घुस आईं॥१९॥
घुस आईं, पर आगे उसके एक कदम ना रख पाईं।
आईं औ' फिर वापस जिंदा जा न सकीं उनमें कोई॥२०॥
मुख फैलाए तिमिंगल जभी मत्स्य निगल जाता है।
उनमें से क्या कोई जिंदा वापस घर जा सकता है?२१॥
यवनों का तब पुष्यमित्र ने औ' विक्रम ने शक-सेना का।
मर्दन किया रावणमर्दन-सा, यशोधर्म ने हूणों का॥२२॥
जो भी पीछे आया राक्षस अपनी ताकत को लेकर।
भारतीय यज्ञाश्व नचाया उसके उसके सीने पर॥२३॥
कहाँ आज हैं वे शक? बर्बर? बाल्हिक भी? या हूण कहाँ?
भारत की जठराग्नि सभी को भस्म बनाकर तृप्त यहाँ॥२४॥
उनके अभिमानों को भारत के शस्त्रों ने सरल किया।
उनकी बर्बरता को भारत-यज्ञाग्नि[१४] ने जला दिया॥२५॥
आसुर सेनाओं ने न कभी गंगा को भी पार किया।
विंध्य-अद्रि को लाँघ सकेगा ऐसा कोइ न बच पाया॥२६॥
हंत-हंत पर पहले न कभी घटित हुआ जो, अभी हुआ।
हंत हमारी तेग बन गई कुंद, खड्ग नाकाम हुआ॥२७॥
संचित अपने पापों की है मूर्तिमती यह प्रतिक्रिया।
महम्मद द्वारा भग्न मूर्तियाँ, भ्रष्ट हो गईं सती स्त्रियाँ॥२८॥
राजमंदिर की पहली चौकी न केवल, बल्कि अहा!
सीधे सिंहासन पर नंगा नाचत है यह शत्रु महा॥२९॥
सिंधु नदी से सिंधु तक अहा! हिंद भूमि में फहराया।
परकीय ध्वज, प्रथम बार अप्रतिहत! अघटित हो पाया॥३०॥
यदि होता ध्वज केवल, इतना कठिन समय नहीं तो भी।
तिनके के ध्वज टूट जात हैं तिनके जैसे कभी-कभी॥३१॥
परंतु इसलामी खंजर यह इतना तेज घुसा हृद में।
कि जाति की आत्मा को उसने काट दिया दो टुकड़ों में॥३२॥

उसी घाव से घायल होकर हिंदूभूमि हुई नित्राण।
पूरे सात दशक दिल में यह सालता रहा शल्य का बाण॥३३॥
किंतु आज यह शल्य उखाड़ा, आज वह ध्वज तोड़ा है।
आज जंग को जीत लिया है, महम्मद का मद उतरा है॥३४॥
चंद्रगुप्त ने, पुष्यमित्र ने, विक्रम ने जो दूर किया।
शतगुना था दुर्घट संकट, उसको आज निरस्त किया॥३५॥
समर्थ ने देखा था जिसका केवल सपना[१५] रजनी में।
अवसर हिंदू पदपादशाही का प्रकट हुआ है वास्तव में॥३६॥
सिंधु नदी से सेतुबंध तक पानी जिसको मुशकिल था।
उसे स्नानसंध्या करने को अब काफी मिल पाया था॥३७॥
हुआ, इसलिए यह मत समझो साधारण था आसान।
होने पर भी हृदय कुशंका-व्याकुल सुख से बेचैन॥३८॥
जय-जय ध्वनि से भर दो अंबर घर-घर कर लो महोत्सव!
परम मांगलिक, हिंदुजनो, अब वार्त्ता आई है अभिनव॥३९॥
हिंदू-सैनिकों की आकांक्षापूर्ति कराई श्रीप्रभु ने।
आज हिंदवी ध्वजा अटक में पहुँचाई है दादा ने॥४०॥

: ३ :

साधारण ना, इतना हि नहीं, पर विजय नहीं यह आई है।
भाग्य, नियति या शुभ ग्रहस्थिति के प्रभाव से, यह निश्चित है॥४१॥
आकस्मिक ना जय यह! किंचित् बलिदानों को याद करो।
भावोत्कट कुछ गद्‌गद होकर गर्वोन्नत महसूस करो॥४२॥
सिंधु नदी से सेतुबंध तक हिंदभूमि जब हुई कभी।
निर्वीरा, निर्देवा, निर्द्विज, निःसिंहासन हाय! तभी॥४३॥
सह्याद्री के कोने में इक गठरी लेकर घास की।
जवान कुछ चढ़ते थे प्रतिदिन किसी किले पर बेतुकी॥४४॥
गोसावी ने किसी मार दी एक फूँक तब दूर कहीं।
फूँक जादुई, भभक उठी थी सह्याद्री की घाटी, खाई॥४५॥
उसी घास के तिनकों से फिर, जैसे निकलीं मियान से।
तलवारें चमकने लगी थीं जवान हाथों में फिर से॥४६॥
लेकर गठरी घासफूस की आते थे जो युवक कभी।
ऊपर चढ़ने वाले राजे बने यत्न से आज सभी॥४७॥

सह्याद्री के कोने में इक, स्वतंत्रता की ध्वजा लिए।
शूर शिवाजी के वीरों ने करिश्मे बड़े खड़े किए॥४८॥
उस दिन से इस पवित्र भू की तस्सू-तस्सू लड़वाई।
स्वतंत्रता की ध्वजा जूझते हुए किलों पर फहराई॥४९॥
याद करो, बलि प्रतापगढ़ की माँ को कैसा[१६] चढ़ा दिया।
बत्तिस दाँतों वाले बकरे को वेदी पर कत्ल किया॥५०॥
चार हजारों से भी ज्यादा रिपु के घोड़े तभी मिले।
याद करो कैसे लड़वाए विशालगढ़, रांगणा किले॥५१॥
[१७]बाजी गिरा, गिरा था वीर वीरों को लेकर कैसा।
बाजी गिरा, पर गिरी नहीं वीरों के दिल की आकांक्षा॥५२॥
[१८]चाकण में तो मेरुदंड ही रिपु की उमंग का टूटा।
नरसाळे की गढ़ी गिर गई नरसिंहों का दल झपटा॥५३॥
कितने वर्षों से सिद्दी की तलवार-तेग इस कोंकण में।
गाय-गरीबों को काटत थी, कुंद बनी राजापुर में॥५४॥
[१९]शास्ताखाँ के निवास पर जो हुल्लड़ हुई अँधेरे में।
और फिर स्वागत अनोखा सिंहगढ़ पर उजाले में॥५५॥
वीजापुर में छह हजार से ज्यादा मारे जमीन पर।
रण में लगभग उतने ही औ' कोंकण में जल के भीतर॥५६॥
याद करो, और फिर यह भी कि मुहकम सिंह ने कैसे।
धर्मद्रोह कर दिया जोड़कर अपने को 'औरंग्या' से॥५७॥
म्लेच्छ मित्रता का फल पाया रण में जान गँवाकर कैसे।
प्रताप ने लाए रिपु के औ' दस हजार घोड़े भी कैसे॥५८॥
पुरंदर किले पर मुरार ने रण में जो बलिदान किया।
तानाजी ने सिंहगढ़ पर उसी जोड़ का तोड़ किया॥५९॥
तीन हजारों से ऊपर जब मोगल तेगें टूट गईं।
दाउदखाँ तब सरपट भागा, चाँदवड़ में जीत हुई॥६०॥
सालियर के रण में दिल्लीश्वर की बड़ी फजीहत की।
हिंदू-गदा का प्रहार तीखा, दस हजार लाशें रिपु की॥६१॥
जेसूरी के जिस स्थल पर था बदला लेना उंबराणि का।
[२०]प्रताप के शौर्य से बन गया वही खेत अब क्षेत्र राष्ट्र का॥६२॥
सावनूर की मार याद कर निजाम कह रहा आज भी।
'मुलाकात इन वीर मराठों से भविष्य में न हो कभी'॥६३॥

संगमनेर की लड़ाई में रिपु को पूरा ही कुचलाया।
दसों दिशाओं में हिंदू स्वातंत्र्य ध्येय ऐलान किया॥६४॥
शूर शिवाजी औ' दस साथी उसके गुप्त शुरू में थे।
राष्ट्रमंडल प्रबल रूप में आगे चलकर दीप्तिमान थे॥६५॥
पठान, मोंगल, तुर्क, इरानी—दाढ़ी थी सब सामने।
पुर्तुगीज, डच और फिरंगी-टोपी पीछे धमकाने॥६६॥
पर इन सबसे वीर मराठा जूझ दोहरा करता है।
एक हाथ से दाढ़ी खींचैं टोपि दुजै खिसकाता है॥६७॥
मुख्य वीर येसाजी घायल हुए, हाय! तो भी उसने।
पुर्तुगीजों के सर टक्कर में फोड़े[२१] पर तोड़े कितने॥६८॥
मरते-मरते मार-काट इतनी वाई में हंबीर[२२]।
कर गए कि गुरु समर्थ की उक्ति हो गई साकार॥६९॥
वीर हुतात्मा संभाजी[२३], तुम धर्म के लिए शहीद हुए।
न सिर्फ तुम्हरे, बल्कि राष्ट्र के पातक सारे धुले गए॥७०॥
भालेराई, राव धनाजी, औ' संताजी शौर्यद्युति।
एक-एक के साथ जुड़ी है एक-एक युद्ध की स्मृति॥७१॥
एक-एक युद्ध के साथ जो गर्भित सैनिक शतावधि।
उत्सुक दौड़त तुमुल जूझने, वर्णन करते दंग मति॥७२॥
रिपु के हाथ न लागत, शोलों में ही जली सात सौ स्त्रियाँ।
विशाळगढ़ पर ध्वजा प्रज्वलित दूजा चित्तौड़ ज्वलंत किया॥७३॥
कासम मरा साँस रुँधकर दुंडेरि के रणांगण में।
हिम्मत खाँ का वध किया मराठों ने बसवपट्टण में॥७४॥
एक-एक सेना गनीम की, पास जिंजि के खत्म कर दी।
भरमाकर जुल्फिकार खाँ को हार की धूल चटवा दी॥७५॥
नारोपंत प्रमुख वीर थे, रिपु के हाथों कत्ल हुए।
पर म्लेच्छों के मनोरथ इसी कुर्बानी से खत्मे हुए॥७६॥
कुर्बानी से उसकी, उसकी लेकर तेग लड़ा जो भी।
गिरा जूझते रण में राष्ट्र-स्वतंत्रता के लिए तभी॥७७॥
पाइक हो या नाइक हो, हो स्मृत या विस्तृत सैनिक ही।
उसकी कुर्बानी को वंदन मेरा शत-शत बार सही॥७८॥
प्रयागजी की पराजय मुझे वंदनीय है अपरंपार।
ऐसी पराजयों की गरिमा कितनी विजयों से बढ़कर॥७९॥

लेकर गठरी घास-फूस की जीत लिया था किला कभी।
उनकी सेनाएँ जा पहुँची दिल्ली तक जो अभी-अभी॥८०॥
पंद्रह सौ वीरों को तुमने काट दिया, है सच, फिर भी।
दिवाण-खास में घुसा मराठा, वापस जाएगा न कभी॥८१॥
लेकिन हिंदूद्वेष्टा लोगों, सावधान अब निरंतर।
प्रधान अब [२४]बाजी बने हैं महाराष्ट्र-मंडल के भीतर॥८२॥
बात हिंदू पदपादशाही के बिना न दूजी कहते हैं।
हिंदूध्वज किन्नर द्वीप में फहराने की उमंग है॥८३॥
पालखेड में निजाम हारा, अल्ली परास्त बंगाल में।
अर्काट में नबाव पराजित, परास्त सिद्दी भू-जल में॥८४॥
विजयगढ़ पर औ' चिपळूण में उसको पीटा भू पर जैसे।
जल में भी जब गनीम आया कभी सामने, पीटा वैसे॥८५॥
श्रीगाँव में परास्त सेना दस हजार से भी ज्यादा।
शिरच्छेद ही हुआ सिद्दि का श्रीचिमणाजी[२५] के द्वारा॥८६॥
हिंदूपीड़ा के पातक का उचित फल मिला हबशी को।
पाप-प्रायश्चित्त-गदा से कुचला पुर्तुगीजों को॥८७॥
ठाणे, माहिम, तारापुर के जंग बताऊँ कितने भी!
वसई की तो शौर्यगाथा को सराहता जगत् सभी॥८८॥
पेटलाद में, औ' सारंग में, तिरल में जो शत्रु लड़ा।
मर गया वह माळवा में म्लेच्छभृत्य कितना बड़ा॥८९॥
बादशाही सल्तनत की दाढ़ी जला दी दिल्ली में।
'था कभी, या था नहीं'-सा निजाम हुआ भोपाल में॥९०॥
बुंदेलों के जैतपुर में बंगष को भी है पीटा।
हिंदुओं का पक्ष लेकर अहिंदू को मारा-पीटा॥९१॥
म्लेच्छमोचन हेतु आया दुष्ट नादिर ईरान से।
किंतु सहसा छोड़ रण वह भागा बचने जान से॥९२॥
तभी हुआ देहांत बाजि का, हाय! दिवंगत महाबली।
किंतु काबिल पुत्र ने ही महाराष्ट्र की डोर सम्हाली॥९३॥
दशरथ ने अपनी राज्यश्री रामलक्ष्मणों को सौंपी।
प्रभात तारे ने सूरज को अपनी आभा ज्यों सौंपी॥९४॥
बाजिराव ने वैसे ही नरवीर नाना-भाऊ के।
करकमलों में सौंपा ध्वज को हिंदू स्वतंत्रता देवी के॥९५॥

खड़ा किया हिंदूध्वज शिवबा की पीढ़ी ने रायगढ़ में।
बाजी की पीढ़ी ने उसको फहराया चंबळेश्वर में॥९६॥
नरसिंह नाना के सिपाही महाराष्ट्र के वीर सही।
खड़ा किया हिंदू स्वतंत्रताध्वज रिपुओं के सीने पर ही॥९७॥
पठान, मोंगल, तुर्क, ईरानी, हबशी, सिद्दी ये सारे।
पुर्तुगीज, वलंदाज, फिरंगी अंग्रेजादी सब गोरे॥९८॥
ईरान से योरप तक के शत्रुओं का आक्रमण।
सिंधु नदी से सेतुबंध तक भूमि बन गई रणांगण॥९९॥
तीन द्वीपों के गुंडों की सेना को, पर, डुबो दिया।
सिंधु नदी से सेतुबंध तक रणक्षेत्र को लड़वाया॥१००॥
याद दिलाना तुम्हें इसी की वाजिब लगता नहीं अभी।
प्रत्यक्ष रूप में देखी होगी बहुतों ने वह जीत तभी॥१०१॥
तुममें होंगे बहुत वीर जो जूझे थे उन जंगों में।
नाइक ऐसे, पाइक ऐसे, वीर तेग चलाने में॥१०२॥
वे ही कह दें क्या यह जीत अचानक हमें प्राप्त हुई?
क्या विजयश्री भूली-भटकी घर हमारे थी आई?१०३॥
अचानक नहीं जी, इस भू की तस्सू-तस्सू लड़वाई!
हिंदू स्वातंत्र्यार्थ रणों में राशि शिरों की लगवाई॥१०४॥
संतत शोणित-तर्पण-धारा करती आई हर पीढ़ी।
रणकुंडस्थित हविर्भुज की अग्नि कभी ना बुझने दी॥१०५॥
समर्थसम जो योगी करते महातपस्या तपोबली।
अमात्य, मंत्री, प्रधान करते सूक्ष्म यंत्रणा मंत्रबली॥१०६॥
हणमंते, प्रल्हाद निराजी पंत और भी कितने थे।
छोटे-बड़े सैकड़ों वीर जो मुक्ति समर के कर्ता थे॥१०७॥
उनके तप से, उनके जप से, उपदेशों से ज्वलित हुई।
मंत्रयुक्ति से तेज बन गई, शस्त्रशक्ति से भभक गई॥१०८॥
—वही आज यह हिंदू शक्ति जो नए जनम को पाई है।
जन्म उसे देने के पीछे महाराष्ट्र के प्रयास हैं॥१०९॥
जय-जय ध्वनि से भर लो अंबर घर-घर कर लो महोत्सव।
परम मांगलिक, हिंदुजनो, अब वार्त्ता आई है अभिनव॥११०॥
हिंदू-सैनिकों की आकांक्षापूर्ति कराई श्रीप्रभु ने।
आज हिंदवी ध्वजा अटक में पहुँचाई है दादा ने॥१११॥

: ४ :

करो महोत्सव हिंदुजनो तुम! कुर्बानी से आई है।
विजय तुम्हारी, तभी महोत्सव करने का यह अवसर है॥११२॥
परंतु विजयी होकर आए हो जितने भी तुम वीर।
सभी न भूलो जय से निकले कर्तव्यों का नव भार॥११३॥
चंद्रगुप्त ने, पुष्यमित्र ने तथा गौतमी के सुत ने।
किया राष्ट्रसंकट को पहले निरस्त, उससे भी तुमने॥११४॥
सौ गुना दुर्घट संकट को अपने बल से भगा दिया।
वीर शिवाजी के वंशज तुम, कालोचित कर्तव्य किया॥११५॥
अथापि न अभी कार्य हुआ संपन्न, अभी तो तट पहुँचे।
लेकिन अब भी दुर्ग पार कर घर तक तो हम ना पहुँचे॥११६॥
आज हिंदू पदपादशाही का सुयोग सचमुच आ ही गया।
अथापि न अभी समारोह वह कतई तो संपन्न हुआ॥११७॥
वीर शिवाजी के सम हमने धन्य विजय को पाया है।
वीर शिवाजी के सम अब इसकी रक्षा भी तो करनी है॥११८॥
शल्य उखाड़ा, पर न अभी वह घाव हमारा भरा है।
'कहाँ हूण हैं?'—इस तरह की स्थिति अब हमको लानी है॥११९॥
तुम दैत्यों के चक्रव्यूह का यद्यपि भेद कर गए ही।
फिर भी वापस भी आना है विजय प्राप्त करके ही॥१२०॥
अमंगल न हो पूर्वस्खलन से, सावधान हो जाओ अब।
[२६]सारथि वह निर्भर करता है सहायता चाहोगे तब॥१२१॥
और जिन्होंने दैत्यों के इस चक्रव्यूह का भेद किया।
विजयी होकर वापस आएँ वे, वसुधा को मुक्त किया॥१२२॥
सशस्त्र समराभिषेक जैसे हिंदुश्री का यही हुआ।
सशास्त्र सिंहासनाभिषेक भी करने का मौका आया॥१२३॥
सबल किया तुमने जैसे इस राष्ट्र को तब जय पाने।
प्रभो, महाबल दे दो अब भी कर्तव्यों को निपटाने॥१२४॥
इस पर भी जो हो ईशेच्छा वही घटित होगा आगे।
परंतु जो कर्तृता देखकर आज दूर हैं रिपु भागे॥१२५॥
व्यर्थ न जाएगा यह दिन भी हिंदूराष्ट्र का दिल बहल।
अमित शक्ति का, अमित स्फूर्ति का स्रोत बन गया चिरकाल॥१२६॥

आज सात सदियों से विजयी, गहनों से मालामाल।
हिंदू विजय का घोड़ा पुनरपि प्राशन करता सिंधु-जल॥१२७॥
सागर के संग आओ गंगे, आओ कावेरी-नीर।
सिंधु, शतद्रु, त्रिवेणी, यमुने, गोदे, कृष्णे, अनिवार॥१२८॥
हे तीर्थो, हे क्षेत्रो, सारी भारत-भू में जो स्थित हैं।
हरिद्वार, कैलाश, काशिके, पुरी, द्वारके—जो भी हैं॥१२९॥
सुनो-सुनो, यह हर्षोल्लासित वर्त्ता आई जीत की।
पूर्ण सात सदियों का बदला लिया, हार है जेता की॥१३०॥
हिंदू-सैनिकों की आकांक्षापूर्ति कराई श्रीप्रभु ने।
आज हिंदवी ध्वजा अटक में पहुँचाई है दादा ने॥१३१॥

★ ★ ★

गोमांतक (उत्तरार्ध-२)

चढ़ते-चढ़ते गिरि शिखर पर अचानक
पथ समाप्त होते ही, मन विस्मित जैसा
कृतकृत्याश्चर्य क्षण विश्राम करत है
विस्तृत सर्वत्र वनश्री का परिचय
कर लेते-लेते ही मग्न-स्तब्ध-सा
वैसे ही वीर-भाट का यह गाना
सुनकर वीरों के मन मग्न हो गए।
हो गया समाप्त गीत, फिर भी वैसे ही
कृतकृत्याश्चर्य मुग्ध बैठे ही रहे
मानो अभिमंत्रित-सी सब हुई सभा।
कोई भी चाहे ना शांति-भंग को
जब तक सिंधु मुख्य खड़े होकर बोले :
'उत्तरदिग्विजयोत्सव यह आज ठाठ से
महाराष्ट्र को पूरे नहला ही देगा
आनंदाश्रु में सत्य! तिस पर भी और
पुण्यपुरी के संचित पुण्य की कहीं
नहीं बराबरी,—अथवा विक्रम की भी!
किंतु हमें परशुधरक्षेत्रनिवासियों
जानपदों को भी धन्यता प्रतीत हो
यह भी तो स्वाभाविक ही है, जी!

इस विजयश्री का सेनापति महान्
हैं अपने कोंकण से, इसी इलाके—
के वन का इक गरुड-भरारी
जिस कुल में अखिल महाराष्ट्रशक्ति-ना
अखिल हिंदू साम्राज्योत्कर्ष आज है
केंद्रित : वह धन्य, महा, कुल सुधन्य है
गोद में इसी कोंकण भूमि की पला!
परशुधर क्षेत्र में प्रति परशुराम-से
वीर जनम लेते हैं आज भी! कलि में
स्थापना करने हेतु धर्मराज्य की!
वीर शिवाजी के सम विजय प्राप्त की
सत्य आज लेकिन तुमने ही सुन लिया
कविवर की उक्ति के उत्तरार्ध को
कि विजय जो आज प्राप्त हुई है हमें
उसकी रक्षा भी हमको अब करनी है!
इस कर्तव्य की पूर्ति करने हेतु
कार्यधुरंधर शिंदे-होळकरादि
श्रीमंत यशस्वी नाना और भाऊ के
नेतृत्व में सतत कार्यमग्न हैं सभी
उत्तर में, पूरब में औ' दक्षिण में;
पर पश्चिम सागर पर हिंदू विजय का
ध्वज है निजदोदंड पर निभाना
कार्य यह विशिष्ट, पृथक्भार यह महान्—
परशुधरक्षेत्र का दायित्व है यही!
उत्तर-सीमा पर जैसे तुर्क ही
वैसे ही पश्चिम-सागर-सीमा पर
द्वार पर सदा सतर्क दुष्ट ये सभी
फिरंगी, हबशी सारे अपनी हवस को
लेकर देखा करते हैं कब, कैसे
छेद पड़ता है हमरे धैर्य-बुर्ज को।
आज तक कभी इन मार्गस्थ कंटकों—
को उखाड़ देने को समय ना मिला

कालसर्प जो महाभयंकर विषैला
इस स्वराज्य मार्ग को रोक रहा था,
मातृभूमि को कसकर अपनी लपेट में
विद्ध कर रहा था जो तुर्क-सर्प ही,
उससे ही लड़ने में, और पचाने—
में उसका विष दुर्धर, हमरी ताकत का—
व्यय करना अद्यावधि अनिवार्य हुआ था।
विश्वरूप नाटक में अगले ही अंक का
दृश्य कौन सा होगा, उसे न कोई—
भी बता सकता है निश्चित रूप में!
किंतु अभी भी स्थिति में तो इन तीनों
हबशी, अंग्रेज, पुर्तुगीज बलों की
औकात न मार्ग स्थिति काँटों से अधिक!
यदि उनको ही उखाड़ देने में हम
उत्तर के अखिल-हिंदू-साम्राज्य-स्थापना
के महान् कार्य को छोड़, लग जाते
तो निष्फल, हास्यास्पद और भयानक
कृत्य वही बन जाता, जैसे कि राह पर
कृष्ण-सर्प के डसने पर भी कोई
काँटों को चुन-चुनकर निकालता रहे!
इतने पर यदि अगली पीढ़ी ने भी
[२७]यादवों की भाँति इन काँटों को ही
निजघातार्थ प्रयुक्त कर लिया कभी
तो वह पागलपन उस पीढ़ी का ही!
उत्तर-दिग्विजय वाले कार्य को किंतु
बस में लाया है अब इस विजयश्री ने
अब तो इन काँटों को उखाड़ फेंक दें
राह को करेंगे अब निष्कंटक ही
क्योंकि तृण ने क्षुद्र यादव-कलह में
कुलनाशक मुसल का रूप लिया था
कौन कहे! अब नूतन यादवी दरम्यान
काँटे ये बन जाएँ प्राणघातक

बाणों का रूप भयंकर लें ये तब!
चिंता यह भारत में न है किसी को
श्रीमत् नाना केवल अनुभव करते हैं!
इसीलिए बहुशः अति कटु, फिर भी
ज्ञातिकलह करना भी पड़ा उनको
वीर तुळाजी के संग! हाय! यदि होता
वह कम मदांध-या होता अधिक प्रबल ही!
व्यर्थ न हो जाती वीरता उसकी!
बलमत्त न होता : तो राष्ट्रहितार्थम्
आज्ञाकारी बनता राष्ट्र प्रमुख का।
प्रबल अधिक होता यदि : तो भारत की
राष्ट्रधुरा ले लेता स्कंधों पर अपने
किंतु अखिल हिंदूराष्ट्र की धुरा को
लेने की हिम्मत औ' पात्रता, स्थिति
एक भी न होते अनुकूल, हट गया
एतद्गुणगणभूषित जो स्वयं, स्वयं
राष्ट्र का कुशल केंद्र प्रत्यक्ष ही जो,
ऐसे प्रधान पंत का न द्वेष केवल,
बल्कि रण में विरोध करने सरसाया!
कोंकण के, भारत के मंगल हेतु
मुख्य रूप से जो जरूर पश्चिमी
सिंधु स्वातंत्र्य, वही साध्य न ऐसे
सत्ता के भंग में, जलबल के ऐसे
एक मुखाभाव से, यही देखकर
[२८]श्रीमंत को करना पड़ा उसका विनाश ही
अभिमान तुळाजी का था राष्ट्रघात की
फिर भी यदि देरी से ही न सही, पर
धीर दमाजी अथवा वीर रघूजी
की तरह समाप्त भी कर लेता खुद का
राष्ट्रघात करने वाला हठ तुळाजी,
तो श्रीमत् नागा भी बचाते उसे।
पर घमंड से ब्राह्मण और प्रजा को

कष्ट दिए; दुष्ट कृत्य बर्बर सम ही
कापुरुषत्व उसी का था जबकि
श्रीमंत द्वारा भेजे पूजनीय-से
राजदूतपुरुषों की नाकों को ही
काट दिया, भेजा वापिस उसी दुष्ट ने,
छत्रपति राजा को भी असह्य था,
—राष्ट्र रहा दूर! किंतु निज भाई से
मानाजीराव सम सौम्य सुज्ञ भी
भाई से सतत बैर करना हकनाक,
—यह घमंड-दर्प ही नाश कर गया।
नवदुर्योधनसम, 'सूच्यग्रमृत्तिका—
के खातिर' बस पूरा राज्य डुबो दिया!
फिर भी यह वीर अब नष्ट हो गया
दुःखद ही, अनुशोच्य ही बात हो गई।
श्रीमंत हमारे और तुळोजी हमारा,
पर हिंदूश्रीमत्साम्राज्य दृष्टि से
मान लिया; और यदि वीर तुळाजी
नाना के स्थान, और वे भी उसके
होते : तो भी नाना के विनाश में
कहता मैं यही! शोकविद्ध चित्त से!!
किंतु इस अप्रिय गृहकलह से भी—
अप्रिय, अनुशोच्य भी महसूस हुआ था
स्वयं श्रीमंत को, और जिसी का
आश्रय कर लिया था निरुपाय रूप में
फिर भी यह कृत्य हुआ था उनसे भी
परकीयों की मदद गृहकलह में ले ली!
दुर्भाग्य से हिंदुओं की यह आदत
आत्मघात इतना होने पर भी
पूर्णतः न छूट गई आत्मघातका
अक्षम्य है दोष यही : किंतु यह दोष
है अखिल राष्ट्र का! न किसी एक व्यक्ति का!
जब तक सब अन्य लोग गृहकलह में

परकीयों की सहायता लेते हैं
तब तक किसी एक ने निरुपाय से कभी
निंदनीय कार्य यही स्वयं कर लिया
और फिर विशेष रूप से अंतिमत:
कार्य होने पर उस निंद्य साधन को
दीर्ण, चूर्ण पूर्णरूप स्वयं कर दिया
तो वह दोष हुआ परिस्थिति का ही
जब व्यंकोजी ने विजापुर वालों की
सहायता माँगी, तब श्रीशिवाजी ने—
भी कुत्बशाही को मित्र बनाया
और बाद में सारी सल्तनतों का
परधर्मी, पूर्ण नाश कर दिया था
भू पर हिंदू साम्राज्य की स्थापना हेतु!
नित्य बैर रखते जो हिंदू धर्म से
ऐसे मुगलों से भी नजदीकी का
अपराध न महसूस हुआ ताराऊ को
जहाँ सहायता परकीयों से लेकर
ताराऊ सहित स्वयं वीर तुळाजी
पेशवा-विनाश के लिए लड़ पड़ा :
आंग्रे के ही कुल में एक बंधु ही
बंधु के विनाश हेतु अंग्रेजों को
लाया था सहायतार्थ, और भी जहाँ
हिंदू-शत्रु दैत्य शिद्दि आ गया जभी
मानाजीराव से युद्ध के लिए
तब तुळाजी ने न दी माँगने पर भी
सहायता, तब ऐसे तुळाजी को ही
दंड देने खातिर 'कंटकेन हि
कंटकं' नीति को मानना पड़ा!
और यदि नाना भी अंग्रेजों से
संधि न करते बहुत चतुराई से
तो आगे चलकर प्रत्यक्ष समर में
नाना के शत्रु तुळाजी सहित ही

अंग्रेजों को भी अपने साथ ही लिये
नाना के विनाश का षड्यंत्र रचाते—
कौन दे इसका भरोसा? कौन क्या कहे?
अंग्रेजों के बिन नहीं नाश तुळाजी का;
जितना जब तक वह; तब तक नौबल
एककेंद्र सत्ता को पा न सकेगा;
नौ साधन ना प्रबल तो स्वसिंधु की कभी
स्वतंत्रता कायम रखना न संभव;
इसीलिए आंग्लादिक परकीय शत्रु के
नाश के लिए ही लिया अंग्रेज-मदद को
औ' वह भी रद्दी का मात्र एक ही
बाणकोट का टुकड़ा फेंक सामने
तुळाजी के बिन और किसी को अंग्रेजों—
को हराना मुशकिल है, न बात यह!
यदि ऐसा होता तो पाप था जरूर
नाश तुळाजी का, अक्षम्य था तभी
जा रहा तुळाजी तब कोई न जा रही
वीरता महाराष्ट्र देश की तभी!
जा रहा तुळाजी, पर उस जंग से सभी
कोंकण का भूबल औ' सिंधुबल अभी
हो रहा एककेंद्र, एकाधीन! मराठी
शिवपूर्व त्रस्त, वृकग्रस्त वह कहाँ
और कहाँ कोंकण स्वतंत्र आज का!
त्रस्त आज वे ही वृक हिंस्र! इसलिए
तीन बिलों के बाहर एक भी कदम
बढ़ा न सकते हैं! अंदर भी भय!
किंतु अभी उन तीनों बिलों को ही बस
मुंबई-गोवा—और जंजीरा नाम के
उखाड़; परलोभ-वृक नृशंस-सा
नामशेष करके, और सिंधु पूर्ण यह
निर्वैर, स्वांकित, निरुपद्रवी करें
शीघ्र, बद्धपरिकर बन चलो, उठो

कोंकण की भू स्वतंत्र बन गई जैसे
वैसे कोंकण की सिंधु-स्वतंत्रता
हासिल करने खातिर उठो, सुवीरों!
और वह स्वतंत्रता जिसके बिन कभी
सुरक्षित न हो सकेगी यह सुनिश्चित है
ऐसे नौसाधन को विधर्मि दुष्टता—
के प्रति दुर्जय बना लो अब तुम भी!
हे रत्नागिरि! अंजनवेल! यहाँ के
सारे ही सिंधु-पुरों! खनखनाहट करके
भर दो तुम सारा नभ रणनौकाओं से
घणित, रणावित, अहर्निश, सहस्रशः!
तरह-तरह की विभिन्न नौकाएँ सारी
चीन और विलायत तक जानेवाली
व्यापारी, जूझारू, मजबूत पाल की!!
नौशिल्पी कौन हमारे समान है,
नौ रण में कौन हमें हरा सके आज,
कोंकण के नौशिल्पाभिज्ञ लोग हम!
कोंकण के नौ-रण-शूर लोग हम!
यह विनति, उपदेश भी, न मेरा केवल
अकेले का; पर है आज्ञा ही मान लो
पंत श्रीमंत प्रभु पेशवा स्वयं
करते हैं आज जयोत्सव प्रसंग में
मेरे द्वारा ही सब मराठों को!
एककेंद्र नौसाधन; अग्रणी स्वयं
श्रीमंत हैं; जनक है वीर शिवाजी;
ये सावंत; और ये मानाजीराव
सरदार हैं प्रमुख जहाँ; और जूझकर
जिसने हबसाण-फिरंगाण-नौबल को
जीत लिया युद्ध में : सिंधुदल भी वह
महाराष्ट्र का, शीघ्र ही हिंदू सिंधु के
नक्रों को जान से मार ही देगा!!
या पश्चिम सिंधु-स्वातंत्र्य-समर में

चारों ओर कर परिधि; एक बनाकर
रणनौकाओं का बेड़ा; उस पर से
बाँध मोरचा मारक रणकौशल से;
तोपों की मार करेगा भयानक
नौबल यह : और मराठी भू सेना
धकेल देगी यहाँ से समुद्र में
कोलकाता-कर्नाटक-मुंबई के प्रति
ताम्रों को पूरे ही : तब कहीं स्वयं
पश्चिम सिंधु स्वातंत्र्य जीतकर
हिंदू-सिंधु भी स्वतंत्र होंगे ही स्वयं!
तो भारत वीरो! अब भूमि के संग ही
भारतीय सिंधु की स्वतंत्रता अभी
जीत लेने को नौसाधन बना लो!!
नौसाधन वह, वह नौसेना ही
उदित हिंदू राष्ट्र की जिस दिन कभी
सिंधु की लहरों पर होकर सवार ही
तोपों की दूरबीन से ही पहरा
देगी अनिमिष प्रबल मातृभूमि के
दूरस्थ भविष्य पर, विचरण करते जल में,
उसी दिवस ले लेगी लब्ध आज जो
हिंदू स्वातंत्र्य चिरस्थायिता सत्य!!
ऐसा हितकारक, उत्तेजक भाषण
करके जब सिंधु मुख्य बैठ ही गए
तब पुनरपि राजमुख्य उठ खड़े हुए
'सत्य और हितकारी सिंधुमुख्य ने
आज्ञा जो प्रभु की औ' स्वयं अपनी भी
अभी-अभी स्वमुख से हमें बता दी
शिरसा वंदनीय है : समयोचित है :
क्योंकि महोत्सव में अब मशगुल होकर
भावी कार्य को हम सब भूल न जाएँ!
अंग्रेजों को हमने पूर्ण समझ लिया!
उत्तर की विजय महान् आज मिल गई

अब मौका पाकर उन्हें भी देखेंगे!

[२९]सिंधुविजय का उत्सव आज जिस तरह
करते हैं, आशा है शीघ्र ही वैसे
[३०]सिंधुविजय का उत्सव वह मनाएँगे
जेतृत्वप्रमद भला म्लेच्छ शत्रु का
आज है निहत; भला उन म्लेच्छों की
अकड़ का शल्य आज उखाड़ दिया है;
फिर भी हे हिंदुजनो, भूल न जाओ
कि मातृभूमि का भयद घाव अभी ना
भर गया है! जैसे कवि ने कहा है
वैसे 'वे हूण कहाँ हैं?' ऐसी पृच्छा
करने की क्षमता न अभी प्राप्त हमें है!
एतदर्थ ऐसे विजयोत्सव में भी
उचित अगर कोई हम कार्य करेंगे
तो यही कि अपदहृत जातिबंधुओं—
को रिपु कर से धर्ममुक्त कराके
जातिहृदय के उन गहरे घावों को
ओजस्वी औषधि प्रदान कर देंगे!
तो फिर पहले से निश्चित जो किया
शुद्धियज्ञ हमने हैं कल के लिए
वही होगा विजयोत्सव उचित-सा भला
तिस पर भी राजदूत ने अभी कहा
जिस कविवर ने गाया मधुर गीत अब
—वह इसी शुद्धियज्ञपावक के प्रति
बनने वाला है पावनीय कल!
आश्चर्य से चकित दृष्टि आप सभी की
पूछ रही है, कल? कैसे? हाँ जी
गीत के प्रारंभ में कविवर ने स्वयं
'पतित' शब्द से परिचय अपना कराया :
वह न केवल यूँ ही! पर सत्य शब्दशः!!
श्रीमंत ने इस खत में त्रुटित रूप में
वृत्त लिखा है मुझको—और फिर कल

होगा सब साग्र विदित यहीं सबको भी!
कहकर ऐसे, फिर राजमुख्य ने
सभा समाप्त भी कर दी आश्चर्य-सिंधु में।
जन जत्थे-जत्थे में जाते-जाते
बात यही करते थे तर्क-वितर्क से
राजदूत कौन? पतित कैसे? सोच ले
कोई; कोई मन में देख रहा था अटक छावनी!
उस विजय में बेटा, बाप या कोई
स्वकीय कैसे वीरता दिखा गया होगा?
कौन सी उपाधि ले आएगा वहाँ से?
या कोई उपहार शौर्यगौरव का?
या कोई डर भी रहा था मन में
क्या अपने स्वकीय को देख पाएँगे?
'फिर भी वह वीरगति!' सांत्वना मिले,
'श्रीमंत ही हमसे मिलेंगे वहाँ :'
कोई सवाल पूछे, 'क्या अटक नदी के
भी आगे जाएगी सेना हमारी?'
कोई निंदा करे, 'हिंदू क्या करें!'
'क्यों नहीं जी? वह भी कर दिखाएँ!'
आशाओं को घटित मानकर कहीं
उच्छृंखल जयनिनाद गरजता रहे :
भावी संकट को कहीं देत बढ़ावा
दुर्भविष्यवादी मायूस चल पड़े :
और उधर तोपों के धमाके सही
हो रहे थे रुक-रुककर लगातार :
उधर उन राष्ट्रीया प्रीति-भक्ति-भी—
आशा - अपशंका - उत्साह - भावना—
भावों की मानसयज्ञाग्निहुतों की
अग्निज्वाला जैसी दीप्त वह ध्वजा :
—वह भगवा झंडा भी सतत आसमाँ—
में फहराता था सबसे भी ऊपर!!
उसी ग्राम के अहाते में इक था

रम्य पुष्पलता पादप—संकीर्ण तपोवन
पुराणप्रथित एक सिंधु किनारे।
वेलावलिशोभित पुन्नाग सुगंधित
कोकिलादि-खग-कूजित मृगमनोज्ञ-से
तपोवन के भीतर इक तीर्थ मनोहर
विमल-सलिल सलिलज-परिवेष्टन के बीच
नारियल, आम, कटहल, पूग, कर्दली—
तरुलता स्वभक्तिवश गूँथती चली
शाखाएँ उत्फुल्लक फल-फूलों में
रचाते रमणीय-सा वितान नभ में
तीर्थ के रविकिरणोज्ज्वल जल पर ही।
दिन दूजा उगते ही, पुण्य उषा के
स्तोत्रों को गाते द्विज स्नात पवित्र
शतशः सत्त्वचरण दीखने लगे
जाते हुए कानन में उस पावन-से।
तीर्थ के ही इर्दगिर्द जो समतल-भू
थी, वह भर गई पूर्ण रूप से
समिधाओं, दर्भों, घृततिलादि सभी से,
यज्ञ के साहित्य से पुण्य पावन
शीघ्र वन घोषित औ' दीप्त बन गया
स्वर-विशुद्ध समुदीरित वेदपदों से
तथा हविर्लुब्ध हुताशार्चितजन से।
स्निग्ध सुगंधित शोभन हवन धूम भी
लोलुप से दूर नहीं जा रहे तभी
इर्दगिर्द नभ में ही विमल रौप्यक
जालों में लोभों के अपने हद को
गूँथते रहे आशिक जत्थों में वे
जैसे कि देवता विमान में रहे!
तब जन भी देखने अपूर्व-से उसी
शुद्धि समारोह को, कानन में सभी
सोत्सव स्वधर्मनिरत पधारने लगे।
पौर-वृद्ध आगे औ' समाज सारा

यज्ञशरण सीमा पर वेषभूषण में
दूर तक फैल गया जैसे कि दूजा
वेलावन सिंधु किनारे खिल गया था
तभी सादर भीड़ से ध्वनि आ गई
'मार्ग! हटो! बंधु को मार्ग दो, हटो!'
और उसी राजदूत वृद्धयुवा के
नेतृत्व में समूह शत पतित जनों का
आ पहुँचा उस पावन तीर्थ के प्रति,
फिर सचैल सारे ही पतित तीर्थ में
स्नान करके आए। और वस्त्र वे
जीर्ण, शीर्ण, पुरातन पाप-से सुदूर
फेंककर सभी ने पहने शुभ-से
नवीन शुद्ध कटिवस्त्र मंत्रपूत औ'
श्मश्रू का विधि समाप्त होते ही फिर
हर सिर पर विराजमान शास्त्रशिखा जो
हिंदुओं की अस्मिता और हृदय में
फिर सबको अभ्यंग स्नान कराने
विप्रवर्य आवाहन करने लगे सभी
हे गंगे, हे यमुने, हे सरस्वती
सिंधु, नर्मदे, गोदे पतितपावने
हे कृष्णे, कावेरी आओ उदक में!
अखिल भारतीय जीव नैकतास्मृति—
संस्कारोजाग्रत् स्वजातिभावना—
प्रीत, पतित सरोवर में शरीर धोकर
हृदयांत:करण सहित विमल बन गए।
विश्वचक्षुसम भास्वान् भास्कर के प्रति
बद्धांजलि अर्घ्यदान किया सभी ने,
तट पर स्थित जो सवत्स धेनु मंगला
उसे स्पर्श करके औ' पतितपावन
यज्ञपावक के शुभ दर्शन करके,
सालंकृत सपरिधान महोत्सव करके,
जयध्वनि की पुनरपि हो गई गर्जना

धर्म सनातन की जय! जय पुराण की!
अखिल जनों का उसको साथ भी मिला
कानन ही आनन बन गया समूर्त-सा
लोकांतर्गत राष्ट्रोत्साह भक्ति का!
तभी हुई ध्वनि प्रतिध्वनित 'धर्म की
हिंदू धर्म की जय! जय रामचंद्र की!!'
प्रेम से जन पुनरागत लोगों का
आलिंगन कर रहे चिरमिलित बंधु-सा
मदहोश हो गए सारे जयघोषों से!
राम नाम प्राशन कर, राम बन गए
सारे के सारे ही! उत्कट प्रेम से
आलिंगन कर रहे हिंदू हिंदू का!
न कोई बुजुर्ग था न कोई बच्चा
ब्राह्मण या अंत्यज! जाति जीवन में ही
जीवभाव विद्रुत हो गया नदियाँ
घुलमिल गईं सिंधु में हिंदुता की!
जय माधव! गोविंद! जयध्वनि के साथ!!
चिरविरही भगिनी को बंधु और वे
जननी को सुत लगा लेते गले अब
याद करके म्लेच्छों की ज्यादतियों को!
बहु रोए मुक्त कंठ कर अपना।
लेकिन इन सबसे ही जातिमिलन वह
हँसाए औ' रुलाए बहु, अधिक किसी के
हृदय को, तो फिर उस कविवर्य
राजदूत युवक के! वह गंभीर-सी
प्रेक्षणीय-सी मुद्रा भालविशाला
अनुवेदन रहित हो गई चंचला
मानो सुख-दुःखों को, लोकभाव को
दरशाता है कोई विमल आईना!
जातिमिलन सुख की वह पहली बाढ़
कम होने पर, उठकर वह राजदूत
सब लोगों को अभिवादन करके

बोला, 'हे बंधुओ! शुद्धि के उपरांत
हम संस्कारहीन पुनरपि स्वयं
विप्रों ने बना दिया संस्कारशील ही—
ऐसे हमको सब देवताओं में
प्रथम दर्शनीय दो प्रमुख देवता
गर्व है शुद्धि पर जिनके हृद में
धर्म का दंड है, शक्ति-शिखा जो
वह भगवा झंडा इक; और दूसरी
वह जो दूर दिख रही है यहाँ से
भग्न, पुरानी, सूनी, वही `समाधि!
पुनर्हिंदुकरण रूप जनिक विधि सारे
हो गए संपन्न और उसके उपरांत
व्रात्यस्तोमादि अन्य ऐच्छिक व्रत भी
हो जाएँगे यथाक्रम उचित रूप में
पर जो मुख्य एक व्रत करता है
रक्त-प्राण हिंदू, वह दर्शन समाधि के!
क्योंकि है यह समाधि जीर्ण उसी की
जिसका ना शेष आज नाम भी कहीं
जो चला गया अपना कर्तव्य निभा के!!
इसी तपोवन में तब इसी भूमि के
धर्मभक्त तेजस्वी विप्र हुए थे
पुर्तुगीजों के पीड़द शासन के बीच
शुद्ध करा लेते थे पतित जनों को
गुप्त रूप से अनुवत्सर पर कभी
अचानक ही रिपु को जब पता चला
पुर्तुगीज सेना तब वहाँ आ गई!
और घेर के उन सब पतित जनों को
पावक उन विप्रों के सहित सर्वतः
कत्लेआम शुरू किया उन्होंने!!
उस वक्त भाग-दौड़ के समय भी
वीर एक गोसावी डट खड़ा रहा!
और दे चुनौती संगीन के प्रति,

खड्ग के प्रति, खंजर के प्रति तभी
गरज उठा : 'मुझे जबर्दस्ती पहले
हे विधर्म दुष्ट! तुमने अपहृत किया था।
भ्रष्ट किया तनु को, पर हृदय हमारा
हिंदू का हिंदू ही रह गया तब से।
आ पहुँचा शास्त्राग्निस्पर्शविधिवशात्
पावन होने मैं यहाँ, परंतु
आपको न है पसंद तो यही सही
शस्त्राग्निस्पर्श शुद्धिकार्य करेगा!
आओ, चीरो इस हृद को! बिंदु भी
उसका अभ्रष्टशक्ति आओ देखो
परमाणु सीमा तक हिंदू है सभी!!'
क्या यह सच है? मानो देखने यही
पुर्तुगीज संगिन उस हृदय में घुसी
आई तब शोणित की बाढ़ उछलकर
प्राण चले गए, फिर भी उसके मुँह से
'हिंदू मैं! हिंदू मैं!' हुई गर्जना!
दैत्य भी स्तिमित हुए आश्चर्य देखकर!!
उसी हुतात्मा की यह जीर्ण समाधि :
वह खड़ा वहीं मुझको अभी दिखता है :
तेजी से शोणित की बाढ़ निकलती
हिंदू मैं! हिंदू मैं! गरज रही है!!
नाम भी न शेष रहा है अब जिसका
नाम चिरंतन बना सत्य उसी का!
नाम रूप निज हुत तब किया उसी ने
इसीलिए नामरूप राष्ट्र को मिला—
धर्मवीरता को जिसने प्राप्त है किया!
दे दें वह धैर्य हमें भक्तियुक्त ही
और दे भगवा ध्वज बाहुशक्ति को!!
कुरेदकर इसे सभी हिंदू जाति के
हृदय पर सत्य यही नित्य विश्व में
धर्म के बिना बल पाशव है, वैसे

धर्म भी अपाहिज है शक्ति के बिना!!'
कहते हुए ऐसे उस राष्ट्रभक्त ने
दंडवत् प्रणाम किया उस समाधि को।
दंडवत् प्रणाम तभी सब लोगों ने
किया उस साधु के समाधि को तुरंत
और उस भगवे झंडे को भी
साधु तथा साधु परित्राण-सुव्रती
शक्तियाँ उभय लोक सिद्ध करत हैं!!
करके फिर फलाहार यथोचित सभी
वनभोजन का मजा लेत प्यार से
तब धिमि-धिमि पखवाज भी बजने लगे
ताल-मृदंगों का भी गजर हो गया।
वह समाज सारा फहराते झंडे
बना-बना के सुरचित व्यूह-पंक्तियाँ
बना रहा संघ भजन गाने वालों के।
निकाला औ' जुलूस हरिनाममंगल।
भाल पर बुक्के का टीका, और प्यार से
डालकर माला फूलों की गले में
ताल हाथ में औ' मुँह में नाम हरि का
लेते गाते नृत्य करते सारे
नवमीलित भाई भी घुल-मिल गए :
पुनरपि ना होंगे अब फिर कभी जुदा!
धिमि-धिमि-धिमि बज रहे पखवाज पूत वे।
एकसाथ, एकहृदय, एकस्वर में
हिंदूमात्र गरज रहा तल्लीन भक्ति में
गोविंद! गोपाल! विट्ठल! प्रभो!
'नेति' का प्रीतिकृत सगुण गान वह
गाते हुए जुलूस भार्गव पहुँचा
फिर चबूतरे वाले प्रांगण में सब
मृदु विचित्र आस्तीर्ण आसनों पर
लोगों ने विश्राम किया सुख-शांति में
हार और गुलदस्ते बाँटे सबको

नव गुलाब जल का सिंचन भी किया
बहुमूल्य इत्र लगाया सबको
और समारोह संपन्न हुआ ऐसा भी
कह दिया मुख्य ने : फिर भी लोग
जाने को न उठ रहे। पर पुनः-पुनः
प्रार्थना कर रहे थे कि कल जो कहा
उसके अनुसार वृत्त कथन करो अब!
मुख्य ने इच्छा लोगों की समझ ली
और आग्रह के साथ स्वयं अतिथि से
कहा, 'कह दो जी अब! प्रभु ने भी
पत्र में लिखा है कि श्रवणीय वृत्त है
म्लेच्छ देश देख विविध रस्म-रीति को
अवलोकन बहुत किया; संकटों का भी
सामना किया, हराया, जिसी शख्स ने;
जिसने रण में अद्‌भुत शौर्य दिखाकर
श्रीभाऊ की प्रीति को प्राप्त भी किया :
क्रूर कडाप्पा के रण में स्वयं अपने
हाथ से नबाव को काट ही दिया
जिसकी तलवार विजय खींच लाई :
ऐसे तुम राजदूत! वृत्त तुम्हारा
सुनने ललचाए हैं सभी! वीर की
कहानियाँ अन्य कवि भी गाते हैं :
पर तुम से कौन यहाँ कवि भी स्थित है?
वीरमणि हो तुम, कविमणि भी हो,
एक व्यक्ति ने दोनों मणियों की शोभा
हड़प ली!—अब लालच को हम दंड
देंगे कि स्वमुख से कथन करो जी
जो है कि कृत्य बहुत हितकारी तुम्हरा।
लोगों की इच्छा का आदर करना
सुख-दुःखों को अपने सच्चे मित्रों—
को बतलाने की इच्छा किसकी न रहती?
विनय, बुद्धि ने बँधारा बँधा था उस पर

स्नेहाग्रह तीव्र तभी वह गंभीर रूप में
युवा राजदूत जैसे दर्शनीय गज;
नजर थी अंतर्मुख वैसी कि वैसी
दिखती थी जैसी थी पहले से ही
इतने भी जात्युत्सव-भाव-भावनाओं—
में उस युवक के चेहरे पर ही
चंचलता के बीच आंतरिक पीड़ा
पृष्ठभूमि चित्र में जैसी दिखती।
ईषस्मित मुख पर किंचित् झलका, पर
क्या था वह सुख का? या दु:ख का ही?
'क्या कहूँ? कहाँ से? फिर भी आपकी
आज्ञा है तो मुझको कहना ही पड़ेगा
बंधुओ! है मेरा मित्र एक जो
न केवल प्रिय मित्र, जान ही मेरी
उसकी स्मृति भी प्रिय है बहु मुझको
वृत्त उसी का मन को लुभानेवाला
श्रवणार्ह है प्रथम, मेरी राय है,
आनुषंगिक क्रम से मेरी कहानी
होगी प्रकट उसी की कहानी में।
वह मेरा मित्र एक दिन शैशव में
माँ का पल्लो पकड़े 'चलो न तुम अभी!
घर चलो!' ऐसे तुतले बोलों से
कहता हुआ खींच रहा था तभी किसी
ने उसका हाथ खींच दूर धकेला
और उसी क्षण शोले भड़क उठे थे
सारा परिसर तुरंत जलने लगा था!
बच्चा था! पिया नहीं दूध अभी तो
उसकी माँ और पिता दोनों चल बसे!!
उम्र चौदह की होगी शुरू अभी-अभी :
तब वह इक दिन समुद्र के तट पर ही,
गोवा के निकट, उसे बीच-बीच में
मिलने आनेवाली अच्छी-सी इक

प्रौढ़ा महिला से तब कहने लगा था
'चाचीजी! ये सारे लोग मुझे जो
लुई नाम से पुकारते हैं वह तो
मुझे कतई अच्छा ना लगता है!' तब
महिला ने मुसकराकर पूछा उससे,
'बेटे! फिर नाम कौन-सा पसंद है तुम्हें?
शंकर कहूँगी तुमको, क्या पसंद है?'
सुनते ही यह नाम जाग्रत् पूर्व स्मृतियाँ
हुईं, नैनों में आँसू आ गए
बच्चे के, तिस पर 'हाय रे पगले!
इतना क्या उसमें है! अब से आगे
शंकर ही कहूँगी मैं' कहकर ऐसे
साध्वी ने उस बेचारे बालक को तब
प्यार से लिया बाँहों में, 'लेकिन शंकर!
अंतुनी के सामने यह अपना नाम
मत कहना, हाँ!' 'क्यों न कहूँ, जी?'
जिज्ञासा से पूछा, 'हा, पगले! तुमको
कह ही देती हूँ रहस्य जो मन में
आज तक मैंने सम्हाल रखा था
बेटे, तुम जो पहली स्मृति बता रहे
थे मुझको, उसमें जो क्रूर हाथ था
तुम को अपनी माता से दूर
खींचने वाला और जलाने वाला
आग के शोलों को, दुष्ट हाथ वह
था इसी अंतुनी का रे मेरे बेटे!!
इसी ने भ्रष्ट किया तुम्हारी माता को
भ्रष्ट किया तुमको भी धर्म डुबोकर
हिंदू तुम्हारी माता औ' हिंदू ही पिता
तिस पर भी ब्रह्मबीज! पर पिता ने
आग की लपटों में वहीं कूद लिया
और तुम्हारी माता ने आग से जले
शरीर को बुझाने हेतु सिंधु में कूदा!

सौंप दिया मुझको यह तुम्हें बताना
उचित समय आने पर, रहस्य कुल का।
तिस पर भी अंतुनी ने ईसाई विधि से
जलसिंचन करके तुम्हें लुई नाम दिया
और दास बनाके रखा तुम्हें घर में
जलसिंचन करने पर बीज बढ़ता है
जलसिंचन यह करने से जलता है
इसीलिए अमंगल संस्कार मिटाकर
मैं मंगल संस्कारों को तुम पर करती
आई हूँ बचपन से, बता-बताकर
तुम्हें कहानियाँ मधुर देवकुलों की
राम की, सीता की तथा कृष्ण की
नंदनंदन श्री कृष्ण-हरि की
बेटे! उस देववंश में जन्म तेरा!
बेटे! वह कुल तुम्हारा, वह धर्म तुम्हारा!!
धर्म अन्य जलसिंचन करते हैं, लेकिन
धर्म तुम्हारा करता अमृतसिंचन!!
पर बेटे, यह सारा वृत्त गुप्त ही
रखना हाँ, राख रखे जैसे अग्नि को
अनुकूल न आवे जब तक काल हमें
असमय यदि सत्कृति कोई भी करे
तो असमय बीजसदृश अपव्यय उसका।
उचित देख मौका हम शीघ्र ही स्वयं
दोनों भी दास्यमुक्त हो सकेंगे।'
सुनकर यह वृत्त उत्क्षोभक गुप्त ही
बच्चे के मन में प्रतिशब्द प्रश्न ही
किंतु अंतिमतः उसने पूछ ही लिया
'चाचीजी, तो तुम भी हो दास्य में यहाँ
मुझ जैसी हो? कैसे? कब से?
माँ मेरी कब मिली? बताइये जी'
'सुन बेटे! वृद्ध पीढ़ी निज अपूर्ण-सी
आशाओं को पूरी करने हेतु .

नई पीढ़ी के बिना किससे कहेगी
दुःख जो भोगा था कभी उन्होंने!
सुनो तो! हिंदू तुम हो, दुःख हिंदू का!
साष्टी से सटकर ही गाँव हमारा।
वंश मराठी; शादी में मुझे दिया
देशमुख कुल में, जब मैं बारह की थी
नवयौवन जब मैंने प्राप्त कर लिया
रूप बहुत आकर्षक तभी पा लिया
गौरी के त्योहारों में इक दिन को
हलदीकुंकुम-समारोह के लिए
मैं औ' मेरी जेठानी सुंदर
दोनों जा रही थीं जब सहेली के घर
तभी अचानक पुर्तुगीज भेड़िए
हिरनियों के जत्थे पर हमारे
टूट पड़े औ' पकड़ा आठ-दस कहीं
लड़कियों को, मुझको, जेठानी को।
उसी रात दैववशात् हम दोनों को
किसी एक के लिए नियुक्त कर दिया
उस कामातुर से जेठानी ने कहा,
'तुम सुगौर! मैं लुब्धा; तुमसे भी ज्यादा!
किंतु आज दिन रजांत, अतः नहाकर
सुरत क्रीड़ा कर लें; यह देखो कुआँ
पानी ला दो मुझको, कामलुब्ध वह
जब कुएँ पर पानी खींचने गया
तब धैर्य जुटाकर मेरी जेठानी ने
दैत्य को धकेल दिया धड़ाम से तभी
कुएँ में उस! और हाथ मेरा पकड़े
जंगल में भाग पड़ी मुझको लेकर
रात भर छिपे रहे, भोर के समय
मेरी जेठानी बहु धीरजवाली
लेकर मुझको लौटी गाँव हमारे
हर्ष से ही हम दोनों सोच रही थीं

अभिनंदन कैसा सब करेंगे अभी
शौर्य जो दिखाया था हम दोनों ने
ग्रामवृद्ध, सास-ससुर, सहेलियाँ सभी
हर्ष भरी कल्पनाएँ करते-करते
घर आकर दोनों ही जब खड़ी रहीं
देख हमें गायें भी रँभाने लगीं
प्रतिपालित बछड़े भी चाटने लगे
फिर उठकर लोग हमारे घरवाले
जब बाहर निकल पड़े, तब हम दोनों ने
प्रियकर की बाँहों में रोना चाहा
अश्रुपूर्ण नैनों से प्रणाम भी किया,
तभी सहसा 'दूर! दूर!' गर्जना हुई;
सुखदु:खावेग हमारा ठहर गया!
क्रूर किसी श्वापद को देखकर जैसे
चिल्ला-चिल्लाकर ही भगा देते हैं
उसी तरह, बेटे, प्रिय लोगों ने ही
हाय! हमें उसी वक्त भगा ही दिया!
सौगंध के साथ ही बताया मैंने
'हम दोनों हैं शुद्ध! भ्रष्ट नहीं हैं!'
किंतु एक ही निर्दय उठी गर्जना
'गाँव से निकल जाओ! मुँह काला कर दो!'
लौटे हम जंगल फिर, तब फिर से ही
गायें रँभाई थीं बहुत प्यार से,
बछड़े भी चाटने हेतु रुक गए,
—पर चरवाहे ने हमसे कुछ नहीं कहा!!
लौटीं फिर जंगल हम बेसहारा
रात भर रोती रहीं इक-दूजे के संग।
तेजस्वी जेठानी ने कहा मुझसे
'हम क्यों रोती रहें? बस अभी करो।
लंबी मूँछोंवाले उन पुरुषों को अगर
शर्म न कोई होती है यदि इसमें
तो फिर हम ही क्यों शर्म अब करें!

जाएँगे अब गोवा! देवस्त्रियों से
भी ज्यादा सुंदर हैं हम दोनों ही :
प्रबल पुर्तुगीज हमें चाह रहे हैं
वे ही कर लेंगे कद्र उचित हमारी
इधर इन क्लीबों के पाक घरों में
रोते-रोते क्यों सड़ जाएँ हम?'
'छी! छी!' सहलाते उसको कहा मैंने,
'जेठानी जी! यह क्या? यदि वे म्लेच्छ
बलात्कार हमसे कर चुके हैं या नहीं
इसके बारे में समाज को कभी
विश्वास भी होगा, बस, हमारे कथन से?
वंशहितार्थ भ्रष्ट स्त्री त्याज्य सर्वदा'
गुस्से से उबल पड़ी सुंदरी इस पर
क्रोध से कहा उसने, 'भ्रष्ट कौन है?
जानो तुम शय्या अस्पृष्ट हमारी!
किंतु यद्यपि होती स्पृष्ट वह जबरन
तो भी क्या भ्रष्ट हमें कहना उचित है?
देवरानि, जिन औरों को कल ले गए
उनके साथ बलात्कार किया है!
तो भी क्या भ्रष्ट उन्हें मान लोगी तुम?
जिस भी स्त्री को अविंध जबरन ले जा
बलात्कार करता है, भ्रष्ट न वह स्त्री
किंतु भ्रष्ट पति उसका, रक्षा न कर सका!!
सिंह की पत्नी को शृगाल न भोगता है
ये मुए शृगाल से कायर हैं, जो
अनुरक्ता भार्या की रक्षा न कर सकें!!
तो फिर महिलाओं के बदले अपने ही
हाथों में चूड़ियाँ क्यों न भरवाते?
फिर हम ले लेते खड्ग हाथ में
शृगाल रोब जमा रहे किंतु सिंह-सा!
कहते हैं, दूषित कुल-गेह हुआ है!
अर्धांगिनी अपनी नजरों के सामने

ले गए रिपु औ' ये लौट गए घर
तब गृह ना दूषित, ना समाज भी हुआ!
किंतु पुरुष भी जिन्हें मार ना सके
ऐसे रिपु का वध करके स्वयं को
अस्पृष्टा वापस जो घर ले आई
ऐसी सती भ्रष्ट करती है समाज को!!
अर्धांगिनी अपनी परबलाकृता
शय्या पर लेने से लगत है घृणा :
और यदि वह वैसे ही रिपु के ही
बिस्तर पर लेटी रहे, तो न कलंक!!
थूकती हूँ मैं ऐसे शास्त्र वचन पर'
निष्पाप क्रोधाग्नि को सांत्वना करके
कहा मैंने सहला के 'सत्य है, लेकिन
राक्षस जो दुर्बलों निरुपद्रवशीलों को
अपनी बर्बरता से परेशान करके
ले जाते हैं उनकी सुंदर स्त्रियों को
धर्म मानकर अपना, ऐसे लोगों की
आसुरता से भी वह बहिष्कार-रीति
हिंदुओं की है अक्षम्य अमानुष।
अति सहनशीलता है निंदनीय ही :
क्या उपद्रवकारिता वांच्छनीय है?
फिर उन मुस्टंडों नराधमों को
रिपु हैं जो धर्म के, ज्ञाति-कुलों के,
उनको स्वीकृत करना क्या उचित है?
निजजाति प्रियतम होती हैं सबको
निजजननी भोली-भाली भी जैसी!
त्याग है कितना! पर यदि स्वजन ने
अपराध के बिना अपना वध भी किया
तो मरते-मरते उसके मंगल की
प्रार्थना करके ही देह त्यागना।
सो खाकर कंद-मूल जो भी मिल जाए
गुजारेंगे दिन अपने जंगल में ही,

आँसुओं को बहाते टप-टप-टप
जेठानी ने मुझको चूम लिया तब
थोड़े ही दिन बाद पर 'सद्धर्म' वहाँ भी
हाय! पहुँचा नरमृगया करते!
ईसा के उपदेशक शस्त्र पकड़कर
संगीन की नोक से बाइबल को
कुरेदने हृदयों पर 'हीदनों'[३१] के—
जो पलटन पावन बना दी थी, वही!
चीखों को सुनते ही भय के मारे,
दोनों भी गाँव की ओर भागीं हम
ग्रामद्वार न पर कोई खोले!
फिर हमको मारपीट करते-करते
सख्ती से बाँधकर अन्यों के संग
रास्ते में ही अपनी कामाग्नि में तभी
बलि चढ़ाई हमरी उन 'संतों' ने
फिर गोवा का जो प्रमुख हाट था
वहाँ ले गए हमको अलग बाँधकर
गराँव से जैसे पशु बाँधा जाए!
लोग हाट में जैसी सब्जी, तोरियाँ
वैसे हमको वहाँ बेचने लगे।
बच्चे को कोइ खरीद ले, कोइ माँ को
भाई को कोइ अलग, पति को, उसको भी
गराँव से खींचत है, कोई करुणा
ईसा के संतों को कतई नहीं थी!
सत्य धर्मविहित कर्म यह था उनका!
ले गया एक मुझे तीस रुपयों में
जेठानी को कोई और! हाय रे—
जेठानी के जाने से मेरे प्राण
निकलने लगे—उसके विरह से!
किंतु देर तक वह साक्षात् आग ना छिपी
दुःख के ईंधन में उसके हृदय में
भड़क उठी, जो उसको ले गया था

एक पादरी गुलाम बनाकर घर में
उसको उसने मारा छुरी घोंपकर!
बाँधकर फिर उसको चलती गाड़ी को
गोवा के रास्तों में खीच ले गए
तब ईसा भक्तों की उस स्थिति में भी
निंदा उसने कर ली क्रोध से बहु।
तब उस घायल लहूलुहान युवति को
उसी अवस्था में जबरन फेंक ही दिया
'सांत काज' के उस भयानक सुरंग में
लेश वायु या प्रकाश नव न छोड़कर
सांत काज़ वाले उस 'पवित्र गृह' के
भीतर जो अन्य हिंदू बंदी थे उनको
आज जैसे क्वचित् वैसे तब नित्य
पत्थरों पर पटकाकर कपड़ों जैसे,
अंत में लाते थे वधशिला समीप,
वैसे उसको भी लाए उनके ही बीच।
फिर जिस भी क्लिष्ट जीव ने पी लिया
ईसा-जंल, वह छूटा—पर वह न थी उनमें!—
वह थी जो धर्मवीर शेष रहे उनमें!!
फिर उसे गिराकर, पादरी बैठ गया।
सीने पर घुटना दबाकर उस पर
आघात किया और उसी के सीने पर
चिल्लाया 'जेंतीव! कौन भूत है तू?
कौन सा दुष्ट मार्ग धर्म है तेरा?'
कच्चा वह वक्षस्थल! बोझ न सहने
सीखा था अभी तक दुधमुँहे बच्चे का!
उस पर वह भैंसा पादरी वैसे
चढ़कर कहता था, 'बोल जेंतीव रे!
कौन सा दुष्ट मार्ग धर्म है तेरा?'
'गोविंद! गोपाल!! हे दया सागर रे!
कृष्ण कन्हैया प्रभु रे, कृष्ण कन्हैया!'
नाद मुँह से आया मधु सुंदरी के!!

तब हाथों को उसके काट जलाया
जोड़ों की अस्थियाँ—घुटने की, टखने की—
घन के नीचे कुचलीं मार-मारकर
अंत में कंठनाल जोर से दबाया
तब साँस घुटकर ही प्राण चले गए!!
उसने तो एक पुर्तुगीज मारा था
किंतु जिन्होंने इक पिस्सू भी न मारा
पुर्तुगीजों की, प्रत्याघात करके ही
जो केवल हिंदू धर्म छोड़ ना सके
ऐसे दो लोगों को भी यही किया!
बिलकुल पीड़ाएँ ऐसी ही थीं उनकी!!
सांतकाज के आए संत इस तरह
अर्पित शोणित में धो के ईसा के पैर
नरमांस का उसको भोग चढ़ाया!
मेरी गति भिन्न हुई खरीदा मुझको,
जिसने दासी बनाने हेतु वह
पुर्तुगीज खुद ही पर दास बन गया
मेरी इस जालिम सुंदर तनु का
अतः मुझसे कोई भी प्रश्न ना किया
'तुम ईसाई हो या हिंदू' इस तरह
तभी अद्‌भुत वीरता जेठानी की
सुन ली मैंने हाट में, शीघ्र ही तभी
मन में मेरे भी प्रेरणा उदित हुई
अपने भी प्राणों की बलि चढ़ाने की!
तब मेरी सेवा में एक वृद्ध-सी
स्त्री नियुक्त थी, उसने कहा मुझसे,
'सुन बेटी! मैं हिंदू, देह भ्रष्ट है,
पर जो मरते हैं उनकी देह भ्रष्ट ही
करते हैं रिपु पहले! और हृदय तो
भ्रष्ट कोइ कर न सकत है। हृदय है
जो मर गए उनकी भाँति हिंदू ही—
फिर मरते हो क्यों सारे ही हिंदू?

बेटी, खलयुद्ध में छल साधन है!
जो मरे, वे धन्य ही हैं! धर्म का ऋण
तुरंत चुकाया उन्होंने गिन-गिनकर
किंतु जो बचे जिंदा वे भी न अधन्य
—यदि पूजा करते हैं धर्म की दिल में
और धर्म की जय के लिए इन्होंने
जीवन पूरा अपना अर्पण ही किया
तो वे भी धर्मऋण तुरंत ना सही
पर चुका देते हैं पूर्ण रूप से!
प्रत्याघात के लिए न शक्त जो
मृत्यु से कर देता अ्न्याय को निरर्थ
प्रत्याघात के लिए शक्त बनने हेतु
जो जिंदा रहता है वह अन्याय को मारे
जेठानी ने तेरी, रिपु को मारकर
व्यक्तिप्रतिकार धर्म को निभा लिया।
और व्यक्ति प्रतिकारों की वीरता यदि
पुनः-पुनः दिखाई दे, तो हिंदुजनों की
स्थिति न बनेगी ज्यादा बुरी और भी
लोग साँप से डरते हैं, न शशक से।
यदि राष्ट्र-प्रतिकार ही पूर्ण रूप से
निपात कर पाएगा राक्षसों का
तो तू इस राष्ट्र प्रतिकार धर्म को
मृत्यु से न डरकर, पर सफल करा दे
आचरण करनेवाली हो यदि ऐसा
पीड़ाएँ सांताकाज की सह लेंगे
सहनीय न सिर्फ बल्कि लाभ देत सर्वदाः
खल जो देते पीड़ा उससे भी उन
पीड़कों को पीड़ा भुगतनी पड़े
ऐसा ही धर्म सत्य नित्य यशस्वी,
मुझको तो शब्द-शब्द वेद वाक्य-सा
लगा उसका, शपथबद्ध मैं बन गई
धर्मजय करवाने उसके ही मार्ग से।

उसने कहा, 'सुनो : क्या देह भ्रष्ट है?
तब तू निज हृदय के मंदिर में ही
श्रीरामस्मृति की मूर्ति बिठा ले :
जैसी श्रीशांतादेवि की मूर्ति
बिठा ली थी गह्वर में विप्रों ने तब
जब अविंध ने क्षेत्रों को भग्न किया था!
और जबर्दस्ती जो ईसाई विधि
करने पड़ें कर ले, जा प्रार्थना करने
गिरिजाघर में : सत्य सनातन होगा जो
तत्त्व वैदिक ही है; उसे सुन श्रद्धा से ही
जो धार्मिक ढोंग तथा खूनी औ' जालिम
सैतान ध्वनि जो सुर में ईश्वर के—
उसे तू मत सुन, जा भूल उसी क्षण!
और तुझे युवा पुत्र जो मिल पाएँ
भ्रष्ट हिंदू पितरों के, मिल जा उनसे
कहती जा उनसे है कौन कहाँ का
कहती जा सिखा रहे हैं पाखंड तुम्हें
कहती जा राष्ट्रधर्म क्या है अपना
कहती जा रावण कैसे भटका था
कहती जा राम ने कैसा वध किया!
जो बनते भय से ही भ्रष्ट वे नहीं
शत्रुता हिंदू धर्म की करते हैं
दूसरी पीढ़ी करती है शत्रुता
उसी पर निर्भर रहते हैं विधर्मीय
उन्हीं को फुसलाकर, शठं प्रति शाठयम्
हम कर लें, यत्न यही बहुत लाभ दे
मैंने ही भ्रष्ट कुलोत्पन्न दस युवक
पाखंडी शिक्षा की पोल खोलकर
और स्वधर्मभक्त बनाकर फिर से
प्रेषित कर दिए थे सावंत के प्रति
हिंदुत्व के लिए समर में लड़ने वाले!
बेटी, इस षड्यंत्र के प्रमुख हैं

सावंतजी, घोरपडे, पेशवा वहाँ'
उस दिन से, बस केवल इसी मार्ग से
आई हूँ यत्न करती यथाशक्ति मैं
तभी महाराष्ट्र धर्मवीर दिग्जयी
आए बाजीराव स्वातंत्र्य-समर में
कोंकण-भू सिंधु समेत जूझने खड़े।
उस युद्ध में षड्यंत्र-प्रमुख हमारे
शत्रु के शिविर का वृत्त बताकर
जनता को स्फुरित कर और भेजकर
हिंदुओं की सेना में युवा सैनिक
गुप्त रूप से जिनको किया प्रशिक्षित
—कर रहे थे सेवा छत्रपति की :
उसी समय माता ने, बेटे, तेरी
म्लेच्छों की पीड़ाएँ असह्य पाकर
अर्पण कर दिया तुझे मुझको औ' कहा,
'मर रही हूँ मैं अब, देवासुर-समर में
यही लो हमारे वंश का योगदान!'
उस रण में अखिल सिंधु तट अहिंदू के
हाथों से मुक्त किया हिंदू वीरों ने
पुर्तुगीजों के कब्जे में था हिंदू तीर
पाँच सौ कोसों से अधिक, आज पर
कोस पाँच भी न बचे उन हाथों में!
पाखंडी पीठों में मंत्र पढ़ाए।
भग्न क्षेत्रों पर फिर कलश चढ़ाए।
और पाँच कोस भी ये रिपु के कर में
रह न जाते गोवा के यदि बहुत
मुशकिल न बन जाती उत्तर में स्थितियाँ!
घाव इस तरह यद्यपि भरता जा रहा
देह का, फिर भी वह घाव हाय रे
आत्मा का अभी भी है रक्तलांच्छित!
उसे अब भरना है : जो भ्रष्ट हो गए
उनकको शुद्ध करा के, औ' फिर पिला के

अमृत इस सनातन धर्म का मधुर'
जैसे कोई पौराणिक कथाकथन हो
वैसे उस साध्वी का कथन अद्भुत
चित्त एकाग्ररूप किशोर ने सुना
और उत्सुकतावश पूछा, 'फिर मुझको
गुप्त रूप में छत्रपति की छावनी में
क्यों न भेज रही तुम? बंदूक का मेरा
निशाना न कभी मृगया में चूक गया था
अथवा घोड़े पर से न कभी गिरा।'
धैर्ययुक्त उत्सुकता सतेज वदन पर
वीर बालक के, देख प्यार से सहलाकर
उसका वदन, फिर उस नारी ने कहा,
'बब्बर शेर की छावनी में जरूर ही
बच्चे! तुम भेजूँगी सचिंत मन बनो—
शीघ्र ही अब गोवा पर अंतिम बार
करने हमला निकल पड़ेंगे पेशवा।
किंतु अभी योजना न पूर्ण हुई है
उत्तर-कर्नाटक फिक्र बहुत बढ़ी है
तब तक अनुसंधान रहेगा उसी का
किंतु एक अन्य कार्य अब करना है
जानो तुम कितना मेरा मालिक अच्छा
पुर्तुगीज होने पर भी हिंदुजनों की
पीड़ाएँ देख बहुत दुःखी होता है
मेरी हर बात वह हमेशा मानता
मुझे या तुझे भी दास न मानता है।
उसी के आधार पर शस्त्रकला की
शिक्षा तुम लोगों को दी' थी मैंने
यद्यपि गुप्त उद्देश्य न ज्ञात है उसे।
वह अब वापस अपनी मातृभूमि के
दर्शनार्थ योरप जाने वाला है
और आग्रह कर रहा कि मैं भी उसके
साथ जाऊँ वहाँ; मुझको भी मन में

लगता है, योरप-यात्रा है लाभकारी ही
वांच्छनीय है कि मैं प्रत्यक्ष रूप में
देख वापस आ जाऊँ मातृभूमि को
कि पुर्तुगीजादि योरोपीय बल कैसा :
सद्‌गुण औ' दुर्गुण हैं कौन से कितने
पाताल में इन पुर्तुगीज लोगों के
राज्य हैं कोलंबियादि क्या यह सत्य है
गुप्त गृहच्छेद और कौन से कैसे?
चल तू भी संग मेरे। शत्रु के ही अब
अखाड़े में सीख ले दाँव सभी तू
अज्ञात जो हैं यहाँ और फिर उन्हें
सिखा दे वापिस आकर अपने लोगों को
जैसे कि किया था कचन देवासुर-रण में,
बेटे, इस योरप के साथ ही आखिर
मल्लयुद्ध हिंदुओं को करना है
चल तू फिर मेरे संग, प्रिय तेरे मुख को
देख अनुभव करूँ गृहसुख मैं वहाँ,
शीघ्र ही अंतुनी के हाथ से मैं भी
मेरे मालिक से तुझे खरीदवा लूँगी
हाँ, लेकिन तब तक एक शब्द भी कभी
होंठों पर मत लाना शंकर, तू भी!'
अल्पावधि में ही फिर समुद्र सफर पर
शंकर उस साध्वी के साथ चल पड़ा
अर्णव वह! अंबर वह! विश्वशक्तियाँ!
प्रत्यक्ष उन्हीं के बीच वह खड़ा हो गया
प्रथम ही इक अणु बिंदु-सा किशोर वह!
रोज सुबह प्रात:संध्या करता था
अत्युदार - संस्कार - स्तिमित - वंदना
'हे अनंत उच्च विरलनी आसमाँ
हे अनंत गूढ-गभीर नील समुद्र!
यह अणु प्रणाम करता है तुम महान को!'
नाना रमणीय कहानियाँ सफर में

अंबु-राशि-मंथन की, सिंधु सेतु की
प्रभव की, प्रलय की, सुन लीं उसने
विविध आकाश वायु जल गति-स्थिति
द्वीपपुंज, रिवाज-रस्म और विभाषा
अवलोकन कर लीं, अनुभव कर लीं
जहाज जिस[३२] सिंधुद्वार में जाता था
वहाँ का मूलवृत्त ढूँढ़-ढूँढ़कर
हिंदू उपनिवेश कहानियाँ पुरानी
हिंदू नौकाओं के हिंदू नाविकों—
से बहुत हर्षचित्त सुन ले लीं।
सुन लिया पुर्तुगीज सिंधु-शौर्य को
सुन लिया कैसे हिंदभूमि का ही
मार्ग दिखा दिया था हिंदू [३३]तिमय्या ने
अंत किया इसलामी क्रौर्य का जभी
द्वीप-द्वीप पुर्तुगीज-भय से अंकित
यह भी सब देख लिया, और यह कैसे
योरोपीय प्रतियोगिता भी चलती है
पुर्तुगीजों की सत्ता नष्ट हो रही
और किस तरह पूर्वी अधिष्ठान ही
शिथिल हुआ महाराष्ट्र के साथ ही;
वसई के अप्पा का नाम सुनकर
आफ्रिका के आगे के लोगों से भी
वह किशोर गर्व से खिल गया मन में
हिंदुओं का नौ-बल कब होगा ऐसे
दिग्विजय करनेवाला यही सोचकर।
पार कर लिया अफ्रीका का द्वीप
और अतलांत में प्रविष्ट हो गया
जाते-जाते इक दिन शाम के समय
किसी खेत की तरह लंबा-चौड़ा
एक भयंकर तिमि उछलकर आया
उसका पीछा करते उसके तुरंत बाद
पानी को उछालते आसमान तक

शिखर सम तिमिंगल इक प्रविष्ट हो गया!
चंड जलचर भी डर के भागे
कोस-कोस, देख जूझ वह भयंकर।
सिंधुयान भी भीषण दृश्य देखकर
क्षण भर स्थिर हुआ। तभी किशोर ने कहा,
'चाचीजी, ये बड़ी मछलियाँ अपना
जीवन कैसे गुजार लेती हैं यहाँ
हिंसा प्रतिहिंसामय सागर में ही'
मुसकराई वह उदास, 'हाँ रे, पगले!
जैसे मानव भू पर जीता ही है!
जाति-जाति के बीच भी जीवनार्थ या
बलशक्तित्वार्थ कलह यही होत है!'
तभी अचानक बिगुल भयसूचक-सा
बजाते हुए सतर्क होकर नौका पर
पुर्तुगीज जहाज पर आंग्ल लुटेरे
डाकुओं का जहाज आक्रमण करता
चीखें, कराहना, ' रक्तस्राव, कत्ल
तिमि को छोड़ तिमिंगल भाग ही गया!
किंतु कुछ घंटों तक जूझ भयानक
प्राणघातक हुई, पुर्तुगीज तिमि को
आंग्ल तिमिंगल ने निगल ही लिया
और ले गया सबको दास बनाकर!
जब सुबह होने पर लूट देख ली
बूढ़ी कहकर उसे मार ही दिया
और लुटेरों में इक मूर सिपाही—
को दे दिया उस बच्चे को भी।
भाग्यहीन बच्चा! अब अनाथ बन गया!
पुर्तुगीजों की थी प्रखर गुलामी;—
आशैशव हो गई थी आदत उसकी
किंतु मोरक्को में अब क्रूर अमानुष
गुलामगीरी में आ पड़ा बच्चा
जैसे कि उबलते तेल से आग में।

इसलामी बर्बरता पुर्तुगीजों की भी
तुलना में अच्छी थी! तिस पर अब ना
रही वह चाची भी आधार के लिए।
उस उंदार साध्वी को याद कर-करके
बच्चा अब रोता था एकांत में कभी :
मेरे प्रति कितनी आशा थी उनको
और क्या हुआ! ऐसा शोक मग्न था।
मोरक्को में उस राक्षसीय घर में
कुत्तों की थाली में खाना मिलता
दिन में पशु के संग पशु के समान ही
रहकर फिर गोठ में रात गुजारता।
गुस्से में मूर की बीवी ने इक बार
फेंक दिया उसको ठीक नरक में
शाप, गालियाँ, डंडे रोज मिलते।
फिर भी वह सज्ज न खुदकुशी करने
बल्कि आशाएँ चाची की पूरी करने!
एक बार खेतों से लौटते समय
एक गवाक्ष में देखी इक सुलक्षणा
हेमगौर पुर्तुगीजी सम एक वधू
नीम की तरह उसकी कांति थी नई
मुद्रा थी मोहक, तनु सुंदर, उसको
लगा एक क्षण कि मैं गोवा में हूँ
तभी शुद्ध मंजुल मराठी में पूछा
उसने सस्मित उसको : कमनीय कुमार!
क्या तुम्हरा नाम, बता दो मुझको, जी!
माँ की आवाज भी न इतनी हद को
उतना मातृभाषा की ध्वनि करती है
घोर विवासन में मन प्रमुदित हो गया।
'शंकर' उसने कहा, 'वाह! मधुर है बहुत
नाम : अब क्या कहूँ! आओ जी कल
सौगंध तुम्हें : आओ जी!' जल्दी-जल्दी
अंदर जाते-जाते बतलाया उसने

शापों, गालियों में जिसका दिन गुजरता
था हर रोज बहुत हड़बड़ी में
ऐसे बेचारे बच्चे को कोइ मिल गया
जिसको उसका भी मधुर नाम है
एक व्यक्ति ऐसा भी है दुनिया में
देख बेचारे बच्चे के नैनों में तब
आँसू आए खुशी के अनगिनत!
उसके हृद के अंधकार के भीतर ही
मूर्ति उस युवती की बिजली-सी ही
चमक-दमक करने लगी बार-बार
अनुदित फिर उसी मार्ग से वह बच्चा
जाने लगा कभी-कभी बात हो रही
दोनों के परिचय से प्रेम बढ़ गया।
फिर एक दिन शाम को इशारा करके
पत्र ऊपर से फेंका राह पर उसने
उठा लिया झट उसने और उचित वक्त—
पर पढ़ लिया उत्सुक विवश हृदय से।
क्या? तो वह दासी थी! ब्राह्मण उसकी
माता परलोकगता औ' पिता उसका
पुर्तुगीज एक पुरुष राजवंश का
चुरा लिया था उसको स्पेन सिंधुद्वार—
में, डच नौका ले गई गुलाम-कर
और मूरों के इस नेता को उन्होंने
बेच दिया था उसको लाख रुपयों में!
मछली को मछलियाँ, मनुष्य को मनुज
ईसाई को ईसाई निगल लेत है!
विश्व में करत बलवान् धर्म को गुलाम!
ब्राह्मण स्त्री को जिसने गुलाम बनाया
उसकी पुत्री को दासी बनाया दूजे ने।
मूर के घर से, पर, छूटकर अब वह
जाना चाहती है। आज तैयारी
हो गई है सारी कुशल रूप से

यह किशोर आएगा यदि उसके संग
तो भाग जाएगी नियत समय पर!
सुना मैंने कि गोवा से गुलाम इक
ले आया है यहाँ एक सिपाही
ढूँढ़ रही थी मैं जब उस गुलाम को
तो तुम दिख पड़े! तुम्हें देखने
मैं दिन भर तरसती हूँ, प्रिय किशोर
आओगे तुम तो तुम जाएँ भागकर
पर आओगे न, अन्यथा तुम बिन
मुक्तता न चाहूँगी, यहीं रहूँगी।
रहकर यहीं देखूँगी रोज तुम्हें मैं
जाओगे जब इस राह से कभी
मेरे मधु प्रेम का बिंब तुम्हारे
नैनों में देख मुझे सुख होता है!
शब्द-मेघ बरसे जब पत्रस्थित ऐसे
स्वाती के अर्थ-बिंदु टपके उनसे
हृदय की सीप में लिया उनको
और लिखा उसको, 'हे शुचिव्रते!
आऊँगा तुम्हरे संग जहाँ कहोगी
जीवनीय अंधकार में मेरे भी
जिस तुम्हरे स्निग्ध शीत मुसकराहट के
मंजु उजाले में मैं देखने लगा
ऐसे तुम्हरी मुक्त साथ में जो कोई
दिन बीतेगा वह जीवन सफल करेगा
और मृत्यु के लिए सिद्ध रहूँगा!'
एक दिन अचानक सब गाँव डर गया
दास और दासी दो भाग ही गए!
ढूँढ़ने पर न मिले। तो कहा किसी ने
दोनों को भी देखो शेर खा गया
मैंने खुद देखा जी; औ' मैंने भी
अन्य ग्रामस्थ ने हाँ मिला दी!
और इधर वह कुमार तथा कुमारी

अफ्रीका के किसी घने जंगल में
निभृत कुटीर में जाकर रह रहे थे
मूर स्त्री के संग इक जो उन दोनों—
को मूरों का लिबास पहनाती थी
वह मूरा हेमगौर कन्या की थी
पितृगेह की पहले से परिचिता
पहले भी पहुँचाकर किसी गौर को
अपने घर स्पेन में, धन कमाया था।
हालाँकि उसी मूरा ने उस युवती को भी
ढूँढ़कर रचाया था यह सारा खेल
प्रचुरधनाशा से नव। उसी कुटीर में
लिली और शंकर दोनों जब रहे
घना जंगल भी गुरुकुल एक बन गया
प्रीति का, भय का भी और नीति का।
सत्य ये प्रतिष्ठित हैं सृष्टि के
जो न पौर जीवन में बुद्धि को कभी
होते हैं पूर्ण गम्य। जो पुरातना
कांतारांतर्गत, अस्पृष्टजनपदा
निबिडता में ही प्रत्यक्ष प्रकट हैं।
जीवसृष्टि के मूलस्थान में सभी
जीवसृष्टि की स्वभावनग्नता रहे।
सुखद कल्पनाएँ वितता हिरण्मया सभी
परदों में नागरिकों मानवों के
सत्य का उग्र रूप पिहित है सदा।
अफ्रिकीय घोर अरण्य में सृष्टि भी
नग्नरूप घूमती, जैसे पहले
राम के समय ही भारत में भी
दंडकारण्यादिक महाअरण्य में थी :
भेड़ों को पैरों में सख्त पकड़कर
नभ में उड्डाण करत खाते-खाते
मांसाशन घोर गरुड चील गिद्ध भी
विहगों को खाके जीते विहग हैं।

नक्र और घड़ियालें जबड़े में
निगलते बछड़ों को जल पीते :
अजगर जो बाँहों में दो इनसानों की
न समाएँ ऐसे मोटे औ' लंबे,
सीत्कार के साथ दूर से ही मुर्गियाँ
औंर कोइ तो कुत्तों-बछड़ों को भी
खींचकर श्वास से, रज्जु की तरह
निगलते हैं बैठे-बैठे जगह पर :
विषधर जो डसते ही महान् वृक्ष भी
कडकड कर-कर करते जल जाते हैं :
पन्नग उड़नेवाले भक्ष्य के पीछे
सहज रूप उड़ते-उड़ते जाते हैं
जब तक पन्नगारि उन्हें पकड़ नभ में
फेक देता है बहुत जोर से
भूमि पर हड्डियाँ चूर्ण कराके।
मत्त महिष लाल-लाल नेत्र हैं जिनके
धक्का देकर वृक्ष गिरा देत हैं
व्याघ्र पुच्छ पटकाने वाले जिनको
देखकर महिष-वृषभ डर जाते हैं!
ऋक्ष तथा चीते रक्तार्द्रमुख सदा!
कपि भी दो पुरुषों के जितने लंबे
पुच्छहीन हनुमान प्रबल, देखकर
जिनको ऐसा लगे कि आदमी ही है
वानर या वननर जिनका नाम उचित है
तिस पर भी अफ्रिकीय गोरिला कपि
पूर्वपुरुष निःसंशय उसी भूमि के
बार्बरीय मनुजों के लगते पक्के।
ऊँची औ' लंबी छलाँगें लगाकर,
ये प्रचंड देहधारि कपि भयंकर
शाखाओं शिलाखंडों को फेंककर
जूझते हैं जैसे मनुज जूझते
उन्हें देख रामायण वर्णन स्थित ही

कपि वानरवीरों की रम्य कथाएँ
लगती न पूर्णतः निराधार काव्य-सी
झुंड भेड़ियों के, मिट्टी में छिपकर
कुछ रहते औ' अन्य दूर से
हिरनों के झुंड को बहला ले जाते
अचानक झपटकर उन पर पड़ते
छिपे हुए भेड़िए, मार डालते
फिर मिलकर सारे चीर-फाड़ उसकी
करते हैं, रक्त-मांस-वसा चटकते!
मत्त मतंगज ऐसे चलते हैं जैसे
पर्वत हैं! अगर एक पैर के तले
कुचला नर को तो कुचला जाएगा।
और ऐसे उन्मत्त गज भी डरते
जिनसे ऐसे क्रकच क्रूराग्र नखींद्र
शेर बब्बर, शरभ खून के प्यासे!!
क्रूर इस तरह के वन में रहते
एक दिन प्रेमियों का युगल वह
लिली और शंकर एक साथ सवेरे
आए मृगया करते हुए पहाड़ पर।
वृक्ष एक अतिप्रचंड सामने खड़ा
दिखाकर उससे शंकर ने कहा,
'लिली! देख पेड़ के गहरे कोटर में
है छत्ता जहरीली मक्खियों का।
एक भी यदि कसकर डस जाए तो
मर जाते हैं हिंस्र पशु भी खूँखार
फिर क्या होगा भी किसी मनुज का?
यदि किसी एक ने छेड़ा उनको तो
मक्खियों की सेना पीछा करती है
डरे हुए उस नर के गाँव तक भी
और बदला लेती है न काटकर उसे
बल्कि गाँव को पूरे तीव्र डंख से!
'हाय दय्या!' रोंगटे खड़े हो गए

सुकुमारी भयभीता उससे चिपक गई
'एक तरह से दुनिया में मनुष्य ही
कितना दुर्बल क्षुद्र जीव-जंतु है!
यद्यपि उसकी भी देह प्राकृतिक
फिर जीवो यत्र जीवनस्य जीवनं
ऐसे अति निर्दय घने अरण्य में
क्षण भर भी जी न सके! ये मक्खियाँ
भी दैहिक द्वंद्वों में मारेंगी उसको!
सिंह, व्याघ्र, हाथी तो दूर ही रहें
किंतु गाय के भी सामने मनुष्य ही
गाय से भी बनेगा गाय! द्वंद्व में
सींगों के साथ उसी के लड़ पाए
ऐसे कोई न अंग मनुष्य देह में!
मूलतः जब वन में वन्य पशुओं में
पशु जैसा रहता था तब भी उसने
देह के न बल से अपितु आत्मबल से
अपना अधिकार सभी पर जमा लिया।'
'लिलि! लेकिन वह जीया आत्मबल से
इसका क्या मतलब है? क्या उसने कभी
भेड़ियों को बोध किया था वेदों का?
अथवा शेरों को सिखाई थी शांति-समाधि?
या गीता गिद्धों को? सांख्य नक्र को?
कैसे वश में लाया आत्मबल से ही?
आत्मबल का मतलब बुद्धिबल ही है
बुद्धिबल का मतलब यंत्रबल है
और यंत्रबल ही तो देहबल ही है।
क्योंकि एक-एक यंत्र इंद्रिय ही है
वृद्धिंगत-शक्तिक्षम पूर्ण हमारी
खाते हैं पशुपक्षी जो उसे त्वरित
जठरवन्हि पचाती है; किंतु मनुज तो
अपचनीय को भी पचाने हेतु
ओखली को दाढ़, मुसल दाँत बनाए

और चूल्हा ही बनता है जी उसके
जठर की अग्नि के सम पाचक-सा।
युद्ध में न टिक पाएँ शेर जूझते
अत: बाहु दंड का रूप लेत हैं :
दहाड़ हो गई परिणत दुंदुभि-रूप में
चर्म कठिनतम बनकर वर्त्म बन गया
मांसपेशि तुर्य बनत कंठनालि का
शृंगास्थि बालों में वृद्धि लेत है।
मुष्टि शिलाखंडों में प्रक्षेप्य बनी और
तीरों में, बंदूक की गोलियों में
अतिमारक रूपांतर प्राप्त कर गई।
शेरों के जैसे नाखून नहीं हैं
अत: खड्ग, तलवारें, खंजीर औ' छुरे
वृद्धिंगत हैं ये नाखून हमारे!
नखरों की तीक्ष्णता आत्मबल से ही
रूपांतरित होती है, तभी विश्व में
घोर कलह में आरण्यक पुरातन
टिक पाया मनुज दीर्घ। अन्यथा उसे
दुर्बल को कोई भी कीटक क्षण में
डंख करके ही खत्म कराता
एतदर्थ ही जब भरतभूमि में
आरण्यक काल में वन में भीषण
हिंसा के जबड़े में आर्य रह रहे
उनको भी राजधर्म-यज्ञविधि-समान
मृगया भी धर्म मुख्य अंग ही रहा,
शरधनुष्य लेकर ऋषिवर्य भी घूमे
वेद के समान धनुर्वेद पढ़ाए
किंतु आगे हिंस्र जंतु नष्ट हो गए
निष्कंटक देश बना कृषिप्रधान ही
पनघट के सुंदर घाट बन गए
पानी लाने गई लड़की को ही
शेर उठा ले जाना बंद हो गया

और नरमांसाशन राक्षसों द्वारा
कच्ची ककड़ी जैसे बच्चों को ही
खाए जाने का भय खत्म हो गया
तभी जनसंकुल निर्विघ्न निर्वन
शांति सुखासीन नगर जानपद सारे
मृगया के उपकारों को भूल गए।
और नगरकूपस्थित जीवनों में
बिंबित रूपों को प्रतिबिंब सृष्टि का
लोग गलती से अब मानने लगे!
रामायण के काल तक भारत में
यज्ञ तथा मृगया को विहित माना
और अहिंसा का अतिरेक बाद में
बुद्ध के समय क्यों उदित हो गया
यह सब इस अस्पृष्ट जनपद
घोर अरण्य के बीच स्पष्ट हो गया—
जीव किस तरह जीव का जीवन है
सृष्टि का मूल रूप औ' मानवीय
इतिहास का पहला पन्ना है यहाँ
इस मूल को समझकर अरण्य में
निर्लिखित पत्रों पर भूर्जवृक्ष के
पढ़ने को मिलता है : न उपवन में!
नगर जीवन में बुनकर कल्पनाओं के
जालों को मज्जास्थित कीट नरों के
मान लेते हैं उनको सृष्टि-प्राचीर
ऐसे प्राचीरों को सृष्टिमुखोद्‌भूत
आरण्यक वायु का यहाँ के ऐसा
फूत्कार भी उखाड़कर दूर फेंक दे
तभी सन्मुख एक महिष मत्त रूप में
महिषों के अपने झुंड में दूजे
एक कमजोर महिष पर हमला कर
टकरा गया सींग से चीरता हुआ
तभी उसकी दहाड़ से भयंकर

दहाड़ दूसरी आई, सुनकर उसको
महिष मत्त वह सहसा धैर्य छोड़कर
भयविह्वल गिर गया : छलाँग उस पर
व्याघ्र ने ली, उसका गला पकड़ा
एक झटके से कंठनाल तोड़ा
उठा ले प्याले को वैसे उठाकर
और जरा आकुंचित कर तनु अपनी
गट गट गट शोणित को बाघन ने पिया
उष्ण कंठनाल से, जैसे कि दूध ही
प्याले से पी जाए पेट भर कोई।
फिर धीरे से गुर्राते खुशी से
पंजों से भक्ष्य का मांस फाड़कर
लिया मुँह में भर-भर् के और बाद में
लंबे-लंबे डग भरते पहुँच वह गई
राह देखते थे बच्चे उसके जहाँ।
तभी बच्चों ने उसको घेर ही लिया।
देखकर अपने भूखे बच्चों को तब
दूध भर आया उसके थनों में
और शिथिल तनु करके प्यार भरी वह
एक करवट पर वहाँ लेट ही गई
प्यार से पूँछ को पटकते धीरे से।
चाटती खून भरी जीभ से उन्हें
और उन्हीं उग्र नखों से ही मृदु-मृदु
सहलाते अंगों को अपने बच्चों के।
नवरक्त से लथपथ मांसखंड जो
महिष के लायी थी मुँह में पकड़ के
उन्हें वहीं बिखेर दिया सिखाने हेतु
खाने को बच्चों को अपने। स्वयं
चाट रही थी उनको सूँघ-सूँघकर
इस करनी को नीरव साश्चर्य दिखाकर
शंकर ने कहा, 'देख लिया ना लिली
सृष्टि का साग्र गौप्य? देख वहाँ पर

करुणा ही क्रूरता को पिला रही।
दूध पिलाती बच्चों को, मारती मृग को!
करुणा के पत्थर पर तेज बनत है
क्रौर्य किसी दीप्तिमान् खड्ग की तरह!
यह बाघन हिंस्र नखरदंत—भीषणा
और दया-दुग्ध-स्रववत्सल-स्तना—
प्रकृति की प्रतिमा है : एक चित्र है!
केवल ना हिंस्र अहिंस्र भी न सिर्फ'
करुणामय अथवा यह क्रौयमना है,
उभयविधा प्रकृति है और उभय भी
वृत्तियों का विकास है जगत् यही,
व्यक्ति हो, झुंड हो या राष्ट्र हो
इन दोनों वृत्तियों के मिश्रण से
जीवन गुजारता है दुनिया में।
क्षात्र-तेज और ब्राह्म-तेज उभय ही
के मिलाप से लोकोद्धार होत है :
जैसे दोनों पंखों से विहग उड़ सके,
इतने में वह मूरा चुपके से आई
और कहा उसने, 'हाँ, छिप जाओ जल्दी!
ये जो आ रहे दूर से नग्न वनचर
वे न हैं मनुष्य, पर तुम जैसे ही
कच्चे मनुजों को खा जाते हैं चाव से
ऐसे हैं नररक्तप्राशक नृशंस ही!'
फिर भर के बंदूक औ' लेकर लिली को,
घात लगा के बैठा, वह युवक वहीं पर
जब तक वे बर्बर न दूर चल पड़े :
और फिर उनको बह मूरा शीघ्र ही
संकटों से बचा के इसी तरह
ले गई पुर्तुगाल सुरक्षित रूप में।
देख कन्यका को अपनी बहुत लाडली
जनक को उसके जो हर्ष हो गया
उसके कारण उसने शंकर को भी

अपना ही मान रख लिया स्वगृह में।
लिली का अद्‌भुत वृत्तांत जानकर
राजगृह में भी उसको बुला लिया
मूरों की पकड़ से निज कन्या आई
इसलिए पुर्तुगाल मुदित हो गया
किंतु यदि लिली हिंदू होती? यदि उसको
मूर ले जाते? उनसे भी छूटकर
आती वह यदि पीहर? हाय! हाय! तो
हिंदू ही दुत्कार उसे भगा ही देते
उसी मुसलमान के घर रहने हेतु!
थोड़े ही सालों में पिता गुजर गया
लिलि का, उसने अपनी दौलत के सहित
पाणिदान किया उस युवक को तभी।
पाताल में, योरप में, भिन्न जनपदों—
को देखा दोनों ने, विभिन्न धर्म भी
देख लिए, राष्ट्र और राज्यबलों को
प्रस्तुत के भिन्न-भिन्न तोला भी मन में
पृथ्वी का पर्यटन पूर्ण कर लिया
और फिर उस ज्ञान को हिंदू जाति के
चरणों में अर्पण करने हेतु;
अनुभव की घंटी को राष्ट्रदेवि के
देवालय में अर्पण करने हेतु;
और हिंदू स्वातंत्र्य चरणों में अपने
जीवन का बलिदान ही करने हेतु;
लिली और शंकर भी छोड़ विदेश को
भारत को आने चढ़ गए जहाज में
आंग्लों के किसी, जहाज पर पता चला
कि आंग्ल सिंधु दस्यु थे जिन्होंने कभी
लूटी थी वह मराठी नौका ही!
हिंदू महासागर में जब प्रवेश किया
पकड़ लिया उसको इक महाराष्ट्र नौका ने
और जूझ आंग्लो-मराठों में शुरू हुआ।

तब आंग्ल नौका पर होते हुए भी
शंकर ने पक्ष लिया महाराष्ट्र का
कप्तान ने तब उसको खंभे से बाँधा
और तोप के मुँह पर खड़ा किया
तभी आंग्ल जहाज ने आग पकड़ ली!
किंतु स्तंभबद्ध बंदी की दिशा में
हाय! कौन फिर भी दौड़ पड़ी सुंदरी?
आलिंगन शोलों के बीच कर रही
'लिली? हाँ, दूर हो जा लिलि! कोमले!
सत्य-सत्य रति में जो कमल कोमला
पर जब ज्वालाओं के रथ पर चढ़ पड़ी
स्वाहा तब रणरंग में कठोरा!'
झोंक दिया बाँहों में बंदि के उसने
अखिल मराठा तटस्थ विपल हो गया।
क्रूर हाथापाई फिर शुरू हो गई
जोड़ लगाकर घेरा वीर मराठों ने
अंग्रेजी नौकाएँ तरह-तरह की
निर्भय निःशंक जहाजों में भिड़कर
रोककर उन्हें मराठे चढ़ आए।
तब हवा तूफानी! मेघ चिढ़ गए
गड़गड़ाहट तोपों से बढ़कर हुई;
तेज हवा का चाबुक लगते ही सागर
आपे से बाहर हो गया क्रोध से!
बिजली जब चमक उठी तब उसने देखा
क्षुब्ध महासागर के उस प्रचंड-सी
लहरों पर एक दीर्घ खंभे को ही
लिली और शंकर दोनों चिपके हैं
जैसे कि हाथी ने मत्त शीर्ष पर
सूँड़ से पुंष्पयुगल उड़ा दिया है!
उन दोनों को मीलित देखा जिसने
ऐसी वह बिजली ही अंतिम-सी थी!
उस पर घने अँधेरे का परदा गिरा

उसमें जो लिलि सहसा निभृत हो गई
वह वैसी ही आज भी! और कथा भी
उनकी हो गई वहीं निभृत! एक ही
बात रही इतनी कि—'और हेतुत:
राजदूत मुड़कर जहाँ शुक्र स्थित था
उधर देख, उसको संबोधित करके
प्रस्फुट शब्दों में बोला, 'एक रह गया
कहना था कि था उस शंकर के ही
जननी का नाम रमा, नाम पिता का
माधव था और नाम मूल गाँव का
भार्गव ही! भार्गव में अंतुनी ले गया
जननी के साथ उसे दास बनाकर।'
भाषण उसका जब हो रहा था
संशय की शराब वहाँ सब लोगों के
मन में जो जम रही, उस पर अंतिम ये
शब्द पड़े चिनगारी के समान ही।
ग्रामजन चौंककर पूछने लगे
कोइ कहे शुक्राचार्य ही सत्य हैं
'राजदूत झूठ है?' गरजे दूजा
श्रीनिनामि बावा की लेकर सौगंध
शुक्र ने कहा हम दोनों सत्य हैं!
था यदि पहले वह चौंक ही गया
पर सत्वर सम्हाल लिया संतुलन उसने
नि:शंक मुद्रा से 'सत्य हैं दोनों
कहानियाँ। कोई दूसरा गाँव भी
भार्गव नामक है। वहाँ का कोई
होगा यह मित्र, राजदूत! आपका
शंकर नाम से, जो सिंधु में डूबा।'
'दुर्भाग्य से वह न डूबा है' दूत ने कहा।
तब ऊपर से क्रुद्ध और मन में भयभीत
होकर अंतिम इक दाँव लगाने
गरजकर पूछा शुक्र ने, 'कहाँ

है वह? ले आओ! साफ कहानी!

संत निनामी बावा की सौगंध है तुम्हें!'

किंचित् मुसकराता तब उपेक्षा भरे

स्वर में राजदूत ने कहा, 'कहाँ है?

सुन लो फिर! शंकर अब यहीं खड़ा है!

यहाँ मेरे भीतर! दोस्त जानी

मेरा तो मैं ही हूँ! तनय रमा का!'

शोर मच गया सभा में! कोलाहल

लोगों के बीच शुरू हुआ, परंतु

शुक्र तो गरज पड़ा, 'नहीं! यह छल है!

सैकड़ों लोगों ने देख लिया था,

व्यास ने भविष्य में वर्णन किया था,

क्षेत्र की महिमा ऋषियों ने कही थी

और प्रत्यक्ष श्रीसंत निनामी

बाबा की सत्य-सत्य है चमत्कृति!'

गरजत इस तरह वह पता नहीं कब

खिसक गया शुक्र विप्र उस सभा से—

और उस गाँव से! क्योंकि दूसरे

दिन राजमुख्य ने भेजा किसी को

तो राम के मंदिर में कोई नहीं था!

शुक्र चला गया! वे लोग भी यथाकाल

भूल गए वह वृत्त : परंतु

मंदिर वह, वह समाधि, और अंत में

अद्यापि मौजूद है किंवदंती!—

धर्मकथा के नाम!! औ' पुराण में

बच्चे के साथ बैठ विमान में सदेह

स्वर्गारोहण किया निनामि संत ने

उसका भी गीत है! इस दुनिया में

पक्का अतिधूर्त है यद्यपि झूठ

सत्य से अधिक चिरंजीव है सदा!

टिप्पणियाँ : १. संत तुकाराम का जीवित-कार्य समाप्त होने पर प्रभु ने उनके लिए बैकुंठ से दिव्य विमान भेजा और उनमें बैठकर संत तुकाराम ने सदेह बैकुंठगमन किया—

ऐसी जनधारणा है।

२. नौ-सेना के सरदार।

३. मराठों का ध्वज।

४. तिमिंगल = क्रूर महाकाय शार्क मछली।

५. महा-पिले = मापले/मोपले; इन्होंने ही केरल में मोपलास्तान की माँग की थी। इन्होंने ही १९२० के खिलाफत आंदोलन में हिंदुओं को लूटा, उनके साथ बलात्कार किया, उन्हें भ्रष्ट किया। इसी पर सावरकरजी ने उपन्यास लिखा : 'मुझे उससे क्या?' मोपले = बहुत सम्मान करने लायक बच्चे, यह इस शब्द का मूलार्थ है।

६. शिवाजी के एक प्रबल सरदार बजाजी निंबालकर को मुगलों ने जबर्दस्ती भ्रष्ट करके मुसलमान बनाया था। शिवाजी ने न केवल उसे शुद्धि करके पुनः हिंदू बनाया, बल्कि अपनी पुत्री का उसके साथ विवाह रचाया, ताकि शुद्धीकरण के पश्चात् उसे उचित प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाए।

७. सिंधु-मुख्य = नौसेना के प्रमुख।

८. दाहिर = सिंधु का शूर राजा। मुसलमानों के पहले विजयी हमले में लड़ते-लड़ते रण में शहीद हो गया।

९. पंजाब के प्रसिद्ध जयपाल ने मुसलमानों के विरोध में लड़ते हुए पराजय पाने पर अग्नि प्रवेश किया था।

१०. चंदवरदाई। पृथ्वीराज चौहान का भाट।

११. महर्षि वाल्मीकि, रामायण के रचनाकार।

१२. दादा = रघुनाथ राव पेशवा अर्थात् राघो भरारी, जिसने उत्तरी भारत में अटक तक मराठों का विजयध्वज फहराया।

१३. सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य।

१४. युद्ध में पराजय करने पर भी जिन्हें देश के बाहर भगाया नहीं जा सका, ऐसी अनेक परकीय जातियाँ 'भारतयज्ञाग्नि में' अर्थात् शुद्धि यज्ञ में शुद्ध करके हिंदू धर्म के तथा हिंदू राष्ट्र के भीतर समा ली गईं।

१५. समर्थ रामदास (शिवाजी ने जिन्हें गुरु के रूप में स्वीकारा था) ने अपने काव्य 'आनंद-वनभुवन' में हिंदू-साम्राज्य का आनंद भरा स्वप्नमय वर्णन किया है।

१६. बहुत बड़ी फौज लेकर शिवाजी का पारिपत्य करने हेतु आए हुए विजापुर के भीमकाय सरदार अफजलखाँ को शिवाजी ने प्रतापगढ़ के तले जान से मारा। इसका वर्णन करते हुए इतिहासकारों ने कहा है कि प्रतापगढ़ की भवानी माँ को शिवाजी ने बत्तीस दाँतों वाले बकरे की बलि चढ़ाई।

१७. शिवाजी के सरदार बाजीप्रभु देशपांडे। दुश्मन का घेरा तोड़कर चंद सैनिकों के

साथ शिवाजी विशाळगढ़ की ओर दौड़ रहे थे। दुश्मन पीछा करते निकट आ पहुँचा, यह देखकर बाजी प्रभु कुछ सैनिकों के साथ घाटी में डटकर खड़े रहे और दुश्मन को तब तक रोके रखा जब तक शिवाजी सुरक्षित रूप में विशाळगढ़ न पहुँच पाए। बाजी प्रभु के शरीर पर अनेक घाव लगे थे, फिर भी वे जान की बाजी लगाकर जूझते रहे। शिवाजी के सुरक्षित पहुँच जाने का ऐलान करते हुए तोपों के धमाके सुनने पर ही बाजी ने प्राण त्याग दिए।

१८. चाकण का किला, जिसे शिवाजी के सरदार फिरंगोजी नरसाळे ने बहुत शौर्य दिखाकर कब्जे में कर लिया।

१९. औरंगजेब ने अपने मामा शास्ताखाँ को बड़ी सेना के साथ शिवाजी के पारिपत्य के लिए भेजा था। शिवाजी उस समय पुणे में नहीं थे। शास्ताखाँ ने पुणे में शिवाजी की हवेली (लालमहल) पर कब्जा कर लिया और पुणे की नाकावंदी कर दी। शिवाजी केवल पचास वीरों को लेकर गुप्त वेष में किसी शादी की बारात में शामिल होकर पुंणे में प्रविष्ट हुए और मध्याह्न रात को लालमहल में घुस गए। हाथापाई में शास्ताखाँ का बेटा मारा गया। शास्ताखाँ खिड़की से कूदकर भाग रहा था तब शिवाजी ने अपनी तलवार का वार किया, जिसके कारण शास्ताखाँ के हाथ की चारों उँगलियाँ कट गईं। शिवाजी अपने वीरों के साथ सिंहगढ़ गए। शास्ताखाँ की सेना ने उनका पीछा किया, परंतु किले से तोपों की भारी मार करके शिवाजी ने उसे तितर-बितर कर दिया।

२०. प्रतापराव गूजर, शिवाजी के सेनापति। उंबराणी की लड़ाई में प्रतापराव गूजर के हाथों बहलोल खाँ की पराजय हो रही थी, तभी बहलोलखाँ ने दया की भीख माँगी और प्रतापराव ने उदारता दिखाकर उसे छोड़ दिया। इस बात पर शिवाजी प्रतापराव से नाराज हो गए, क्योंकि बाद में बहलोल खाँ ने शिवाजी का मुल्क लूट लिया। जेसूरी में एक दिन प्रतापराव केवल छह सैनिकों के साथ रपट कर रहे थे, तभी सामने बहलोल खाँ सेना के साथ आ पहुँचा। पूर्व अपमान से विह्वल प्रतापराव और उनके साथी (केवल सात घुड़सवार) शत्रु की सेना पर आक्रमण करते हुए घुस गए। सातों वीर मारे गए, परंतु मरने से पहले असीम शौर्य दिखाकर उन्होंने अनेक शत्रु सैनिकों को कंठस्नान कराया।

२१. फोंडा = स्थान का नाम, जहाँ पोर्तुगीजों का बुलंद किला था।

२२. हंबीरराव मोहिते, मराठों के सेनापति।

२३. शिवाजी के पुत्र संभाजी अपनी युवावस्था के प्रारंभ में मदिरा तथा मदिराक्षी के मोह के शिकार हुए थे। किंतु आगे चलकर शिवाजी के पश्चात् छत्रपति बनने पर उन्होंने अतुल शौर्य दिखाया। छल-कपट से कैद करने के बाद औरंगजेब ने उन्हें प्रलोभन दिखाया कि यदि वे मुसलमान बन जाएँगे तो उन्हें दक्षिण

भारत का राजा बना दिया जाएगा। परंतु संभाजी ने इसे ठुकरा दिया और स्वधर्म के लिए शहीद होना पसंद किया। औरंगजेब ने चरम शारीरिक पीड़ाओं के साथ उनकी हत्या करवाई।

२४. बाजीराव पेशवा।

२५. चिमणाजी अथवा चिमाजी अप्पा, बाजीराव पेशवा के छोटे भाई।

२६. पार्थसारथी भगवान् श्रीकृष्ण।

२७. यादवों के आपसी संघर्ष में एक विशिष्ट लोह सदृश तृण का ही प्रयोग एक-दूसरे को मारने के लिए किया गया था।

२८. पेशवा की उपाधि।

२९. सिंधु विजय = सिंधु नदी की विजय।

३०. सिंधु विजय = सागर की विजय।

३१. हीदन = Heathen—यह विशेषण विधर्मियों तथा विजातियों के बारे में निंदा के लिए ईसाई प्रयुक्त करते थे, जैसे मुसलमान हिंदुओं को 'काफर' कहा करते थे।

३२. सिंधुद्वार = बंदरगाह।

३३. तिमय्या एक विख्यात हिंदू नेता थे। वे पश्चिमी सागर से अफ्रीका के सिंधु तट तक नौका में व्यापार किया करते थे। कुछ लोग कहते हैं कि तिमय्या ने ही पुर्तगालियों को 'केप ऑफ गुड होप' का चक्कर लगाकर हिंदुस्थान का मार्ग दिखाया। इतना तो कम-से-कम सर्वमान्य है कि मुसलमानों के हाथों गोवा के हिंदुओं पर जो अत्याचार हो रहे थे उनका प्रतिशोध लेकर मुसलमानों की सत्ता को उखाड़ देने हेतु इन्होंने पुर्तगालियों के साथ इकरार किया कि वे हिंदुओं की सहायता करें और इसके फलस्वरूप पुर्तगालियों ने गोवा में अपनी सेना उतार दी।

□

सावरकरजी की अप्रसिद्ध कविताएँ

(परिचय : युवक कवि सावरकरजी ने अपनी आयु के चौदह से बीस के कालखंड में लिखी कविताएँ, जो उनकी मृत्यु के बाद डॉ. स.गं. मालशेजी ने संपादित करके इसी शीर्षक के साथ प्रकाशित करवाईं।)

: १ :

नासिक के सन् १८९७ के गणेशोत्सव पर कुछ आर्याएँ

वंदन कर भवानी का, वर्णन करता मैं गणेश-उत्सव को।
बांधव हिंदू हमारे मानेंगे कामधेनु ही इस को॥१॥
यद्यपि पुणे समान हि ठाठ न था, फिर भी असामान्य।
बना वही बहुत ही लघु सौभद्र[१] की तरह रसिक-मान्य॥२॥
जब आ गई चतुर्थी उत्कट आनंदभरित हो गए लोग।
सब ने उत्कट भावों से याद किया शिवसुत रक्तांग॥३॥
थे तैयार हि मेले[२] यद्यपि चार, थे बहु सुंदर।
गणराजकीर्तिथी बहु शोभत उनके प्रयोग के भीतर॥४॥
उस रात भीड़ भारी गणपति का स्तुति-गायन करने को।
कोशिश बहुत से करते लोग उन्हें सभाग्य सुनने को॥५॥
राहों-राहों पर था गणपति का स्तवन आर्य-रक्षार्थ॥
प्रभुजी, असह्य हर हर! काट रहे ये गायों को भक्ष्यार्थ॥६॥
जिन आर्यों का पदमलतेजशमन करने हर साक्षात्।
यत्न करे, ऐसे ये ब्राह्मण, पर अब गलित म्लेच्छभयात्॥७॥
जो रामकृष्णनिवास कृत ऐसे सत्क्षेत्र अतीव महान्।
हर हर उनमें भी अब ब्राह्मण वर्ग भुगत कष्ट महान्॥८॥

जिन शूर पूर्वजों ने जरिपटका[3] अटक के बीच फहराया।
उनके ही वंशज हम, कायरता को कैसे अपनाया॥९॥

आज विजापुर तो कल दिल्ली, फिर चले पन्हाळगड़।
राव भरारी[4] थे औ' हम तो केवल पत्थर हैं सुघड़॥१०॥

राजा परकीय, शिक्षा परकीय, हो गई लक्ष्मी जी भी पराई।
अब हे प्रभो दयानिधि, तुम बिन आधार ही नहीं कोई॥११॥

सो गणराय, अब तुम हरण करो जी सभी आपदाएँ।
अपराधों की कर दो क्षमा, तुम्हारे नम्र दास हम हैं॥१२॥

नर वर विघ्नहर प्रभु सुखकर भयहर स्मरारिप्रिय अमर।
अजरा विश्वाधार हि भक्तवर तुम्हें नमोऽस्तु शिवकुमर॥१३॥

टिप्पणियाँ : १. 'लघुसौभद्र'—अण्णा साहेब किर्लोस्कर का नाटक 'सौभद्र' (सन् १८८२) संगीत मराठी रंगमच का कोहिनूर माना जाता है। इस नाटक में अनेकानेक पद हैं, अत: पूरे नाटक का मंचन रात भर चलता है। बदलते समय के अनुसार नाटक के पदों से अनेक पद हटाकर इसका संक्षिप्त रूप बनाया गया, जिसे 'लघुसौभद्र' कहा गया। चूँकि लगभग सारे विशेष लोकप्रिय पद 'लघुसौभद्र' में भी यथावत् रखे गए, वह भी लोगों को बहुत पसंद आया। उसी प्रकार, सावरकरजी का इशारा है कि नासिक का गणेशोत्सव पुणे के गणेशोत्सव की तुलना में छोटा सही, परंतु उतना ही लोगों को अच्छा लगा।

२. मेला—गणेशोत्सव के दौरान गीत, नृत्य, संवाद, प्रहसन आदि के द्वारा मनोरंजन का कार्यक्रम पेश करनेवाले कलाकारों का संघ।

३. जरिपटका—मराठी साम्राज्य का अधिकृत ध्वज।

४. राव भरारी—पेशवा रघुनाथराव, जो द्रुत गति से सर्वत्र विजयी संचार किया करते थे।

: २ :

(**परिचय :** निम्न आर्यावृत्त में रचित पंक्तियाँ तब रची गई थीं जब लोकमान्य तिलकजी के जेल से रिहा हो जाने के उपलक्ष्य में छुट्टी मिल गई थी। उस समय सावरकरजी की आयु पंद्रह वर्ष की थी (सन् १८९८)। ये पंक्तियाँ 'जगद्धितेच्छु, पुणे' समाचार में प्रकाशित हुई थीं।)

॥ श्री योगेश्वरी प्रसन्न॥

श्रीमान् जगद्धितेच्छुकर्ता महोदय,
सप्रेम नमस्कार विनति विशेष।

आशा है, आप कृपा करके अपने जगन्मान्य पत्र में निम्न मजमून छापेंगे।

श्रीतिलक-आर्यभू मिलन

आओ, बेटे, आओ! क्षेम रहे! तुम शंतायु कुलतिलक।
गद्गद होती हूँ मैं! स्वस्थ रहो तुम गुणानुकूल तिलक॥१॥
आओ -मेरी बाँहों में, चुंबन करने दो अब मुझको।
वे दिन टले तुम्हारे, 'बाल', बहु कष्ट दिए तनु को॥२॥
गिनती करके मैंने अब्द भर सही दूरता तुम्हारी।
अब धीरज टूटा था तभी भाग्य से देखी तव मुखश्री॥३॥
क्यों अब वहीं खड़े हो? क्या सोचा यह अपनी माँ नहीं है।
यदि शोक से कृशा हूँ स्तनपान कराने की चाहत है॥४॥
क्या विस्मित होते हो देख मुझे स्पर्श के लिए आतुर।
हे 'बाल', प्रेम की ही बहुत हृदय में उछलती है लहर॥५॥
क्यों गुस्सा करते हो? क्यों न मैं आरती उतारूँ जी?
क्यों देर यह मिलन में? सुनो, न जाओ ऐसे ही घर में जी,॥६॥
'श्री बाल' प्रेम से बहु दौड़ा तब आर्य जनति से मिलने।
सप्तमि के सवेरे भीड़ बहुत हो गई उन्हें मिलने॥७॥

दोषस्थलों की माफी चाहता हूँ।

आपका
कोई 'क्ष'

नासिक, दिनांक ७ सितंबर, १८९८

: ३ :

अन्य स्फुट कविताएँ

विभाग-१

उचित वर स्तुतिकन्या ने माना बाळ को सुनिश्चत से।
पर सौतन के भय से उसने उसको रखा दूर अपने से॥
फिर गूँथा उसने भी उसे गुणों से लिया औ' गले में।
दृढ़ कसकर ही उसको गुजारती है दिन स्वांत सुख में॥१॥
सुना दूर से बहुत, और गुणलुब्धा होकर मन में।
कीर्ति मृगाक्षी आई करने वरण तिलक का जन में॥
परंतु वे तो रहे जेल में, देख नहीं हैं घर में।
उन्हें ढूँढ़ती घूम रही है बेचारी त्रिभुवन में॥२॥

(ये दो श्लोक (भोजन के समय) तब रचे गए थे, जब लोकमान्य तिलक कारागृह में थे, सन् १८९८।)

प्लेग पर दो श्लोक

देख बहुत रमणीय स्थान जो उतरा मुंणापुरि में।
जिस से लोग बहुत डरते हैं, छिपते हैं बीहड़ में॥
जिज्ञासा के कारण हर घर पूछताछ करता है।
तीर्थक्षेत्रों में, नगरों में, सैर खुशी से करता है॥१॥
एवंगुण यह प्लेग-नृप संचार करे दुनिया में।
जो भी उससे मिला वह हुआ दंडित अनजाने में॥
करता है ऐलान मूषकों के द्वारा मैं आऊँ।
हटो, मार्ग दो, ना तो तुमको सबको ही खा जाऊँ॥२॥

काल पर

काल को प्रणाम नित्य जो सदैव तृप्त है।
वायुपुत्र को सम्हाल चिरंजीव होत है॥
जो कभी न मुड़ता है, जो कभी न रुकता है।
भूमिकंप से न कभी रत्ती भर हिलता है॥१॥
राह पर चलते ही कई काम करता है।
जिनसे सुख सज्जन को, दुष्ट-दंड मिलता है॥
ज्ञात इतिहासविषय में सुख बहु पाता है।
गतवर्षों के वृत्तों को फिर से छूता है॥२॥

हिंदुस्थान की सद्यः स्थिति पर शुकान्योक्ति

वन-उपवन में जिनमें आश्रय किया रम्य वृक्षों का।
सुफल; स्नान के लिए सरस औ' नित बहते पानी का॥
उड़ते गिरते बैठक करते जो मनचाहे विचारा।
हाय! वही अब शुक पंजर में रहता है बेचारा॥१॥

कोयल-अन्योक्ति

हिलते-डुलते तरुवर की चोटी पर जाकर बैठें।
हवा बहे तब झूम-झूमकर मधु-गीतों को गावें॥
इर्दगिर्द सब सुंदरियों का मेला लगता सुनने।
कोयल, तुम्हारी तन को कोचा आज किसी कोए ने॥१॥

कमलान्योक्ति

सुरतनु-धवलांगी-जाह्नवी-जनित है जो।
स्वकर-कष्ट-वर्धित प्रिय-सखी-हर्ष है जो॥
सकर देवताओं का शिरारूढ़ है जो।
कमल शुष्क-जीवन विपिन में व्यर्थ समझो॥१॥

स्वातंत्र्य देवी के प्रति

जिसके धन्य परादविंदमकरंदास्वादहेतु स्वयम्।
श्रीमत्-त्र्यंबक-अंबरेश अलि-से करते सु-गुंजारव॥
वंद्या जो अदिती-रमा-हितसुता चिच्छाक्तियों को परम्।
वन्दे श्रीस्वातंत्र्यदेवि तुभ्यं मांगल्यदा मां भव॥१॥

संक्रांति का तिळगुळ

सुप्रेम-युक्त तिल सुंदर शुभ्र-राग।
आनंद-संग-स्मृति का सुचारु पाग॥
मित्रत्व-अंकुर उसे तब प्राप्त होवे।
सौजन्य-केसर कभी शोभा बढ़ावे॥१॥
संक्रांति-क्रांति-समय त्योहार रम्य।
स्वर्गीय हर्ष-उत्सव मन में अगम्य॥
यह पत्र पात्र करके कविता-वधू से।
मैंने कहा कि 'तिळगुळ दे दो यहीं से'॥२॥
स्वीकार आप कर लो, दोस्ती बढ़ाओ।
इसका सशास्त्र गुण है मन में जताओ॥
श्रीराजश्रेष्ठ शिवकीर्ति-रसपान कर लो।
आस्वाद अद्भुत उपायन का अजी लो॥३॥

टिप्पणियाँ :
१. ये श्लोक मकर-संक्रांति के उपलक्ष्य में किसी मित्र को भेजे थे। दिनांक ३० जनवरी, १८९९।
२. महाराष्ट्र में 'संक्रांति' का त्योहार १४ जनवरी को मकर-संक्रमण के पर्व पर मनाया जाता है।
३. तिळगुळ—एक विशिष्ट व्यंजन। सफेद तिलों को चीनी की चाशनी में डालकर

उन्हें हल्के हाथों से विशिष्ट रूप में तब तक मसला जाता है जब तक उन तिलों पर चीनी का अवगुंठन बनकर उसमें मनोरम अंकुर निकल आते हैं। इन पर केसर छिड़की जाती है। ये 'तिळगुळ' संक्रांति के त्योहार में लोग एक-दूसरे को बाँटते हैं और कहते हैं, 'तिळगुळ ध्या, गोड बोला' (अर्थात् तिळगुळ स्वीकार करो और मीठी बात करो।)

४. शिवकीर्ति-रसपान—छत्रपति शिवाजी के कीर्तिमान चरित्र का पान।

: ५ :

मातृशोक-अलाप-अष्टक

आर्या

माते, छोड़ गई तू, उसको छह वर्ष आज हो गए।
सुंदर नाम तुम्हारा दुःखाग्नि में मेघ-सा बरस जाए॥१॥
गई हो पहले ही, यदि जाती तुम अभी, सुनो, माते!
मैं छोड़ता नहीं जी, यद्यपि शतगुण तप्त अंग मम होते॥२॥
ऊब गई होगी तुम नित्य सुखों से वहाँ, लगे मुझको।
ग्रंथश्रवणोत्पादक स्वर्ग की उमंग थी न तुमको॥३॥
'बदल करूँ मैं थोड़ा पुत्रालिंगन-सुख से', यदि माँ जी।
तुम इच्छा करती हो, तो वह आज ना उचित है, जी॥४॥
क्षण रुक जाओ, सोचो सत्पथ, साधु, श्रुतित्रयों को।
दुल्हन कीर्ति बनेगी, सुजन जभी मान्य करें मुझको॥५॥
उस त्रयगामिनि को, फिर पूरी कर देने की इच्छा।
भेजूँगा स्वर्ग में मैं, तब होगा तोष तुम्हें ही सच्चा॥६॥
मच्छाया मान उसे, मेरे बदले उससे ही मिल लो।
हो जाओगी गद्‌गद, भूलोगी सब कुछ, माँ, सुन लो॥७॥
वंदन तव चरणों में तव सुत करता हूँ आर्याओं में।
मंद न धी हो मेरा, चंदन सा घिस जाऊँ सेवा में॥८॥

'आर्यावृत्त' में रचित इन पंक्तियों को अत्यंत नम्रता के साथ मेरी परलोक वासिनी माता के प्रति अर्पण कर रहा हूँ।

(३१ जनवरी, १८९९
आयु १६)

खुल गई प्रभात, वायु शीतल बहने लगा।
जहाँ तहाँ मुदित बहुत जन अब होने लगा॥
नित्यान्हिक निपटाया बहुत त्वरा करके ही।
'ले लो खत' ऐसी ध्वनि आकस्मिक तब आई॥१॥

तब बहुत जल्दी हो गई पूछने की।
'तुम अब बतला दो, है चिठी आज किसकी'॥
हम सब स्थित उसके सामने घूरते से।
जननिसहित तीनों बंधु खुश डाकिए से॥२॥

मन में उत्सुकता थी, तभी पढ़ लिया नाम मेरा ही।
डाकिया बहुत अच्छा, मिले उसे आयु प्रदीर्घा ही॥
वह चिठ्ठी भी मेरे विशेष प्रिय मित्र से आई थी।
उसे देखकर मैंने सधन्यवाद स्मरे भवानि-पति॥३॥

अवचित ध्वनि आई मंजु मंजुल मधुर सी।
सुनकर सुख की भी हो गई मंत्रणा सी।
तदुपर मुद्रांकित नाम ही था 'विनायक'।
पढ़कर बहु वंचित हो गए अन्य दर्शक॥४॥

झड़प शीघ्र मैंने पत्र को तब उठाया।
स्तिमित देख उसमें काव्य सारा रचाया॥
रवि-सम चिट्ठी थी कामनापूर्ति करती।
रवि से भी ज्यादा तोषदायी मुझे थी॥५॥

यद्यपि शशि शीतल है महा तापहारी।
विरह प्राप्त होते बनत है तापकारी॥
रवि तेजस्वी है, ताप भी देत नित्य।
गुण कितने भी हों, दोष भी साथ-साथ॥६॥

यद्यपि मैं ना हूँ कोइ वक्ता प्रसिद्ध।
न वाग्देवी भी सुप्रसन्ना वरनिबद्ध॥
हूँ मंद सा ही मैं, न देखी काव्यशक्ति।
फिर भी दोषों का जिक्र है, हूँ क्षमार्थी॥७॥

विनत सा प्रणिपात मेरा तुम्हें।
न अमर्ष करो सौगंध तुम्हें।
यदि न भेजोगे उत्तर मुझे।
हरण करो संशय, मना लो मुझे॥८॥

तुम्हारी इच्छा है कि तुम यहाँ शीघ्र आओ।
पर समय नहीं है ठीक अब, जान जाओ॥
अभी मैं बीमारी-जनित पीड़ा सह रहा हूँ।
यहाँ आने से भी लाभ न कुछ, मैं कह रहा हूँ॥९॥

: ७ :

आर्या

कुल जे सुभगे मेरा आशीर्वचन तुम्हें प्राप्त हो जाए।
मन्मित्रपत्नि हो तुम, सारा जन कीर्ति तुम्हारी गाए॥१॥
नभ यदि फट जाए तो ठिगली से कैसे ढकें उसी को।
धैर्यालंबन करके स्वीकृत कर लें अधब्द कर्मगति को॥२॥
अपने से भी ज्यादा संकटग्रस्त देखकर किसी को।
हो जाओ सुशांत-मन शांति बिन न राह भी किसी को॥३॥
धनप्रति न रखे भरोसा, वह तो सबको मोहित करता है।
सद्-वर्तन शुचि रहे तो कुल की वह कीर्ति बढ़ाता है॥४॥
लेखन-वाचन करना आप जानती हैं यह अच्छा है।
सद्-ग्रंथ-कनक कण-कण सतत चुनना सदैव अच्छा है॥५॥
आशीर्वचन यहाँ से बाबू को और लकड़ियों को।
सद्-विद्या-श्री-धी अविरत प्राप्त रहे सदैव ही उनको॥६॥
आप स्वयं लिखना जी पत्र मुझे कुशल-वृत्त को कहने।
भगवत्-कृपा रहे, न दीजै स्वकुल-कीर्ति का पट मलिन होने॥७॥

: ८ :

आर्या

हे मित्र! मित्रश्रेष्ठ! प्रेम भरा यह नमन तुम्हें मेरा।
निंदा करो न, अर्पण करते न रहा कभी सख्य मेरा॥१॥

भूलो कृतापराध, निंदा करके जीभ न मलिन करो।
यश क्या मिला तुम्हें भी, सच बोलो, झूठ को न निकट करो॥२॥
मित्रद्रोह कभी भी मैंने न किया, किया तुम्हीं ने ही।
मुझसे स्पर्द्धा करके महत्त्व-मापन-हेतु चलाया ही॥३॥
उपदेश करो न मुझको, आप सम्हालो मित्रधर्म अपना जी।
व्यवहार उचित है, केवल उपदेश नहीं, यही बात रखना जी॥४॥
सदैव तत्पर हो तुम बगुले जैसे दोष चुगने को।
इस बात को कभी भी सोचा तुमने नहीं समझने को॥५॥
सबको प्रिय हूँ मैं, ना केवल तुमको प्रिय रहा तो भी।
जैसे सबको प्रिय है शशि, प्रेमी को असह्य है तो भी॥६॥
यद्यपि ऊपर-ऊपर कुछ न दिखाता हूँ, मन व्याकुल है।
कपटाभिमानविगलित व्यवहार करें यही धर्म भी है॥७॥
अपराध हैं तुम्हारे, मैं भी हूँगा अपराधी शायद।
दोनों भी भूलें अब, विजय तुम्हारी है मुझको हर्षद॥८॥
ज्ञाता हो तुम, मैं क्या बोध तुम्हें अब करूँ व्यर्थ में ही।
फसल उगाएँ अब हम सुख की, सद्भाव-नीर से ही॥९॥

: ९ :

मेरी विनम्र शिकायत

(**परिचय :** स्व. न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानडेजी की मृत्यु के बारे में उत्स्फूर्त भाव।)

पृथ्वी

अजी, बहुत ढीठ सा यम स्वतंत्र क्यों हो गया॥
नियंत्रक न क्या कोइ अब उसी का रह गया॥
न दंड करते प्रभो! तुम इसी उजड्ड को।
महाखल-स्वबलोद्धत स्वहित-विद्वेष को॥१॥
करे बहुत ज्यादती यह उजड्ड सा नौकर।
उसे बरतरफ ना करत है तुम्हारा कर॥
तभी बहुत दोष है सकल मर्त्य राजा-प्रति।
वृथा हम सदा करें शिकायत उसी के प्रति॥२॥

कहो न अब 'है यही हनन कार्यकर्ता', मन।
सदैव सृष्टि का क्रम महादुष्ट सोचे जन॥
सही! न टलती कभी मौत सृष्ट है जो उसे।
विशेष पर वक्रता दिख पड़ी भरत-भूमि से॥३॥
अभी निगल ही लिए प्रभु! सुचारु बच्चे सभी।
अभी युवक खा लिए! कवि तथा प्रवक्ता सभी॥
मवेशि न बचे! अहह! है बहुत हवस ही सही।
महाखल करे भयाण सब यह भरत-भूमि ही॥४॥
उठाकर अभी चला बहुगुणी महादेव को।
जनकृति नियम से उचित क्रौर्य है क्या? रुको॥
खयाल करके कभी न हम को दिखाता दया।
स्वयं बहुत चोर है, पर कभी न करता हया॥५॥
हताश जन देखकर पहुँचाता उन्हें कष्ट को।
न कष्ट पहुँचा सके खल बलान्वित व्यक्ति को॥
अजी, विभवशौर्य से युत जनों तथा प्रांत को।
उठाकर गया, कमाल करके, विवश भ्रांति को॥६॥
गताब्दि पशु, आदमी निगल के हि भोजन किया।
रमेश मुखशुद्धिहेतु शुभ सा बीड़ा खा लिया॥
सु-लौंग विजया तभी बहुत चाव से स्वाद ली।
प्रभो! बहुत दुष्ट है यह, इसे सजा ना मिली॥७॥
जगत्रय हि भीति से भर गया इसे देख के।
नयत्व अनयों नरों प्रति अजी, इसे देख के॥
महाप्रबल आंग्ल बाहुबल को हताश किया।
इसी जगत् में न कोइ जिसने इसे कस लिया॥८॥
भले ही कितने सुपुत्र जग में पैदा हुए?
तभी परवशा-स्थिति-प्रतिहताहि कितने हुए?
सुकीर्ति न मिले गरीब दुबले जनाक्रांत से।
स्वतुल्य यदि प्राप्त हो नर तभी मजा कुश्ती से॥९॥
हताश जन ये विशोक-स्मृति में गतश्री-झषा।
प्रबुद्ध तिस पे न कोइ दुसरा महादेव सा॥
अतः रुदन व्याप्त हूँ प्रभू! न बहु न्यायमूर्ति प्रति।
सभक्त-जन-काम! प्रसृत कीजिए संप्रति॥१०॥

स्वदेशहितसाधनार्थ जनन ही रहे सर्वदा।
भले हि फिर मृत्यु की विजय क्यों न हो सर्वदा॥
महान् नृपति स्वदेश स्थित नित्य जन ले मही।
जगत्रय प्रभो! यही मम शिकाय रहेगी सही॥११॥

: १० :

(**परिचय :** न्यायमूर्ति माधवराव (महादेव राव) रानडेजी के निधन के बाद इन आर्याओं की रचना की गई।)

आर्या

निर्माण कर ब्रह्मांड को उसमें निहित शतकरोड़ है शेष।
भू-जल-तेजादि सभी तत्त्वों का आद्यजनक निःशेष॥१॥
सर हैं सहस्र जिसके, अगणित हैं मुख-नयन-हस्त भी जिसके।
दिखा दिया था जिसको यदुपति ने, स्व-रिपु-शीर्ष-पाद थे जिसके॥२॥
तर्क्य न योगींद्रों को, गम्य न मुक्तों को भी भासत॥
शतकरोड़ दुनिया के शून्य में न जो समाहित है॥३॥
जिसकी गति है छांदस जो वेदों की ऋचा प्र-जाग्रत् है।
जिसके वरदानों से पूरित धन-धान्य-कंद-फल-रस है॥४॥
श्रीव्यासमहर्षि ने भी स्तवन किया ग्रंथ में, पुराणों में।
अठारह बार गा के लिये की महिमा न पूर्ण हो सकी उनमें॥५॥
जिसका न रूप कोई फिर भी स्वेच्छा-जनित विविध रूप।
प्रकट हुए हैं जिसके, जो खिलता तृण-धान्य-नीर-रूप॥६॥
जिसको कहे कन्हैया कोई, कोई राम-घनश्याम।
कोई शिव, माधव भी, जिसके हैं अनगिनत प्रेम-नाम॥७॥
ऐसे स्वयंप्रज को, अव्यक्त को, नित्य आत्मनिर्भर को।
प्रणाम करता हूँ मैं, 'पूत करो मुझ अज्ञानतम मलिन को!'॥८॥
वंदन करते ऐसे जगदीश्वर को रहो, पाठको, तुम भी।
सदयो! ईशकृपा के कीर्तिरूप में सदा रहो तुम भी॥९॥
वर्षों तक जो सेवा कर ली अपनी औकत के अनुसार।
कुबूल करो जी उस को सभ्यो! दे दो सदैव अपना प्यार॥१०॥
गलती की हो यद्यपि, सेवा में यदि कोई क्षति होगी।
कीजै क्षमा उसी की, संतों की यह स्वभाव-वृत्ति होगी॥११॥

'गणपति' को, 'श्रीकृष्ण' को, 'मोहिनिराज', 'विश्वनाथ' को भी।
मेरे लेखंकवृंदों को शिव दे दो कहूँ ईश से भी॥१२॥
पुनरपि विमल हृदय से पाठकवृंद को नमन है मेरा।
जिनकी सेवा करते मन विचलित न हुआ कभी मेरा॥१३॥
रख देता है अपना भी कलम अब विनायक विनम्र सा।
नायक सब दुनिया का भक्त, स्तवन से होता प्रमुदित सा॥१४॥

: ११ :

अन्याय भी जगत् में विजय जभी पाए तब धृष्टता से।
जो न्याय की सुरक्षा करने लड़ते बहुत संकटों से॥
ऐसे धन्योत्तम नर के संग का सौभाग्य आज जो पाया।
हुए धन्य तो हम भी दीपावलि का उत्सव आज मनाया॥१॥
(चौथे क्लब की मंडली के आग्रह पर पाँच मिनटों में रचा हुआ श्लोक, १० अक्तूबर, १९०२)

: १२ :

आर्या

प्रिय मित्र 'श्रीकृष्ण', 'धत् रे', 'दाजी', फिर भी न जँचता।
'मामा' प्यार-भरा सा संबोधन ही अच्छा लगता है॥१॥
जो हमने गुजारे प्रेम-कौमुदी-किरणों से परिपूर्ण।
क्या याद हैं दिन तुम्हें? खत्म हो गए सहसा संपूर्ण॥२॥
इक शाम बैठ गए थे साथ बगीचे में हम सुखकारी।
क्या याद है तुम्हें तब कैसी शोभा थी हमने निहारी॥३॥
शुद्ध-प्रेम-विभूषित मजाक मैंने किया जब तुम्हारा।
है याद? क्षणिक कोप से खिल गया था चेहरा तुम्हारा॥४॥
स्वज्ञान की क्रीड़ा भी करके दोनों गर्व से भरपूर।
क्या याद है तुम्हें हम कैसे रहते विजय-नशे में चूर॥५॥
मन में न क्रोध फिर भी कभी क्षणिक हम रूठ जाते थे।
दोनों अनजाने में फिर कैसे बातें करते थे॥६॥
क्षुद्र कारणों से ही कभी क्षणिक हम रूठ जाते थे।
क्षुद्र मिल जाती थीं तभी अचानक हँसने लगते थे॥७॥

वतन के लिए कभी हम गंभीर षड्यंत्र रचाते थे।
कभी प्यार से कैसे शिवराजा के गीत गाते थे॥८॥
क्या याद है सभी यह? क्या होती है खुशी याद करके।
अथवा उसके बिन ही आता कैसे पत्र तुम्हारा तड़के॥९॥
होगा ही याद सभी कैसे तुम भूल भी सकोगे।
राजा-अमीर भी तो ऐसे आयुर्भाग न पाएँगे॥१०॥
ऐसी धन्य उम्र में विद्यालय से सुधन्य स्थान पर।
ईश कृपा से पाई दोस्ती ऐसी नाज है जिस पर॥११॥
मन-भूमि में हमारी, परिचय-माली मित्रता-तरु लगाए।
स्नेह-नीर से पूरित घट तुमने भी उस पर रिक्त किए॥१२॥
कुशल यहाँ हूँ मैं, तुम अपना सुक्षेम विदित कराओ जी।
अपना चरित बना लो, स्वज्ञाति-सुकीर्ति-पट न गँवाओ जी॥१३॥
(श्री. दाजी नागेश आपटेजी को भेजे हुए पत्र से, १ दिसंबर, १९०२, आयु १९)

: १३ :

द्रुत विलंबित

भुवन-मंडल भव्य खड़ा किया।
गगन का सही छत कर लिया॥
चमकते रहते सितारे सभी।
सुरसभास्थित दीप हैं ये सभी॥१॥
रव मनोहर सा करते अभी।
स्वपुर जा रहे ये ग्वाले सभी॥
दशदिशा-प्रति फैलत गोरज।
तब मुहूर्त लिया है गोरज॥२॥
ऋषि आ गए, बुध आ गए।
सकल मंडप में स्थित हो गए॥
फिर बुजुर्ग सत्वर आ गए।
त्वरित वाङ् निश्चय हो गए॥३॥
सुरनदी युत पवित्र जलसिंचन।
वर वधू प्रति अक्षत-प्रोक्षण॥
वर-शशी-निकट रोहिणी वधू।
हँस रहीं दिग्-रूप युवतियाँ मधु॥४॥

नभीसमाहित मंग मायिक।
तब मुझे स्मृति होत अचानक॥
शशि समान तुम्हें मन में स्मरूँ।
तव प्रिया मधु-रोहिणी संस्मरूँ॥५॥
शशि सुशोभित रोहिणी के लिए।
उचित हो तुम भी 'उस' के लिए॥
सुखद रोहिणी ज्यों शशि के लिए।
तव प्रिया सुखद हो तुम्हरे लिए॥६॥
कर यही तुलना गलती हुई।
अहह! मैं बहु दुःखित वाकई॥
शशि समान तुम्हारि हि रोहिणी।
उभय तुल्य समान हि अग्रणी॥७॥
परम जीवसखा शशि का जभी।
मदन, मैं तव हूँ सहसा तभी॥
प्रिय सखा स-कलत्र सहसा जभी।
मदन देख सके, पर मैं कभी॥८॥
मम न क्यों यह भाग्य रहा अभी।
अहह! व्यर्थ हि है तुलना तभी॥
मम सखा स-कलत्र हि देख।
नयन धन्य न होत सुखी मगर॥९॥
नयन धन्य, पर देह न शक्त है।
मन सही, तन की न यह बात है॥
तब जभी तन है इस स्थान पर।
मन तभी रमता तव रूप पर॥१०॥
सकल प्रकृति में इक तत्त्व है।
न दिख दे पर व्यापक सर्व है॥
मन तुम्हें यदि दीख न पाएगा।
फिर वहीं वह हाजिर रहेगा॥११॥
समझ लो, न करो शक और ही।
गलत सोच न लो बिनती सही॥
कुपित ना बन जा अपने प्रति।
कथित कारण सत्यकथा-मति॥१२॥

तव विवाह-विधि-प्रति आकर।
स्वनयन-प्रति प्रेम-सुधाकर॥
बरसने बहु कोशिश की, पर।
अहह! निष्फल हो गई सत्वर॥१३॥
मन तुम्हारि विवाह-सुरीति में।
समय ऐन इसी, मम गेह में॥
इक विवाह सुनिश्चित होत है।
अब यहाँ रहना मुमकिन है॥१४॥
प्रिय सुहृद, समझ लो कृपा करो।
मुझ गरीब पर ना गुस्सा करो।
प्रणत मित्र तुम्हें उपहार दे।
धवल प्रेम अपना यह भेद दे॥१५॥
सुकविता वनिता सरसा रही।
तव मनोहर आरति उतारत ही॥
त्वरित त्वत्प्रति आ रहि शोभना।
बहुत चाह रही मुख देखना॥१६॥
अब इसे समझे मम आत्म जा।
बहुत गौरव से कर लो फिजा॥
फिर दयाब्धि प्रभु हो वरदायक।
वर-वधू नित प्राप्त कर लें सुख॥१७॥

(ये कविताएँ श्री श्री वा. गोखलेजी के विवाह-विधि के प्रीत्यर्थ रची गई थीं। १५ मई, १९०३, आयु २०)

: १४ :

एक स्वप्न

दिंडी

कली कच्ची तालाब में कमल की।
सकल वसुधा वृष्टि में कौमुदी की॥
सुतनु सुंदरि सहवास में पिया के।
मग्न, मैं भी भुजयुग्म में निशा के॥१॥

कौमुदी के हिमधवल प्रवाहों में।
कमल सा ही चेहरा दीखने में॥
हाथ जिसका हार-सा मम गले में।
'भाउ' था मम निकट सुषुप्ती में॥२॥
नींद गाढ़ी लग गई थी हमें तब।
वात करते-करते थक गए जब॥
तभी उस वक्त ही घटित था जो।
वह न लगता संभाव्य कभी है जो॥३॥
कब, कहाँ से, औ' किस तरह से ही।
यह न कोई था स्पष्ट तब हमें ही॥
किंतु भाऊ के सदन हम पधारे।
देखते थे हम हमीं को सँवारे॥४॥
वहाँ पर जब गए उपरि मंजिल।
झाँकने को खिड़की में हुए दाखिल॥
दिख पड़ी तब निकट ही प्रपाती।
पूर्णपात्रा इक नदी बह रही थी॥५॥
कल यहीं पर तो मार्ग इक रहा था।
नदी कैसी? आश्चर्य हो रहा था॥
देख शोभा आश्चर्य बढ़ रहा था।
दिल हमारा बेचैन हो रहा था॥६॥
नभोगंगा क्या निम्न उतर आई।
भूमि अथवा नभगामिनि हो पाई॥
अन्यथा यह धवल जल समाया।
शशी कैसा रोहिणी संग आया॥७॥
साग है या यह हास्यकांति है जी।
मत्स्य उछला या नेत्रबाण है जी॥
विमल जल है या धवल वसन है जी।
नदी बहती है युवति-विभ्रमा जी॥८॥
मिली नजरें इक-दूजे से हमारी।
बताती थीं शक यही चमत्कारी॥
एक क्षण से फिर यही तय हुआ है।
युवति ना यह, यह नदी बह रही है॥९॥

'भाउ, जाएँ उस छोर तैर के जी।
वहाँ देखो, जन मजे कर रहे जी'॥
'किन्तु इतना हम तैर सकेंगे जी'।
'सहजता से ही, शक मत करो, जी'॥१०॥
देख खिड़की से सशंक दृष्टि सी।
पात्र नदी का छोर तक निहारा ही॥
एक-दूजे की ओर देखकर ही।
कूद आखिर ले लिया नदी में ही॥११॥
किंतु पानी की देख विपुलता को।
नैन भरमाए, खो दिया धृष्टता को॥
भीति अंदरूनी दिखानी नहीं है।
तभी नैनों को कड़ा हुक्म जो है॥१२॥
दिखाया ज्यों धैर्य ऊपरी ही।
दूजा डर जाए इसी बात से ही॥
हाथ थक गए औ' तभी अकस्मात्।
लगे जाने उदक में साथ-साथ॥१३॥
'भाऊ, मैं चल पड़ा' शब्द आए।
भाई-भाई साथ ही डूब जाएँ॥
महा-अद्भुत आश्चर्य! खिड़की से जी।
हमें ही हम देख रहे थे जी॥१४॥
हमें पानी से निकालने को जी।
लगे जाने हम ही त्वरित से जी॥
उसी जल्दी में सीढ़ियाँ उतरते।
फिसलकर आ गिरे धड़धड़ाते॥१५॥
जभी ऐसा झटका लगा बदन को।
तभी आई जागृति त्वरित मुझ को॥
कुशल भाऊ को देख खुश हुआ जी।
लिया बाँहों में प्यार से उसे जी॥१६॥

(पुणे के फर्ग्युसन कॉलेज में प्रिय भाऊ (विष्णु महादेव भट) जब मेरा साथी था, तब उपर्युक्त सपना आया और उसे मजेदार पाकर कविता में निबद्ध कर दिया, १४ फरवरी, १९०४)।

श्री तिलक-मुक्ततोत्सव

जोशीला गीत

आर्यभूमि के भाल-तिलक 'श्री बाल तिलक' की जय बोलो।
रिपुगण सारा चूर हो गया, इसीलिए तो जय बोलो॥
दिशाएँ सभी सुहास्य वदना कुमुदनाथ भी प्रफुल्लित।
हवा बह रही मंद-मंद मकरंद गंध है निःश्वसत॥१॥
वसुंधरा भी नहा रही है धवलतम कौमुदी-जल से।
विस्मित सारा तारागण है, खिलता है मुसकुराहट से॥२॥
सुनो किंतु यह ध्वनि आ रही है कहीं से गंभीर।
'श्रीमत्-तिलक-व्यसनं-वारणोत्सवक मना रहे सभी सुर'॥३॥
चलो सुरगणों के संग सभी तिलकनाथ की जय बोलो।
हुआ तुम्हारा देशपिता निष्कलंक, उसकी जय बोलो॥४॥

★ ★ ★

पच रही है घोर नर्क में दुष्कर्मी जो कुलटा[१] ही।
वही साध्वी औ' तिलक कलंकित, न्याय रहा यह उल्टा ही ॥१॥
हुई मत्त सरकार तिलक को कैद कराते समय तभी।
कायर दुर्जन नाचने लगे, सज्जन दुःखी हुए सभी॥२॥

टिप्पणी : १. ताई महाराज, जिन के कुकर्मों का पर्दाफाश तिलकजी ने किया था।

विविध लेख

वैनायक वृत्त की विशेषता

साधारणतः हम यह कह सकते हैं कि वह लेखन, जिसमें ताल और सुरों का संस्कार न हो, वह लेखन या भाषण गद्य है और उपर्युक्त संस्कार, कम-से-कम ताल का संस्कार जिसमें हुआ है, वह पद्य कहलाता है।

जिस प्रकार से मन में विचारों का उद्भव होता है, उन्हीं शब्दों में सुस्पष्ट और विस्तारपूर्वक अभिव्यक्त करने का साधन गद्य ही है; पर वे ही विचार जब सुर-ताल पर, यानी पद्य में अगर प्रकट हुए हों तो हमें दोगुना आनंद मिलता है। उन विचारों को शब्दों में अभिव्यक्त करने से मन को और शब्दों को सुर-ताल की मंजुलता का साथ होने से श्रुति को आनंद मिलता है। श्रुति-मंजुलता का साथ हमें इतना प्रिय होता है कि नीरस वाक्य भी सुर-ताल में कहने से अधिक सरस लगने लगते हैं। उम्र के तीस साल के बाद जीवन में रुक्षता आने लगती है, फिर भी पाठशाला के बच्चे जब सामूहिक सुर में, सुर-ताल में पहाड़े कहने लगते हैं, तब वही पहाड़े सुनने का मन होता है और मन चाहता है कि हम भी उसी लय में पहाड़े दोहराएँ। इसलिए गद्य में प्रवचन करते-करते हरिदास पुराणिक तल्लीन होकर बीच में ही गद्य की पंक्तियाँ पद्य में बोलने लगते हैं। कुछ वक्ता अपने भाषण के भावोद्दीपक गद्य-वाक्य सुर और ताल में बोलते हैं, गद्य को भी सुरों में कहते हैं।

तर्ज में गाना हो तो कुछ सुरों का, ताल का, एक विशिष्ट ढंग का बंधन होता है। केवल गद्य-शब्दों की अपेक्षा सुर-ताल के श्रुति सुखदता की मधुरिमा होनेवाले शब्दों का मनुष्य को जो स्वाभाविक आकर्षण है, उसमें ही पद्य का मूल स्रोत है। इस आकर्षण के लिए, चाह के लिए मनुष्य गद्य में चाहे जिस तरह से बोलने की सुविधा खुद ही छोड़ देता है; बड़े चाव से सुर-ताल के बंधन स्वीकारता है और पद्य का आश्रय लेता है।

यह बात हुई सर्वसामान्य विचारों की भावनाओं की, परंतु जब वे भावनाएँ अत्यंत उत्कट और अधीर होती हैं, तब वे शब्दों के अनुशासन में रह ही नहीं

सकतीं, वहाँ गद्य या पद्य का चुनाव करना असंभव हो जाता है। हृदय को दुस्सह होनेवाली भावनाओं का आवेग स्पष्ट शब्दों के बिंदुओं से व्यक्त होना जब संयत ही नहीं रह सकता, तब वह स्वयं सुरों के धाराप्रवाह में बहने लगता है। गद्य के तो नहीं हों, परंतु शब्दमय पद्य के सामर्थ्य में भी न रहकर वह गीतपद्य के, गान के, तान के प्रवाह में सहज पाया जाता है। सहज शब्दों में दु:ख की अभिव्यक्ति को 'गद्य' कहते हैं; पर शब्दों में व्यक्त होने पर जो दु:ख रोक सकने में असमर्थ होकर अकस्मात् बेकाबू होकर रोना आता है, वह 'पद्य' होता है। सहज गान, अनियंत्रित रोदन, अनियंत्रित हास्य, दबी हुई या उफननेवाली सिसकी, अकस्मात् बजनेवाली सीटी—ये सब सहज पद्य ही हैं। हम 'गला फाड़ के' रोते हैं, 'ताल' पर हँसते हैं, 'रह-रहकर' सिसकियाँ लेते हैं। शब्दों में न समानेवाली हमारी भावना उत्कष्टता व्यक्त करने के लिए 'गले' का, 'ताल' का, पद्य का स्वभावत: आश्रय लेती है। किं बहुना शोक या आनंद की यह रामकहानी या धींगामुश्ती ही मनुष्य का पहला स्वाभाविक गान, पद्य का मूल है और उनके निश्श्वास तथा उदार, सिसकी और हास्य—ये आद्यवृत्त स्वाभाविक छंद हैं।

पद्य का सुर, गीतों की तान, मनोवृत्ति के इस आवेग को सतत आवेग से बहने का मार्ग है। शब्दों के बाँध को फोड़कर उसका प्रवाह जिसमें बहाया जाता है, वह सुर है, ताल है। इसीलिए भावना का उत्कट उद्रेक सहजत: पद्य का रूप लेता है, गद्य का नहीं। इसीलिए ताल, तान, सुरीलापन पद्य की सहज विशेषता है। आगे चलकर हम उनको यद्यपि पद्य के 'बंधन' कहते हैं, फिर भी मूलत: वे पद्य के अंग-उपांग ही होते हैं। जिसका अल्प स्वरूप भी तर्ज नहीं, सुरीलापन नहीं या ताल नहीं है, वह पद्य हो ही नहीं सकेगा। जिस पद्य का ताल छूटा, उसका ताल ही बिगड़ जाता है; जो गीत बेसुर, वह गीत भीषण। वह केवल गद्य!

जिनको ऐसा कोई बंधन न मानकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की इच्छा होती है, उसी में उनको व्यक्त करने का संतोष होता है, वह ऐसे ताल-तान के सुर-बेसुरों के बंधन का आश्रय न लेते हुए, जो शब्द सूझेंगे, उन शब्दों में सुर बन अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति दे दें, पर इस तरह की रचना को गद्य कहा जाए। जिसमें पद्य की कोई विशेषता नहीं है, उसको केवल पद्य कहने से क्या विशेष लाभ होगा?

काव्य की आत्मा रस होती है। उसको गद्य में भी प्रतिभावान लेखक बहुत कुछ मात्रा में तैयार करते हैं। कुछ छंदशास्त्रज्ञ गद्य को भी एक वृत्त-छंद ही मानते हैं। कुछ गद्यकाव्य भी काफी रसीले होते हैं और रस न होने से केवल 'पद्य' कहलानेवाली कुछ कविताएँ काफी नीरस होती हैं। अत: संपूर्ण रूप से 'बंधन'

विरहित काव्य की रचना जिसे करनी है, वह गद्य का आश्रय ले ले। अधिक-से-अधिक ऐसे गद्य को 'स्वैर गद्य' कहा जाए, जिसमें वैयाकरणी वाक्य रचना छोड़कर गद्य लिखा हो।

परंतु इन बंधनों को न माननेवाला मात्र 'स्वैर पद्य' हो ही नहीं सकता; किं बहुना ये बंधन पद्य में नहीं होते। उपरोल्लिखित भावनाओं के उद्रेक की सहज प्रवृत्ति ताल में, सुर में, तर्ज में व्यक्त होनेवाली होती है। अत: जब पद्य के बिना संतोष नहीं होता, तब वे ही बंधन आलिंगन के बंधन जैसे सुखद लगते हैं, ये बंधन ही उनका स्वैराचार होते हैं।

इसीलिए यमक, अनुप्रास, ध्वनि आदि शब्दालंकारों और अर्थालंकारों के बंधन कविता बड़ी खुशी से धारण करती है—उसी तरह, जैसे कामिनी सोने का कमरपट्टा, मोतियों का हार, रत्नों की अँगूठियाँ बड़ी खुशी से धारण करती है। ये बंधन मन को खटकनेवाले बंधन नहीं होते, मन को भानेवाले बंधन होते हैं। उनका होना ही सुखदायी होता है, न होना कुछ अच्छा नहीं लगता। इन बंधनों से कविता का लावण्य अधिक खिलता ही है। कवि उनको कविता पर जबरदस्ती नहीं चढ़ाता, कविता ही स्वयं लाड़ला हठ करती है, लाड़ला छंद करती है कि कवि उन सुवर्ण अनुप्रास, यमक आदि अलंकारों से कविता को अलंकृत करे।

जैसे काव्य की आत्मा रस होती है, वैसे ही पद्य की आत्मा होती है ताल और तर्ज। आगे चलकर ताल की शास्त्रोक्त मीमांसा होकर मात्राओं की अति शुद्ध रचना हुई, उसके आगे निर्दोष कला विकसित होकर अनुष्टुप, उपजाति, स्रग्धरा, भुजंगप्रयात, आर्यागीति आदि अनेक मधुर, सुगठित और सुंदर वृत्तों का िनर्माण हुआ।

इन वृत्तों को यमक भी कितना अच्छा लगता है! संस्कृत के प्राचीन वृत्तों में अनुप्रासादि अलंकार होते थे, उनको आगे चलकर यमक अलंकार की प्राप्ति हुई, यह कला-विकास का चिह्न है, कला-ह्रास का नहीं। खींचातानी करके यमक साधना—कवि का दोष है, यमक का नहीं। सुंदर यमक निर्माण करने का कौशल्य न होने के कारण निर्यमक कविता करनेवाले कवि अपने भाषा-दारिद्र्य को कोसे, यमक को नहीं।

अनुष्टुप, आर्यागीति, श्लोक इत्यादि दो चरणों के, चार चरणों के छंद छोटे और चपल, चुने हुए और किंचित् या छोटी सी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए अत्यंत रसानुकूल हैं। एकाध सुभाषित, एकाध अर्थांतरन्यास, एकाध उपमा या एकाध काव्य-चित्र इन छंदों में पिरोने से कितना फबता है, यह वर्णन करना कठिन है। आद्य कवि का यह सुप्रसन्न अनुष्टुप देखिए—

'इदं तीर्थं समं सौम्यं सुजलम् सूक्ष्मवालुकम्।
रमणीमं प्रसन्नं च सज्जनानां मनो यथा॥'

कविकुलगुरु कालिदास का सुनहरी शृंखला में रत्न के एक ही लोलक के जैसे लटकनेवाला अर्थांतरन्यास देखिए—

'सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं।
मतिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति॥
इयमधिकमनोज्ञा वलकलेनापि तन्वी।
किमिवहि मधुराणां मंडनं नाकृतिनाम्॥'

अथवा भवभूति द्वारा रचित यह छोटा सा व्यचित्र देखिए—

'दृष्टिस्तुणी कृत जगत्भय सत्त्वसारा।
धीरोन्नता नभयतीव गतिर्धरित्रिम्॥
कौमारकेऽपि गिरिवद् गुरुतां दधानो।
वीरो रसो किमयमित्युत दर्प राव॥'

इनमें से अर्थांतरन्यास में होनेवाली 'मनोज्ञ प्रतिभा' गद्य के केवल 'वलकलेनापि' से भी रम्य लगती; परंतु इस सुललित, श्रुतिशुद्ध और सुमंजुल छंद के कारण जरतारी गुलाबी रंग की साड़ी पहनने के कारण उसका लावण्य अत्यंत खिल उठा है। कल्पना का वह सौंदर्य, छंद का सुरीलापन, ताल-मात्राओं की वह सुपरिष्कृत श्रुतिमंजुलता! अहा! अवर्णनीय! सचमुच कविता हो तो ऐसी!

इस तरह की कविता इतने सुडौल रूप में, शानदार रूप में अपने इस संस्कृत वृत्त में ही फबती है। इस वृत्त की मधुरिमा जो नहीं जान सकता, वह कैसा रसिक! और जिसको वह सधता नहीं, वह कैसा कवि!

दो या चार चरणों में समाप्त होनेवाली एकाध छोटी सी कल्पना अभिव्यक्त करने के लिए ये छंद और यमक अत्यंत अनुरूप और समुचित साधन हैं। इतना ही नहीं तो दीर्घकाव्य के लिए भी वे उपयुक्त नहीं है, ऐसा नहीं है। जिस अनुष्टुप छंद में जगत् का आद्यकाव्य 'रामायण' लिखा गया, गाया गया और जगत् का महाकाव्य—'महाभारत' रचा गया, वह अनुष्टुप छंद दीर्घकाव्य-प्रबंध के लिए उपयुक्त नहीं है शोभा नहीं देता—ऐसे किस मुँह से कहा जाए? वाल्मीकि के पवित्र आश्रम में उस किसी प्राचीन उष:काल में 'तत: प्राचेतसप्राज्ञौ रामायणमितस्तत:। मैथिलेयौ कुशलवौ जगदुर्गुरुचैदितौ॥' उस प्राचीन उषाकाल से आज तक युगानुयुग वे उस रामायणीय अनुष्टुप के मंजुल छंद काल के शब्द गुंबद में निनादते हुए आज इन दोनों गोलार्ध

में समस्त मनुष्य जाति को सम्मोहित कर रहे हैं, इसमें आश्चर्य ही क्या है!

मराठी ओवी वृत्त और बंगाली पायर—ये दोनों उस अनुष्टुप छंद की ही एक सुयमक और शिथिल प्राकृत आवृत्ति हैं। ज्ञानेश्वरजी की ओवियों की रसानुकूलता का वर्णन कैसे किया जाए?

यह सारा विवेचन प्रारंभ में ही करने का मुख्य हेतु इतना ही है कि यमक, निश्चित चरणों के पद्यबंध, गेय तर्ज आदि जो विशेष हमारे इन सुपरिचित पुराने छंदों में होते हैं, उनमें से कुछ हमारे द्वारा नियोजित नए वैनायक छंद में यद्यपि छोड़ दिए गए हैं और यद्यपि हमें यह लगता है कि उनको छोड़ देने से यह वृत्त या छंद सुदीर्घ काव्य-रचना के लिए कुछ अंश में अधिक सुविधाजनक है, फिर भी ऊपर निर्देशित यमकादिक विशेष और उनसे युक्त वे द्विचरण या चार चरणोंवाले पुराने छंद बिलकुल रसानुकूल ही नहीं हैं अथवा उनमें दीर्घकाव्य खिलेंगे नहीं अथवा यह नया वृत्त इन वृत्तों से या इन छंदों से सभी तरह से अधिक सरस है, ऐसा हमारा मत है—यह कोई न समझे। ऊपर के वृत्तों या छंदों के छोटे गढ़े हुए प्याले की अपेक्षा इस वैनायक वृत्त का विस्तृत और महान् प्रवाह का यह वृत्तपात्र दीर्घकाव्य बंध को अधिक अनुकूल होगा—इस अपेक्षा से किया हुआ यह एक प्रयोग है। पुराने छंदों में भी, इतना ही नहीं, केवल गद्य में भी, उनके विविध आकार-प्रकार के अनुकूल प्रत्येक का अपना एक अलग सौंदर्य-विशेष हर एक में होता ही है। इन छंदों में स्वयं अपना कुछ सौंदर्य विशेष होनेवाले एक नए छंद की वृद्धि हुई है और इस वृद्धि से हमारी छंद-संपन्नता की विविधता और भी बढ़नेवाली है, इतना ही इस छंद के पक्ष में कहा जा सकता है।

गद्य-पद्य काव्य की रचना के संबंध में प्रस्तुत विषय पर लागू होनेवाला सामान्य विवेचन प्रस्तुत करने के बाद अब हम संक्षेप में देखेंगे कि इस छंद के विशेष गुण और उपयोग क्या हैं—

१. गद्य को तालयति यमक चरण संख्या आदि के बंधन नहीं होते, पर इसी से उसमें सुरीलापन नहीं आता। ताल और यति आदि के संस्कारों से वाणी को सुरीलापन एवं मनोहर मंजुलता प्राप्त होती है। वैनायक छंद पर ताल, यति आदि संस्कार न होने के कारण उसका मंजुल सुरीलेपन का साथ हो जाता है। अत: वह गद्य न होकर पद्य है।

२. गद्य की अगली सीढ़ी और पद्य का प्रथम सोपान है अक्षर संख्यांक। छंद या वृत्त कला-विकास का अगला सोपान है मात्रासंख्यावृत्त। क्योंकि ताल मात्राएँ विशिष्ट रीति से हुईं तभी ताल सधता है, परंतु स्वदीर्घ का भेद न करते हुए उस ताल में केवल संख्या गिनकर अक्षर भर दिए तो उनका

उच्चारण अशुद्धता से किए बिना उस ताल के निश्चित मात्रा में समाते नहीं हैं। अभंगादि अक्षर छंद में इस कठिनाई के कारण पांडुरंग अनेक बार 'पांडूऽऽरंग' उच्चारित करना पड़ता है या 'बेलपत्र के फूल मेरे महादेवजी को' का उच्चारण करते समय दीर्घ अक्षर झट से उच्चारित करके काम चलाना पड़ता है; जैसे रेल के डिब्बे में यात्रियों की भीड़ होती है, वैसे वे अक्षर ताल में ठूँसने पड़ते हैं। बँगला भाषा में अक्षरछंद अधिक हैं, परंतु उनमें होनेवाली यह अव्यवस्था कविवर रवींद्रनाथजी जैसे संस्कृत श्रुतिसंपन्न कवि को आगे चलकर इतनी कर्कश लगने लगी कि उन्होंने अपनी कुछ पुरानी अक्षरसंख्यांक कविता शास्त्रशुद्ध मात्रा संख्यांक रूप में वृत्तांतरिक, रूपांतरित कीं। हिंदी में भी अब मात्रा संख्यांक छंद ही शिष्टतर समझे जाते हैं। जो या जिस प्रकार का ताल होगा, उसकी गिनकर तय की हुई मात्राओं के अनुसार ही शास्त्रशुद्ध ह्रस्व-दीर्घ उच्चारित जितनी मात्राएँ होती हैं, उतने ही अक्षरों की योजना करना ही अच्छा है। इसीलिए मात्रा संख्यांक छंद अक्षर संख्यांक छंदों की आगे की सीढ़ी मानी जाती है। वैनायक वृत्त या छंद अक्षर संख्यांक नहीं है, मात्रा संख्यांक छंद है। इसलिए वह छंद केवल गद्य से ही नहीं, अक्षर संख्यांक पद्य से भी श्रुतिशुद्ध, सुरीला और मंजुल हो सकता है। बँगला में होनेवाला 'अमिलाक्षर' छंद अक्षरसंख्यांक होते हुए भी इसी कारण उसका यहाँ अनुकरण न करते हुए मराठी कविता का शास्त्रशुद्ध मात्रा संख्यांक संस्कार ही हमने वैनायक वृत्त पर किया है।

३. पुराने छंदों में बहुधा चार चरणों का या दो चरणों का पद्यबंध होता है और उनके अंत में विचार और वाक्य पूर्ण करके विश्राम लेना पड़ता है, इसलिए जो विचार उनके उस छोटे संपुट में नहीं समाते अथवा जिन वाक्यों का विस्तार उनकी परिसीमा के बाहर जानेवाला होता है, वे विचार और वाक्य उसमें नहीं समाते। उनकी शोभा इस छंद के काव्य में नहीं खिलती। इस कठिनाई के लिए ऐसे विस्तृत वाक्य और विचार व्यक्त करने का कार्य उसी छंद की पुनरावृत्ति करके संस्कृत में कहीं-कहीं साध्य की गई है। इस तरह के एकाधिक श्लोकबंध को संस्कृत में 'कुलक' कहते हैं। यह सुविख्यात है कि 'कुमारसंभव' में दस-पंद्रह श्लोक मिलकर बने हुए एक कुलक में कालिदास ने ऐसा एक विस्तृत वाक्य अनेक कल्पनाओं को मधुरता में गूँथकर एक विचार व्यक्त किया है; परंतु निश्चित स्वरूप की तर्ज बार-बार कथन करने से ऐसे प्रबंध में

बहुत ही जल्द एकस्वरता (Monotory) आती है और श्रुतियों को थकावट आती है। विस्तृत काव्य या बड़े-बड़े काव्य एक ही अनुष्टुप, ओवी आदि छोटे-छोटे छंद की सहस्र-सहस्र बार पुनरुक्ति करके लिखनी पड़ती है, तब तो यह एकस्वरता अधिक उबाऊ होती है। यह टालने के लिए एक अन्य योजना कर सकते हैं और वह यह है कि चंदबरदाई के 'पृथ्वीराज रासो' के समान या रघुनाथ पंडित द्वारा लिखित 'नलदमयंती' काव्य के समान एक-के-बाद एक विविध छंदों को प्रयुक्त करना। इससे एकसुरता की कठिनाई कुछ अंश तक दूर होती है और एकसुरता को आश्रय नहीं मिलता, परंतु उस प्रत्येक छंद का पहला चरण जिस तर्ज में गाया जाता है, अंतिम चरण तक वही तर्ज कायम रखनी पड़ती है और भावनाओं के अनुसार वाक्यों के स्वर झट से बदल नहीं सकते। दूसरी कमी यह है कि उस पूरे छंद में प्रत्येक दो या चार चरणों में विचारों का या वाक्यों के अंत करके विराम देना पड़ता है। इसलिए इस काव्य में विस्तृत वाक्यों की या विचारों की कोई जगह नहीं है, कोई शोभा नहीं है।

इस तरह 'कुलक' या 'छंदविविधता' के उपाय से एकसुरता जहाँ तक हो सके, टालकर विचार वाक्यों की सुविशाल छलाँग समाने की सुविधा इस प्रत्येक एक तर्ज में, लघु चरणवाले, शीघ्रविरामी गेय छंद में जैसी होनी चाहिए, नहीं होती। इसपर उपाय के लिए अंग्रेजी में Blank Verse की योजना की गई है, इससे यह सुविधा बहुतांश में अच्छी तरह से करना संभव हो गया है। इसी से 'वैनायक वृत्त या छंद' के लिए भी दो या चार या दसवें चरणांत में ही विराम होना चाहिए—ऐसा कोई बंधन नहीं है। इससे विशाल विचार समाप्त होने तक विराम बढ़ा सकते हैं। अनेक छोटे उपवाक्यों में गूँथे हुए वकवृत्वपूर्ण दीर्घ वाक्य, उनको मधुरता से पिरोकर या गंभीर प्रवाह में खंड न करते हुए पूर्ण कर सकते हैं। मिलटन के महाकाव्य 'Paradise lost' के इस Blank Verse छंद में गूँथे हुए शैतान के राज्यसभा में दिए हुए वक्तृत्वशाली भाषण अथवा ईश्वर की देवसभा के शैलीदार भाषण पढ़ने पर ध्यान में आता है कि इस तरह का लाभ इस छंद से कैसे साध्य हो सकता है ? वही सुविधा वैनायक छंद में वैसी ही साध्य हो सकती है।

४. तुकबंदी या सयमकता मराठी के बहुतांश छंदों में निरपवाद नियम है, वह नियम इस छंद को विकल्प से लागू किया जा सकता है। यमक या अनुप्रास अलंकार छोटे चरणों के छंदों को सुहाता है। पिछले चरण के

अंतिम अक्षर की याद जब तक श्रुति में गूँजती रहती है, तभी आगे के चरणांत में तत्सदृश्य ध्वनि आ जाने से श्रुति को और मन को विशेष आनंद प्राप्त होता है, जैसा आनंद अपेक्षित स्थान पर प्रिय मिल निश्चित रूप से मिल जाने पर होता है, इसलिए अंत्यानुप्रास को 'मित्राक्षर' भी नाम दिया गया है और Blank Verse के समान मधुसूदनदत्त कृत छंद अंत्यानुप्रास विरहित होने के कारण उन्होंने उसके लिए अमित्राक्षर छंद नाम दिया है, पर पिछले चरण का वह शब्द स्मृति से निकल जाने तक की लंबाई पर, दूरी पर हो और आगे के कहीं किसी चरण में वह अंत्याक्षर आ जाए तो श्रुतिमंजुलता का आनंद स्वाभाविक रूप से उत्पन्न नहीं होता। ऐसे दीर्घावधि के बाद का अनुप्रास केवल दिखाई देने से मंजुलता का निर्माण कैसे करेगा? क्योंकि मंजुलता श्रुतिगम्य गुण है, अराव दृष्टिमान्य नहीं, इसलिए इस छंद में दो-तीन चरणों में समाप्त होनेवाला विचार यदि निर्मित हुआ और उसके कारण नजदीक के अंतर पर ही विराम आ गया तो अनुप्रास या अंत्याक्षरी की योजना करने में कोई हर्ज नहीं है। कुछ स्थानों पर ऐसे छंद में वह भी शोभायमान होता है।

> क्रूर स्वर में सौ बार स्वर गूँजे
> 'होगा क्या मुसलमान? तो सिर सलामत रहेगा।
> सौ सौ बार उत्तर से अंबर गूँजे
> 'हिंदू मैं'! सिक्ख हैं हम, मरण वरेगा।'

परंतु पहले परिच्छेद के कथन के अनुसार इस छंद में अनेक बार अनेक छोटे वाक्यों से ग्रथित एकाध बड़ा वाक्य पाँच-दस चरणों में प्रसारित होकर अर्थानुसार बीच में ही कभी-कभी समाप्त होता है। इसी से वह विराम लंबे अंतर पर किसी एकाध चरण में या चरणांत में होने के कारण नजदीक के अनुप्रास या तुक से प्राप्त होनेवाली मंजुलता, पीछे के विराम के अक्षरों के मिलाक्षर लिख देने से भी प्राप्त नहीं होती। ऐसे स्थानों पर उसी दीर्घ वाक्य का और वक्तृत्वपूर्ण गतिमान विचार का सौंदर्य यदि तुक के सौंदर्य से अधिक रसानुकूल होने पर तुक का या अंत्यानुप्रास का आग्रह छोड़ देना ही अर्थ-सौंदर्य के लिए उपयुक्त होगा। इसलिए यह छंद अंत्यानुप्रास युक्त होना ही चाहिए—ऐसा बंधन उसपर नहीं है; परंतु ऐसा भी नहीं है कि वह छंद अंत्यानुप्रास के बिना ही हो। अंत्यानुप्रास की श्रुतिमंजुलता अर्थ-सौंदर्य को समृद्ध करनेवाली हो तो

वहाँ अंत्यानुप्रास अवश्य उपयोग में लाए जा सकते हैं। नहीं तो अंत्यानुप्रास टालकर भी श्रुति-मंजुलता कुशल अनुप्रास की योजना से अर्थ-सौंदर्य अबाधित रख सकते हैं। इसी कारण से अंग्रेजी के Blank Verse और बँगला भाषा में उसके अनुकरण के तौर पर बने हुए 'अमित्राक्षर छंद' में अंत्यानुप्रास आवश्यक नहीं मानते हैं, उन्हीं के जैसे वैनायक छंद में भी वह सुविधा है।

५. परंतु ऊपर निर्दिष्ट कुछ सुविधाओं के लिए उन पुराने छंदों में होनेवाली गेयता की माधुरी से इस छंद को हाथ धोना पड़ता है। यह छंद गेय न होकर पठनयुक्त, पाठ्य है। इसलिए जो कल्पनाएँ लघु और चटपटी या जो विचार छोटे और इकहरे होंगे, वे यथारुचि उन पुराने गेय और प्रासादिक छंद में वर्णित किए जाएँ। वक्तृत्वपूर्ण भावनाओं को गूँथने के लिए सुयोग्य काव्यबंध, एकरसता और त्रुटियों को टालकर रचना करने की सुविधा वैनायक छंद में उनमें से सबसे अधिक होने के कारण ऐसे समय यथारुचि वैनायक छंद का ही आश्रय लिया जाए।

६. इस छंद में दीर्घ वाक्यों के समान ही लघुत्तम वाक्य भी ताल और यति सँभालकर कुशलता से नियोजित कर सकते हैं। इतना ही नहीं, दुःख-शोक के उद्‌गार भी जैसे के तैसे आवेश से या उद्वेग से उच्चारित कर सकते हैं। यह छंद पाठ्य-पठन योग्य होने के कारण गद्य के जैसे आवेग, उद्वेग आदि का रसानुकूल ध्वनि गेय छंद से भी अधिक त्वरा से परिवर्तित करके इस छंद ताल को सँभालकर भी अभिव्यक्त कर सकते हैं। अभी छोटी तो अभी विस्तृत वाक्य-रचना से अभी धीरे-धीरे, अभी तो वेगवान, एक क्षण करुण तो दूसरे ही क्षण संकुल—ऐसे इस छंद के अखंडित प्रवाह में काव्य के रसौध को यथारुचि विविध मोड़ लेते हुए अन्य छंदों के प्रवाह की अपेक्षा अधिक सलीलया आगे बढ़ने का अवसर मिलता है।

७. यह भी यहीं बताना आवश्यक है कि यद्यपि इस छंद के लिए अपरिहार्य रूप से अंत्यानुप्रास, चरणों की संख्या, गेयता इत्यादि बंधन न होने के कारण उसमें एकरसता और त्रुटियाँ तुलनात्मक दृष्टि से टाल सकते हैं। फिर भी वह एक छंद, एक पद्य-प्रबंध ही होने के कारण उसके लिए आवश्यक ताल-यति बंधनों के कारण इस छंद को, भले ही वह गेय न हो, पढ़ने की एक पद्धति, लचीली और लंबी उड़ान भरनेवाली भी क्यों न हो, एक सुरीली शैली है ही। परंतु शैली ताल, पद्धति या सुरीलापन यानी एकसुरता नहीं है, तो एक ही सुर की उबाऊ पुनरुक्तियाँ आवर्तन यानी

एकसूरता। और इस छंद में वह टाल सकते हैं, क्योंकि इस छंद में होनेवाले वाक्यों के विविध मोड़, ध्वनि-परिवर्तन, चरणों के मोड़ इत्यादि विशेष सुविधाओं के कारण अन्य छोटे, गेय और त्रोटक छंदों की अपेक्षा अधिक प्रमाण में वह टालना संभव होता है। Blank Verse या अमित्राक्षर छंद में भी यही बात है। ताल या सुर नाममात्र का भी नहीं चाहते तो सुरीलेपन का मोह छोड़कर, पद्य का नाम भी न लेते हुए, विशुद्ध गद्य की तरफ ही मुड़ना होगा।

यह छंद या वृत्त पढ़ने की विशेष पद्धति किसी भी पद्य की शैली के अनुसार केवल वर्णन की अपेक्षा—वह कैसी है—यह पढ़कर ही बता सकते हैं। तब तक यह छंद अजीब ही लगेगा। उसपर हमेशा का परिचित अंत्यानुप्रास का दिल लुभानेवाला उदाहरण भी उसके पास न होने से उसकी पहचान करा लेना भी उद्वेगजनक ही होगा। अंग्रेजी में Blank Verse नामक अंत्यानुप्रास विरहित छंद जब प्रथम बार रचा गया, तब इसी कारण से सर्वत्र उसकी अवहेलना हुई, विरोध हुआ। उसको यह कहकर अपमानित किया गया कि यह पंक्तियाँ तोड़कर छापा हुआ गद्य है; परंतु आगे चलकर उसमें लिखित मिलटन का महाकाव्य 'Paradise Lost' अंग्रेजी की उत्कृष्ट रचना मानी गई। शेक्सपीयर को भी अपने नाटक इसी में लिखने का मोह हुआ। बँगला भाषा में वैसा ही छंद उपयोग में लाकर कवि मधुसूदनदत्तजी ने 'मेघनादवध' सर्वप्रथम इस छंद में लिखा, तब ऐसे छंद की, उनके 'अमित्राक्षर' छंद की धज्जियाँ उस काल के वाचकों ने उड़ाई थीं। उस काव्य पर अनेक विडंबन काव्य लिखे गए, पर उनके कथन की.अचूक शैली या तर्ज लोगों की जिह्वा पर नाचने लगी और उसमें उनकी रुचि बढ़ने लगी। आज वह छंद आधुनिक बँगला कविता का कंठहार हो गया है। कविवर रवींद्रनाथजी ने अपने नाट्यकाव्य ही नहीं, अपने अनेक भावगीत भी इसी छंद में रचे हुए हैं। यह वैनायक छंद भी इसी तरह का एक प्रयोग है। यद्यपि यह मराठी में प्रयुक्त है, फिर भी हिंदी और बँगला में भी ऐसे छंद का अभाव होने के कारण उनके लिए भी वह उपयुक्त होगा। आखिर वह एक प्रयोग ही है। अगर सफल हुआ तो ठीक और न हुआ तो भी ठीक ही है। क्योंकि विशिष्ट प्रयोग विशिष्ट कारण के लिए सफल नहीं होता। यह सिद्ध होना भी प्रयोग की सिद्धि ही है, उपयुक्तता ही है।

८. **वैनायक छंद की शैली**—किसी गाने के सुर न लगाते हुए, ह्रस्व और

दीर्घ अक्षरों का यथावत् स्पष्ट उच्चारण करते हुए, प्रत्येक पंक्ति के अंत में स्वल्प विराम के जितना किंचित् रुककर विराम चिह्न के जैसे स्वल्प या अर्धविराम लेते हुए जहाँ वाक्य समाप्त होता है, वहाँ पूर्ण विराम लेना चाहिए। गद्य के जैसे अर्थ के अनुसार स्वर-परिवर्तन करके, ताल को बनाए रखकर पढ़ते गए तो रचना अगर कौशल्य से की होगी तो किसी भी पद्यबंध का विशेष सुरीलापन और श्रुतिमंजुलता इस छंद में भी आप ही आप प्रतीत होने लगेगी। किसी भी छंद को अगर लगाना चाहते हैं, तो किसी-न-किसी तरह या किसी-न-किसी गीत की शैली बहुधा लग सकती है। वैसे ही अनेकं शैलियाँ इस छंद को भी लग सकती हैं; परंतु उसमें होनेवाली रसाभिव्यक्ति यथावत् प्रकट करनेवाला उसका वैशिष्ट्य ही यही है कि यह छंद गेय न होकर पाठ्य है, वह केवल पढ़ना है, यही उसकी विशेषता है। इसके कारण किसी भी तरह की शैली या गेयता न लगाते हुए उसे पढ़ना चाहिए। निश्चित तर्ज का न होना ही उसकी तर्ज है।

□

स्वतंत्रता के गायक : कवि गोविंद

महाराष्ट्र के नासिक शहर के ख्यातनाम स्वतंत्रता के गीत गानेवाले कवि गोविंदजी का स्वर्गवास हुए आज पाँच वर्षों से अधिक बीत गए हैं। तथापि उनकी कविता महाराष्ट्र में दिन-ब-दिन अधिकाधिक समारित हो रही है। इतनी कम कविता लिखकर इतनी अधिक प्रसिद्धि और इतने कम शब्दों की पूँजी पर ऐसी चिरंतन कीर्ति प्राप्त होने का भाग्य बहुत ही कम कवियों को मिला होगा।

इस आश्चर्यजनक घटना का विश्लेषण अगर किया गया तो इस यश-प्राप्ति के लिए महत्त्व के तीन-चार कारण दृष्टिगोचर होते हैं। वे कारण भी अर्थपूर्ण होने से उनका सूत्रमय उल्लेख प्रारंभ में ही करना ठीक होगा।

कवि श्री गोविंदजी की कविता के बारे में यह कहा जा सकता है कि केवल महाराष्ट्र में ही नहीं, बल्कि अन्य किसी भी परप्रांतीय सहृदय के कानों में जब यह कविता जाती है, तब वह उसके हृदय पर चोट कर जाती है। उसका एक प्रमुख कारण यह है कि उस कविता का स्वाभाविक सौंदर्य और उसके सहज अमूल्य गुण मन को सम्मोहित करते हैं। शकुंतला की कोख से भारतीय प्रथम सम्राट् भरत का यदि जन्म न होता या महाराजा दुष्यंत ने उसका पाणिग्रहण न किया होता अथवा महाराष्ट्र के जैसे राष्ट्रीय इतिहास की आनुषंगिकता उसे न प्राप्त होती, अथवा कविकुलगुरु कालिदास की प्रतिभा से अत्युत्कृष्ट सुवर्ण संस्करण में उसके सौंदर्य की कविता की अमर आवृत्ति प्रसिद्ध न होती, तो भी उस शकुंतला की रूपगीति मूल स्वाभाविक वलकली सुंदरता जिसे दिखाई देती, उसका मन यही कहता—'इयमाधिक मनोज्ञा वलकलिना चितन्वी।'

कवि श्री गोविंदजी की कविता के मूलतः होनेवाले अनमोल गुणों को और अधिक आकर्षक करनेवाला दूसरा कारण है उसमें होनेवाला समयज्ञ संदेश। उन दिनों राष्ट्र के मन को जो एक महान् आकांक्षा कुतर रही थी; जो एक भय, एक उत्कट प्रतीक्षा, एक घुमड़ता हुआ क्रोध, एक ईर्ष्यालु निरुपाय और विफल फिर से

अदम्य आशा उस राष्ट्रीय मन में हलचल मचा देती थी, उन सभी का एक निगूढ़ और अव्यक्त हेतु गोविंद कविजी की वाणी तथा प्रतिभा ने सर्वप्रथम अभिव्यक्त किया। बड़े-बड़े लोकनेता, बड़े धुरंधर भी जिस विषय के बारे में कहते थे—'हम कह नहीं सकते वाणी से, यद्यपि उसको जो मन में नाचत है।'

उस मंगल प्रतिपादन के रहस्य का दिव्य उच्चारण कवि श्री गोविंदजी की वाणी ने किया और वह भी उसी समय, जब उसको सुनने के लिए जाने-अनजाने सैकड़ों आत्माएँ तिलमिला रही थीं, तड़प रही थीं। तब उस तरह की कविता स्वातंत्र्य, शस्त्र, अस्त्र आदि शब्दाडंबर से फुलाकर आज भी हममें से अनेक करते हैं, पर आज उसमें केवल उसी के कारण कुछ विशेषता नहीं होती, परंतु कवि श्री गोविंदजी के समय उनकी कविता का वह एक-एक शब्द, एक-एक मंगलमंत्र के समान, एक शास्त्रीय शोध के जैसा अद्भुत, घोर, फिर भी अत्यंत आकर्षक हुआ, क्योंकि दूसरा कोई वह शब्द बता नहीं सकता था। अन्य लोग जो कह रहे थे, उन कहनेवालों से सुननेवाले ऊब चुके थे। इतने में उस तड़पनेवाली राष्ट्रीय आत्मा की स्फूर्ति कवि श्री गोविंदजी की वाणी से अकस्मात् किसी आकाशवाणी की तरह गरज उठी—'भगवान् ले हाथ में तलवार। हो संगर के लिए तैयार।' और यह वाणी सुनते ही श्रोतागण भय से थरथराने लगे, फिर भी अनावर और सुकय से जहाँ-के-तहाँ रुक जाते थे। जैसे अकस्मात् होनेवाली आकाशवाणी लोगों के समुदाय द्वारा उत्सुकता से सुनी जाती है, वैसे ही सभी लोग महाराष्ट्र के, महाराष्ट्रीय कविता के उस नए अवतार की वह तेजस्वी ललकार सुनते ही मंत्रमुग्ध हो गए। किसी ने उसे उत्स्फूर्त गर्जना कहा, किसी ने उद्भ्रांत गीत, परंतु प्रत्येक ने यह जान लिया कि अपने हृदय में जो भावनाएँ व्यक्त होने के लिए कुलबुला रही हैं, उन्हीं का यह प्रतिसाद है। हर किसी ने यह झट से पहचाना, क्योंकि सरकार भी तत्काल समझ गई कि 'क्या इस तरह कोई बोलेगा?' की जिस सभ्य प्रतीक्षा में वह थी और वे ही ये बोल हैं, चौंक गई, और छोटे से पद को भी भैरवी-मंत्र के समान भयानक, भीषण मानकर उस पद को उसने जब्त कर लिया। कविवर गोविंदजी की कविता ने राष्ट्रीय आत्मा की तड़पन को अकस्मात् वाणी दी, एक महान् प्रासंगिक संदेश दिया और उसके द्वारा कुछ तो चाहिए, पर क्या चाहिए—यह समझ में न आने की झुँझलाहट भरे राष्ट्रीय मन को क्या चाहिए—वह झट से रणशृंग की खनखनाहट जैसी कुछ करारी ललकारों से बता दिया। उसके खंडन या मंडन का यह प्रसंग नहीं है। यहाँ इतना ही दिग्दर्शित करना है कि जो घटित हुआ, उसकी कारणमीमांसा क्या है?

दिग्दर्शन करते समय यह बताना अपरिहार्य है कि गोविंदजी की कविता को

जो राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त हुआ, उसका तीसरा और पहले दो कारणों से अधिक महत्त्व का कारण यह है कि उस कविता की पारदर्शी प्रतिभा से जिसका प्रखर तेज प्रदीप्त हो रहा था वह 'अभिनव भारत'। रणशृंग के निनाद स्वभावत: ही उत्क्षोभक होते हैं, परंतु तिसपर भी रणांगण में एकदम ठीक समय पर किसी सामान्य सींग फूँकनेवाले ने भी फूँक दिया तो उस प्रासंगिक औचित्य से वह अधिक ही उत्क्षोभक और उद्दीपक होता है; परंतु अगर स्वयं सेनापति ने ही प्रलयंकर उत्साह से उसे बजाया तो उसके निनाद इतने प्रभावी होते हैं कि सारी सेना मृत्यु तक दाँत खट्टे कर सकती है। श्री गोविंदजी की कविता भी एक सूर्य थी और उस सूर्य से जो राष्ट्र का खून खौलनेवाले स्वातंत्र्य निनाद बज उठे, वे अभिनव भारत के तूफानी सुरों के प्रतिनिधित्व करनेवाले थे।

श्री गोविंदजी अगर अभिनव भारत के मुखवाद्य न होते तो उनके वे गीत कदाचित् उपेक्षा की दीमक ने थोड़े ही समय में नष्ट कर दिए होते; परंतु कालगति की उपेक्षा की दीमक ही क्या, अंग्रेजी सत्ता की जब्ती का महाजंतु भी उसे निगल न सका, क्योंकि जहाँ-जहाँ अभिनव भारत का सदस्य था, वहाँ-वहाँ कैंब्रिज से कोंकण तक श्री गोविंदजी के गीतों का गुप्त पाठ करने में स्वतंत्रता का एक-एक पुजारी व्यस्त था। उस घर की महिलाएँ, वृद्ध, बालक और उनके संपर्क में आनेवाली महिलाएँ, वृद्ध और बालक इस परंपरा से सारे महाराष्ट्र में और महाराष्ट्र के बाहर भी 'कहीं काल काल राम रे, करता क्रांति गुलाम', 'सुनो, सुनो दिलदार आप हैं, सुनो एक मौज मजेदार।' ये पद गुनगुनाए जाते समय हृदय-हृदय से 'रणबीज स्वातंत्र्य किसने पाया?' के जैसा प्रश्न गर्जन करता रहा। अगर वे शब्द, वे गीत, अभिनव भारत का अधिकृत निनाद न होते तो वे किसी एक के या अकेले कवि की तान या तिलमिलाहट होती तो उन गीतों को इतना महत्त्व न उनके स्वपक्षीय मित्र देते, न ही विपक्षीय शत्रु।

श्री गोविंद की कविता का भाग्य इससे भी एकाधिक आश्चर्यजनक संयोग से प्रकट हुआ। वह कविता उसमें निर्देशित तेजस्वी संदेश कृति में उतारनेवाले वीरों के हाथ लगी, किं बहुना ऐसा लगा कि वह कविता मानो उनके लिए ही लिखी गई हो। महिलाओं में बैठकर वीरता की डींगें हाँकनेवालों की बैठक में वह कविता नहीं गाई गई तो गीतों के द्वारा बताए गए सत्य के प्रयोग प्रत्यक्ष रणकृति में संपन्न करनेवाले वीरों के हाथों में पकड़कर, उसके अनुसार आचरण किया गया। बंदीगृह के एकांत घनघोर अँधेरे में, फाँसी के फंदे के आंदोलन में, रक्तक्रांति में, प्राणों के बलिदानों में उस कविता की पंक्तियों का भयंकर परिणाम देखकर भी, उसका अर्थ अघोर रूप में मूर्तिमंत होते समय उस कविता का त्याग न करनेवाले वीरों ने कविता

को कृतार्थ बनाया। भवानी तलवार किसी भी वीर के हाथ में होती तो भी वह अपना तेज प्रकट करता, पर जब वह छत्रपति शिवाजी महाराज के ही हाथ की शोभा हो गई, तो इतिहास में उसका नाम अजर-अमर हो गया। मोटी-मोटी गद्दियों पर लुढ़ककर यह पद कोई भी गा सकता है—'कारागृह का डर क्या है उसको (उसको, यानी दूसरे को, अपने को नहीं), परंतु अभिनव भारत के वीरात्माओं और हुतात्माओं के कंठ से फाँसी के फंदे में से और लौह शृंखला के ताल पर जब—

> 'भगवान् के भूमंगल न्याय को
> रम्य शुभ्र काल की संस्थापना के लिए
> जो धीरेंद्र धैर्य से निकल पड़ा
> कारागृहों का भय क्या है उसको?
> यह आह्वान किया गया और
> कंसकंदन का यदुनंदन को जैसे
> निदिध्यास लग गया था वैसे मुझे
> स्वतंत्रता का, माँ के दास्यमोचन का
> पागलपन सवार हुआ मुझपे।'

ये करुण क्रूर चरण गाते-गाते फाँसी के स्थंडिल की सीढ़ियाँ चढ़ी जाने लगीं। तब श्री गोविंदजी की वह कविता केवल कविता न रहकर हुतात्मा के वीर निश्वासितों की महत्ता प्राप्त कर गई। वह कविता भविष्यवाणी हुई! वह केवल कल्पना न होकर यथार्थ हो गई। गोविंदजी की प्रतिभा के ध्वनिलेखों की (फोनोग्राम की) सिंहगर्जना यथार्थ, वास्तविक सिंहगर्जना हो गई। गोविंदजी की कविता मूलतः समिधा ही थी, तिस पर वीरात्माओं ने प्रज्वलित किए हुए यज्ञाग्नि में वह समिधा गिर जाने से स्वयं अग्नि ही पावन हो गई। उसमें होनेवाला प्रत्येक शब्द पहले कृति बाद में कथनवाले वीरों के कंठ से गरज उठा कि

> 'निश्चित है कि धर्मार्थ देह कृतार्थ करना है
> ये बोल व्यर्थ नहीं, नहीं बालबुद्धि के
> अखिल विश्व के मंगल के कल्याण के लिए,
> हम स्वार्थ को जलाकर कृतार्थ हुए हैं।'

श्री गोविंद कवि की कविता को महाराष्ट्र वाङ्मय में जो विशिष्ट महत्त्व प्राप्त हुआ, उसके यही कारण हैं। फिर भी एक और बात उसका कौतुक करने के लिए काफी है, वह है उसमें होनेवाली मनोवैधकता, मनोहारिता। उस मनोहारिता

को और मनोहारी बनाता है कवि का अपना चरित्र। अत्यंत करुणाजनक स्थिति में से उनकी प्रतिभा का जन्म हुआ और जिन पंगु चरणों से कवि श्री गोविंद कीर्तिशिखर पर चढ़ गए, उनकी तरफ देखने पर उस कविता का जितना भी कौतुक करें, उतना ही कम होगा। कवि श्री गोविंद नासिक के रहनेवाले थे। नासिक के तिलभांडेश्वर की गली की बरतन माँजकर पेट पालनेवाली नौकरानी के वे पंगु पुत्र थे, पर 'पंगु' कवि 'स्वतंत्रता के गायक श्रेष्ठ कवि' की हैसियत कीर्ति प्राप्त करे, यह आश्चर्य की बात है। अगर गोविंदजी कोई पंत होते तो 'पंत की कविता' के नाम से वह उतना यश नहीं प्राप्त कर सकते, जितना 'पंगु की कविता' आज यश प्राप्त कर सकी है।

कवि श्री गोविंदजी की कविता के बारे में महाराष्ट्र को जो एक करुण कौतुक है, वह कवि के वैयक्तिक चरित्र का आंशिक परिणाम होने के कारण उसके बारे में चर्चा करते समय उनके चरित्र का ज्ञान भी विशेष आवश्यक है। अत: इस स्वतंत्रता के कवि के वर्ष श्राद्ध के निमित्त से समग्र न हो तो भी तथा साध्य वह कविता संकलित आकृति में प्रकाशित करने का निश्चय कवि श्री गोविंदजी के स्मारक मंडल ने किया है। उस आवृत्ति के प्रारंभ में कवि का यथाज्ञात चरित्र छापना भी अत्यंत आवश्यक है। एतदर्थ कवि गोविंद के परिचितों में से अनेको की व्यक्ति स्मृति इकट्ठा करके, उसकी छानबीन करके कविश्री गोविंदजी का चरित्र 'श्रद्धानंद' से क्रमश: प्रथम प्रसिद्ध करने की बात तय हुई है। वही चरित्र उसके बाद भी अगर कोई और जानकारी प्राप्त हुई तो उसका अन्य चर्चा से उपलब्ध सामग्री का यथायोग्य विचार करके, आगे जब गोविंदजी की कविता की पुस्तक प्रकाशित होगी, तब उसको जोड़ दी जाए। संप्रति इस तरह तय हुआ है।

'श्रद्धानंद' के पाठक को भी वह चरित्र उनको जो वचन दिया है, उसके अनुसार कथा के जितना ही मनोरंजक और इतिहास के जितना उपदेशक भी सिद्ध होगा। कुत्सित घटित के समान मनोरंजक होकर यथार्थ जीवन के लिए किसी रसायन के समान पुष्टिवर्धक और प्रगतिकारक हो सकता है।

कविश्री गोविंदजी के चरित्र की जानकारी इकट्ठा करते समय जिन-जिन लोगों ने उनके बारे में, उनके चरित्र के बारे में या उनके काव्य के बारे में कुछ लिखा है, उनमें नासिक निवासी श्री जोग नामक मर्मज्ञ प्राध्यापक का निबंध भी हमें प्राप्त हुआ। उसमें वे लिखते हैं—किसी भी कवि का सांगोपांग अध्ययन करने के लिए जैसे उसकी सभी कृतियाँ उपलब्ध होनी चाहिए, वैसे ही किं बहुना अधिक प्रमाण में ही उसकी चरित्र विषयक जानकारी भी उपलब्ध होनी चाहिए। अनेक बार व्यावहारिक अनुभव से भावनाएँ उद्दीप्त होती हैं, विचार सूझते हैं और उनका

काव्य में रूपांतर होता है। ऐसे समय वह काव्य या वाङ्मय स्वतंत्र रूप से पढ़ने पर उसमें होनेवाली सुरसता आधे से अधिक मात्रा में नष्ट हो जाती है। कै.ना.वा. तिलकजी ने 'पाखरा ये शील का परतून (हे पंछी, क्या तुम लौट आओगे ?)' नामक कविता की रचना की है। यह कविता उन्होंने तब लिखी जब उनके प्रिय बालकवि नगर छोड़कर जा रहे थे। यह जब तक पाठक समझ न लेंगे तब तक उस कविता की सुरसता समझ में नहीं आएगी, यह कहना अनुचित नहीं होगा। सुप्रसिद्ध गीत 'सागरा प्राण तिलमिलाया है' कहाँ लिखा गया, उसका संदर्भ समझे बिना उस कविता की आर्तता समझ में नहीं आएगी।

कवि श्री गोविंदजी की कविता समझने के लिए अन्य कवियों की अपेक्षा यह अधिक आवश्यक है कि उनके चरित्र से संबंधित जानकारी प्राप्त हो। अन्य कवियों की कुछ कविताएँ भी उनका चरित्र मालूम न होने से अच्छी तरह से समझ में नहीं आतीं। अगर गोविंदजी के ध्येय का स्वरूप मालूम न हो तो उनकी सारी कविताओं का चित्र ही अस्पष्ट और प्रमाणहीन हो जाएगा। उनका चरित्र उनकी कुछ कविताओं की ही केवल पृष्ठभूमि न होकर उनके सभी काव्यचित्र की पृष्ठभूमि है। उस चित्र का यथार्थ समालोचन और उचित मूल्यांकन उस पृष्ठभूमि को छोड़कर हो ही नहीं सकता। कुछ कविताओं की सुरसता उस पृष्ठभूमि के बिना समझ में आना ही असंभव है, उदाहरण के लिए उनकी अंतिम, मृत्युशय्या पर लिखी हुई, कविता 'सुंदर मी होणार' कविता देखिए। उसमें होनेवाले 'सुंदर' शब्द देखिए। 'सुंदर' शब्द में हृदय को झकझोरनेवाली चुभन, कवि के पंगुपन की मूर्ति जिन्होंने देखी नहीं है, हृदय पर प्रतिबिंबित नहीं हुई है, उसके मन को कैसे समझेगी ? कैसे उस पाठक का हृदय करुणा से भर् आएगा ?

श्री गोविंद कवि की कविता का यथार्थ महत्त्व जानने के लिए उनके जिस चरित्र का ज्ञान आवश्यक है, दुर्दैव से वह चरित्र उस आवश्यकता के समान ही दुर्लभ हुआ है। प्रो. जोग कहते हैं—'कवि चरित्र के बारे में उदासीन रहने का और उसके बारे में 'पिंडेष्वनास्था खलु भौतिकेषु' यह कवि वचन किसी श्रुतिवचन के जैसे मानने की हमारे पुराने संप्रदाय की आदत है। इस बात के बारे में हमने पाश्चात्यों का अनुकरण न करने का स्वाभिमान दिखाया है।' इस सर्वसाधारण अनास्था के साथ कविश्री गोविंदजी का चरित्र विशेष रूप से दुर्लभ होने का दूसरा कारण यह है कि गोविंदजी पर राजकीय आरोप लगाया गया और उनके गीतों के कारण सरकार उनपर क्रोधित थी। कुछ दिन तो ऐसे थे कि कवि गोविंद का और हमारा परिचय है, यह कहने में भी लोगों को डर लगता था। अब तो भय का कुछ कारण ही नहीं है। फिर भी अब कुछ लोग जानकारी बताते समय डर जाते हैं।

उसका कारण है कि आज डर नहीं, फिर भी डर का स्मरण अब भी उन्हें डराता है। तीसरा कारण यह है कि कवि ने स्वयं अपने बारे में कुछ भी जानकारी कहीं लिखी नहीं है। एक बार जब वे आसन्नमरण अवस्था में थे, तब मित्रों के आग्रह पर आत्मचरित्र कथन करने के लिए तैयार हुए थे, यह बात हमारे पास आई एक चिट्ठी से ज्ञात हुई। उस आत्मचरित्र का आरंभ 'मुझे मेरे अतीत के बारे में बहुत ही थोड़ा सा स्मरण है।' इस अशुभ वाक्य से होकर, बीच में पाँच-दस वाक्य बता देने पर कहते थे, 'बस, आज के लिए इतना ही काफी है।' इस तरह कागज के बचे हुए निराश कोरेपन में वह एक परिच्छेद की आत्मकथा का अंत हुआ।

हो सकता है कि यह विरोधाभास भी होगा, परंतु हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि गोविंद कवि के चरित्र की दुर्लभता का मुख्य कारण यही है कि उनके जीवन में चरित्र कुछ नहीं था। इतनी कठिनाइयाँ होते हुए भी उनका जो थोड़ा सा चरित्र अब उपलब्ध है, वह उनके सर्वस्व उत्कट अभिमानी, उत्कट सहकारी, उत्कट स्नेही श्री महाबलजी के सतत परिश्रम का फल है। ये ही वे महाबल, उसपर 'अस्थिवैध' है। फिर महाबलजी ने गोविंदजी की मृत्यु के बाद उनके भग्न चरित्र का अस्थिपंजर ठीक-ठाक किया और इस कार्य में उन्हें उतना ही यश प्राप्त हुआ कि गोविंदजी की पंगुता का अस्थिपंजर ठीक करने में गोविंदजी के अस्तित्व काल में प्राप्त हुआ। यद्यपि यह सत्य है कि जो कुछ थोड़ा सा चरित्र गोविंदजी के अस्तित्व में था, वह समझे बिना उनका काव्य समझना कठिन है, फिर भी यह सत्य है कि यद्यपि उनके काव्य में सारे राष्ट्र की उथल-पुथल की रणदुंदुभि सदैव गरज रही थी, फिर भी गोविंद कवि के जीवनक्रम में उनके चरित्र में कुछ उथल-पुथल नहीं हुई। पहले का तमाशबीन ढंग का वह रेशम का जैकेट उतारने पर केवल कुरता आया, कानों पर तिरछी रखी हुई वह जरी की टोपी बदरंग होते-होते काली पड़ने पर एक सीधी-सादी टोपी सिर पर विराजमान हुई। बस्स्। इतना ही कवि गोविंदजी के जीवन में परिवर्तन हुआ।

नाट्यगृह में रंगभूमि के चबूतरे पर आज पानीपत का मुकाबला होता है, तो कल पानीपत का प्रतिशोध। युगों-युगों के संघर्ष, लड़ाइयाँ, उत्थान, पतन—परंतु उन रोमहर्षक उथल-पुथलों का परदा गिर जाने पर, परदा हटाने पर चबूतरा फिर चबूतरा ही रह जाता है। निश्चल, खुला, निर्जन। इस तरह का उनका चरित्र था। अमुक दिन चबूतरे का निर्माण हुआ, वैसे ही वे रहते आए। अमुक दिन चबूतरा गिर गया, उसी तरह श्री गोविंदजी के चरित्र की स्थिति थी। जिसमें कुछ घटित ही नहीं हुआ, उसे गोविंदजी का चरित्र कहते हैं। उनके जीवन में जो भासमान हुआ, वह उनका न होकर उनके शुभ्र और स्थिर थाली में गिरे हुए उनके राष्ट्र की अभिनव

भारत की प्रचंड क्रांति के और आंदोलन के प्रतिबिंब थे। इन प्रतिबिंबों के समुच्चय को गोविंद कवि का काव्य कहते हैं।

कवि गोविंदजी की पूर्वपीठिका

जिनका अपना कोई विशेष चरित्र नहीं है, ऐसे गोविंद कवि के चरित्र के लेख का शिष्टाचार निभाने के लिए उपयुक्त थोड़ी सी पूर्वपीठिका बता सकते हैं। ये श्री महाबलजी के उपकार हैं, क्योंकि उन्होंने कवि की वृद्ध, निर्धन और बेचारी माताश्री श्रीमती आनंदीबाई से—जितनी जानकारी वह बता सकती थी—जानकारी एकत्र की है। श्री महाबल लिखते हैं—'कवि गोविंद नगर जिले में होनेवाले 'दरे' गाँव के मूल निवासी थे। अत: नासिक में वह परिवार 'दरेकर' नाम से पहचाना जाता था। नासिक में कवि गोविंदजी के दादा किसी उपाध्याय के घर में नामावली की कॉपियाँ उधर-इधर ढोने का काम करते थे।'

श्री महाबल स्वयं नासिक तीर्थक्षेत्र के निवासी होने के कारण 'नामावली' क्या है—उसकी जानकारी उनको जन्म से होगी, और वे समझते होंगे कि दुनिया भी जानती होगी कि नामावली क्या है, यह स्वाभाविक ही है; परंतु नासिकेतर जनता को इस शब्द का मर्म कोकावलि के 'पत्तल' शब्द जितना ही मालूम होगा। इसलिए संक्षेप में कहना होगा कि नामावली क्या है? घुटने तक गंदा अँगोछा पहने थुलथुल शरीर पर का उत्तरीय कंधे पर डालते हुए, बार-बार गिरनेवाला उत्तरीय फिर कंधे पर सँभालते जोर-जोर से यात्री के सामने चिल्लाते हुए पूछनेवाला, 'आपका नाम क्या है सेठजी, आपका नाम क्या है साहब? आपका नाम' कहते-कहते ताँगे के साथ घोड़े जैसे दौड़नेवाला और बीच-बीच में 'आपका नाम क्या है' के स्थान पर पाटणेकर, पारपेकर, हाँ-हाँ हम वही हैं—ऐसा कहनेवाला ताँगे को अपने घर ले चलने का इशारा करनेवाला और नामों की बार-बार पुनरुक्ति जोर-जोर से करनेवाला कोई एक उपाध्याय आँखों के सामने लाइए। तत्पश्चात् उसके बगल में पसीने से भीगी हुई, चमड़े के लाल पुट्ठे का आवरण वाली उन पावन कॉपियों की तरफ देखिए। बाद में वह ताँगा स्टेशन से आधा किलोमीटर दूरी पर जाने पर उसे रोककर वह चमड़े के पुट्ठेवाली प्रचंड कॉपी, बही खोलकर उसमें लिखे हुए विवरण के अनुसार यात्रियों की सात पीढ़ियों का उद्धार नाम उपनाम के साथ करते हुए दूसरे बाजू के उसी के प्रतिबिंब के जैसे उपाध्यायों को जब वे भी नामावली पढ़ते देख उनकी भी सात पीढ़ियों का उद्धार ग्रामीण भाषा में करता है। उसका वह दुहरा भाषण सेठ से और दूसरे प्रतिस्पर्धी उपाध्याय से क्षण भर आप सुनिए। अंत में अपने बाप के बाप के बाप के बाप के बाप तक की पीढ़ियों ने, उनकी पत्नियों तथा

बालकों ने नासिक क्षेत्र में कब, कहाँ, कितने दिन प्रवेश, निवास और निर्गमन किया था, उसका सविस्तार वर्णन मूल स्वाक्षरी सहित उस कॉपी में लिखा हुआ देखकर वह यात्री, सेठ साहब, आश्चर्यचकित होकर चुपचाप उसी उपाध्याय के घर में भरी हुई थैली से प्रवेश करते हैं और खाली थैली से बाहर निकलते हैं। उस कॉपी को, बही को नामावली कहते हैं। ये नामावलियाँ कभी-कभी बड़े ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य करती हैं। श्रीमंत बाजीराव पेशवा की माताश्री श्रीमंत राधाबाई को लिखना आता था—इस बात का शोध त्र्यंबकेश्वर के एकदम पुरानी, फिर भी अन्यावधि नामावली से राधाबाई की अपनी स्वाक्षरी होने से लग गया। बालाजी विश्वनाथ पेशवा के बंधु को बोरे में डालकर बालाजी विश्वनाथ देश पर आने से पहले समुद्र में डुबो दिया। इस दंतकथा को झूठ साबित किया नासिक त्र्यंबक की नामावली ने। उस बंधु की बालाजी विश्वनाथ देश पर आने की स्वाक्षरी उस नामावली में थी, ऐसा हमने सुना है।

अब यह बताना न होगा कि ऐसी ये नामावलियाँ पेशवाओं के पहले से आज तक के नामों को उदर में समाती हैं तो इससे ये नामावलियाँ पुराने मोटे-तगड़े उपाध्यायजी को भी उठा न सकने जितनी अजस्र और असंख्य भागों में विभाजित होती हैं। इसलिए उन नामावलियों को उठा लेने के लिए बड़े-बड़े उपाध्यायों को एक-एक नौकर रखना पड़ता था, वह नौकर नामावलियों को ढोता रहता था। ऐसी ही एक नामावली के सच को ढोने का कार्य श्री गोविंद कवि के दादाजी करते थे। यह समारोपक वाक्य नामावली के विषयांतर को विषयसंबद्ध करनेवाले डोर के जैसे उपयुक्त होगा, इस आशा से फिर से लिख रहा हूँ।

कवि श्री गोविंदजी के दादाजी के बारे में इससे अधिक जानकारी देना या उस विषय के लिए और अधिक जगह देना विषयसंबद्धता के ही नहीं, विषयांतर की भी शक्ति के बाहर होने के कारण अब गोविंदजी की पिताश्री विषयक उपलब्ध जानकारी की तरफ मुड़ना ही श्रेयस्कर है; परंतु व्यायामाचार्य महाबल जैसे कसरतकुशल और उत्साही बृहत्संग्राहक ने 'श्री गोविंद के पिता नासिक में राज का काम करते थे।' इस एक वाक्य के आगे कुछ भी नहीं लिखा है, वहाँ हमारे जैसा परोपजीवी आलसी चरित्रलेखक और क्या लिख सकता है? एक और संतोष की बात यह है कि श्री गोविंदजी के पिताश्री दिन भर राज का काम करने के बाद बचे हुए समय में प्रवचन, पुराण सुनते थे, यही उनके स्वभाव की जानकारी देनेवाली बात उपलब्ध हुई है।

पिताश्री की इस अध्ययनशीलता का और भजन में रुचि रखने का परिणाम वंश-परंपरा के तत्त्व के अनुसार कवि गोविंदजी के बुद्धि-विकास में और गीत

काव्य पर हुआ है।

पिताश्री के आधे-अधूरे उल्लेख के बाद गोविंदजी की माताश्री का भी उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है; क्योंकि माता पिता की अर्धांगिनी होती है, परंतु श्री गोविंदजी के पिता की अपेक्षा माता का सहवास इस चरित्रकाल में अधिक होनेवाला है। कवि गोविंद के चरित्र में गोविंद का ग्रंथ समाप्त होने पर भी, गोविंद के चल बसने पर भी उनकी वृद्ध और करुणामयी माता का ग्रंथ बाकी रहा। अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु अपनी आँखों से देखने के बाद पुत्र के चरित्र का अंशमात्र भी क्यों न हो, बताइए—ऐसी प्रार्थना करनेवाले और स्वयं घर-घर के बरतन माँजकर, मजदूरी करते समय 'यही स्वतंत्रता के कवि गोविंदजी की माँ है।' यह एक-दूसरे को दिखाकर अत्यंत पूज्य भाव से उनकी वंदना करके कृतज्ञ लोगों के झुंड-के-झुंड अपने दरिद्र दरवाजे पर प्रतीक्षा में खड़े रहनेवाले लोगों के देखने का दुर्भाग्य इस माताश्री के हिस्से में आनेवाला है, इसलिए संप्रति इतना ही बताना काफी है कि उसका नाम आनंदीबाई था।

कविवर गोविंदजी की जन्मतिथि

देवर्षि भिंबक गवंडी जैसे पिता और मोल-मजदूरी करनेवाली आनंदीबाई माता की कोख से गोविंदजी का जन्म हुआ। हमारे सौभाग्य और ऐतिहासिक शोधकर्ताओं के अत्यंत कठोर दुर्दैव से श्री गोविंदजी की जन्मतिथि एकदम अचूक है। इनका जन्म माघ महीने के कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन शक १७९५ में हुआ। इतना ही नहीं, उस जन्मतिथि के अनुरूप जन्मपत्री भी मिल गई है—प्रो. जोग के निबंध में उसका उल्लेख है। ऐतिहासिक शोधकर्ताओं का पूर्ण रूप से यह दुर्दैव है, क्योंकि अगर महत्त्व के प्रत्येक व्यक्ति की जन्मतिथि उसकी मूल जन्मपत्री के साथ मिल गई और उसपर दुःख की बात यह हुई कि वे जन्मपत्रियाँ खोने से बच गईं तो ऐतिहासिक शोधकर्ताओं के समुदाय का अस्तित्व ही लुप्त होने का संकट इस दुनिया में आए बिना नहीं रहेगा। अगर वीरशिरोमणि छत्रपति शिवाजी की जन्मतिथि लुप्त न होती तो आज भारत इतिहास-संशोधक मंडल के भवन का एक अत्यंत शोभायमान और विवादग्रस्त दालान अनेक कागजों के ढेर से खाली ही रह गया होता न? अनेक जन्मतिथियों का पक्ष लेकर अपना तर्क-चातुर्य प्रदर्शित करने का अवसर प्राप्त नहीं होने के कारण अनेक विद्वान् बेकार रह जाते। अजी इतिहास के बुद्धजन्म से लेकर तो शिराल शेठ (श्रीयाळ सेठ) की मृत्यु तक के सभी कागज-पत्र अपनी जगह पर बिलकुल वैसे-के-वैसे रह जाते तो हम राजवाडेजी के जैसे शोधाचार्य को खो बैठते। आज भी कवि गोविंदजी की जन्मतिथि-जन्मपत्री का

कागज किसी ने फाड़ दिया तो उसका इतिहास-संशोधक मंडल पर उपकार होगा। हम चरित्र लेखकों की तर्कशक्ति को ही प्रोत्साहन प्राप्त होगा।

कवि गोविंदजी की जन्मपत्री

जन्मपत्री का नाम लेते ही जन्मपत्र का वह नक्षत्र-कुंडली ही आँखों के सामने आ जाती है। प्रो. जोग ने कविश्री गोविंदजी के चरित्र की वह कमी भी बड़े साहस से निपटाई है। श्री गोविंदजी के आय-स्थान में केतु ग्रह वास करता है। उसका फल यह होता है कि उस व्यक्ति के पास संपत्ति का पूर्ण अभाव रहेगा, ऐसा शास्त्र बताता है। धन स्थान पर रवि ग्रह होने पर भी उसके साथ शनि ग्रह भी है, इस बात का शास्त्रोक्त फल ऐसा होगा कि बहुत परिश्रम के बाद संपत्ति प्राप्त होगी, परंतु व्यय स्थान पर चंद्र ग्रह है। उसका फल यह होता है कि सीधे तरीके और उदारता से हाथों से सदैव व्यय ही होता रहेगा। भाग्य स्थान पर गुरु ग्रह है, यानी भाग्य बलवान है। इस तरह प्रो. जोग के निबंध में उल्लिखित कुंडली से बताई गई शास्त्रोक्त फलश्रुति पृथक् है। अगर उन अलग-अलग वाक्यों को संकलित करके पढ़ा जाए तो फलश्रुति इस तरह निष्पन्न होती है कि जिस संपत्ति का पूर्ण रूप से अभाव है, वह परिश्रम करने पर प्राप्त हो सकती है और बिलकुल न होनेवाली संपत्ति का व्यय गोविंदजी उदार हाथों से करेंगे, तो ऐसे कवि का भाग्य महान् ही होगा। इस तरह इस फल ज्योतिष्य का अंदाजा या भविष्य कितना अगम्य, अचूक और सुसंगत है, यह गोविंद के कुंडली-भविष्य के कारण गणित ज्योतिष के बारे में और फल ज्योतिष के बारे में उनके अज्ञान के उतना ही आत्मविश्वासु अविश्वास भी अजिंक्य है। उसका कौतुक हम जैसों को क्षण भर लगता है और यह शीर्ष अवनत करके गरदन झुकाकर मान्य करना पड़ता है कि कुंडली ज्योतिष का हास्य निर्माण करने का एक भी क्यों न हो, उपयोग है। लाफिंग गैस (हास्य वायु) के जितना कुंडली ज्योतिष आदरणीय ही है।

कविवर गोविंदजी की जाति

अब तक हमने कवि गोविंदजी की जाति के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया है, क्योंकि यह विषय थोड़ा झंझट भरा है। यह बताना जरा धोखे का काम है कि वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन जन्मजातीय शाश्वत जातियों में से किस जाति के थे; क्योंकि यह सिद्ध है कि वे ब्राह्मण नहीं थे। उनको क्षत्रिय कहें तो 'अ अरेरे कलावाद्यतयो स्थितिः' कहकर ललकारते हुए काशी के ब्राह्मण हम पर टूट पड़ेंगे। अगर हम उन्हें शूद्र कहें तो कोल्हापुर के ब्राह्मणेतर मतभेद के एक शब्द के

लिए यह चरित्र ही ब्राह्मणवादी है, कहकर उसका वेदोक्त बहिष्कार करेंगे। अब अगर हम जन्मजात वर्ण की बात छोड़ दें और उनके धंधे के अनुसार जाति बताएँ तो कवि गोविंदजी के दादा उपाध्याय की नामावलियाँ ढोने का काम करते थे और इस काम के अनुसार, इस काम के वर्ग का कोई जातिवाचक नाम अभी तक हमें ज्ञात नहीं है। अत: उपब्राह्मण नामक नवीन शब्द से वह जाति हम अस्थायी रूप से संबोधित करते हैं। उप, यानी सन्निध, उपब्राह्मण यानी ब्राह्मण सन्निध (पोथियाँ लेकर) चलनेवाला। अत: अगर व्यवसाय जाति तय करनी हो तो गोविंदजी के दादाजी की जाति उपब्राह्मण थी। पिताजी की जाति राजगीर या राज की थी और स्वयं गोविंदजी की जाति उत्तर आयु में 'गांधळी' थी, क्योंकि वे पोवाडों की रचना करके डफ के ताल पर गाते थे।

परंतु श्री गोविंदजी की जाति के बारे में चातुर्वर्ण्य और व्यावसायिक वर्ण—इन दोनों प्रकारों से निर्णय दोहरा होने के कारण उनकी जाति का निर्णय करने के लिए इतिहास के शोधकर्ताओं को तीसरा ही मार्ग ढूँढ़ना पड़ा। वह मार्ग था म्यूनिसिपैलिटी में किया हुआ पंजीकरण। नासिक की म्यूनिसिपैलिटी में गोविंदजी की मृत्यु का पंजीकरण करनेवाले फॉर्म पर उनकी जाति 'वंजारी' लिखी गई है। स्वतंत्रता का कवि श्रीगोविंद बंजारी था—यह सुनते ही आनुवंशिकता के पुजारी चिढ़कर म्यूनिसिपैलिटी को ही झूठा ठहराने लगे। अत: प्रो. जोग उनको ठोंक-ठाककर, साफ-साफ बताते हैं कि कवि गोविंद बंजारी हुए तो क्या हुआ, प्रतिभा देवी ने तो उनको नहीं झिड़कारा था। सरस्वती के साम्राज्य में जातिभेद बिलकुल नहीं है (अगर यह सच है तो वह साम्राज्य म्लेच्छदेशीय रहा होगा, वह साम्राज्य आर्यावर्त में हो ही नहीं सकता, क्योंकि चातुर्वर्ण्ये व्यवस्थानेव यस्मिन् देशे न विद्यते। तं म्लेच्छदेशं जानीयात् आर्यावर्त: तत: परं। इति स्मृति)। बर्न्स किसान था, शेक्सपीयर कसाई जाति का था, परंतु उनकी जन्मजाति काव्य निर्मिति के मार्ग का रोड़ा नहीं बनी।

अभी तक भाष्यकारों की परंपरा के गौरवार्थ शब्द-विडंबन से विस्तारित अनेक वाक्यों का मतितार्थ अब एक ही वाक्य में बताकर सूत्रकारों की परंपरा का भी गौरव करना उचित होगा। अत: फिर से संक्षेप में उल्लेख करते हैं कि 'कविवर गोविंदजी की जाति बंजारा (बंजारी), पिताश्री का नाम त्र्यंबक, माताश्री का नाम आनंदीबाई, जन्मस्थान नासिक, जन्मतिथि शक १७९५, माघ बदी अष्टमी है।' अब इस बात का विवेचन करेंगे कि कवि गोविंदजी का बचपन कैसे बीता?

कविवर गोविंदजी के पिताश्री तब ही चल बसे जब वे छोटे थे। घर में दरिद्रता ने सदैव निवास किया था। ऐसे में घरधनी ही मृत्यु का ग्रास हुए बच्चा छोटा

था, ऐसी स्थिति में गोविंदजी की स्नेहमयी और परिश्रमी माता ने घर-घर में कूटने पीसने, बरतन माँजने, कपड़े धोने आदि घरेलू काम करके उससे मिलनेवाली मजदूरी पर अपना चरितार्थ चलाया, घर-गृहस्थी सँभाली। माताश्री आनंदीबाई ने छह-सात वर्ष की आयु में गोविंदजी को पाठशाला में दाखिला दिलाया। प्रो. जोग लिखते हैं—'वह काल सन् १८८० का था। उस समय कामकारी लोगों में शिक्षा के बारे में रुचि नहीं थी। ऐसे समय एक निर्धन, अनाथ महिला ने अपने पुत्र को पाठशाला में दाखिला दिलाया, यह कार्य ही कौतुकास्पद तथा अभिनंदनीय है; पर दूसरी कक्षा में आते ही गोविंदजी को एक घातक बीमारी हुई। उस बीमारी का इलाज कराने के लिए उस अनाथ महिला के पास पैसा नहीं था। इस कारण या अन्य किसी योगायोग से उस लड़के का पूरा जीवन मिट्टी में मिल जाने का प्रसंग अचानक उनके ऊपर आ गया।'

उस लड़के के पाँव घुटने से नीचे बिलकुल पंगु हुए, वह अपाहिज हो गया। दोनों पैरों के घुटने के नीचे के पैर, उकडूँ बैठते समय जैसे नीचे के पैर जाँघ के निचले हिस्से से लग जाते हैं, वैसे जाँघ के साथ हमेशा के लिए चिपक गए और जन्म भर वे पैर वैसे ही रहे। अतः बैठते समय गोविंदजी को उकडूँ बैठना पड़ता था, सोते समय अकड़कर उन पैरों से वैसे ही उकडूँ अवस्था में बिछौने पर सोना पड़ता था। चलते समय पैरों से चलना तो संभव ही नहीं था। दोनों हाथ आगे जमीन पर रखकर उसके बल पर मेढक जैसे छलाँग लगाकर आगे चलना पड़ता, वे मेढक के जैसे ही चलते थे। जब आनंदीबाई के पति की मृत्यु हुई, तब उन्हें यही एक इकलौती संतान थी। देखने में नाक-नक्श से वह अच्छा था। हाँफते-दौड़ते जब बच्चा स्कूल से वापस आता था तब आनंदीबाई के मन में कृतार्थता की भावना उठती। वह आशा करती थी कि कुछ ही दिनों में मेरा बेटा बड़ा होगा और मेरे परिश्रमों का भार हलका करेगा। मैं उसकी शादी करूँगी और उसकी बसनेवाली नई गृहस्थी में अपनी टूटी हुई गृहस्थी की उदासीनता का दुःख भूल जाऊँगी। नियति हँस रही थी। माँ ऐसा सुखद स्वप्न देख रही थी, पर देखते-देखते वह स्वप्न भंग हुआ। वह बच्चा सदा के लिए पंगु हो गया, अपाहिज हो गया। अपना इकलौता बेटा पंगु हुआ है, आजीवन पंगु रहेगा, यह समाचार जब माता ने स्पष्ट रूप से सुना होगा, तब उस माँ के हृदय की कितनी करुण-विह्वल अवस्था हुई होगी? उस क्षण जब उसे ज्ञात हुआ कि उसके इकलौते बेटे का जीवन धूल में मिल गया है, तब उस मातृहृदय को कितना अपार दुःख हुआ होगा, दुःख का पहाड़ उस पर टूट पड़ा होगा। फिर भी माँ को जो दुःख होना था, वह उन क्षणों में ही हुआ होगा, अपने पंगु बेटे की जो आजन्म दुर्दशा होनेवाली है, उसका भान उसे उसी समय हुआ होगा,

परंतु बेटे को उसके पंगुपन का दुःख उसी क्षण अनुभूत नहीं हुआ होगा, क्योंकि उस समय बेटा लगभग आठ साल का था। उस दुःख की व्यथा की तीव्रता उसको चढ़ती आयु के साथ बढ़ते प्रमाण में भुगतनी थी। बचपन में दौड़ने-खेलने के समय वह कुछ नहीं कर सकता था। उछल नहीं सकता था, छलाँगें नहीं लगा सकता था। बाकी बच्चे उसे 'पंगु, अपाहिज' कहकर चिढ़ाते थे, उसपर हँसते थे, उतना ही दैहिक पंगुता का दुःख था, पर जैसे-जैसे वह बड़ा होने लगा, जवानी में प्रवेश करने लगा, वैसे-वैसे अलग तरह का दुःख उसे सताने लगा। वह यह था कि माँ घर-घर के बरतन माँजकर उसका पेट पाल रही है और वह कुछ नहीं कर सकता। अन्य माताएँ केवल नौ महीने तक ही अपने बच्चे का भार वहन करती हैं, पर अपनी माँ को अपना भार, अपना बोझ जन्म भर ढोना पड़ेगा—इस बात पर उन्हें लज्जा आती और बड़ा दुःख भी होता।

यौवन के उद्यान में फूलों में होनेवाले मधु पीते हुए भौंरों, तितलियों के समुदाय इतस्ततः गुंजन करते घूमते-फिरते देखकर कविवर श्री गोविंदजी को अपने पंगुत्व का भारी मानसिक दुःख सहना पड़ा कि युवावस्था में भी तथा अब आजन्म पंख टूटे हुए भौंरे के समान उनको अतृप्त भावनाओं की तीव्र पीड़ा सहते हुए मिट्टी में ही लोटना पड़ रहा है। यौवनावस्था के उत्तुंग शिखर पर उच्च आकांक्षाओं से बाहुओं में स्फुरण होने पर भी अपने ही शब्दों से चेतकर, अनेक वीरों को कार्यक्षेत्र में आगे बढ़ते हुए देखकर, अपने को चूड़ियाँ पहनकर, घर की दहलीज पर चिथड़ों की गठरी जैसे पड़े हुए देखकर उनकी चुभन तीव्रतम हो जाती। अंग्रेज पुलिस जब उनकी तरफ अंगुलियाँ उठाकर धिक्कारते हुए कहती 'अरे, जाने दो यार, उस पंगु को पकड़कर क्या होगा ? वह मेढक डराँव-डराँव की गर्जना ही कर सकता है, और क्या कर सकता है ? हमें ही बोझा ढोना पड़ेगा, जाने दो।' इस तरह के तुच्छ उद्गार उनको सुनने पड़ते, तब आकांक्षा भंग का आत्मिक दुःख पंगुता के दुःख से तीव्रतर हो जाता था।

श्री गोविंदजी की बढ़ती आयु के साथ-साथ पंगुता की पीड़ादायिनी यातनाएँ जीवन के अंतिम क्षणों तक बढ़ती ही गईं। मृत्यु के समय उस पंगुपन की उठी हुई अंतिम मानसिक टीस इतनी तीव्र थी कि उसकी चीख मरण के इस तट पर से उस तट तक सुनाई दे।

> 'मैं सुंदर बन जाऊँगा—मरण से जीऊँगा।
> इस व्यंग देह से कैसी इच्छाएँ पूरी होंगी ?
> आज नहीं पूरी हुईं वह आगे पूर्ण होंगी सौ बार
> मैं सुंदर बन जाऊँगा॥'

केवल आठ वर्ष की आयु में ही गोविंदजी के पाँव पंगु हुए, पर आगे चलकर जब उस पंगु गोविंद की कविता देवी सरस्वती की कृपा से कीर्ति का पर्वत लाँघकर सर्वत्र फैल गई और जब कविता की स्फूर्ति से राष्ट्रवीर लड़ने के लिए तैयार हुए, तब अभिनव भारत के लाड़ले स्वतंत्रता के कवि से, इस 'आबा' से दिल्लगी करते हुए कहते थे, 'आबा को पैर क्यों नहीं हैं? उन्होंने अपने पैर स्वातंत्र्य स्फूर्ति को अर्पित किए हैं, ताकि वह चल सके और आगे बढ़ सके। आबा के पाँव गए, इसलिए राष्ट्रवीरों के पाँव समर्थ हुए।' उन वीर किशोरों के परिहास में यह सत्य छिपा था।

श्री गोविंदजी की प्रथम कविता

श्री गोविंदजी की आठ वर्ष की आयु में ही उनका सारा जीवन बरबाद कर देनेवाली पंगुपन की घटना के बाद उनका चरित्र एकदम अनुपलब्ध हुआ। उस जीवन पर जो परदा गिरा था, वह एकदम उनके सारे जीवन को सार्थक बनानेवाली घटना का प्रारंभ उनके अठारहवें वर्ष पर ऊपर उठ जाता है, क्योंकि इसी वर्ष प्रथम कविता उन्होंने लिखी। पंगु होने के बाद उनका स्कूल छूट गया और वे तमाशगीरों की संगति में पड़ गए। अपने डेढ़ पन्ने के इस आत्मवृत्त में वे लिखते हैं—'मैं उस समय शहिरों के (शाहीर मराठी पोवाडा काव्य प्रकार गानेवाले) एक मठी में जाता था, वहाँ लावणियाँ (मराठी का शृंगारिक काव्य प्रकार) सुनता रहता था और गाता भी था। एक दिन वहाँ नाच करनेवाला एक लड़का आया। वह एक लावणी गाता था। मुझे वहाँ के लोगों ने आग्रह किया। मैं भी उसके मुकाबले में एक बराबरी की लावणी लिखूँ। मैंने उनका कहना मान लिया। तब जाड़े के दिन थे। अत: दूसरे दिन सुबह मैं चूल्हे के पास बैठा था, मेरे स्नान के लिए पानी गरम हो रहा था। बैठे-बैठे मुझे सूझा कि मैं उसके जैसी लावणी लिखूँ। तत्क्षण मैं गुनगुनाने लगा। एकाध घंटे में दो चरण पूरे हुए, आगे उस पूरे दिन में दो-चार परिच्छेद पूरे हुए। वह मेरी पहली कविता थी। दूसरे दिन मैंने वह लावणी शाहीरजी को दिखा दी। उन्होंने उसे पसंद किया और अपने तमाशे में उसे स्थान दिया। एक महीने के अंदर-अंदर सारे गाँव में वह लावणी फैल गई, गाँव के लोग उसे गुनगुनाने लगे। आगे चलकर मैंने चार-छह लावणियाँ लिखीं, पर वे याद नहीं आती हैं।'

गोविंद कवि ने अपनी जो पहली कविता बताई थी, पहली लावणी लिखी थी, उसका भावार्थ इस तरह है—

> बड़े आनंद और उत्साह से मुझे पाँव की अंगुलियों में पहननेवाला गहना बना दीजिए, बाँहों में बाजुबंद बना दीजिए।

बाजुबंद और पैरों में पायल
बालों में सोने का फूल, नथनी और कंगन,
गले में चंद्रहार और कानों में बालियाँ
बिलौरी सोने का कंगन और बाँहों में बाजुबंद॥

कविवर गोविंदजी की कविता से पहली मुलाकात इस तरह हुई। जैसे कामिनी के स्वभावानुरूप वह गहने ही गहने बनवाने का हठ करती है, वैसे कविता कामिनी ने भी कवि से हठ किया और कविवर गोविंद ने वह हठ पूरा किया, कोई कमी नहीं रखी—उनकी 'मुरली' यही बताती है। उन्होंने बिलौर के ही नहीं, अनेक कलाकुसर के नक्काशीदार सुवर्ण छंद कविता-कामिनी पर चढ़ाए। कविता-कामिनी को उन्होंने बाजुबंद तो पहनाए ही, पर लावण्यवती को लावण्य की मदहोशी में जो गहना बताने नहीं आए, उनसे कई गुना सुंदर अलंकार कविवर ने कविता-कामिनी को पहनाए और उसकी यह इच्छा तृप्ति की सीमा से परे पूरी की।

उनकी प्रथम लावणी में केवल अलंकारों की नामावली होते हुए भी अत्यंत नाद मधुर लावणी बनी है। उसको सुनते समय अनेक सुंदर अलंकार के रूप आँखों के सामने मंजु स्वरों में रुनझुन करते हुए नाचने लगते हैं। तैयार किए हुए सोने के मोतियों के गहने सम्मिश्र रूप से सजाकर किसी सर्राफ के साफ-सुथरे काँच के कपाट में मनोहारी रूप से सजाकर रखे हुए गहनों की तरह वह कविता मनोहारी लगती है।

'इसके आगे मुझे पढ़ने का छंद लग गया। पद गानेवाली मंडली का और मेरा स्नेह जब पनपा, तब मैंने एक नाटक लिखा था, जिसका नाम था 'मन्मथ प्रभाव'। आगे चलकर वह नाटक मुझे ही अच्छा नहीं लगा, इसलिए मैंने वह फाड़ डाला। उसमें होनेवाले कुछ पदों का भावार्थ इस तरह है—

नांदी—(भोलानाथ दिगंबर) दीपचंदी
पद्मधवपादपद्म मिलिंद 'सेवन कर मनुज मिलिंद
सेवन कर मनुजमिलिंद 'घृ'
सुमन से ध्यान कर। नयनों में रूप भर
रसना से नाम स्मरण कर'
श्रवण से नाम श्रवण 'प्रभुपद पर मन अर्पण
अर्चना से घ्राण में गंध भर'
सेवन कर मनुजमिलिंद

(एक नारी का वर्णन)
'यह शुशुभा शुभांगी 'स्मरणी रंभा, सांब की गंगा, अंबा'
मन चंचल वायु तरंगा
रजनी रमणी सौंदर्यमयी, कुरंगशिशु नयना
मंद-मंद मातंग गति
उरु उन्नत रंभा...
आगे कुछ याद नहीं आता'

कविवर गोविंद के उस डेढ़ पन्ने के आत्मचरित्र के उपर्युक्त परिच्छेद का अंतिम वाक्य 'आगे कुछ याद नहीं आता' बड़ा मजेदार है। स्मरसती रंभा के जैसे अंबा को देखकर साक्षात् सांब को भी आगे कुछ याद नहीं रहा, यह बात 'कुमार संभव' में बताई है, तो बेचारे कवि गोविंद की क्या बात है?

तमाशागर की मठी से गोविंद गुप्त होता है

कविता का जो प्रथम परिचय उसके लावण्य के लावणी में कवि को हुआ, वह अंत तक छूटा नहीं। उसकी ओर कविता की मित्रता तमाशा की मठी में बढ़ती ही गई। लावणी के शौक से कवि गोविंदजी तबला बजाना भी सीख गए। तमाशे के छंद से नाटकों में भी रुचि बढ़ने लगी। इसके बीच में शादी-ब्याह के जुलूस में जो कागज की फूलमालाएँ शहर में समारोहपूर्वक घुमाई जाती हैं, वे फूलमालाएँ और काँच के या कागज के चित्र-विचित्र छोटे-छोटे 'बाग' करने की कला भी उन्होंने सीख ली। यह व्यवसाय घर में बैठे-बैठे किया जा सकता है। इसलिए गोविंदजी के जैसे पंगु मनुष्य के लिए अत्यंत उपयुक्त था, इस कला में वे निपुण हो गए और अपने निर्वाह का पैसा स्वयं अर्जित करने लगे। उनके मठी के कार्य की और उनके अन्य साथियों की जानकारी इससे अधिक प्राप्त नहीं होती। वास्तविक रूप में श्री कवि गोविंदजी की पहली लावणी मठी से सुनाई दी। उसके बाद तमाशबीनों की उस मठी से गोविंदजी जो गुप्त हुए, वे एकदम नासिक के तिलभांडेश्वर की गली में प्रकट हुए हैं (अर्थ यह है कि इसके बीच के काल की जानकारी प्राप्त नहीं है)।

तिलभांडेश्वर की वह गली आज नासिक नगर का वैशिष्ट्य क्षेत्र हो गई है, परंतु उस समय वह गली आड़ी-तिरछी और कूड़े-करकट की गली थी। महाराष्ट्र का कोई भी प्रागतिक देशभक्त आज जब नासिक आता है, तो उस छोटी गली की भी छोटी गली में धोंडभट विश्वामित्र के घर में होनेवाला सँकरा और अँधेरा कमरा

देखने के लिए चला जाता है। नासिक के पंचवटी में स्थित राममंदिर को देखने के बाद नासिक के वैशिष्ट्यपूर्ण स्थान की हैसियत से इस कमरे को देखने के लिए आता है। कल सारा हिंदुस्थान वैसे ही समझने लगेगा, क्योंकि स्वातंत्र्य लक्ष्मी के प्राप्त्यर्थ पहले से पहला अभिनव भारतीय भीषण अनुष्ठान अभिनव भारत के वीर पूजकों ने इसी गुप्त गुफा में चलाया था। नासिक क्षेत्र के महात्म्य में सीता गुफा की ऐतिहासिक पवित्रता जैसी ही इस स्वातंत्र्य गुफा की ऐतिहासिक पवित्रता भी आज महाराष्ट्रीय यात्री लोग मानते हैं, कल के भारतीय यात्री भी मानेंगे। उस समय उक्त कमरे में मुफ्त में रहने के लिए मिलता, तो भी विवशता से ही कोई नागरिक तैयार होता, इतना वह गली, वह कमरा सँकरा, अँधियारा और संकुचित था और उसी समय तथा उसी सँकरे, तंग, अँधियारे कमरे में कवि गोविंदजी को वह सुविशाल, भव्य, दिव्य जीवन के ध्येय का दर्शन हुआ और कवि गोविंदजी के जीवन में भारी परिवर्तन हुआ। इस गली में उनकी माँ श्री धोडोपंत विश्वामित्र नामक उपाध्याय के घर में आश्रयार्थ रहकर आस-पास के ब्राह्मण परिवारों के घर में बरतन माँजने, पिसाई-कुटाई आदि काम करती थी। और कवि गोविंदजी या 'आबा पांगळे' अपने कागज कतरने का और उनसे फूलबाग बनाने का व्यवसाय किया करते थे। गली के ब्राह्मण युवकों की संगति से उनको नाटक देखने का शौक लग गया और पीछे दिए गए नाटक के पदों की रचना इसी समय हुई। वहाँ जल्द ही वे गली के नटखट लड़कों के नेता बन गए और वहाँ की इस तरह की कीर्ति को शिरोधार्य करके आयु के सत्ताईस, अट्ठाईस वर्षों तक चाय-चिवड़ा खाते, तबला बजाते, आने-जानेवालों की नटखट शरारतें करते रहते थे और कभी-कभी सनक आई तो बीमारों की सेवा-शुश्रूषा, असहायों को सहाय या मदद, समाचार-पत्र पढ़ना इत्यादि काम करते थे। इस तरह के उपयुक्त आवारागर्दी में रत रहकर उस गली में आबा पांगळे वास्तव्य करते थे। इतने में केवल उनके ही जीवन में नहीं, सारी गली में अद्भुत परिवर्तन करनेवाली घटना घटित हुई; क्योंकि उस अँधेरी गली के तंग क्षितिज पर एक छोटा सा नक्षत्र उदित हुआ और उसके तेज के स्पर्श से आबा पांगळे और उनकी नटखट आवारा टोली में अग्नि प्रज्वलित हुई, पहले-पहले वह एक तेजोमेध में परिणत हुई और शीघ्र ही जिसके तेज से देश-देशांतर की आँखें चौंधिया गईं—ऐसी एक सूर्यमालिका बन गई। वह छोटा सा नक्षत्र था किशोर सावरकर और वह सूर्यमालिका थी अब ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त अभिनव भारत की गुप्त संस्था।

सन् १८९८ के आस-पास इस गली के श्री वर्तकजी के घर में भगूर के रहनेवाले सावरकरजी के दो लड़के अध्ययन के लिए किराए का कमरा लेकर उनके पिताश्री ने रख दिए। शीघ्र ही प्लेग का प्रकोप हुआ, कहर बरपा और उसमें लड़कों

के पिताश्री तथा चाचाजी चल बसे। इसी से वह अनाथ परिवार उस गली के श्री दातारजी के भाईचारे के कारण उनके वहाँ स्थायी रूप से बस गया। उस समय सावरकरजी की आयु चौदह-पंद्रह वर्ष की थी। इस कुमार के आगमन से उस गली में और उस मंडली में अपूर्व चैतन्य का संचार हुआ। उस कुमार की प्रेरणा से हिंदुस्थान को स्वतंत्र करने के लिए यथाशक्ति संघर्ष करके अंत में सशस्त्र युद्ध में प्राणदान तक करेंगे—यह शपथ वहाँ के युवकों ने और प्रौढ़ व्यक्तियों तक ने ले ली। उन्होंने एक गुप्त संस्था की स्थापना की और 'मित्र मेळा' नाम से प्रकट शाखा की स्थापना थी। इसी शाखा में प्रवेश करते समय इस कुमार के द्वारा श्री गोविंदजी ने भी वह भव्य तथा भीषण शपथ ग्रहण की। शपथ थी—'हिंदुस्थान का पूर्ण राजनीतिक स्वातंत्र्य ही मेरा अनन्य ध्येय है, उस स्वतंत्रता के लिए मेरी सारी शक्ति के साथ संघर्ष करते हुए मेरी मातृभूमि के स्थंडिल पर सशस्त्र युद्ध में बलिदान करने में भी डरूँगा नहीं, झिझकूँगा नहीं।'

यह शपथ मित्र मंडल के गुप्त मंडल को प्रतिवर्ष फिर लेनी पड़ती थी। कवि गोविंदजी भी वह शपथ हर वर्ष दोहराते थे। इस गुप्त मंडल की शाखाएँ जब सारे महाराष्ट्र में फैल गईं, तब उसका 'अभिनव भारत' नामकरण किया गया। तब मई १९०९ में सम्मेलन में आए हुए सैकड़ों युवकों, अधेड़ और प्रौढ़ व्यक्तियों ने वहाँ भव्य तथा भीषण शपथ एक कंठ से ली। वीर युवक सावरकरजी शपथ का एक-एक शब्द बताते थे और हाथ में तुलसीदल, अक्षत और लाल फूल लेकर सैकड़ों देशभक्त क्रांतिकारी एक कंठ से गंभीर स्वर में वीर सावरकरजी के शब्दों को दोहरा रहे थे। उन देशभक्त क्रांतिकारियों में कवि श्री गोविंदजी भी थे। अंत में जब उन दीक्षितों के शतकंठों से उत्स्फूर्त जय-जयकार हुआ, तब सबसे दृढ़ प्रतिज्ञा स्वर श्री गोविंदजी का ही था।

यह शपथ लेकर जब श्री गोविंदजी ने गुप्त मंडल में प्रवेश किया, तब उनके जीवन की दिशा में आमूलचूल परिवर्तन हुआ। उनके जीवन को एक भव्य और दिव्य ध्येय प्राप्त हुआ। अपने जीवन का अर्थ उनकी समझ में आने लगा। अपनी सारी शक्तियाँ काया-वाचा-मन से उन्होंने उस महान् कार्य के लिए समर्पित करना आरंभ किया और आबा पांगळे का रूपांतर स्वातंत्र्य कवि श्री गोविंदजी में होने लगा।

श्री स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी के साहचर्य में आते ही उनका सुप्त सामर्थ्य, अंतर्हित शक्ति और अकृतार्थ जीवन विकसित होने लगा और संपूर्ण परिवर्तित हुआ। जो बड़प्पन उनके घर में उन्हें कदाचित् ही प्राप्त होता, उसके कई गुना बड़प्पन बड़ा हुआ और वे कृतार्थ हुए। हिंदुस्थान में और हिंदुस्थान के बाहर आज

ऐसे सैकड़ों कार्यकर्ता चमक रहे हैं; परंतु किसी के भी जीवन में श्री सावरकरजी के साहचर्य से उतना परिवर्तन न हुआ होगा जितना श्री गोविंदजी में हुआ।

श्री गोविंदजी का वीर सावरकरजी से प्रथम संभाषण

कविवर गोविंदजी श्री सावरकरजी से तेरह-चौदह साल बड़े थे। श्री कविवर गोविंदजी का जन्म वर्ष १८७५ का था। श्री वीर सावरकरजी का जन्म शक १९०५ था (यानी दोनों की उम्र में करीब तीस साल का अंतर रहा होगा—सं.)

कवि श्री गोविंदजी की कविताएँ उनके चौदहवें-पंद्रहवें वर्ष की आयु से ही पुणे के कुछ समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुई थीं। उनकी उम्र के बच्चों में उनके बारे में अत्यंत आदर की भावना थी, पर उनसे उम्र में बड़े अनेक लोगों को स्वाभाविक ही उनके बारे में मत्सर की भावना थी। आबा के गुट में होनेवाले एक-दो लोगों ने आबा के अभिमान की ढाल बनाकर अपने मत्सर के लिए उपयुक्त होनेवाली युक्ति प्रयोग में लाई। वे आबा को देखकर कहते थे कि वह लड़का (सावरकर) कविता तो करता है, पर आबा के पदों के सामने वे तुच्छ हैं। उनकी इस बेकार आलोचना का परिणाम कविता का किंचित् परिचय होनेवाले इस सत्प्रवृत्त कवि पर एकदम अलग तरह से हुआ। गोविंद कवि को लगने लगा कि उस किशोर सावरकरजी की कविता मेरी कविताओं से सरस हैं। और ऐसा लगा कि उनकी इस सरसता का कारण उनके पास होनेवाली शब्द-संपत्ति ही है। अत: कवि गोविंदजी ने यह तय किया कि उस किशोर से ही यह पूछेंगे कि कौन सी पुस्तकें पढ़कर उसने अपनी शब्द-संपत्ति और काव्यकला विकसित की? पर वह किशोर मुझे यह रहस्य कैसे बताएगा? किशोर सावरकरजी की और अपनी कोई जान-पहचान नहीं है, अपना व्यवसाय एक नहीं है। उनके मन में किंचित् यह डर भी पैदा हुआ कि कवि की दृष्टि से अपनी कला की कुंजी की पुस्तकें वह कहीं दूर ले जाकर छिपा रखेगा, क्योंकि उनकी मंडली का अनुभव वैसा ही था। उन्होंने अपनी टोली के एक सैनिक से यह भी अप्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त की थी कि उस किशोर कवि के पास कौन-कौन सी पुस्तकें हैं? परंतु उस किशोर का वाचन-पठन उसकी आयु की दृष्टि से ही नहीं, औसत पाठक से भी कई गुना अधिक था। अत: उस ढेर में से कविता की कुंजी की पुस्तक सहज उठाने जितनी जानकारी तो सैनिक को होनी चाहिए।

एक दिन शाम को जब कवि गोविंद या आबा अपने घर की दहलीज पर बैठे थे, तब कविताओं में निष्णात एक गृहस्थ से उन्हें जानकारी मिली कि किशोर सावरकरजी ने एक नए 'पोवाडे' की रचना की है और वह पोवाडा अत्यंत उत्कृष्ट हुआ है। तब आबा बेचैन हुए। उनसे रहा नहीं गया। उन्होंने तय किया कि वह

कविता पढ़ने के लिए उस किशोर के पास जाकर स्वयं माँगेंगे। यह तय करके आबा पांगळे मंडूकप्लुति लेते हुए (मेढक के जैसे छलाँग लगाते हुए) पड़ोस में ही रहनेवाले उस किशोर के कमरे में पहुँच गए। देखा कि सारा मामला विपरीत ही था। कविता करने के रहस्य की चाबियाँ छिपाकर रखने के बदले वह किशोर आग्रह करने लगा कि कवि गोविंद भी उन चाबियों का प्रयोग करें। आबाजी द्वारा शब्द-संपत्ति का प्रश्न पूछते ही उस किशोर ने अपना एक मराठी कोश ही आबाजी के सामने धर दिया। क्या यही उस कविता के जादू की चाबी है जो आबा ने सोची थी? आबा के मन में आया कि क्या मैं उस कोश को लेकर भाग सकता हूँ? कब और कैसे उस कोश को हस्तगत किया जा सकता है? आबा उस कोश की माँग करने से डरते थे, क्योंकि उनको लगा कि कौन अपने पाठ के महत्त्व का मंत्र दूसरे के हाथों में सौंप देगा। तब अचानक किशोर सावरकरजी ने ही आग्रह किया कि वह कोश आबा ले जाएँ, पर अनेक लोग पुस्तक ले जाते हैं और उसे हथिया लेते हैं, आबा वैसा न करें और काम होते ही याद करके वह वापस लौटाएँ। यह सुनकर आबा को अत्यंत आनंद हुआ। उस किशोर कवि के बारे में उनके मन में आदर की भावना जाग्रत् हुई। आबा को स्पष्ट रूप से याद है वीर सावरकरजी से अपनी पहली मुलाकात उनके प्रति जो आदर-सम्मान की भावना बनी, उसका कभी अस्त नहीं हुआ। दो-चार वर्षों में ही वह आदर-सम्मान की भावना पूज्य बुद्धि में परिणत हुई और बाद में वह आजन्म भक्ति में परिवर्तित हो गई।

जैसा पहले बताया गया है कि कवि गोविंद का प्रथम परिचय होने के बाद मित्रमेला में आबा का प्रवेश होने से उनके जीवन का और वीर सावरकरजी के जीवन का ऋणानुबंध एक ही उदात्त ध्येय के अखंडनीय ममता-रज्जू से दृढ़तम हुआ। और बाद में आबा की उन्नति ही सावरकरजी की उन्नति हुई थी। सातवीं अंग्रेजी क्लास में जब सावरकरजी पढ़ रहे थे, तब एक बार बुखार से ग्रस्त होने के करण वे घर में ही रहे। वह पूरा महीना उन्होंने अपने लाडले कवि मोरोपंत द्वारा लिखित 'भारत रामायण' का अध्ययन करने में और मनोरंजन करने में बिताया। तब उनके पास बैठकर कवि गोविंद भी मोरोपंत को समझने का प्रयत्न करते थे। मोरोपंत रामायण में से निरीष्ट, दाम, मंत्र, लघु इत्यादि अनेक प्रकार के रामायण के आर्यागीत (एक वृत्त या छंद का नाम) श्री सावरकरजी को कंठस्थ याद थे। उन आर्याओं को श्री सावरकरजी गाते थे, आबा उस कवि के काव्य-कौशल पर मुग्ध होते थे। वे भी पद लिखते थे, पर वे पद केवल श्रुतिसुखदता पर अवलंबित थे। श्लोक लिखते समय केवल श्रुतिसुखदता का नियम काफी नहीं था, अनेक गलतियाँ उनके पदों में होती थीं। तब मात्रागण और अक्षरगण या मात्राछंद और अक्षरछंद का

विश्लेषण करके वीर सावरकरजी कवि गोविंदजी को सिखाते थे। अगर नया कुछ सीखना होता तो गोविंदजी झट से ऊब जाते थे और कहते थे—'जाने भी दीजिए। ये सीखकर हमें कहाँ पराक्रम दिखाना है, आपके लिए तो ठीक है।' पर वीर सावरकर जी कहाँ छोड़ने वाले थे, गोविंदजी पुचकारते-पुचकारते बार-बार उनको उत्तेजन देते थे, प्रोत्साहन देते थे और कहते थे—'देखिए, ऐसा मत कीजिए। आप वाङ्मय सेवा के साधन से ही चिरंतन राष्ट्रसेवा कर सकते हैं। आप में सामर्थ्य है, शक्ति है, पर दृढ़ता या जिद नहीं है। यह देखना आपकी कविता कितनी अच्छी हो गई है! वाह वा! यह श्लोक तो छंद में भी शुद्ध और सरल बन गया है।' इस पर आबा हँसते थे और कहते थे, 'चलिए, आप तो यों ही हमें बाँस पर चढ़ा रहे हैं, पर तात्या, इतना ऊँचा हमसे नहीं चढ़ा जाता।'

जब स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी इंग्लैंड अथवा अंदमान में थे, तब भी गोविंद कवि से कुछ लिखने का तगाजा करते थे—'आप लगन से, दृढ़ता से काम कीजिए, आप केवल कवि ही नहीं, उपन्यासकार के नाते भी सुविख्यात हो सकते हैं। क्रांति-ज्योति सुलगानेवाला उपन्यास भी निश्चित ही बिना धुएँ की माचिस होती है, क्योंकि वह निर्बंध में सहसा नहीं अटकती और इसीलिए ग्रंथकार बिनघोर लिख सकता है और वाचक भी स्पष्ट रूप से पढ़ सकता है। और हम जो चाहते हैं, वह हवा-क्रांति की आग वह सुलगाता रहता है।'

अंत तक बै. सावरकरजी यही दोहराते रहे। सावरकरजी इसके लिए हमेशा रूसो आदि लेखकों का उदाहरण देते रहते थे। आबा हमेशा 'हाँ' भरते थे, अभिनव भारतमाला में उनके उपन्यास का स्थान निश्चित होता था, वे आरंभ करते थे, परंतु किसी दूसरे प्रकरण के इर्दगिर्द सभी प्रकरण रामजी को प्यारे होते थे।

कविवर गोविंदजी जैसे पंगु मनुष्य का भी क्रांति की प्रगति के लिए अधिकाधिक उपयोग करा लेने के लिए उपन्यास और कविता नामक दो ही मार्ग हैं, यह जानकर और यह साहित्य लिखने के लिए बहुश्रुतत्व गोविंदजी में निर्माण हो— इसलिए बै. सावरकरजी ने उनसे पढ़ने का आग्रह किया। मित्रमेला के प्रत्येक सदस्य को कुछ निश्चित तीस-चालीस पुस्तकें पढ़नी ही पड़ती थीं, उनमें अधिकतर पुस्तकें क्रांतिकारकों के इतिहास की थीं। उन पुस्तकों को श्री गोविंदजी ने पढ़ लिया था। हर हफ्ते होनेवाले व्याख्यानों में उन पुस्तकों की और अन्य अनेक विषयों की चर्चा वे ध्यानपूर्वक सुनते थे। श्री सावरकरजी के इतिहास विषय के गहन अध्ययन का उपयोग मित्रमेला को और गोविंदजी को कितना हुआ है, इसकी कल्पना उनकी 'रणावीण स्वातंत्र्य कोणा मिळाले' कविता से ही ज्ञात होता है। इस कविता में उल्लिखित राष्ट्रों के नाम किसी समाचार-पत्र के किसी परिच्छेद में

होनेवाली नामावली से नहीं लिये गए हैं। उसमें होनेवाले राष्ट्रों के इतिहास की काफी चर्चा के साथ उन्होंने अध्ययन किया था। वीर सावरकरजी के व्याख्यानों में वह इतिहास सविस्तार सुना था। इतिहास ही नहीं, मित्रमेला के दाता शास्त्रीजी के घर में होनेवाले ग्रंथालय की अनेक पुस्तकें सावरकरजी ने कवि गोविंदजी के पीछे पड़कर पढ़वा ली थीं। मित्रमेला की सभा में राजनीति के अलावा तत्त्व, साहित्यिक अर्थ आदि अनेक विषयों पर सदैव उत्तमोत्तम व्याख्यान होते थे, चर्चाएँ होती थीं। कालिदास और भवभूति की तुलना शेक्सपीयर के नाटक, वेदांत, नक्षत्र तारकाओं का विश्व इत्यादि अनेक विषयों का अध्ययन वे बीस वर्षों की आस-पास के उम्र के युवक करते थे। आबा वह सब विचारपूर्वक सुनते थे और उसपर अपना मार्मिक मत अभिव्यक्त करते थे।

परंतु बोलने में गोविंदजी को दिक्कत होती थी। सावरकरजी तो ऐसे थे कि जो सामने आएगा या दिखाई देगा, उसे बोलने के लिए अनुकूल कर देते थे, छेड़ते थे। आबा पर उनकी पक्की नजर थी। वे कहते थे, 'हमें तो खड़े होकर बोलना पड़ता है, आपको तो बैठे-बैठे बोलने का अधिकार है, इसलिए बोलिए।' अंत में यह नियम बनाया गया कि सभा में प्रत्येक को बोलना ही पड़ेगा। तब कभी-कभी राजश्री कवि गोविंद थोड़ा-थोड़ा बोलते थे। ऐसा करते-करते एक दिन उनको अध्यक्ष बनाने का षड्यंत्र हुआ, तब कितनी गड़बड़ी हुई। संन्यासी की शादी में चोटी से तैयारी। पंगु अध्यक्ष को कुरसी पर बैठने, बिठाने तक की कठिनाई थी। कवि ने खूब इनकार किया, पर किसी ने सुना नहीं। उनको उठाकर कुरसी पर बिठा दिया। आबा अपने को सदस्य ही समझते थे, पर बाकी सदस्यों ने आबा को अध्यक्ष मानकर रीति के अनुसार आभार-प्रदर्शन तक सर्व निर्विघ्नता से हुआ। आगे चलकर कविजी एकाध दूसरा विषय लेते थे और उसपर काफी तैयारी के साथ कुछ समय तक अत्यंत मार्मिकता से बोलते थे, पर कभी-कभी जैसे पतंग उड़ानेवाले के हाथ से सारा डोर टूटकर पतंग धाड़ से नीचे आता है, वैसे ही बीच में उनका ध्यान टूट जाता और हड़बड़ाकर झुँझलाते हुए कहते—अब यहाँ ही खत्म करता हूँ, अब आगे याद नहीं आता—सारी गड़बड़ी हुई है। यह कहकर नीचे बैठते नहीं थे, क्योंकि वे खड़े ही नहीं रह सकते थे, वे अपना मुँह बंद कर लेते थे।

बोल नहीं सकते थे, उठकर खड़े नहीं रह सकते थे। फिर मित्रमंडली के प्रत्येक सदस्य के मन में आबा का सम्मान भाव प्रथम दरजे के नेता के जैसा था। सब यह मानते थे कि उनके मत मार्मिक और विचार परिपक्व होते हैं। इस संस्था में भी अन्य संस्थाओं के जैसे ही प्रौढ़ और युवक, पीछे खींचनेवाले और आगे ठेलनेवाले, मुझसे किया नहीं जाता, पर तेरा किया हुआ भी मैं ईर्ष्या के कारण देख

नहीं सकता—इससे जलने-भुननेवाले पक्षोपक्ष बीच-बीच में होते थे, पर उन सभी प्रसंगों में युवक सावरकरजी पर आबा का दृढ़ विश्वास और अटल समर्थन था। उनसे घनिष्ठता रखनेवाले अनेक स्नेही सावरकरजी पर कई बार रुष्ट होते थे, परंतु सावरकरजी के प्रति आबा की निष्ठा अचल थी।

स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी ने जो कोश आबा को दिया था, उसमें से और मोरोपंत के काव्य में आए हुए अनेक संस्कृत शब्द आबा लिख रखते थे, उनकी कविता में नए संस्कृत शब्द बहुधा मार्मिकता से, पर कभी-कभी केवल शब्द-संपत्ति की आलंकारिक शोभा के लिए ही उपयोग में लाए जाते थे। उनके पदों के अर्थ से सावरकरजी के विचारों, उच्चारों और सीख की सदैव प्रतिध्वनि निकलती थी, पर कलापूर्ति कवि गोविंद की होती थी। 'कोठे काळा राम', 'अंगद शिष्टाई', 'शिवसंवाद' आदि कविताओं की कलापूर्ति कवि गोविंदजी की थी और विचार स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी का था। प्रथम सावरकरजी की छत्रपति शिवाजी महाराज का आरती; प्रतिध्वनि तानाजी की आरती। वीर सावरकरजी का 'सिंहगढ़' का पोवाडा और बाजी प्रभु का पोवाडा अत्यंत लोकप्रिय होने के बाद और सावरकरजी लंदन जब गए, तब पोवाडा रचने के काम का भार कवि गोविंदजी पर आ गया। उन्होंने अफजुल खान के पोवाडे की रचना की। वह पोवाडा उसकी शैली से लेकर अंतर्गत आत्मा तक वीर सावरकरजी के पोवाडे का प्रतिबिंब है, पर कैसे? जैसे सूर्य की किरण का प्रतिबिंब रत्न से परावर्तित होने के जैसे, मूल किरणों की तेजो रेखाएँ शतगुणित शोभायमान करनेवाली किरण के जैसे। वीर सावरकरजी की विलायत की कविताओं और ग्रंथों का इतना ही नहीं, बंदीगृह में रचे हुए 'कमला', 'सप्तर्षि', 'गोमांतक' इत्यादि काव्यों तक यही परस्पर संबंध दिखाई देता है। नवीन रचना, नवीन विचार, नवीन स्फूर्ति स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी की कविता में अभिव्यक्त होते ही उसका आकर्षक और अनुकृत होते हुए भी स्वतंत्र प्रतिबिंब, परावर्तन कवि गोविंद की कविता में झलकने-दमकने लगता था।

कविश्री गोविंदजी की कविता की प्रसिद्धि भी वीर सावरकरजी की प्रसिद्धि के साथ वृद्धिंगत होती गई। वीर सावरकर कॉलेज के अध्ययन के लिए पुणे चले गए। तब वहाँ के अनेक प्रांतों से आए हुए भावी कार्यकर्ताओं के बीच वीर सावरकरजी कवि गोविंद की कविता गाकर दिखाते थे, उसकी स्तुति करते थे, इससे पुणे में उनका प्रभाव बढ़ता गया और लोकमान्य तिलक तथा रँगलर परांजपेजी तक गोविंद की कविता की कीर्ति पहुँच गई। नासिक के मेले पुणे में अपना प्रभुत्व दिखाने लगे और कविश्री गोविंद के गीतों की तेजस्विता से सारा पुणे शहर रोमांचित हुआ, उनमें स्फुरण हुआ। वीर सावरकरजी जब मुंबई आए तब वहाँ की अभिनव

भारत की शाखा में और वीर सावरकरजी के शतावधि परिचित मित्रों में कवि श्री गोविंदजी की कविता की ख्याति फैलती गई। आगे चलकर स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी जब इंग्लैंड गए, तब वहाँ के कार्यकर्ता और सभी प्रांतों के हिंदी के होनहार नेताओं और युवकों में वह कविता वीर सावरकरजी की अमोघ प्रस्तावना से स्वाभिमानी समर्थन से ग्रथित हुई। प्रसिद्ध ग्रंथकार पंडित जायसवाल, लाला हरदयालजी, पंडित श्यामजी, देशभक्त अय्यरजी आदि लोग वे गीत और उनका भावार्थ सुनकर झूम उठते थे। ऑक्सफोर्ड, कैंब्रिज इत्यादि विश्वविद्यालयों में पढ़नेवाले हिंदी युवक और अभिनव भारत संस्था के पेरिस आदि स्थानों की शाखाओं के भारतीय 'स्वातंत्र्य कवि' या वीर सावरकरजी जो उपाधि सुझाते थे, उसके अनुसार 'स्वातंत्र्य काव्य कोकिल' इत्यादि उपाधियों से वह हिंदी विद्वान्-मंडल वीरों की छावनी में उस स्वातंत्र्य कवि गोविंदजी का गौरव किया करते थे। स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी ने नासिक में पत्र लिखकर कविश्री गोविंदजी को जो 'स्वातंत्र्य कवि' की उपाधि प्रथम बार अर्पित की, वह यूरोप के भारतीयों की तरफ से ही थी।

इस तरह कवि श्री गोविंद 'स्वातंत्र्य कवि' बन गए। यह पंगु कवि महाराष्ट्रीय कीर्ति का ही नहीं, भारतीय कीर्ति का गिरि (पर्वत) भी लाँघ गया। सन् १९१० के लगभग उन्होंने अपने तेजस्वी स्वातंत्र्य रणगीतों से प्राप्त किया हुआ स्थान उनके उत्तरार्थ के 'मुरली' नामक तात्त्विक, किंतु स्नेहिल, गंभीर होते हुए भी अत्यंत सरस गीत ने और उसकी गति ने आमरण अटल अचल रखा और जब तक उस स्वातंत्र्य कवि के शाब्दिक रणगीतों को सार्थ, कृतार्थ करनेवाले अनेक स्वातंत्र्यवीरों के रण-पराक्रम की देदीप्यमान परंपरा उस स्थान पर ऐसे ही प्रकाशमान होती रहेगी, तब तक 'स्वातंत्र्य कवि' का वह स्थान वैसे ही प्रकाशमान रहेगा।

(यह लेख 'श्रद्धानंद' के लिए दिनांक २० अप्रैल, २५ मई, २२ जून, १९२९ और २२ फरवरी, १ मार्च, १९३० के अंक में अनाम प्रसिद्ध हुए हैं। 'स्वातंत्र्य कवि गोविंद की कविता' नामक पुस्तक अ.भा. मंदिर, नासिक में प्राप्त हो सकेगी।)

□

लालाजी के वाङ्मय का परिचय

स्वातंत्र्य सेनानी लाला लाजपतरायजी ने राष्ट्र की सेवा विविध प्रकार से की। उनमें से वाङ्मयात्मक कार्य का थोड़ा सा परिचय आज पाठकों को करा देंगे।

श्री लाला लाजपतरायजी ने उर्दू और अंग्रेजी दो भाषाओं में पुस्तकें लिखी हैं। वे इस मत के पक्के समर्थक थे कि हमारी राष्ट्रीय भाषा हिंदी ही है और देवनागरी लिपि ही राष्ट्रीय लिपि है। आर्यसमाज के मुख्य शिक्षा संस्था के संस्थापक होने के कारण पंजाब में हिंदी का पुनरुज्जीवन करने के लिए उन्होंने अत्यंत परिश्रम किए; परंतु बचपन में उर्दू में ही सारी शिक्षा प्राप्त होने के कारण वे स्वयं हिंदी में कुछ ग्रंथ-रचना नहीं कर सके। स्कूल की विदेशी शिक्षा मनुष्य को कैसे पंगु बनाती है, उसका यह उदाहरण ध्यान में रखने योग्य है।

श्री लालाजी के जैसे जाज्वल्य देशभक्ति की स्फूर्ति का मंगलाचरण मैजिनी, गैरीबाल्डी, छत्रपति शिवाजी और भगवान् श्रीकृष्ण से हो, यह स्वाभाविक ही है। गैरीबाल्डी के चरणों की वंदना करके, उनके देदीप्यमान पराक्रम के तेज में ही अपने जीवनक्रम के मार्ग पर चलते रहना चाहिए, परंतु लालाजी की ये चारों पुस्तकें उर्दू में होने के कारण और मराठी, हिंदी आदि भाषाओं में उन चरित्रों की जानकारी पहले से ही उलपब्ध होने के कारण लालाजी की उन पुस्तकों का अधिक परिचय करा देने का काम जरा अलग रखेंगे।

उर्दू ग्रंथों को छोड़कर बाकी लालाजी के तीन-चार अंग्रेजी ग्रंथ रह जाते हैं, उनमें से ब्रिटिश राजनीति पर लिखी हुई पुस्तक अंग्रेज सरकार ने अब भी जब्त की हुई है, उसकी हिंदुस्थान में कुछ जानकारी प्राप्त नहीं होती। दूसरी महत्त्व की पुस्तक है 'Young India'। ये दोनों पुस्तकें अमेरिका में लिखी गईं। दोनों जब्त की गई थीं, पर लड़ाई के बाद भारत के सुदैव से 'Young India' पर होनेवाली जब्ती रद्द कर दी गई, वह पुस्तक दो साल पहले लाहौर में पुनर्मुद्रित हुई। तीसरी पुस्तक मिस मेयो की विषैली पुस्तक के उत्तर में लालाजी द्वारा प्रकाशित की हुई प्रख्यात

पुस्तक Unhappy India है। इन तीन पुस्तकों में जो दो उपलब्ध हैं, उनमें से प्रथमत: Young India (तरुण भारत) पुस्तक में प्रकट किए हुए लालाजी के विशिष्ट मतों के महत्त्व की विवेचना हम अनुक्रम से करेंगे।

'यंग इंडिया' पुस्तक में लालाजी ने हिंदुस्थान के सन् १९१५ तक के अर्वाचीन आंदोलनों का विवेचन संक्षेप में किया है। स्वतंत्रता के अर्वाचीन आंदोलन का प्रारंभ सन् १८५७ के प्रचंड क्रांतियुद्ध से होता है। श्री लालाजी लिखते हैं कि हिंदुस्थान में ब्रिटिश साम्राज्य जिन साधनों से स्थापित हुआ, उसका इतिहास काले कारनामों से ही भरा हुआ है—'Empires can only be built by unscrupulous men of genius caring little for the wrongs which they thereby inflict on others or the dishonesties and treacheries or breaches of faith involved therein.' ब्रिटिश राज्यस्थापना का क्रूर, कपट, घात, धोखेबाजी और अमानवीय यातनाओं से भरा हुआ इतिहास अभी की पीढ़ी लगभग भूल गई है। आश्चर्य इतना ही है कि जब हिंदी राष्ट्रीय नेताओं पर ब्रिटिश कोर्ट आरोप लगाते हैं, 'निर्बंध से स्थापित सरकार को उलटने का प्रयत्न:' अब ब्रिटिशों से यह प्रश्न पूछने की आवश्यकता है कि निर्बंध से स्थापित हमारी पुरानी सरकार को उलटने का प्रयत्न तो ब्रिटिशों ने ही किया, तो अब उनकी निर्बंध सरकार, यानी कौन से निर्बंध के अनुसार स्थापित सरकार और वे निर्बंध किसने बनाए?

'The Great Indian Munity' सन् १८५७ के क्रांतियुद्ध को लालाजी ने 'म्युटिनी सिपाहियों का विद्रोह-गदर' ये शब्द प्रयुक्त किए हैं। वे केवल अभ्यास की जल्दबाजी में किए होंगे। वह विद्रोह केवल सिपाहियों का विद्रोह नहीं था, यह आगे चलकर लालाजी ने बताया है। जैसे यहाँ सिपाहियों ने विद्रोह किया, वैसे ही रूस क्रांतियुद्ध भी सिपाहियों से ही प्रारंभ हुआ, उन्होंने ही प्रथम विद्रोह करके रूस में क्रांतियुद्ध का आरंभ किया; पर इसलिए कोई यह नहीं कहता कि रूस क्रांति केवल सैनिकी विद्रोह थी। वहीं भारत में सन् १८५७ की बात है। लालाजी कहते हैं—'The great mutiny was the first Indian Political movement of 19th Century. This was national as well as political.'

जब लालाजी ना. गोखलेजी के साथ इंग्लैंड गए थे, उसी समय बै. सावरकरजी के अभिनव भारत के आंदोलन में सत्तावन के क्रांतियुद्ध का स्मृति-दिन मनाने का समारोह संपन्न हुआ था। वीर सावरकरजी ने उस विद्रोह का विद्रोहपन तोड़कर उस विद्रोह को भारत के क्रांतियुद्ध का महत्त्व दिया। सावरकरजी के उस ग्रंथ का और व्याख्यान का प्रतिपादन करते हुए नेता रोमेश चंद्र दत्तजी ने यह माना था कि वीर सावरकरजी का ही कथन सही है। 'Honours to the Martyres of 1857' का

विस्तृत रक्तध्वज 'अभिनव भारत' संस्था ने फहराया, इससे उस स्थान पर बड़ी गड़बड़ी हुई और वह सन् १८५७ के हुतात्माओं को मान-वंदना देनेवाला ध्वज ब्रिटिशों द्वारा निकाल दिया गया। इसलिए लालाजी स्वयं उस भोज समारोह से उठकर चले गए थे; पर उस आंदोलन का परिणाम उनके मन पर अमिट छाप छोड़ गया था। क्रांतिकारकों का Turn out the British रणघोष The Stubbornness with which they fought, how the people hated British और उस क्रांति की पराजय के कारण भी वीर सावरकरजी के 'सत्तावन का क्रांतियुद्ध' पुस्तक में वर्णित किए गए हैं। वे सारी स्थितियाँ सत्यता पर आधारित हैं, यह बात लालाजी के ध्यान में आई। इन दस-बारह पृष्ठों में यह बात स्पष्ट होती है। ऊपर दिए गए अंग्रेजी अवतरण में उन्हीं शब्दों में समर्थक उच्चारण किया है, 'वह क्रांतियुद्ध राष्ट्रीय स्वातंत्र्य युद्ध ही था। प्रपीड़क ब्रिटिशों के खिलाफ प्रपीड़ित हिंदुस्थान की वह सर्वप्रथम तथा प्रचंड रणगर्जना और रणसंग्राम था।'

आगे चलकर लालाजी ने राष्ट्रीय सभा की स्थापना का इतिहास संक्षेप में लिखा है। वह सभा प्रथमत: लॉर्ड डफरिन के जैसे प्रतिगामी वाइसराय ने अंग्रेजों के हित के लिए ही मि. ह्यूम के द्वारा प्रारंभ की थी। यह बात लालाजी को मान्य है। प्रथम राष्ट्रीय सभा का अध्यक्ष स्थान किसी गवर्नर द्वारा सम्मानित हो—इसलिए राष्ट्र सभा संस्थापकों ने डफरिन साहब से विनय की थी, विनती की थी। मि. ह्यूम सन् १८५७ के स्वातंत्र्य-युद्ध में अटक गए थे। बै. सावरकरजी की पुस्तक में यह बात प्रसिद्ध हुई है कि अपना मुँह काला करके बुरके में छिपकर भाग जाने के सिवा प्राण बचाने का दूसरा साधन मि. ह्यूम के पास नहीं रहा था। इस तरह का प्रचंड क्रांतियुद्ध फिर से न हो—इसलिए लोगों के असंतोष की भाप राष्ट्रीय सभा, बंबई से हौले-हौले ऊपर के ऊपर ही वातावरण में छोड़ने की कल्पना सरकार ने ही अमल में लाई। उसे पहले-पहल सरकार ने ही प्रोत्साहन दिया। उसका परिणाम क्या हुआ, यह स्पष्ट ही हो गया। मि. ह्यूम लिखते हैं—'A safty value for the escape of great forces generated by the British connection was greatly needed and no more efficatious safty value than the congress movement could possibly be devised.' श्री लालाजी लिखते हैं—'Mr. Hume saw danger to British Rule which he wanted to continue in India, in discontent going underground.'

परंतु अंत में ब्रिटिश राज के विरुद्ध का असंतोष Unnderground गया ही। इंग्लैंड जिस बात से डर रहा था, राष्ट्रीय सभा के जैसी काफी किरकिरी करनेवाले बंब की पीड़ा भी जिस डर की तुलना में उनको सुसह्य लगी, वह 'सुरंग'

के आंदोलन, वे गुप्त षड्यंत्र, वे राज्यक्रांति के सुरंग भूमिकंप के सुरंग जैसे स्वयं उद्भूत हो गए। भूमि के अंदर उनकी वृद्धि होने लगी। अंत में सन् १८९७ से उसका विस्तार और सामर्थ्य बल भी बढ़ता गया। सन् १९०५ के लगभग उन सुरंगों का स्फोट इतना जोर का हुआ कि सरकार भी हिल गई। यही श्री लालाजी के 'यंग इंडिया' पुस्तक के मुख्य कथानक का काल था। यही 'अभिनव भारत' का हिंदुस्थान, इंग्लैंड, यूरोप, अमेरिका, चीन तक हिंदी स्वातंत्र्य के वीर्यवान संघर्ष का प्रतिध्वनि पहुँचानेवाला क्रांतिकारी आंदोलन था। इस आंदोलन का हद्गत लालाजी ने इस पुस्तक में बहुत ही निर्भय और तटस्थता से बताया है। प्रस्तावना में वे लिखते हैं—'सद्य:स्थिति (सन् १९२०) में हिंदुस्थान में सशस्त्र क्रांतिकारकों का जो वर्णन दिया है, वह इतिहास की दृष्टि से और लोकमत के प्रदर्शन की दृष्टि से वैसा ही देना मुझे प्राप्त है, आवश्यक लगता है।'

अभिनव भारत के 'यंग इंडिया' के क्रांतिकारी नेताओं से लालाजी का काफी परिचय हुआ था, इसलिए लालाजी को एक तरफ से सरकार का क्रोध और दूसरी तरफ से क्रांतिकारियों के सहकार्य-विच्छेद को सहना पड़ा। फिर भी उन्होंने इस पुस्तक में क्रांतिकारियों के लिए 'अत्याचारी' या 'अराजक' या 'सिरफिरा' आदि अप्रामाणिक गालियों की बौछार करके अपना डरपोकपन कहीं भी व्यक्त नहीं किया है। क्रांतिकारियों के अत्यंत उच्च ध्येय के सामने, उनके पराक्रमी बलिदान के सामने, अटल धैर्य और तेजस्वी चरित्र के सामने मन-ही-मन नतमस्तक होकर 'शाबाश वीरो!' शब्द बुदबुदाते हुए ही वे यहाँ-वहाँ पाए जाते हैं।

'Liberty'—स्वतंत्रता! यही उनका ध्येय था। मातृभूमि ही उनका देवता थी। उनको अधिकार नहीं चाहिए था, उत्तम-से-उत्तम नौकरी नहीं चाहिए थी, बड़ी-बड़ी तनख्वाह नहीं चाहिए थी, स्तुति या कीर्ति भी नहीं चाहिए थी—उनको केवल अपने लिए स्वतंत्रता नहीं चाहिए थी—वह स्वतंत्रता के लिए विदेश में जाकर वहाँ का नागरिक बनकर कभी भी प्राप्त कर सकते थे, परंतु उनको स्वातंत्र्य चाहिए था स्वदेश के लिए। हाईकोर्ट जजशिप, सिविल सर्विस, विधिमंडल का मान-सम्मान उनको तुच्छ लगता था। तो इसमें क्या आश्चर्य कि ऐसा आंदोलन इस तरह की स्फूर्ति के बल प्र दावानल के सामान फैल जाए? प्राणों से प्राणों का सामना हुआ, मरण-मारण का संघर्ष हुआ, बल से प्रतिबल टकरा गया। उस लड़ाई में दोनों पक्षों को भयानक घाव हुए। राष्ट्रीय पक्ष के लिए उनकी संख्या की दृष्टि से बहुत ही हानि और प्राणहानि सहनी पड़ी, पर उनके साधनों की अल्पता का विचार करने पर Noons heed hesitate that the moral victory lies within the Nationalists. क्रांतिकारियों ने पाँच वर्ष की अवधि में सरकार को झुकाया

और जो अधिकार सन् १९०५ में किसी को भी मिलने की आशा न थी, इंग्लैंड को वे अधिकार हिंदुस्थान को देने पड़े।

'The congress leaders claim the credit for themselves and so does the Government, but the verdict of the unbiased historian will be otherwise.'

क्रांतिकारियों के प्रत्याक्रमी आंदोलन से ये अधिकार हिंदुस्थान को प्राप्त हुए, यही मत पालबाबूजी ने 'स्टेट्समैन' और 'मॉडर्न रिव्यू' में प्रकाशित किए हैं। ब्रिटिश सरकार से ईमानदारी से सहकार्य करनेवाले दास बाबू जैसे बड़े अधिकारियों ने भी दो साल पहले इस बात को मान्यता दी। वही सत्य श्री लालाजी ने भी बताया। यही नहीं, आगे चलकर वे स्पष्ट रूप से लिखते हैं—'Lord Morely would rally the moderates, because there were extremists in the land.' यदि देश में तथाकथित गरम दल के लोग न होते, तो नरम दलवाले ही सरकार को गरम दलवाले लगते। उन गरम दलवालों में ही क्रांतिकारी भी थे और नरम दलवालों का गरम दलवालों से जो संबंध था, वही संबंध गरम दलवालों का क्रांतिकारियों से था। नरम दल के देशभक्त उनको Extremists कहकर अपने पंगुपन का समर्थन करते थे और वे Extremists क्रांतिकारियों को 'सिरफिरा Violent अत्याचारी' कहकर अपनी दुर्बलता ढकने का प्रयत्न कर रहे थे। श्री लाला लाजपतरायजी ने अपने को सशस्त्र क्रांतिकारियों में नहीं गिना, फिर भी उन्होंने क्रांतिकारियों को शुद्ध सरकारी गालियाँ बकने की कृतघ्नता कभी नहीं की; उलटे जब सरकार उन क्रांतिकारियों को अधपगले, सिडी, अर्धशिक्षित, अकर्मण्य, सिरफिरे, पोटार्थी आदि विशेषणों से संबोधित करने लगी, तब लालाजी ने सात्त्विक आवेश में लिखा—

'कितने ही ग्रैजुएट्स फाँसी पर लटक गए। कितने ही कारागृह में सड़ रहे हैं। उनकी यूनिवर्सिटी की उपाधियों की श्रेणियाँ देखिए। उनको कितने अच्छे अवसर प्राप्त हो सकते थे, वे देखिए और फिर कहिए कि क्या वे अकर्मण्य हैं? सरकार की सेवा में वे अपनी समृद्धि नहीं प्राप्त कर सकते थे, इसीलिए वे सरकार के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं, ऐसा कौन किस मुँह से कहेगा? उनके कर्तृत्व का कितना वर्णन करें? परकीय सरकार को जितना भी अधिक-से-अधिक दमनचक्र चलाना संभव है, वे सभी दमनचक्र सरकार को चलाने के लिए उन्होंने विवश किया, फिर भी अपने मार्ग से टस-से-मस नहीं हुए, न दमनचक्र के नीचे कुचलकर पराजित हुए। सरकार ने 'राजद्रोह' की मनमानी व्याख्या की, जल्द-से-जल्द अदालत के सामने उनको प्रस्तुत करने का नाटक किया, सभाबंदी का हुक्म हुआ, स्फोटक वस्तुओं पर प्रतिबंध लगाए, मुद्रण बंदी हुई, देश पर गुप्तचरों के टिड्डी दल का

हमला हुआ। अध्यापक, अभिभावक, अधिकारी आदि सभी लोगों को हुक्म जारी किया गया कि क्रांति को कुचल डालो, रौंद डालो, नष्ट कर दो। कई पत्र जब्त किए गए, कई ग्रंथ नष्ट किए गए, राजद्रोह के लिए मुकदमे, शस्त्रों के लिए अभियोग, डकैती के लिए फरियादें, कारागृह में बरताव के लिए दंड, यातनाएँ, कठोर-से-कठोर सजाएँ! सजाएँ, मारपीट के कारण आत्महत्या, बुद्धिभ्रंश—इस तरह की कारागृह की क्रूर यातनाओं से देशभक्तों की बलि-पर-बलि चढ़ रही है, फिर भी क्रांतिकारियों का आंदोलन का दमन होने की संभावना अभी दूर ही है। आज जो फाँसी पर लटक गए हैं या बंदीगृह में यातनाएँ भुगतने के लिए चले गए हैं, कल ही उनका स्थान दूसरा क्रांतिकारी लेता है। क्रांतिकारियों की गुप्त संस्थाओं के जाल सर्वत्र फैल गए हैं। कुछ क्रांतिकारी स्वयं विदेश चले गए हैं और वहाँ अत्यंत निराशाजनक स्थिति में भी क्रांति का झंडा फहरा रहे हैं।'

क्रांतिकारी पक्ष की विशेषता बताने के लिए लालाजी ने उनमें से अत्यंत प्रमुख तीन अध्वर्युओं का उल्लेख किया है। लाला हरदयाल, अरविंद घोष और सावरकर—तीन अध्वर्यु हैं। हरदयालजी का अध्ययन मिशन स्कूल में हुआ था, एम ए. की परीक्षा में वे सर्वप्रथम स्थान पर चमक उठे थे, कुछ काल तक ईसाई धर्म का सम्मोहन उनपर हुआ था। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में उन्होंने सरकारी शिष्यवृत्ति प्राप्त की थी और वहाँ सभी पर अपनी बुद्धिमत्ता की छाप छोड़ी थी। इंग्लैंड जाने के बाद अचानक उनके ईसाईलोलुप मन का परिवर्तन कट्टर हिंदीकरण में हुआ। उसके बाद क्रांति के लिए उन्होंने किया हुआ त्याग अविस्मरणीय सन्यस्त वेश में लंदन में उन्होंने क्रांति की शपथ ग्रहण की। इन सारी बातों का वर्णन करके लालाजी ने गर्व से, अभिमान से क्रांतिकारियों को निकम्मे, बेगार युवक (Failures) संबोधित करनेवाले कमीने सरकारी भाटों से पूछा—Hardayal a failures? हरदयाल को निकम्मा, बेकार, अयशस्वी कहने की क्या तुम्हारी हिम्मत है? वही बात अरविंद बाबूजी की। उनकी बुद्धिमत्ता, आत्मिक ज्ञान की निष्ठा, धार्मिक उत्कटता की देशभक्ति का वर्णन करके लालाजी लिखते हैं—'Even simpler and more ascetic in his life and habits than Hardayal. He is deeply religious and spiritual.' तीसरे अध्वर्य सावरकर : 'Who exercised a vast influence on young Indians in England and is now serving a life time in Andmans. In the simplicity of his life, he was of the same class as Hardayal and Ghosh. In the purity of his life he was as high as either. In his general views he was more or less what Hardayal was minus his denuciation of those who were engaged in non-political

activities.' नेता में होनेवाले अनेक आवश्यक आकर्षक गुण वीर सावरकरजी में उत्कटता से विद्यमान थे। अपने प्राणों की चिंता कभी उनको स्पर्श न कर सकी और उस ढाढ़स के कारण ही वे पकड़े गए। सावरकरजी किसी पौराणिक योद्धा जैसे आवेश में, जोश में आए हुए रण के स्थान पर निश्चित रूप से उपस्थित रहकर लड़नेवाले थे।

राज्य-क्रांतिकारियों के मत, मार्ग और उनके परिणाम दूर-दूर तक पहुँच गए। सशस्त्र क्रांति के बिना संपूर्ण राजकीय स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होगी और वह सशस्त्र क्रांति अभी इसी क्षण से आरंभ करनी चाहिए, यह उनका मुख्य सूत्र था। उसके अनुसार उन्होंने ब्रिटिश सरकार से प्रकट रूप में युद्ध की घोषणा की। इसीलिए वे ब्रिटिश सरकार को सरकार के रूप में मानते ही नहीं थे। ब्रिटिशों ने Force and Fraud के साधन से अपना राज्य-स्थापित किया है तो वह राज्य Force and Fraud से ही उलट देना चाहिए—ऐसा उनका मानना था। वे स्वराष्ट्र को युद्धमान परिस्थिति में ही समझते थे। क्रांतिकारी पक्ष ही अस्थायी सरकार। उनके नेता अंग्रेज सत्ता को सहायता करनेवाले को शत्रुपक्षीय समझते थे और उनमें से किसी को अगर आवश्यक हुआ तो मृत्युदंड की सजा सुनाने का अधिकार जताते थे। देशद्रोहियों को तो वे कभी दया नहीं दिखाते थे। कर-भार इकट्ठा करके शत्रु के कोषागार को लूटकर या अगर जरूरत पड़े तो लोगों से जबरदस्ती कर इकट्ठा करके राष्ट्रीय युद्ध चलाना चाहिए, इस तत्त्व के आधार पर लड़ते थे—'The safety of the state is the first consideration for all those, who form the state and that in case of necessity the state has a right to use the property of even private individual who is included in the body politics...' बार-बार अंग्रेजी सत्ता पर इस तरह व्यक्तिशः और संघशः सशस्त्र हमला करने से उस पर धाक जमाते रहे तो उसी प्रमाण में लोगों के मन में होनेवाली दासताजनित कायरता का अस्त होता है और लोगों में आत्मविश्वास बढ़ता है तो फिर वे बंब और पिस्तौल का उपयोग करते हैं। 'Occassional use of Bombs and revolvers was the only way to assert their manhood. It attracted attention all over the world, at home it remained the people of the wrongs they were suffering at the hands of the Government, at first it shocked the people, but they do not now think so badly of those, who used the Bombs.'

यद्यपि क्रांति का प्रारंभ बंब और पिस्तौल से होगा, तथापि उनका मुख्य बल ब्रिटिशों की नौकरी में होनेवाले सैनिकों के हृदय-परिवर्तन करके, परराष्ट्रों से

राजनीतिक नाता जोड़कर, छोटे-छोटे विद्रोह या संघर्ष करके लोगों को युद्ध-क्षमता की शिक्षा देते हुए विश्व युद्ध में इंग्लैंड को रौंदने, कुचलने के व्यापक कार्यक्रम पर था। इस भयंकर आंदोलन को दबाने के लिए सरकार ने मृत्युदंड जैसी भयानक सजाएँ दे दीं, इसके लिए सरकार को दोष नहीं दे सकते। उनकी सत्ता के खिलाफ होनेवाले अपराधियों को पूरी तरह से नामशेष करने के सिवा उनके लिए दूसरा कोई उपाय ही नहीं था; परंतु सरकार जितनी यातनाएँ देने लगी, उतना ही क्रांतिकारियों का हठ भी बढ़ता गया, उनका आवेश दोगुना होने लगा। क्रांति की विजय हो।

'It is a seed that is richly fertilised by the blood of the Martyrs. The people donot argue; they feel that good, healthy, well connected and beautiful boys are dying in the contry's cause, when a Bomb is thrown, the people first condemned; but when the thrower is transported or hanged they love him; he is martyr for the national cause. Their names the enshrine in their hearts.'

जो लोग कहते हैं कि क्रांति मर गई, वे मूर्ख हैं—'The movement is alive, atleast 75 p.c. of e students in India and in England sympathise with this party!' युवकों पर क्रांतिकारियों का विलक्षण प्रभाव था।

यह सन् १९१५ की स्थिति थी। सुदैव से अब वह संकट काफी प्रमाण में कम हुआ है, क्योंकि अब युवक खद्दर संघ से व्याख्यान देने में और शोभायात्रा निकालने में वृद्धों से स्पर्धा करते हुए अनत्याचारी, सात्त्विक और शांत गांधी मार्ग से पुच्छ प्रगति कर रहे हैं।

(श्रद्धानंद, दिनांक १२.१.२९)

□

हे मन, आज तुझे सुखोपभोग का अधिकार नहीं है!

(श्रद्धानंद, दशहरा, शालीवाहन शक १८४९, दिनांक ९ अक्तूबर, १९२७)

आश्विन शुक्ल अष्टमी का मनोहर चंद्र नील गगन में अपनी मधुर कौमुदी की बौछार करते हुए मुसकराकर विहार कर रहा था। अभी-अभी बारिश होकर ठहर गई थी, अत: सारा आकाश धोया हुआ था और सद्य:स्नात युवती के समान निर्मल और पवित्र दिखाई दे रहा था। बरसात की मेघमाला में लुप्त चंद्र का प्रसन्न मुख आज मानो बहुत मनौतियों के बाद दिखाई दिया। इसलिए कुछ चुनिंदा तारकाएँ आश्चर्य से चकित होकर टकटकी लगाकर देख रही थीं। मेघ राजा का सारा सैन्य शिविर में वापस जाने पर भी एक भूला-भटका मेघ पीछे रहकर वायु की लहरियों पर डोलते-डोलते वृद्ध कंचुकी के समान कभी चंद्र के पास तो कभी तारकाओं के पास चक्कर लगा रहा था। ऊपर जैसे आकाश शरत्काल की नई शोभा से मनोहर दिखाई दे रहा था, वैसे ही नीचे धरती हरिततृणशस्यांकुर से आवृत्त होकर अत्यंत सुंदर दिखाई दे रही थी। वृक्ष की चँवरें हवा की डोर से कोई अदृश्य दिक्पाल दस-दिशाओं में डुला रहा था। 'क्षुधित लोग कहाँ हैं?' इसकी खोज करने के लिए ही मानो अपने छोटे-छोटे हाथों में धान की अनेक बालें मुट्ठी में भरकर खेत-खेत में ईश्वर के घर से लाए हुए अनाज की लूट ले आनेवाले ये देवदूत अलग-अलग फसलों के रूप में हिलते-डोलते हुए दृष्टि को आह्वान देते थे। अभी थमी हुई वर्षा के जल से भरे हुए मेघों के घटों से अपने-अपने पात्र अपनी शक्ति के अनुसार भरकर वसुंधरा पर बहनेवाली सरिताएँ प्रसन्नचित्त से अपने पति के घर—सागर जाने के लिए मृदुल लहरों के चपल चरणों से जल्दी-जल्दी चल रही थीं, और जाते-जाते हृदय में समाए हुए आनंद के मंजुल गीत कलकल आवाज से गाकर पंछियों की किलबिल को लजा रही थीं। उत्तुंग पर्वत निस्तब्धता से प्रकृति

की शोभा देखते-देखते स्थान-स्थान पर स्थिर हुए थे, मानो वर्षाकाल के आकाश में धींगामुश्ती करनेवाले मेघखंड थककर धरती पर उतरकर स्थान-स्थान पर समूह में निश्चलता से विश्राम कर रहे हैं। फूल खिले हैं, वनस्पतियाँ पल्लवित हुई हैं, दसों दिशाओं में प्रसन्नता छाई है, पवन सुगंध की बौछार कर रही है, ऐसी यह रमणीयता क्या भगवान् ने किसी और भी भूमि के भाग्य में लिखी होगी?

यह सौभाग्य दूसरी कौन सी भूमि का होगा? पुराण पवित्र हिंदभूमि के बिना यह सौभाग्य परमात्मा ने और किस भूमि के ललाट पर लिखा होगा? स्वयं देवों को भी अगर स्वर्ग से अरुचि हुई तो वे स्थान-परिवर्तन करने के लिए अपने भानेवाली और मेरी प्राणों से प्रिय हिंदभूमि के सिवा कहाँ जाते होंगे? दूसरी कौन सी भूमि के भाग्य में ऐसा घनगर्जित पर्जन्यकाल, नितांत रम्य शरत्काल और रँगीला वसंतकाल सुयोग्य प्रमाण में लिखा होगा? तो फिर हे मन, इस महत् भाग्य में गर्व से आकाश से भी महान् होकर इस सौंदर्य का आस्वाद लेने के लिए तैयार हो जा। आज नवरात्रि की अष्टमी का दिन है। देवी के सामने आठ दिनों तक रात-दिन नंदा दीप जल रहा है। प्रतिदिन एक माला, इस हिसाब से आज आठ मालाएँ नानाशस्त्रधारिणी देवी दुर्गा के सामने चढ़ाई गई हैं। आज अष्टमी महिषासुर के वध का दिन है। इस दिन महिषासुर का वध हुआ था, अनेक उन्मत्त असुर निर्दलित किए गए थे। भगवती चामुंडा ने अवनि दु:ख मुक्त की। कल नवरात्रि पूर्ण होगी, परसों विजयदशमी यानी दशहरा सोल्लास संपन्न किया जाएगा। हे मन, आनंद के महासागर में यथेच्छ विहार करने के लिए तैयार हो जा, क्योंकि पुराण काल में असुरों पर पाई प्रचंड विजय को स्मृति दिन के रूप में हम नवरात्र मनाते हैं। हे मन, अब उठ, भगवत्ती अंबिका के जय-जयकार से दस दिशाएँ गूँजने दे।

परसों अष्टमी के दिन इन विचारों से उत्तेजित मन आज विजयदशमी के प्रात:काल में यह क्या देख रहा है? यह सच है कि भगवती जगदंबा ने उस दिन आसुरी वृत्ति का निर्दलन किया था, पर आज उस समय एक बार निर्दलित वह आसुरी वृत्ति पुनरपि सभी सज्जनों को पददलित करके इस पुण्यभूमि को क्या दु:ख में नहीं धकेल रही है? उस पुराण काल में भगवती जगदंबा द्वारा असुरों का नि:पात करके फहराया हुआ वह स्वातंत्र्य ध्वज आज विजयदशमी को कहाँ है? हे मन, तू किस तरह के सुख की आशा कर रहा है? उन दिनों नौ दिन और नौ रात इस पुण्यभूमि को संत्रस्त करनेवाले असुरों के साथ घनघोर युद्ध हुआ, तब दसवें दिन 'विजयदशमी' का दिन उदित हुआ। हे मन, आज हतबल हुई मातृभूमि को सजाने के लिए नवरात्र का पूजन कहाँ किया है? अत: आज तू सुख का अधिकारी कैसे हो सकता है?

आज सभी वैभव लुप्त हो चुका है। हिमाचल से स्पर्धा करनेवाला भारती का विजयध्वज उखड़ गया है। प्रभु रामचंद्र के रामराज्य में नंदनवन के सुख से उत्फुल्ल सरयू नदी के तट पर की वह अयोध्या आज खंडहर हुई है। भगवान् गोविंद की मुरली के स्वर से निनादित वह गोकुल आज परकीय आक्रमण से आक्रंदन कर रहा है। ग्यारह अक्षौहिणी आसुरी वृत्ति के कौरव सैन्य का नाश करके पांडवों के लिए स्वराज्य सोपान बना हुआ वह कुरुक्षेत्र पतित भूमि हो गया है और उनमें होनेवाला कलैष्य नष्ट करनेवाली, वीरवृत्ति जाग्रत् करनेवाली 'भगवद्गीता' निष्क्रिय षढत्व के केवल पठन में फँस गई है, घिर गई है। शत्रु उन्मत्त हुए हैं, मित्र सताए जा रहे हैं। परतंत्रता की खडखड़ानेवाली भारी बेड़ियों से भू-माता का शरीर जकड़ा हुआ है। तो फिर हे मन, तुझे सुखी होने का क्या अधिकार है? हाँ, कानों को संगीत से आनंद होता है, काव्य से रसिकता को आनंद की गुदगुदी होती है, तत्त्वज्ञान से मन को रहस्यमय संतोष मिल जाता है, चित्रकला से चित्त हर्षोत्फुल्ल होता है—यह सब सच है, परंतु ये सब कब होता है? जब पारतंत्र्य से देश जल रहा है, तब? जब तेरे धर्म का, तेरी जाति का, तेरीं संस्कृति का पग-पग पर अपमान हो रहा है, तब? तेरी नारी जाति की, तेरे देवताओं की, मंदिरों की पवित्रता जब अधमों के द्वारा भ्रष्ट की जा रही है, तब? तेरे श्रद्धानंद, तेरे राजपाल जब अत्याचारी अधमों के आसुरी छुरों के बलि होते हैं, तब? स्वधर्म की, स्वजाति की और संस्कृति की सेवा में एकाग्रता से मग्न होने का अर्थ जब हत्यारों के घात की शस्त्र का बलि होना है, तब? नहीं, नहीं, नहीं रे मन, इस परिस्थिति में केवल सुख के पीछे लगने का तुझे कोई अधिकार नहीं है। जब मातृभूमि का आक्रंदन सुनाई देता है, तब संगीत सुनने का; जब उन्मत्तों से अपमान हो रहा है, तब तत्त्वज्ञान के विचारों का; जब संस्कृति के विनाश का भयानक चित्र आँखों के सामने आता है, तब चित्रकला का अधिकार पाप का हिस्सेदार हुए बिना किसे प्राप्त हो सकता है? नौ रातों में भयानक दिव्य करके सभी आसुरी वृत्तियों का विनाश किए बिना विजयदशमी का आनंद मनाने का अधिकार किसे प्राप्त हो सकेगा? इसलिए हे मन, आज तुझे सुख का अधिकार नहीं है।

तो फिर आज की विजयदशमी कैसे मनाई जाए? यह क्या पूछ रहा है? भूतकाल में एक बार पंपा सरोवर के किनारे प्रभु रामचंद्र आज की तरह ही भारत की दुखद स्थिति में सारी नवरात्र भर इसी प्रश्न का विचार करते हुए बैठे थे और भगवती जगदंबा की तरह उन्हें भी विजय नहीं मिली थी। फिर भी उस विजय की प्राप्ति के लिए विजयदशमी के सुमुहूर्त पर प्रभु रामचंद्र ने लंका के उन्मत्त रावण के हनन के लिए किया। पाँच पांडव जब दुर्दैव से अज्ञातवास में बल्लव, बृहन्नला बन

गए थे, उस समय इसी दिन उन्होंने हीनता की वृत्ति का त्याग करके वीरता के आयुध धारण किए। इस दिन यद्यपि प्रत्यक्ष विजय प्राप्त नहीं हुई तो भी विजय प्राप्ति की प्रतिज्ञा लाभदाई होती है, इस तरह का पुराण काल से अनुभव है, इसलिए आज सभी को विजय संपादन की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। इसी विजयदशमी के वीर मुहूर्त पर मराठों का, हिंदुओं का गेरुआ झंडा और जरीपटका कभी दक्षिण की तरफ हैदरअली को धूल में मिलाने के लिए तो कभी पश्चिम की तरफ उन्मत्त मुधल राजाओं को उनकी अधमता की सजा देने के लिए तो कभी अंग्रेजों का वडगाँव (इस स्थान पर अंग्रेजों की हार हुई थी) करने के लिए तो कभी विश्वासघाती निजाम को पराजित करने के लिए तो कभी फ्रेंचों के षड्यंत्र को विफल करने के लिए मराठा राज्य की सेनाएँ इसी विजयदशमी के सुमुहूर्त पर सागर के कल्लोलों के समान उछलते हुए पुण्य पत्तन से ऐसे तेजस्वी भाले, जिसे देखकर सूर्य भी चमक उठे—आसमान में ऊँचे फेंकते हुए दिग्विजय के लिए प्रस्थान करते थे, वही है आज का पावन दिन! इस पावन दिन पर इस तरह का कोई दिव्य निश्चय करके ही यह दिवस मनाना चाहिए। आज सौ से अधिक साल बीत गए हैं, जब हमारी विजयलक्ष्मी का अपहरण विदेशियों ने किया। हे मन, उसको मुक्त करने के लिए आज के सुमुहूर्त पर तुझे सारे सुखों की आसक्ति छोड़कर कटिबद्ध होना चाहिए। हे हिंदूजाति के मन, हिंदूजाति का होनेवाला अपमान नष्ट करने के लिए आज तुझे शक्तिदेवी दुर्गा की आराधना करनी चाहिए। बड़े-बड़े देवतागण भी शक्तिदेवी के अधिष्ठान के बिना जहाँ पराजित हुए, वहाँ मानव की क्या हस्ती? इसलिए हे हिंदू मन! आज तुझे इस सुमुहूर्त पर अगर कुछ करना आवश्यक है, तो वह है शक्तिदेवी की उपासना करने का निश्चय करना। जगत् का सारा सुख शक्तिदेवी के अधीन है। सभी तरह के न्याय और तत्त्वज्ञान की सुरक्षा की सामर्थ्य शक्तिदेवी में ही है। अगर देश की शक्तिदेवता ही निःशक्त हुई तो उस देश की भाग्यदेवता भी गतप्राण हो जाएगी। अगर राष्ट्र की तलवार ही टूट गई तो उसकी लेखनी, उसकी तूलिका, उसकी वीणा भी टूट जाती है। सच्चा उत्कर्ष तत्त्वज्ञान के बहुत सारे ग्रंथ लिखने से नहीं होता, वह बाहुओं की शक्ति से होता है। शक्तिदेवता अगर हृदय में और नस-नस में अवतीर्ण हुई तो स्वयं भगवान् उसकी सहायता करते हैं। इस दुनिया में दुर्बल का सहायक कोई नहीं है और दुर्बलता के समान दूसरा कोई गुनाह नहीं है। सम्राट् चंद्रगुप्त के समय और विक्रमादित्य के समय जब-जब भारतीय तलवार शक्तिदेवी के अधिष्ठान से अभिमंत्रित थी, तब-तब उन्मत्त लोगों की उन्मत्तता नष्ट होकर भारती के दिव्य विजय की विजयदशमी यथार्थ रूप से संपन्न होती थी, शोभायमान होती थी।

हे हिंदू मन, जब से यह शक्तिदेवता तुझ पर रुष्ट हुई—क्योंकि तूने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया—उस समय से तेरी अवनति आरंभ हुई। अत्याचारी प्रवृत्ति को और आसुरी लालसा को अगर समय पर ही नहीं रोका तो वे सर्वनाश करती हैं और यह रोकने का काम शक्ति के अधिष्ठान के बिना संभव नहीं होता।

इसलिए त्रिकालबाधित सिद्धांत की तरफ आज के सुमुहूर्त पर ध्यान देना आवश्यक हैं। आज हिंदूजाति पर एक भयानक संकट आ गया है। एक तरफ से विदेशी सत्ता उसको नामशेष करने के लिए अपना सारा बल एकत्र करके तैयार हुई है तो दूसरी तरफ से इसलामी अत्याचारी वृत्ति उसको अंदर से खोखला करने के लिए पराकाष्ठा का प्रयत्न कर रही है। ऐसे समय जयिष्णु और वधिष्णु हिंदू मन को बलशाली शरीर के निर्माण का व्रत धारण करके विजयदशमी संपन्न करनी चाहिए। संगठन और शुद्धि—दोनों कार्यों से इसलामी और ईसाई आक्रमण के साथ सामना करना चाहिए। केवल तभी हमारी संस्कृति चिरकाल तक टिकेगी। हिंदूजाति का प्रत्येक युवक आज लाठीबंद या शस्त्रधारी होना चाहिए। युवकों को जैसे होंठों पर मूँछ, वैसे हाथ में लाठी आवश्यक लगनी चाहिए। कदाचित् नई पद्धति के अनुसार मूँछ काट दी तो भी लाठी को नहीं छोड़ना चाहिए, इतनी शक्तिदेवी की प्रीति प्रबल होनी चाहिए। आज के विजयदशमी के सुमुहूर्त पर गाँव-गाँव, नगर-नगर में व्यायामशाला की प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिए, हिंदू सभा की शाखाएँ स्थापित करनी चाहिए। अस्पृश्यता का वध करके इस विजयदशमी के सुमुहूर्त पर प्रत्येक हिंदू को स्पृश्यता का ही सोना बाँटना चाहिए। इस संगठन के और शुद्धि के मार्ग में रोड़े अटकानेवाली अनेक आपदाओं से संघर्ष करने के लिए मन तैयार रखना चाहिए, तभी आज की विजयदशमी फलदायी हो पाएगी। तभी सभी मंदिरों के और नारियों के पवित्रता की रक्षा होगी और फिर से पहले जैसा रामराज्य तथा धर्मराज्य इस भारतभूमि पर स्थापित होगा। हे मन, तुझे सुख का अधिकार तभी प्राप्त होगा। तब तक प्रकृति का रूप कितना भी सुंदर क्यों न हो, काव्य कितना भी रम्य क्यों न हो, तत्त्वज्ञान कितना भी प्रगल्भ क्यों न हो, उससे प्राप्त होनेवाले सुख के उपभोग का अधिकार तुझे नहीं है। इसलिए हे हिंदू मन, आज सारी आशंकाएँ छोड़कर इस विजयदशमी को ऐसी विजय—जैसी भगवती जगदंबा ने प्राप्त की थी—प्राप्त कर लेने का महानिश्चय कर ले, तब ही हिंदू भूमि की भाग्यदेवता तुझ पर प्रसन्न होगी।

□

अंदमान के उपनिवेशों का पुनर्विचार

जब अंदमान में बै. सावरकर और अन्य क्रांतिकारी प्रख्यात राजबंदी थे, तब उस उपनिवेश की तरफ हिंदुस्थान का ध्यान लगा रहता था और इससे उस उपनिवेश के बारे में कुछ-न-कुछ जानकारी समाचार-पत्रों में या विधिमंडल के प्रश्नोत्तरों से हिंदुस्थान के लोगों को प्राप्त होती थी। अत: वहाँ के अधिकारियों को अपने कार्य में सापेक्षत: सावधान रहना पड़ता था, परंतु राजबंदियों में से बहुत सारे बंदियों को हिंदी कारागृह में वापस लाने के बाद अंदमान के लोगों की स्थिति के बारे में हिंदी लोगों को कुछ भी महत्त्व की जानकारी प्राप्त नहीं होती। बीच में मोपला लोगों की पत्नियाँ, बच्चे अंदमान में भेज देना इष्ट होगा या अनिष्ट होगा—इस प्रश्न पर जब मद्रास विधिमंडल में चर्चा हुई, तब मुसलमानों की तरफ से काफी हंगामा किया गया। इससे कुछ लोगों ने अंदमान को निर्याण किया। उस समय वहाँ के मोपला विद्रोह के बंदीवानों का उपनिवेश न बनाया जाए, यह मत व्यक्त हुआ। तब फिर से अंदमान की थोड़ी सी चर्चा समाचार-पत्रों में छापी गई; परंतु यह स्पष्ट है कि उससे अंदमान की सद्य:स्थिति पर कुछ प्रकाश नहीं डाला गया।

कारागार सुधार मंडल (जेल कमीशन) जब अंदमान गया, तब पूछताछ हुई और वहाँ आजन्म कारावास के बंदी न भेजे जाएँ—इस तरह का सरकारी प्रस्ताव पास हुआ था; परंतु वह प्रस्ताव पूर्ण रूप से कभी अमल में नहीं लाया गया। अगर वह कार्यवाही में उतर जाता तो भी अंदमान के उपनिवेशों में सच्चे सुधार नहीं हो पाते। इतना ही नहीं, इससे उलटे उपनिवेश की ही नहीं, हिंदुस्थानी राष्ट्र की भी हानि हो जाती। यह बात 'कालापानी' (जन्मठेप) पुस्तक में विवेचित की गई है।

मुख्य प्रश्न उपनिवेश के सुधार का है, उपनिवेश को तोड़ने का नहीं

बै. सावरकरजी ने अपने कालापानी (जन्मठेप) ग्रंथ में यह बात तर्कपूर्ण

रूप से विशद वर्णित की है कि हिंदुस्थान के कारावास में ही आजन्म बंदीवास की सजा भुगतनेवाले हजारों लोगों को कारागृह में ठूँसने की अपेक्षा किसी स्थान पर उनके उग्र और प्रचंड स्वभाव को, प्रवृत्ति को मानवता से परिवर्तित करके मानव का हित करने के लिए उनका उपयोग किया जा सकता है। इसके लिए कड़े-से-कड़े अनुशासन के निर्बंध में उनका स्वतंत्र उपनिवेश तैयार करना ही सामाजिक दृष्टि से अत्यंत हितकारी होगा। उपनिवेश तोड़कर सभी आजन्म बंदियों को हिंदी कारावास में अगर जबदरस्ती रखा गया तो पहली बात यह होगी कि उनके परिश्रमों का जितना लाभ समाज को मिलना चाहिए, उतना नहीं मिलेगा।

दूसरी बात यह है कि उनके भरण-पोषण का भार समाज पर ही होता है। तीसरी बात यह है कि लुटेरे, हत्यारे आदि दुष्ट प्रकृति के मनुष्य में एक विलक्षण साहस होता है, उसका उपयोग कड़े-से-कड़े निर्बंध डालकर कर सकते हैं; पर बंदीगृह में विलक्षण साहस का उपयोग न होने से वह व्यर्थ ही जाता है। चौथी बात यह है कि इतने नर-नारियों में कुछ लोग मूलतः दुष्ट और अधम प्रवृत्ति के नहीं होते। फिर भी उनको पारिवारिक और सामाजिक जीवन से वंचित करके पशु की तरह कमरों में बंद करके आजन्म कारागृह में रखने से राष्ट्र उनकी संतानों और बुद्धि से वंचित रहता है। बंदीजनों के पापों के सुधार का मुख्य कार्य विफल होता है। वे दंडित होने की अपेक्षा एकांतवास से और उनका जीवन कठिन होने से वे और अधिक दुष्ट प्रकृति और विकृत मस्तिष्क के हो जाते हैं। एक तरह से यह सामाजिक मनुष्य-बल और संतान-वृद्धि की आत्महत्या होती है। इसलिए आजन्म बंदीवानों का अलग उपनिवेश बनाना अत्यंत आवश्यक होता है।

इस प्रकार के उपनिवेशों को आवश्यक कड़े निर्बंध, पक्की-ऊँची दीवारों से घिरा कारागार इत्यादि वास्तु और उनके लिए संभाव्य तथा उचित व्यवसायों के साधन, कारखाने, खेती इत्यादि की व्यवस्था विगत सत्तर सालों से अंदमान में अनुभव के अनुसार अदल-बदल करके उत्तम रीति से होती आई है और इस कार्य के लिए लाखों रुपए व्यय करके वहाँ के दलदल सुखाकर, जंगल साफकर, मार्ग तैयार करके अंदमान द्वीप जैसे उपनिवेशों को सुयोग्य बनाया गया। विशेषतः बंदीवानों के हजारों बच्चे वहाँ उपनिवेश बनाकर पहले से ही रहते आए हैं। इसलिए आजन्म कारावासियों के लिए नए और अलग उपनिवेश तैयार करने की अपेक्षा अंदमान के पुराने उपनिवेश आगे उपयोग में लाना लाभदायी है; परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि आज तक अंदमान के पुराने उपनिवेशों में जो अंधेर नगरी और शैतानी तानाशाही चल रही थी, वह भी स्थिर रखी जाए। तानाशाही के खिलाफ क्रांतिकारी राजबंदियों ने विगत अठारह वर्ष सतत संघर्ष किया था, उसका किंचित्

भी क्यों न हो, फल प्राप्त होकर वर्तमान के बंदी लोगों की स्थिति में और पुरानी स्थिति में जमीन-आसमान का अंतर आ गया है।

आज जो मलाबार के आजीवन कारावासी मुसलमान वहाँ गए, वे साल-डेढ़ साल में ही अपना परिवार वहाँ ले जा सकते हैं, खेती के लिए उनको जमीन मिलती है और वे स्वतंत्र रूप से घूम-फिर सकते हैं, पारिवारिक-सामाजिक सुख का लाभ और शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। इसलिए मुसलमानी अज्ञान नेताओं ने कितना भी शोर क्यों न मचाया, फिर भी मोपला आजन्म कारावासी टोलियाँ अपना परिवार लेकर अंदमान ले जाकर रहने लगे हैं। इस बात पर हमें किंचित् भी आशंका नहीं है कि वे स्वेच्छा से वहाँ जा रहे हैं। सरकार से हमारा आग्रह है कि वह मोपला बंदीवानों को अंदमान में ही रखे। केवल इतनी व्यवस्था अवश्य करे कि स्वभावत: धर्मांध लोगों की संख्या कहीं भी इकट्ठा न होने दे, उनको बिखेरकर तथा दूर-दूर रखा जाए और अंदमान के हिंदू उपनिवेशों को सताने की इच्छा या शक्ति उनमें कभी उत्पन्न न होने दे। उनको उचित सुविधाएँ दे दी जाएँ, पर कड़े अनुशासन के निर्बंध में उनमें मानवता का निर्माण करें, उनको कभी ढील न दे और उनके बच्चों को धर्मांधता की शिक्षा देनेवाले व्यक्ति या संस्था को वैसा न करने का आदेश दे।

-जैसे इन मोपला आजीवन कारावासी कैदियों को अंदमान में भेज दिया जाता है, वैसे ही हिंदुस्थान के अन्य आजीवन कारावासियों को भी समझा-बुझाकर अंदमान में भेज दे। जो नारियाँ आजीवन कारावासी हैं, उन्हें भी उधर भेजा जा सकता है। अभी वे जा रही हैं, पर इतनी सावधानी अवश्य बरतें कि अंदमान की हिंदू स्त्रियाँ सज्ञान हुए बिना और उनकी इच्छा से धर्मांतरण करने के लिए तैयार हुए बिना उसका धर्मांतरण न होने दे। सच कहा जाए तो अंदमान में जब तक कोई आजीवन बंदी टिकट लेकर तीन-चार वर्षों तक अच्छी तरह से नहीं रहता, तब तक उसे धर्मांतरण करने की इजाजत ही न दे। इससे अज्ञानी बच्चों को डर दिखाकर, यातनाएँ देकर या धोखा देकर धर्मांध मुसलमान धर्मांतरित नहीं कर सकते।

अंदमान की जानकारी की माँग

आजन्म कारावासी जैसे दुष्ट प्रकृति और समाजघातक दंडितों को मानवता सिखाने के लिए सभ्य नरमी या मधुर वचनों की अपेक्षा उग्रता का बरताव ही योग्य है, परंतु यह भी ध्यान में रखना होगा कि उन निर्बंधों के कारण या उग्रता के कारण बंदी में होनेवाली मानवता नष्ट न हो जाए। ऐसी योजना बनाई जाए कि मानवता वृद्धिंगत हो। इस दृष्टि से अंदमान में अभी क्या सुधार हो रहे हैं, बंदी को कितने दिन कारावास में रहना पड़ता है, कितने दिनों के बाद स्वतंत्र होकर उसे अपनी पत्नी और बच्चों

को अंदमान में लाने की अनुमति मिल पाती है, कितने बंदीवान हिंदुस्थान से गत दो वर्षों में अंदमान भेजे गए हैं, उनमें महिलाएँ कितनी और पुरुष कितने थे, हिंदू और मुसलमान कितने थे? ये प्रश्न, विशेषत: अंतिम प्रश्न विधिमंडल का कोई सदस्य अवश्य पूछे। आजकल अंदमान के बारे में सारी व्यवस्था अँधेरे में चल रही है। विधिमंडल के सदस्य प्रश्न पूछकर उस स्थिति पर प्रकाश डाल सकते हैं।

अंदमान के उपनिवेश का महत्त्व

अंदमान में केवल बंदी ही नहीं हैं, वहाँ अपने ही रक्त-मांस के और बुद्धि में, योग्यता में, सभ्य संस्कृति में हमसे रत्ती भर भी कम न होनेवाले पहले के बंदीवानों की संतानों के हजारों हिंदी नागरिक भी निवास करते हैं। उन हिंदी नागरिकों की चिंता हमारे बिना कौन कर सकता है? उनकी खेती पर कितना कर-भार लिया जाता है? उनकी शिक्षा की क्या व्यवस्था की गई है, शिक्षा की कौन सी सुविधाएँ वहाँ उपलब्ध हैं? इत्यादि बातों की जानकारी कभी सालोंसाल कोई हिंदुस्थानी नहीं पूछता। गुयाना, अफ्रीका इत्यादि उपनिवेशों से अंदमान के उपनिवेश का महत्त्व अधिक है, क्योंकि आज नहीं तो कल, अंदमान हिंदुस्थान की सुरक्षा का एक सामुद्रिक और वैमानिक नाका बननेवाला है। दूसरी बात यंह है कि वह पूरा उपनिवेश शुद्ध रूप से हिंदी है, उसकी जनसंख्या अभी बारह हजार तक है, यह संख्या आगे चलकर बढ़नेवाली है। पहले अंदमान में सैनिक शासन था, पर बाद में वह उपनिवेश आंदोलन के कारण नागर शासन (Civil Administration) में आनेवाला था। अत: यह जानकारी अवश्य प्रकाशित होनी चाहिए कि वहाँ नागरी शासन शुरू हुआ है या नहीं? वहाँ बाहर के दूसरे लोग बिना शर्त आ-जा सकते हैं या नहीं?

उसी तरह वहाँ की सरकारी भूमि, नारियल के बाग और संपत्ति का विक्रय जब किया जाता है या खेती के लिए जमीन दी जाती है, तब हिंदी व्यापारी उनका ठेका लेने के लिए तैयार होते हुए भी क्या यूरोपीय गोरे व्यापारियों को ही उनका ठेका दिया जाता है? वहाँ किस तरह की सुविधा से जमीन दी जाती है? वहाँ के उद्योगों तथा व्यापारों की जानकारी हिंदुस्थान में सरकार ठीक तरह से नहीं देती। इसलिए यहाँ से किसान या व्यापारी वहाँ की तरफ आकर्षित नहीं होते। फिर प्रतिस्पर्धा विहीन बाजार में एकाध गोरा ग्राहक दिखाई देते ही उसको सैकड़ों एकड़ भूमि खेती के लिए दी जाती है। जंगल काटने के काम के लिए और अन्य किसी कारण से ईसाई मिशन भी वहाँ हाथ-पाँव फैलाने लगे हैं। इन बातों की चर्चा बीच-बीच में सुनाई देती है, उसमें कितना सत्य है? इस विषय के बारे में भी पूछताछ होनी चाहिए कि यहाँ के हिंदी लोगों को गोरे ग्राहक के समान ही उचित सुविधाएँ दी जाने की व्यवस्था है

या नहीं। अगर न हो तो उसकी व्यवस्था करनी चाहिए।

विधि समिति के प्रतिनिधियों के निरीक्षक मंडल को अंदमान में भेजिए

हमने ऊपर लिखा है कि अंदमान के अँधेरे पर विधिमंडल में प्रश्न पूछकर उसपर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न होना चाहिए; परंतु इतने से कुछ विशेष कार्य नहीं होगा। अंदमान में अच्छी व्यवस्था करनी हो तो सरकार को पूछे जाने पर तुरंत यह माँग करनी चाहिए कि विधि समिति (Legislative Assembly) के दो-तीन प्रतिनिधियों का एक निरीक्षक मंडल अंदमान भेज दिया जाए, ताकि सदस्य अंदमान के दुःख सुनें-समझें और वहाँ की जानकारी प्राप्त करके समस्याओं को सुलझाने के लिए आवश्यक उपाय सुझाएँ। कम-से-कम दो-तीन लोकनियुक्त प्रतिनिधि अपने उत्तरदायित्व पर वहाँ जाने के लिए तैयार हों तो उनके लिए सरकार से अनुज्ञा माँगी जाए और वे लोग वहाँ का निरीक्षण करके अपना प्रतिवृत्त प्रकाशित करें। अंदमान के लोग राष्ट्रीय सभा में अपना प्रतिनिधि भेजें। दूसरी तरफ से अंदमान में रहनेवाले हमारे लोग वहाँ की जानकारी बार-बार किसी-न-किसी मार्ग से हिंदुस्थान के समाचार-पत्रों में छपवाएँ। इस तरह के समाचार हिंदुस्थान में भेजना अंदमान के अत्यंत बुरे दिनों में कारागृह के राजबंदियों को अगर संभव हुआ तो वहाँ के स्वतंत्र लोगों को आज के वातावरण में यह सहज संभव होगा। वे अपनी सभी कठिनाइयाँ और शिकायतें महीने-दो महीने में हिंदुस्थान में भेजें, अन्य समाचार भी भेज दें। इसके सिवा वर्ष के अंत में दो-तीन लोग सारी जानकारी एकत्र करके स्वयं हिंदुस्थान में पधारें और स्वयं यहाँ के नेताओं से मिलकर सभी तरह की चर्चा करें।

विशेषत: राष्ट्रीय सभा के अधिवेशन के समय अंदमान का एकाध प्रतिनिधि अगर भेज दें तो वह अत्यंत उत्तम बात होगी। हिंदू महासभा भी इस वर्ष एक प्रचारक या निरीक्षक अंदमान में भेज दे। वहाँ के हिंदू छात्रों को पाठशालाओं में उनकी धर्म-भाषा हिंदी पढ़ाई जाती है या नहीं, हिंदुओं के धर्मांतरण का जैसे पिछले दिनों में धूमधड़ाका चल रहा था, क्या वही अत्याचार मुसलमानों से या ईसाइयों से फिर होता जा रहा है ? मोपला के जैसे दुष्ट-धर्मांध, जिनके हाथ यहाँ के हिंदुओं के खून से रँगे हुए हैं, क्या वहाँ गए हैं ? वहाँ जाकर क्या फिर से हिंदुओं को सता रहे हैं ? हिंदुओं की समाजविषयक विशिष्ट कठिनाइयाँ कौन सी हैं ? वहाँ के सरकारी लेखन में उर्दू लिपि अत्यावश्यक करने का पागलपन दूर होकर वह लेखन हिंदी में भी होता है या नहीं ? इन सभी प्रश्नों का सुयोग्य निरीक्षण हिंदुओं के प्रतिनिधियों को वहाँ जाकर करना चाहिए; परंतु हिंदुओं की तरफ से वहाँ कोई

भी गया नहीं है। अतः हिंदू महासभा के अध्यक्ष डॉ. मुंजे से हमारा आग्रह है कि कोई प्रचारक वहाँ का निरीक्षण करने के लिए अवश्य भेजें।

अंदमान हिंदुस्थान का शिशु अपत्य है

अंदमान में हजारों हिंदी नागरिक (कुछ साल पहले के बंदियों की संतति) निवास करते हैं। वे स्वभाव से ममतालु, बुद्धि से कुशाग्र और कृति में तत्पर होते हैं। उन्हें हिंदू संस्कृति का पूर्ण अभिमान है। थोड़ा सा प्रयत्न करने से उनमें स्वदेश और स्वराष्ट्र का अभिमान तुरंत उत्पन्न हो सकता है। उनके सिवा बंदीजन लगभग आठ हजार होंगे। वे सब-के-सब निकम्मे नहीं होते। राजबंदियों ने उनमें से कई लोगों को स्वधर्म और स्वराष्ट्र के लिए साहसपूर्ण परिश्रम करते हुए देखा है। उनके सिवा वहाँ अब भी बीस-पच्चीस राजबंदी हैं। इस प्रकार जिस द्वीप पर हिंदी संस्कृति निवास करती है और हिंदी संस्कृति के बारह हजार से भी अधिक लोग रहते हैं, जिनकी संपत्ति करोड़ों रुपयों की है, ऐसे अंदमान के वृद्धिशील उपनिवेश की उपेक्षा करके कैसे चलेगा? उसपर भी उस द्वीप पुंज का महत्त्व सामुद्रिक और वैमानिक युद्ध में दिन-ब-दिन बढ़ने ही वाला है। इसी से उस उपनिवेश और वहाँ की राज्य-व्यवस्था की तरफ हमारे नेताओं को विशेष ध्यान देना पड़ेगा।

अभी वे हमारे देशबंधु पतित हैं, पशुतुल्य हैं, पर हमारा कर्तव्य है कि हम अपने हाथ का सहारा देखकर उनको ऊपर उठाएँ। पीढ़ियों तक उन्होंने अंदमान के कालेपानी पर अत्यंत कष्टों में दिन बिताए हैं। हमें चाहिए कि हम उनके कष्टों का अंत कर दें। उनके दुःख मौन हैं, हम उनके दुःख को वाणी दें। हमारे महाराष्ट्र के विधि समिति के प्रतिनिधि डॉ. मुंजे, श्री काणे, श्री जयकर और विशेषतः तात्या साहब केलकर—यह चौकड़ी अगर मन में ठान ले तो दो-तीन महीनों के अंदर हिंदी लोकनियुक्त प्रतिनिधियों का एक छोटा सा मंडल वहाँ भेजने का प्रस्ताव पारित कराकर वहाँ की अनेक कठिनाइयों पर प्रकाश डाला जा सकता है। वे इन कठिनाइयों को दूर कर सकते हैं। विधिमंडल से जो कुछ थोड़े से काम कर सकते हैं, उनमें यह काम होता तो वहाँ की चर्चा से अनेक बातों पर डाला गया अंधकार का परदा दूर करके उसपर प्रकाश डाल सकते हैं। अतः हमें इस संस्था का उतना उपयोग कर लेना चाहिए। विधि समिति के ऊपर सुझाए गए प्रश्न और एक निरीक्षक मंडल सहजता से निरीक्षण के लिए वहाँ भेजकर डॉ. मुंजे हिंदू महासभा की तरफ से और तात्याराव केलकर आदि विधि समिति द्वारा अंदमान के उपनिवेश के अंधकार पर फिर एक बार कुछ जीवनदायी प्रकाश डालेंगे, ऐसी हमें उत्कट आशा है।

□

गोमांतक को मत भूलिए

गोमांतक को मत भूलिए
क्योंकि भारत यानी
केवल ब्रिटिश भारत नहीं है!

यह बात एकदम झूठ भी नहीं है कि गोमांतक के हमारे स्वदेश बंधुओं को और स्वधर्म बंधुओं को ऐसा बार-बार लगता है कि गोमांतकेतर भारत को उनका पूर्ण विस्मरण हो गया है। भारत के अनेक नेताओं के मन में उनकी वैसी इच्छा न होते हुए भी 'भारत' कहते ही केवल ब्रिटिश शासन में होनेवाले भारत की मूर्ति ही सामने खड़ी हो जाती है और बाकी के नेताओं के मन में गोमांतकादि ब्रिटिश भारत के बाहर का भारत का विभाग भारत में ही अंतर्भूत है। इस सत्य की अनुभूति इतनी अस्पष्ट हुई है कि उन्हें गोमांतक का समावेश भारतीय प्रश्न में करना होगा, ऐसी इच्छा ही उत्पन्न नहीं होती। उनको स्पष्ट रूप से यह कहते हुए हमने सुना है कि 'गोमांतक परराज्य है! उनके सुख-दुःख अलग हैं, हमारे अलग हैं। वे अपना मार्ग निकालें, हम अपना निकालेंगे।' ये अविचारी विचारवंत अपने से ऐसा नहीं पूछते हैं कि अगर गोमांतक परराज्य है तो क्या ब्रिटिश भारत स्वराज्य है?

परंतु बचपन से उनको घर और बाहर ऐसी ही शिक्षा प्राप्त हुई है कि नेपाल, चंद्रनगर आदि फ्रेंच भाग, गोमांतकादि पुर्तगाली भाग आदि ब्रिटिश शासन में न होनेवाले विभागों के बारे में उनके मन में कुछ अपने देशविषयक या राष्ट्रीय ममत्व निर्माण ही नहीं हुआ। धुरंधर राष्ट्रवादियों ने 'राष्ट्रीय' कहकर स्थापित की हुई राष्ट्रीय सभा ही इस लज्जास्पद मनःस्थिति का उत्कृष्ट प्रमाण है। उस संस्था का नाम है 'राष्ट्रीय सभा'—अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा। The Indian National Congress पर उस सभा के अंतर्गत गोमांतक, पांडिचेरी या नेपाल की तरफ से कोई प्रतिनिधि नहीं है, उनको बुलाया ही नहीं गया। इतना ही नहीं, उनको समाविष्ट

करना अपना कर्तव्य ही नहीं है—ऐसी स्पष्ट प्रतिज्ञा उनके चालकों में से अनेक ने कई बार उच्चारित की है। स्वराज्य की घटना, प्रांत-विभाजन की नामावली और अन्य अनेक प्रकार की 'राष्ट्रीय योजनाएँ' राष्ट्रसभा ने आज तक बनाईं, उनमें नेपाल, गोमांतक, पांडिचेरी इत्यादि भारतीय विभागों का नामनिर्देश भी नहीं प्राप्त होता। उत्तर अफ्रीका या दक्षिण अफ्रीका में गए हुए यात्री भारतीयों के दुःख भी राष्ट्रीय सभा में प्रतिध्वनित होते हैं, उनको भी 'राष्ट्रीय' समझा जाता है, पर बिलकुल नजदीक होनेवाले गोमांतक या नेपाल के अस्तित्व तक की पूछताछ (Indian National Congress) अखिल भारतीय राष्ट्रसभा कहलानेवाली इस राष्ट्रीय सभा में आज तक किसी ने नहीं की। अगर कोई यह कहेगा कि राष्ट्रीय सभा ब्रिटिश भारत में काम करती है, इसलिए उसने यद्यपि गोमांतक, नेपाल, पांडिचेरी आदि प्रदेशों के बारे में प्रस्ताव अगर किए तो भी वे सरकारें राष्ट्रीय सभा की सीमा के बाहर होने के कारण उसके प्रस्ताव को कौन पूछेगा?

इस आक्षेप का पहला उत्तर यह है कि ब्रिटिश सरकार तुम्हारे ब्रिटिश भारत के प्रस्ताव को कितना पूछती है? वह तुम्हारे प्रस्ताव को कितना पूछती है, वह साइमन कमीशन के ताजा उदाहरण से ही किसी के भी ध्यान में आ जाएगा। शास्त्रों के आज्ञापत्रों के प्रस्ताव तुम तीस-पैंतीस सालों से कर रहे हो। क्या शस्त्रों पर होनेवाली पाबंदी निकाल दी गई है? दूसरा उत्तर ऐसा है कि ब्रिटिश सरकार को सुनाने हेतु विवश करने के उद्देश्य से तुम प्रस्ताव करते रहे और अंत में वे तुम्हारी सीमा में आ रहे हैं—ऐसा लगे, इतना ध्यान वे तुमपर देने लगे तो वैसे ही गोमांतक, पांडिचेरी आदि की विदेशी सरकारों को भी अपनी सीमा में लाने का प्रयत्न क्यों नहीं करते? वर्तमान को छोड़ दिया जाए, तो भी भविष्य के भारत के जो कल्पना-चित्र तुम बनाते हो, उनमें गोमांतक, पांडिचेरी, नेपाल आदि का समावेश स्पष्ट रूप से क्यों नहीं करते? पर वैसा कुछ भी क्यों नहीं घटित होता? उसका मूल कारण यही है कि राष्ट्रसभा के राष्ट्रीयत्व की सच्ची व्याप्ति ही अब तक स्पष्ट रूप से और तीव्रता से उनके चालकों तथा हिंदी जनता के ध्यान में नहीं आई है। राष्ट्रीय सभा अपने को Indian (अखिल भारतीय) कहती है, फिर भी वस्तुतः वह अब भी British Indian (ब्रिटिश भारतीय सभा) ही है। उसका प्रत्यक्ष कार्य ही नहीं, तो मन के बोध का क्षेत्र भी ब्रिटिश भारत की सीमाओं से जकड़ा हुआ है। अतः दक्षिण अफ्रीका के या ब्रिटिश गुयाना की हिंदी जनता के सुख-दुःख से वे सहभागी हो सकते हैं; पर गोमांतक, नेपाल, पांडिचेरी आदि राष्ट्र विभाग का नामनिर्देश तक करने की आवश्यकता उसको नहीं होती। वास्तविक रूप से सच्चे Indian (अखिल भारतीय) राष्ट्र सभा को पहले ही अधिवेशन में यह व्यापक नाम धारण करते समय

स्पष्ट करना चाहिए था कि फ्रेंच इंडिया, ब्रिटिश इंडिया, पोर्तुगीज इंडिया इत्यादि हम नहीं मानते हैं, हम मानते हैं—इंडिया।

हमें इंडिया मालूम है, हमें भारत मालूम है। जिसने भारत के टुकड़े किए, वह चाहे तो उन टुकड़ों की कल्पना करे, पर उनके आभास के षड्यंत्र के चक्र में फँसकर भारत के सुपुत्र भी अपने सहोदरों को भूल जाएँ, यह कितनी शर्म की बात है। चार विदेशी लुटेरे एक ही घर में घुसकर घर के चार छोटे-बड़े हिस्से अगर जबरदस्ती से हस्तगत कर लिये तो उस घर का परिवार भी यह माने कि चार घर और चार परिवार हुए हैं और एक-दूसरे को पराया मानें? उस घर को लुटेरों से मुक्त करते समय क्या अपने छोटे से हिस्से को ही अपना घर और दूसरे के हिस्से को घर नहीं मानें? ब्रिटिश भारत, पोर्तुगीज भारत, फ्रेंच भारत इत्यादि शब्द सुनते ही हमारा सिर शर्म से नीचे झुक जाना चाहिए। वे शब्द नहीं हैं, अपशब्द हैं। नेपाल से सिंहल तक, सिंध से सिंधु तक भारत अखंड, अविभिन्न और अविभाज्य है। हमारी इच्छा उस सारे भारत को स्वतंत्र करने की है। उस भूमि का एक कण भी जब तक परसत्ता के पाँव के नीचे रौंदा जाता है, तब तक अपने कार्य को पूर्ण हुआ नहीं मानेंगे। हमारा संघर्ष ढीला नहीं होगा। जैसे कभी निरुपाय अपशब्द भी सुनने पड़ते हैं, अप्रतिष्ठित रहना पड़ता है, वैसे ही ब्रिटिश भारत, फ्रेंच भारत इत्यादि शब्द हम सह रहे हैं। उस परिस्थिति के वश अपरिहार्य उतनी ही यातनाएँ सह लेंगे और उसका उपयोग भी कर लेंगे, परंतु हमें महाराष्ट्र परतंत्र होने में जितनी अस्वस्थता संत्रास देगी, उतना ही पांडिचेरी स्वतंत्र होने तक हृदय व्याकुल रहेगा। तब तक बंगाल परतंत्र है, तब तक ऐसा नहीं लगेगा कि भारत स्वतंत्र हो गया है; वैसे ही जब तक गोमांतक परवश है, तब तक भारत स्वतंत्र नहीं लगेगा।

नेपाल, गोमांतक, पांडिचेरी, हिंदुस्थान का कण भी जिसमें समाविष्ट है, वह भारतीय भारत हमारे राष्ट्रीय जीवन का केंद्र है, वही भारतीय भारत हम जानते हैं। बाकी हमें कुछ भी मालूम नहीं है। भारतीय राष्ट्र सभा नामक संस्था का भी यही प्रण होना चाहिए। बर्मा के प्रतिनिधि मद्रास के राष्ट्रीय सभा के अधिवेशन में आ जाते हैं, पर नेपाल या गोमांतक के प्रतिनिधि नहीं आते। यह लज्जास्पद स्थिति इस दास्यविमूढ़ मतिभ्रम से निर्मित हुई है कि ब्रिटिश भारत ही केवल भारत है। यह कहना कि गोमांतक, नेपाल आदि विभाग अपने प्रतिनिधि क्यों नहीं भेजते—टालमटोल करना है। अगर वे प्रतिनिधि नहीं भेजते तो तुम वहाँ जाकर उनके प्रतिनिधि क्यों नहीं ले आते? तुम तो उनका नाम तक नहीं लेते। फिर उनको भी तुम्हारे पास आने की बुद्धि कैसे होगी? तुम्हारे ब्रिटिश भारत ने क्या पहले ही दिन छलाँग लगाकर राष्ट्रीय सभा में पाँव रखा? उनमें जागृति का काम तुमने तीस वर्षों

तक किया है। राष्ट्रीय सभा ने सिंध आदि प्रांतों में जाकर फेरियाँ लगाईं, तब कहीं वे राष्ट्रीय भावना से स्फुरित हुए, वैसे ही तुम गोमांतक में जाकर प्रचार करो, नेपाली बंधुओं को आमंत्रण दे दो, पांडिचेरी में राष्ट्रीय सभा का केंद्र खोलो, तब वे सब राष्ट्रीय सभा में आ जाएँगे। अभी यह भी हमारी समझ में नहीं आया कि स्वदेशी रियासतें तक राष्ट्रीय सभा की कक्षा में आती हैं या नहीं? तब यह स्वाभाविक ही है कि हम गोमांतक, पांडिचेरी, नेपाल की तरफ देख तक नहीं सकते। बुलावे भेजकर अफ्रीका के हिंदी प्रतिनिधि राष्ट्रीय सभा में लाए जाते हैं और नेपाल का प्रतिनिधि लाने की बात करते ही नेताओं के मुँह टेढ़े होते हैं।

अब हुआ सो हुआ। उसमें दोष सभी का है, पर वह अब सभी मिलकर सुधार सकते हैं, दोष-परिमार्जन कर सकते हैं। भारतीय राष्ट्र सभा अब सच्चे अर्थ में भारत की ही राष्ट्र सभा होनी चाहिए। उसमें स्वतंत्र नेपाल, फ्रेंचों के कब्जे में होनेवाला प्रदेश, गोमांतक आदि प्रदेशों के प्रतिनिधि आमंत्रित करके राष्ट्रीय सभा में लाने चाहिए। अगर वहाँ का प्रतिनिधित्व करनेवाला कोई सामने न आए तो वैयक्तिक रूप से कुछ लोगों को प्रतिनिधि नियुक्त करके राष्ट्रीय सभा में बुलाना चाहिए। विशेषत: हम जिस स्वतंत्र भारत के राज्यविभागादि की योजना करते हैं या करेंगे, उसमें इन सभी विभागों का स्पष्ट नामनिर्देशपूर्वक उल्लेख और समावेश होना चाहिए। हमने यह घोषणा की है कि स्वतंत्रता ही हमारा ध्येय है। वैसे ही अब यह भी घोषणा हमें करनी चाहिए कि 'हमें केवल ब्रिटिश भारत ही स्वतंत्र नहीं करना है बल्कि आ सिंधु सिंध तक की लंब रूप भूमि, भारतभूमि, यह भारतीय भारत स्वतंत्र करना है।'

हमारा ध्येय है 'स्वातंत्र्य', उसकी व्याप्ति भारतीय भारत अखंड अविभाज्य भारत। ऐसी घोषणा अगर हमने की तो गोमांतकादि राज्यों से उसकी प्रतिध्वनि गूँज उठेगी। आज भी ऐसा नहीं है कि गोमांतक में राष्ट्रीय विचारों के देशभक्त नहीं हैं। यह बात सच है कि हमारी तरफ से उनके एक भी प्रयत्न को किसी का भी, वैसा प्रोत्साहन नहीं मिलता जैसा मिलना चाहिए।

भारतीय भारत के निर्माता इस बात को न भूलें कि गोमांतक, पांडिचेरी इत्यादि, जिनका उल्लेख मूर्खता से 'परराज्य' की हैसियत से किया जाता है, उन विभागों का हमारी स्वतंत्रता के ध्येय की सिद्धि के लिए परिणामकारक उपयोग कर सकते हैं। इस तरह के उपयोग के प्रयत्न आज तक कुछ अंश में हुए हैं।

गोमांतक का कर्तव्य

हमने इतने समय तक जो सर्वसाधारण चर्चा की, उसमें गोमांतकादि उपेक्षित भारत विभाग के बारे में राष्ट्रीय सभा इत्यादि भारतीय कहलानेवाली संस्थाओं का

कर्तव्य विषयक उल्लेख किया, पर अब अगर गोमांतक विषय का विचार करना हो तो गोमांतक में स्थित बंधुओं से हमारी ऐसी प्रार्थना है कि वे स्वयं ही हिंदुस्थान की राष्ट्रीय संस्थाओं में अपना प्रवेश करा लें और इतनी सामर्थ्य तथा हठ से भारतीय राजनीति और धर्मनीति के दरवाजे पर अपने कर्तृत्व के धमाके की जोरदार दस्तक दें कि गोमांतक को भूलना हिंदुस्थान के किसी भी विभाग के लिए असंभव हो जाए। एक तरफ गोमांतक में भारतीय एकता की बलवती राष्ट्रीय भावना उत्पन्न करें और दूसरी तरफ गोमांतक के बाहर आकर उनके नेता तथा समाचार-पत्र हिंदी राष्ट्रीय और धार्मिक आंदोलनों में समय-समय पर अपना अस्तित्व और कर्तृत्व स्थापित करें। इस आंदोलन में गोवा का प्रसिद्ध 'हिंदू' समाचार-पत्र बहुत अच्छा कार्य कर रहा है। हमारे लिए यह हर्ष की बात है कि यह पत्र स्वयं पर आए हुए संकट से मुक्त होकर फिर से कार्यरत होनेवाला है।

हमारी यह इच्छा है कि भारत इत्यादि अन्य गोमांतकीय समाचार-पत्र और नेतागण इसके आगे एकत्र होकर हिंदी राष्ट्रीय सभा में अपना प्रतिनिधि भेज दें। मराठी साहित्य सम्मेलन, राष्ट्रीय सभा, हिंदू महासभा की प्रत्येक अखिल भारतीय संस्था की बैठक में वे जरूर अपना प्रतिनिधि भेजें। अगर संभव हो तो उन संस्थाओं की शाखाएँ गोमांतक में स्थापित करें। गोमांतक की विशिष्ट प्रांतीय राजनीतिक बातें वे स्वयं देखें। उनकी तरफ ध्यान देने की फुरसत, आवश्यकता और सामर्थ्य यहाँ की संस्थाओं में विशेष नहीं है; परंतु अखिल भारतीय प्रश्नों में भारत की मानसिक मूर्ति की उपासना में, भावी राज्य घटना में, हिंदू संगठन में गोमांतक का स्थान और अधिकार अक्षय रहे, इतना उनका महत्त्व और ममत्व प्रत्येक भारतीय के मन में होना चाहिए—इसी में आज तक की इष्ट सिद्धि होगी। यह प्राप्त करने के लिए गोमांतक को स्वयं आंदोलन करना ही चाहिए। आज अखिल भारत, और विशेषत: अखिल हिंदू संगठन की दृष्टि से देखा जाए तो आजकल गोमांतक ने जो प्रथम महान् कार्य आरंभ किया है, वह है—

गोमांतक के शुद्धीकरण का प्रश्न

गोमांतक में पुर्तगालियों के धर्मच्छलक राज्यकाल में हजारों हिंदू जबरन धर्मांतरित किए गए। वे मन से हिंदू होते हुए भी अब तक परधर्म में बुरी हालत में फँस गए हैं। उसका मुख्य कारण यह था कि पुराना हिंदू समाज उन्हें फिर से हिंदूधर्म में लेने के लिए तैयार नहीं था और आज भी नहीं है। 'श्रद्धानंद' का संपादक वर्ग इस बात की उत्कंठता से रात-दिन प्रतीक्षा कर रहा है कि कब इन हजारों हिंदुओं को शुद्ध कर लेने का महान् योग बन रहा है। यह इसलिए बताया कि कुछ मित्र

आक्षेप लगाते हैं कि 'श्रद्धानंद' गोमांतक भूल गया है। बै. सावरकरजी ने कारागृह से बाहर निकलते ही इस कार्य का प्रारंभ किया। इतना ही नहीं, जब वे कारागृह में थे, तब गोमांतक का भविष्य कैसा हो, इसकी उत्कृष्ट सूचक के रूप में इस प्रदेश के भूतकाल की एक उद्बोधक घटना पर बै. सावरकरजी ने एक 'गोमांतक काव्य' कारागृह में ही लिखा। उस काव्य में उन्होंने गोमांतक के शुद्धीकरण के प्रश्न की अत्यंत गंभीर और चित्ताकर्षक चर्चा की है। जब वे कारागृह से मुक्त हुए, तब उनके सामान के पिटारे आए। पिटारों में वह काव्य था। वह प्राप्त होते ही हमने छपवाया। उसके बाद दैनिक 'लोकमान्य' और 'मराठा' पत्र में जो उद्बोधक लेख इस विषय पर लिखे हैं, उनका स्मरण आज भी कुछ लोगों को होगा। लेखों का विषय था—बसई से गोवा तक हजारों हिंदू लोगों के शुद्धीकरण का विशाल आंदोलन अब प्रारंभ करना ही चाहिए, वह समस्या इस पीढ़ी को सुलझानी ही होगी। इस समस्या का तीव्र बोध जनता में उत्पन्न करने के लिए उन्होंने लिखा था—'वसई को चलो अथवा वसई चलिए।' इसके बाद रत्नागिरी और पुणे की हिंदू सभा की तरफ से शुद्धीकरण के प्रयत्न बीच-बीच में ही हो रहे थे। हम स्वयं गोमांतक में जाकर और यहाँ से भी उस आंदोलन का परामर्श ले रहे हैं। वहाँ के कार्यकर्ताओं से वहाँ के संगठन के बारे में चर्चाएँ चल रही हैं। स्वामी श्रद्धानंदजी ने इस कार्य के लिए वहाँ आने का वचन बै. सावरकरजी को दिया था। रत्नागिरी के अभी के 'बलवंत' ने भी गोमांतक के बारे में जनजागृति लाने के कार्य को यथाशक्ति सहयोग दिया है। इस तरह के खंडित प्रयत्न दूर-दूर से चल रहे हैं और महान् प्रश्न की तरफ जनता का ध्यान सदैव आकर्षित करने के लिए इस आंदोलन का उपयोग हो रहा है। फिर भी इस प्रश्न की कठिनाइयों के पहाड़ को बहुत बड़ा सुरंग लगाकर एक बहुत बड़ा सूराख बनाए बिना उस आंदोलन में रंग नहीं भरेगा। इन कठिनाइयों में मुख्य यह है कि शुद्धीकरण का विषय सामने आने पर वे धर्मच्युत लोग पूछते हैं—

'क्या आप हमें हमारी पहली ही जाति में वापस लेंगे?' यह मुख्य प्रश्न है। इसका उत्तर देने का उत्तरदायित्व संपूर्ण रूप से गोमांतकवासी हिंदू बंधुओं पर है। अगर वे संगठन के बारे में डंका पीटते हुए कोने-कोने में जाति-जाति के प्रतिशत पचास प्रमुख धर्माभिमानी गृहस्थ प्रकट आश्वासन देंगे कि 'हाँ, कम-से-कम पचास प्रतिशत हम हिंदू स्वजातीय समझकर तुम्हारे साथ धर्मव्यवहार करेंगे।' तो गोमांतक का नाम हिंदुस्थान भर में गूँज उठेगा और अखिल हिंदू सभा उनकी माँग न होते हुए भी उन्हें उच्च स्थान देगी, उनका गौरव करेगी। अगर ऐसा हुआ तो इस प्रश्न का विचार भी किसी के मन में नहीं उठेगा। यह एक शुद्धिकार्य की समस्या भी गोमांतक बंधु आगे के दो-चार वर्षों में हल करेंगे, तो भी भारतीय राष्ट्रों में और

लोगों के मन में उनको महत्त्व का स्थान प्राप्त हुए बिना नहीं रहेगा। चमत्कार के बिना नमस्कार नहीं होता।

शुद्धीकरण का यह कार्य गोमांतक में यशस्वी रूप से करना, यह अकेले गोमांतकवासियों का ही कर्तव्य नहीं है, यह प्रत्येक हिंदू का, विशेषतः प्रत्येक महाराष्ट्रवासी का कर्तव्य है। पहले बाजीराव पेशवा की और उनके बंधु चिमाजी अप्पा की तलवार ने हिंदूधर्म पर आघात करनेवाली शक्ति के हाथ ही काट दिए; परंतु जो आघात (धर्मांतरण के आघात), उनके पहले हिंदूधर्म पर हुए थे, उन आघातों को वीर चिमाजी या रणधुरंधर बाजीराव पूरी तरह से भर नहीं पाए। वह कार्य पहले बाजीराव की भाषा बोलनेवाले और बाजीराव के पराक्रम के साथ अपना नाम जोड़नेवाले प्रत्येक महाराष्ट्रीय की इस पीढ़ी को पूरा करना चाहिए; उस घाव की पूर्ति करनी चाहिए। मुंबई से गोवा तक पुर्तगालियों द्वारा धर्मांतरित हिंदुओं की शुद्धि करनी चाहिए (यानी उन लोगों को ईसाई धर्म से हिंदूधर्म में फिर लाना चाहिए)। बहुधा इस कार्य में बहुत कठिनाइयाँ नहीं होंगी। उनको हिंदूधर्म की दीक्षा देने के बाद ऐसे धर्मांतरित लोगों की एक स्वतंत्र जाति का निर्माण करना—यह एक उपाय है, नहीं तो उनको प्रायश्चित्त कराकर उन्हीं की पहली जाति में स्वीकार करने के लिए हमारे हिंदुओं को तैयार हो जाना चाहिए। ये सारी बातें संपूर्ण रूप से हम पर ही निर्भर हैं। इस बात में विदेशी शक्तियाँ प्रत्यक्ष विरोध नहीं कर सकेंगी और उन्होंने विरोध किया तो उसका प्रतिकार करके शुद्धीकरण का कार्य पूरा करना चाहिए।

हमें आशा है कि ईश्वर की इच्छा से इस महान् कार्य की पूर्ति करने के लिए आज या कल कोई कर्तव्यपरायण धुरंधर महात्मा आगे आएगा। गोमांतक की हिंदू जनता इस सुअवसर को न गँवाकर अपनी पहली घातक रूढ़ियाँ नष्ट करके उस शुद्धीकरण के लिए प्रयत्न करने में कोई कमी न आने देगी; उन शुद्धिकृतों को मुक्तहस्त से और सद्कंठ से 'हिंदू हिंदू भाई भाई।' कहकर आलिंगन करेंगी। मानो वे कभी दूसरी जाति में गए ही नहीं थे, इस वृत्ति और दयाशीलता से उनको—अपनी जाति में स्वीकार करें। अगर गोमांतक ने यह किया तो यह समस्या जल्द ही हल हो जाएगी और कुछ-न-कुछ इष्ट कार्य करने का श्रेय हमारी पीढ़ी को मिलेगा।

ऊपर निर्देशित कुछ कार्य संपन्न होने के लिए हम गोमांतक को भूल नहीं सकते और गोमांतक भी हमें न भूले, क्योंकि वास्तव में हम और गोमांतक—दोनों भारतीय ही हैं, भिन्न नहीं हैं। आसिंधु सिंध तक की यह अखंड और समग्र भारतभूमि प्रत्येक की पुण्य भूमि है; हममें से प्रत्येक की पितृभूमि है।

□

कै. भाऊराव चिपळूणकर (ससुर)

श्रीयुत् रामचंद्र त्र्यंबक उपनाम भाऊराव चिपळूणकरजी पिछले महीने में श्रीरामजी को प्यारे हो गए। यह दुखद समाचार पाठकों तक पहुँच ही गया है। श्री भाऊराव चिपळूणकरजी का घराना जव्हार रियासत में स्थायी हुआ था। उस घराने की तीन पीढ़ियाँ इस रियासत के मुख्य अधिकार पदों का उपभोग करते हुए रियासत की दृढ़निष्ठा से सेवा कर रही थीं। स्वयं भाऊराव चिपळूणकर तो बचपन से उस रियासत की सेवा में बढ़ते-बढ़ते मुख्य प्रशासक तक पहुँच गए थे। रियासत के राजा कै. बालमहाराज भाऊसाहब से अत्यंत प्रेम करते थे। श्री भाऊसाहब के दामाद श्री विनायक राव सावरकर जब श्यामजी कृष्ण वर्मा की शिवाजी फेलोशिप प्राप्त करके सन् १९०९ में लंदन जाने के लिए तैयार हुए, तब वहाँ की शिक्षा की उनकी सहायता श्री भाऊसाहब चिपळूणकरजी ने की। अपने दामाद को विलायत की शिक्षा में सहायता करने का अपराध कोई भी ससुर न करे, अगर ऐसा किया तो वह राजद्रोह होगा—इस तरह का कोई ऑर्डिनेंस भी उस समय तक नहीं निकला था; परंतु युवक स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी के लंदन के क्रांतिकारी आंदोलन से अंग्रेज सरकार बहुत चिढ़ गई थी। अत: सावरकरजी का नाम लेते ही सरकार का क्रोध बहुत चढ़ जाता था। श्री विनायक राव सावरकरजी पर सीधा आघात करना जब तक संभव नहीं था, तब तक अप्रत्यक्ष रूप से उन्हें यातनाएँ देकर उनका उत्साह तथा धैर्य नष्ट करने के लिए सरकार अपने प्रयत्नों की पराकाष्ठा करने लगी। उनके ज्येष्ठ बंधु बाबाराव सावरकरजी को आजन्म कारावास की सजा दी गई। उनके कनिष्ठ बंधु को कारावास में अटका दिया गया और उनके रिश्तेदारों के पीछे भी सरकार हाथ धोकर पड़ गई। उनके ससुर श्री भाऊसाहब चिपळूणकरजी को जव्हार रियासत के प्रशासक पद से हटा दिया गया, उनकी तीन पीढ़ियों की संचित सहस्रों रुपयों की संपत्ति को जब्त कर लिया गया। उनको यह भी दंड सुनाया गया कि जिस रियासत के राज्य में उनकी तीन-तीन पीढ़ियों ने अधिकार प्राप्त किया था,

उस रियासत को छोड़कर तीन घंटों के अंदर सीमा पार चले जाएँ। श्री भाऊराव को ब्रिटिशों के द्वारा दिए गए दंड का मनस्वी दुःख जव्हार की रियासत के राजा को हुआ, क्योंकि भाऊराव उनके अत्यंत विश्वासी प्रशासक थे; परंतु रियासत को बचाना उनका पहला कार्य था, ब्रिटिशों के विरुद्ध बोलने की सामर्थ्य किसी भी रियासत के राजा में न रही थी। रियासत को बचाने के लिए उस धैर्यशील प्रशासक ने सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर रातोरात रियासत छोड़ दी और सीमा के बाहर हो गए।

भाऊराव की संपत्ति जब्त करके उनको रियासत छोड़ने का दंड क्यों दिया गया? उनका क्या अपराध था? उनका अपराध यह था कि शिक्षा प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपने दामाद स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी की सहायता की। दामाद के आंदोलन से उनका किंचित् मात्र भी संबंध नहीं था। क्रांतिकारी आंदोलन के सूत्रधार दामाद थे, सहज स्वाभाविक ममता से उनकी शिक्षा के लिए दी गई सहायता के लिए ससुर को इतना अमानुषिक दंड बिना कारण ही दिया गया था। सरकार भी आगे चलकर श्री भाऊराव चिपळूणकरजी का दूसरा कोई अपराध कभी सिद्ध नहीं कर सकी। अपने दामाद को शिक्षा के लिए सहायता देने के पीछे चिपळूणकरजी की महत्त्वाकांक्षा यह थी कि दामाद लंदन से बैरिस्टर होकर आ जाएँ और जव्हार रियासत में ही ऊँचे-से-ऊँचे स्थान पर अधिकारी बनें; परंतु दामाद की महत्त्वाकांक्षा अलग ही थी, वह अद्भुत महत्त्वाकांक्षा थी। उसका दायित्व श्री भाऊराव पर क्यों लाद दिया? इंग्लैंड में एक ढोंगी पारसी ने और एक अंग्रेजी पुलिस अधिकारी ने उस युवा क्रांतिवीर को जव्हार रियासत के उनके ससुर का समाचार बताया और छद्म में कहा, 'अभी तो अपने को संकट में डालने का यह मार्ग छोड़िए! अभी आपको आशा है। देखिए, आपके भाइयों की क्या स्थिति हुई है? बेचारे आपके सुसर! एक राजा का प्रशासक एक रात में भिखारी हो गया। वह रियासत बाल-बाल बच गई, नहीं तो…'

उस अधिकारी को बीच में रोककर क्रांतिवीर ने उत्तर दिया, 'हमारी तो हिंदुस्थान नामक मुख्य रियासत ही डूब गई है, उसी को बचाने के लिए ही हम लड़ रहे हैं। हिंदुस्थान की रियासत बच गई तो ये रियासतें भी बच जाएँगी। वही डूब गई तो ये डूबी हुई ही हैं। हमें इस बात से अब नया धक्का क्या लगनेवाला है?'

इस तरह इन दंडों के कारण सरकार की अपेक्षा के अनुसार स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी किंचित् भी विचलित नहीं हुए और लंदन में उन्होंने अभिनव भारत का, देश की स्वतंत्रता का आंदोलन अदम्य उत्साह से जारी रखा। भारत में श्री भाऊराव चिपळूणकरजी भी अपने दंड को अपने हिस्से आया हुआ, अपने स्वदेश

के बारे में होनेवाला कर्तव्य समझकर धैर्य और गर्व से सहते रहे।

कै. भाऊराव का बदन गठा हुआ, सुश्लिष्ट था, पूरा ऊँचा और दोहरे गठन का था। वे गौर वर्ण और सुंदर तथा खूबसूरत पुरुष थे। उनका रहन-सहन बड़ा ही डौलदार और शानदार था। उनके चाणाक्ष नयन, बोलने का, बात करने का प्रभावशाली ढंग देखते ही ऐसा लगता था कि पेशवाई के समय का कोई असल चित्तपावन (एक उपजाति) ब्राह्मण सरदार को ही हम देख रहे हैं और क्षण भर उनकी तरफ देखते ही रह जाते थे। उन्होंने सैकड़ों विद्यार्थियों की सहायता की। वे स्वयं घुड़सवारी करने में, बंदूक की निशानेबाजी में, शिकार करने में, कसरत करने में, मल्लयुद्ध में अत्यंत निष्णात थे। उन्होंने सदैव मल्लों को प्रोत्साहन दिया और समय-समय पर वे मल्लों-कुश्तीबाजों को पारितोषिक दिया करते थे। संगीत में उनकी विशेष रुचि थी और देवभक्त भी वैसे ही थे। उनकी हवेली में इस तरह का दृश्य हमेशा दिखाई देता था कि एक तरफ कोई बैरागी या कर्मठ साधु देवतार्चन कर रहा है, बहुत बड़ा पार्थिव शिवलिंग बनाकर टोकरियाँ भर-भरकर फूलों की पूजा बाँधकर ध्यान लगाए बैठा है, तो हवेली की दूसरी ओर बँगले के जैसे हिस्से में गवैये ठहरे हुए हैं, उनमें से कोई सितार के सुर लगा रहा है, तो कोई तबला बजा रहा है। हवेली के ऊपर की बैठक पर विद्वान् पंडित, वैदिक, प्रसिद्ध नेतागण या उच्चपदस्थ अधिकारी आदि लोगों से परिवेष्टित श्रीमंत भाऊराव चिपळूणकर विनोद प्रचुर संभाषण में व्यस्त रहते थे। दरवाजे पर घोड़ों की, घुड़सवारों की और सिपाहियों की भीड़ लगी रहती थी।

इस तरह के ऐश्वर्य का त्याग करने की बारी श्रीमान् चिपळूणकरजी पर अकस्मात् आ गई। उनका यह त्याग 'राष्ट्रीय त्याग' में गिनना होगा। उन्होंने यह सब अपने राष्ट्र के लिए किया। उस रियासत के त्याग के बाद पुलिस का पीछा और पुलिस द्वारा सताए जाने के कष्ट भी श्री भाऊराव ने सहन किए, फिर अपने राष्ट्रीय कर्तव्य से मुँह न मोड़कर मन में कोई भी विश्वासघाती दुर्बलता उन्होंने नहीं आने दी। इस तरह के देशभक्त के निधन के बाद जनता का कर्तव्य है कि उनकी स्मृति को कृतज्ञ अश्रुबिंदुओं से श्रद्धांजलि समर्पित करे। हुतात्मा श्रद्धानंद भी वही कर्तव्य आज पूरा कर रहे हैं और बै. सावरकरजी के ससुर श्रीमंत भाऊराव चिपळूणकरजी को, उनकी मृत्यु के कारण शोकमग्न होकर आँखों में आँसू लिये उनकी स्मृति के चरणों पर प्रकट रूप से समर्पित कर रहे हैं।

□

महाराष्ट्रीय तेजस्विता की सुघड़ मूर्ति

भारतीय कीर्ति के महाराष्ट्रीय नेता लक्ष्मण बलवंत भोपटकरजी की सत्तरवीं वर्षगाँठ जन्म के निमित्त जो उनका सम्मान-समारोह होनेवाला था, वह राज्य शासन द्वारा उनको अकस्मात् स्थानबद्ध करने के कारण नहीं हो सका। तथापि उस समय स्थगित उक्त योजना में थोड़ा सा परिवर्तन करके वह समारोह आगामी ७ जून को पुणे में संपन्न होनेवाला है। यह समाचार प्राप्त होते ही श्री अण्णाराव भोपटकरजी का मन:पूर्वक अभिनंदन का अपना पत्र मैंने अभी यानी दोपहर २ सितंबर, १९५२ को डाकखाने में डाल दिया। शाम को डाक से 'केसरी' के संपादक महाशयजी का पत्र मिला कि हम इस समारोह के निमित्त श्री अण्णाराव भोपटकरजी पर कुछ लेख 'केसरी' के आगामी अंक में छापनेवाले हैं। मेरी इच्छा है कि उनमें आप भी अपना लेख भेज दें।

जीवन के विविध क्षेत्रों में इतना नेतृत्व करनेवाले धर्मवीर अण्णाराव भोपटकरजी की महत्ता के अनुरूप और मेरे मन को पसंद होनेवाला लेख केवल एक-दो दिन में अपनी कार्यव्याप्ति के तनाव में लिखना मुझ जैसे व्यक्ति की लेखनी से संभव नहीं था; परंतु आगामी सार्वजनिक सत्कार में जो माला श्री अण्णाराव भोपटकरजी को अर्पित की जाएगी, उसमें फूल नहीं तो फूल की पँखुड़ी मेरी ओर से गूँथी जाए, इस उत्कट इच्छा से ये चार कृतज्ञ पंक्तियाँ लिखकर भेज रहा हूँ।

धर्मवीर भोपटकर

यह बड़े सौभाग्य की बात है कि श्री अण्णाराव भोपटकरजी का सम्मान करने के लिए विस्तारपूर्वक लिखने की उतनी आवश्यकता ही नहीं है। राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक आदि राष्ट्रीय जीवन के विविध क्षेत्रों में गत तीस-चालीस वर्षों में श्री अण्णारावजी ने इतनी महत्त्वपूर्ण लोकसेवा की है कि उनके अनेक प्रमुख कार्यों में से पाँच-छह कार्यों का केवल नाम-निर्देश किया जाए, तो

भी उनकी सार्वजनिक और वैयक्तिक महानता की यथार्थ जानकारी युवा पीढ़ी को हुए बिना नहीं रहेगी।

लोकमान्य तिलकजी की पीढ़ी से ही अण्णारावजी राजनीतिक मोरचे पर जूझने लगे। लोकमान्य द्वारा स्थापित स्वराज्य पक्ष का प्रचार अण्णारावजी ने निडरता से किया। लोकमान्य के बाद लाला लाजपतरायजी के जैसे ही चुनाव जीतकर मुंबई विधिमंडल में उन्होंने स्वराज्य पक्ष का अधिकृत नेतृत्व किया। निर्बंध भंग के आंदोलन में उन्होंने सश्रम बंदीवास की सजा भुगती। वे कुछ काल तक महाराष्ट्र प्रांतिक कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। हिंदू महासभा ने जब निजाम के विरुद्ध नि:शस्त्र संग्राम घोषित किया, तब हिंदुत्वनिष्ठ पथकों का नेतृत्व और संघर्ष अण्णारावजी ने ही किया। निजाम के बंदीगृह में उन्होंने अमानुषिक यातनाएँ सहीं। संग्राम यशस्वी होने तक न डगमगाते हुए उन्होंने डटकर सामना किया। हिंदू महासभा के अध्यक्ष पद का भी सम्मान उन्हें प्राप्त हुआ था।

देशभक्त भोपटकरजी के राजनीतिक जीवन में उन्होंने महाराष्ट्र की ऐतिहासिक परंपरा का सद्भिमान कभी नहीं छोड़ा। देशभक्त भोपटकरजी महाराष्ट्रीय तेजस्विता की सुघड़ मूर्ति हैं। इसीलिए हिंदू महासभा ने निजाम से किए हुए नि:शस्त्र प्रतिकार के संग्राम में उन्हें 'धर्मवीर' की उपाधि प्रदान की। यह उपाधि यथार्थता से उन्हें शोभा देती है।

महाराष्ट्र के मार्गप्रदर्शक

आर्थिक, शैक्षिक और विधायी क्षेत्र में भी श्री अण्णारावजी ने बहुत नाम कमाया है। महाराष्ट्र मंडल, निर्बंध महाशाला (लॉ कॉलेज) पुणे की इन संस्थाओं की प्रस्थापना में और उन संस्थाओं को चिरस्थायी रूप देने में, उन संस्थाओं की यशस्विता में श्री भोपटकरजी का रचनात्मक नेतृत्व और अथक परिश्रम कारणीभूत हुए हैं। श्री अण्णारावजी 'केसरी' संस्था के विश्वस्त हैं। अनेक महाबैंकों और बीमामंडल के वे अध्यक्ष अथवा निर्देशक थे और आज भी हैं। विधिज्ञता के क्षेत्र में प्रथम श्रेणी के विधिज्ञ के नाते उनका नाम पूरे भारत में विख्यात है। अब उन्होंने आयु के सत्तर साल पार किए हैं। फिर भी उनकी बुद्धि प्रज्ञानि (बुद्धि, प्रज्ञा और विवेक) मर्मज्ञ है। पुरानी या नई स्थापित होनेवाली महाराष्ट्र की सैकड़ों संस्थाओं अथवा आंदोलनों को उनकी कठिनाइयों में ऐसा सोचे बिना नहीं रहा जाता कि 'श्री अण्णाराव की सलाह या अभिप्राय पहले पूछ लेंगे।' उनके राजनीतिक और व्यावसायिक मार्गप्रदर्शन पर लोगों की विशेष निष्ठा है। आज हमारे महाराष्ट्रीय परिवार के अण्णाराव विद्यमान और अत्यंत विश्वासजनक दादाजी हैं।

भगवान् उन्हें हमारे कल्याण के लिए उदंड आयुरारोग्य दे दे

इस समारोह के लिए अध्यक्ष-स्थान पर डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का चयन अत्यंत स्वागत योग्य है। श्री भोपटकरजी जैसे विधि विशेषज्ञ या विधिपंडित के सत्कारनिधि का विनियोग पुणे विश्वविद्यालय में उनके नाम की विधि शिष्यवृत्ति देने के लिए किया जानेवाला है। यह योजना भी अत्यंत सराहनीय है, क्योंकि इससे अप्रत्यक्ष रूप से पुणे विश्वविद्यालय को भी गौरवान्वित किया गया है।

'कानून' शब्द निकालिए

तथापि इस शिष्यवृत्ति का मूल अंग्रेजी नाम मराठी में अनुवादित होकर समाचार-पत्रों में 'कानून शिष्यवृत्ति' (कायदा शिष्यवृत्ति) छापा गया है, वह बिलकुल अच्छा नहीं है। 'कानून शिष्यवृत्ति' शब्द एक मिलावटी, कर्णकटु और भाषा दरिद्री शब्द है। समाज की नींव जिन नियमों पर आधारित होती है, उनके लिए 'कानून' नामक परिभाषा के शब्द के बिना आज हमारी मराठी में स्वकीय शब्द न हो—यह लज्जाजनक बात है। मुसलमानी राजशासन के पहले क्या कानून (कायदा) के बिना हमारे समाज का काम नहीं चलता था? (कायदा) कानून शब्द हमारी भाषा को परकीय मुसलमानी सत्ता ने लगाया हुआ कलंक है। अत: इस शब्द का उपयोग न किया जाए। 'कानून' शब्द भाषा से निकालिए।

हमारी यह प्रार्थना है कि उस शिष्यवृत्ति को 'निर्बंध शिष्यवृत्ति' या 'विधिशास्त्र-शिष्यवृत्ति' नाम दिया जाए। लोग उस नाम से परिचित हों—तब तक कोष्ठक ( ) में मूल अंग्रेजी नाम लिखा जाए। डॉ. रघुवीरजी ने कानून को 'विधि' प्रतिशब्द ही दिया है। तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशीजी ने घटना के संस्कृत अनुवाद में 'विधि' शब्द ही प्रयुक्त किया है। उनको 'निर्बंध' शब्द भी मान्य हैं। इन दो शब्दों में से कोई एक शब्द उपयोग में लाया जाए।

□

लेखनियाँ तोड़िए और बंदूकें लीजिए

(सन् १९३८ में मुंबई में हुए महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिए गए भाषण का महत्त्वपूर्ण अंश)

आपने मुझे अध्यक्ष चुनकर मुझ पर जो विश्वास दिखाया है, उसको मैं व्यर्थ नहीं होने दूँगा। साहित्य विषयक क्या सुधार करने चाहिए, उसका जो कार्यक्रम मुझे राष्ट्र के हित के लिए श्रेयस्कर लगता है, वह प्रिय हो अथवा अप्रिय, उसकी चिंता न करते हुए मैं दिग्दर्शित करनेवाला हूँ। हमेशा के शिष्टाचार के अनुसार स्वागताध्यक्ष अध्यक्ष का स्वागत करता है, पर यहाँ स्वागताध्यक्ष के पद पर आपने न्यायमूर्ति जयकरजी के जैसे महान् व्यक्ति का चुनाव किया है। अत: प्रारंभ में ही शिष्टाचार को अलग रखकर उनका ही स्वागत किए बिना मैं कैसे रह सकता हूँ? वे आज ब्रिटिश शासनकाल में भारतीय संघराज्य के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति हैं, परंतु अगर भारत स्वतंत्र होता तो यूरोप के किसी प्रबल राष्ट्र में वे भारत के राजदूत के नाते जागतिक राजनीति में अपना स्थान निश्चित ही बना लेते। वैसे ही ऐतिहासिक क्षेत्र में महत्त्व का स्थान सुशोभित करनेवाले वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध रावसाहब सरदेसाईजी को प्रथमत: कृतज्ञ प्रणिपात करने के बाद ही मैं अध्यक्ष पद ग्रहण कर सकता हूँ। बहुतांश लोगों की महानता ऐसे अध्यक्ष पद पर विराजमान होने के बाद ही अधिक शोभान्वित और उच्च दिखाई देने लगती है। माननीय सरदेसाईजी ने मराठों का इतिहास लिखकर ऐसा ही महान् कार्य किया है। मेरे द्वारा लिखा हुआ 'हिंदू पदपादशाही' नामक इतिहास ग्रंथ पढ़कर जब वे रत्नागिरी में मेरा अभिनंदन करने के लिए आए थे, तब उन्होंने कहा था कि मराठों के बारे में होनेवाले अपसमाज दूर करने के लिए महाराष्ट्र का समग्र इतिहास लिखना आवश्यक है। मुझे अब भी ऐसा लगता है कि वे ही यह कार्य पूर्ण कर सकते हैं। इसके लिए उनको दीर्घ आयुरारोग्य का लाभ हो, यही ईश्वर के चरणों में हम सबकी प्रार्थना है!

यह भाषण मैं लिखूँ, इसे छापा जाए और उसको कंठस्थ करके सभा के

सामने दोहराऊँ, यह कल्पना ही मुझे डरावनी लगती है; क्योंकि छपा हुआ भाषण किसी कुशल अभिनेता के समान कंठस्थ करके आपको कहकर दिखाने की कला मुझमें नहीं है। छपा हुआ भाषण आपके हाथों में होगा और बोलते समय मेरी तरफ से कुछ वाक्य उलटे-सीधे हो जाएँगे, कुछ छोड़ दिए जाएँगे, ये सब होने के बाद आपके मुख पर पहले हास्य और बाद में उपहास और अंत में तिरस्कार भावना दिखाई देगी तथा तिरस्कार की उन लहरियों में मैं डूबता जा रहा हूँ, ऐसा मुझे आभास होगा। तब अप्पा पेंडसेजी ने मुझसे कहा, 'डरिए मत, आपके लिए आवश्यक नहीं है कि आपको छपा हुआ भाषण ही करना चाहिए। ऐसा अनेक बार होता है। यह भी एक शिष्टाचार ही है।' उनकी यह सूचना मेरे लिए सुविधाजनक थी, क्योंकि क्रांतिकारी आंदोलन में हिस्सा लेते समय गुप्तचरों को धोखा देने के लिए बोला जाता था अलग और छापा जाता था अलग। मैं इस तरह की दोगली कला में निपुण हो गया था; परंतु इस सत्य-अहिंसा की समृद्धि के काल में इस तरह का दोगलापन अच्छा नहीं है। अत: हमने ऐसा तय किया है कि लिखे हुए के अनुसार पढ़ा जाएगा। वह अध्यक्षीय निबंध कहा जाएगा और यह निबंध उसी तरह का है।'

परंतु निबंध लिखने से पूर्व उसमें क्या होना चाहिए और क्या नहीं होना चाहिए, इसके बारे में अनेक मित्रों की इष्ट और अनिष्ट सूचनाएँ मुझे प्राप्त हुईं। कुछ मित्रों ने सुझाया कि उस निबंध में मैं भाषाशुद्धि का झंझट न उठाऊँ। यह मैं कैसे मान्य कर सकता हूँ? केवल बौद्धिक मनोरंजन मुझे भी अच्छा लगता है। चाँदनी रात में पालथी मारकर केवल तात्त्विक और बौद्धिक निष्फल चर्चा में डूब जाने से ही हम काया दुर्बल हो गए हैं, अपने भौतिक राज्य गँवा बैठे हैं। इस बात का शूल मेरे हृदय को चुभता है, उसको हम क्या करेंगे? जिस काल में अलंकार शास्त्र पर जगन्नाथ पंडित जैसे कवि उत्कृष्ट ग्रंथ लिख रहे थे, उसी काल में हमारी राष्ट्रमाता के बदन पर अलंकार नोचकर अकबर, औरंगजेब उसको अपनी दासी बना रहे थे। अपने अलंकार शास्त्र और वेदांत के ग्रंथों पर मुझे भी गर्व है, पर जो अपथ्य रुचित होता है, वही व्यसन होता है और जो अप्रासंगिक है, वही अपथ्य होता है और यह कृतिदौर्बल्य आज भी हमारे रक्तमांस में समा गया है, यह देखकर मुझे अत्यंत विषाद होता है। न्यायमूर्ति रानडेजी से जिन सुधारों की चर्चाएँ चल रही हैं, जो सुधार मन में आते ही कर सकते हैं, उनको हम आज भी नहीं करते। कुछ अपवादों को छोड़कर हमारे लोगों में बची हुई यह कृतिदुर्बलता और बौद्धिक चर्वितचरण तत्त्व का व्यसन नष्ट हुए बिना आज के राष्ट्रीय पुनरुत्थानार्थ आवश्यक कार्यों की उन्नति नहीं होगी। कटुतम अनुभवों से मुझे यह बात कहनी पड़ती है। करने से ही सबकुछ होता है, पहले करना ही चाहिए। (केलयाने होत आहे रे, आधी

केलेच पाहिजे) इस तरह की समर्थ गर्जना करके मुख्यत: कुछ क्रियात्मक सुधारों की तरफ मैं आपका ध्यान आकर्षित करनेवाला हूँ।

इस दृष्टि से सर्वप्रथम मुझे क्रियाओं की याद आती है। अपनी प्राकृत भाषाओं में देना, लेना, होना, करना आदि कुछ चुनी हुई क्रियाएँ स्वतंत्र रूप से उपयोग में लाई गई हैं और बाकी सैकड़ों क्रियाओं का कार्य उनके पीछे भिन्न-भिन्न नाम लगाकर या अन्य शब्द प्रयुक्त करके काम चलाना पड़ता है। इससे एक शब्द के स्थान पर दो या तीन शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। जैसे—वर्णन करना, परीक्षा लेना, उत्तर देना। इसके स्थान पर अब हमें वर्णना, परिक्षना, उत्तरना आदि क्रियाओं को उपयोग में लाने के लिए कठिनाई नहीं होनी चाहिए। ग्रामीण मराठी में 'शेली पाणावही' (खेती पनीयायी), मका कणसाळला (मकई भुहाई) जैसे शब्द प्रयोग आज भी रूढ़ हैं। उसका अधिक विवेचन मैंने सन् १९३५-३६ में लिखे हुए लेख में किया है।

इन क्रियाओं के जैसे ही वाक्यों की रचना कर्ता, कर्म, क्रियापद इस क्रम के निश्चित साँचे के अनुसार न रखते हुए, पुरानी मराठी के जैसे वाक्य को और अर्थ को बल प्राप्त हो, इसलिए क्रिया बीच में डालकर कुछ शब्द अंत में रखे जाएँ। जैसे 'अब हम तुम मिलेंगे रणांगण में ही।' अथवा कहीं-कहीं क्रिया छोड़ भी दी जा सकती है, जैसे उस युद्ध की उपमा केवल कुरुक्षेत्र की ही। बँगला भाषा में आज भी ऐसी अनावश्यक क्रियाएँ छोड़ दी जाती हैं। संस्कृत में तो अर्थ के अनुसार क्रिया, कर्ता, कर्म के स्थान वाक्य रचना में परिवर्तित करनेवाला संप्रदाय ही है। बोलते समय भी हम कहते हैं, 'कल था दिल्ली में', 'लाहौर जाऊँगा आज'। अगर दिन पर बल देना हो तो वाक्य रचना बदलेगी जैसे 'दिल्ली में था कल', 'लाहौर को जाऊँगा आज।' वैसे ही गद्य लेखन भी लिखा जाए। यह उलट-पलट यों ही भाषा में कुछ नया लाने के लिए न किया जाए।

अगर ऊपर के सुधार नहीं किए जा सके तो भी चलेगा; परंतु देवनागरी लिपि को राष्ट्रीय लिपि का उच्च स्थान देने के लिए उसे अंग्रेजी से भी मुद्रणसुलभ, शास्त्रशब्द और शिक्षासुलभ बनाने के लिए चार सुधार शीघ्र करने चाहिए—१. 'अ' की बारह खड़ी (यानी अ, आ, अि, अी, अु, अू, अे, अै, ओ औ, अं, अ:), २. सटे हुए जोड़ाक्षर, ३. क, फ, र, ल अक्षरों में खड़ी पाई लगाना और, ४. चोटीवाले (शेंडीवाले) ट, ठ, ड, ढ, द अक्षर आधे लिखते समय उनके नीचे पद्चिह्न (्) जैसे ट्, ठ्, ड् लगाए जाएँ। इसके कारण मुद्रण करना आसान हो जाएगा। आजकल महाराष्ट्र में और हिंदी प्रदेशों में भी उनमें से अनेक सुधार किए जा रहे हैं। आपने भी अगर मन में ठान लिया तो यह प्रश्न एक पाई भी खर्च किए बिना अथवा एक

भी दिन का बंदीवास भोगे बिना सहज हल हो सकता है। शब्दों को उपयोग में लाइए, फिर तो लिपि में सहजता आए बिना न रहेगी।

वही बात भाषाशुद्धि की है। यहाँ उसकी काफी चर्चा हुई है। उसके मुख्य सूत्र दो हैं—१. अपनी भाषा में जिस अर्थ के शब्द थे, हैं अथवा नवनिर्माण सुसाध्य हैं, उन शब्दों के लिए परकीय भाषा के शब्द उपयोग में न लाए जाएँ। भले ही वे पुराने हों या नए। अपनी भाषा के लद्अर्थक शब्दों को काटकर परकीय शब्दों को अभ्यस्त करने से अपनी भाषा की शब्द-संपत्ति में वृद्धि नहीं होती। २. जो वस्तु, जो बातें अथवा कल्पनाएँ मूलत: अपनी नहीं हैं, भारतीय नहीं हैं, उनके अर्थ के शब्द नए बनाना ठीक नहीं होगा। ऐसे समय परकीय शब्द प्रयुक्त करना ही उचित होगा जैसे बूट, चेरी फल (चेरी का क्या अनुवाद करेंगे? उसे 'चेरी' ही रखा जाए)। जो परकीय संकल्पनाएँ हैं, उनके लिए होनेवाले शब्द वैसे-के-वैसे ही रखे जाएँ।

भाषाशुद्धि के ये दो सूत्र अच्छी तरह से पढ़कर अगर ध्यान में रखे जाएँ तो उसपर किए जानेवाले आक्षेप नब्बे प्रतिशत आप-ही-आप कम हो जाएँगे। इसी तत्त्व का अनुसरण करके मैंने अनेक मराठी शब्दों का निर्माण किया है। प्रा. माधवराव पटवर्धन, आठवले, भिंडे, देवधर आदि भाषाशुद्धि के प्रचारक तो हम को भी मात करते हैं। अब सुविख्यात और अक्षरश: जबरदस्त आचार्य अत्रेजी जैसे साहित्यिक भाषाशुद्धि के पक्ष में आ गए हैं। इसलिए यह पलड़ा अब भारी हुए बिना न रहेगा। श्रीमंत सयाजीराव महाराजा ने 'शासन कल्पतरु' नामक विशाल कोश प्रसिद्ध करके इस कार्य को अमूल्य सहायता दी है। आज हम उन बड़ौदा नरेश श्रीमंत सयाजीराव का मन:पूर्वक अभिनंदन करते हैं और अन्य मराठी रियासतों के राजा-महाराजाओं को भी विनय करते हैं। वे भी शक्यत: स्वकीय शब्दों को ही अपने राज्य में रूढ़ करें और परकीय शब्दों के आक्रमण से मराठी भाषा की रक्षा करें। हमारे साहित्यिक भी ध्यान में रखें कि रसायन, वनस्पति, विद्युत् प्रभृति विज्ञान संपूर्णत: मातृभाषा में ही पढ़ाने का समय अब नजदीक आ गया है। उस दृष्टि से भारत की सभी प्राकृत भाषाओं को उपयुक्त हो ऐसी एक संस्कृतनिष्ठ परिभाषा निश्चित करने का कार्य करना चाहिए। अगर राजशक्ति की सहायता होती तो यह कार्य एक वर्ष के अंदर ही हो जाता; पर उसके लिए काम नहीं रुकना चाहिए। केवल प्रस्ताव पास करके चुपचाप न बैठते हुए इस साहित्य सम्मेलन और मराठी साहित्य परिषद् को जोश और उत्साह से कार्य प्रारंभ करना चाहिए। यह कार्य उन्हीं से पूरा होगा।

साहित्यिकों के लिए करणीय दूसरी बात यह है कि अच्छे-अच्छे मराठी

ग्रंथों के अंग्रेजी भाषा में तथा अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद का कार्य करना चाहिए। हमारे पुराने पंडितों को जैसे संस्कृत या पाली भाषा के सिवा दूसरी भाषा का ज्ञान नहीं था, वैसे ही आज यूरोप के अनेक लोगों को उनकी भाषा के बिना दूसरी किसी भी भाषा का ज्ञान नहीं है। दुनिया के ज्ञान में बहुमूल्य वृद्धि करनेवाले श्री केतकरजी द्वारा लिखित 'ज्ञानकोश' जैसे ग्रंथ आज भी मराठी में लिखे जा रहे हैं। बहुत पुराने काल में संस्कृत तथा पाली भाषा जागतिक भाषाओं के स्तर पर पहुँच गई थीं, परंतु मराठी की स्थिति वैसी नहीं है। इसलिए हमारी मराठी के अच्छे-अच्छे ग्रंथ, जैसे—'ज्ञानकोश'—अंग्रेजी में अनूदित होने चाहिए। उसके लिए एक स्वतंत्र मंडल की स्थापना होनी चाहिए, इतने से यह कार्य पूरा नहीं होगा। उसके लिए और मराठी साहित्य के संवर्धन के लिए हमें एक महाराष्ट्र विद्यापीठ ही स्थापित करनी चाहिए। न्यायमूर्ति रानडेजी से उसपर विचार चल रहा है। अब हम उसका निश्चय करके कार्य आरंभ करें। उसके लिए 'पुणे' सुयोग्य स्थान है। वह महाराष्ट्र विद्यापीठ केवल सत्य के प्रयोग करनेवाला विद्यापीठ न हो, बल्कि अमेरिका के विश्वविद्यालयों के जैसे प्रगत विश्वविद्यालय हों। उसके लिए सभाओं का आयोजन करना चाहिए, प्रचंड प्रचार करना चाहिए और एक वर्ष तक सतत आंदोलन करना चाहिए कि 'पुणे' में महाराष्ट्र विश्वविद्यालय की स्थापना हो। फिर देखिए, महाराष्ट्र विद्यापीठ दो वर्षों के अंदर स्थापित होगा या नहीं? यह कार्य सम्मेलन की सीमा में है। काम न करने की दुर्बलता छोड़कर कुछ रचनात्मक और प्रत्यक्ष कार्य करने की इच्छा होनी चाहिए।

अब तक हमने इस बात पर चर्चा की कि सभी महाराष्ट्रीय लोगों को साहित्य परिषद् या साहित्य सम्मेलन में कौन-कौन से कार्य करने चाहिए। इसके बाद जो मंत्र मैं बतानेवाला हूँ, वे सब मेरे अपने वैयक्तिक मत हैं। इसके खिलाफ अगर आपने मत-प्रदर्शन किया अथवा प्रस्ताव पास करके आपने यथायोग्य सहयोग किया तो उसमें संकोच की कोई बात नहीं है, आप निस्संकोच कर सकते हैं।

हमारा मराठी साहित्य भारतीय साहित्य का उपांग होने के कारण भारतीय साहित्य-जीवन का अच्छा या बुरा परिणाम महाराष्ट्रीय साहित्य पर हुए बिना नहीं रहेगा। हिंदू जगत् का यह निश्चय नहीं हुआ है कि भारत की राष्ट्रभाषा हिंदी ही हो। कुछ बँगला साहित्यिकों को लगता है कि बँगला ही देश की राष्ट्रभाषा हो। वैसे ही मराठी साहित्यिकों को भी ऐसा लगता होगा कि अटक तक हिंदू ध्वज फहरानेवाले हम मराठों की मराठी भाषा ही भारत की राष्ट्रभाषा क्यों न हो? परंतु यह विचार उचित नहीं है। मेरा मत है कि संस्कृतनिष्ठ हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। उसका मुख्य कारण यह है कि वह भाषा अखिल भारत में, बहुजन समाज

में अन्य किसी भी भाषा की अपेक्षा अत्यधिक प्रमाण में बोली, समझी तथा लिखी जाती है और अन्य किसी भी प्रकार से राष्ट्रीय विचारों के विकास में सहायक है। ये दोनों लक्षण अन्य किसी भी प्रांतीय भाषा की अपेक्षा हिंदी के लिए अधिक लागू हो सकते हैं। आज आठ करोड़ लोग हिंदी बोलते हैं। वैसे देखा जाए तो हिंदी पहले से ही हिंदुस्थान की राष्ट्र बोली हो चुकी है। रामेश्वरम् से कश्मीर तक आज दो सहस्र वर्ष हुए, लाखों हिंदू यात्री, तीर्थयात्री, व्यापारी यहाँ से वहाँ तक आते-जाते हैं, यातायात करते आए हैं। वे इस हिंदी भाषा के बल पर, भरोसे पर ही कर सके। हिंदी में प्राचीन साहित्य विपुल प्रमाण में है, वह मराठी की सगी बहन ही है। इसलिए अगर राष्ट्रभाषा हिंदी हुई तो मराठी को आनंद ही होगा, ईर्ष्या नहीं। हिंदी की वृत्ति दूसरे पर प्रभुत्व स्थापित करने की नहीं है। महाराष्ट्र के हाथ का प्रेमाधार लेकर ही वह राष्ट्रभाषा पद पर चढ़ रही है।

एक बात ध्यान में रखनी होगी कि अगर हिंदी भाषा राष्ट्रभाषा नहीं हुई तो इस गलतफहमी में न रहना कि बंगाली या मराठी राष्ट्रभाषा हो जाएगी। राष्ट्रभाषा का स्थान बंगाली या मराठी को न मिलते हुए वह स्थान हिंदी की 'बबर्ची' प्रत उर्दू को मिल जाएगा और जैसे किसी श्रीयुत् दलवी का मेहरबान देल्लवी हो जाने पर कुल्हाड़ी का दस्ता अपने गोल (पेड) का नाश करता है, कहावत के अनुसार हो जाता है, वैसे ही उर्दू का होगा। उर्दू की संस्कृति पर, संस्कृति के अन्न-पानी पर पुष्ट होकर विकृत हो गई है। सच देखा जाए तो वह भाषा पाँच करोड़ मुसलमानों में से दो करोड़ मुसलमानों की भी भाषा नहीं है, पर आज मुसलमान इस प्रयत्न में लगे हुए हैं; जिन-जिन बातों से उनका समाज हिंदू समाज से अधिक अलग दिखाई देगा, वे सारी बातें वे आग्रहपूर्वक कर रहे हैं। अत: जहाँ पंजाबी, बंगाली या मराठा लोगों को छोड़ पाँच प्रतिशत भी मुसलमान नहीं हैं, ऐसे तमिलभाषी चेन्नई के विगत प्रधान नामदार खविचमुल्ला ने पिछले ही महीने में घोषित किया कि उर्दू ही राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। ऐसे समय सभी हिंदुओं को मिलकर निश्चय करना चाहिए कि हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा होगी। अगर ऐसा नहीं हुआ तो मराठी, बँगला, तमिल भाषा के झगड़े में 'न खुदा मिला न विसाले सनम' (तेल गेले, तूप गेले, हाती धुपाटणे आले) वाली कहावत सार्थक होकर उर्दू का सोटा हाथ में आएगा। ऐसी अवस्था में उर्दू मराठी पर हावी होगी। आज हमारे कांग्रेसी शासनकर्ता न हिंदी, न उर्दू बल्कि तीसरी ही एक 'हिंदुस्थानी' के सत्य का प्रयोग कर रहे हैं। पीछे के काल में एक लोक विलक्षण सत्य का प्रयोग सुझाया गया था कि अगर सीमा पर पठानों का ट्डिडी दल हिंदुस्थान पर आक्रमण करने के लिए आया तो उनका प्रतिकार करने के लिए हिंदवी स्त्रियों की एक नि:शस्त्र सेना ही भेज दी जाए।

स्त्रियों को देखकर बंदूकों का प्रयोग न करते हुए पठानों की पलटन शर्म से वापस लौट जाएगी। इस प्रयोग में वे पठान शर्म से वापस जाने के बदले उन स्त्रियों में से जितनी भी स्त्रियाँ वे ले जा सकते हैं, उन सभी को भगाकर ले जाएँगे, यही सत्य सिद्ध हुआ है। हिंदी यानी 'हिंदुस्थानी' के प्रयोग में उर्दू के शब्द प्रयुक्त करते-करते वह हिंदी ही उर्दू की दासी हो जाएगी। हमारे मत से इसका एक ही उपाय है, वह यह है कि अपनी प्राकृत भाषाओं की सुरक्षा और संवर्धन के लिए संस्कृतनिष्ठ हिंदी ही राष्ट्रभाषा के रूप में मान्य होनी चाहिए।

पिछले दो साल पंडित जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। उन्होंने हिंदू-मुसलिम एकता के लिए हम हिंदुओं को आज्ञा दी कि उर्दू को ही राष्ट्रभाषा बनाओ। अब श्री सुभाष बाबू उनसे सवाई अध्यक्ष हुए। उन्होंने पं. नेहरूजी को मात करने के लिए बताया कि अपनी लिपि छोड़कर रोमन लिपि को स्वीकार करो। इन दोनों के ठीक उलटे आयर्तंड के डि व्हेलेरा, जर्मनी के हिटलर, इटली के मुसोलिनी और तुर्कस्तान के कमाल पाशा ने—अपनी राष्ट्रभाषा, अपनी राष्ट्रलिपि कैसे प्रगत होगी—इसके लिए विशेष प्रयत्न किए। इसी से वे देश स्वतंत्र हैं और हिंदुस्थान पाकिस्तान और इंग्लिस्तान होने जा रहा है!

शास्त्रीय दृष्टिकोण से विचार करने पर यह स्पष्ट हुआ है कि देवनागरी लिपि ही शास्त्रशुद्ध और परिपूर्ण लिपि है। उसकी वह वर्णस्थान समीरिता अक्षरों की क्रम व्यवस्था देखिए। आद्यध्वनि 'अ' प्रथम। नंतर कंठ्य क, ख, ग, घ; उसके बाद तालव्य च, छ, ज, झ; उसके बाद दाँतों पर दबाव आता है। अत: दंतव्य त, थ, द, ध; आगे चलकर होठों पर होंठ टेकने पड़ते हैं। अत: औष्ठय प, फ, ब, भ। इसके ठीक उलटे अरेबिक लिपि देखिए। प्रथम स्वर मिदल उच्चारण का अलेफ, दूसरा औष्ठय 'बे' और तीसरा 'पे'। वही अंग्रेजी की गति है—पहला अक्षर 'अे', दूसरा 'बी' और तीसरा 'सी'। यहाँ ध्वनि के आघातानुवर्ती स्थानों का क्रम नहीं है।

नागरी लिपि की शास्त्रशुद्धता का दूसरा लक्षण है—अक्षर का जो नाम है, वही उसका उच्चारण होगा, जैसे अक्षर का नाम है 'क' तो उच्चारण भी 'क' ही होगा। पर अंग्रेजी में अक्षर है—'A' अे और उसका उच्चारण अ, आ, अै, ऑ। 'C' सी का उच्चारण कहीं 'क' तो कहीं 'स' से होता है।

शास्त्रशुद्ध लिपि का एक और लक्षण है एक अक्षर का एक ही रूप। इस दृष्टि से आज की नागरी में कुछ अपवाद हैं, दोष हैं। वे दोष लिपि में सुधार करके दूर करने चाहिए। अंग्रेजी में चार अक्षरों का शब्द लिखते समय दस अक्षर लगते हैं। जैसे 'कमीशन' चार ही अक्षर हैं, पर इसे रोमन लिपि में लिखते समय Commission दस अक्षर लिखे गए। कुछ अक्षर पुराने जमाने के 'राव बहादुर' की तरह कुरसियाँ

न छोड़नेवाले हैं। उनकी अपनी कोई ध्वनि नहीं होती। माननीय सुभाष बाबू की सूचना के अनुसार गीता का पाठ अगर रोमन लिपि में छाप दिया जाए, तो उसका पठन इस तरह से करना होगा—

क्ष्र्मक्र्शट्रे कुरुक्षेट्रे सामबेट युथुट्शवा:। कितना श्रुतिमंजुल है यह पाठ! इस सुधार की कितनी स्तुति की जाए? जितनी विक्षिप्त, उतनी ही धर्मभ्रष्ट।

श्री सुभाष बाबूजी ने नागरी लिपि छोड़कर रोमन लिपि को स्वीकार करने की बात कही, उसके पीछे कारण है हिंदू-मुसलिम एकता का आकर्षण। उनकी यह कल्पना है कि अगर हमने मुसलमानों को न भानेवाली नागरी लिपि छोड़कर रोमन लिपि को स्वीकार किया तो वे प्रसन्न होंगे; परंतु यह कल्पना गलत है, क्योंकि मुसलमानों का केवल नागरी लिपि से द्वेष नहीं है, वे निश्चित रूप से अरबी लिपि चाहते हैं, उनका संतोष रोमन लिपि से होनेवाला नहीं है। यह भी याद रखें कि देवनागरी लिपि को स्वीकार किए बिना हमें संतोष होनेवाला नहीं है।

मैं अब तात्विक चर्चा की तरफ मुड़ता हूँ। पहला प्रश्न है कि साहित्य का ध्येय क्या होना चाहिए? मेरा मत ऐसा है कि मानवी जीवन के ध्येय की व्याख्या इस तरह से हो सकती है कि जिससे मनुष्य जाति का अधिक-से-अधिक हित होगा, वही मनुष्य का ऐहिक कर्तव्य है। इस दृष्टि से मनुष्य जाति के अधिक-से-अधिक हित साध्य करने के लिए जो प्रयत्नशील है, वही साहित्य है। आनंद और मनोरंजन कुछ अंश तक मानव-हित के लिए हितकारी होते हैं। इस कारण उनका भी अंतर्भाव सुयोग्य प्रमाण में ऊपर के ध्येय में समाविष्ट होता है। घर में माँ प्राणांतक वेदना से व्याकुल होकर तड़प रही है और उसी समय कोई बहका हुआ कलावंत बँगले में तवायफ के रंग-में-रँग गया तो उसे भले ही 'कलावंत' कहें, पर वह कुलदीपक नहीं होगा, क्योंकि ऐसे समय कलाकार भी विकल हुए बिना नहीं रहेगा।

साहित्य की सुविधा के लिए मैं साहित्य के दो विभाग करता हूँ—वस्तुनिष्ठ साहित्य और रसनिष्ठ साहित्य। वस्तुनिष्ठ साहित्य में तत्त्वज्ञान, गणित, ज्योतिष, विद्युत्, इतिहास इत्यादि विज्ञान शाखाओं का समावेश होगा। उसमें सत्य यथावत ही कहना चाहिए, बताना चाहिए। उनमें रस शायद आ सकता है, पर कल्पित रंग नहीं भर सकते, वहाँ कल्पना के लिए कोई स्थान ही नहीं है, परंतु ललित वाङ्मय में कल्पना की मनचाही उड़ान भर सकते हैं।

पुराना सब सत्य और अच्छा है। अगर उसके खिलाफ लिखा तो पवित्रता का विडंबन हो जाता है—ऐसा कुछ लोग समझते हैं; पर मैं उनसे सहमत नहीं हूँ। वैसे ही यह भी सच नहीं है कि जो नया है, वह सब उत्तम और प्रगत है। साहित्य

में दोनों के लिए सुयोग्य स्थान होना चाहिए, क्योंकि अनेक बार नए मत भी उपकारक ही सिद्ध हुए हैं। आज हमारे साहित्य में नए रूप से उगे हुए साम्यवादी और काम्यवादी मतों का भी स्वागत करना चाहिए, साथ-साथ अच्छी तरह से जाँच पड़ताल भी करनी चाहिए। इसके बारे में मुझसे जो प्रश्न पूछे गए हैं, उनमें से कुछ प्रश्न साहित्य की कक्षा में न होकर अर्थ, समाज, काम और मानस शास्त्र की कक्षा में आते हैं।

उनमें से एक प्रश्न का संबंध साहित्य से है। यह सिद्धांत संपूर्ण रूप से एकांगी है कि कोई भी साहित्य केवल अर्थशास्त्र या कामशास्त्र पर ही आधारित है। सभी साहित्य की जड़ें धनिक सत्ता और श्रमिक सत्ता के संघर्ष में होती हैं अथवा सभी साहित्य की जड़ें सुप्त या जाग्रत् कामवासना में ही गड़ी हुई होती हैं। मनुष्य को केवल एक ही इंद्रिय नहीं है, अनेक इंद्रिय हैं, उन सभी की क्रियाएँ, प्रतिक्रियाएँ विरोध, विकास मनुष्य के जीवन में संचित होता है और उसका प्रतिबिंब साहित्य में होता है। ज्ञानेश्वरी धनिक सत्ता की चाल थी या भगवान् बुद्ध का राजत्याग साम्यवाद का समर्थन था अथवा श्रीमत् शंकराचार्य का महाभाष्य अतृप्त कामवासनाओं की विकृति था, इन विधानों का अर्थ है कि केवल रोटी सेंकने के लिए ही अग्नि उपयुक्त होती है—यह कहने के जैसा है। यह विचार एकांगी और संकीर्ण दृष्टि का द्योतक है। फिर भी यह विकासवाद के दृष्टिकोण के विचार मूल साहित्य में नई दृष्टि देती है। इसलिए हमें उसका स्वागत करना चाहिए, उसके साथ-ही-साथ नीर-क्षीर विवेक से उसका विश्लेषण करनेवाली आलोचना भी छापनी चाहिए। उस साहित्य से पवित्रता कलंकित होती है, केवल यह कहने से काम नहीं होगा, न उसे 'शापित' कहकर उपेक्षा करनी चाहिए। दुष्ट दुर्बुद्धि से घिनौनी और असभ्य भाषा में जो लिखा जाएगा, उस साहित्य को अनैर्बंधिक, अप्रिय या छापने योग्य नहीं समझना चाहिए। इस सर्वसाधारण सूचना के अलावा यहाँ अधिक विस्तार से कहा नहीं जाएगा।

अतुकांत कविता के बारे में जिन मित्रों ने मुझसे अनेक प्रश्न पूछे हैं, उनसे मेरी सविनय प्रार्थना है कि उसके लिए वे मेरी 'रानफुलें' नामक पुस्तक का परिशिष्ट देखें। मुझे अर्थ में बाधा न लानेवाले तुक और अनुप्रास के बारे में अत्यंत आकर्षण है। वह काव्यशैली का ही विकास है। फिर भी सुविशाल गूँथी हुई वक्तृत्वपूर्ण भावनाओं या विचारों को व्यक्त करने के लिए अतुकांत छंद ही उपयुक्त होते हैं। इसके लिए ही मैंने 'वैनायक वृत्त' का निर्माण किया; परंतु उसका संपूर्ण विवेचन करने के लिए अभी पर्याप्त समय नहीं है।

और अंत में यह कहे बिना कोई चारा नहीं है कि यह सारा साहित्य मुझे

आज की अपने राष्ट्र की परिस्थिति में दोयम यानी दूसरे या तीसरे दरजे का ही कर्तव्य लगता है। साहित्यिकों, सज्जनों, सूझों को अपना राष्ट्रीय साहित्य राष्ट्रीय जीवन का एक उपांग ही हो तो राष्ट्रीय जीवन की सुरक्षा ही अपने साहित्य की आद्य चिंता, मुख्य साध्य होना चाहिए। कला के लिए कला के उपासक के बारे में मेरे मन में आदर की ही भावना है, पर ऐसे उपासक अपने कलानंद में किसी नाट्यगृह में निमग्न हुए हों और अगर उसी नाट्यगृह में ही आग लग गई तो कला के लिए कला को दूर झटककर वे पहले अपने प्राणों को बचाने का उद्योग करेंगे, इसी तरह राष्ट्र के प्राणों की ही जब बाजी लगती है, तब साहित्य की बात करने से क्या होगा? राष्ट्र को बचाने के लिए उपयुक्त आज की मृत्युंजय मात्रा है उसका शस्त्रबल, साहित्य नहीं। जापान में हर प्राथमिक पाठशाला में सर्वप्रथम छात्रों के लिए सैनिकी शिक्षा अनिवार्य है, अलंकार शास्त्र बाद में। पिछले महीने आपने ऑस्ट्रिया की भयानक मरण-चीख सुनी होगी। प्राण त्याग के अंतिम पत्र में उस राष्ट्र के अंतिम अध्यक्ष ने अपना अंतिम वाक्य उच्चारित किया—'We yield under German Swords and not under German Sonnets.' (हम जर्मन तलवार से हार गए हैं, न कि जर्मन कविता (सॉनेट) से)। जापान, रूस, मुसलिम राष्ट्रों के बमवर्षक वैमानिक आक्रमण की आग लगानेवाली कालच्छाया मुंबई पर छा जाने पर हम यहाँ नृत्य-नाट्य संगीत में रम गए हैं। जिस मुंबई में गली-गली में जीर्ण साहित्य, नव साहित्य, पुराण साहित्य, पुरोगामी साहित्य आदि की दुकानें सजी हुई हैं, लाखों युवक एक आणा माला से एक रुपया माला तक की कथाएँ, उपन्यास (घासलेटी साहित्य या फुटपाथी साहित्य) पढ़ने में निमग्न हैं, उस मुंबई में उत्तम श्रेणी की एक भी बंदूक की क्लास नहीं है? आश्चर्य है कि पूरे मुंबई प्रांत में एक भी सैनिकी विद्यालय नहीं है।

एक कांग्रेसवाले के पास एक हाथ लंबाई का गुप्ती नामक शस्त्र मिल गया तो उसे परसों पुणे में कांग्रेस के राज्य में बंदीवास की कड़ी सजा दे दी गई। अगर सरकार को अहिंसक कहें तो प्रजा पर लाठीमार और बंदूक की गोलियाँ चल रही हैं। वे ही कहते हैं कि उसके बिना सरकार चल ही नहीं सकती। चीन राष्ट्र खत्म हुआ—उसका कारण यह नहीं है कि उसके पास साहित्य नहीं था, बल्कि उसके पास सैनिकी साहित्य नहीं था। अपना यह इतना विस्तीर्ण भारतीय राष्ट्र निर्माल्यवत् हो गया है, इसका कारण हमारा साहित्य कमजोर है, इसलिए नहीं तो शस्त्रबल कमजोर है इसलिए। हे साहित्यिक बंधुओ, यह बात सबसे पहले आपके ध्यान में आनी चाहिए। अत: सबसे पहले आप ही गर्जना करें कि आज की परिस्थिति में हमारा राष्ट्रीय साहित्य है शस्त्रबल, साहित्य-चर्चा नहीं। जो थोड़ा-बहुत साहित्य

चाहिए, वह उम्र के चालीस साल पूरे कर चुके साहित्यकार लिखेंगे; परंतु जो युवा, जो युवती जिनकी रीढ़ अभी सीधी है, ऐसी हमारी आगे की पीढ़ी के सदस्यों को साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद पर से मेरा ओदश है कि आज राष्ट्र को साहित्य की नहीं, सैनिकों की आवश्यकता है। अत: राष्ट्र संरक्षणार्थ प्रथम रायफल क्लब में प्रवेश लीजिए, अगर समय बचा तो दु:खों की रामकहानी में या गीतों में सम्मिलित हो जाइए। साहित्यकारों को भी आज साहित्य की पोथियाँ समेटकर सेना की छावनी की तरफ मुड़ जाना चाहिए। जो राष्ट्र बौना है, दुर्बल है, उसका साहित्य भी वैसा ही होता है। जिन दुर्बल राष्ट्रों को शत्रु की प्रबल बारूद आग लगाती है, उसके साहित्य को भी कैसे आग लगती है—प्राचीन तक्षशिला विश्वविद्यालय से पूछिए; नालंदा विश्वविद्यालय से पूछिए।

इसके ठीक उलटे छत्रपति शिवाजी महाराज थे तुच्छ साहित्यिक, परंतु वे अगर युगधर्म न पहचानते हुए केवल गीत, सुनीत रचते रहते या रुदन गीत लिखते रहते तो आज मराठी साहित्य की दुर्गति सिंधी, पंजाबी साहित्यिकों जैसी होती—इस बात पर ध्यान दीजिए। वहाँ गायत्री मंत्र 'अलीफ', 'बे', 'पे' में लिखना पड़ता है। उसी तरह ज्ञानेश्वरी की दीवार को मसजिद बनानेवाले आज के कई मुसलमान पुराने जमाने में हिंदू ही थे। छत्रपति शिवराय ने युगधर्म को पहचानकर सरस्वती के रक्षणार्थ सरस्वती की तरफ कुछ काल तक पीठ फेरकर शुभनिशुंभ महिषासुरमर्दिनी भवानीमाता की उपासना की। लेखनी का त्याग करके भवानी तलवार उठाई। इसी से आज महाराष्ट्र सारस्वत नाम की कोई चीज जीवंत रह गई है।

उसी तरह कुछ काल के लिए आप भी लेखनी तोड़कर बंदूक उठाइए। आगे के दस वर्षों में सुनीत या गीत रचनेवाला कोई कवि नहीं हुआ, तो भी चलेगा। सद्य:स्थिति में अगर साहित्य सम्मेलन नहीं हुए तो भी कुछ नुकसान नहीं होगा; पर दस हजार सैनिकों की वीरचमू अपने कंधे पर नई-से-नई बंदूक लेकर राष्ट्र के मार्ग में, शिविर-शिविर में टपटप करती हुए संचलन में मग्न दिखाई देनी चाहिए। ग्रंथालय की तरह ही सैनिकी विद्यालय में भी शोरगुल होना चाहिए। ऐसी स्थिति में उन्होंने बीचोबीच में कभी-कभार एकाध प्रेमकथा पढ़ी या गीत की रचना की तो कितना अच्छा होगा। दिल्ली के बादशाह की दाढ़ी जलाकर आने के बाद (इतना विक्रमी पराक्रम दिखाने के बाद) अगर प्रथम बाजीराव पेशवा ने मस्तानी के अंत:पुर में एकाध गिलौरी खाई तो वह उनको शोभा देता है, पर जीवन भर केवल पेड़ के पत्ते ही चबानेवाले दूसरे बाजीराव के लिए केवल ब्रह्मावर्त (जहाँ पेशवाई नष्ट करने के बाद अंग्रेजों ने उसे रखा था, वह गाँव) ही राष्ट्र बन जाए, यह मुझसे देखा नहीं जाता। साहित्यिक बंधुओ, आज की परिस्थिति में साहित्यिक का प्रासंगिक

कर्तव्य यही है। यह बात केवल मैं ही कह रहा हूँ—ऐसी बात नहीं है, वे साहित्यिकों के सम्राट् व्यास भी कहते हैं कि शास्त्री साहित्यिकों का कर्तव्य है—

अमर्याद प्रवृत्ते च शत्रूभिर संगरे कृते।
सर्वे वर्णाश्च दृश्येयुः शस्त्रवंतो युधिष्ठिर॥

क्योंकि साहित्य की प्रवृत्ति के लिए भी यही सच है कि—

शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्र शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते॥

□

लेखनी (सरकंडे की लेखनी) तोड़िए और बंदूक लीजिए, यानी क्या

(नासिक शहर के सार्वजनिक वाचनालय के शतसांवत्सरिक समारोह के प्रसंग में किए हुए भाषण का चुना हुआ अंश। १९ जनवरी, १९४१)

आज अनेक लोगों ने यह इच्छा प्रकट की कि मैं साहित्य पर कुछ भाषण दूँ। पर मुंबई में तीन वर्ष पहले जो साहित्य सम्मेलन हुआ था, उसके अध्यक्ष पद से मैंने जो भाषण दिया था, वही अब तक का अंतिम भाषण था, क्योंकि उसके बाद अब तक मैंने साहित्य विषय का पोथा समेट लिया था। मुंबई साहित्य सम्मेलन के समय मैंने कहा था कि 'लेखनी तोड़िए और बंदूक लीजिए'। यह बात सुनकर अनेक लोगों को आश्चर्य हुआ, तो अनेक लोगों को अजीब, अनोखा लगा। इतना ही नहीं, बल्कि उस वक्तृत्व पर महाराष्ट्र में वाद-विवाद और चर्चाएँ शुरू हुईं। कोई महाशय शादी समारोह के समय उपस्थिति रहें और अगर दूल्हे से ही पूछें कि संन्यास कब ले रहो हो? तो यह प्रश्न उसे विक्षिप्त लगेगा। वैसे ही साहित्य सम्मेलन के लिए आए हुए सरस्वती भक्तों को मैंने अध्यक्ष पद पर से जब कहा कि 'लेखनी का त्याग कीजिए और बंदूक लीजिए' कहने पर अजीब सा लगा। 'लेखनी तोड़िए और बंदूक लीजिए' यह सूत्र मैंने यों ही नहीं कहा था, अपने पूरे होशोहवास में कहा था, सद्सद्विवेक बुद्धि को जाग्रत् रखकर कहा था। मैंने वह साहित्य के रक्षणार्थ ही कहा था।

आजकल दस-बीस पुस्तकें इकट्ठा करके वाचनालय, ग्रंथालय बनाते हैं, परंतु इससे काम नहीं चलता। पुस्तकों की सुयोग्य व्यवस्था करने के लिए एक ग्रंथालय होना चाहिए और उसकी सुरक्षा के लिए एक पहरेदार की आवश्यकता है। साहित्य-मंदिर तैयार करने और उसकी रक्षा करने के लिए मैंने अगर कोई उपाय सुझाया या मार्ग बताया तो उसमें विषयांतर क्या है? जिस देश में उत्तमोत्तम सैनिक

न हों, जिस राष्ट्र के पास सैनिक बल भरपूर न हो, वह राष्ट्र नष्ट होता है और उसके साथ उस राष्ट्र की भाषा, राष्ट्र का साहित्य, राष्ट्र की संस्कृति भी नामशेष हो जाती है। मुसलमान शासनकर्ता कट्टर थे तो अंग्रेज शासनकर्ता धूर्त थे। मुसलमानों ने हमारे देश पर आक्रमण करके जो हिस्सा जीत लिया, उस हिस्से में होनेवाला हमारा वाङ्मय, हमारे ग्रंथ जला दिए और हमारी संस्कृति नष्ट करने के प्रयत्न किए। अंग्रेज शासनकर्ता भी वही काम इतने वेग से कर रहे हैं कि हमारे ध्यान में भी नहीं आएगी। यह परिस्थिति पलट जाए, हमें अपने वाङ्मय की, अपनी भाषा की और अपनी संस्कृति की रक्षा करने की सामर्थ्य आ जाए, इसीलिए मैंने कहा था, 'लेखनी तोड़िए और बंदूक लीजिए। हमारे पुराने तक्षशिला और नालंदा विश्वविद्यालय का उतना ही महत्त्व था, जितना आज दुनिया में ऑक्सफोर्ड और कैंब्रिज विश्वविद्यालय का है। उस काल के ज्ञात-अज्ञात देश-देश के विद्यार्थी अध्ययन के लिए तक्षशिला विश्वविद्यालय में आकर रहते थे। उस काल के जापानी विद्वान् तक्षशिला विश्वविद्यालय की दिशा की तरफ देखते-देखते प्राण छोड़ते थे। ऐसे इस जगन्मान्य तक्षशिला विश्वविद्यालय का हश्र बाद में क्या हुआ? आज उसका अवशेष तक नहीं है। ऐसा क्यों हुआ? इस विद्यापी[illegible] की विद्या का विनाश क्यों हुआ? उसका कारण एक ही है, और वह यह है कि उस विश्वविद्यालय से क्षात्रवृत्ति को बाहर निकाल दिया, क्षात्रतेज का अस्त हुआ। विश्वविद्यालय की रक्षा करने की सामर्थ्य हममें नहीं रही। मुसलमानी शासन आते ही उन्होंने बड़े-बड़े विश्वविद्यालय जला दिए, भस्मसात किए। तक्षशिला विश्वविद्यालय का ग्रंथालय इतना बड़ा था कि छह महीनों तक वह जलता रहा, इतनी इस विश्वविद्यालय की ग्रंथ-संपदा समृद्ध थी। हमारी इन पुरानी पुस्तकों को, पुराने साहित्य को इस तरह राख क्यों किया गया? कारण एक ही है कि हममें उसकी रक्षा करने की शक्ति नहीं रही थी। साँप की दृष्टि से देखा जाए तो मनुष्य प्राणी को दंश करना पाप नहीं है, पर अगर वह मुझे डँसने लगा तो उसे कुचलने में मैं क्यों पाप समझूँ? जिन विद्वान् पंडितों ने तक्षशिला विश्वविद्यालय में राजाश्रय से अध्ययन-अध्यापन चलाया था, उनके वध किए गए। उनका भी कारण यह था कि उनके हाथों में बंदूकें नहीं थीं। विश्वविद्यालय की रक्षा और आत्मरक्षा की सामर्थ्य उनमें नहीं थी। इसीलिए मैं कह रहा हूँ कि साहित्य और शस्त्र का संबंध निकट का है।

मेरे इस कथन पर आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं है। आज भी हमारी स्थिति ऐसी ही है। जिस सार्वजनिक ग्रंथालय में हम अनेक दुर्लभ ग्रंथ रखते हैं, उसी ग्रंथालय में मेरी या स्वातंत्र्य कवि गोविंद की जब्त की हुई पुस्तकें, मा. शिवराम पंत परांजपेजी के 'काळ' समाचार-पत्र में आए हुए लेख नहीं रख सकते।

उसका भी कारण यही है। ऐसे ग्रंथ अगर रखे गए तो उनकी रक्षा करने की सामर्थ्य हममें कहाँ है? आज अगर हमारे हाथ में बंदूकें होतीं, हमारी बाहुओं में बल होता, तो आज जो पुस्तकें जब्त की गई हैं, क्या हम उनको बंधनमुक्त नहीं कर सकते? अपनी लेखनी में उतनी भी सामर्थ्य नहीं है, तो उसका मूल्य किसी टूटे हुए सरकंडे की लेखनी जितना ही होगा। आज जैसे हम गुलामी में सड़ रहे हैं, वैसे ही हमारा साहित्य भी गुलामी में जकड़ गया है। अगर यह गुलामी की शृंखला तोड़नी हो तो साहित्य के साथ-साथ संग्राम शक्ति भी बनानी होगी, क्योंकि आज वह लुप्त हो गई है। रणांगण में जाकर विजय प्राप्त करके वापस लौटा हुआ कोई साहित्यिक अगर आनंद से सीटी बजाने लगा, एकाध मस्ती की कविता उसने लिखी तो वह काव्य होगा; परंतु जब लड़ाई चल रही है और उसी समय अगर वह प्रेम-काव्य लिखने लगा तो आप उसे क्या कहेंगे?

पहले इस बात पर विचार कीजिए कि हमपर आया हुआ संकट और आनेवाला संकट कौन सा है? पहले इस बात पर सोचिए कि संकट का निवारण कैसे कर सकते हैं? और बाद में कविता लिखते रहिए। कविता की संख्या अगर कम हुई तो चल सकता है, पर पहले जो सैनिक नहीं है, वह असल कवि नहीं है। परिवार और बच्चे भूख से मर रहे हैं, ऐसी स्थिति में क्या काव्य लिखने बैठा जाता है? और वह काव्य पेट की आग कैसे बुझाएगा? जब देश पराधीनता में है तो आप कविता कैसे लिख रहे हैं? इसीलिए मैं कहता हूँ कि लेखनी छोड़कर हाथ में बंदूकें लीजिए। जीवंत साहित्य निर्माण करने के लिए आप अपने हाथों में बंदूकें लीजिए।

स्वातंत्र्य कवि गोविंद ने अपने काव्य में कहा है कि ले हाथ में तलवार देवा, ले हाथ में तलवार! कवि गोविंद के मन में 'ले हाथ में तलवार हिंदू, ले हाथ में तलवार' ऐसा कहना था, पर परिस्थिति ने रोक लगाई। कवि गोविंद को हम क्यों 'स्वातंत्र्य कवि' कहते हैं? इसलिए नहीं कि उन्होंने गेंदे के फूलों पर कविता लिखी, आसमान में विहार करनेवाले पंछियों पर कविता लिखी, बगीचे में खेलनेवाले बच्चों पर कविता लिखी। इसका अर्थ यह नहीं है कि फूलों पर या बच्चे पर कविता न लिखी जाएँ; परंतु लिखने से पहले यह देखना आवश्यक है कि समय और परिस्थिति कैसी है? कौन सा संकट हम पर आ पड़ा है? पहले इसी बात पर विचार करना चाहिए। अगर घर में आग लगी है तो हमारा पहला कर्तव्य यह है कि नजदीक से पानी लाकर आग बुझाने का प्रयत्न करें। उस समय चंद्रमा पर कितना पानी है और वह पानी कैसे नीचे ला सकते हैं? इसका विचार करने से क्या फायदा? स्वातंत्र्य कवि केवल कवि नहीं थे, वे असली अर्थ में स्वातंत्र्य कवि थे। स्वतंत्रता के उपासक थे और इसीलिए उनके शब्दों में एक तेजस्विता थी। मैंने

'सिंहगढ़ का पोवाडा' लिखा और आगे चलकर वह जब्त हुआ; परंतु उस काल में मेरे कुछ मित्रों ने 'पोवाडे' का गान किया, तब उसमें विलक्षण रसनिष्पत्ति हो जाती थी, क्योंकि उनके मन में स्वतंत्रता की व्याकुलता थी, तिलमिलाहट थी। आज वह पोवाडा अनेक लोग गुनगुनाते हैं, पर वह तड़प ही नष्ट होने के कारण उसमें होनेवाले शब्दों का अर्थ लुप्त हुआ सा लगता है। अगर हमें अपनी आत्मा का विकास करना है, श्रेष्ठ और जीवंत साहित्य का निर्माण करना है तो पहले क्षात्रतेज का निर्माण आवश्यक है। नॉमर्न लोगों में अंग्रेजी शब्द का अर्थ है गुलाम! पर आज वह परिस्थिति बदल गई है। कारण, उन्होंने अपने क्षात्रतेज का निर्माण किया। हमारी संस्कृत विद्या लुप्त होने लगी है और हमारे यहाँ सात समंदर पार की अंग्रेजी विद्या का सम्मान बढ़ रहा है। हमारे प्रभावशाली कवि को कोई नहीं पूछता, पर सात समुद्र पार के शेक्सपीयर, ग्रे, मिलटन आदि का सम्मान हमारे देश में होने लगा है। उसका कारण यह है कि अंग्रेजों ने अपनी सत्ता यहाँ कायम की है। केवल नाम से राष्ट्र की उन्नति नहीं हो सकती। राष्ट्र की उन्नति के लिए पराक्रम की आवश्यकता है। पराक्रम से, तेजस्विता से नाम का महत्त्व बढ़ जाता है और इसी अर्थ में अपने पराक्रम से 'हिंदू' शब्द शिरोधार्य करना है।

□

सम्राट् विक्रमादित्य का चरित्र और महत्त्व

अभिमान का घमंड तो हम ही कर सकते हैं

हमारे जमाने में पाठशाला में पढ़ाई जानेवाली इतिहास की पुस्तक में विक्रमादित्य के बारे में दी गई जानकारी रहती थी। इससे हमें कम-से-कम यह तो मालूम होता कि विक्रमादित्य नामक कोई एक अत्यंत पराक्रमी राजा हिंदुस्थान पर राज करता था; पर आज के शालेय इतिहास की पुस्तक में से विक्रमादित्य जैसे राजा के नाम लुप्त हो रहे हैं और उसके उलटे अरब स्थान का इतिहास ही उदयाचल पर आता दिखाई देने लगा है। इससे राजा विक्रमादित्य का और हम भारतीयों का क्या संबंध था—यह भी मालूम नहीं होता; परंतु ऐसा होने पर भी उस महापुरुष का पराक्रम ही इतना प्रचंड है कि उसके नाम के संवत्सर का एक-एक दिन गिनते-गिनते हमने दो सहस्र वर्ष उनकी स्मृति को संजोया है। दो सहस्र वर्ष का काल सचमुच अन्य लोगों की तुलना में बहुत बड़ा है, इसमें कोई शंका नहीं है। अंग्रेजों को भी अपने इतिहास के इतने वर्ष का इतिहास दिखाना कठिन है। जिनके अस्तित्व को ही केवल दो सौ वर्ष हुए हैं, अमेरिकी भी अभिमान के घमंड में कहते हैं कि हमारे पीछे दो सौ वर्षों का उज्ज्वल इतिहास है, इससे हमारा भविष्य काल भी अत्यंत उज्ज्वल होगा।

दो सहस्र वर्ष यानी कितना बड़ा काल बीत गया है, उसकी सहज ही कल्पना कर सकते हैं। उस काल की खालिडयन, सुमेरियन, इजिप्शियन आदि अनेक संस्कृतियाँ नष्ट हो गईं। उनका कोई पदचिह्न तक आज नहीं बचा है, परंतु एक-एक दिन गिनते-गिनते दो सहस्र वर्षों का समारोह विक्रमादित्य के नाम से मनाया जा रहा है। उसको मनानेवाले तीस करोड़ हिंदू उसी संस्कृति का उत्तराधिकार जताने के लिए इसी राष्ट्र में जीवंत हैं, यह भी अभिमान की और उत्साह की बात है।

हिंदुस्थान नवरत्नों की खान है

आज कदाचित् इस विषय पर वाद-विवाद चल रहे होंगे कि यह संवत् की स्थापना करनेवाला विक्रमादित्य कौन था? और सचमुच ही इस देश में चार-पाँच पराक्रमी विक्रमादित्य हो भी गए हैं। दूसरा चंद्रगुप्त विक्रमादित्य है। पहला चंद्रगुप्त, जिसने अलेक्जेंडर का पराभव करके ग्रीक आक्रमण को रोक लिया, वह मौर्य वंश का था और विक्रमादित्य नाम धारण करनेवाला यह चंद्रगुप्त वंश का दूसरा था। ख्रिस्त पूर्व चौथे-पाँचवें शतक के संधिकाल में मंदोसर में हूणों का पूर्ण पराभव करनेवाला यशोधर्मन राजा तीसरा विक्रमादित्य था। वैसे ही बंगाल के नजदीक जिसका राज्य था, उस राजा शशांक ने विक्रमादित्य का पद धारण किया ही था। और अपने दक्षिण के राजा शालीवाहन भी विक्रमादित्य नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। इस तरह अनेक विक्रमादित्य अपने देश में हुए हैं। यह बात नि:संशय अत्यंत महत्त्व की है कि इनमें से वह कौन सा विक्रम संवत् का संस्थापक विक्रमादित्य है, जिसके आज दो सहस्र वर्ष पूरे होने का उत्सव हम मना रहे हैं? यह विषय इतिहास के शोध का विषय है। यद्यपि 'विक्रमादित्य' नामक एक ही विरुद पर अलग-अलग पाँच व्यक्ति अधिकार जता रहे हैं, इसलिए उलझन पैदा हुई है, यह बात सही है, पर यह बात हमारे लिए गौरवास्पद ही है। विक्रमादित्य कितने हुए? शिवाजी एक या दो?

इस तरह के वाद-विवाद हमारे इतिहास में चलते रहते हैं। फिर मुझे इसमें कोई हलकापन महसूस नहीं होता, क्योंकि यह तो सचमुच ही गर्व करने की बात है कि एक-से-एक नामांकित महापुरुष का निर्माण करने की शक्ति हमारी हिंदूजाति में है। अपने गुणों से उत्कर्ष तक पहुँचनेवाले एक से बढ़कर एक अनेक नररत्न जिस जाति में जन्म लेते हैं, उनमें उनके वृत्तांत के बारे में निश्चित गिनती अगर नहीं रही तो उसमें कोई विशेष हानि नहीं है और शोधकर्ताओं को विषय प्राप्त होने जैसी उलझन पैदा हुई तो भी कोई हर्ज नहीं है। जिस जाति में नेपोलियन एक ही हुआ हो, उन फ्रेंच लोगों को उसकी निश्चित जानकारी प्राप्त होना अत्यंत आसान बात है। सीझर, हनिबॉल अपने-अपने राष्ट्रों में अकेले ही हुए हैं। अत: यह सहज साध्य है कि वे राष्ट्र उनकी स्मृतियाँ अचूक रूप से रखते होंगे, परंतु हमारे इतिहास में विक्रमादित्य से लेकर अभी-अभी के शिवाजी, संभाजी, पेशवाओं तक एक से एक पराक्रमी अनेक पुरुषों का निर्माण करने की परंपरा चल रही है, वहाँ उनके वृत्तांत के बारे में अनिश्चितता उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। जिनके पास एकाध ही रत्न होता है, वह जान की बाजी

लगाकर उसकी रक्षा में लग जाता है और उनका जतन करता है, पर जहाँ रत्नों की खानें ही होती हैं, वहाँ उनकी सुरक्षा का प्रश्न गौण हो जाता है। भारत में नररत्नों की खान होने के कारण हमारे यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि किसका उत्सव समारोह करें और किसका न करें? और कौन-कौन से दिन करें? सचमुच ही अगर हमने मन में लाया कि सभी के समारोह करें, तो वर्ष के सारे दिन भी पूरे नहीं पड़ेंगे। यह तो केवल ऐतिहासिक व्यक्ति के बारे में हुआ, उससे परे जाकर अगर रामकृष्णादि सभी प्रसिद्ध अवतारों के बारे में सोचने लगें तो बात ही क्या हो जाएगी। माननीय हेमाद्रि ने 'चतुर्वर्ग चिंतामणि' नामक ग्रंथ लिखा है। उस ग्रंथ के व्रतखंड विभाग में वर्ष के दो सहस्र के ऊपर व्रत बताए हैं, पर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि इतने सब व्रत कब करें? वैसी ही बात यहाँ है; परंतु इन व्रतों के बारे में धर्मसिंधुकार को या निर्णय सिंधुकार को—ये प्रश्न पूछ सकते हैं कि इन व्रतों का आचरण हम कब करें? ग्रंथकर्ता इसपर उत्तर देते हैं कि अगर मैं उन व्रतों का आचरण करता, तो ग्रंथ लिखने के लिए मुझे फुरसत ही न मिलती। मैंने ये व्रत कह रखे हैं। उनमें से जो संभव हैं, शक्य हैं, वे व्रत आप कीजिए। वही बात तारतम्य से यहाँ लेनी है और उसके अनुसार उत्सव संपन्न करने हैं। इस दृष्टि से हम सब अत्यंत महत्त्व का लगनेवाला उत्सव विक्रमद्विसहस्राब्दि महोत्सव संपन्न कर रहे हैं।

विक्रम नाम नहीं, संस्था है

ईसापूर्व सत्तावन वर्ष एक इतनी महान् अकल्पित और अघटित घटना घटी कि उसका स्मरण विशिष्ट कालमान के रूप में आज हम दो सहस्र वर्ष एक-एक दिन गिनते हुए करते आए हैं। वह कालगणना हम आज तक अविच्छिन्न रूप से चला रहे हैं। इसी में उस मूल घटना का रहस्य है। उस कालगणना को चाहे कोई भी नाम दीजिए 'कृत' या 'मालवगण' या 'विक्रम'। इनमें से कोई भी नाम हो, फिर भी कालगणना एक ही अखंड रूप से चल रही है, यह निर्विवाद है। उसी दृष्टि से विक्रमादित्यों के अनेकत्व के संबंध में यह कहा गया, तो भी चलेगा कि 'विक्रम' नाम किसी व्यक्ति की दृष्टि से अब उतना महत्त्वपूर्ण नहीं रहा, वह एक 'संस्था' बन गया है। इतिहास के लिए करना हो तो मैं सद्य:स्थिति में अन्य आधार खोजने की अपेक्षा परंपरा से चले आए वृत्तांत को ही अधिक सम्मान देता हूँ। परंपरा के वृत्त के अनुसार इस देश पर आक्रमण करनेवाले परकीय शकों को ईसापूर्व सत्तावन वर्ष में विक्रमादित्य ने पराभूत करके सीमा के बाहर खदेड़ दिया—यह निश्चित है। परकीय लोग अपने देश में पाँव तक रखें, इसके लिए अपनी सीमाओं के बाहर

उनके देश में घुसकर हमारे पूर्वकालीन पराक्रमी राजाओं ने पहले से उनकी व्यवस्था उस समय क्यों नहीं की? इसके लिए मेरे मन में थोड़ा गुस्सा है, फिर भी देश में प्रवेश करनेवाले आक्रामक परकीय शकों को सीमा पार खदेड़ने का विक्रमादित्य का कार्य निस्संदेह संस्मरणीय है।

हूण लोगों का संपूर्ण विनाश किसने किया?

विक्रमादित्य और उसके संस्मरणीय पराक्रम के बारे में इतना बोलने के बाद मुझे इतिहास के अभ्यास की दृष्टि से दो तर्क आपके सामने रखने हैं। ग्रीक, शक, हूण जैसे उद्‌दंड जंगली लोगों के टिड्डी दल बार-बार पराजित करके वापस लौट आए। फिर भी चींटियों की कतार जैसे अधिकाधिक संख्या में हिंदुस्थान में घुसकर हुड़दंग मचाते रहे, यह कैसे संभव हुआ, जब यहाँ इतने पराक्रमी लोग विद्यमान थे? इस बात के बारे में मेरे मन में प्रश्नचिह्न हैं। ग्रीकों के नेता अलेक्जेंडर जगज्जेता थे, पर वे बाहर की दुनिया में जगज्जेता रहे। यहाँ हिंदुस्थान में उनको सतलज नदी के आगे पैर रखने का साहस ही नहीं हुआ, उलटे यहाँ से मार खाकर ही लौटना पड़ा। उसके बाद शक आए, हूण आए। उन हूणों में भी श्वेत हूण और अन्य हूण—इस तरह की अलग-अलग जातियाँ थीं। ये हूण संस्कृतिहीन और केवल लुटेरी वृत्ति के थे। अंग्रेजी में 'हूण' शब्द क्रूर, लुटेरा आदि अर्थोंवाली गाली ही हो गई है; पर इन जंगली लोगों के टिड्डी दल का भी यहाँ कुछ वश न चला।

कुछ काल के लिए ही सही, वे यहाँ दंगा करने के लिए कैसे आ सके? और यह बात भी सोचने लायक है कि बाद में उनको मारकर वापस किसने लौटाया? इसके बारे में खोज करने पर यह मालूम होगा कि अहिंसावादी बौद्धों की मदमस्त प्रबलता के कारण यहाँ प्रवेश करना उन लोगों के लिए आसान हुआ और जो बौद्ध नहीं थे, ऐसे क्षत्रियों ने ही उनका विध्वंस किया। हिंदुस्थान का अधिकतर भाग बौद्धमय होने पर भी फिर से वह वैदिकधर्मीय कैसे हुआ, इसका कारण बाहर से आए हुए परकीय आक्रमणों में ही मिल जाता है। वह हुड़दंग नष्ट करने के लिए अहिंसा का त्याग करके जिन्होंने हाथ में फिर से खड्ग धारण किया, उन क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने उस आपत्ति का कारण बने बौद्धों पर वही खड्ग चलाया। ऐसे प्रसंगों पर अपनी रक्षा के लिए यहाँ के बौद्धों द्वारा बाहर के परधर्मियों को अथवा उन जंगली लोगों की सहायता लेने के उल्लेख पुराणों में पाए जाते हैं। ऐसे ही एक समय यहाँ के बौद्धों के बुलाने पर आक्रमण करके आए हुए चीन, जापान और तिब्बत के बौद्धों का पूर्ण पराभव करके हिंदुस्थान के क्षत्रियों ने उनसे यह शर्त

मनवाई कि 'आर्य देशे न यास्यामो कदाचित् राष्ट्र हेतवे।' इस तरह का उल्लेख 'भविष्य पुराण' में पाया जाता है।

यह नक्शा देखिए और वह नक्शा देखिए

मेरी दूसरी समस्या आगे के काल की हमारी स्थिति और योग्यता के बारे में है। जिसके नाम का द्विसहस्राब्दि महोत्सव हम मना रहे हैं, उस विक्रमादित्य का नाम धारण करनेवाले, ऊपर बताए सभी पराक्रमी वीरों की आत्माएँ अगर हमें पूछने लगीं कि उनके पश्चात् उनका व्रत हमने कहाँ तक निभाया है, तो? तो यह भी विचार करना आवश्यक है कि हम उनकी पंक्ति में बैठने योग्य हैं अथवा नहीं? इसपर विचार करने के लिए दो मानचित्र मैं आपके सामने रखता हूँ। सुलतान महमूद और महम्मद घोरी के आक्रमण काल से सधारणत: सन् १६५९ तक पेशावर से रामेश्वरम् तक सारा देश मुसलमानों की मसजिदों और सत्ता से व्याप्त है, ऐसा मानचित्र अपनी आँखों के सामने लाइए और उसके बाद सन् १६५९ से १७९५ तक के काल में छत्रपति शिवाजी महाराज के कर्तृत्व से लेकर पेशवाई के सवाई माधवराव के शासनकाल तक का कालखंड देखिए। इस काल में आप पाएँगे कि उत्तर दिशा की अटक नदी तक मराठा शासन का ध्वज फहरा रहा है। अटक के बाद काबुल नदी तक जाकर प्रत्यक्ष अफगानिस्तान में सिख लड़ रहे हैं। नेपाल में स्वतंत्र गुरखा राज्य की स्थापना हुई है और सारे हिंदुस्थान में प्रबल मुसलिम शासन कहीं भी बाकी नहीं है, यह दूसरा मानचित्र आँखों के सामने लाइए। इससे विक्रमादित्य जैसे पराक्रमी पूर्वजों के वंशजों के नाते हम कितने अभिमान से जी सकते हैं—यह बात आपके ध्यान में आएगी। हमारे देश में मुसलमानों का सात सौ बरसों का हुड़दंग यह कोई छोटी बात नहीं है। वह हुड़दंग तो हमने नष्ट किया और इसी देश में हम प्रचंड बहुसंख्या से टिके रहे हैं—यह बात उन महापुरुषों के वंशजों को शोभामान करनेवाली है। हम इतना ही करके चुप रहे, ऐसा नहीं है। यद्यपि उत्तर या वायव्य दिशाओं की तरफ हमने आक्रमण नहीं किया, फिर भी पूर्व की तरफ के कुछ देश हमारी संस्कृति को अंकित कर लिये हैं। अगर विक्रमादित्यों की आत्माएँ वायुयान में बैठकर यह देखने लगें कि अपने समय के कौन-कौन लोग यहाँ बाकी हैं, तो उनको शक यहाँ नाममात्र भी दिखाई नहीं देंगे और हूण भी दिखाई नहीं देंगे। यहाँ निवास कर रहे उनके वंशज हिंदू तीस करोड़ की संख्या में दिखाई देंगे। उन तीस करोड़ हिंदुओं का निवास आज उतना निष्कंटक नहीं रहा है, परंतु अगर विक्रम द्विसहस्राब्दि महोत्सव के निमित्त गत दो सहस्र वर्षों के इतिहास से प्राप्त सीख हमने उचित रूप से आचरण में लाई तो हम पर होनेवाले पाकिस्तान या

इंग्लैंड जैसे संकट निरस्त होंगे और आगे के पाँच सौ वर्षों के बाद तब के इतिहास-शोधकर्ताओं के सामने कदाचित् यह प्रश्न खड़ा होगा कि वे संकट कैसे थे—इस विषय पर शोधकार्य करें। कदाचित् आज के विक्रमादित्य के विषय के वाद-विवाद के समान ही वह विषय भी वादग्रस्त होगा, पर वह परिस्थिति सर्वथा सौभाग्यपूर्ण और स्पृहणीय ही होगी।

□

नाट्य शताब्दी

(शुक्रवार, ५ नवंबर, १९४३ को सांगली में नाट्य शताब्दी महोत्सव के अध्यक्ष पद पर से दिए गए भाषण का महत्त्वपूर्ण अंश)

नवीन अनुसंधान के अनुसार, श्री शिवाजी के काल में मराठी नाटक खेले जाते थे और रंगभूमि पर उनके प्रयोग भी अभिनीत होते थे। सभी हिंदू या आर्यनाट्य संस्था का विचार करने पर तो यह काल-मर्यादा दो हजार से दस हजार वर्षों तक चली जाती है। क्योंकि भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र का जो ग्रंथ आज उपलब्ध है, उसका काल विद्वान् शोधकर्ताओं के मतानुसार ईसापूर्व सात सौ वर्ष के पहले आता ही नहीं। फिर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि अगर मराठी नाटक का काल तीन सौ वर्ष पहले का है, तो फिर शत सांवत्सरिक महोत्सव यानी मराठी नाटक का प्रथम वर्ष सन् १८४३ मानकर सौ वर्ष पूरे करने के महोत्सव का क्या अर्थ रहा? उसका उत्तर यह है कि सन् १८४३ से कै. विष्णुदास भावेजी ने इस कला को संस्था का व्यवस्थित और स्थायी स्वरूप दिया और इसी से आगे उसका उत्कर्ष संभव हुआ। उन्होंने 'सांगलीकर नाटक मंडली' की स्थापना करके उस कंपनी के नाटकों के प्रयोग के लिए महाराष्ट्र में दौरा किया। कै. भावेजी की प्रेरणा से ऐसी अनेक प्रकार की नाटक मंडलियाँ स्थान-स्थान पर स्थापित हुईं। नाट्यकला को लोगों को समर्थन प्राप्त होने लगा और उनको प्रतिष्ठित रूप प्राप्त हुआ।

आगे चलकर उसी की परिणतावस्था सन् १८८० के लगभग अनेक विद्वान् और आंग्लविद्या विभूषित कलाकारों ने इस कला पर अपना ध्यान केंद्रित किया, अनेक अंग्रेजी नाटकों के अनुवाद करके यह कला लोकादर के योग्य बनाई। पुराने जमाने में नाटक में काम करनेवालों को 'नटक्या' कहकर उनकी उपेक्षा, अवहेलना करने की प्रथा थी। सुशिक्षित कलाकारों ने धीरे-धीरे वह प्रथा नष्ट की।

आगे चलकर कै. अण्णाराव किर्लोस्करजी ने नाट्यकला को संगीत का साथ दिया और मराठी में संस्कृत नाटकों के अनुवाद करके और कुछ स्वलिखित

मराठी नाटक रंगभूमि पर अभिनीत किए और अपनी इस नाटक मंडली को 'किर्लोस्कर संगीत मंडली' नाम दिया। उस काल की दृष्टि से उनकी रंगभूमि की नई सजावट, वेशभूषा, रंगभूषा आदि में होनेवाला नयापन और सुव्यवस्थित रूप, नवीन कर्णमधुर स्वरों में गाए हुए गीत और वेषधरों के सौंदर्य का रखा गया भान—इन सब कारणों से उनके नाटक अत्यंत प्रसिद्ध और लोकप्रिय हुए और नाटक मंडली का सामाजिक स्तर भी ऊँचा उठा। इसी से आगे चलकर नट सम्राट् बाल गंधर्व की 'गंधर्व नाटक मंडली' बनी। उस कंपनी ने रंगभूमि की सजावट के लिए कल्पनातीत खर्च किया और रंगभूमि को राजवैभव प्राप्त करा दिया। इस प्रकार मराठी रंगभूमि की प्रतिष्ठा सभी समकालीन हिंदी रंगभूमि से श्रेष्ठ सिद्ध हुई।

कुछ लोगों का आक्षेप है कि आगे के काल में बोलपटों की वृद्धि के कारण इस कला को अवनति प्राप्त हुई; परंतु मेरे मत से बोलपट नाट्यकला का ही विकास है। दोनों में अगर तुलना की जाए तो स्पष्ट होगा कि दोनों में कुछ दोष हैं, कुछ गुण हैं। नाटक जीवंत होता है। बोलपट चिरस्थायी, पर यांत्रिक होते हैं। बोलपटों को खूब खर्च करना पड़ता है और चित्रपट्टी आदि साधनों के लिए हमें अभी परदेशों (विदेशों) पर अवलंबित रहना पड़ता है। उतना खर्च नाटक के लिए नहीं लगता। इसलिए कितने भी बोलपट क्यों न बनें, नाटक जीवंत रहेगा ही। इस तरह विकसित मराठी रंगभूमि की नींव आज से सौ वर्ष पहले कै. भावेजी ने सांगली शहर में रखी। इसलिए इस समारोह का विशेष महत्त्व है।

अंत में समापन समारोह के भाषण में स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी ने युवकों को जो दिव्य संदेश दिया, वह अत्यंत स्फूर्तिदायक है। उनके कथन का सार इस तरह है—'जब हमारे घर में कोई बहुत बड़ा समारोह या कार्य हो, तो घर के सब छोटे-बड़े लोगों के अंत:करण उस एक ही कार्य पर केंद्रित होने चाहिए, तभी वह समारोह सुसूत्र और सुचारु रूप से संपन्न होता है। उसी तरह हम सबके सामने अगर आज का एक ही महत्त्वपूर्ण कार्य कोई है तो वह है—देश की स्वतंत्रता और देश की सुरक्षा। इसीलिए लेखक, नाटककार, नट आदि सभी का ध्यान इसी एक ध्येय पर केंद्रित होना चाहिए और सभी लोगों की प्रत्येक कृति इस ध्येय-साधन को लक्ष्य करके होनी चाहिए। जैसे आज हम महाराणा प्रताप, राणा भीमदेव, बाजीप्रभु देशपांडे, धर्मवीर छत्रपति संभाजी महाराज आदि महान् नेताओं की कृति पर नाटक लिखते हैं, वैसे ही आगे की पीढ़ी के नाटककारों को विषयीभूत हो जाएँगी ऐसी कृतियाँ—आज के युवकों को करनी चाहिए।'

□

श्री सावरकर और बोलपट सृष्टि

(बोलपट सृष्टि के बारे में वीर सावरकरजी की भूमिका या दृष्टिकोण समझ लेने के लिए किया हुआ एक संभाषण)

स्वातंत्र्यवीर सावरकर अगर देशभक्त न होते तो और कुछ न होते, वैसे ही स्वतंत्रता की तड़पन के नेता न होते तो और कुछ न होते, इन्हीं वाक्यों के साथ एक और वाक्य जोड़ने के लोभ का सँवरण मैं नहीं कर सकता। वह वाक्य यह है कि अगर सावरकरजी प्रचारक न होते तो और कुछ न होते। संभाषण और वाद-विवाद करने के लिए वे अत्यंत सुयोग्य व्यक्ति हैं। उनके बारे में समाज में यह धारणा फैली हुई है कि वे दुराग्रही और हठी हैं। यह बिलकुल गलत है। वे अत्यंत सुंदर अंग्रेजी बोलते हैं। वैसे ही प्रश्न और उपप्रश्न किसी खिलाड़ी की तरह समझ-बूझकर उनके सुयोग्य उत्तर देने में भी वे निपुण हैं।

वीर सावरकरजी ने कहा, 'बोलपट सृष्टि बीसवीं शताब्दी का सुंदर उपहार है। यंत्र और यंत्र ही इस युग का मंत्र है। हमें सभी बातें यंत्र द्वारा तैयार मिलती हैं। मनोरंजन भी उसके लिए अपवाद नहीं रह सकता। यह अच्छी तरह से ध्यान में रखिए कि मैं यंत्र की इस प्रगति का निषेध नहीं करता हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि यंत्र की दुनिया अत्यधिक विकसित हो और मनुष्य जाति की सुख-समृद्धि वृद्धिंगत हो जाए।'

मनुष्य की शोध-बुद्धि पर किसी भी प्रकार का नियंत्रण रखना मुझे अच्छा नहीं लगता, क्योंकि उस शोध-बुद्धि के कारण ही आधुनिक सुधार और संस्कृति का निर्माण हुआ है। गत कई वर्षों में शास्त्र और ज्ञान के क्षेत्र में मनुष्य ने जो प्रगति की है, उसका सार है आधुनिक बोलपट सृष्टि। आधुनिक खोजों का उपयोग जितना बोलपट सृष्टि ने किया है, उतना यंत्र से चलनेवाले किसी भी उद्योग ने नहीं किया है। इसीलिए उसका निषेध करनेवालों में मैं सहभागी नहीं हो पाऊँगा।

महात्मा गांधीजी ने बोलपटों के बारे में तिरस्कार के उद्‌गार प्रकट किए हैं। वीर सावरकरजी का ऊपर का भाष्य उन उद्‌गारों का मुँहतोड़ उत्तर है। जब मैंने वीर

सावरकरजी को यह बताया कि आपका भाषण महात्मा गांधीजी के कथन के विरुद्ध है, तब उन्होंने पूछा, 'मुझमें और गांधीजी में क्या एक भी समान बात है?'

मैंने पूछा, 'क्या आप महात्मा गांधीजी से कभी मिले हैं?' इस बात पर उन्होंने उत्तर दिया, 'जब हम लंदन में थे, तब बार-बार मिलते थे, परंतु बाद में दोनों को लगा कि एक-दूसरे को मिलने की आवश्यकता ही नहीं है; परंतु जब मैं रत्नागिरी में स्थानबद्ध था, तब गांधीजी वहाँ आकर मुझसे मिले थे। जब मैं लंदन में था, तब पहले-पहल मैंने मूक चित्रपट देखा था, वह मुझे अच्छा भी लगा। जब से बोलपट शुरू हुए हैं, उनमें से कुछ मैंने देखे हैं। मुझे ऐसा लगता है कि नाट्य सृष्टि सिनेमा से स्पर्धा नहीं कर सकेगी। जैसे आज देहात के गायक या पोवाड़ा गानेवाले शाहीर या वन्यजाति सुधारित संस्कृति से दूर कोने में कहीं अस्तित्व में हैं, वैसे ही नाट्य-सृष्टि जिंदा रहेगी, पर यह निश्चित है कि नाट्य-सृष्टि के दिन खत्म होने वाले हैं और इसके लिए किसी को खेद या दु:ख करने का कोई कारण नहीं है। विद्युत् की सहायता से ट्रैक्टर शुरू होने के बाद लकड़ी के हल की क्या आवश्यकता है? जिस स्थान पर ट्रैक्टर नहीं है अथवा पहुँच नहीं सकते, वहाँ लकड़ी के हल का उपयोग होगा। मैं अंत:करणपूर्वक निसर्ग की ओर चलिए। मैं इस चरखा तत्त्वज्ञान के खिलाफ हूँ। उपन्यास की अपेक्षा चित्रपट श्रेष्ठ हैं। छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप, नरवीर रणजीत सिंह आदि राष्ट्रपुरुषों की चरित्र-पुस्तक कितने भी अच्छे ढंग से क्यों न लिखी जाएँ, वे चरित्र चित्रपट के परदे पर निश्चित ही अधिक परिणामकारक और आनंददायी होंगे।

युवा पीढ़ी की शिक्षा में चित्रपटों का परिणामकारक उपयोग किया जा सकता है। चित्रपटों में जीवन का हू-ब-हू प्रतिबिंब हमें देखने को मिलता है। कुछ भी सामने न होने की अपेक्षा अच्छी-अच्छी बातों का अनुकरण करना अच्छा है, परंतु दूसरों का केवल अंधानुकरण न करें, उसके बारे में सावधान रहना जरूरी है। सभी जगहों के जैसे बोलपट सृष्टि में भी हमारे लोगों को देशभक्त होना आवश्यक है, उसके बाद सबकुछ। चित्रपट सृष्टि में भी यह भावना होनी चाहिए कि अपने राष्ट्र की प्रगति के लिए ही मैं सबकुछ करूँगा। चित्रपट तैयार करते समय उन्हें राष्ट्र के संबंध में अनुकूलता रखनी चाहिए, राष्ट्र में होनेवाले दुर्गुणों की तरफ ध्यान न देकर उसकी विजय के बारे में मन में अभिमान रखना चाहिए। देश की पराजित अवस्था का या देश के दुर्गुण दिखानेवाला चित्रपट वे कदापि न चित्रांकित करें। देश का कलंकित पक्ष भूल जाना चाहिए और देश की तेजस्विता का चित्र दिखाकर युवकों को स्फूर्ति देनी चाहिए।

□

भाषाशुद्धि लेख

भाषाशुद्धि

कृते म्लेच्छोच्छेदे भुवि निरवशेषं रविकुला-
वतंसेनात्यर्थं यवन चनैर्लुप्तसरणीम्।
नृपव्याहारार्थम् स तु विबुधभाषां वितनितुं
नियुक्तोऽभूदविद्वान्नृपवर शिवच्छत्रपतिना॥ १॥

सोयं शिवच्छत्रपतेरनुज्ञाम्
मूर्धाभिषिफलस्य निधाय मूर्धि
अमात्यवर्गो रघुनाथनामा
करोति राज्यव्यवहार कोशम्॥ २॥

विपश्चित्संमतस्यास्य किं स्यादज्ञविडंबनैः।
रोचते किं क्रमेलाय मधुरं कदलीफलम्॥ ३॥

भावार्थ—इस आर्यावर्त में म्लेच्छ-सत्ता का उच्छेद करके स्वतंत्र हिंदू राज्य की स्थापना करने के बाद राजा शिव छत्रपति ने अपने विद्वान् मंत्रियों में से रघुनाथ पंडित नामक सुविख्यात पंडित को आज्ञा की कि यवन भाषा के वर्चस्व के कारण लुप्तप्राय हुई अपनी स्वकीय विबुधभाषा का पुनरुज्जीवन करने के लिए बहिष्कृत शब्दों को संस्कृत प्रतिशब्द बतानेवाले राज्य-व्यवहार के कार्य के लिए एक कोश (शब्दकोश) बनाया जाए। रघुनाथ पंडित राज्याज्ञानुरूप उस राज्य-व्यवहार कोश का निर्माण कर रहे हैं।

श्री शिव छत्रपति के जैसे अनेक महान् और ज्ञानी पुरुषों को सम्मत होनेवाले इस प्रयत्न को देखकर यद्यपि मूर्ख लोग हँस पड़े, लेकिन उन्हें पूछता कौन है? काँटे खानेवाले ऊँट को मधुर केलों की रुचि कैसे समझ में आएगी?

श्री रघुनाथ पंडितकृत राज्य-व्यवहार कोश की प्रस्तावना।

भाषाशुद्धि के मूल तत्त्व

१. गीर्वाण भाषा का सभी संस्कृत शब्द-भंडार और संस्कृतनिष्ठ तमिल, तेलुगु से लेकर असमी, कश्मीरी, गौड आदि जो भारतीय भाषाएँ भगिनियाँ हैं, उनमें से मूल शब्द, ये सारे शब्द राष्ट्रभाषा के शब्दकोश का मूलधन हैं, स्वकीय शब्दों की पूँजी हैं।

२. हमारे राष्ट्रीय शब्द-भंडार में जिन वस्तुओं के विचारों के लिए सांकेतिक शब्द थे, हैं या निर्माण किए जा सकते हैं, उस अर्थ के लिए उर्दू, अंग्रेजी आदि परकीय शब्दों के प्रयोग न किए जाएँ। वैसे ही कुछ परकीय शब्द हम सबकी ढिलाई के कारण हमारी भाषा में घुस गए हों तो उनको खोजकर वे शब्द निकाल दिए जाएँ। अद्यतन विज्ञान के पारिभाषिक शब्द संस्कृत प्राकृतोत्पन्न शब्दों से निर्मित किए जाएँ।

३. जो परदेसी वस्तुएँ हमारे यहाँ नहीं थीं और इसी कारण उनके लिए हमारे स्वकीय पुराने शब्द नहीं मिलते और जिनके लिए उन परदेसी शब्दों के जैसे सुबोध स्वकीय शब्द तैयार करना कठिन होता है, ऐसे परदेसी शब्द अपनी भाषा में ज्यों-के-त्यों लेने में कोई हर्ज नहीं है; जैसे बूट, कोट, जैकेट, गुलाब, जलेबी, बुमरंग, टेबल, टेनिस आदि, तथापि अपने यहाँ आते ही अगर कोई ऐसी वस्तुओं को स्वकीय नाम देकर व्यवहार में लाएगा तो वह उत्तम कार्य ही होगा।

४. उसी तरह जगत् की किसी भी परकीय भाषा की एकाध शैली अथवा प्रयोग अत्यंत सरस और चटपटा लगा तो उसे आत्मसात् करने के लिए कोई रोकथाम नहीं होनी चाहिए।

□

मराठी भाषा का शुद्धीकरण
(पूर्वार्द्ध)

गत ढाई सौ-तीन सौ वर्षों में यानी मराठी भाषा के ऐतिहासिक काल में उसपर भ्रष्ट होने का प्रथम प्रसंग—जब वह भाषा बोलनेवाले लोगों को धर्मभ्रष्ट होने का प्रथम प्रसंग आया होगा, तब ही आया होगा। अलाउद्दीन खिलजी ने जब दक्षिण देश जीत लिया और मुसलिम धर्म हिंदू लोगों को अपने कब्जे में लाने के लिए दीर्घ और क्रूर प्रयत्न कर रहा था, तब उसके अर्धचंद्र के अस्पष्ट प्रकाश में हिंदू राज्यश्री को स्पष्ट दिखाई दिया कि उसके दिन का अब अस्त हो रहा है। उसका मुख म्लान हुआ, तभी मुसलमानी भाषा हिंदू भाषा को भी अपने कब्जे में लाने का प्रयत्न करने लगी।

मुसलमानों की अपनी भाषा ही नहीं है

मुसलमान हिंदुस्थान में अपनी कोई भाषा नहीं लाए थे। ये लोग अंग्रेजों की तरह किसी एक देश के, एक राष्ट्र के लोग न होने के कारण उनकी सभी की मिलकर एक भाषा नहीं थी। पठान, तुर्क, अरब, ईरान आदि प्रदेशों की जो अनेक जातियाँ और राष्ट्र समय-समय पर हिंदुस्थान पर आक्रमण करने आईं, उनकी पुश्तु, ईरानी आदि अलग-अलग भाषाएँ थीं। इतना ही नहीं, उन भाषाओं में परस्पर द्वेष और तिरस्कार, जो मराठी और अंग्रेजी भाषाओं में वास करता है, उससे कई गुना अधिक था। ऐसा कहा जाता है कि एक बार मुहम्मद पैगंबर के पास एक परदेसी आदमी आया। मुहम्मद ने अरबी भाषा में उससे पूछा, 'तुम कौन हो?' उसने पुश्तु भाषा में उत्तर दिया, 'मैं एक पठाण हूँ, हमारा देश ईरान के परली तरफ है।' पठान के वे कंठ्य और भर्राए हुए शब्द सुनने पर कुछ भी समझ में न आने के कारण मुहम्मद ने चिढ़कर कहा, 'या अल्लाह, यही वह नरक की भाषा होगी।'

अरबी, ईरानी, पुश्तु इत्यादि भाषाओं में इतना वितुष्ट होने पर भी अरबी भाषा मुसलमानों के धर्मग्रंथ की—कुराण की—भाषा होने के कारण और कुराण केवल अरबी भाषा में ही पढ़ा जाए। अगर अर्थ समझ में न आया तो भी वह अरबी में ही पढ़ा जाए। इतना ही नहीं, उसका अनुवाद करना और वह अनुवाद पढ़ना—दोनों कुराण-पठन की दृष्टि से विकल्प नहीं हो सकते, वे प्रार्थनाएँ भगवान् तक नहीं पहुँचतीं, ऐसा कहनेवाले और कुछ तो—कुराण का अनुवाद करना भी पाप है, यह प्रतिपादन करनेवाले मौलवी अभी तक सैकड़ों, सहस्रों की संख्या में जीवंत होने के कारण मुसलमानों की सभी भाषाओं पर अरबी का वर्चस्व काफी है। अरब स्थान से जब मुसलमान ईरान में घुस गए और सारे ईरान पर अपने धर्म का प्रचार कुछ तलवार से, कुछ लालच दिखाकर तथा कुछ उपदेश से किया और उन्होंने सारा ईरान मुसलमानमय बनाया, तब ईरान की पुरातन ईरानी भाषा ने अरबी भाषा पर धार्मिक क्षेत्र छोड़कर अन्य सभी विषयों में अपना संपूर्ण वर्चस्व स्थापित किया।

अखिल मुसलमानों की एक भाषा होना संभव नहीं है

पर्शियन और अरेबियन दो भाषाएँ आजकल के मुसलमानी राष्ट्रों की प्रमुख भाषाएँ हैं। मुसलिम संस्कृति की वे दो आधारस्तंभ हैं। लैटिन और ग्रीक—ये दोनों भाषाएँ यद्यपि यूरोपीय संस्कृति का मुख्य आधार हैं। फिर भी यह कह नहीं सकते कि यूरोप की एक ही भाषा है, वैसे ही अरबी और पर्शियन भाषा में मुसलिमों की संस्कृति व्यक्त होती है। इसलिए उनकी एक भाषा है या एक भाषा थी—ऐसा नहीं कहा जा सकता। आज जैसे-जैसे पुरानी धर्मांध भावना थोड़ी कम हो रही है और राष्ट्रीय भावना का उदय हो रहा है, वैसे-वैसे उस प्रत्येक राष्ट्र को अपनी-अपनी राष्ट्रीय भावना का अभिमान अरबी से भी अधिक होता है। तुर्कस्तान ने तो खुलेआम प्रतिज्ञा की है कि तुर्की भाषा पर अरबी भाषा का होनेवाला प्रभुत्व नष्ट कर देंगे। अत: पाठशालाओं में बहुतांश में अरबी पढ़ाना बंद कर दिया गया है। अफगानिस्तान भी अपना राजकीय कारोबार पर्शियन या अरबी में रखना बंद करके अपनी पुश्तु भाषा में रखने लगा है। इस तरह सभी मुसलमानों की एक भाषा कभी नहीं थी—यह जितना सत्य है, उतना ही यह भी सत्य है कि सभी मुसलमान एक होकर अपनी भाषा अरबी भाषा ही करेंगे, यह संभव नहीं है। भविष्य में यह पैन इसलामी धर्मांध आशा सफल होने के लक्षण बिलकुल नहीं दिखाई देते।

उर्दू की उत्पत्ति

मुसलमानों की अपनी कोई भाषा नहीं थी। जब उनकी टोलियाँ और सेना

हिंदुस्थान में स्थिर होने लगीं और राज्यों की स्थापना करने लगीं, तब वहाँ के लोगों की भाषा से उनकी टोलियों की भिन्न-भिन्न भाषाएँ सम्मिश्रित होने लगीं। किसी भी राष्ट्र को जित राष्ट्र में राज्य शासन चलाने के लिए आवश्यक विचारों का आदान-प्रदान दो प्रकारों से करना संभव है। एक तो जित राष्ट्र पर अपनी भाषा थोपकर या स्वयं जित राष्ट्र की भाषा सीखकर। मुसलिमों के जैसे मुट्ठी भर लोगों ने इस देश में पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थिर निवास करने के कारण और उन मुसलमानों में अधिक मुसलमान हिंदू समाज के धर्मभ्रष्ट मुसलमान होने के कारण तथा उनकी संस्कृति एवं भाषा में हिंदू संस्कृति पर या भाषा पर पूर्ण वर्चस्व स्थापित करने के लिए लगनेवाला सामर्थ्य न होने के कारण अथवा उतना श्रेष्ठत्व न होने के कारण उन्हें हिंदू लोगों की ही भाषा सीखकर यहाँ शासन करना पड़ा।

परंतु आज अंग्रेज लोगों के घर में नौकरी करनेवाले बावरची की भाषा के संबंध में जो स्थिति होती है, वैसी ही स्थिति मुसलमानों द्वारा सीखी हुई हिंदुओं की भाषा की हुई। बावरची के साथ बोलते समय अंग्रेज साहब हिंदी में ही बोलते हैं, पर नाम और विशेषण अंग्रेजी में ही कहते हैं; वैसे ही मुसलमानों ने हिंदू नौकरों से हिंदी भाषा में बोलते समय अपनी अरबी, पर्शियन और तुर्की भाषा के नाम और विशेषण घुसेड़ दिए। इसका परिणाम यह हुआ कि जैसे अंग्रेजी से बावरची अंग्रेजी उत्पन्न हुई, वैसे ही हिंदी भाषा से उर्दू भाषा उत्पन्न हुई। 'उर्दू' शब्द से ही उस भाषा की मिश्रित या सम्मिश्रत प्रकृति का बोध होता है। मुसलमान लोग प्रथमतः मुसलमानी सैनिक संघों के रूप में हिंदुस्थान में जब घुस गए, तब उनके सैन्य शिविरों में हजारों हिंदू नौकर-चाकर, दास-दासियाँ आदि काम करते थे। उनके संपर्क से हिंदी भाषा का प्रचार हुआ और उसी भाषा में बोलते-बोलते अरबी, पर्शियन प्रयोगों से नामों की, विशेषणों की भरमार हुई और विकृत हिंदी अस्तित्व में आई। उस छावनी की हिंदी को उर्दू नाम प्राप्त हुआ। 'उर्दू' शब्द का तुर्की अर्थ लश्कर या सेना है। अंग्रेजी में 'हार्ड' शब्द भी उसका रूपांतर होकर अंग्रेजी में घुस गया है।

मुसलमान लोग प्रथमतः पंजाब या सिंध के बाजू से हिंदुस्थान में घुसकर दिल्ली के पास स्थिर हुए। अतः उनको वहाँ की अत्यंत साधारण हिंदी भाषा यानी उस काल के पूर्व स्वरूप में सीखनी पड़ी। आजकल मुसलमान लोग हिंदुस्थान में जो भाषा बोलते हैं, वह वास्तव में हिंदी ही है। उत्तर हिंदुस्थान में काशी के नजदीक के बड़े-बड़े ब्राह्मण पंडितों के घर-परिवार में हिंदू लोगों की हिंदी ही मातृभाषा थी। इस कारण उनको यह बताना नहीं पड़ता कि मुसलमान जो भाषा बोलते हैं, वह हिंदी ही है, हिंदू लोगों की ही है। दक्षिण की तरफ हिंदू लोग मराठी, कन्नड़ आदि भाषाएँ बोलते हैं। जब एकाध मुसलमान कभी-कभी हिंदी बोलने लगता है तो

हममें से सैकड़ों लोगों को लगता है कि यही 'मुसलमानी भाषा' है। यह बहुत बड़ी गलती है। 'इधर आओ, उधर जाओ' यह मुसलमानों की भाषा न होकर हिंदुओं की हिंदी भाषा है।

उर्दू यानी विकृत और म्लेछीकृत हिंदी है

अगर वास्तव में देखा जाए तो उर्दू भी स्वतंत्र भाषा न होकर हिंदी भाषा का विकृत रूप है। उर्दू के सभी विभक्ति प्रत्यय यानी कारक प्रत्यय, नाम, विशेषण, सभी धातु साधित, लिंगविचार, कहावतें, मुहावरे, वाक्य-रचना सभी व्याकरण हिंदी का ही है। उसमें केवल 'सूर्य' को 'आफताब' कहेंगे, राज्य क्रांति को 'इनकलाब' कहेंगे, गुरु को 'उस्ताद' कहेंगे, यानी नाम और कुछ विशेषण परकीय अरबी या पर्शियन भाषा के हैं, वे भी अभी-अभी जब मुसलमानों में हिंदू संस्कृति के खिलाफ दुराग्रह उत्पन्न होने लगा, तब से जानबूझकर घुसेड़ दिए गए हैं। अब निजामशाही के मुसलमानी विश्वविद्यालय में उर्दू को हिंदी भाषा से जितनी दूर ले जा सकते हैं, उतनी दूर ले जाने के भगीरथ प्रयत्न प्रारंभ हो गए हैं; परंतु हिंदी आम के बीज से उत्पन्न पेड़ को अरेबिया की रेत की कितनी भी खाद क्यों न डालें, वह पेड़ जब तक जिंदा रहेगा, तब तक हिंदी आम का पेड़ ही रहेगा, यह बात निश्चित है।

हिंदी की दुःस्थिति या दुरवस्था

फिर भी हिंदी भाषा की जड़ में यह अरेबियन रेत की खाद डालते रहने का क्रम सदैव जारी रहा तो हिंदी भाषा जल्द ही मरणोन्मुख हो जाएगी, यह सत्य है। पंजाब में, उत्तर हिंदुस्थान में या सिंध में यह संकट उन भाषाओं का कैसे गला घोंटता रहा, उसका सबूत यह है कि उन भाषाओं में प्रयुक्त पचास प्रतिशत शब्द अरेबियन, पर्शियन या तुर्की हैं। उन शब्दों की पकड़ से मुक्त होने का प्रयत्न करते हुए भी वहाँ के नेताओं को यह बात सफलता से नहीं बन पाई है। ऐसे कितने ही आर्य समाजी नेता हैं, जिनके मन में यह बात स्पष्ट है कि पंजाबी और हिंदी भाषा को इस अरेबियन भाषा के आक्रमण से बचाया जाए और हिंदी भाषा का 'शुद्धीकरण' किया जाए; परंतु ये शुद्धीकरण के विचार वे अगर अभिव्यक्त करना चाहते हैं तो उन्हीं अरेबियन शब्दों की शरण लिये बिना वे एक वाक्य भी नहीं लिख सकते और वह भी पर्शियन उलटी लिपि में लिखना पड़ता है। वहाँ हिंदू लिपि मारी गई है। सिंध में रामायण सार धार्मिक लोग पढ़ते हैं तथा गीता की सिंधी टीका भी पढ़ते हैं, पर वह पर्शियन 'अलेफ', 'बे', 'ते' की लिपि में। नागरी लिपि या अन्य हिंदू लिपि

की पहचान सुशिक्षित सहस्रों में से एकाध व्यक्ति को ही होगी और दूसरी लिपि में लिखने का साहस तो एकाध भी नहीं कर सकता।

मराठी पर आया हुआ प्रथम संकट और उसका प्रथम प्रतिकार

यही स्थिति अलाउद्दीन खिलजी के दक्षिण की तरफ आने के बाद दाक्षिणात्य हिंदू भाषाओं की हुई होती, करीब-करीब होती ही आई थी; परंतु श्री शिवराजा के स्वराज्य स्थापना के प्रयत्न से हिंदू जनता में नवजीवन की लहर उत्पन्न हुई, उसके कारण यह दु:स्थिति समाप्त हुई और मराठी पर आया हुआ पहला संकट, पहला आक्रमण टल गया। छत्रपति शिवाजी महाराज ने भी रघुनाथ पंडित के द्वारा 'राज्य-व्यवहार कोश' लिखवा लिया और राज्य कारोबार मराठी में करना आरंभ किया। संस्कृत भाषा के अध्ययन को प्रोत्साहन देकर मराठी को इसलामी प्रभाव से मुक्त करने का प्रयत्न किया। धीरे-धीरे उसका परिणाम भी अच्छा ही हुआ। नानासाहब पेशवा के उत्तर हिंदुस्थान के पत्र में अथवा अंत में मोरोपंत की शुद्ध, सरल और म्लेच्छ शब्द संपर्क से अकलुषित सुंदर कविता में दिखाई देनेवाला शुद्ध स्वरूप मराठी को प्राप्त हुआ। स्वराज्य-क्षय के बाद भाषाशुद्धि का आंदोलन भी बंद हुआ। श्री शिव छत्रपति से मोरोपंतजी तक मुसलिम शब्दों को भाषा से निकाल फेंकने के जो प्रयत्न चल रहे थे, तब भी राजनीतिक और व्यावहारिक विषयों के अनेक शब्द इतस्तत: लुक-छिपकर रह ही गए। वे तब से आज तक वैसे ही हैं।

मराठी पर दूसरा आक्रमण और प्रतिकार

मुसलमानों के आक्रमण के बाद मराठी भाषा पर विदेशी या परकीय भाषा का आक्रमण अंग्रेजी भाषा का हुआ। पहला मुसलमानी आक्रमण रोकने का श्रेय छत्रपति शिवाजी महाराज तथा उनके उत्तराधिकारियों ने पाया, वैसे ही मराठी भाषा पर दूसरा आक्रमण रोकने का श्रेय निबंधमालाकार ने प्राप्त करके अपने को मराठी भाषा के शिवाजी की सार्थक उपाधि प्राप्त की। शास्त्रीजी ने जाग्रत् किया हुआ स्वराष्ट्राभिमान का तेज, पानी महाराष्ट्रीय लेखनी को लग गया और प्रत्येक वाक्य में अंग्रेजी शब्द घुसेड़ देने में ही ज्ञान की और सुधार की चरम अवस्था माननेवाले छिछोरे लोगों से मराठी भाषा अलिप्त रही। वही परंपरा आगे चल रही है। आज सारे हिंदुस्थान में व्यावहारिक ही क्यों, पारिभाषिक शब्द भी शक्यत: अंग्रेजी का न लाते हुए स्वभाषा के ही शब्द होने चाहिए—इस तरह का दृढ़ निश्चय और उसके अनुसार थोड़े प्रमाण में भी क्यों न हो, कार्य भी धीरे-धीरे ही हो रहा है।

अंग्रेजी भाषा का आक्रमण होते ही उसका प्रतिकार करके उसे लौटाने की

व्यवस्था करने के कारण वास्तविक रूप से मराठी भाषा का यह दूसरा शुद्धीकरण करने के लिए विशेष प्रयास नहीं करने पड़े; परंतु मुसलमानी शब्दों का वर्चस्व मराठी पर इतना भयंकर और दीर्घकालीन था कि उसका निर्वासन करने के प्रयत्न प्रारंभ में ही शुरू हो गए थे। बीच के काल में वे प्रयत्न एकदम शिथिल हो गए। इसलिए आज फिर से वे ही प्रयत्न अपरिहार्य हो गए हैं। आज जब हम मराठी भाषा के शुद्धीकरण के प्रयत्नों की बात कर रहे हैं, वह शुद्धीकरण विशेषतः इन मुसलमानी शब्दों का ही है। ये शब्द अपने घर-द्वार में चोर की तरह घुसकर मालिक की तरह सिर चढ़े हो गए हैं।

परकीय शब्दों का स्वकीय शब्दों पर होनेवाला वर्चस्व

उदाहरण के लिए 'मालिक' शब्द लीजिए। 'घर का मालिक, द्वार का मालिक आदि अनेक प्रकार से मालिक' शब्द आबालवृद्धों के मुँह में बैठ गया है। इतना ही नहीं, वह परकीय शब्द है और इसीलिए उसको टालने की इच्छा होते हुए भी झट से वह शब्द मुँह से निकल जाता है।

हमने ऐसे अनेक लोग देखे हैं कि अगर 'मालिक' शब्द उपयोग में नहीं लाना है तो उसी अर्थ का दूसरा कौन सा स्वकीय शब्द उपयोग में लाया जाए—यही उनकी समझ में नहीं आता। उस शब्द का इतना वर्चस्व हम पर है। गुजरात और उत्तर हिंदुस्थान में तो पूछना ही क्या? वहाँ भगवान् को भी 'मालिक' कहते हैं। हमारे सामने प्रभु, देव, ईश्वर शब्दों का उपयोग करने की प्रतिज्ञा करके भी उनमें से सैकड़ों लोग फिर से 'हे मालिक!', 'मालिक करेगा सो सच' इत्यादि शब्दों का प्रयोग झट से करते हैं। हम जितनी सहजता से 'हे भगवन्!' कहते हैं, उतनी ही सहजता से वहाँ का वेदशास्त्रसंपन्न ब्राह्मण उसी अर्थ में झट से कह देता है, 'हे मालिक!' मालिक यानी स्वामी, प्रभु! 'स्वामी' और 'प्रभु' जैसे इतना आसान, हलका सा, सुविधाजनक और सुंदर स्वकीय शब्द होते हुए भी क्यों हम उस परकीय शब्द का इतना वर्चस्व चलने देते हैं?

वही स्थिति 'जख्मी' शब्द की है। अमुक लोग जख्मी हुए—इस वाक्य में होनेवाला 'जख्मी' शब्द अगर निकाल देना हो तो झट से उसके लिए प्रतिशब्द सूझता नहीं है। जख्मी यानी घायल, विक्षत। जख्म यानी घाव, क्षत, व्रण। यह बताने पर भी वह शब्द मुख से ही नहीं, लेखनी से भी नहीं उतरता है। 'रामायण' के अनुवाद में भी 'श्री प्रभु रामचंद्र' के धनुष से छूटे हुए अमोध शर ने उस दैत्येंद्र को जबरदस्त जख्मी किया—ऐसे सम्मिश्र वाक्य आमतौर पर आ जाते हैं। जख्म की जख्म मराठी के हाड़ मांस में इतनी गहरी घुस गई है।

तीसरा उदाहरण है 'हवा' शब्द का। इस 'हवा' शब्द ने मराठी का सारा वातावरण दूषित कर दिया है; वातावरण ही नहीं, पानी तक दूषित किया है; क्योंकि कहीं का भी पानी कैसा है, यह प्रश्न सामने आने पर हवा उसके पीछे हाथ धोकर पड़ी है। धर्ममार्तंड भी यह प्रश्न पूछते हैं कि काशी क्षेत्र का हवा-पानी कैसा है? और 'हवा बदली करने के लिए' अथवा 'हवा खाने के लिए' के जैसे वाक्यांश धर्माचार्यों की मठ में ही नहीं, मुख में भी बिल बनाकर बैठे हैं। 'हवा-पानी' शब्द का परिणाम हमारी मराठी के आरोग्य पर इतना बुरा पड़ा है कि 'हवा' शब्द की जगह 'वायु' शब्द लिखते या बोलते ही उसका पानी उतर जाता है। वह जब 'हवा' खाने के लिए चली जाती है, तब उसका श्वासोच्छ्वास ठीक चलता है, पर 'वायु' खाने के लिए चलिए—कहते हैं, तो श्वासोच्छ्वास की क्रिया आश्चर्य से स्तंभित हो जाती है।

काव्य में कठिनाई

सैकड़ों मुसलिम शब्द आज तक हमारी मराठी भाषा में इतने प्रबल हुए हैं कि उन्होंने उस अर्थ के हमारे पुराने शब्दों का नामोनिशान तक मिटा दिया है। जो नए, पर विदेशी शब्द भाषा में रूढ़ हुए हैं, वे बहुधा अपनी भाषा के स्वभाव और प्रौढ़ता के लिए इतने अपरिचित और अयोग्य हैं कि व्यवहार से साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण करते ही उनकी विक्षिप्तता प्रकट होती है। जिन्होंने प्रचलित विषयों पर कविता लिखने का प्रयास किया हो, उनको अनुभव होगा कि यह कैसी कठिनाई होती है। कविता में 'हवा' शब्द कितना भी रँद (रँदना—लकड़ी को घिस-घिसकर चिकना बना रधणे—राँधा मराणे) कर ले लिया, तो भी वह कविता के लिए उतना उपयुक्त नहीं होता। 'रजा' ले ली है, यह विचार प्रदर्शित करने लगे तो 'रजा' का मूल लुप्त शब्द और आगंतुक पर धनी होनेवाला प्रयुक्त शब्द 'रजा' कुछ भी करने पर कविता के कोमल स्वभाव को न भानेवाला होने के कारण मूक होकर उन विचारों को ही 'रजा' लेनी पड़ती है। 'गीता-रहस्य' ग्रंथ में 'ब्रह्मशिवाय' शब्द खुलेआम उपयोग में ला सकते हैं। फिर भी कविता में वह शब्द-युति कितनी अप्रौढ़ और सम्मिश्र हो जाएगी, यह कहने की आवश्यकता नहीं है। हमने ऐसा अनुभव किया है कि अनेक बार व्यवहार में 'यादी', 'हजर' आदि इसलामिक शब्द जिस अर्थ में रूढ़ या प्रचालित हुए हैं, वह अर्थ कविता में व्यक्त करना कठिन हो जाता है। मुसलमानी व्यवहत शब्द कविता के लिए उपयुक्त नहीं होता। तदर्थक संस्कृत शब्द प्रयुक्त करने पर उसपर टिप्पणी लिखे बगैर पाठक की समझ में नहीं आता।

आज का कर्तव्य और उसके बारे में लोगों की अपेक्षा

ऐसी स्थिति में मराठी का पंगुपन दूर करने के लिए श्री शिवाजी महाराज द्वारा प्रारंभ किया हुआ, कवि श्री मोरोपंतजी से समर्पित, निबंधमालाकारजी द्वारा पुनरुज्जीवित किया हुआ भाषाशुद्धि का कार्य करना चाहिए और स्वभाषा में बची-खुची गंदगी धोने के लिए प्रयत्नशील होना प्रत्येक स्वभाषा-प्रेमी का कर्तव्य है; परंतु आश्चर्य की बात यह है कि आजकल मराठी भाषा में अंग्रेजी शब्द घुसेड़ने के प्रयत्न काफी सुसंगत रूप से चल रहे हैं और निष्कारण घुसे हुए तथा अब सरचढ़े होकर रहनेवाले मुसलमानी शब्दों की गंदगी धो डालने की तरफ किसी का भी ध्यान नहीं रहता। इतना ही नहीं, कई लोग यह समझकर उनको उपयोग में लाना भूषणा मानने लगे हैं कि उन शब्दों में अद्‌भुत मंत्रशक्ति भरी हुई है।

पुरानी मराठी की विपर्यस्त कल्पना और शाहिरी कविता

पुराने जमाने में मुसलिम शासनकाल में घुसे हुए जो म्लेच्छ शब्द पेशवाई में पाए जाते थे, परंतु सुदैव से उसके बाद जो लुप्तप्राय हो गए और उनके स्थान पर तदर्थक मूल और सुंदर शब्द पुन: रूढ़ हुए, उन म्लेच्छ शब्दों को जानबूझकर 'पुरानी मराठी' कहकर खोदकर निकाला जा रहा है और उन शब्दों को आज की मराठी में घुसेड़ने का जो प्रयत्न कुछ लोग कर रहे हैं, उसके लिए समझ में नहीं आता कि हँसें या रोएँ? इसी विपरीत कल्पना से प्रेरित 'शाहिरी कविता' नाम का एक नया पाखंड निर्मित हो रहा है। पुराने 'पोवाड़ों' की कल्पना के अनुसार नहीं, वह तो क्षम्य और उचित ही था। अगर काव्य लिखना है तो उसमें होनेवाली म्लेच्छ शब्द-दूषित भाषा का भी अनुकरण करने की हवस मन में रखकर हम कुछ अद्वितीय काम कर रहे हैं। ऐसा बोध आजकल अनेक स्थानों पर फैलने लगा है—यह बोध जितना शीघ्र छोड़ सकेंगे, उतना ही अच्छा है।

'शाहिरी' कविता में जो एक शान है, जीवंतता है, वह उसमें होनेवाले म्लेच्छ शब्द प्रयोग से प्राप्त नहीं हुई है, वह उस काल के राजनीतिक जीवन की जीवंतता से आई है। वह शान या जोश उन शब्दों में न होकर उसमें वर्णित अर्थ में है। जो पुरुष पराक्रम करते हैं, उन पुरुषों के पराक्रम के स्मृतिचित्र उन कविताओं में होते हैं और वह पराक्रम का काव्य, वीररसपूर्ण काव्य सुनते समय मन स्फूर्ति प्राप्त करता है, उत्तेजित होता है। इसी कारण वह काव्य सरस, रसपूर्ण लगने लगता है, जीवंत लगता है। वह सरसता उनमें होनेवाले म्लेच्छ शब्दों के कारण नहीं है, उलटे यही म्लेच्छ शब्द उनमें होनेवाले वीर रस का या स्वातंत्र्य रस का कभी-कभी थोड़ा सा रसभंग ही करते हैं। क्योंकि खड़ी नामक स्थान पर जो

लड़ाई हुई थी, उसके वर्णन के 'पोवाड़े' में ऐन विजय की कड़कड़ाहट में जब मुसलमानी शब्दों की मार कानों पर हो जाती है, तब मुसलमानी तोपों की मार मराठा वीर सैनिकों द्वारा बंद करने से प्रतीत होनेवाली कृतार्थता थोड़ी अधूरी ही लगने लगती है।

फिर भी पराक्रम के उस जीवंत काल में वह सब कुछ शोभायमान होता था, पर अब वह जीवंत राजनीति भर जाने के कारण वह वीर रस केवल उन शब्दों के आधार पर पूर्णता से फिर लाने का प्रयत्न पागलपन होगा। जब वीर जनकोजी खड़ी तलवार से रण में युद्ध के लिए उतरे, तब उनके बदन पर के आघात-प्रत्याघातों से रक्तरंजित और खड्गशीर्ण वस्त्र भी शोभा प्राप्त कर रहे थे; पर अगर इसीलिए किसी मोम के पुतले पर वे वस्त्र या उसी तरह के वस्त्र पहनाए जाने लगे, तो वह वीर जनकोजी नहीं होगा, वह वीर जनकोजी का केवल निर्जीव पुतला ही होगा। फिर भी जहाँ तक संभव हो सके, हम पुरानी मराठी की वह सुलभता, सहजता, शक्तिमानता का अनुकरण करने का प्रयत्न करेंगे ही, पर वह पुरानी मराठी का, मुसलमानी मराठी का नहीं।

पुरानी 'शाहिरी' कविता में होनेवाले मुसलमानी शब्द चुनकर जहाँ तक हो सके, निकालने की बजाय उस कविता का वह लांछन उसकी तेजस्विता में लुप्त हो जाता है। फिर भी उनको निकाल देने की जगह, वे शब्द ही मानो उसका भूषण, मर्म, जीवंतता लक्षण हैं, यह समझकर उसका अनुकरण करना और मृत शब्दों को पुनरुज्जीवित करना भी मराठी भाषा पर आया हुआ संकट फिर से आमंत्रित करने के जैसा होगा।

'शाहिरी' शब्द भी त्याज्य ही है। शाहिर यानी कवि। अत: शाहिरी कविता का अर्थ होता है कवियों की कविता। 'शाहिरी' शब्द से जिस विशिष्ट संप्रदाय का बोध होता है, वही बोध 'भाट' और 'गोंधळी' शब्द में पूर्णता से व्यक्त होता है। अगर किसी को ऐसा लगा कि वह अर्थ व्यक्त नहीं होता है, तो वह केवल आदत का परिणाम है। दो-चार वर्षों के प्रयोग से इन पुराने शब्दों से वही बोध प्रत्येक को होने लगेगा।

यह प्रश्न एकाध दूसरे शब्द का निश्चित रूप से नहीं है, यह प्रवृत्ति का प्रश्न है

यह प्रश्न—जिस प्रवृत्ति से सैकड़ों म्लेच्छ शब्द मराठी में सिरचढ़े हो बैठे हैं और 'शाहिरी' कविता के मूढ़ अनुकरण के आवेश में मृत विदेशी शब्द फिर से जिंदा हो रहे हैं—उस गलत 'प्रवृत्ति' का है। यह प्रवृत्ति जब तक नई है, तब ही तक

उसके दुष्परिणामों से मराठी की रक्षा करने के लिए वह पुराना शुद्धीकरण का आंदोलन फिर से शुरू करने की आवश्यकता है।

मुसलमानों की घातक महत्त्वाकांक्षा

मराठी के शुद्धीकरण का आंदोलन एक और कारण के लिए आज आवश्यक हो गया है। पिछले परिच्छेद में हमने बताया ही है कि जिस भाषा को हम दक्षिण में 'मुसलमानी' भाषा कहते हैं, वह भाषा मुसलमानी न होकर हिंदी ही है। यानी इस हिंदुस्थान में ही उपजी हुई है, यहीं समृद्ध हुई है और वह भाषा मुसलमान हिंदुओं से सीख गए हैं, परंतु वही भाषा देवनागरी लिपि में लिखने के बदले विदेशी पर्शियन लिपि में लिखने की भयानक पद्धति मुसलमानी राज्यों में प्रचलित हुई और उसी पद्धति का समर्थन राजा टोडरमल जैसे पुरातन हिंदू प्रशासक से लाला लाजपतराय जैसे अर्वाचीन लेखकों ने किया। उत्तर हिंदुस्थान के हजारों हिंदू लेखकों ने हेतुपूर्वक व विवश होकर उसको अंगीकार किया और मुसलमानों के संपर्क से उसमें अरबी, फारसी, तुर्की शब्दों की भरमार करना यानी लेखक की विद्वत्ता का प्रदर्शन करना है—यह कल्पना और रूढ़ि दृढ़ होती गई। वह आज हिंदी भाषा के उदर में ही बड़ी होने पर भी हिंदी भाषा के प्राणों से खेलनेवाली यह उसकी विकृति उर्दू भाषा के रूप में उसका ही गला घोंटने का प्रयत्न करने लगी है।

यह इच्छा मुसलमान समाज के मन में निर्मित होना स्वाभाविक ही है कि हिंदुस्थान के सभी मुसलमान लोगों की एक भाषा और एक ही लिपि हो। सभी हिंदुस्थानी राष्ट्र की एक भाषा और एक लिपि होनी चाहिए। इसलिए हमने अपनी महाराष्ट्र भाषा का यथार्थ अभिमान छोड़कर हिंदी भाषा को राष्ट्रीय भाषा बनाने के लिए गत तीस वर्षों तक दिन-रात प्रयत्न किए हैं, हमको सभी मुसलमानों की एक भाषा होने पर आनंद ही हो जाएगा, परंतु वह भाषा स्वदेशी होनी चाहिए। मुसलमानों की आकांक्षाएँ आजकल राजनीति में राष्ट्रविरोधी स्वरूप धारण करने लगी हैं, वैसे ही भाषा के विषय में भी परहितकारी होने लगी हैं। जिस देश का वे अन्न खाते आए हैं, पानी पीते आए हैं, उस देश की भाषा की अपेक्षा अरेबियन, पर्शियन, तुर्की जैसी विदेशी भाषा को हिंदुस्थान में लाकर हिंदी भाषा को ही अरेबियन भाषा बनाने का जी-तोड़ प्रयत्न उन्होंने स्थान-स्थान पर शुरू किया है।

लज्जास्पद बात-हिंदू लेखक भी उर्दू को ही परिपुष्ट कर रहे हैं

अलीगढ़ कॉलेज और निजाम यूनिवर्सिटी ने तो उर्दू भाषा को हिंदी भाषा से यथाशक्ति दूर छीनकर अरेबियन और पर्शियनों के घर में बाँध रखने का बीड़ा ही

उठाया है। पंजाब, सिंध, अयोध्या, इलाहाबाद आदि प्रदेशों में सैकड़ों मुसलमान लेखक हजारों बड़े-बड़े हिंदू भाषाभिमानी और हिंदू लेखक उर्दू के सभी संस्कृतोत्पन्न शब्द चुन-चुनकर निकालकर तदर्थक अरेबियन शब्द उर्दू में घुसेड़ रहे हैं। 'खंभा' शब्द मुसलमानी बच्चों में, महिलाओं तक में प्रचलित है; पर जानबूझकर वे 'मस्तूल' कह देंगे। 'रक्षक' शब्द उर्दू में भी रूढ़ है, उसके स्थान पर 'मुहाफिज' कहेंगे। 'निर्धन' या 'कंगाल' के स्थान पर 'मुफलिस' कहेंगे। सीधे-सादे स्वदेशी शब्दों के लिए विदेशी बोझिल शब्द प्रयुक्त की हुई आजकल की मुसलमानी मासिक पत्रिकाओं तथा पुस्तकों की भाषा मुसलमानों तक की समझ में आना मुश्किल हो गया है।

हिंदू भाषा द्वेषी लेखकों के समान हिंदूभाषा विद्वेषी पाठक वर्ग तक निर्मित करने के लिए अलीगढ़ और निजामी यूनिवर्सिटी के हजारों छात्रों को प्रतिवर्ष यही विष घुट्टी में पिलाया जा रहा है। इतना ही नहीं, प्रत्येक शास्त्र की शिक्षा उर्दू में ही देने का निश्चय करके उसके लिए आवश्यक हजारों पारिभाषिक शब्दों के लिए अरेबियन शब्द खोज निकालने के लिए बड़ी-बड़ी समितियाँ तैयार करके लाखों रुपए खर्च हो रहे हैं। ये अरेबियन या अन्य विदेशी शब्द हिंदी मुसलमानों में लाखों में एक-दो की समझ में भी नहीं आते। बंगाली, मराठी मुसलमानों को वे अरबी शब्द संस्कृत पारिभाषिक शब्दों से भी अधिक अपरिचित लगते हैं, फिर भी कुछ लोगों ने नए पारिभाषिक शब्द संस्कृतोत्पन्न शब्द न लेकर उर्दू को हिंदी भाषा का और हिंदी स्वरूप का यथाशक्ति गंध तक न लगने देने का निश्चय किया है और उसको भ्रष्ट करके अरबीमय करने के राष्ट्रघातकी हठ से मुसलमानों के उत्तर की तरफ के नेता पारिभाषिक शब्द तैयार करने के लिए, अरबी भाषा संस्कृत भाषा से अल्प प्रसवक्षम होते हुए भी, अरबी शब्द ही प्रयुक्त करते हैं।

'उर्दू को राष्ट्रीय भाषा और पर्शियन लिपि को ही राष्ट्रीय लिपि कीजिए' कहनेवाला मुसलमानों का दुरभिमान

अगर वे अरेबियन पारिभाषिक शब्द पढ़ाने के बदले संस्कृतोत्पन्न शब्द पढ़ाएँगे तो बंगाल से रामेश्वरम् तक स्वदेशी भाषा बोलनेवाले मुसलमानों में वे शब्द अरबी परिभाषा की अपेक्षा अधिक सुलभ हो जाएँगे और सारे हिंदुस्थान की एक राष्ट्रीय भाषा बनाने के प्रयत्न में बहुत बड़ी सहायता होगी; परंतु हिंदुस्थान की कोई भी संस्कृतोत्पन्न भाषा या कोई भी स्वदेशी भाषा हिंदुस्थान की राष्ट्रीय भाषा नहीं होनी चाहिए, इसीलिए तो ये उत्तर की तरफ मुसलमान धर्मांध उर्दू के घोड़े अरेबिया की दिशा से इतने जोर से भगा रहे हैं और अब खुल्लमखुला बड़े साहस के साथ

कहने लगे हैं कि हिंदी को राष्ट्रभाषा का सम्मान नहीं देना चाहिए—उर्दू ही राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। काबुल के अमीर को लाकर हिंदुस्थान के राजसिंहासन पर बिठाकर मुसलमानी सुलतान का शासन स्थापित करना—यह उनका राजनीतिक ध्येय निश्चित है। दस वर्षों के अंदर हिंदूधर्म को भ्रष्ट करके देवालय में नमाज पढ़ने का उनका धार्मिक उद्देश्य है, वैसे ही हिंदू जिह्वा से अपवित्र हुई भाषा को पाँवों तले रौंदकर, कुचलकर हिंदुस्थान के वाक्यपीठ पर विदेशी भाषा का झंडा यथासंभव पक्का रोपने का उनका वाङ्मयिक ध्येय है।

इस ध्येय के संकट के कारण हिंदुओं की कुछ भाषाएँ तो करीब-करीब चूर-चूर हो गई हैं। ऊपर मैंने बताया ही है कि सिंध में हिंदी लिपि पूर्ण रूप से मारी गई है और वहाँ के हिंदुओं को मुसलमानी लिपि के सिवा कुछ लिखना ही नहीं आता। साहित्य में तो बात ही मत पूछिए। गुरु और शिष्य के जैसे एक सीधे-सादे शब्दों के लिए भी सिंधी लेखों में बड़े प्यार से अरबी शब्द लिखे जाते हैं। बड़े-बड़े एम.ए. और बी.ए. सिंधी विद्वानों को भी प्रकाश, मिश्रण, व्याख्या, गंभीर, अभ्युदय इत्यादि हमारे यहाँ बाल-बच्चों तक में रूढ़ संस्कृत शब्द सिखाने पड़ते हैं। पंजाब में यद्यपि इतनी बुरी स्थिति नहीं है। फिर भी हिंदू साहित्य की लगभग वही स्थिति है। अरेबियन, उर्दू के बिना किसी को न लिखना आता है, न बोलना ही आता है। 'समाचार-पत्र' बहुत थोड़े लोगों की समझ में आता है, पर 'अखबार' बच्चे तथा महिलाओं तक को मालूम है। यही स्थिति आगरा, अयोध्या आदि की तरफ हो गई थी। बड़े-बड़े हिंदू लेखक थे, पर उनकी लेखनियाँ अरेबियन, पर्शियन कीचड़ में धँसी हुई हैं।

शुद्ध हिंदी भाषा का पुनरुज्जीवन

ऐसी स्थिति में मुसलमानी उर्दू की उद्दंडता को रोककर उसके आक्रमण से हिंदी भाषा को मुक्त करने के महत्कार्य को प्रारंभ करने में पहले से ही देर हुई है। आज जिस गति से यह महत्कार्य आगे बढ़ रहा है, उससे अत्यधिक गति से अथवा दृढ़ निश्चय से वह महत्कार्य नहीं किया गया तो उत्तर की तरफ हिंदुस्थान को मुसलमानी उर्दू के बिना दूसरी राष्ट्रभाषा बने रहने की मुसलमानी आकांक्षा सफल होती; परंतु सौभाग्य से हिंदी भाषा का पुनरुज्जीवन करने के प्रयत्न यकायक सभी दिशाओं से ऐसी निष्ठा से प्रारंभ हुए हैं कि इस समय हिंदू हिंदी लेख में एकाध दूसरा भी अरेबियन तथा अन्य विदेशी भाषा का शब्द न आने देने के कार्य में बहुत ही होड़ सी लगी है। इस तरह के अविश्रांत परिश्रम से आज की हिंदी बहुत कुछ शुद्ध और विदेशी शब्दों के आक्रमण से निमुक्त हुई है। यह स्वाभाविक ही है

कि हिंदी के इस निर्मल रूप को देखकर मराठी को इस बात पर शर्म आने लगी है कि अपने बदन पर होनेवाले विदेशी छींटे अब तक वह धो नहीं पाई है। बंगाल की भी यही स्थिति है। घर-बार में घुसे हुए मुसलमानी शब्दों को चुन-चुनकर बाहर निकाला जा रहा है। यद्यपि मुसलमानी 'हवा' हमारे श्वासोच्छ्वास में अभी तक बस गई है। फिर भी हिंदी में उसके स्थान पर 'वायु' शब्द रूढ़ होता जा रहा है। यहाँ की 'जलवायु कैसी है ?' या 'इस स्थान पर वायु दमघोंटू है', 'चलिए, अच्छी वायु-सेवन करने के लिए चलिए।' इस तरह के प्रयोग मुसलमानी 'हवा' से प्रदूषित कर्णेंद्रियों को अच्छे नहीं लगते। फिर भी वे हिंदी और बंगाली लिखित भाषा में तो एकदम रूढ़ हो गए हैं। 'हवा' के जैसे हजारों भ्रष्ट शब्दों का उच्चाटन होकर आज बँगला और हिंदी गद्य इसका परिपक्व शुद्ध और बलशाली हुआ है कि उर्दू का वर्चस्व उनपर पुनः स्थापित होना अधिकाधिक अशक्य होता जा रहा है।

उर्दू शब्दों के प्राणघातक इसलामी स्पर्श से स्वभाषा को मुक्त और शुद्ध करने के आंदोलन की यही लहर पंजाब में भी प्रवेश कर रही है। एक तरफ आर्य समाज द्वारा स्वभाषा की उन्नति के लिए किए हुए अविश्रांत परिश्रम और दूसरी तरफ सिखों के जनजागरण के कारण उनकी शुद्ध 'गुरुमुखी' पंजाबी के शुद्धीकरण के लिए किए गए दृढ़ प्रयत्न—इन दोनों आंदोलनों के कारण पंजाब में भी अरेबियन आदि विदेशी भाषा के द्वारा काट-काटकर जीर्ण पंजाबी हिंदू साहित्य के हृदय के घाव पुनः संस्कृत वाणी के जीवन-स्पर्श से भरने लगे हैं। इस तरह उत्तर की तरफ इसलामी अतिरेकी महत्त्वाकांक्षा की उतनी ही प्रबल प्रतिक्रिया निर्मित हुई है और हिमालय से गंगा-संगम तक पंजाबी, हिंदी इत्यादि भ्रष्ट भाषाओं के शुद्धीकरण का कार्य वहाँ के भ्रष्ट मलकाना राजपूतों के शुद्धीकरण के जैसे जोर से चल रहा है। स्वामी श्रद्धानंदजी के नेतृत्व में पचास सहस्र मलकाना मुसलमानों को फिर से हिंदू बनाया गया है। सिंध में भी इस आंदोलन की दुंदुभी बजने लगी है।

महाराष्ट्र को पीछे नहीं रहना चाहिए

इस समय महाराष्ट्र का यह कर्तव्य है कि उनके उन स्वाभिमानपूरित प्रयत्नों की सहायता करे। उन्होंने उनके साहित्य से खदेड़े हुए विदेशी शब्दोच्चारों को हम अपनी मराठी के घर में घुसने का अवकाश न दें। उनकी भाषाएँ जब म्लेच्छ भाषा के दास्य की शृंखलाएँ भूषणभूत नूपुर समझकर पाँवों में छमछमा रही थीं, तब मराठी में छत्रपति शिवाजी महाराज की स्फूर्ति से उन शृंखलाओं को तोड़ने के लिए उसपर शुद्धीकरण के घनाघात किए; पर अब, जब वहाँ की सभी हिंदू भाषाएँ संस्कृत की गंगा में नहाकर, विदेशी भाषा का कलंक धोकर, सुस्नात होकर निष्कलंक

घाट पर चढ़ रही हैं, तब मराठी भाषा उसपर पुनः फेंके हुए और संचित विदेशी शब्दों का कीचड़ न धोते हुए बिना स्नान किए, गंदी ही रहकर उनमें घुल-मिल जाना चाहेगी तो क्या वे उसका यथार्थ उपहास न करेंगी?

इसलिए उत्तर की तरफ के प्रगतिशील बँगला और हिंदी भाषाओं से उत्तमत्व में, शुद्धत्व में और सुसंस्कृतत्व में अगर मराठी को हारना नहीं है तो उसको उनके जैसे अपने साहित्य में घुसे हुए और जिनको चुनकर नष्ट करने के लिए पुराने जमाने में श्री शिवाजी महाराज से लेकर अपने सभी स्वाभिमानी पूर्वज प्रयत्न करते आए हैं, वे मुसलमानी विदेशी शब्द, अपनी लेखनी को या वाणी को भ्रष्ट न करेंगे—ऐसी सावधानी रखनी होगी—इस तरह की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। श्री शिवाजी महाराजादिकों के राज्य-व्यवहार कोश के आघात से अपने प्राण बचाकर हमारे साहित्य में हंगामा मचानेवाले सैकड़ों इसलामी विदेशी शब्दों को प्रयोग में लाना संपूर्णतः छोड़ देना चाहिए, इसी से हमारी मराठी का गद्य और पद्य उत्तर हिंदुस्थान की हिंदी और बँगला में आजकल प्रौढ़ अवस्था में पहुँचानेवाले हमारे अन्य बंधुओं के गद्य के समकक्ष और समरूप हो जाएँगे। संस्कृतोद्‌भव अनेक हिंदी भाषाएँ एक होकर उनकी एक ही हिंदू भाषा बनाने के ध्येय की तरफ एक कदम आगे बढ़ाया गया सुप्रयत्न होगा।

योग्यता की दृष्टि से मराठी साहित्य बँगला या हिंदी साहित्य से हीनतर नहीं है

यहाँ स्पष्ट रूप से कहना आवश्यक है कि प्रस्तुत निबंध केवल भाषा के शुद्धीकरण के विषय पर ही है। अतः मराठी भाषा की अन्य उत्तर की भाषाओं से तुलना केवल उर्दू शब्दों के मिश्रण तक ही मर्यादित है, उसी अर्थ से की है। बँगला में अथवा अर्वाचीन हिंदी में उर्दू या तत्सम विदेशी म्लेच्छ शब्द एकदम अस्वीकार किए जा रहे हैं और हमारे यहाँ आजकल वह दृष्टिकोण छूट जाने के कारण वेदांत जैसे विषय में भी मुसलमानी शब्दों को विचरण करने देते हैं, इतनी ही मराठी गद्य की न्यूनता या अप्रौढ़ता हम मान्य करते हैं, इसके सिवा किसी भी दृष्टि से मराठी को या उसकी वाङ्मय संपत्ति को हम अन्य हिंदी भाषा संपत्ति से कम नहीं मानते। उन भाषाओं के अध्ययन के बाद हमें ऐसा ही लगता है कि आज भी हिंदुस्थान की प्रगतिशील हिंदी भाषाओं में मराठी भाषा और उसका साहित्य किसी भी भाषा के पीछे नहीं है, उलटे अनेक भाषाओं से आगे ही है, प्रगत ही है। हिंदी साहित्य तो अभी बन रहा है, पर बँगला साहित्य भी मराठी के आगे नहीं था, आज भी नहीं है। किसी एकाध विषय में शायद वह आगे होगा;

पर इतिहासादि विषय में मराठी साहित्य ही अधिक प्रगत है। वह तुलनात्मक विषय प्रस्तुत निबंध का विषय न होने के कारण उर्दू शब्द प्रयुक्त करने के बारे में मराठी की जो ढिलाई हो रही है, वह नष्ट करने के लिए उस बात में अन्य साहित्य के प्रयत्न ग्राह्य हैं—यह सिद्ध करने के लिए ही उनका प्रौढ़त्वसूचक शब्द उपयोग में लाने से उन शब्दों का विपर्यास होकर उससे यह अर्थ निकालने का प्रयत्न भी कोई करने की संभावना होगी कि मराठी से बाकी का साहित्य श्रेष्ठ है, ऐसा मेरा मत है; पर वह प्रयत्न अन्याय, तथ्यहीन तथा निष्फल होगा। इतना ही यहाँ सूचित करना ठीक होगा।

इसीलिए हमें भी उन्हीं के जैसे शुद्धीकरण की तरफ ध्यान देना आवश्यक है

अब तक उल्लिखित अनेक कारणों के लिए मराठी के विदेशी शब्दों की उद्दंडता से भ्रष्टीकरण का निषेध और प्रतिरोध करना चाहिए। आज हमारा यह कर्तव्य है कि मराठी के शुद्धीकरण का कार्य हम पुनः प्रारंभ करें और आगे बढ़ाएँ। उत्तर की भाषाभगिनियों पर म्लेच्छ भाषा का आक्रमण जितने वेग से और जितनी भयानकता से हुआ, उतना श्री शिवराय की कृपा से, पूर्वजों की कृपा से मराठी भाषा पर नहीं हो सका। इसी से हिंदी या पंजाबी या सिंधी का शुद्धीकरण करना जितना कठिन हो गया है, उतना मराठी के शुद्धीकरण का कार्य नहीं है और वह कठिन नहीं था, इसीलिए वैसा ही पड़ा रहा। उत्तर में शुद्धीकरण होते हुए भी हिंदी और बँगला गद्य-पद्य में उन्होंने वह इतना पूर्ण करके दिखाया है कि अब मराठी में होनेवाले म्लेच्छ शब्दों की बची-खुची गंदगी भी सहन करना कठिन है। अब वह बात हमारे भी ध्यान में आए बिना नहीं रहेगी, इसलिए आगे चलकर प्रत्येक लेखक लिखते समय अरेबियन आदि विदेशी शब्द यथासंभव मराठी से वर्जित करने की प्रतिज्ञा करे।

प्रत्येक भाषा में कुछ विदेशी शब्द होंगे ही

प्रत्येक जीवंत और शक्तिशाली भाषा में अन्य भाषाओं के शब्द थोड़े-बहुत प्रमाण में होंगे ही। अंग्रेजी जैसी साम्राज्य की भाषा में भी उनका अस्तित्व उन भाषाभाषियों के सम्राट्पन की कथा का प्रमाण ही है। मराठी को भी एक समय अखिल भारतवर्ष के साम्राज्य का कारोबार करना पड़ा। इसी से उसमें अन्य आकुंचित जनपद की भाषा का आकुंचन रहा नहीं और वह प्रसरणशील तथा प्रसरणक्षम बनती गई एवं उसमें अनेक प्रदेशों के अनेक शब्द मिल गए। एक अर्थ से यह महाराष्ट्रभाषियों

के पूर्व वैभव का सूचक है, परंतु प्रत्येक प्रसरणशील भाषा में विदेशी शब्दों का होना अपमानास्पद होता ही है—ऐसा नहीं है। अंग्रेजी भाषा में पचास प्रतिशत से अधिक शब्द अन्य भाषाओं के हैं—फिर भी वे शब्द उस भाषा के घर में दास बनकर ही रहे हैं, पर जब वे शब्द स्वामित्व जताने लगते हैं अथवा श्री नारायण राव पेशवा के पहरेदार ही जब चाहे तब नारायण राव के महल की ऊपरी मंजिल पर जाकर अपने स्वामी की ही हत्या करने के लिए बहुसंख्य और प्रबल हो जाते हैं, तब उनको निर्वासित करना ही ठीक होगा। अगर उनको न निकाला गया तो वे उस भाषा को ही अपनी दासी बनाए बिना नहीं रहते। भाषा में विदेशी शब्द कितने हों? पारिभाषिक शब्द कैसे तैयार किए जाएँ? भाषा विषयक उपर्युक्त प्रश्न इस लेख में नहीं आएँगे। केवल दिग्दर्शनार्थ इतना ही कहना ठीक होगा।

देश-देश के भिन्न-भिन्न और विशिष्ट पदार्थबोधक शब्द अगर विदेशी भाषा के हों तो कोई प्रत्यवाय नहीं है

उदाहरण के लिए—किसी दूसरे देश के नवीन फूल के लिए तद्देशीय नाम हो तो ठीक ही है, वही नाम प्रचलित किया जाए। एकाध विशिष्ट प्रकार के पशु या पंछी को उस देश के नाम से संबोधित करना ही ठीक है। ऐसा करने से भाषा की शब्द-संपत्ति भी वृद्धिंगत होगी।

परंतु जहाँ जिस वस्तु को या कल्पना को उत्तम प्रकार से निर्दिष्ट करने के लिए एक से अधिक शब्द अपने पूर्व व्यवहार में मातृभाषा में विद्यमान हैं, वहाँ उस वस्तु को या भावना को संबोधित करने के लिए सभी स्वदेशी शब्द छोड़कर लापरवाही से विदेशी शब्दों का उपयोग करने की बात निषिद्ध होनी चाहिए

मराठी के लिए अथवा किसी भी हिंदू भाषा के लिए अगर एकाध शब्द की जरूरत हो तो वह शब्द अन्य संस्कृतोद्भव हिंदू भाषाओं से ही लिया जाए, क्योंकि वे सब अपनी ही भाषाएँ हैं। अगर वह शब्द उन सभी हिंदू भाषाओं में प्राप्त नहीं हुआ और कोई नया शब्द बनाना पड़ा तो शब्द-समृद्धि से नया शब्द बनाने की क्षमता से और अर्थ से सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भेदाभेद व्यक्त करनेवाली शक्ति से अत्यंत संपन्न देववाणी, यह अपनी संस्कृत भाषा हमारी पीठ पीछे वरदहस्त लेकर खड़ी है। उसको अखंड निधि से वह शब्द उठा लेना चाहिए। इतना होने पर भी अगर

कोई कमी रह जाती हो या विदेशी विशिष्ट पदार्थ का विशिष्ट ही नाम हो तो ही विदेशी भाषा का शब्द उपयोग में लाया जाए।

विदेशी शब्दों के उदाहरण

ऊपर संक्षेपत: निर्दिष्ट नियमों का प्रकाश अगर मराठी के आज के स्वरूप पर डाला जाए तो सैकड़ों विदेशी शब्द हमारी लापरवाही के अंधकार में से चोरों की भाँति घुसकर स्वामी की तरह विचरण करते हुए दिखाई देंगे। उदाहरण के लिए 'शिवाय' शब्द लीजिए। 'ब्रह्माशिवाय सर्व असत्य।' इस तरह के मिलावटी वाक्य अपने गंभीर साहित्य में भी आराम से घूमते रहते हैं। 'शिवाय' शब्द के लिए ब्रह्माविना, ब्रह्माण्यतिरिक्त इत्यादि अनेक प्रतिशब्द होते हुए भी यह 'शिवाय' शब्द इतना विस्तारित हुआ है कि यह शब्द हमारे व्यतिरिक्त बिना इत्यादि शब्दों को दुत्कारकर उनकी ही छाती पर चढ़ बैठा है। वही बात 'मुलूख' शब्द की है। पुरानी मराठी में यह शब्द रूढ़ होने के कारण आज यह गद्य में आ ही जाता है, पर अब 'शाहिरी' कविता का पुनरुद्धार करने के पागलपन में 'मुलूख' शब्द मराठी पद्य में भी घुसेड़ा जा रहा है। 'मुलूख' यानी देश, प्रदेश। जगत् दिग्विजय के वर्णन मुसलमानी शासन में ही हिंदू भाषाओं में प्रारंभ हुए—ऐसी बात नहीं है। मुसलमांनों के मुहम्मद के जन्म से पूर्व हिंदुओं ने और उनकी भाषाओं ने दिग्विजय किए हैं। ऐसा होते हुए भी मराठों के दिग्विजय के वर्णन मुलूख या मुलूखगिरी इत्यादि शब्दों का उपयोग न करते हुए शाहिर कर नहीं सकते, यह उनके उल्टी कल्पना का दोष है, गुण नहीं। 'तयार' शब्द का बड़प्पन तो और ही है। छुआछूत न हो, इसलिए टुनटुन छलाँगें लगाते हुए आनेवाले अछूते उपाध्याय भी देवघर से ही पूछते हुए सुनाई देते हैं कि गंध, पुष्प, अक्षत वगैरह सारा पूजा-साहित्य तैयार है न? भात तैयार आहे, इत्यादि वाक्यों में 'तयार' शब्द निकालकर हमारे 'सिद्ध' (सिद्ध हैं?) 'सज्ज', 'पूर्ण' इत्यादि प्रतिशब्द वहाँ रख देना प्राय: अशक्य होता जा रहा है। 'तयार' शब्द ने इतनी 'तयारी' कर रखी है कि उसके खिलाफ कोई विद्रोह कर उठे तो विद्रोह को नष्ट कर सके। 'स्वयंपाक सिद्ध आहे', 'पूजा-साहित्य सिद्ध आहे', 'आम्ही लक्षवयास सन्नद्ध आहोत', 'ते सज्ज आहेत', 'हे काम पूर्ण झाले आहे' इस तरह के वाक्य कान को क्या अच्छे नहीं लगते? तो फिर अपने स्वकीय शब्द होते हुए भी केवल आदत के कारण 'तयार' शब्द ही भाने लगे और ये पुराने शब्द मरणोन्मुख होकर बैठ जाएँ, यह बात 'शाहिरी' कविता के 'फंदी' (अनंत फंदी नामक कवि) को लज्जास्पद लगेगी, इसमें कोई शक नहीं है।

परंतु 'आज तागायत' (आज तक) की शान कुछ और ही है। इस शब्द के

बिना हमारे पत्रों (खतों) को शोभा ही नहीं आती, इस तरह सर्वसाधारण लोग समझते हैं। अभी कुछ काल पहले हमारे पास एक महान् धर्माधिकारी का पत्र आया। उसमें उनके 'चिटणीस' ने पहले-पहल अति पुरातन और शुद्ध आधे से भी अधिक परिच्छेद निर्मल संस्कृत में धर्माधिकारी की निश्चित पद्धति से लिखकर नीचे झट से लिखा था, 'आज लागा इत सुखरूप आहोत' (आज तक सुख रूप हैं।) 'आज तागायत' के स्थान पर अगर उन्होंने, 'आज पावेतो', 'आज पर्यंत' लिखा होता तो क्या हानि होती? परंतु ऐसे शब्दों में एक विशिष्ट शान है, इस तरह की विकृत कल्पना बचपन से ही हम सबकी है। इस कारण अगर ये शब्द नहीं होते तो हम सब बेचैन हो जाते हैं। इस 'आज तागाइत' का बड़प्पन 'आज तागाइत' (आज तक) माना है, अब आगे चलकर इस सम्मिश्र शब्द को निरर्थक अपने साहित्य में विचरण करने देना लज्जास्पद माना जाना चाहिए।

उसी तरह पत्र के नीचे स्वाक्षरी की है। चिटणीस, निसबत, श्रीमंत इत्यादि। अब यह 'निसबत' शब्द यहाँ इस शुद्ध और सुंदर संस्कृत शब्दों के इर्द-गिर्द, नैवेद्य के इर्द-गिर्द घूमनेवाले मच्छर के जैसे क्यों घूम रहा है? किसी श्रीमंत की सेवा में होनेवाले 'कार्यवाह या लेखक' इस तरह की स्वाक्षरी करने से क्या होता है? क्या बिगड़ता है? निसक्त शब्द न लिखने से क्या पत्र की शोभा नहीं रहेगी? पुरानी मराठी में घुसे हुए 'मालक', 'जख्मी', 'फौज', 'शहर' इत्यादि सैकड़ों शब्दों को यों ही हम अपने सिर पर नचा रहे हैं। छत्रपति शिवाजी महाराज का शासन कुछ और काल तक बना रहता तो म्लेच्छ शब्दों को उन्होंने चुन-चुनकर भाषा से निकाल दिया होता। उन्हीं 'फौज', 'लश्कर' इत्यादि विदेशी शब्दों को किसी अभिजात शब्द के जैसे 'शाहिरी' कविता में अप्रौढ़ लेखक उपयोग में लाते हुए देखकर और वही अपनी कविता की सुंदरता समझते देखकर समझ में नहीं आता कि हम हँसें या रोएँ। मराठी सैन्य, मराठी सेना के स्थान पर मराठी फौज, मराठी लश्कर शब्द लिख लेने से भाषा की शान बढ़ जाती है—यह नौसिखिए समझते हैं। वे इस बात को समझ लें कि ऐसा करना उनकी उलटा चलने और अज्ञान का परिणाम है और वे इन म्लेच्छ शब्दों का त्याग करें। हमें पुरानी मराठी का पुनरुज्जीवन अवश्य करना है, पर मुसलमानी मराठी का नहीं।

कुछ शब्द यद्यपि पर्शियन भासमान होते हैं, फिर भी वे शब्द स्वदेशी हैं

ऐसे अनेक शब्द हैं, जो पर्शियन लगते हैं, मगर संस्कृत धातु से सिद्ध हुए हैं। वास्तविक रूप से देखा जाए तो पुरानी पर्शियन भाषा मराठी और बँगला भाषा

के जैसे ही शुद्ध संस्कृतोत्पन्न प्राकृत भाषा ही है, उसमें होनेवाले पर्शियन शब्द, जो अब रूढ़ हो गए हैं, अगर संस्कृतोद्भव और सहज साध्य हों तो उनको उपयोग में लाया जाए। उनपर हमारा अधिकार है। उदाहरणार्थ—सुरु शब्द 'सरणे' धातु से उत्पन्न हुआ है। 'हक्क' शब्द 'स्वक्' शब्द से तैयार हुआ है। पंजाब शब्द 'पंचआप' शब्द से निर्मित हुआ है। अगर ये शब्द अपनी भाषा में अत्यंत रूढ़ हुए हों तो वे पर्शियन ही हैं—यह कैसे समझें? संस्कृत के रूप जैसे पर्शियन में विकृत होते हैं, वैसे ही प्राकृत में भी होते हैं। यह कैसे समझें कि वे शब्द, वे रूप यहाँ प्रचलित न हुए हों? ऐसे शब्द भाषा में रहने देने चाहिए।

दृष्टिकोण ही बदलना होगा

कौन से शब्द रखे जाएँ और कितने रखे जाएँ, यह फुटकर प्रश्न यहाँ प्रस्तुत न होकर विदेशी भाषा से अपनी भाषा में निष्कारण घुसे हुए शब्द निकालकर भाषा को शुद्ध करने का पूर्वजों द्वारा आरंभ किया हुआ कार्य—जिस कार्य के कारण मराठी मुसलमानों के वर्चस्व में उत्तर की पंजाबी, सिंधी भाषाओं की जैसी पूर्णता से न जकड़ पाएँ—(वह कार्य) आगे बढ़ाने का निश्चय करना इतना उत्तरदायित्व, इतना निरधार मराठी भाषाभाषियों में उत्पन्न करें और उत्तर की तरफ की हिंदी और बँगला भाषा के गद्य-पद्य में उर्दू शब्द उपयोग में लाना जैसे हीनता का, ढीलेपन का या दोषास्पद होने का लक्षण माना जाता है, वैसे ही वे यहाँ भी समझे जाएँ, इतने ही उद्‌देश्य से यह विषय सामने लाया जा रहा है। परिणामस्वरूप इस दिशा की तरफ महाराष्ट्रीय लेखकों की दृष्टि गुस्से से कहिए, संत्रास से कहिए या दिल्लगी से कहिए, आकर्षित हुई है। अगर इतना भी कार्य हुआ तो भी काफी है। कौन से शब्द विदेशी हैं, यह आगे चलकर समय-समय पर की गई चर्चा से सिद्ध होगा।

ऊपर के परिच्छेदों में हमने सामान्य नियम बताए हैं। उन नियमों के अनुसार जहाँ आवश्यक हों, वहीं नए विदेशी शब्द लिये जाएँ। किसी भी प्रकार की आवश्यकता न होते हुए और तदर्थक हमारे संस्कृतोद्भव सुंदर शब्द विद्यमान होते हुए केवल ढिलाई से मराठी में सिर चढ़े होकर बैठे हुए पुराने विदेशी शब्द चुन-चुनकर काँटों की भाँति दूर फेंक दें। इतना निश्चय अगर लेखकों तथा पाठकों की नई पीढ़ी करेगी तो इस लेख का तात्कालिक हेतु सफल हो जाएगा। विष्णु शास्त्री चिपळूणकरजी की सावधानी से अंग्रेजी शब्द मराठी गद्य में बहुत कम और पद्य में न के बराबर ही आने लगे हैं। वैसी ही स्थिति मुसलमानी शब्दों की होनी चाहिए। यह बात इतनी सहज नहीं है, फिर भी सुलभ है। उनके ध्यान में यह बात झट से आ जाएगी, जिनको मालूम है कि हिंदी और बँगला भाषा का गद्य और पद्य कितने थोड़े

दिनों में एवं कितने पूर्ण रूप से सुसंस्कृत तथा म्लेच्छ शब्द स्पर्श से अकलुषित हो सका है।

कष्ट होंगे, पर इसीलिए निश्चय दोगुना होना चाहिए

'हजर', 'गरज' इत्यादि शब्द विदेशी होने के कारण छोड़ने का प्रयत्न करते समय लिखते समय, बोलते समय प्रत्येक को पग-पग पर कष्ट होंगे, यह हम अपने अनुभवों से समझ सकते हैं; परंतु कष्टों के कारण हमारा निश्चय दोगुना होना चाहिए। हमें जो कष्ट हो रहे हैं, उसका दोष उनका नहीं है, जिन्होंने हमारी भाषा में होनेवाली यह गंदगी दिखाई; जिन्होंने वह गंदगी इतनी बढ़ने दी कि वह निकाले नहीं निकलती, उनका, हम सबका यह दोष है। अत: उनको निकालते समय होनेवाले कष्टों से संत्रस्त होकर 'जाने दो' कहकर उन शब्दों को बहिष्कृत न करना मूर्खता होगी। यह भाषाभिमान का अतिरेक है—'ऐसा न कहते हुए प्रत्येक को अपने से यह कहना चाहिए कि ऐसे कैसे हुआ?' सचमुच, यह कितनी लज्जा की बात है कि 'हजर' शब्द के लिए हम अपना प्रतिशब्द नहीं दे सकते। इन म्लेच्छ शब्दों ने हमें इतना परवश बना दिया। लोकमान्य तिलकजी सभा में विद्यमान थे, वर्तमान थे या हिंदी या बंगाली जैसा कहते हैं; उसके अनुसार उपस्थित थे—इस तरह के वाक्य का प्रयोग करने पर वह अपरिचित और खींचातानी करके बनाया गया लगता है। लोकमान्य तिलकजी हजर थे—यह वाक्य ही हमें अपना लगता है—यह कितनी लज्जास्पद बात है।

इस तरह का विचार अगर प्रत्येक व्यक्ति करने लगे, तो वह यह प्रश्न हमने उपस्थित किया, इसलिए हमें दोष न देते हुए क्रोध के आवेश में उलटे जहाँ तक हो सके, उर्दू शब्द उपयोग में न लाने का निश्चय करेगा। व्यवहार में एकदम अनावश्यक, परंतु सिरचढ़े कुछ उर्दू शब्द हमने इस लेख में दिए ही हैं। हमारे द्वारा प्रस्तुत किए हुए शब्द कम-से-कम टालने का निश्चय सभी पाठकों ने किया तो भी वह अच्छा होगा। इस विषय की चर्चा जैसे-जैसे आगे बढ़ेगी, आक्षेप-प्रत्याक्षेप हो जाएँगे, वैसे-वैसे और भी शब्द प्रकाश में आने लगेंगे। सद्य:स्थिति में मराठी भाषा के शुद्धीकरण का 'सूत उवाच' (प्रारंभ) हुआ तो भी काफी होगा।

हमारा उद्‌देश्य स्पष्ट है

इस विषय पर 'केसरी' समाचार-पत्र में हमने जो लेख प्रकाशित किए हैं, उनके उपसंहार में ऐसा लिखा था कि 'कौन से शब्द रखे जाएँ और कौन से विदेशी शब्द मराठी से निकाले जाएँ—यह फुटकर प्रश्न सुलझाने का हमारा ध्येय नहीं है,

बल्कि विदेशी भाषा से अपनी भाषा में निष्कारण घुसे हुए शब्द निकालकर उसको शुद्ध करने का हमारे पूर्वजों द्वारा प्रारंभ किया हुआ कार्य—जिस कार्य के सामर्थ्य से मराठी भाषा मुसलमानी भाषा के चंगुल में पूर्ण रूप से नहीं फँसी, जैसी कि उत्तर की सिंधी, पंजाबी इत्यादि भाषाएँ उसके चंगुल में फँसी—वह कार्य आगे बढ़ाने का निश्चय इतनी समझ मराठी भाषाभाषियों में उत्पन्न करें—यही हमारा उद्देश्य है और उत्तर हिंदुस्थान में हिंदी तथा बँगला भाषा के गद्य-पद्य में उर्दू शब्दों का प्रयोग हीनता और ढीलेपन का द्योतक एवं दोषास्पद माना जाता है, वैसे ही मराठी भाषा में भी माना जाए। यही हमारे लेख का उद्देश्य है। इस लेख के कारण इस दिशा की तरफ मराठी लेखकों की विचार-दृष्टि क्रोध से या केवल परिहास से भी क्यों न हो, पर अगर पड़ गई तो लेख का उद्देश्य पूरा हो जाएगा।'

यह एक सुदैव की बात है कि इनमें से किसी-न-किसी भावना से प्रेरित होकर इस विषय की तरफ जितना हमने सोचा था, उससे बहुत अधिक प्रमाण में, अधिक तीव्रता से महाराष्ट्रीय लेखकों का और अन्य लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है। इतना ही नहीं, उस आंदोलन की प्रतिध्वनि मुंबई के 'टाइम्स' में भी गूँजने की बात बाकी नहीं रही। अधिकतर मराठी वृत्तपत्रों में इस विषय पर अनुकूल-प्रतिकूल लेख लिखे गए हैं। उन सभी लेखों का सांगोपांग विचार करना चाहिए था। उनमें से काफी आक्षेप मूल लेख संपूर्ण रूप से न पढ़कर लगाए गए थे, कुछ विचारजन्य थे, कुछ विकारजन्य थे। उन उत्तरपक्षीय चर्चा का उत्तर अगर समय पर ही दिया जाता तो उनकी जो लगातार पुनरावृत्ति अन्य टीकाकारों से हो रही है, वह न होती और उनमें से अनेक का शंका समाधान सहज रूप से हो जाता; परंतु आज इन भाषा विषयक प्रश्नों की अपेक्षा अपने हिंदू समाज की और राष्ट्र की अमर्याद हानि करनेवाला अस्पृश्यता निवारण का प्रश्न तत्काल हाथों में लेकर कम-से-कम रत्नागिरी में तो उसका पीछा करना अधिक महत्त्व का कर्तव्य प्रथम करना पड़ा और आज तक इस भाषाशुद्धि के लेख पर किए गए आक्षेपों को केवल सुनते रहना पड़ा, उससे अधिक हम कुछ नहीं कर सके; परंतु अब वह स्थानिक प्रश्न समाधानकारक रीति से अधिकांश रूप में सुलझ गया है। अत: अब मराठी भाषा के शुद्धीकरण के प्रयत्न पर लिये गए आक्षेपों का निरसन और उसपर हुई चर्चा की समालोचना संक्षेप में करना तय किया है।

प्रेमद्वेष का संभ्रम

इन आक्षेपों में जो विकारजन्य आक्षेप हैं, उनका वास्तविक रूप से उत्तर देने योग्य भी वे नहीं हैं। तथापि उनमें से एक भी आक्षेप के बारे में कुछ उल्लेख न

करना यानी उसे हेत्वाभास के सात्त्विक भावुक मन को बलि देने जैसा होगा। अत: उसपर थोड़ा सा विचार करना आवश्यक है। वह आक्षेप यह है कि भाषा के शुद्धीकरण का यह आंदोलन द्वेषमूलक होने के कारण निंद्य है। गत कुछ वर्षों में यह प्रेमद्वेष का संभ्रम इतना बढ़ गया है कि उन शब्दों से व्यक्त होनेवाली भावना का गांभीर्य नष्ट होकर उनको गँवारूपन का स्वरूप प्राप्त होने लगा है। जहाँ देखें वहाँ प्रेम और अहिंसा किसी प्रेत के समान मार्ग में रुकावट बन जाती है। मराठी भाषा में अनावश्यक और उसके स्वरूप को विसंगत विदेशी शब्दों का अस्वीकार, यह बात उन शब्दों से किया हुआ द्वेष है। वाह वा! क्या कहा जाए इसके बारे में? कल अपने पैरों को न समानेवाला जूता अगर मैंने फेंक दिया तो वह जूते से द्वेष होगा। कम-से-कम जिस चमार ने वह जूता बनाया, उसका द्वेष तो होगा ही। घर का कूड़ा-कचरा बाहर फेंक दिया तो वह हुआ कूड़े से द्वेष। अगर कूड़े से नहीं तो जिसने कूड़ा-करकट फेंक दिया, उसका द्वेष। इस द्वेष को क्या कहेंगे?

अपनी भाषा में विदेशी भाषा के शब्दों की अवज्ञाकारी भरमार करके उसकी श्रुतिमंजुलता, स्वाभाविक शुद्धि और ऐतिहासिक परंपरा खंडित न करे, इसलिए हम कहते हैं कि कुछ अरबी शब्दों को उपयोग में लाते हैं अथवा आजकल के लापरवाह लोग फादर, मदर आदि अंग्रेजी शब्दों का उपयोग अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिए मराठी में उपयोग में लाते हैं—इस तरह शब्दों का उपयोग करना निंदनीय है, यह कहना अरबी का और अंग्रेजी का द्वेष करने के जैसा क्यों न होगा? प्रेम की पूर्णता यानी मराठी भाषा का ही त्याग करके अरबी का, कम-से-कम मुसलमानी उर्दू को स्वीकार करना होगा। इस दृष्टि से विदेशी कपड़े उपयोग में मत लाइए, स्वदेशी कपड़े ही पहन लीजिए, अपने बेटे का नाम इब्राहिम या अरुंडेल न रखकर 'अनंत' रखिए—यह कहना भी द्वेषमूलक ही होगा।

कोई भी बात द्वेषमूलक है या नहीं, यह बात वास्तविक रूप से इस प्रश्न के उत्तर पर अवलंबित है कि उस बात के मूल में द्वेषपूर्ण भावना थी या नहीं? वह बात किसी को बिना कारण चिढ़ाने के लिए की थी या नहीं? मराठी में, अनावश्यक उर्दू, अंग्रेजी या जर्मन शब्द न घुसने दें, इस न्याय और स्वाभाविक इच्छा के और प्रयत्नों के मूल में किसी को चिढ़ाना हमारा उद्देश्य है—यह बात आलोचकों को किसने बताई? सिंध में अपने हिंदू बांधवों की लिपि मुसलमानों के शासनकाल में नामशेष हुई और सिंधी भाषा अरबी शब्दों के आघातों से इतनी कुचली गई कि 'माता-पिता', 'भाई-बहन' इत्यादि अत्यंत घरेलू शब्दों को भी अरबी अथवा उर्दू शब्द उपयोग में लाना सभ्यता का लक्षण माना जाने लगा। ऐसी स्थिति में वहाँ के हिंदुओं में अपनी भाषा और लिपि का पुनरुज्जीवन का आंदोलन शुरू करने का

प्रयत्न जब हम करने लगे, तब यही द्वेष का आक्षेप हम पर त्रयस्थ हिंदुओं से किया गया। आगे चलकर जैसे-जैसे उस आंदोलन का जोर बढ़ने लगा और सिंधी पत्र, पाठशालाएँ तथा साहित्य जैसे-जैसे हिंदी लिपि में और शुद्ध सिंधी में आविर्भूत होने लगी, वैसे-वैसे मुसलमानों की समता की भावना प्रक्षुब्ध हुई और अब उन्होंने सरकार को अरजी लिखकर शिक्षा विभाग का एक प्रस्ताव पास कराया कि सिंध की पाठशालाओं की क्रमिक पुस्तकों में पुराने ही नहीं, जो नए पारिभाषिक शब्द उपयोग में लाए जाएँगे, वे संस्कृतोत्पन्न न हों, वे अरबी से व्युत्पन्न होने चाहिए। कराची और हैदराबाद में हिंदुओं की बड़ी-बड़ी संस्थाएँ और नगरपालिका यह माँग कर रही है कि कम-से-कम हिंदू छात्रों को तो शुद्ध सिंधी या हिंदी माध्यम से शिक्षा दी जाए और नागरी लिपि में पढ़ाया जाए। फिर भी मुसलमानों का यही प्रयत्न रहा है कि हिंदू छात्रों की अलेफ, बे, पे की उलटी लिपि में ही पाठशालाओं में शिक्षा लेनी चाहिए। 'हिंदू छात्र तो अपने पूर्वजों की लिपि और भाषा को सीखें— हमारा यह आंदोलन जिनको द्वेषमूलक लगा, वे प्रेम और भूतदया के पात्र उनको यह बात कहने का साहस नहीं करते, जो यह कहते हैं कि हिंदू छात्रों को भी हमारी ही लिपि सीखनी चाहिए—ऐसा कहनेवाले अरबी उपासकों को यह कहे कि तुम भी संस्कृत से द्वेष करते हो और इसलिए तुम्हारा यह अरेबियन आंदोलन भी द्वेषमूलक ही है।'

छत्रपति शिवाजी और विष्णु शास्त्री चिपळूणकर

यह केवल हम ही नहीं कह रहे हैं कि हमारी मराठी में विसदृश्य और विसंगत अशुद्ध विदेशी शब्द नहीं होने चाहिए। छत्रपति शिवाजी महाराज ने रूढ़ अष्ट प्रधानों के नाम बदलकर सहेतुक रूप से संस्कृत में परिवर्तित किए और स्वराष्ट्र को पराधीनता के कीचड़ से ऊपर उठाया, स्वधर्म को परधर्म की छाया से बचाया। वैसे ही 'राज्य व्यवहार कोश' का निर्माण कराकर अपनी भाषा में राजाज्ञा दे दी। उनका वह प्रयत्न भी क्या द्वेषमूलक ही था? श्री विष्णु शास्त्री चिपळूणकरजी ने मराठी में अंग्रेजी शब्द घुसेड़नेवालों पर कोड़े लगाए। उनका वह प्रयत्न क्या द्वेषमूलक था? इसपर भी 'हाँ' कहने का साहस अगर करेंगे तो इतना ही बताना काफी है कि मराठी भाषा, हिंदू भाषा और हिंदू राष्ट्र जिनके कारण इस जगत् में दूसरों के जैसे अपना भी अस्तित्व इष्टकाल तक अक्षुण्ण रखने का न्यायी कार्य करने के लिए समर्थ हुई, वे छत्रपति शिवाजी और विष्णु शास्त्री चिपळूणकर ही थे। उनका द्वेषमूलक प्रयत्न ही इन गोबर-गणेशों के कुलबोरन सीधे-सादेपन से अधिक श्रेयस्कर है और इसीलिए यह अधिक अनुकरणीय सद्गुण है, ऐसा हमें लगता है।

अगर हम उनके काल में होते तो उनको भी हम दोष देते—ऐसा कहनेवालों से हम कहते हैं कि कितना अच्छा होता अगर आप आज के काल में जन्म न लेकर उस काल में जन्म लेते! अगर ऐसा होता तो आज के काल पर आपके बहुत उपकार होते। छत्रपति शिवाजी का वह काल किसी ताश के तंबू के जैसा नहीं था, जो इन कुलघातियों के मुँह की व्यर्थ हवा से ढह जाता।

ऊँट का शावक-छौना

एक बात और है कि अगर 'हजर', 'यादी' इत्यादि जिन उर्दू शब्दों ने अपने पूर्व व्यवहृत मराठी पूर्ण रूप से नष्ट किए हैं, उनका उपयोग टालकर वे अपने पुराने शब्द उपयोग में लाए जाएँ, इस तरह का उपदेश करना अगर उन उर्दू शब्दों का द्वेष करने के जैसा होगा, अतः वह निंदनीय है, तो अपने 'विद्यमान', 'उपस्थित' इत्यादि तदर्थक स्वकीय शब्दों को पुनश्च उपयोग में न लाकर वैसे ही बहिष्कृत रखना भी क्या उन पुराने और स्वकीय शब्दों का द्वेष नहीं है ? दूसरे के ऊँट का छौना अपने घर में घुसने के कारण घर से बाहर भागे हुए लड़के को वापस बुलाकर वह छौना बाहर निकालने का तुम्हारा आंदोलन द्वेषमूलक है, ऐसा कोई कहने लगा तो उसको यह उत्तर देना आवश्यक है कि 'हे सद्गृहस्थ! मेरे अपने बेटे को घर के बाहर खड़ा करके घर में घुसे हुए ऊँट के छौने का पोषण करता रहूँ—यह तो और भी द्वेषमूलक और तिरस्करणीय हो जाएगा।'

विकारजन्य आक्षेपों में अन्य आक्षेपों को थोड़ा उत्तर देना चाहिए, यह आक्षेप है।

अभिमान का अतिरेक

भाषा का शुद्धीकरण 'मन का प्रांतिक आकुंचितपन है।' इसमें कोई शक नहीं है कि हमें मराठी का अभिमान है; परंतु उस अभिमान की मर्यादाएँ अगर हम बताने लगें तो हमारे अभिमान को अतिरेक कहनेवाले अजनबी और अजाण भूतदया के भक्त को कँपकँपी छूट जाएगी। पूरे हिंदुस्थान में एक ही राष्ट्रभाषा प्रचलित होनी चाहिए। अतः मराठी का नाम न सुझाते हुए वह हिंदी का ही अधिकार है—ऐसा हमने आज पच्चीस वर्षों से प्रतिपादन किया है और हिंदी के प्रचार के लिए सतत प्रयत्न कर रहे हैं। इतना ही नहीं, सभी प्रांत अपनी प्रांतिक भाषाएँ अगर छोड़ने के लिए तैयार हों और उन भाषाओं के उत्तम साहित्य का हिंदी में रूपांतरण होने से राष्ट्रीय साहित्य की हानि होने का भय न रहेगा तो सभी प्रांतिक भाषाओं को किसी कालसूत्र को दबाने के बाद समुद्र में डुबोने का यंत्र अगर किसी ने खोज

निकाला हो तो आज़ ही हम राष्ट्रभाषा के लिए मराठी की बलि देने के लिए तैयार हैं। यही नहीं, अगर समस्त मनुष्य जाति की भाषा आज एक होनेवाली हो या जब कभी हो जाएगी और उसको स्वीकार करने के लिए अन्य सभी देश अपनी-अपनी भाषाओं को त्यागपत्र देने के लिए तैयार हो जाएँगे, तो हम अपनी मराठी का ही नहीं, सभी हिंदू राष्ट्रीय भाषाओं का भी त्याग करने में जरा न हिचकेंगे; परंतु तुम अपनी भाषा मार डालो और भूतदया के लिए हमारी भाषा को जगत् की भाषा के रूप में स्वीकार करो, इस 'एस्पेरॅन्टो' के बकसाधुत्व पर मोहित होने की जितनी हमारी दया भोलीभाली नहीं है।

एस्पेरॅन्टो का मायावी रूप

एस्पेरॅन्टो की कल्पना में यूरोपीय रोमन लिपि और यूरोपियन भाषा का ही अस्तित्व गृहित मानकर सभी एशिया के भाषा संघ को नष्ट कर डालने का जो मायावीपन था, इसी कारण जब हम इंग्लैंड में थे, तब उसका विरोध कर रहे थे और उस एस्पेरॅन्टो के यूरोपीय पागलपन के लिए हमारी रियासतों से हजारों रुपए ऐंठे जाते थे। हमसे यह सहा नहीं गया और वह धन-शोषण रोकने के लिए हमने तीव्र आलोचना की। उसी दृष्टि से हम मराठी की तरफ देख रहे हैं। अगर मराठी राष्ट्रभाषा की उन्नति में रोड़े अटकाएगी तो उसी क्षण से हम मराठी का नाम तक लेना छोड़ देंगे, परंतु सद्यःस्थिति में प्रांतिक भाषाओं का अस्तित्व अपरिहार्य है। अत: उनको नष्ट करने का प्रयत्न करने से राष्ट्रीय साहित्य को होनेवाले लाभ की बजाय हानि ही अधिक होने की संभावना है। इसलिए प्रांतिक भाषाएँ और कुछ शतकों तक दोयम भाषा की हैसियत से अस्तित्व में रहने देना ही सभी प्रांतों के विचारवान् लोगों को आवश्यक लगता है। जब तक अन्य प्रांतीय हिंदू भाषाएँ जीवंत हैं, तब तक राष्ट्रभाषा को साधन रूप से मराठी को भी जीवंत और वर्धमान रहना आवश्यक है। हमें मराठी का अभिमान है ही, परंतु अपनी राष्ट्रभाषा हिंदी का हमें मराठी से भी अधिक अभिमान है।

उसी तरह हमारे हिंदू राष्ट्र में प्रचलित सभी हिंदू भाषाओं बँगला, नेपाली, पंजाबी, सिंधी, कन्नड़, तमिल, तेलुगु आदि के बारे में हमारे मन में ममत्व और प्रेम है। वे सभी हमारी ही भाषाएँ हैं। तो फिर उस संस्कृत भाषा के बारे में क्या कहा जाए, जो मराठी तथा अन्य सभी भाषाओं के लिए मातृस्थान पर है, जिस भाषा को हमारे 'गुरुणामपि गुरुः' भी 'देववाणी' समझते थे और जिसकी संपन्नता की सामर्थ्य के कारण हम किसी भी विदेशी भाषा के दरवाजे पर भक्ति के लिए जाना अपमानास्पद समझते हैं। हमारे प्रथम लेख से कन्नड़, तमिल से बँगला भाषा तक

सभी हिंदू भाषाएँ हमें मराठी की सगी बहन की भाँति अपनी ही लगती हैं और इन सभी हिंदू भाषा संघ को मातृस्थान पर होनेवाली संस्कृत भाषा से कोई भी शब्द ले लेने के लिए हमें कोई आपत्ति नहीं है—ऐसा स्पष्ट बताने पर भी अनेक लोगों ने यह प्रश्न किया कि—

संस्कृत भाषा से शब्द लेने के लिए भी क्या आपका विरोध है?

संस्कृत छोड़कर मराठी भाषा कुछ बाकी रहती है या नहीं—इस बात के बारे में हम आशंकित हैं। शुद्धीकरण का अर्थ मराठी से कन्नड़ भाषा से संस्कृत भाषा तक के सभी शब्द निकालने हैं, ऐसा जो समझते हैं, उनको शुद्धीकरण के आंदोलन का अंतरंग और अर्थ ही मालूम नहीं हुआ, ऐसा कहना पड़ता है। हिंदू भाषा संघ छोड़कर अहिंदू भाषा के शब्द पुराने या नए बिना कारण और जहाँ तक संभव हो अपनी भाषा में सिरचढ़े न हों, यही शुद्धीकरण की संक्षिप्त परिभाषा है। एक सद्गृहस्थ ने हमें ताकीद की है कि—

उर्दू भाषा मर्द की भाषा है

होगी। हमारा भी उतनी ही कड़ाई के साथ कहना है कि छत्रपति शिवाजी महाराज और प्रथम बाजीराव पेशवा की हमारी मराठी भाषा भी कुछ कम 'मर्द' नहीं है। वह इतनी कमजोर नहीं है कि उर्दू का पौरुष अपने बदन में चुभोए बिना (शक्ति का इंजेक्शन लिये बिना) वह बलवान रह ही नहीं सकती। हमारे कुछ लेखकों में यह कल्पना ही रूढ़ हो गई है कि मुसलमानी शब्दों से ही मराठी भाषा में जोश और शान आई है। यह कल्पना निर्मूल है और साथ-ही-साथ वह हमारे स्वाभिमान के जितनी ही ऐतिहासिक सत्य के लिए घातक है। यह एक-दो शब्दों का या मुहावरों का प्रश्न नहीं है।

जिनको यावनी संपर्क से ही मराठी जोशीली हुई है

ऐसा लगता है कि वे ग्रंथराज 'ज्ञानेश्वरी' देखें, जो इस संपर्क के पहले से 'माझा मर्‍हाटीचि बोलु कौतुके। परि अमृताते पैजा जिंके। ऐसी अक्षरें रसिकें मेळवीन।' (संतश्री ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, मेरी मराठी के बोल कौतुक करने योग्य हैं, मराठी अमृत से मधुर है। ऐसी अमृत सी मधुर मराठी के बोल मैं रसिक श्रोताओं को सुनाऊँगा।) इस प्रतिज्ञा से ही 'ज्ञानेश्वरी' लिखी गई है। अथवा कवि मोरोपंतजी को याद करें, उनके 'महाभारत' की तरफ देखें, कम-से-कम कर्ण पर्व की तरफ एक बार दृष्टिक्षेप करें। मोरोपंतजी ने लिखा है—यह आर्यावृत्त है—

मोरोपंत आर्यावृत्त में रचना करने के लिए सुप्रसिद्ध थे—'धन्य श्रीराम पिता, धन्या लक्ष्मी प्रसू जगीझाली आली सत्यवतीची की, भारत कीर्ति सुतमुखी आली।' इस तरह की गर्वोक्ति जो कर सके, ऐसे कवि मोरोपंतजी की कविता पढ़ें। यावनी संपर्क के पहले की दुर्बल मराठी कैसी थी, उसके उदाहरण हमने दिए हैं। मुसलमान संपर्क से पहले मराठी भाषा महाराष्ट्री भाषा और संस्कृत पर अवलंबित थी। अतः मराठी में जोश व शान के शब्द तथा वाक्प्रचार बहुशः यावनी भाषा से आए हैं, यह कहनेवाले अनजाने और पर्याय से कहते हैं कि महाराष्ट्री भाषा में और संस्कृत में ऐसे जोरदार, जोशीले, शानदार या वीर रस के पोषक शब्द और वाक्प्रचार नहीं थे। और अगर आप यह कहेंगे कि संस्कृत में यावनी भाषा के जितने शब्द तथा वाक्प्रचार हैं, तो फिर उन शब्दों की और वाक्प्रचारों की संपत्ति से हमें घर ही में सबल और संपन्न करने का सामर्थ्य होने के कारण मराठी का यावनी भाषा के द्वार पर भीख माँगने के लिए क्यों जाना पड़ेगा? उसका कोई कारण नहीं है। अतः उन अनावश्यक विदेशी शब्दों का संबंध छोड़ देना ही उसका कर्तव्य है। कम-से-कम यह तो मानना ही पड़ेगा कि वैसा करना उसके लिए संभव है।

ऐसा अनेक लोगों को प्रामाणिकता से लगता है कि मुसलमानी भाषा ने मराठी को बलवान और शानदार बनाया। उसका सच्चा कारण यह है कि यावनी संपर्क के पूर्व की मराठी भाषा या महाराष्ट्री आज हमारे सामने प्रमुखता से नहीं है और मुसलमानों के शासन में सभी सैनिक तथा राज्य व्यवहार के शब्द और वाक्प्रचार तदर्थक अपने पहले के संस्कृतोत्पन शब्द और वाक्प्रचारों को अलग रखकर विदेशी सत्ता के बल पर मराठी में जो घुस गए, वे अब भी वैसे ही रहने के कारण हमें वे भावनाएँ, वे विचार उन्हीं शब्दों में बचपन से अभिव्यक्त करने की आदत हो गई। इसी से तदर्थक मूल संस्कृत शब्दों का प्रयोग करने पर उन शब्दों से वह भाव या विचार व्यक्त हो गया है, यह हमें विश्वास नहीं होता; परंतु यह दोष मराठी का या हिंदू भाषाओं का न होकर अपने विकृत अभ्यास का है।

यह कहना हास्यास्पद होगा कि सम्राट् चंद्रगुप्त का साम्राज्य और विक्रमादित्य का पराक्रम, उनका वैभव, उनका ठाठ और उनका पौरुष जिन भाषाओं के द्वारा व्यक्त होता था, वे हमारी हिंदू भाषाएँ मुसलमानी संपर्क से ही प्रबल और शानदार हुईं।

राष्ट्रकूट राज्य का गोविंद, श्रीमान् अमोधवर्ष तथा दिग्विजयी पुलकेशी और उनका वह अप्रतिहत सैन्य जिस भाषा में बोलते थे, वह भाषा फूहड़, ढीली और गावदी हो ही नहीं सकती। उसी के आज के रूप का नाम है 'मराठी'। आज सैनिकी और राजकीय ठाटबाट के शब्द कुछ अंश में मुसलमानी भाषा से लिये गए

हैं—ऐसा दिखाई देता होगा, पर उसका अर्थ यह नहीं है कि तदर्थक वाक्प्रचार मराठी में या हिंदू भाषाओं में इसके पहले नहीं था। वह मुसलमानी संपर्क का परिणाम है। यह कहना इतना ही तथ्यकर नहीं है कि आज के जिला, तहसील, इलाका इत्यादि भू-विभागीय शब्द विदेशी हैं। अतः परसंपर्क के पूर्व हमें व्यवस्थित भू-विभाग करने की पद्धति ही मालूम नहीं थी। यावनी संपर्क ने सत्ता के बल पर हमारे पुराने सैनिकी और राजनीतिक शब्द, हमारी पुरानी सेना के साथ और राज्य के साथ नामशेष कर डाले और उनके स्थान पर यावनी भाषा का संचार शुरू हुआ। बचपन से हमें वही शब्द उसी अर्थ के साथ मालूम होने के कारण हमारे मन में अपने पुराने शब्दों के अस्तित्व के बारे में भ्रांति निर्मित हुई, यही इस गलतफहमी का असली कारण है। मराठी का ही क्या, सभी हिंदू भाषाओं का शुद्धीकरण करने की आवश्यकता पूरे हिंदुस्थान में होने लगी है। उसके मुख्य कारणों में से एक कारण यही आत्मनिंदक भ्रांति दूर करना है। एक-दो लेखकों ने ऐसा समझ लिया है कि हम मराठी का शुद्धीकरण नाम से कहते हैं, वह केवल—

मुसलमानी शब्दों का उच्चारण है

मुसलमानी शब्दों के उच्चारण का हमारा प्रयत्न है, हमारी भाषा में अंग्रेजी भाषा के आनेवाले शब्दों से हमें उतनी चिढ़ नहीं होती है। यह उनकी समझ हमारा लेख अच्छी तरह से न पढ़ने का और हमारे बारे में अधिक जानकारी न होने का परिणाम है। एक लेखक ने तो यह मति प्रदर्शित की है कि न जाने क्वचित् हमारी दृष्टि कल अंग्रेजी भाषा के शब्दों की तरफ भी मुड़ेगी। उस लेखक को यह समाचार सुनकर दुःख होगा कि अंग्रेजी शब्द मराठी में अगर संभव हो तो और हितकारक न हो तो भी नामशेष होना चाहिए।

यह कहना कोरी बकवास न होकर हमारे द्वारा आजन्म स्वीकृत किया हुआ व्रत ही है। निबंध मालाकार के अंग्रेजी मिश्रित मराठी विषय के बारे में कहे हुए कठोर शब्द बचपन से हमारे कानों में गूँज रहे थे। उस काल में हमारी संस्थाओं, मंडलों, व्याख्यानों में, इतना ही नहीं, घर और पाठशाला में भी बोलते समय अंग्रेजी शब्द मराठी में निष्कारण घुसेड़ना अत्यंत अपमानजनक बात समझी जाती थी। इतना ही नहीं, जब मैं इंग्लैंड में था—जहाँ एक-दो वर्ष रहकर वापस लौटने पर मैं अपनी मातृभाषा ही भूल गया हूँ, यह कहनेवाले लोग भी थे और यह बड़प्पन का लक्षण माना जाता था—वहाँ भी हमारी संस्था के सभी हिंदी, पंजाबी, बँगला, तमिल आदि सदस्यों की यह परंपरा थी कि आपस में हिंदी में बोलते समय भी व्यर्थ ही अंग्रेजी का शब्द जिसके मुँह से निकलेगा, उस दिन उसे चाय नहीं

मिलेगी। इस पूर्वायु की आदत का जो परिणाम हुआ, सदा के लिए ही हुआ। अभी-अभी एक पंजाबी पत्र में पढ़ा कि स्वीडन में लाला हरदयालजी सभी पत्र शुद्ध हिंदी में लिखते हैं और उनको यूरोप में पच्चीस वर्ष लगातार रहना पड़ा, इतना होते हुए भी वे पत्र पर का पता भी देवनागरी में लिखकर केवल 'इंडिया' नाम निरुपाय से रोमन लिपि में लिखते हैं। पंजाब की हिंदू भाषा को उर्दू के चंगुल से छुड़ाकर पुनरुज्जीवित करें, इसलिए हमने तत्रस्थ समाचार-पत्रों में जो लेख लिखे हैं, उनमें प्रतिपादित मुद्दों से पूर्ण रूप से सहमत होने की बात हरदयालजी ने एक प्रसिद्ध पंजाबी पत्र के द्वारा बताई है।

इस तरह हमारे लेखों पर जो आक्षेप लगाए गए थे, उनमें से कुछ आक्षेपों के बारे में हमारा मत प्रदर्शित करके बाकी के आक्षेपों का स्वतंत्र विचार न करते हुए इस विषय के बारे में हमारे मतों की रूपरेखा पुन: एक बार सुसंगत रूप से और सोदाहरण रेखांकित करके उन आक्षेपों की आवश्यक चर्चा करते हुए अब हमने इस विषय का समापन करने का निश्चत किया है।

अब तक जो चर्चा हुई, उन सभी में एक बात प्रमुखता से दिखाई देती है। वह यह है कि चर्चा में सम्मिलित बहुतांश सद्गृहस्थों के मत से इसके आगे मराठी में नए अरबी शब्द अथवा अहिंदू शब्द निष्कारण यानी हमारे तदर्थक शब्द होते हुए या अन्य हिंदू भाषाओं से अगर ले सकते हैं, तो न लिये जाएँ। अगर इतना भी जनजागरण हुआ और यह बोध सभी महाराष्ट्रीय लेखकों को हुआ, तो भी यह मानना पड़ेगा कि इस चर्चा से बहुत-कुछ कार्य हुआ है।

निजामी राज्य में जो मराठी लोग हैं और वह्राड़ प्रदेश में जिन मराठी लेखकों को उर्दू की छाया में रहना पड़ता है, उन लोगों को यह सावधानी रखनी ही पड़ेगी।

वहाँ मराठी में मुसलमानी संपर्क के कारण नए विदेशी शब्द घुसने की संभावना थोड़ी न होकर दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है। निजाम यूनिवर्सिटी में उनके इसलामी विद्यापीठ से और सरकारी लेखन-कार्य से तत्रस्थ हिंदू भाषाओं को एकदम नामशेष तो नहीं, पर तेजहीन करके उर्दू का सर्वत्र प्रसार करने का सहेतुक और अत्यधिक प्रयत्न चल रहा है, यह हमने पीछे बताया ही था।

वास्तविक रूप से निजाम के राज्य में मराठी, कन्नड़, तमिल या तेलुगु—ये प्रमुख हिंदू भाषाएँ ही प्रचलित हैं और केवल हिंदू ही नहीं, मुसलमान भी उसी मातृभाषा में बोलते हैं, तथापि उनके टैक्स का धन विदेशी और अपरिचित उर्दू भाषा पर ही व्यय किया जाता है। विश्वविद्यालय की सारी शिक्षा उर्दू में ही चलेगी। सभी शास्त्रीय अंग्रेजी पारिभाषिक शब्द संस्कृतोत्पन्न हिंदू भाषा में अनुवादित न करके

तत्रस्थ लोगों को एकदम अपरिचित अरबी भाषा के शब्दों में करने का निश्चित नियम बनाया गया है। ऐसी स्थिति में निजामी राज्य के सहस्रों मराठी लोगों में से सुशिक्षित लोगों के मुँह में और साहित्य में ये विदेशी शब्द घुसने की और उनके संपर्क से मराठी भाषा में अपना सदैव स्थान कायम करने की संभावना ही नहीं, बल्कि उत्कट भय है। अत: यह बात शिवपूर्वकालीन ढिलाई के जैसे पुन: घटित न हो, इसलिए निजामी और वऱ्हाड़ी मराठी लेखकों को कड़ी सावधानी रखनी चाहिए। यों ही कहीं का नया उर्दू शब्द अपने लेख में लिखना विद्वत्ता का प्रदर्शन है, इस तरह की समझ अभी वहाँ के लेखकों में पाई जाती है। हम उनको पुन: एक बार प्रेमपूर्वक, पर दु:ख से सावधान करते हैं। इसके आगे तो जहाँ तक संभव हो, उर्दू शब्द मराठी में कभी उपयोग में न लाने का निश्चय और ऐसे शब्द मराठी में यों ही घुसेड़ना विद्वत्ता का लक्षण न होकर स्वाभिमानशून्यता का सूचक है, उन्हें इस तरह का प्रण करना चाहिए।

इसके आगे तो कम-से-कम नए मुसलमानी शब्द मराठी में न घुसने दें अथवा जो पहले से ही घुसे हुए ऐतिहासिक अभिलेखों या 'पोवाड़ा' में पाए जाते हैं, वे विस्मरण की कब्र से उखाड़ने का 'शाहिरी' पागलपन न करें, इस मत के बारे में जैसा एकमत दिखाई दिया, उसी तरह इस चर्चा में और एक महत्त्व के विषय पर मतैक्य पाया गया, यह बड़े संतोष की बात है। अंग्रेजी भाषा के शास्त्रीय और पारिभाषिक शब्द भी संस्कृत से या तदुत्पन्न हिंदू भाषा संबंधों से निर्मित किए जाएँ, परंतु अंग्रेजी के शब्दों को व्यवहार में बिलकुल न लाएँ। मराठी भाषा बोलते-लिखते समय बीच में ही अंग्रेजी शब्द उपयोग में लाने का दुष्ट अभ्यास निंदनीय समझकर छोड़ देना चाहिए।

इस विषय के बारे में बहुतांश लोगों का मत अनुकूल दिखाई दिया कि विष्णु शास्त्री चिपळूणकरजी ने मराठी को अंग्रेजी के बलात्कार से बचाने का जो स्तुत्य कार्य किया है, उसका प्रयत्नपूर्वक समर्थन करते रहना चाहिए। तथापि एक बार प्रमुखता से कहे बिना हमसे रहा नहीं जाता कि इस मत को सक्रिय स्वीकार करने का प्रयत्न जिस तरह पहले होता था, वैसे आजकल बिलकुल नहीं होता है। पाठशालाओं तथा विश्वविद्यालयों के होनहार छात्रों की स्थिति तो इस दृष्टि से अत्यंत शोचनीय होती जा रही है।

इन दस-बारह वर्षों में इस विषय पर ध्यान रखकर सम्मिश्र मराठी बोलनेवाले पर कोड़े लगानेवाला कोई विष्णु शास्त्री का शिष्य निर्माण नहीं हो सका। अत: नई युवा पीढ़ी को घर-बार में, बाजार-हाट में सहज ही मराठी में अंग्रेजी शब्द घुसेड़ देने की घातक आदत इतनी हो गई है कि चौथी या पाँचवीं कक्षा के छात्रों को भी,

उसे अंग्रेजी छोड़ना अत्यंत कठिन हो गया है—यह हम देख रहे हैं। लाला हरदयालजी के जैसे अंग्रेजी भाषा के विद्वान् स्वीडन से भी शुद्ध हिंदी में पत्र लिखते हैं और यहाँ पाठशाला के छठी-सातवीं कक्षा के, जिनको पाँच सौ अंग्रेजी शब्द भी अच्छी तरह से नहीं आते, अनाप-शनाप बकते हुए सुनाई देते हैं कि 'जब मैंने पेपरहैंड ऑव्हर' किया, तब मेरा 'हेडेक' हो रहा था। छात्र जब आपस में या अपने से ज्येष्ठ और श्रेष्ठ व्यक्ति के साथ बोलते हैं, तब प्रौढ़ता का लक्षण समझकर 'मदर', 'फादर', 'वाइफ' ये शब्द नियमित रूप से उपयोग में लाते हैं और उनके श्रोता उनको यत्किंचित् भी दोष न देते हुए सुन लेते हैं। बड़े लोगों की बात तो इससे भी तिरस्करणीय हो गई है। आजकल हमने एक प्रमुख गृहस्थ को यह कहते हुए सुना है कि 'उसने जो पोजीशन एॅश्यूम' की, वह ओरिजनल ही फॉल्स थी।' इस तरह के और हास्यास्पद अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं।

कुल मिलाकर इस तरह के प्रकार से हमें इस बात के बारे में कोई शंका नहीं रही है कि आजकल इस विषय की तरफ लोगों का बिलकुल ध्यान नहीं है। लेखों तथा व्याख्यानों में मात्र सुदैव से काफी सावधानी रखी जाती है। इससे यही सिद्ध होता है कि बोलते समय जो ढिलाई आ जाती है, उसका कारण यह है कि मराठी में वे भाव व्यक्त करने की शक्ति नहीं है। इसलिए ढिलाई नहीं आ जाती, तो लिखने में तथा व्याख्यानों में जितना सँभलकर या ध्यान देकर लिखने या बोलने का हमें जो अभ्यास हो गया है, उतना ध्यान देकर या सावधानी से घरेलू संवादों में शुद्ध मराठी बोलने का अभ्यास हम नहीं कर पाते हैं। अत: बोलते समय मराठी में अंग्रेजी शब्द ब्रिना कारण घुसेड़ना बड़ी लज्जाजनक बात है, यह भावना मन में रखकर घर में, पाठशालाओं में—मराठी में अंग्रेजी शब्द घुसेड़ते ही उस व्यक्ति पर प्रेम भरी आलोचना का और सहज उपहास की वर्षा करनी चाहिए।

पारिभाषिक शब्द

उसी तरह पारिभाषिक शब्द और शास्त्रीय शब्द अंग्रेजी से मराठी में अनुवादित करने का प्रयत्न सदैव करते रहना चाहिए। कुछ शास्त्रों के पारिभाषिक शब्द निश्चित करने के लिए बड़ौदा में समितियाँ नियुक्त की गई हैं और राजाश्रय से समिति द्वारा समर्थित पारिभाषिक शब्दों की पुस्तकें भी प्रकाशित की गई हैं। अन्य प्रांतों में भी उसी तरह की व्यवस्था हो रही है। अब वह समय आ गया है कि इन वैयक्तिक और अल्पसंख्यांक प्रयत्नों के आधार पर हिंदू भाषाओं के अलग-अलग साहित्य परिषदों द्वारा एक संयुक्त समिति गठित करके, समिति द्वारा मान्य किए गए पारिभाषिक शब्द तमिल भाषा से पंजाबी भाषा तक यानी सभी हिंदू भाषाओं में तथा

सभी हिंदू साहित्य में रूढ़ करने के जोरदार प्रयत्न किए जाएँ। आशा है कि त्वरित ही उस दिशा में प्रयत्न किए जाएँगे।

जब तक सर्व ग्राह्य और सर्वमान्य परिभाषा तय नहीं होती, तब तक कामचलाऊ कार्य के लिए, नवीन कल्पना और विचार प्रदर्शित करने के लिए जो शब्द हम उपयोग में लाते हैं, उन्हीं की योजना करनी चाहिए। पहले से ही प्रत्येक लेखक को यह सावधानी रखनी चाहिए कि वे शब्द संस्कृतोद्भव या हिंदू भाषोद्भव होकर आसान, सहज और श्रुतिमधुर हों।

इस विषय में हिंदी और बँगला समाचार-पत्र कितने यत्न करके नए शब्द ढूँढ़ते हैं, निर्माण करते हैं—यह देखने के बाद दुःख से यह बात मान्य करनी पड़ती है कि इस कार्य में हमारा मराठी लेखक वर्ग अत्यंत लापरवाही दिखा रहा है और इसका कारण उनकी विशेष विद्वत्ता या उद्भावक शक्ति न होकर वहाँ यही माना जाता है कि भाषा में उर्दू या अंग्रेजी शब्द प्रयोग अथवा उर्दू-संस्कृत या उर्दू-प्राकृत शब्दों के सम्मिश्र कर्णकटु समास करना लांच्छनास्पद और अज्ञान का द्योतक है। 'सोसायटी के तहाहयात मेंबर' या अब बड़ौदा में नियुक्त 'पदवी पद के बक्षीस कमिटी' जैसे कर्णकटु नाम—ऐसे कितने ही उदाहरण मराठी समाचार-पत्रों में नित्य देखे जाते हैं। अगर हिंदी या बँगला समाचार-पत्र देखने लगें तो इस तरह के शब्द बहुत ही कम प्रमाण में पाए जाएँगे और उन समाचार-पत्रों में नित्य देखे जाते हैं। अगर हिंदी या बँगला समाचार-पत्र देखने लगें तो इस तरह के शब्द बहुत ही कम प्रमाण में पाए जाएँगे। उन समाचार-पत्रों में छपे हुए शुद्ध तथा सुसंवादी नए शब्द पढ़ते समय मन संतोष से भर जाता है। मराठी में ऊपर कहे हुए बड़ौदा की समिति का नाम हिंदी में 'पदवी-पदक पारितोषिक मंडल' लिखा जाएगा और 'तहाहयात' शब्द के स्थान पर 'यावज्जीवन सदस्य' शब्द प्रयोग वहाँ रूढ़ ही हो गया है। चौथी या पाँचवीं कक्षा में व्याकरण में पढ़ाया जानेवाला नियम कि समास सम्मिश्र शब्दों के न हों, संस्कृत शब्दों से संस्कृत शब्दों का, प्राकृत शब्दों से प्राकृत शब्दों के समास हों, हमारे पत्रकार और लेखक ध्यान में रखेंगे और उर्दू संस्कृत या अंग्रेजी संस्कृत शब्दों के समास करने का कार्य प्रयत्न करके टालेंगे तो आगे चलकर मराठी में 'कायदे कॉन्सिल' के जैसे चालू शब्द प्रचलित नहीं होंगे। हिंदी और बँगला के समाचार-पत्रों में उसके लिए 'व्यवस्थापिका सभा' शब्द पहले से ही शुद्ध और सार्थक अन्वर्थक शब्द की प्रयुक्ति होने के कारण आज वह शब्द पाठशाला के छात्रों तक में रूढ़ हो गया है।

जो अंग्रेजी शब्द पहले से ही और ऊपर के वर्णन के अनुसार प्रारंभिक ढीलेपन से घुसे हैं, उनके लिए कम-से-कम लेखों में और व्याख्यानों में तो अपने

प्रतिशब्द उपयोग में लाने की परंपरा डालना अनुचित नहीं होगा। 'हॉस्पिटल' शब्द लेंगे। हम इस शब्द के लिए आजकल 'रुग्णालय' प्रतिशब्द की प्रयुक्ति करते हैं, सो तो ठीक ही है, वह शब्द रूढ़ भी हो रहा है, परंतु जिनके गले से 'हॉस्पिटल' शब्द झट से निकल जाता है और 'रुग्णालय' शब्द केवल लेखों या व्याख्यानों में ही अटक जाता है, ऐसे विकृत शरीर-रचना के कुछ व्यक्तियों के लिए भाषा की प्रकृति ही विकृत करना इष्ट नहीं है। यदि 'हॉस्पिटल' शब्द ग्रामीण लोगों तक रूढ़ हुआ है तो 'रुग्णालय' शब्द उपयोग में लाते-लाते क्या रूढ़ नहीं होगा? वही स्थिति औषधालय (डिस्पेंसरी), दाई या शुश्रु (नर्स), चलचित्र या चित्रपट (सिनेमा), ग्रंथालय (लाइब्रेरी) आदि शब्दों की है। कुछ दिनों तक ये विदेशी शब्द बोलते समय आ ही जाते हैं, इसलिए रहेंगे, परंतु उनके साथ-साथ स्वकीय प्रतिशब्द प्रचलित होते-होते उन विदेशी शब्दों के पीछे होनेवाला सत्ता का आश्रय नष्ट होने पर वे शब्द नामशेष होकर स्वकीय शब्द ही पीछे बाकी रहेंगे।

पुराने उर्दू शब्दों का क्या करना है?

वह सारांश रूप में देखेंगे। हमने ऊपर कहा ही है कि नवीन उर्दू शब्द मराठी भाषा में न घुसेड़े जाएँ और अंग्रेजी शब्दों को अभी से ही घरेलू बोलचाल में भी बिलकुल भी आश्रय न दिया जाए, इस बात को लेकर इस चर्चा में लगभग एकमत हो गया है; परंतु पुराने उर्दू शब्दों को अपनी भाषा से निकालने का प्रयत्न किया जाए या नहीं, इस विषय पर काफी मतभेद हुआ और वह स्वाभाविक ही है, क्योंकि एक बार किसी बात का अभ्यास हो गया तो वह छुड़ाना इतना कठिन हो जाता है कि वह अभ्यास अहित कारण न होकर हितकारक है, इस बात को सिद्ध करनेवाली बुद्धि को धोखा देकर उसी बात का मन सदैव प्रयत्न करता रहता है।

संतश्री समर्थ रामदासजी के ग्रंथ में उर्दू शब्द काफी प्रमाण में पाए जाते हैं। अत: एक ने यह विधान किया है कि 'छत्रपति शिवाजी के काल में मराठी से उर्दू शब्द शक्यत: निकालकर अपने पुराने शुद्ध स्वकीय शब्दों का पुनरुज्जीवन प्रयत्न हुआ है, यह बात मूलत झूठ है।' ऐसे विधान का या वक्तव्य का क्या उत्तर दिया जाए? लाला लाजपतराय हिंदी के समर्थक हैं और हिंदी को ही पूरे हिंदुस्थान की राष्ट्रभाषा बनाया जाए। इसलिए प्रत्येक आर्यसमाजी प्रयत्न कर रहा है; परंतु जब लिखने की बारी आती है तो लालाजी को उर्दू में लिखे बगैर चारा नहीं रहता और आर्यसमाजियों की भाषा में ना, ना कहते-कहते पचास प्रतिशत उर्दू शब्द आ जाते हैं, परंतु इसी कारण से क्या कोई यह कह सकेगा कि लालाजी को या आर्यसमाजियों

को हिंदी शुद्धीकरण मान्य नहीं है? वही बात श्रीसमर्थ रामदासजी की थी। बचपन से सैनिक, राजनीतिक, व्यावहारिक इत्यादि हजारों उर्दू शब्द मुख से और मज्जा में गहरे घुस गए थे। मन चाहता है कि वे शब्द नहीं रहने चाहिए। फिर भी वे जा नहीं सकते। उसपर उस महान् विभूति ने अपना जीवन भाषाशुद्धि से अत्यधिक आवश्यक होनेवाली आत्मशुद्धि के लिए समर्पित किया था। यह जानते हुए भी बचपन से रूढ़ उर्दू शब्द भाषा तथा लेखनी से निकलना कठिन होता है।

चूँकि संत्रास से समर्थ रामदासजी उर्दू शब्दों का प्रयोग करते थे, अत: मैं भी उर्दू शब्दों का प्रयोग करता हूँ—ऐसा कहना यानी समर्थ रामदास कौपीन पहनकर या रामकृष्ण परमहंस नंगे घूमते थे। अत: मैं भी नंगे ही घूमूँगा—यह कहने जितना हास्यास्पद होगा।

अब तक हम ऐसा कहते आए हैं कि अपनी भाषा से पुराने हो या नए, विदेशी शब्द (अगर भाषा के लिए हितकारक हों तो भी) दृढ़ता से निकाल देने चाहिए; परंतु अब शक्यत: यानी कौन सी सीमा तक? इसके बारे में भी हम अपना मत संक्षेप में कह देते हैं और शब्दों के कुछ उदाहरण तथा प्रतिशब्द देकर यह अत्यंत विस्तारित लेखमाला समाप्त करते हैं।

इस विषय पर जब चर्चा चल रही थी, तब एक सद्गृहस्थ ने हमसे प्रश्न पूछा था कि यह तो सही है न कि घर में बाहर का प्राणवायु और प्रकाश अंदर आने देने से स्वास्थ्य ठीक रहेगा? तब हमने उत्तर दिया था, 'हाँ, यह बात सही है, परंतु घर में बाहर से आनेवाले प्राणवायु और प्रकाश को न आने देने के लिए खिड़कियाँ या दरवाजे ही न रखना जैसा एक आकुंचन का अत्याचार होगा, वैसे ही घर की सभी दीवारें प्राणवायु और प्रकाश को आने देने के लिए गिरने देना या गिराना और घर का घरपन ही नष्ट करना भी प्रसारण का अत्याचार ही होगा। उसी तरह जब तक मराठी भाषा का विशिष्ट और स्वतंत्र अस्तित्व रखना हो, तब तक उसमें बाहर के शब्द और वाक्प्रचार कुछ अंश तक आने देना यद्यपि आवश्यक है, तथापि वे बिना कारण घुसेड़ देने में या घर में होनेवाले मकड़ी के जाल को (एक बार लग गया है तो) लटकते रहने देने में अनिष्ट ही समझना चाहिए। हम अपनी भाषा में कहाँ तक विदेशी शब्दों का प्रयोग करें या न करें, इसकी मर्यादा हमने अपने पहले लेख में प्रस्तुत की है। अत: यहाँ उसकी पुनरुक्ति नहीं करेंगे। संक्षेप में इतना ही कहना काफी होगा कि दूसरी विदेशी भाषा के शब्द तभी स्वभाषा में स्वीकार किए जाएँ, जब उस शब्द से व्यक्त होनेवाली कल्पना किसी भी तरह से अपनी भाषा के शब्दों की अभिव्यक्ति न होती हो। अत: नए प्रकार की विशिष्ट वस्तुएँ, विशिष्ट प्राणी, विशिष्ट पदार्थ, विशिष्ट बातों के तद्देशीय नाम अपनी भाषा में अगर रूढ़ हुए, तो

चिंता की कोई बात नहीं है और ऐसे शब्दों से भाषा की संपत्ति सचमुच ही वृद्धिंगत होती है। उदाहरण के लिए—किसी विलायती पेड़ या फल का नाम, अफ्रीका के या उत्तर ध्रुव पर होनेवाली, अभी-अभी खोजी गई किसी जाति का नाम, नए-नए यंत्रों के नाम इत्यादि जैसे-के-वैसे ही लेने में कोई हर्ज नहीं है। पहले लेख में यह मर्यादा भी हमने स्पष्ट की है, ऐसा होते हुए भी यह आश्चर्य की बात है कि कुछ लोगों के हृदय में निष्कारण धड़कन बढ़ने लगी कि क्या हम 'गुलाब' शब्द को खो देंगे? इससे वे चिंतित हैं।'

नए, परंतु जिनके लिए हमारे यहाँ मूल शब्द या मूल नाम ही नहीं है, ऐसे पदार्थों के मूल शब्द अगर अपनी भाषा में अभिव्यक्त न होते हों तो वे ज्यों-के-त्यों हमारी भाषा में स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है। वैसे ही स्थिति उन पुराने विदेशी शब्दों की होनी चाहिए जो हमारी भाषा में घुल-मिल गए हैं।

पुराने उर्दू या अंग्रेजी शब्द, जो हमारे यहाँ पहले से ही रूढ़ न होनेवाली कल्पना के या वस्तुओं के संकेत हैं और जिनको हमारी भाषा में पुराने या नए शब्द ही नहीं हैं—ज्यों-के-त्यों सुखेनैव हमारी भाषा में रहने देने चाहिए। उदाहरणार्थ—खुर्ची (कुरसी), टेबल, कोट, जैकेट, ट्रंक, कॉलर इत्यादि। प्रत्येक शब्द से एक विशिष्ट नई वस्तु का संकेत मिलता है। उन वस्तुओं के लिए हमारी भाषा में पुराने नाम नहीं हैं और वे शब्द भी छोटे तथा अपनी भाषा से अधिक विसदृश नहीं हैं। जोड़ा, जूती, चप्पल, खड़ाऊँ, इत्यादि उपानह या पादत्राणों की जातियों से अलग विशिष्ट एक पादत्राण का नया प्रकार 'बूट' शब्द से व्यक्त होता है। इसलिए 'बूट' शब्द अपनी भाषा में ज्यों-का-त्यों रखा जाए; परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि पादत्राण, उपानह इत्यादि पुराने शब्द उपलब्ध होते हुए भी और नया तदोत्पन्न शब्द निर्माण करना संभव होते हुए भी पादत्राण के लिए अंग्रेजी शब्द 'शू' समानार्थी मराठी में प्रयुक्त करना मूर्खता होगी और यह बात निषिद्ध ही समझी जाए। इसी उदाहरण से सर्वसाधारण नियम ध्यान में रखना चाहिए।

शब्द-संपत्ति का आडंबर

हमारी भाषा में होनेवाले पुराने शब्दों से जहाँ तक हो सके, काम चलाना चाहिए—हमारे इस कथन पर अनेक बार ऐसा पूछा जाता है कि उपानह, पादत्राण—इन पुराने शब्दों के होते हुए भी 'शू' शब्द प्रयोग में लाने से क्या हानि होनेवाली है? उससे तो शब्द-संपत्ति बढ़ती है। अगर इसी दृष्टिकोण से देखा जाए तो आजकल के अंग्रेजी शिक्षित लोग शिष्टता की भाषा समझकर आए हुए मेहमान से यह कहते हैं कि 'वाइफ सिक है।' यह भी क्षम्य ही मानना होगा, क्योंकि पत्नी, अर्धांगिनी,

भार्या इत्यादि चाहे जितने संस्कृत प्राकृत शब्द पत्नी के लिए होते हुए भी जो अपनी पत्नी को 'वाइफ' नामक नवीन नाम देता है, वह यही कहेगा कि इससे शब्द-संपत्ति बढ़ती है। इतना ही नहीं तो पिता, जनक, बाप इत्यादि शब्दों को छोड़कर 'फादर ने गेस्ट को रिसीव किया, कहनेवाले लड़के भी फादर, मदर, सिस्टर, ब्रदर आदि शब्दों का प्रयोग करके मराठी भाषा की शब्द-संपत्ति बढ़ाने का महत्त्कार्य कर रहे हैं, ऐसा ही कहना पड़ेगा। अगर उससे भी एक कदम आगे बढ़ना हो तो ऐसा भी कहा जा सकता है कि उत्तर की तरफ के हिंदू बाप को सभ्यता का शब्द लगाने के लिए उर्दू का 'वालिद' शब्द लगाते हैं, ईश्वर को 'मालिक' कहते हैं, वे भी शब्द-संपत्ति ही बढ़ा रहे हैं। अगर ऐसा है तो पिता, बाप, जनक, पिताश्री आदि अनेक तदर्थक शब्द छोड़कर शब्द-संपत्ति बढ़ाने के लिए उर्दू का 'वालिद' और अंग्रेजी का 'फादर' शब्द उपयोग में लाकर क्यों रुके? जर्मन, फ्रेंच, ब्रुशिटों, अंदमानी इत्यादि सभी भाषाओं के पिता के लिए जितने भी शब्द हैं, वे सब बारी-बारी से या अपनी सनक के अनुसार उपयोग में लाकर उन शब्दों की माला पितृचरणों पर क्यों न अर्पित करें? इस तरह की दिग्विजय करके जो कर-भार (भारी कर-राजस्व) मिलेगा, वह किसी (रघुवंश के) रघुराजा के समान हम अपनी भाषा के भंडार में उड़ेलने लगें तो उससे शब्द-संपत्ति बढ़ जाएगी; परंतु वह शब्द-रत्नाकर अपनी भाषा का न होते हुए जागतिक भाषा का एक नया मिलावटी कोश तैयार हो जाएगा। घर की सीमाएँ विस्तृत करने के लिए सभी दीवारें गिराकर घर खूब विस्तृत हो रहा है—इसलिए अपना ही अभिनंदन करा लेनेवाले पागल घरधनी के जैसे, गृहस्वामी के जैसे भाषा में भी खूब उर्दू और अंग्रेजी शब्द घुसेड़नेवाले शब्द-संपत्तिवर्धक का संतोष बिलकुल हास्यास्पद है।'

कुछ उदाहरण : प्रथम वर्ग

इस कसौटी पर अब अपनी भाषा में घुसे हुए उर्दू शब्दों की थोड़ी परीक्षा करें। सबसे पहले जिस शब्द को अपनी भाषा में यथार्थ प्रतिशब्द होते हुए भी वे लुप्त होते जा रहे हैं और इसीलिए उनका उपयोग व्यवहार में न हो, तो हम लेखों तथा व्याख्यानों में तुरंत बंद करें। उनमें से कुछ शब्द (प्रतिशब्दों के साथ नीचे दिए हुए हैं) मजलिस-ए-आम = लोकसभा (यह अत्यंत खेद की बात है कि ग्वालियर जैसी मराठी रियासत में अभी-अभी जो प्रातिनिधिक सभा स्थापित हुई, उसका नाम हिंदी व मराठी प्रजा को ही क्या, तत्रस्थ मुसलमानी प्रजा को भी समझना कठिन होगा, इतने अगड़धत्त विदेशी शब्द से रखा जाए। यह विक्षिप्त कल्पना इस गलती के मूल में है कि उर्दू शब्दों में कुछ विशेष शान या गांभीर्य है। यह कहना अनुचित

न होगा कि मराठी के शुद्धीकरण से उर्दू शब्दों की तरफ विदेशी दृष्टि से देखने का चस्का मराठी लोगों को लग गया है, यह भी एक बहुत बड़ा काम हो गया है। लोकसभा, प्रजासभा—ये नाम छोड़कर 'मजलिस-ए-आम' नाम रखना स्वाभिमानशून्यता की पराकाष्ठा है।) रजा = अवधि, छुट्टी; कैफियत = बयान, आत्मसमर्थन, वक्तव्य; जबरी संभोग = बलात्कार, बलसंभोग; इसम = मनुष्य, कोम = भ्रतार (उदाहरणार्थ पार्वती कोम महादेव नारकर—इस तरह से महिलाओं के नाम लिखने की पद्धति निंदनीय है-पार्वती भ्रतार महादेव नारकर इस तरह लिखा जाए।), मालक = स्वामी; जमीन-आसमान = आकाश-पाताल; हवामान = ऋतुमान या वायुमान (यह संतोष की बात है कि पत्रकारों ने 'हवामान' शब्द छोड़कर 'ऋतुमान' शब्द व्यवहृत करना आरंभ किया है) शिवाय = बिना, व्यतिरिक्त; खबरदारी = सावधानता।

ऊपर दिए हुए कुछ उदाहरण ऐसे विदेशी शब्दों के हैं कि जिस अर्थ से अपने पुराने शब्द अभी एकदम मृत नहीं हुए हैं और अगर व्यवहार में लाएँ तो सहज समझ में आ जाएँगे। इसलिए इस तरह के उर्दू या अंग्रेजी विदेशी भाषाओं के शब्दों के स्थान पर कम-से-कम लेखों या व्याख्यानों में अपने प्रतिशब्द अथवा इससे अधिक यथार्थ शब्द किसी को सूझते होंगे तो वे शब्द हम सदैव दृढ़ता से उपयोग में लाने से वे मरणासन्न स्वकीय शब्द पुनः सहज रूढ़ हो जाएँगे। इस प्रकार के उर्दू शब्द अगर निकाल दिए तो मराठी भाषा की बहुत बड़ी हानि होगी, इस प्रकार से भय करने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि एक-एक अर्थ के अपने भाषा-भंडार में चार-चार शब्द मिल जाएँगे। क्वचित् एकाध शब्द में कोई विशेष खूबी हो तो अभ्यास से वह अपने शब्दों में भी जल्द ही अभिव्यक्त हो सकेगी।

दूसरा वर्ग

अब दूसरा वर्ग ऐसे उर्दू या विदेशी शब्दों का है, जिन्होंने हमारे तदर्थक पुराने शब्द पूर्ण रूप से नष्ट किए हैं। ऐसे शब्दों का पुनरुज्जीवन ऊपर के शब्दों के पुनरुद्धार की अपेक्षा अधिक कठिन है; पर इसीलिए वह काम अवश्य करना चाहिए। इस प्रकार के विदेशी शब्दों में कुछ विशेष बल या विशेष प्रकार की खूबी नहीं है। वे शब्द अपनी मूर्खता के स्मारक के रूप में रूढ़ हो गए हैं। उदाहरणार्थ— हजर = विद्यमान, उपस्थिति; हवा = वायु; हवा-पानी = पारा पानी, जलवायु; यादी = टिपण, टिपणी, तालिका; जख्म = घाव, व्रण, क्षत; जख्मी = घायल, विक्षत; तयार = सिद्ध, सज्जता, सिद्धता; पूर्व तयारी (यह बुद्धू शब्द कितना कटु है) पूर्व व्यवस्था, पूर्व सज्जता; उमेदवार = प्रार्थी, इच्छुक, प्रवेशेच्छु; कारकीर्द = राज्यकाल,

सत्ताकाल, आयुकाल; शिफारस = अनुरोध, प्रशंसा; जाहीर = प्रसिद्ध; जाहिरात = विज्ञापन, प्रसिद्धक, प्रसिद्धिपत्र; खाली = निश्चिति, प्रतीति, प्रत्यय; परिग्राफ = छेदक; हवामान = ऋतुमान; हवापालट = वायुपालट; जवाबदारी = उत्तरदायित्व, जवाबदार = उत्तरदायी; सर्टिफिकेट = प्रमाण-पत्र।

ऐसे और भी बहुत से विदेशी शब्द सुझा सकते हैं, जिनको दिए हुए प्रतिशब्द मराठी पाठकों के लिए कौतुकास्पद रूप से नए हैं। हमें 'हवामान' शब्द अच्छा लगता है, जैसे व्यसनी मनुष्य को अफीम कड़वी नहीं लगती, परंतु 'ऋतुमान' या 'वायुमान' शब्द नया लगता है, परंतु उसका प्रयोग करने लगने पर एक महीना, दो महीने के अंदर वह शब्द पूरे महाराष्ट्र में शिक्षितों तथा अशिक्षितों में प्रचलित हुआ ही समझ लीजिए।

'यह अत्यंत कठिन है'—ऐसी शंका जिनके मन में है, वे इतना ही ध्यान में रखें कि ये ही उर्दू और विदेशी शब्द हिंदी और बँगला भाषा में भी प्रचलित थे, परंतु चार-पाँच वर्षों में ही वहाँ के लेखकों ने अत्यंत दृढ़ता से 'स्वकीय' शब्द प्रयुक्त करने का व्रत लिया। परिणामस्वरूप आज उन दोनों भाषाओं के साहित्य में हमारे दिए हुए प्रतिशब्द एकदम रूढ़ हो गए हैं और अब लोगों की बोलचाल की भाषा में भी हिलमिल गए हैं। ऊपर दिए हुए उर्दू शब्दों के लिए हमने अपने हिंदी बंगाली बांधवों द्वारा प्रयुक्त प्रतिशब्द ही हेतुत: दिए हैं, क्योंकि एक ही शब्द का उपयोग हिंदू भाषाओं में जितना अधिक किया जाएगा, उतना ही वह राष्ट्रभाषा के प्रचार के लिए उपकारक होगा। दूसरी बात यह है कि हम उर्दू या विदेशी शब्दों को मराठी से निकालने का आंदोलन केवल इसी लेख में नहीं कर रहे हैं। जब कारागृह के बंदीवास में थे, तब से आज तक सैकड़ों लोगों को वैसे ही लिखने की आदत डाल रहे हैं। छात्रों से लेकर विद्वानों तक जिन सैकड़ों महिलाओं और पुरुषों ने इस व्रत को स्वीकार किया है, उनका यही अनुभव है कि पहले महीने में उन शब्दों का उपयोग करना कठिन लगता है, परंतु आगे चलकर उस स्वकीय शब्द का इतना परिचय और अभ्यास हो जाता है कि विदेशी शब्द मराठी में प्रयुक्त करने से सुनने में ही कड़वे लगते हैं। उसकी योजना की अपार इच्छा हुई तो भी वे प्रयुक्त नहीं किए जाते। कुछ लोग कहते हैं कि उनका प्रयोग करना कठिन हो जाता है, पर कठिनता की शंका का भी निवारण किया जा सकता है। अगर हम इन विदेशी शब्दों को इतनी सहजता से आत्मसात् कर सकते हैं, तो हमारे लिए स्वकीय शब्द आदत से परिचित होने में क्या कठिनाई है ? कम-से-कम इतना भी कर सकें तो भी अच्छा होगा कि ये विदेशी शब्द जिन भावनाओं को व्यक्त करने के लिए एकमात्र साधन बने हुए हैं, वे ऐसे ही न होकर हमारे पुराने स्वकीय और भाषा प्रकृति से सुसंवादी

शब्द भी उनके साथ (उन विदेशी शब्दों के साथ) व्यवहार और लेखों में उपयोग में लाए जाएँ।

उर्दू का सिरचढ़ापन

हमने पिछले मुद्दों में उल्लेख किया ही है कि इन उर्दू शब्दों का सिर-चढ़ापन ही भाषा में रुकावट डालता है, असुविधाजनक होता है, फिर भी कविता में वह कितना असुविधाजनक होता है, उसका और भी स्पष्टीकरण करेंगे। 'तयार' या 'हवा' शब्द कुछ भी करने पर अभिजात मराठी कविता में नहीं जँचते, वे सुसदृशता से शोभा नहीं देते। भीमसेन रणांगण पर हाजिर थे (हजर होता)--यह वाक्य गद्य में किसी कान को नहीं खटकता होगा, पर हमारे कान को खटकता है—तथापि किसी अभिजात्य वृत्त में उस शब्द को रखना असंभव है। (उदाहरणार्थ फौजे ची यादी कर कृष्ण म्हणे ठेव त्यावरी नजर। दोस्ता, भीम बहादुर ये अनि होईल शीघ्र ची हजर। यह आर्यावृत्त कैसा लगता है? 'हजर', 'यादी', 'तयार' शब्दों को टालकर अगर भाव व्यक्त करना हो तो तद्दर्शक संस्कृतोत्पन्न पुराने शब्द पूर्ण रूप से नष्ट होने के कारण वह भाव व्यक्त करना छोड़ देना पड़ता है या पर्याय से व्यक्त करना अनिवार्य होता है। भाषा की इतनी परावलंबिता लज्जाजनक बात है और अगर हिंदी तथा बँगला भाषा में इन शब्दों का वर्चस्व नष्ट करके ऊपर दिए हुए प्रतिशब्द दो-चार वर्षों में रूढ़ किए गए हैं, तो हम यह कार्य क्यों नहीं कर सकते? अपनी उन भगिनी भाषाओं के तदर्थक प्रचलित स्वकीय शब्द हम क्यों न उपयोग में लाएँ? अगर किसी को ऊपर दिए गए प्रतिशब्दों से अधिक सहज-स्वाभाविक परिचित और यथार्थ स्वकीय शब्द सूझ गए तो निश्चित ही हम उन शब्दों को सानंद स्वीकार करेंगे।)

हास्यकारक प्रतिक्रिया : स्वदेशी शब्द भी विदेशी प्रतीत होने लगते हैं

इसके पहले ही हमने बताया है कि 'मराठी शुद्धीकरण' पर प्रथम लेख प्रसिद्ध होने के बाद महाराष्ट्रीयन शिक्षित वर्ग में इस विषय पर चर्चा शुरू हुई है और शब्द परख लेने की नई प्रवृत्ति उत्पन्न हुई है। जहाँ कोई शब्द स्वदेशी है या विदेशी है, इसकी शंका भी मन में उत्पन्न नहीं होती थी, वहीं अब शब्द सामने आते ही—वह कौन सी भाषा का शब्द है, इस बात की चर्चा सामान्य विद्यार्थियों तक में पाई जाने लगी है। इस प्रवृत्ति के कारण अनेक लोगों का ध्यान व्युत्पत्तिशास्त्र की तरफ सहज ही आकर्षित हुआ, परंतु इसके कारण स्वाभाविक हास्यकारक प्रतिक्रिया

भी उत्पन्न हुई है। अच्छे-अच्छे विद्वान् द्वारा इस विषय पर चलनेवाली चर्चा में अनेक शुद्ध स्वदेशी शब्द भी उर्दू शब्द समझे जाने लगे हैं। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि आज तक शब्दों की व्युत्पत्ति की तरफ लेखक वर्ग का ध्यान नहीं था। कुछ लोग यह कसौटी लगाते हैं कि जो शब्द उर्दू में होता है, वह विदेशी शब्द है, पर हमने पहले ही उर्दू की उपपत्ति की चर्चा के समय बताया था कि यह भ्रम है। समाचार-पत्रों में छपे हुए अपने लेखों में भी हमने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि मराठी में उर्दू शब्द कितने घुसे हैं। 'केसरी' तथा अन्य समाचार-पत्रों के लेखकों ने 'स्वारी', 'बगैरे', 'माहिती', 'बाजू', 'सक्त', 'बातभी', 'चौकस', 'ठराव', 'करार', 'गरम' इत्यादि शब्दों को भी उर्दू शब्द कहा है और हमें बताया है कि हम इन शब्दों के लिए प्रतिशब्द बताएँ। इस तरह अज्ञानी, अनाड़ियों को इतना ही उत्तर काफी है कि ये सभी शब्द शुद्ध संस्कृतोत्पन्न हैं। 'अश्वारोही' शब्द से 'स्वारी', 'वर्ग' शब्द से 'वगैरे', 'महित' शब्द से 'माहिती', 'भुजा' शब्द से 'बाजू', 'शक्त' शब्द से 'सक्त', 'वृत्त' शब्द से 'वित्तम्-बातभी', 'चौ दा चतुः' शब्द के रूप से 'जास्त', 'जादा', 'स्थिर' या 'स्था' शब्द से 'ठरणे', 'ठराव', 'कृ' शब्द से 'करार', 'धर्म' (हिंदी में धाम यानी ऊन) शब्द से 'गरम', इस तरह इन शब्दों की व्युत्पत्ति हुई है। उसी तरह 'खाना', 'दार', 'दान', 'बे' ये प्राकृत प्रत्यय रूप शब्द मूल संस्कृत शब्द से या प्रत्ययों से आए हुए हैं। जिस 'खन्' धातु से खणणे, घर का खण (खण-एक नाप) शब्द तैयार हुए हैं, उसी का रूप 'खाना' है। अतः कारखाना यानी जिस खण में यानी घर में, जगह में कर्मकार काम करते हैं, वह स्थल। 'घर' (जैसे बेत्रघर) शब्द से 'दार' यानी धारण करनेवाला शब्द तैयार हुआ है। 'आधान' शब्द से 'दान' शब्द (पर्णाधान-पानदान), 'विरहित' शब्द से 'बे' (जैसे—बेसुध) ये प्राकृत रूप उत्पन्न हुए हैं। पुराने हिंदी ग्रंथों में भी वे पाए जाते हैं। अतः ये प्रत्यय या शब्द केवल पर्शियन में पाए जाते हैं, इसलिए वे शब्द विदेशी ही होंगे, यह समझना कोरा भ्रम है। यहाँ एकाध दूसरे शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में मतभेद हो सकते हैं, पर वह फुटकल प्रश्न है।

संशयास्पद फुटकर या फुटकल कठिनाई का आसान उपाय और संशयित शब्द पहचानने के नियम

जिसे ऐसा लगता है कि विशिष्ट शब्द विदेशी ही है, वह व्यक्ति उस शब्द को छोड़कर तदर्थक अन्य स्वदेशी शब्द का प्रयोग करे। हमारी स्वदेशी भाषा में तमिल, मलयालम से कश्मीरी भाषा तक प्रत्येक भावना और वस्तु-निदर्शक अनेक शब्द बिखरे हुए हैं, उन शब्दों में से चाहे जो शब्द चुन लीजिए। इस लेख में ऊपर

दिए हुए या अन्य शब्दों की उपपत्ति देना अशक्य और अप्रस्तुत है। भाषा विशेषज्ञों को यह कहना न पड़ेगा कि मूल धातु से प्रस्तुत शब्द व्यवहृत होने तक वह शब्द अनेक रूपों में और अनेक अर्थों से गुजर जाता है। यहाँ इतना ही सार्वत्रिक नियम ध्यान में रखने से काम चलेगा कि जो शब्द मराठी में और उर्दू में भी है या पर्शियन भाषा में और हिंदी भाषा में जिनके रूप समान हैं, वे शब्द पर्शियन ही हैं, ऐसा नियम बिलकुल नहीं है। अपनी भाषा के समान अनेक शब्द पर्शियन या अरबी में भी व्यवहृत होने पर वे केवल इतने ही कारण से विदेशी शब्द नहीं होते। जो शब्द संस्कृत धातु से या हिंदी धातु से अपभ्रंश के हमारे व्याकरण के सामान्य नियमों के अनुसार सहज सिद्ध हो सकते हैं और जिनका उपयोग किसी पुराने-से-पुराने उपलब्ध हिंदी ग्रंथों में पाया जाता है, वे शब्द स्वदेशी हैं, यह आसान परिभाषा कुछ थोड़े से अपवाद छोड़कर शब्द स्वकीय है या विदेशी है, यह पहचानने के लिए सर्वत्र उपयुक्त होगी।

इस परिभाषा के निष्कर्ष पर परीक्षा लेकर हम शब्द-प्रयोग करने का प्रयत्न करते हैं

तथापि यह स्वाभाविक ही है कि जिस भाषा की विकृति से अपनी भाषा की रक्षा करने के लिए हम विशेष प्रयत्न करना चाहते हैं, उसी भाषा की घुट्टी बचपन में हमें भी पिलाई गई है। अतः जाने-अनजाने या कभी-कभी निरुपाय होकर कुछ विदेशी शब्द हमारे लेखन में पाए जाते होंगे, परंतु हमारी भाषा में भी कभी-कभी रोग के लक्षण बीच-बीच में दिखाई देते हैं। इससे वह रोग हितकारक है—यह सिद्ध नहीं होता। उलटे वह रोग हमारे हाड़-मांस में गड़ गया है, इसलिए अन्य लोगों ने हमसे भी अधिक सावधानी से अपने लेखन में उसका उच्चाटन करना चाहिए। कोई-कोई तो यह प्रश्न भी करते हैं कि हम बैरिस्टर सॉलिसिटर शब्द भी त्याज्य मानते हैं या नहीं? इसका उत्तर यही है कि वे ही उन शब्दों का त्याग करके हम पर मात करें। इससे हमें अधिक ही प्रसन्नता होगी; परंतु सर्वसाधारण नियम के रूप में इतना ही कहना पर्याप्त है कि 'बैरिस्टर', 'बी.ए.', 'एम.ए.' इत्यादि उपाधिदर्शक शब्द होने के कारण विशेष नाम के जैसे भाषातराई नहीं है, उनका अनुवाद नहीं किया जाएगा। जिस तरह खलीफा, पोप, शंकराचार्य आदि विशिष्ट नामों से उन विशिष्ट अधिकार-पद का बोध होता है, वही स्थिति इन शब्दों की है। जब वे संस्थाएँ उन उपाधियों के लिए स्वदेशी शब्दों की योजना करेंगी, तब राजसत्ता के आधार पर जीनेवाले 'कलेक्टर' आदि शब्द वह राजसत्ता स्वदेशी होते ही स्वदेशी में रूपांतरित होंगे, वैसे ही वे शब्द उन स्वदेशी उपाधियों में परिणत हो जाएँगे और

फिर भी स्वदेशी राजसता आने तक न रुकते हुए विदेशी शब्दों के स्थान पर स्वदेशी शब्दों की योजना करना—अर्थ-हानि न करते हुए अगर संभव है तो अवश्य ही करनी चाहिए।

मराठी में नए उर्दू शब्द न घुसड़ने दें, वैसे ही स्वदेशी भाषा में बीच-बीच में अंग्रेजी शब्द घुसेड़ने की बुरी आदत भी निंदनीय है। यहाँ तक जिन्होंने हमारे मत की या चर्चा की पुष्टि की, उनमें से अनेक लोगों ने उसके आगे की सीढ़ी हमारे साथ चढ़ने से इनकार करके केवल इतना ही उपदेश किया कि किसी भी प्रकार का

अतिरेक त्याज्य है और सुवर्ण मध्य ही ग्राह्य है

परंतु उन्होंने यह स्पष्टता से कहीं भी नहीं बताया कि कौन सी सीढ़ी तक वे हमारे साथ चढ़ना नहीं चाहते और सुवर्ण मध्य की व्याख्या क्या है? वास्तविक स्थिति ऐसी है कि हम भी कहते हैं कि अतिरेक त्याज्य है और सुवर्ण मध्य ग्राह्य है। ऐरिस्टॉटल का यह वाक्य बहुत पुराने काल से अनेक लोगों के होंठों पर नाचता ही आया है, पर मुख्य कठिनाई सुवर्ण मध्य की व्याख्या करने के प्रश्न की है। हर कोई अपने-अपने अभ्यास का समर्थन जिस प्रकार से होगा, उस मर्यादा को सुवर्ण मध्य मानता है। कोई 'रूढ़' उर्दू शब्द रहने दें, पर अंग्रेजी शब्द नहीं होने चाहिए—को सुवर्ण मध्य मानता है, तो कोई आज वाईफ का श्राद्ध है—इस वाक्य को सुवर्ण मध्य कहकर अनिंद्य समझता है। अत: यह स्पष्ट है कि यह गड़बड़ी सुवर्ण मध्य की यथाशक्ति स्पष्ट रूपरेखा तैयार किए बिना दूर नहीं होगी। जिस भावना और वस्तु के उत्तम निदर्शक हमारे पुराने शब्द थे या हैं या हम उनको सहज निर्माण कर सकते हैं, उस स्थान पर निष्कारण विदेशी शब्द का प्रयोग न करें; परंतु अगर विशिष्ट वस्तुओं के विशेष नाम के जैसे होनेवाले शब्द अथवा जिनके अर्थ की खूबी और संक्षिप्तता अगर हमारी भाषा में व्यक्त करना असंभव है, ऐसे विदेशी शब्दों को स्वीकार करने में कोई हर्ज नहीं है। यही भाषाशुद्धि के सुवर्ण मध्य की सच्ची रूपरेखा होगी। इससे भाषा की शक्ति और संपत्ति का हरण करनेवाला संकुचितपन का अतिरेक और उसका सत्त्व हरण करके उसको भ्रष्ट करनेवाले आत्मघातकीपन का अतिरेक—दोनों सहज ही टल जाएँगे।

परंतु यह स्पष्ट रूप से कहना चाहिए कि त्याज्य होनेवाले इन दोनों अतिरेकों में से अगर हमें किसी एक का

अतिरेक चुनना अनिवार्य हो तो

उनमें से 'आज मॉर्निंग को वाईफ को फीवर चढ़ गया था, फिर भी वैसे

ही स्टीमर का फर्स्ट क्लास का टिकट निकालकर बॉम्बे को आ गया। एराइव होते ही स्टेशन के प्लैटफॉर्म पर थर्मामीटर एप्लाइ करके देखता हूँ तो क्या! टेंपरेचर हंड्रेड ऐंड टू! यह वाक्य बोलनेवाले भ्रष्ट अतिरेकी की अपेक्षा—आज सुबह ही पत्नी को बुखार आया था, परंतु वैसे ही अग्नि नौका से पहले दरजे की दर्शिका निकालकर मुंबई पहुँच गया। स्टेशन के चबूतरे पर तापमापन लगाकर देखा तो क्या! तापमान एक सौ दो।' यह वाक्य कहनेवाले शुद्ध अतिरेकी ही हमें अधिक अनुकरणीय लगते हैं, क्योंकि यह स्वदेशी अतिरेकी अधिक-से-अधिक भाषा का जीवन आकुंचित करेगा, पर वह पहला भ्रष्ट अतिरेकी के जीवन का घात भी कर सकता है।

यही भ्रष्ट अतिरेक

सुवर्ण मध्य, शब्दसंपत्तिवर्धन इत्यादि मधुर नामों की आड़ में छिपकर समाज में घूमते रहने से दस वर्ष पहले जो पराए शब्द नए लगते थे, वे आज रूढ़ हो गए हैं और आज जो शब्द नए लगते हैं, वे विदेशी शब्द इस अतिरेकी अपराध की ओर अगर ध्यान नहीं दिया तो और दस वर्षों में रूढ़ हो जाएँगे। फिर रूढ़ शब्द वैसे ही रहने देने चाहिए—ऐसा कहनेवाले सद्गृहस्थ उनका भी समर्थन करने लगेंगे और तदर्थक हमारे अन्य अनेक शब्दों को मरण के द्वार पर बैठना पड़ेगा। देश निर्वासन की सजा पाकर जब हम काले पानी (अंदमान द्वीप) पर चले गए थे, तब क्रिकेट और फुटबॉल के खेलों के व्यतिरिक्त 'आउट' और 'रेडी' शब्द देशी खेलों में नहीं घुसे थे और देहातों में तो उन शब्दों का नामोनिशान तक नहीं था। अब चौदह वर्षों के बाद फिर स्वदेश में वापस लौटकर आने के बाद देखते हैं तो कोंकण जैसे कोने के प्रदेश के छोटे-छोटे देहातों तक में बच्चों के घरेलू खेलों में भी 'रेडी', 'वन, टू, थ्री', 'आउट' शब्द रूढ़ हुए हैं।

आँखमिचौनी, लुकाछिपी, छिपा-छिपी इत्यादि लड़कियों के खेल में छोटी लड़कियाँ 'रेडी', 'आउट'—यही शब्द उपयोग में लाती हैं। पहले के 'सावध', 'भारत', 'धर लिया', 'गिर गया' ये शब्द बताए गए तो पहले उनका प्रयोग करना ही बच्चों को कैसा-वैसा लगेगा। और दस वर्षों के बाद पुराने शब्द पूर्ण रूप से नामशेष होने पर उन खेलों में 'रेडी', 'आउट' शब्दों को भी रूढ़ शब्द घर में घुस गए हैं, इसलिए भाषा में रहने दीजिए—यह कहनेवाले सुवर्णमध्यवाले होंगे और प्रत्येक इतिहासवेत्ता इन विदेशी शब्दों का उनमें होनेवाले शब्दों के प्रयोगों से ये खेल भी विदेश से आए होंगे—यह समझकर संशोधनपूर्ण निबंध लिखकर 'दक्षिणा प्राइज कमेटी' की तरफ से पुरस्कार भी प्राप्त कर लेंगे।

दुकान के नाम-पटल पर और नाम की पट्टी पर अंग्रेजी शब्द तथा नाम भी आद्याक्षर में लिखने की मूर्खता

जिस गाँव में और नगर में अंग्रेज लोग वस्तुएँ देने के लिए या लेने के लिए आने की या भेंट देने की बिलकुल संभावना नहीं है, वहाँ भी दुकानों पर या घरों पर वस्तुओं के या गृहस्थ के नाम अंग्रेजी में लिखकर फलक लटकाए जाते हैं। 'हेयर कटिंग सैलून', 'क्लॉथ मर्चेंट', 'टेलर्स', 'बुकसेलर्स ऐंड पब्लिशर्स', 'टी.वी. टेकणे', 'प्लीडर'—इस तरह की तख्तियाँ देहातों में भी लटकाई हुई दिखाई देती हैं। इस तरह अंग्रेजी शब्दों में पट्टियाँ लटकाने का एक नया रिवाज ही शुरू हो गया है, क्या यह केवल छिछोरापन नहीं है? ग्राहक आकर्षित हों, ग्राहकों की संख्या बढ़ जाए—इसलिए तख्तियाँ लगाई जाती हैं। ग्राहकों में, हजार ग्राहकों में एक ग्राहक को भी उन शब्दों क़ो अच्छी तरह अर्थ ही समझ में नहीं आता—ऐसे स्थानों पर ये अंग्रेजी फलक लगाने से क्या ग्राहक बढ़ जाएँगे? उसकी अपेक्षा मराठी में 'फलक रँगानेवाला, नाम फलक तैयार करनेवाला', 'दर्जी', 'केशकर्तनालय', 'विधिज्ञ', 'अंदर-बाहर' (इन-आउट) के जैसे आसान शब्द लिखकर अगर तख्तियाँ लगाई जाएँ, तो क्या वे अधिक ग्राहक आकर्षित नहीं करेंगी? परंतु वे गँवार दुकानदार समझते होंगे कि इस तरह के अंग्रेजी अगड़धत्त शब्दों के फलक दुकान का विशेष अलंकार हैं अथवा एक रूढ़िजन्य संस्कार है। कल अभिप्रायार्थ कोंकण तहसील के एक गाँव से केश-तेल की एक शीशी मेरे पास किसी ने भेजी थी, उसपर मराठी अक्षरों में 'हेअर ऑयल' का छपा हुआ कागज चिपकाया था।

परंतु इतनी हास्यास्पदता मानो कम समझकर ये दुकानदार उन फलकों पर अपने नाम भी अंग्रेजी आद्याक्षरों में लिखते हैं—जैसे 'आर.एम. बुडवे', 'डब्ल्यू.एच. रडतोंडे'। बुडवे और रडतोंडे को यद्यपि अंग्रेजी आद्याक्षरों में लिखे हुए स्वकीय नाम विसंगत नहीं लगते। फिर भी किसी भी स्वाभिमानी महाराष्ट्रीय को वे अक्षर खटकेंगे, इसमें कोई शक नहीं है। प्रशाला (हाई स्कूल) के छात्र भी 'अरे, एस.वी.', 'अरे, एम.जी.' इस तरह के अंग्रेजी आद्याक्षरों से एक-दूसरे को पुकारते हुए सुनाई देते हैं और उनको उनके अध्यापक, अभिभावक भी डाँटते नहीं, न उनपर हँसते हैं। अगर किसी स्वाभिमानी विद्यार्थी ने, छात्र ने कक्षा में अनावश्यक अंग्रेजी या उर्दू शब्द बोलने को टाल दिया तो उस छात्र पर उसे 'अतिरेकी' कहकर अध्यापक भी हँसते हैं और उपेक्षा से उसकी तरफ देखते हैं। स्वदेशी भाषा के आद्याक्षरों में पुकारना या लिखना यानी 'स.म. काले', 'वि.ग. जोशी' क्या ऐसे प्रयोग नहीं कर सकते? परंतु कायर पर तुष्टीकरण ही जिस तेजोहीन पीढ़ी में उदारता मानकर पूजा

जाता है और उचित स्वाभिमान भी अनुदारता भासमान होती है, उस पीढ़ी में अपने नाम अपने ही आद्याक्षरों में लिखेंगे या संबोधित करेंगे, इतना भी आत्मसम्मान कहाँ से आएगा? क्या किसी अंग्रेज द्वारा अपना नाम जॉन स्टुअर्ट मिल की जगह जॉ. स्टु. मिल लिखा हुआ पाया जाता है?

सदैव नए विदेशी शब्दों को स्वीकार करने की निरर्थकता

यही निरर्थकता अब भी अनेक उर्दू और अंग्रेजी शब्दों को मराठी के मंदिर में चोर की भाँति घुसने देती है। मुंबई के कुछ उपन्यासों पर 'सेंसेशनल' शब्द लिखा जाता है। आज भी 'सेंसेशन' क्या चीज है—यह बात हजारों में एकाध को ही मालूम होगी। थोड़े ही दिनों में विशिष्ट प्रकार के उपन्यासों पर यह शब्द हमेशा देखकर उस विशिष्ट शब्द के साथ वह संबोधित होने लगेगा और बाद में शिक्षितों में 'सेंसेशनल' शब्द रूढ़ हो जाएगा। सुशिक्षित रंगोपंत के मुँह से ले आ वह सेंसेशनल उपन्यास, यह आज्ञा सुनते हुए बालक और बेबी, गृहलक्ष्मी और धरगडी भी वह शब्द सीख जाएँगे और आगे के दस वर्षों में घर-द्वार में 'सेंसेशनल' शब्द रूढ़ हो जाएगा। इलेक्शन मैनिफेस्टो की स्थिति को अगर समय पर न रोका तो वैसी ही हो जाएगी। हमारे सामने चित्रमय जगत् पत्रिका के रद्दी अंक की एक चिट्ठी पड़ी हुई है, उसमें एक कवि 'भवानी तलवारी स शहिराचा शाहिरी मुजरा' करते-करते कहता है—'तुझ्या वरी कितिक मर्दांचे नाचले शूर तकदीर' उस मर्द की तकदीर नाच गई तो नाच गई, पर उस कविवर्य को हाथ जोड़कर हमारी प्रार्थना है कि इसके आगे तो बेचारी मराठी की 'तकदीर' ऐसी तलवार की धार पर मत नचाओ। यह 'तकदीर' शब्द क्या सर्वसाधारण मराठी बोलनेवाले हजारों में से दस लोगों की भी समझ में आता है? दैव, कर्म, भाग्य के जैसे अनेक तदर्थक शब्द स्वदेशी में होते हुए भी यह विदेशी करारा शब्द अपनी कोमल कविता के सिर पर सवार कर देने से क्या कविता की थोड़ी सी भी शोभा बढ़ गई है? पर कोई मुसलमानी शब्द कहीं से चोरी-छुपे लाकर अगर कविता में नहीं घुसेड़ दिया तो फिर वह कैसी शाहिरी कविता? और कैसा वह शाहिराचा शाहिरी मुजरा? परंतु

ये ही लोग कहते हैं कि स्वदेशी नए शब्द रूढ़ होना जरा कठिन है!

आश्चर्य की बात यह है कि तकदीर, दिल, सेंसेशन इत्यादि हमारी भाषा की प्रवृत्ति से विसंवादी होनेवाले विदेशी शब्द उसमें निष्कारण घुसेड़े जाते हैं और उसके खिलाफ मात्र 'ये शब्द सुनने में अच्छे नहीं लगते।' क्यों यह नया झंझट

लाया? इस तरह का शोरगुल कोई सुवर्ण मध्य का अभिमानी नहीं करता, पर नई कल्पना दर्शक एकाध संस्कृत शब्द किसी ने प्रयुक्त किया अथवा रूढ़ विदेशी शब्द के स्थान पर उपयोग में लाया तो यह नया शब्द कैसे रूढ़ होगा? इसमें आशावाद का अतिरेक है! यह निरर्थक बला क्यों लाई गई है? इस तरह की अनेक चिंताओं से इन लोगों का मुँह उतर जाता है, मगर वे पुराने हॉस्पिटल, म्यूनिसिपैलिटी आदि भारी शब्द या 'रेडी', 'आउट' इत्यादि घुसनेवाले विदेशी शब्द हमारे अशिक्षित समाज तक कैसे पहुँच गए? इस बात पर वे दृष्टिक्षेप करेंगे तो सहज रूप में जान पाएँगे कि विदेशी शब्दों के स्थान पर नए स्वदेशी शब्द भी हम निश्चय करके प्रयुक्त करने लगे तो उसी परंपरा के अनुसार बोलते-बोलते वे शब्द भी रूढ़ हो जाएँगे। अगर विदेशी अपरिचित शब्द हमारे किसानों तक में रूढ़ हो सकते हैं तो स्वदेशी और इसीलिए सापेक्षत: मूल में किंचित् परिचित होनेवाले शब्द अगर हमने प्रयत्न किया तो रूढ़ होने ही चाहिए। विदेशी रूढ़ शब्दों को उन्होंने निकाला नहीं, तो भी वे उसके साथ-साथ चलकर विदेशी शब्दों का प्रतिस्पर्धी स्वामित्व नहीं चलने देंगे।

विष्णु शास्त्री चिपळूणकर उर्दू शब्दों के विरुद्ध क्यों नहीं थे?

कोई हमें टोकता है कि विष्णु शास्त्रीजी ने घर तथा बाहर अंग्रेजी भाषा का या शब्दों का उपयोग करने के विरुद्ध लिखा है, यह सच है। फिर भी उन्होंने उर्दू शब्दों के विरोध में कुछ अधिक नहीं लिखा है। उनको हमारा उत्तर यह है कि शास्त्री बुवाजी के काल में यह किसी के ध्यान में नहीं आया था कि उर्दू की घातक मजबूत पकड़ सभी हिंदी भाषाओं के साथ मराठी को भी जकड़ लेगी और उर्दू को ही राष्ट्रभाषा बनाना चाहिए। इस तरह का दुराग्रह खुल्लमखुल्ला करने की उनकी महत्त्वाकांक्षा बढ़ेगी। जो उर्दू शब्द घुस गए हैं, घुसने दें। अब राजसत्ता बदल जाने से वह समस्या नहीं रही है। अत: उर्दू की तरफ ध्यान नहीं दिया तो भी चलेगा, परंतु जिसका वर्चस्व राजसत्ता के आधार से मराठी पर संपूर्ण रूप से होने की भीति निर्माण हो रही थी, उस अंग्रेजी भाषा के गुप्त आक्रमण की तरफ कड़ी नजर रखनी चाहिए, ऐसा स्वाभाविक रूप से उनको लगा होगा।

विष्णु शास्त्रीजी की परिस्थिति में उन्होंने जो कहा है, वह नई परिस्थिति को भी लागू करना था, उनका कहना त्रिकाल सत्य मानना 'बाबा वाक्यं' प्रमाण के जैसा होगा। तत्कालीन शोध प्रगति के आधार पर शास्त्रीजी ने सहज ही प्रतिपादन किया कि कवि मोरोपंतजी का संस्कृत ज्ञान किसी पुराणिक के जैसा ही अत्यंत सामान्य था; परंतु आज तक प्रकाशित उनकी ग्रंथसंपत्ति के आधार पर यह ज्ञान होते हुए भी

कि मोरोपंतजी संस्कृत पर प्रभुत्व प्राप्त करके संस्कृत में भी व्युत्पन्न थे, शास्त्रीजी के कथन पर ही चिपककर रहना गलत होगा। वैसे ही उर्दू के बारे उनके मतों का होगा। आज परिस्थितियाँ बदल गई हैं। आज अगर वे जीवित होते तो उनके स्वाभिमानी स्वभाव से अनुमान लगाने पर यह स्पष्ट होता है कि उससे सद्य:परिस्थिति में उन्होंने विदेशी शब्दों को निकालने के आंदोलन का ही समर्थन किया होता, यही अधिक संभवनीय है। और एक अंतिम उत्तर यह है कि यद्यपि विष्णु शास्त्रीजी को उर्दू शब्द बहिष्कृत करने की बात नहीं सूझी, तो भी छत्रपति शिवाजी को उसकी आवश्यकता प्रतीत हुई थी। 'शब्द प्रमाण' पर ही अगर अवलंबित रहना हो तो भाषा-शुद्धीकरण को स्वयमेव छत्रपति शिवाजी महाराज की राजाज्ञा का ही आधार समुचित होगा।

हमें भी परिस्थिति ने ही उर्दू शब्दों के बहिष्कार के लिए विवश किया है

विष्णु शास्त्रीजी की तो बात ही दूर है, कारागृह में जाने तक हम भी उर्दू शब्दों के कहाँ विरोधी थे? अंग्रेजी शब्दों को हमने टाल दिया है, परंतु उर्दू शब्द चुन-चुनकर बाहर निकालने की प्रवृत्ति तब न होने के कारण हमारे युवाकाल के ग्रंथों में कविता में आज हम जिनको त्याज्य मानते हैं—वे शब्द हमने नि:संकोच उपयोग किए हैं, परंतु बंगाल जैसे प्रांत में, जहाँ मुसलमानों के घर में भी उर्दू बहुधा किसी की समझ में नहीं आती, वहाँ भी जब मुसलमानी अरबों ने उर्दू ही बोलनी चाहिए, का आंदोलन शुरू किया। इतना ही नहीं, हिंदुओं को भी उर्दू भाषा और पर्शियन लिपि ही हिंदुस्थान की राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि मानने को विवश कर देंगे, ऐसी हजारों मुसलमानों की प्रतिज्ञाएँ होने लगीं और अलीगढ़ में उठी हुई यह उत्तरीय लहर की पकड़ में आज नहीं तो कल मराठी भी जकड़ जाएगी, इस प्रकार की भीति निर्माण हुई। तब हमें भी इसके बारे में प्रयत्न करने के लिए विवश होना पड़ा कि उर्दू शब्दों का बहिष्कार करने की प्रवृत्ति महाराष्ट्र में वृद्धिंगत हो जाए। सभी मराठी लेखकों से हमारी विनम्र विनती है कि आज तक हमने उर्दू शब्द कभी-कभी प्रयुक्त किए थे, इसलिए यह दुराग्रह न करते हुए आगे चलकर भी उर्दू शब्दों का प्रयोग नहीं करेंगे। गत आठ-दस वर्षों में भाषा के कल्याणार्थ हमने उन शब्दों का प्रयोग नहीं किया, उसी तरह पहले गलती हुई थी, इसलिए वे लेखक भी आगे चलकर वह गलती न करें अथवा उर्दू शब्दों का प्रयोग करना गलत नहीं है, ऐसा कहने का दुराग्रह छोड़ दें। इसी में मराठी भाषा का हित है।

मराठी पर उर्दू का संकट आया ही नहीं है

ऐसा कहनेवाले कई समालोचक दुर्दैव से हमसे मिले। उनमें से एक ने तो एकदम अखंडनीय समझकर एक उदाहरण दिया है कि 'अहो! कोंकण में देख लीजिए। मुसलमानों को पर्शियन शब्द भी परिचित नहीं हैं—वे मराठी में बोलते हैं—तो फिर उनको उर्दू का अभिमान कैसे होगा?' इस आक्षेपक की आँखों में परस्पर कोंकणी मुसलमानों ने ही झनझनित अंजन लगाया है, इस बात को महाराष्ट्रीयन ध्यान में रखें। कोंकणी मुसलमानों की एक बहुत बड़ी शिक्षा-परिषद् रत्नागिरी में हुई। इस परिषद् के अध्यक्ष एक बड़े सरकारी अधिकारी थे। उन मुसलमान अधिकारियों के और अन्य वक्ताओं के भाषण में स्पष्ट कहा गया है कि 'जो अपनी धर्म-भाषा नहीं है, उसे अपने घर-बार में बोलने पर कोंकणी मुसलमानों को शर्म आनी चाहिए।' यह लज्जाजनक स्थिति टालने के लिए सैकड़ों रुपयों का कोष इकट्ठा करके स्थान-स्थान पर उर्दू पाठशालाएँ खोल दी जाएँगी। आजकल कोंकण में उर्दू पाठशालाओं की संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है; उन पाठशालाओं में अध्यापक की पूर्ति करने के लिए अध्यापक अभ्यास क्रम की भी पाठशालाएँ खुल गई हैं, उनको सरकारी कोष से अनेक शिष्यवृत्तियाँ अत्यंत उदारता से प्राप्त होती हैं। अगर कोंकण की यह स्थिति है तो महाराष्ट्र के अन्य प्रगतिशील मध्य प्रांतों की क्या स्थिति होगी? आज या कल, उत्तर की मुसलमानी भाषा को ही राष्ट्रभाषा करने का यह दुराग्रही आवेग महाराष्ट्र में सर्वत्र फैलाकर सहस्रों मुसलमान उर्दू को सिर पर बैठाकर अपनी असली मातृभाषा की छाती पर नाचना नहीं छोड़ेंगे। उनके साहचर्य में मराठी में—अगर समय पर ही हमने उसके दरवाजे पर अभी से कड़ा पहरा नहीं किया तो—उर्दू शब्दों का उपद्रव प्रारंभ हो जाएगा और मराठी को भी सिंधी, पंजाबी भाषा की तरह सत्त्वहीन होना पड़ेगा। इनकार करनेवालों को ध्यान में रखना होगा कि सिंधी, पंजाबी साहित्य भी एक समय मराठी की तरह शुद्ध था और जिस मुसलमानी आंदोलन ने और हिंदुओं की भोली 'चलने दे रे' कहनेवाली ढिलाई से वे भाषाएँ सत्त्व गँवा बैठी हैं, वही मुसलमानी आंदोलन महाराष्ट्र में भी शुरू हुए बिना नहीं रहेगा। जो संकट दस वर्षों के बाद सभी को दिखाई देनेवाला है, वह आज हम आँखों के सामने खड़ा कर रहे हैं। इसलिए अभी से सावधान होकर मराठी को शुद्ध रखने का अत्यंत दृढ़ और पक्का प्रयत्न करना परम आवश्यक है।

अहो! भाषा भाषा की बली होती है-यह नियति ही है

इस तरह भी एक तत्त्वज्ञ ने हमें उपदेश दिया। आज की भाषा कल नष्ट होगी अथवा रूपांतरित होकर किसी-न-किसी प्रकार से फिर जीवन प्राप्त करेगी—

यह तो सृष्टि का नियम है। वही स्थिति शब्दों की है। उस तत्त्वज्ञ का कथन तो सच ही है, तथापि यह सृष्टि-नियम घर-बार, गोपुर आदि को भी लग जाता है, उसका क्या? तो इसलिए क्या घर में पड़ी हुई दरारें, छेद आदि को बंद करना नहीं चाहिए? भाषा ही क्यों, मनुष्य भी मरता है, चाहे वह तत्त्वज्ञ ही क्यों न हो? फिर भी रोगों पर औषधोपचार कराने के लिए तत्त्वज्ञ भी प्रयत्नशील होते ही हैं, पौष्टिक (व्हिटामिन्स, टॉनिक आदि) लेते हुए भी पाए जाते हैं। इसके व्यतिरिक्त क्या भाषा, क्या सारा जगत्, प्रत्येक सावयव वस्तु एक दिन रूपांतर होगी या विनष्ट होगी ही, जैसा यह सृष्टि-नियम है, वैसे ही अपना अस्तित्व शक्यत: अक्षुण्ण रखने के लिए और स्वत्व शुद्ध रखने के लिए विनाशी शक्तियों से सतत संघर्ष करते रहना भी प्रत्येक सावयव वस्तु का स्वभाव क्या सृष्टि-नियम नहीं है?

जो विदेशी अनुकरण लोकहितवर्धक होगा, वह त्याज्य नहीं है

यद्यपि हम यह कहते हैं कि विदेशी शब्द नहीं लेने चाहिए, फिर भी उसके कारण विदेशी भाषाओं में होनेवाले सुंदर वाक्प्रचार या उदात्त कल्पनाएँ या विशेष अगाध ज्ञान हम त्याज्य समझते हैं, ऐसा मानना वस्तुस्थिति का विपर्यास है। ऐसा विपर्यास करनेवाले अपने को ही हास्यास्पद बना लेते हैं। जो उत्तम, अनुकरणीय और लोकहितवर्धक होगा, वह हम किसी से भी सीखें, उसका अनुकरण करें। 'बालादपि सुभाषित ग्राह्यम्।' इसमें मान-अपमान का कोई प्रश्न नहीं है और अगर वह प्रश्न भी गिनती में ले लिया तो भी हर्ज नहीं है; क्योंकि आज तक सारी मानव जाति को भारतवर्ष ने भौतिक और तात्त्विक ज्ञान या कला इत्यादि का जीवनदायी ऋण इतना दिया है कि वह ऋण उसी पूँजी पर उन्होंने सजाए हुए उनकी आज की दुकान से हमने कितना भी सामान क्यों न उठाया, तो भी सहज ही चुकता नहीं होगा।

इसलिए चुपचाप बैठना नहीं है

अब इस विषय पर की गई चर्चा का समापन करते-करते पुन: एक बार वही विनती करनी है कि रूढ़ विदेशी शब्द निकालना कठिन है और नए स्वकीय शब्द रूढ़ करना भी उतना ही कठिन है—पहले से ही इस तरह की गलत धारणा लेकर चुपचाप और निष्क्रिय होकर मत बैठिए। 'हुतात्मा' शब्द एक वर्ष के अंदर 'मार्टिअर' अंग्रेजी शब्द के अर्थ में प्रचलित न होते हुए भी क्या परिचित नहीं हुआ? शब्दों का उपयोग करते जाने से आप ही आप लेखों से शिक्षितों में और शिक्षितों से अशिक्षितों में वे शब्द रिसते जाते हैं।

बस, केवल कुछ व्यक्तियों को निश्चय करना चाहिए। अध्यापकों को भी इन शब्दों के अंत में जोड़ी गई टिप्पणी अपने विद्यार्थियों से लिखवाकर हमेशा सामने रखनी चाहिए। पुराने लेखकों के लिए यह कठिन होगा, पर ये शब्द सहजता से उच्चारण करना नई पीढ़ी के लिए आसान होगा। भाषा में उर्दू या अंग्रेजी शब्द घुसेड़ना उपहासास्पद और निंदनीय है। यह सामाजिक भावना तीव्रता से एक बार उत्पन्न हुई तो हमारा कार्य संपन्न हो जाएगा।

लेखकवृंद और अध्यापक वर्ग

यह सामाजिक भावना बनाने का प्रयत्न करनेवालों की सभी मराठी लेखक व मराठी अध्यापक सहायता करेंगे और छत्रपति शिवाजी महाराज का तथा पं. विष्णु शास्त्री चिपळूणकरजी का एक व्रत दृढ़ता से आगे चलाएँगे, ऐसा हमें निश्चित विश्वास है। इतना ही नहीं, बल्कि ऐसे प्रयत्नों को यश प्राप्त होकर मराठी में व्यर्थ घुसे हुए उर्दू और अंग्रेजी शब्दों की संख्या कम हो जाएगी और हिंदू भाषाओं में शुद्ध स्वकीय शब्दों का संचय जैसे-जैसे बढ़ जाएगा, वैसे-वैसे आज जो लोग इन प्रयत्नों पर शंका तथा उनका विरोध कर रहे हैं, वे भी आनंदित हो जाएँगे, क्योंकि अर्थ-हानि न होते हुए सुंदर स्वकीय शब्दों से हिंदू भाषा परिपुष्ट, परिमार्जित और परिवर्धित होते हुए देख हिंदू भाषा के किस अभिमानी को आनंद न होगा? किस हिंदू का हृदय उल्लसित न होगा?

अब इस तरह के सतत परिश्रम करने पर भी कुछ-कुछ राजकीय और शास्त्रीय विदेशी शब्द रह ही जाएँगे। उनमें से राजकीय शब्द हैं—जिल्हा, कलक्टर, गवहर्नर इत्यादि।

राजनीतिक सत्ता जैसे-जैसे स्वकीय हो जाएगी, वैसे-वैसे वे शब्द भी सहज परिवर्तित होंगे

तथापि वे नए शब्द राजनीतिक लेखन में भी क्यों न हों, रूढ़ करते समय पहले से ही उनको शुद्ध, संक्षिप्त स्वकीय प्रतिशब्द प्रयुक्त करने की प्रथा आरंभ की जाए। हिंदी में ऐसा ही करते हैं, ऐसा करने से कायदे कौंसिल या जबरी संभोग जैसे विद्रूप शब्दों का निर्माण नहीं होगा। भाषा में अत्यंत कम शब्द परभाषा के होना अलग बात है और स्वकीय शब्दों का वध करके—नारायणराव पेशवा के गारदी के जैसे उनका प्राणघातक वर्चस्व मान्य करना या विदेशी शब्द अपनी भाषा में प्रयुक्त करने से कोई हानि या दुर्बलता न होकर उनको भूषण मानना—विकृति होना अलग बात है।

चर्चा में सहभागियों का आभार और अब विदा

अंत में उर्दू, अंग्रेजी इत्यादि विदेशी शब्दों की तरफ त्याज्य दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति बनाना लेखक का मूल उद्‌देश्य था। वह काफी प्रमाण में सिद्ध हुआ है, क्योंकि इस विषय के बारे में संपूर्ण महाराष्ट्र के लेखक वर्गों में ही नहीं, पाठशालाओं के छात्रों तक में जो खलबली मची है और प्रशाला में इस विषय पर परीक्षा में निबंध भी रखा गया है, ये उदाहरण मूल उद्‌देश्य के सफल होने के ही हैं। यह सफलता देखकर हमारे मन को अत्यंत संतोष हुआ है, वह संतोष व्यक्त करके और जिन विद्वानों ने इस चर्चा में अनुकूल या प्रतिकूल पक्ष में हिस्सा लिया, उनका लोगों द्वारा व्यक्त किए आदरभाव के लिए उनका और सभी लोगों का मैं मन:पूर्वक आभारी हूँ। अब हम मराठी शुद्धीकरण की यह लेखमाला समाप्त करते हैं और इस कार्य की कार्यवाही करने का काम अब महाराष्ट्र के स्वाभिमान पर सौंपकर इस विषय से और आप लोगों से विदा होते हैं।

('मराठी भाषा का शुद्धीकरण' का यह भाग ख्रिस्ता १९२६ में प्रसिद्ध हुए वीर सावरकरजी द्वारा लिखित पुस्तक में प्रकाशित हुआ है। इसके पहले एक-दो वर्ष यह भाग दैनिक समाचार-पत्र 'केसरी' में 'पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध' नामक लेखमाला में प्रसिद्ध हुआ था। इस पुस्तक का पूर्वार्द्ध यहाँ समाप्त होता है। —संपादक)

□

कायदे कॉन्सिल के इलेक्शन के कैंडीडेटों का मैनिफेस्टोज

इस लेख के शीर्षक का वाक्य लिखते-लिखते हमारी लेखनी को, और पढ़ते-पढ़ते हमारे पाठकों को चौंकना पड़ा होगा—इसमें कोई शक नहीं है। कानूनी कॉन्सिल के सदस्यों के मैनिफेस्टोज के बारे में लिखने का साहस वीर सावरकरजी कैसे करते हैं? उनपर तो राजनीति में हिस्सा न लेने का सरकारी बंधन है। राजनीति के पूर्व प्रेम की उत्कंठा के कारण यकायक क्या वे बंधन भूल गए हैं?

यह बंधन हम भूले नहीं हैं, फिर भी इन शब्दों से जीवन भर हमारा दृढ़ परिचय होता रहा है कि ये शब्द अब घर में, द्वार में, गलियों में, राजमार्ग में, देहातों में या नगरों में जहाँ रहेंगे वहाँ लोगों के होंठों पर विराजमान रहते हैं और हम उनसे कुछ न बोलते हुए अजनबी के जैसे मुँह छिपाकर निकल जाते हैं, यह बात हमारे लिए दुस्सह हो रही है। काफी टालमटोल करने के बाद परसों उनसे भेंट न करने के उद्देश्य से कमरे में अपने को बंद कर लिया और समाचार-पत्र तक न पढ़ने का निश्चिय करके डाक आते ही केवल खानगी पत्र खोले। अकस्मात् एक लिफाफे में एक छपे हुए टुकड़े पर देखा तो पुनः अपना श्रीयुत् मैनिफेस्टो फड़क उठा। तब हमारा मन शर्मिंदा हुआ। जिस राजनीतिक शब्द के प्रेम के लिए हमने उस पोर्टब्लेयर के भस्मासुर दर्शन की भी फेरियाँ लगाईं, हमारे परिचित शब्द हमारे घर आकर हमारे कमरे में हाथ छोड़कर खड़े हुए हैं और फिर भी हम उनसे बात न करें—यह केवल निर्लज्जता होगी। ऐसा समझकर हमने उन सबसे खुले मन से बात करने का निश्चय किया और कहा, 'आइए कॉन्सिल, कायदे कॉन्सिल, इलेक्शन कैंडीडेट, मैनिफेस्टो, आइए, आइए, आप सब आइए। आपसे और आपके बारे में कुछ-न-कुछ बात किए बिना अब हमसे बिलकुल रहा नहीं जाता, उसके लिए चाहे जो सजा मिले, चाहे शिखा टूट जाए या शाखा टूट जाए (कहावत—शेंडी तुटो की

पारंबी तुटो का अर्थ है—दो टूक फैसला हो जाए, भले ही उसमें अपने को हानि भी क्यों न उठानी पड़े)'।

हमारा यह कथन सुनने के बाद वे सब आस्था से कहने लगे कि पोर्टब्लेयर के भस्मासुर का वरद्हस्त आपके सिर पर फेरे जाने से आपके सिर के बाल बहुतांश में झड़ गए हैं। अत: आपकी शिखा टूटने का भय मूलत: कम हुआ है, तथापि जीवन के जिस क्षीण बरगद की जटा (पारंबी) को आप अभी तक लटकाए हुए हैं, वह जटा हम जैसे राजनीतिक शब्दों के साथ बोलने से टूटने का भय है, ऐसा हमें लगता है। अत: आप शब्दों की पहचान न दिखाकर हमारे बारे में कुछ भी बोलें नहीं, तो भी चलेगा।

उनका यह उदार कथन सुनकर हमें उनसे अधिक ही बोलने की इच्छा हुई। हमने कहा, 'आपकी इस उदारता के लिए हम आभारी हैं, परंतु पूर्व परिचय के कारण आपके द्वारा बोलने से हमें मना करने पर भी आपके बारे में कुछ कहे बिना हमसे रहा नहीं जाता। सारा हिंदुस्थान इलेक्शन में मग्न है। ऐसे समय इस कायदे कॉन्सिल के इलेक्शन से मैं कुछ भी संबंध न रखूँ—यह असंभव है। किसी भी तरह से क्यों न हो, मैं कायदे कॉन्सिल के चुनाव में हिस्सा ले लूँगा। घबराइए नहीं। ऐसे विकट प्रसंग से छुटकारा पाने की मुख्य चाबी एक संन्यासी बाबा ने हमें अंदमान में दी थी।'

ये संन्यासी बाबा जन्म के चोर थे और जाति के लुटेरे डाकू, परंतु आगे चलकर किसी साधु के चंगुल में फँसकर उन्होंने चोरी छोड़ने की प्रतिज्ञा की और उस साधु-मंडली ने उसे संन्यासी बनाकर अपनी देख-रेख में रख लिया। वह साधु-मंडल भी स्वकार्य साधुत्व का कारोबार करते हुए भटकता था; परंतु इस बात के बारे में वे बड़े दक्ष थे कि कम-से-कम आपस में कोई एक-दूसरे की चोरी न करे। उनकी टोली में आने के बाद संन्यासी बाबा को चोरी करने की एक बड़ी मुश्किल थी कि यदि टोली में ही किसी की चोरी की तो वह द्रव्य सब लोगों की आँखें बचाकर कहाँ रखे? उस टोली में उनकी अपनी कोई लूट न थी, जो सब मिल जाएगा वह सब टोली का। इस झंझट के कारण संन्यासी बाबा संत्रस्त हुए। अत: लोभ के लिए न सही, केवल चोरी की हवस मिटाने के लिए भी क्यों न हो, उन्होंने चोरी करने का निश्चय किया। रात को जब बाकी सभी साधु सो जाते थे, तब वे चुपचाप उठकर उनका लोटा उसके पाँव के पास, इसका गेरुआ वस्त्र उठाकर उसकी झोली में डालकर, इनकी झोली का लँगोटा उसके सिरहाने रखने का कार्यक्रम करके फिर सो जाते थे। सुबह उठते ही साधुओं में एक ही पुकार उठती थी 'चोरी, चोरी।' हर कोई अपनी वस्तु दूसरे के पास पाने पर उसे चोर कहकर

गालियाँ देता था। इस कार्य का उद्गम कहाँ है—यह खोजने के लिए अंत में उनमें से ही एक साधु रात भर गुप्त रूप से जागता रहा। उसने देखा कि यह संन्यासी बाबा रात में उठकर अपनी उठाईगिरी के व्यवसाय में मग्न हुए हैं। तब जागरूक साधु द्वारा 'चोर-चोर' पुकार करते ही सभी जाग गए, उस संन्यासी को पकड़ लिया और उससे पूछा, 'तुम चोरी क्यों करते हो?' तब उसने उत्तर दिया, 'केवल शौक के लिए। क्या मैंने तुम्हारे किसी सामान की कभी चोरी की है? यहाँ का सामान वहाँ रखना कोई चोरी नहीं है। अपहार न करते हुए मैं अपनी चोरी की प्रतिज्ञा और चोरी का शौक दोनों पूरा कर लेता हूँ। अत: मुझ पर गुस्सा करना आप लोगों जैसे कार्यसाधक साधुओं को शोभा नहीं देता, क्योंकि मेरे इस कार्य से आपका कुछ भी बिगड़ता नहीं है।' यह उत्तर सुनकर कार्यसाधक साधु हँस पड़े और उन्होंने तय किया कि इस साधु को यह निरुपद्रवी उठा-पटक करने दी जाए।

कायदे कॉन्सिल, इलेक्शन, कैंडीडेट, मैनिफेस्टो, वोट इत्यादि बातों से हम कुछ भी संबंध न रखें, इसलिए हम पर निर्बंध लगाए गए हैं। फिर भी ऊपर के जैसे किसी-न-किसी युक्ति से हम कायदे कॉन्सिल के आनेवाले चुनाव में हिस्सा ले ही लेंगे, छोड़ेंगे नहीं। उन बातों की नहीं तो शब्द विषयक कुछ बोलने का शौक हम पूरा करेंगे। आप लोग चिंता मत कीजिए। आपके विचारों के पक्ष में कौन-कौन उम्मीदवार खड़े हैं वे सब हमारे सामने आ जाएँ। हम आपके गुण सुनकर यह निश्चित करके कि चुनाव में मतदान किसको करें, लोगों को वैसा करने के बारे में प्रबल अनुरोध (जबरदस्त सिफारिश) करेंगे।

यह सुनते ही एक अपरिचित, परंतु ढीठ शब्द आगे बढ़ा और कहा, 'मेरा नाम है मैनिफेस्टो। हिंदुस्थान के लाख लोगों में से एक से भी मेरा परिचय नहीं है, पर मैं सरकारी कैंडीडेट के रूप में खड़ा हूँ। अत: लोग वोट देकर मुझे चुनें। महान् नेता मेरी तरफ से मत प्राप्त करने के लिए खूब प्रयत्न कर रहे हैं। इस पीढ़ी में मैं संभावित संपादकों के घर-द्वार में परिचित हो जाऊँगा। दूसरी पीढ़ी में मैं प्रत्येक के होंठों पर चिपककर बैठ जाऊँगा और तीसरी पीढ़ी में लोकमत मेरी तरफ इतना झुक जाएगा कि अगर कोई नीच पगला लोगों से कहने लगा कि 'अहो! यह मैनिफेस्टो सरकार की तरफ का विदेशी मनुष्य है, अपने मत इसे मत दीजिए।' तो प्रत्येक असल देशभक्त कहने लगेगा, 'वाह! यह कितना स्वाभिमान का अतिरेक। यह बेचारा मैनिफेस्टो हमारे होंठों पर से मुँह में गड़ गया है। हमारे भाषागृह में देवघर तक इसका तीन पीढ़ियों से आना-जाना है और कहते हैं कि इसका उपयोग मत कीजिए। हमारे घर की शब्द-संपत्ति वृद्धिंगत करने का काम भी इसने किया है। हम इसी को अपना मत देंगे।'

जब वह यह वाक्य बोल रहा था, तभी दूसरा एक हिंदू वेषधारी शब्द आगे बढ़ा। उसका चेहरा परिचित लगा। उसने कहा, 'मेरा नाम निवेदन है। जिस विचार के लिए मैनिफेस्टो प्रतिनिधि होना चाहता है, उसी जगह के लिए मैं भी खड़ा हूँ। लोग अपना मत मुझे ही दे दें। लोग मुझे ही क्यों अपना मत दें? यह बात मेरे कहने की अपेक्षा मैनिफेस्टो ने जो कारण अपने समर्थन के लिए दिए हैं, उन्हीं कारणों से अधिक स्पष्ट होगा। उसी ने कहा कि लाख लोगों में से एक से भी उसका परिचय नहीं है, परंतु आगे की तीन पीढ़ियों में वह लोगों के घर में नित्य निवास करने लगेगा। इसीलिए मैं कहता हूँ कि इस सरकारी विदेशी भट को समय पर ही बरामदे में पाँव फैलाने से (कहावत है—भटाला दिली ओसरी आणि भट हळू हळू पाय पसरी—किसी को बरामदे में आश्रय देने के बाद वह धीरे-धीरे घर में घुसने लगता है) पहले ही उसको यहाँ से खदेड़ देना चाहिए। उसकी जगह मुझे दीजिए, स्वदेशी शब्द को दी जाए। उसका काम मैं कितनी अच्छी तरह से कर सकता हूँ, यह एक बार मुझे काम करने का अवसर देकर देख लीजिए। तब मेरे कहने पर आपको विश्वास होगा। मैंने हिंदुस्थान के वातावरण में ही जन्म लिया है, देववाणी संस्कृत मेरी दादी थी। पहले मूर्खता से विदेशी शब्दों को अपने विचारों का प्रतिनिधित्व करने देकर बाद में वे जब उस जगह पर कब्जा करके बैठ जाते हैं कि रोते-चिल्लाते 'शुद्धीकरण' के पीछे पड़ने में कौन सा सयानापन है? पहले के काल में 'जरूर', 'तागाईत', 'बल्लद', 'कोम' आदि उर्दू शब्दों को ऐसे ही सिर चढ़ा रखा और अब वे ही आपकी छाती पर मूँग दल रहे हैं। मैनिफेस्टो कहता है कि उसके जैसे विदेशी शब्दों से शब्द-संपत्ति बढ़ती है, पर उसके कारण हमारे जैसे स्वकीय शब्दों को भूखे मरना पड़ता है और दूसरी तरफ से शब्द-संपत्ति का क्षय होता है, उसका क्या करेंगे?'

उनका यह कथन सुनते ही हमने निर्णय किया कि इसके आगे लोग कभी मैनिफेस्टो को मत न देते हुए उस जगह के लिए 'निवेदन' को ही चुनें। अभी तो मैनिफेस्टो लाख में से एक के भी मुँह में नहीं बसा है। तभी उसे मज्जाव किया जाए। यह निर्णय सुनते ही हमारे विवेक नामक द्वारपाल ने मैनिफेस्टो के लिए कमरे का दरवाजा दिखाया और कड़ाई के साथ कहा कि फिर से अगर तू हमारी मराठी भाषा में घुस गया तो घूँसा खाने की बारी तेरी आएगी।

यह निर्णय सुनते ही आए हुए शब्दों में से विदेशी वेषधारी अपरिचित शब्द पीछे-पीछे होते-होते चले जाने लगे, तब हमने कहा कि मैनिफेस्टो का कथन सुनने के बाद जैसे हमने निर्णय दिया, वैसे ही तुम्हारा कथन सुनने के बाद हम स्वतंत्र निर्णय देंगे। ऐसा मत समझो कि तुम विदेशी होने के कारण मैनिफेस्टो के जैसे ही

चुनाव में पराजित होगे, क्योंकि जिस जगह के लिए तुम प्रतिनिधि के नाते खड़े होना चाहते हो, उस जगह के लिए वह विचार प्रदर्शित करनेवाला कोई भी योग्य स्वकीय शब्द नहीं प्राप्त हुआ, तो हम तुम्हारा ही चुनाव करेंगे; परंतु स्वदेशी शब्द अधिक योग्यता से कार्य करते हुए भी मैनिफेस्टो दूसरे की जगह में घुसकर उस जगह का स्वामी बनना चाहता था, इसलिए उसका चुनाव नहीं किया। आओ, हम सुविधा के अनुसार सबको बुलाएँगे। आओ, कायदे कॉन्सिल। तुम और तुम्हारे सहकारी 'कॉन्सिल ऑफ स्टेट' और वह तुम्हारी गृहस्वामिनी लेजिस्लेटिव्ह असेंबली। तुम तीनों आगे आ जाओ।

हमारा यह कहना सुनते ही द्वारपाल विवेक ने उनको बुलाया, पर उसकी हिंदी जिह्वा को वे नाम उच्चारित करना भी कठिन हुआ। संत्रास से विवेक चिल्लाया— 'आग लगे तुम्हारे इन नामों को। मेरी सात पीढ़ियों तक में किसी ने इतना मुँह टेढ़ा न किया होगा, जितना मैंने किया है। फिर भी तुम लोग अंदर क्यों नहीं आते? विवेक द्वारा इतना कहने के बाद वे तीनों अंदर आए और कायदे कॉन्सिल ने विवेक से कहा, 'घबराओ मत, हम अभी तुम्हारे परिचित नहीं हैं। इसलिए तुम्हारे मुँह को टेढ़ा करना पड़ रहा है, परंतु थोड़ा सा धीरज धारण करो। इससे तुम्हारे बेटा की तो बात ही क्या, तुम्हारी बेटी को भी शायद भगवान् का नाम लेना भी कठिन होगा, पर हमारे नाम लेने में उनको कोई कठिनाई नहीं होगी। क्यों लेजिस्लेटिव्ह असेंबली बाईजी, यह सच है न?'

द्वारपाल कुछ बोलने से पहले ही विधिमंडल, व्यवस्थापिका परिषद्, धारा सभा, राज्य समिति, विधि समिति सहित सारी हिंदी शब्दों की टोली अंदर घुस गई और उनमें से एक ने कहा, 'परंतु हमारे लोगों को क्या आवश्यकता है तुम्हारे लिए इतना मुँह टेढ़ा करने की? अगर हमारी नियुक्ति तुम्हारी जगह पर हुई तो हम तुम्हारे काम शतपट लोकहित बुद्धि से करके दिखाएँगे। उन विचारों की जगह के लिए हम इतने प्रतिनिधि हैं और हमसे भी अधिक योग्य अन्य प्रतिनिधि नियुक्त कर सकते हैं, तो फिर हमारी हिंदू भाषाओं के घर में तुम्हारा हस्तक्षेप किसलिए होना चाहिए?' इसपर लेजिस्लेटिव्ह असेंबली ने कहा, 'यह ध्यान में रखिए कि हम सरकार द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि होनेवाले हैं, हमें सरकार का समर्थन है और इसीलिए हमें लोकमत का भी समर्थन प्राप्त होना चाहिए।'

सरकार का नाम बहुत बार सुनने से हमारे मन में थोड़ी आशंका पैदा हुई और उस संवाद को टालने के लिए हमने कहा, 'अब बस हो गया। यह स्थान राजनीति की चर्चा करने का नहीं है। अब केवल निर्णय सुनो, क्योंकि प्रत्येक का ऐसा ही वाद-विवाद चला तो तुम लोग हाथापाई पर उतार आओगे। हमें यह चुनाव

अनत्याचारी शांति से लड़ना है। इस कमरे की चारदीवारों में ही यह होना चाहिए, नहीं तो मैदान में उतरकर 'रणगर्जना' हमारी तरफ आँखें फाड़कर देखने लगेगी और अनत्याचारी शीतता का भंग होगा। कायदे कॉन्सिल, तुम्हारी जगह के लिए दो प्रतिनिधि मैदान में उतरेंगे, एक विधिमंडल और दूसरी व्यवस्थापिका परिषद्। धारा सभा भी चुनाव के लिए खड़ी है, परंतु व्यवस्थापिका परिषद् को उत्तर हिंदुस्थान में बहुमत प्राप्त हुआ है और विधिमंडल की तरफ हमारा झुकाव है, क्योंकि उनकी विचार व्यक्त करने की पद्धति सुविधाजनक, साफ-सुथरी, टीपटॉप के साथ और शानदार है। अत: हम कायदे कॉन्सिल की जगह के लिए 'विधि मंडल' को चुनने का निश्चिय कर रहे हैं। उसी तरह लेजिस्लेटिव्ह असेंबलीजी के स्थान पर विधि समिति और कॉन्सिल ऑफ स्टेट के स्थान पर राज्य परिषद् का चुनाव होगा। चलो, अब इलेक्शन, तुम आगे आ जाओ। तुम्हें कौन-कौन से प्रतिनिधि प्रतिस्पर्धी हैं? निवडणूक और निर्वाचन—दोनों ने कहा, 'हम दोनों' तो अब हम उनको ही स्थायी करेंगे। हे इलेक्शन, यह तुम्हारा निष्कारण हस्तक्षेप हमें बिलकुल पसंद नहीं है। 'निर्वाचन' यह शब्द शुद्ध संस्कृत शब्द है और निवडणूक उसकी बेटी है। दोनों को भी एक-एक मत देकर दोनों का चुनाव करेंगे। अब रहा 'कैंडीडेट' शब्द। उसका कौन प्रतिस्पर्धी है? यह पूछने पर एक मुसलमानों जैसा पाजामा पहने हुए शब्द सामने आया। उसके सिर पर कमाल पाशा द्वारा फेंकी हुई एक तुर्की टोपी थी। उसके टूटते हुए गंदे फूँदने की दो-चार दोरियाँ कान पर लटक रही थीं। हमने उससे पूछा, 'तू कौन है रे?' उसने उत्तर दिया, 'उमेद्वार' इस विचार को मैं प्रदर्शित करता हूँ। आज तीन सौ-चार सौ वर्ष से मैं महाराष्ट्र में ही रहता हूँ। वह कैंडीडेट शब्द पराया है।' इतने में 'इच्छुक' नामक एक शुद्ध स्नानसंध्या करनेवाले ब्राह्मण जैसा शब्द आगे आया और उसने कहा, 'मैं महाभारत काल से इस स्थान पर नियुक्त हूँ। बीच बड़ा राष्ट्र प्रलय हुआ, उसमें मुझे दर-दर भीख माँगनी पड़ी, पर अब सुना है कि चुनाव फिर हो जाएँगे तो फिर यहाँ आया हूँ।' हमने उसे उत्तर दिया, 'इच्छुक! इस स्थान के लिए तुम ही सुयोग्य हो। हमने तुम्हें मत दिया है।'

इस तरह चुनाव खत्म होते ही द्वारपाल विवेक इन सभी लोगों को बाहर ले गया। वहाँ लोगों का बहुत बड़ा समुदाय इकट्ठा हुआ था। उनको चुनाव का निर्णय सुनाया गया कि कायदे कॉन्सिल के स्थान पर विधि मंडल, लेजिस्लेटिव्ह असेंबली के स्थान पर विधि समिति, कॉन्सिल ऑफ स्टेट के स्थान पर राज्य परिषद, कैंडीडेट या उमेद्वार के स्थान पर इच्छुक, इलेक्शन के स्थान पर निर्वाचन और मैनिफेस्टो के स्थान पर निवेदन को नियुक्त किया गया है। यह सुनते ही सभी सरकार-नियुक्त शब्दों की हार हुई और स्वकीय शब्दों का चुनाव हुआ। इसलिए

राष्ट्रीय पक्ष के लोगों ने बहुत बड़ा जय-जयकार किया। इसके आगे कोई भी व्यक्ति 'कॉन्सिल के इलेक्शन के लिए कैंडिडेरांचे मैनिफेस्टो' इस तरह का सम्मिश्र वाक्य न बोलते हुए, 'विधिमंडल के निर्वाचन के लिए खड़े हुए इच्छुकों के निवेदन' इस तरह का शुद्ध राष्ट्रीय और मंजुल वाक्य उच्चारण करने का सभी ने नियम बनाया। तब विवेक ने उनका अभिनंदन किया और उसने कहा, 'अब केवल जो सयाने हैं, उन लोगों ने अगर इलेक्शन का रिजल्ट, कायदे कॉन्सिल या कैंडीडेट का मैनिफेस्टो जैसे शब्द मराठी वृत्तपत्रों में लिख दिए तो चलेगा, क्योंकि कोई अच्छी बात अपने को सूझने से पहले वह दूसरे को सूझे, इसीलिए उसका अनुकरण नहीं करना है, यह दुराग्रही सत्याग्रह अगर वे न करेंगे तो अन्य कौन से गुणों पर उनके सयानेपन का भंडाफोड़ हो सकेगा?'

अंत में विवेक ने चुनकर आए हुए राष्ट्रीय इच्छुओं को (उम्मीदवारों को) बताया कि आज यद्यपि तुम हमारे विचारों के चुने हुए प्रतिनिधि हो। फिर भी आगे चलकर इन विचारों को प्रदर्शित करनेवाले दूसरे सुयोग्य स्वकीय प्रतिनिधि अगर हमें प्राप्त हुए तो हम तुमको छोड़कर उनकी नियुक्ति करेंगे। तब वे सब कहने लगे कि 'हमें यह एकदम मान्य है। हम केवल इच्छुक हैं। एक बार आपने हमें प्रतिनिधि बनाया। इसलिए योग्यता न होते हुए भी वंश-परंपरागत बीच-बीच में हस्तक्षेप करनेवाले हम कोई भिक्षुक नहीं हैं। केवल इच्छुक हैं।'

(वीर सावरकरजी का यह हास्य-व्यंग्यात्मक लेख 'रणगर्जना' नामक नियतकालिक में दिनांक २१ दिसंबर, १९२६ को प्रकाशित हुआ था। उस समय वे रत्नागिरी में स्थानबद्ध थे और राजनीति से कोई भी, किसी भी प्रकार का संबंध न रखने के लिए उनपर प्रतिबंध लगा था।

उसकी दूसरी आवृत्ति श्री ग.म. जोशीजी ने प्रकाशित की। उसके बाद सन् १९८१ में विक्रम संवत् २०३८ में महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति मंडल ने तीसरी आवृत्ति प्रकाशित की। उसकी टिप्पणी में उन्होंने लिखा है, 'सन् १९८१ में विधानसभा, विधायक, विधि मंत्री, राज्यसभा, इच्छुक चुनाव (निवडणूक), घोषणा-पत्र आदि अनेक विशुद्ध मराठी शब्द शासन उपयोग में ला रहा है। अब मराठी ही महाराष्ट्र की राज्यभाषा बनी है।

आज फिर से कुछ लोग अंग्रेजपरस्त होने लगे हैं। अतः फिर से यह विषय राष्ट्रभक्त स्वाभिमानी युवकों के सामने लाना चाहिए।'—बाल सावरकर, संपादक)

□

भाषाशुद्धि और श्री श्री.कृ. कोल्हटकर

इस वर्ष पुणे में मराठी साहित्य सम्मेलन बड़ी धूमधाम से संपन्न हुआ। उस साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष थे श्री श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में मराठी शुद्धीकरण के आंदोलन के बारे में काफी चर्चा की। इस बात पर उन्होंने खेद व्यक्त किया कि मराठी भाषा में अंग्रेजी शब्द घुसेड़कर उसका अत्यंत विकृत रूप कुछ अंग्रेजी शिक्षित और अशिक्षित लोगों के मुँह से तथा लेखों के द्वारा व्यक्त किया जा रहा है। ऐसे मिश्रित प्रचार को वे 'मराठी का भ्रष्टीकरण' नाम से संबोधित करते हैं। अंग्रेजी शब्दों की निष्कारण मिलावट से श्री कोल्हटकरजी को इतनी घृणा हुई है कि उन्होंने Money Bag का भी मोह त्यागकर केवल 'चर्मबटुआ' ही अपनी टेंट में खोंसकर अपनी आलोचना की फटफटी (Motor Cycle) इतने वेग से छोड़ दी है कि मार्ग में अनेक 'ठहराव' (Stations) और 'आरामगृह' (Waiting rooms) मिल जाने पर भी और वहाँ रुकने का आग्रह अनेक 'मिनिस्टरों' और 'सरों' द्वारा करने पर भी उनको टालकर वे हमसे भी आगे चले गए हैं। मराठी भाषा के सात्त्विक अभिमान से उनका हृदय भर आया और अंत में उन्होंने कहा, '...पर तब तक हम अपने मुँह में घुसे हुए अंग्रेजी शब्द रटते हुए क्या चुपचाप बैठे रहेंगे? चुपचाप बैठने से हमारी स्वाभिमानशून्यता ही दिखाई देगी। इतना ही नहीं, हम अपने संसर्ग से आनेवाली पीढ़ी को दूषित करके विशुद्ध बोलने का श्रेय उनसे छीन रहे हैं। मराठी संभाषण में अंग्रेजी शब्द जितनी सहजता से घुस गए हैं, उतना ही कठिन काम भाषा से उनको निकालने का है; परंतु वह कठिन काम भी हमें आवश्यक कर्तव्य समझकर निभाना होगा।'

मराठी भाषा पर अंग्रेजी भाषा का वर्चस्व न हो, इसलिए गत तीस-चालीस वर्षों से महाराष्ट्र में अनेक प्रमुख नेता परिश्रम करते आए हैं। श्री माधवराव रानडेजी 'चनेकुरमुरे मंडल' की एक संस्था इस तरह के प्रयत्नों के लिए यत्नशील थी। इस तरह अन्य अनेक छोटी-बड़ी संस्थाओं के द्वारा इस तरह के प्रयत्न होते आए हैं।

उन प्रयत्नों से और विशेषत: चिपलुणकरजी की निबंधमाला के लेखों से प्रेरणा लेकर हम अपनी पाठशाला के दिनों से अंग्रेजी शब्द मराठी में शक्यत: न लाने का प्रयत्न करने का नियम अपने सहकारियों के साथ आज तक अनेक संस्थाओं पर लगाते आए हैं और उस नियम का पालन करते आए हैं। कॉलेज में ही नहीं बल्कि विलायत में भी लंदन की एकदम मध्य बस्ती में भी जहाँ एक-दो साल रहकर ही 'मराठी भाषा तो हम एकदम भूल गए हैं' यह कहना गौरव की बात समझनेवाले अनेक मराठी और हिंदी सद्‌गृहस्थ निवास करते थे, वहाँ भी हमारी देखरेख में चलनेवाली 'भारतीय भवन' संस्था में मराठी व अन्य हिंदू भाषाओं में अंग्रेजी शब्द घुसेड़ना अपराध समझा जाता था और ऐसे अपराधी व्यक्ति को सजा के रूप में अपनी चाय और बिस्कुट खोना पड़ता था। अंदमान में भी हमारे पंजाबी, बंगाली तथा अन्य प्रदेशी सहकष्टभोगी राजबंदियों पर भी हम वैसे ही कड़े निर्बंध लगाते थे। चिपलुणकरजी की पीढ़ी के बाद सन् १९०६ के स्वदेशी आंदोलन तक अंग्रेजी शब्दों के सतत आक्रमण से मराठी भाषा की रक्षा करने के लिए इस तरह के प्रयत्न बहुत परिणामकारक रीति से चल रहे थे।

परंतु उसके बाद इस विषय की तरफ जनता का ही नहीं, बल्कि साहित्य के नेताओं का भी ध्यान नहीं रहा। पहले-पहल इस विषय के संबंध में जितने जोरदार प्रयत्न और जितने निग्रह का आचरण होता था, उतना न हुआ और सार्वजनिक रूप से उसकी तरफ जनता का ध्यान पुन: एक बार तीव्रता से आकर्षित किया जाएगा—इस तरह का एकाध भावोद्‌दीपक आंदोलन भी शुरू नहीं किया गया।

एतदर्थ जब हम कारावास से मुक्त हुए, तब से हमने फिर से 'मराठी शुद्धीकरण' के प्रश्न को प्रबल गति देने का प्रयत्न किया। उस आंदोलन का ध्येय मराठी से उर्दू-मुसलमानी शब्दों का ही निर्वासन करने का न होकर पहले से ही हमारी भाषा में अपने स्वदेशीय संस्कृतोत्पन्न हिंदू भाषा संघ के अतिरिक्त किसी भी विदेशी शब्द को निष्कारण न घुसने देने का था। उर्दू शब्दों के जैसे ही अंग्रेजी शब्दों पर और अर्ध-अंग्रेजी भ्रष्ट मराठी के निर्वासन पर जोर दिया गया बल मराठी शुद्धीकरण आंदोलन के प्रत्येक लेख में और हमारे संपर्क में आनेवाले लोगों के साथ बोले जानेवाले प्रत्येक वाक्य से हमने शुद्ध मराठी का हेतु प्रयोग किया है—यह बात किसी की भी समझ में आ जाएगी। इस आंदोलन के कारण गत दो वर्षों में इस प्रश्न की तरफ जनता का ध्यान पुन: एक बार इतनी तीव्रता से आकर्षित हुआ है कि पाठशाला के छात्रों से संपादकों की लेखनशाला तक मराठी लिखते समय या बोलते समय जिह्वा और लेखनी इस शंका से झट अटकने लगी है कि 'क्या यह शब्द अंग्रेजी है? क्या यह शब्द उर्दू है? उस लेखनी के और जिह्वा के प्रति पद पर

होनेवाली रुकावट के कारण होनेवाले तुतलेपन के कष्टों से ऊबे हुए पुणे-मुंबई के अनेक मित्रों ने जो यह हो-हल्ला मचाया है कि 'यह भाषाशुद्धि का निष्कारण झंझट क्यों चलाया जा रहा है?', इससे भी आंदोलन की तीव्रता स्पष्ट हो रही है। अब तो श्री श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकरजी ने साहित्य परिषद् के अध्यक्ष पद पर से ही इस विषय की चर्चा इतनी प्रमुखता से की है कि उससे दो वर्षों तक चलनेवाले आंदोलन का काफी परिणाम हुआ है। इसके बारे में हमें और हमारे महाराष्ट्रीय सहकारियों को अत्यंत आनंद हुआ है। हम श्री कोल्हटकरजी का इसलिए हार्दिक अभिनंदन करते हैं कि अंग्रेजी भाषा के शब्दों को मराठी में ऊधम मचा देने से उसका 'कड़ा बहिष्कार' कह देना चाहिए—यह मत श्री कोल्हटकरजी ने हमसे अधिक स्पष्ट भाषा में कह दिया।

फिर यह नियम उर्दू शब्दों पर भी क्यों नहीं लागू किया जाता?

अंग्रेजी शब्दों के संसर्ग से मराठी का 'भ्रष्टीकरण' होता है—यह बात श्री कोल्हटकरजी और हमने अनेक आक्षेप सहकर उपयोग में लाए हुए—'भ्रष्टीकरण' शब्द का उपयोग करके ही बताई है। यह भ्रष्टीकरण क्यों नहीं होने देना चाहिए, उनके कारण भी उन्होंने वही बताए हैं, परंतु उन्हीं कारणों के लिए अनावश्यक उर्दू शब्दों के संसर्ग से मराठी का भ्रष्टीकरण नहीं होने देना चाहिए—यह जब हम कहते हैं, तब किसी को भी ऐसा लगेगा कि श्री कोल्हटकरजी भी उर्दू शब्दों के ऊधम के बारे में हमारे जैसा ही निषेध करते होंगे, परंतु दुर्दैव से उनको वैसा नहीं लगता है। यह एक आश्चर्य की बात है कि उनकी भाषा-शुद्धीकरण की चर्चा के उत्तरार्ध से ऐसा दिखाई देता है। वास्तविक दृष्टि से जिन-जिन कारणों के लिए वे कहते हैं कि अंग्रेजी शब्द मराठी में नहीं घुसेड़ने चाहिए, उन्हीं कारणों के लिए उर्दू या किसी विदेशी भाषा के शब्द मराठी में शक्यत: नहीं घुसेड़ देने चाहिए, यह मत अपरिहार्य रूप से अनुमति होता है। श्री कोल्हटकरजी कहते हैं कि नए शब्द ही नहीं, बल्कि जो अंग्रेजी शब्द एकदम घर-बार में घुसे हुए हैं, उन पर भी इसके आगे प्रतिबंध लगाना चाहिए। तो फिर हम पूछते हैं कि यही नियम उर्दू या अन्य विदेशी शब्दों पर क्यों न लागू किया जाए? कठिन होते हुए भी 'मिस्टर', 'सर' जैसे शब्द देहातों में पेंशनर चमार ढेंढ लोगों तक रूढ़ शब्दों पर 'बहिष्कार' करने के लिए कमर कसकर उद्यत श्री कोल्हटकरजी के भाषाभिमानी धैर्य की कमर उर्दू शब्दों को देखकर यकायक क्यों टूट जाती है?

उसका कारण यही है कि हमारे भाषाशुद्धि आंदोलन के बारे में श्री कोल्हटकरजी की काफी विकृत समझ हो गई है। उन्होंने—उर्दू भाषा के शब्दों का

भी कठोरता से बहिष्कार करना चाहिए, इस मत के विरुद्ध जो आक्षेप लिये हैं, उससे ही यह बात सिद्ध होती है। 'केसरी' समाचार-पत्र में प्रसिद्ध फुटकल लेखांकों से कहीं, किसी समय, किसी जगह कुछ पढ़कर उन्होंने इस विषय के संबंध में अपना मत बनाया है; परंतु उन लेखों के साथ, उनपर लिये गए अनेक आक्षेपों का सांगोपांग विचार करके हमने इस भाषा शुद्धीकरण के विषय पर जो एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी है और उसके साथ त्याज्य शब्दों का प्रति शब्दों के साथ एक छोटा सा कोश भी जोड़ दिया है, वह पुस्तक श्री कोल्हटकरजी ने नहीं पढ़ी होगी—ध्यान देकर तो नहीं ही पढ़ी होगी। यह बात उनके द्वारा उठाई हुई उन्हीं बासी शंकाओं से स्पष्ट होता है। एतदर्थ पहले-पहल हमें ऐसा लगा था कि श्री कोल्हटकरजी के आक्षेपों के उस पुस्तक में जिन-जिन परिच्छेदों में उत्तर दिए गए हैं, उन्हीं परिच्छेदों का उल्लेख करके यह उत्तर पूरा करेंगे, क्योंकि वही स्पष्टीकरण फिर से लिखने में श्रम और समय दोनों का अपव्यय होता है; परंतु साहित्य परिषद् के जिस अध्यक्ष पीठ से उन्होंने वे आक्षेप लिये हैं, उस पीठ के महत्त्व को समझकर उन आक्षेपों का थोड़ा स्वतंत्र निराकरण करना आवश्यक है।

मुसलमानी शब्दों पर बहिष्कार, यानी मुसलमानों का द्वेष!

श्री कोल्हटकरजी का मूल आक्षेप यह है कि मुसलमानी शब्दों क़ो मराठी में धींगामुश्ती न करने देने के लिए तैयार हुआ यह आंदोलन मुसलमानों के बारे में बने एक नए मनमुटाव का परिणाम है। व्यर्थ का झंझट गृहित करके श्री कोल्हटरजी ने उसपर कठिनाइयों के मीनार-पर-मीनार रचे हैं। 'मुसलमानों की संख्या काफी है—हित संबंध अधिक है—दुही अल्पकालीन है। मुसलमानों की प्रत्येक वस्तु का बहिष्कार करना पड़ेगा। यानी गाने की चीजें भी बहिष्कृत करनी पड़ेंगी।' इस तरह के नानाविध भयानक दृश्य गलत कल्पनाओं से उठकर उनके भाषण के परदे पर उतर रहे हैं। हम ऐसा पूछते हैं कि यह भाषाशुद्धि का आंदोलन मुसलमानों के द्वेष के कारण तैयार हुआ है, यह आपसे किसने कहा? इन आक्षेपों का निवारण हमने शुद्धीकरण की पुस्तक में तीसवें परिच्छेद में किया है (पृष्ठ २१ देखिए)।

पर प्रस्तुत प्रसंग के लिए हम पूछ रहे हैं कि आप स्वयं अंग्रेजी शब्दों का 'बहिष्कार' करने की बात करते हैं, वह क्या आजकल अंग्रेजों से हुई अनबन का परिणाम है?

अंग्रेजी शब्द फटफटी (Motor Cycle) तक बहिष्कृत किया जाए—ऐसा जो आप कहते हैं, वह क्या अंग्रेजों के द्वेष के कारण कहते हैं? अगर ऐसा हो तो उर्दू शब्दों को बहिष्कृत करनेवाले आंदोलन के खिलाफ जो-जो आक्षेप आपने

लिये हैं, वे सभी आक्षेप आपके खिलाफ भी लिये जा सकते हैं। अंग्रेजों द्वारा प्रारंभ किए हुए—अग्निरथ (रेलगाड़ी), तारायंत्र, दूरध्वनि, ध्वनिलेख इत्यादि—असंख्य सुधारों को आपने स्वीकार किया, उसी तरह एक तो उनके अनावश्यक शब्द भी अपनी भाषा में घुसने दें, नहीं तो अगर उन शब्दों का बहिष्कार ही अगर करना है, तो अंग्रेजों द्वारा लाए हुए, ऊपर दिए हुए असंख्य सुधार भी छोड़ दीजिए। अगर इस तरह कोई आपके विरुद्ध कहने लगा तो आप उनको क्या उत्तर देंगे? उसको आप ऐसा ही उत्तर देंगे कि 'मित्र, अंग्रेजों की जो बातें हमें उपयुक्त लगीं, उनको हमने स्वीकार किया। इसीलिए उनके अनुपयुक्त या अनावश्यक शब्द भी हम अपनी भाषा में घुसने दें। यह तुम्हारा कथन एकदम असंबद्ध संबंध का द्योतक है। वैसे ही तुम यह समझते हो कि हम अपनी भाषा के शब्दों से श्रेष्ठ न होनेवाले और हमारा वाक्य संस्कृति के साथ विसंगत अंग्रेजी शब्द हमारी भाषा में घुसने नहीं देते, यह बात, हम अंग्रेजों से द्वेष करते हैं, उसका द्योतक है, तो यह तुम्हारा समझना भी तुम्हारी निर्मूल मौलिकता (Originality) का लक्षण समझना चाहिए। कल अगर हम रोमन लिपि में मराठी नहीं लिखते हैं, इसलिए या हम रसोईघर में अंग्रेजी न बोलते हुए मराठी में ही बोलते हैं, यह बात भी तुम अंग्रेजों के साथ हमारी होनेवाली अनबन का ही लक्षण मानोगे।'

पर अगर अंग्रेजी शब्दों का बहिष्कार करने की जो बात श्री कोल्हटकरजी ने बताई, वह अंग्रेजों के बारे में उनके मन में द्वेष होने के कारण बताई, यह आक्षेप अगर झूठा है, तो मुसलमानी शब्दों का बहिष्कार कीजिए—यह कहनेवाले मुसलमानों के बारे में अपने मन में द्वेष होने के कारण वे ऐसा कहते हैं, यह आक्षेप भी सच कैसे हो सकता है? और वैसा मनमुटाव हो या न हो, तो भी मुसलमानी शब्दों का बहिष्कार करने का आंदोलन जिन्होंने आरंभ किया, उन श्री छत्रपति शिवाजी महाराज से जाकर पूछिए, वह हमें क्यों पूछते हैं?

'कृते म्लेच्छोच्छेदे भुवि निरवशेषं रविकुला—
वतंसेनात्यर्थं यवनवचनैर्लुप्त सरणीम्
नृपव्याहारार्थं सतु विबुधभाषां वितनितूम्
नियुक्तोभूद् विद्वान्नृवर शिवच्छभपतिना'

(राज्य व्यवहार कोश)

'इस आर्यावृत्त में म्लेच्छ सत्ता का उच्छेद करके स्वतंत्र हिंद राज्य स्थापित करने के बाद यवन भाषा के वर्चस्व से लुप्त स्वकीय देववाणी का पुनरुज्जीवन करने के लिए जिन छत्रपति शिवाजी महाराज ने यावनी शब्दों का उच्चारण करने

का प्रयत्न किया, उन महाराज ने उस कार्य के लिए विद्वानों की योजना की' और

विपश्यित्संमतस्यास्य किं स्यादज्ञ विडंबनः
रोचते किं क्रमेलाय मधुरं कदलीफलम्॥

'श्री छत्रपति शिवाजी के जैसे अनेक धुरंधर और बुद्धिमान पुरुषों को यावनी शब्दों का उच्चारण करने का काम मान्य हुआ। उस कार्य पर अगर मूर्ख लोग हँस पड़े तो उनकी परवाह कौन करता है? क्योंकि ऊँट को मधुर केले की क्या रुचि होगी? उसे तो काँटे ही अच्छे लगेंगे।' इस तरह की घोषणा करके जो मान्यवर रघुनाथ पंडित 'राज्य व्यवहार कोश' लिखने बैठ गए, उनसे पूछिए कि यावनी शब्दों पर मराठी में बहिष्कार करने का उनका यह आंदोलन मुसलमानों के बारे में होनेवाली अनबन का परिणाम था या मित्रता का? क्योंकि यह आंदोलन शिवकालीन पीढ़ी का है। हमने केवल उसका अनुसरण किया—वह आंदोलन मंद हुआ था, उसे हमने फिर से प्रज्वलित किया है।

श्री कोल्हटकरजी ने उर्दू शब्दों के बहिष्कार के खिलाफ और भी कुछ आक्षेप लिये हैं। उनका खंडन 'अंग्रेजी शब्दों का बहिष्कार करना ही चाहिए'—इस मत के समर्थन के लिए उनके ही किए हुए युक्तिवाद को देखना विनोदास्पद है।

श्री कोल्हटकरजी के विरुद्ध श्री कोल्हटकर

उदाहरण के लिए दो-चार आक्षेपों को देखेंगे। वे लिखते हैं कि 'अगर मुसलमानी शब्दों का त्याग करना हो तो मुगल बादशाह, निजाम की दी हुई उपाधियों का भी त्याग करना पड़ेगा।' 'तो फिर अंग्रेजी शब्दों का त्याग करना हो तो अंग्रेजी उपाधियों का भी त्याग क्यों न करें? बी.ए., एल-एल.बी. उपाधि का भी त्याग करना पड़ेगा। अगर वह उपाधि न छोड़ते हुए अंग्रेजी शब्द छोड़ सकते हैं तो वैसे ही मुसलमानी शब्दों का—आवश्यक विशिष्ट उपाधियाँ न छोड़ते हुए—त्याग कर सकते हैं। 'सर' शब्द का त्याग करने के लिए श्री कोल्हटकरजी उसके लिए 'साहब' शब्द का पर्याय समझते हैं और साहब के सामने हाँ, जी हाँ जी करने की आजकल की अभिजात रूढ़ि का पालन करने के लिए मानो उसकी तरफ से कहते है, 'साहब शब्द में मुसलमानी उद्‌गम के सिवा आक्षेप के लायक कुछ भी नहीं है।' हाँ, कोल्हटकरजी, पर 'सर' शब्द में भी उसके अंग्रेजी उद्‌गम के सिवा आक्षेप लायक क्या है?'

वे आगे कहते हैं कि मुसलमानी शब्द मराठी व्याकरण के नियमों का चुपचाप पालन करते हैं। इसलिए वे शब्द रखें जाएँ, परंतु मराठी व्याकरण के

नियमों का अंग्रेजी शब्दों से पालन करवाने में मराठी लोग—विशेषतः सुशिक्षित महाराष्ट्रीयन—औरंगजेब के जजिया कर वसूल करने के कड़वेपन को भी पीछे धकेलने वाले हैं। 'ब्रदर को भयंकर फीव्हर आने का लेटर आने के कारण अब टुडे-के-टुडे बॉम्बे जाना ही होगा।' इस तरह के सैकड़ों वाक्यों में बिना कुछ शिकायत कर हिंस्र-से-हिंस्र सैकड़ों अंग्रेजी शब्द डरकर मराठी व्याकरण के पिंजरे में खड़े हुए प्रत्यक्ष ही दिखाई देते हैं तो फिर उनका बहिष्कार किसलिए? 'मुसलमानी शब्दों को मराठी के कारक प्रत्यय बहुतांश में जुड़ जाते हैं।' परंतु वैसे ही वे अनेक अंग्रेजी शब्दों के साथ भी जुड़ जाते हैं। ऊपर के 'साहब' और 'सर' शब्दों को ही पूछेंगे। साहब की अपेक्षा 'सर' शब्द अधिक सरल दिखाई देता है। 'सर से पूछ लेना', 'सर ने पीटा', 'सर का घर', 'सर का उपदेश'—ये वाक्यांश तो छोटे बच्चे भी रात-दिन रटते रहते हैं। बच्चे 'सर' शब्द को भक्तिपूर्वक विभक्ति प्रत्यय (कारक चिह्न) लगाते हैं तो बड़े लोग 'वाइफ' को प्रत्यय लगाते हैं। 'वाइफ' शब्द मराठी कारक चिह्नों को—जैसे वाइफ हस्बैंड की आज्ञा का पालन करती है, वैसे ही—भक्तिपूर्वक शिरोधार्य करता है। वाइफ ने, वाइफ को, वाइफ से आदि सभी कारक प्रत्ययों से 'वाइफ' शब्द की एकदम मित्रता जुड़ जाती है। तो फिर जिनकी वाणी इन वाक्यों का प्रयोग हमेशा करती है, वे 'मराठी व्याकरण के निर्बंध चुपचाप माननेवाले इन बेचारे अंग्रेजी शब्दों का' निर्वासन क्यों करें? 'अनेक मुसलमानी शब्दों के पीछे एक इतिहास है। वे कष्टों से प्राप्त हुए हैं।' अगर ऐसा है तो उनका बहिष्कार करके उनके स्थान पर विराजमान होनेवाले शब्द 'उपस्थिति', 'निश्चिति' 'प्रतिमोल' क्या जंगल के पत्तों की तरह उड़कर आए हैं? 'राज्य व्यवहार कोश' के पीछे तो राजाश्रय का इतिहास और राजनियुक्त विद्वन्मंडल के परिश्रम हैं। 'घर-बार में घुसे हुए मुसलमानी शब्द भाषा से निकाल देना बड़ा ही कठिन काम है।' ऐसा कहनेवाले श्री कोल्हटकरजी को अंग्रेजी शब्दों के बारे में बोलनेवाले श्री कोल्हटकर ऐसा आत्माभिमानी उत्तर देते हैं कि 'वह कठिन काम भी एक आवश्यक कर्तव्य की दृष्टि से करना ही होगा। प्रचलित पीढ़ी के प्रत्येक मराठी भाषा के अभिमानी द्वारा मराठी संभाषण में अंग्रेजी का पूर्ण बहिष्कार करने का निश्चय करना चाहिए। हर अंग्रेजी शब्द के उपयोग के लिए एक दिन के कठोर कारावास का दंड मिल जाता तो इस तरह का निश्चय करने की बारी ही न आती।'

श्री कोल्हटकरजी का यह कथन एकदम सच है। उसमें अधिक इतना ही कहना है कि अगर इस तरह का कड़ा निश्चय किया कि अंग्रेजी शब्दों के जैसे ही मुसलमानी शब्दों को भी मराठी से बहिष्कृत करना कठिन होते हुए भी असंभव नहीं है।

इस विरोध का मूल कारण है दूषित अभ्यास

श्री कोल्हटकरजी की पीढ़ी को अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग न करते हुए यद्यपि संभाषण में न सही, पर लेखों और व्याख्यानों में लिखने तथा बोलने का अभ्यास हो गया है। अत: अंग्रेजी शब्दों का कड़े-से-कड़ा बहिष्कार करना उनके लिए सहज संभव लगता है, और बचपन से उन्होंने उस दृष्टि से विचार भी किया होता है, परंतु उर्दू शब्दों को भी मराठी में निष्कारण घुसने देना अंग्रेजी शब्दों के घुसने देने के जितना ही हानिकारक है—यह भावना ही पेशवाई नष्ट होने के बाद हमारे यहाँ करीब-करीब नष्ट हो गई है—इतना ही नहीं तो अभी-अभी उर्दू शब्द चाहे जहाँ से चोरी करके लाकर मराठी में निष्कारण घुसेड़ना एक महान् कार्य ही है, नौसिखिए लेखकों की उस तरह की घृणास्पद समझ होने के कारण और इसी से इस पीढ़ी की लेखनियाँ उर्दू शब्दों के प्रयोग के लिए ललचा जाने जब 'उर्दू शब्द भी बहिष्कार योग्य हैं' ऐसी गर्जना—ऐसी महाराष्ट्र के अभिमानी देवता की पुरानी गर्जना—की प्रतिध्वनि हमारी भाषाशुद्धि के आंदोलन के रूप में नई पद्धति से जोरदार रूप में उठने लगती है, तब वे लेखनियाँ प्रतिपद भय से हतबुद्धि हो जाती हैं और इसीलिए अंग्रेजी शब्दों के बहिष्कार के लिए अनुकूल लोग उर्दू का नाम लेते ही स्वयं निरस्त किए हुए आक्षेप स्वयं ही लेने लगते हैं।

हमें इस बात का निश्चित विश्वास है कि अगर श्री कोल्हटकरजी हमारी मराठी शुद्धीकरण की पुस्तक (एक बार पहले पढ़ी हो तो) फिर एक बार ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे, तो उनको भी ऐसा लगने लगेगा कि अंग्रेजी भाषा के शब्दों के जैसे ही उर्दू शब्दों को भी अपनी भाषा में निष्कारण घुसेड़ने देना भी लज्जाजनक बात है और उनका बहिष्कार करने का काम अंग्रेजी शब्दों के बहिष्कार के जैसे ही कठिन होते हुए भी असंभव नहीं है, क्योंकि श्री कोल्हटकरजी को विदेशी शब्दों के बहिष्कार की हमारे मत की रूपरेखा ही अच्छी तरह से समझ में नहीं आई है, इसलिए वे हमसे पूछते हैं कि क्या 'गुलाब' या 'जिला' शब्दों का भी बहिष्कार करें? उनके ध्यान में अच्छी तरह से आ जाए, इसलिए विदेशी शब्दों के त्याग का सच्चा अर्थ संक्षेप में हम फिर बता देते हैं। मराठी भाषा में जो पुराने या नए विदेशी शब्द—वे अंग्रेजी के हों या उर्दू के—घुस गए हैं, उनको जहाँ तक संभव हो, निकाल देना चाहिए, उनके स्थान पर संस्कृतादिक हिंदू भाषा संघ (यानी कन्नड़, तेलुगु, बँगला इत्यादि) में होनेवाले स्वदेशी शब्दों का उपयोग करना चाहिए।

मुसलमानी या अंग्रेजी यानी विदेशी शब्द ही (एक भी विदेशी शब्द) स्वभाषा में रखना नहीं है, ऐसा प्रतिपादन हमने कभी नहीं किया है। इसी से श्री

कोल्हटकरजी के बहुत से आक्षेपों का निराकरण हो जाता है। वे हमारे आंदोलन के विरुद्ध नहीं हैं, इतना ही नहीं, बल्कि कुछ अंश में अनुकूल ही हैं।

क्या श्री कोल्हटकरजी को सचमुच ही ऐसा लगता है कि 'हजर' शब्द के लिए 'उपस्थित', 'कायदेमंडल' शब्द के लिए 'विधिमंडल', 'खामी' शब्द के लिए 'निश्चिति' और 'हवामान' शब्द के लिए 'वायुमान' या 'ऋतुमान' शब्द अगर प्रचलित हुए तो मराठी की अपरिमित हानि हो जाएगी? अगर ऐसा लगता है तो मोटरगाड़ी के लिए 'धूमगाड़ी' कहने से क्या वह अपरिमित हानि नहीं होगी? अगर आप पूछेंगे कि इन शब्दों के लिए ये नए प्रतिशब्द क्या रूढ़ होना संभव है? तो उसका उत्तर यह है कि वे शब्द वैसे ही रूढ़ होते जा रहे हैं। इन एक-दो वर्षों के आंदोलन के कारण वे शब्द और 'हुतात्मा', 'क्रमांक', 'स्तंभ (कॉलम)', 'निश्चिति' इस तरह के लगभग सौ नवीन शब्द स्वभाषा में रूढ़ हो गए हैं और महाराष्ट्र में अगर प्रचलित न हों तो भी परिचित हुए हैं।

जहाँ तक संभव है, हम स्वदेशी शब्दों की ही योजना करेंगे और जहाँ आवश्यक हो, वहाँ विदेशी शब्दों का प्रयोग करेंगे। अगर भाषा से विदेशी शब्द निकालना असंभव हो, तब उसे वहाँ वैसे ही रहने देंगे, परंतु यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे कि मराठी में या अन्य किसी हिंदू भाषा संघ की भाषा में अहिंदू भाषा का विदेशी शब्द निष्कारण न घुसेड़ने देंगे, न रहने देंगे।

इस निष्ठा से प्रभावित होकर आज सैकड़ों लोग लेखों में, संभाषण में विदेशी शब्दों से अकलंकित भाषा बोलने लगे हैं, लिखने लगे हैं, श्री कोल्हटकरजी भी निष्पक्षपाती रूप से विचार करते-करते कहते हैं—

'विदेशी शब्दों के विरुद्ध यह आंदोलन एकदम निरर्थक नहीं हुआ है, क्योंकि आजकल मराठी गद्य और पद्य में मुसलमानी शब्दों की जो भयानक बाढ़ आई थी, उसको—भाषाशुद्धि आंदोलन का उदय होने के बाद एकदम उतार आने के चिह्न दिखाई देने लगे हैं—भाषा से मुसलमानी शब्दों को अर्धचंद्र नहीं मिला। फिर भी भाषा में स्वकीय उपयुक्त शब्दों की संख्या विस्तृत हुए बिना नहीं रही है।'

उन्हीं के भाषण में श्री कोल्हटकरजी के कुछ वाक्य, जो भाषाशुद्धि के विरुद्ध लगते हैं, ये वाक्य वे इसलिए सहज कह गए कि यह बात स्वयं उनके भी ध्यान में ठीक तरह से नहीं आई कि वे विदेशी शब्दों के बहिष्कार के लिए अनुकूल हैं।

(वीर सावरकरजी का यह लेख १६ जून, १९२७ के 'श्रद्धानंद' साप्ताहिक में प्रकाशित हुआ है। उस वर्ष पुणे में जो मराठी साहित्य सम्मेलन हुआ था, उसके अध्यक्ष पद से श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकरजी ने भाषण दिया था। उस अध्यक्षीय

भाषण में होनेवाले भाषाशुद्धि के प्रश्नों के उत्तर वीर सावरकरजी ने इस लेख में दिए हैं।)

टिप्पणी : १. *'चणेकुरमुरे मंडल' का नियम था कि जो सदस्य अपने बोलने में अनावश्यक अंग्रेजी शब्द का प्रयोग करेगा, उसको उस दिन मंडल के सदस्यों की बैठक में चना-कुरमुरा खाने को न मिलेगा।*

२. *यह पुस्तक यानी 'मराठी भाषा का शुद्धीकरण' इसी खंड में पृष्ठ १ से ४६ तक पुनर्मुद्रित की गई है। — बाल सावरकर, संपादक)*

□

पंचवार्षिक समालोचना

मराठी भाषा के शुद्धीकरण का आंदोलन छह-सात वर्षों के पहले संगठित रूप से प्रारंभ किया गया। उसका ध्येय था कि मराठी भाषा में पहले या अभी के म्लेच्छ शासन में घुसे हुए और घुसते हुए विदेशी शब्द यथाशक्ति बहिष्कृत किए जाएँ और उन शब्दों का बहिष्कार्य मानकर विशेषत: उर्दू और अंग्रेजी शब्दों द्वारा हमारी भाषा से भगाए हुए या नष्ट किए गए अपने स्वकीय शब्दों को पुनरुज्जीवन दे दें। इसके आगे तो अपना स्वकीय शब्द होते हुए भी विदेशी शब्दों का निष्कारण प्रयोग करने का अनुचित अभ्यास हम सब छोड़ दें। इस विषय पर 'केसरी' समाचार-पत्र में प्रकाशित लेखों के बाद प्रचलित रूढ़ि के लिए योग्य हो या अयोग्य हो, परंतु रूढ़ि के विरुद्ध जानेवाले किसी भी आंदोलन के जैसे इस भाषाशुद्धि आंदोलन पर भी विचारी और अविचारी आक्षेपों का, शंकाओं का और कभी-कभी गालियों का भी हल्ला हो गया। उनमें से कुछ शंकाओं का निराकरण 'केसरी' में दूसरी लेखमाला लिखकर किया था; परंतु वृत्तपत्र के लेख फुटकर प्रसिद्ध होना अपरिहार्य है और ऐसे फुटकर लेखों में से कुछ थोड़ा सा हिस्सा पढ़कर और उस लेखमाला का समग्र अध्ययन करना कठिन होने के कारण अनेक टीकाकारों के, समालोचकों के प्रश्न और संशय निर्मित हुए। यह बात समझ में आने पर वह लेखमाला 'केसरी' कार की अनुज्ञा से 'मराठी भाषा का शुद्धीकरण' नामक स्वतंत्र पुस्तक उसमें थोड़ी सी वृद्धि करके समग्र रूप से प्रकाशित की और त्याज्य विदेशी शब्दों का दिग्दर्शन कराने के लिए एक लघुकोश इस पुस्तक में जोड़ दिया। जहाँ इस आंदोलन का प्रारंभ हुआ। इस आंदोलन के पाँच वर्ष आज पूरे हुए हैं।

तथापि किसी भी अभिलक्षणीय, परंतु बहुत ही चलनेवाली रूढ़ि या प्रथा के विरुद्ध होनेवाले सुधार को कार्यवाही में लाने की महत्त्व की चाबी उसकी तात्त्विक चर्चा अधिक काल तक न करते हुए उसको तत्काल आचरण में लाना ही

होती है। प्रत्येक शंका का समाधान वह सुधार आचरण में लाकर उसका इच्छित फल प्रत्यक्ष हाथ में आए बिना केवल तात्त्विक या वाचित चर्चा से नहीं होता। किसी नए फल का ही उदाहरण लीजिए। वह नया फल मधुर है या कड़वा, हितकारक है या अहितकारक, रसीला है या पयारूक्ष—यह वाद-विवाद का फल प्रत्यक्ष न चखते हुए सामने रखकर या उसका चित्र निकालकर केवल चर्चा करने से उस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलेगा; परंतु उसका प्रयोग करते ही, वह चखकर देखते ही वह प्रश्न आसानी से सुलझ सकता है। अत: भाषाशुद्धि के आंदोलन से मराठी भाषा पर बहुत बड़ी आपत्ति आ जाएगी, इतना छोर पकड़े हुए आक्षेपों का समाधान भाषाशुद्धि अंशत: भी क्यों न हो, कार्यवाही में लाकर उसके सुपरिणाम लोगों के सामने प्रत्यक्ष रूप से रखने पर तात्त्विक और वाचिक वादों का निर्णय हो जाएगा। वही श्रेयस्कर मार्ग है—यह जानकर हमने पाँच वर्ष के पहले वह स्वतंत्र पुस्तक प्रकाशित की थी। उसके बाद भाषाशुद्धि का प्रत्यक्ष प्रयोग प्रमुखत: 'श्रद्धानंद' वृत्तपत्र से प्रारंभ किया। इस पत्र के प्रथम अंक से 'ऑर्डिसंस' के द्वारा पिछले साल वह पत्र बंद होने तक संपादक डॉ. सावरकर महाशय से लेकर अन्य लेखकों तक सभी ने मराठी में निष्कारण घुसे हुए उर्दू, अंग्रेजी आदि विदेशी शब्दों से यथाशक्ति अकलंकित मराठी भाषा का प्रयोग करने की प्रतिज्ञा ली थी और यथासाध्य उनका पालन भी किया। हर सप्ताह महाराष्ट्र में इस पत्र के द्वारा उर्दू शब्दों के कारण लुप्त हुए हमारे अनेक स्वकीय पुराने और सुंदर शब्द पुन: प्रचलित होने लगे थे। भाषिक परानुकूलता के कारण (परधार्जिणेपणा) स्वकीय कौन और परकीय कौन—इसका भान तक हमें नहीं रहा था, वह भान निर्माण करके शब्द देखते ही यह स्वदेशी है, विदेशी है, उर्दू, इंग्लिश या हिंदी है?—यह प्रश्न झट से मन के सामने खड़ा करने की आदत लेखकों की और पाठकों को लगाई। पाठशालाओं में तथा घर-घर में यह शब्द विदेशी या देशी है—इसकी चर्चा और शब्दों की गलतियों की धरपकड़ का खेल अंत्याक्षरी के समान मनोरंजन और उद्‌बोधन का खेल हो गया।

कहीं से भी एकाध भ्रष्ट उर्दू शब्द लाकर लेख में या कविता में घुसेड़ देना यही 'शयरी' कविता का परमोत्कर्ष माना गया था। इस तरह से मानने की विकृत समझ का अंध परानुकूलता का जो विकास हुआ था, उसकी आँखों में तीखा अंजन डाला गया और परिणामस्वरूप उर्दू शब्द मराठी भाषा में निष्कारण घुसेड़ना भाषा दरिद्रता का द्योतक है, यह दोष है—यह समझ लोकरुचि में आ गई। भाषाशुद्धि के आंदोलन से भाषा की शब्द-संपत्ति का दिवाला निकल जाएगा और 'बहुत बड़ा संकट ढह जाएगा' ऐसा कहकर अनेक प्रामाणिक आक्षेपकों को भी प्रथम दर्शन में जो भय लगा था, उसका अनायास निरास हुआ और प्रत्यक्ष अनुभवों में शब्दों की

संपत्ति उलटे वृद्धिंगत हो गई है—यह विश्वास हुआ। अनेक जर्मन सिलवरी या बनावटी मुद्राएँ फेंक दी गईं (कृत्रिम शब्दों की मुद्राएँ)। और उसके स्थान पर शुद्ध सोने की तथा जलिवंत रूप की धातु की मुद्राएँ भाषा-भंडार में सतत बढ़ती गईं।

'श्रद्धानंद' पत्र भाषाशुद्धि और लिपिशुद्धि के आंदोलन का मुखपत्र था। 'ऑर्डिनंस' द्वारा वह बंद किया गया, परंतु उस काल तक इस विषय की जड़ें इतनी गहरी और सुफलाम् धरती में गड़ और बढ़ गई थीं कि इस तरह अकेले माली के संरक्षण के बिना भी वह वृक्ष अपने ही बल पर जी सके, बढ़ सके। क्योंकि पहले उल्लेख की गई भाषाशुद्धि की मूल पुस्तक प्रसिद्ध होते ही इस आंदोलन का प्रारंभ हुआ और गत पाँच वर्षों में भाषाशुद्धि का अभिमानी और उसका आचरण करनेवाला एक संगठित वर्ग छोटे-बड़े प्रमाण में महाराष्ट्र के बड़े नगरों में तैयार हुआ है। मसूर के ब्रह्मचर्याश्रम की जैसी संस्था भाषाशुद्धि की बड़ी समर्थक है। वहाँ के प्रचारकों के व्याख्यानों से और विशेषत: उनकी 'दासबोध' नामक मासिक पत्रिका से निष्कारण विदेशी शब्द, चाहे वह पुराना उर्दू हो या नया अंग्रेजी शब्द हो, देखने को नहीं मिलेंगे।

'दासबोध' मासिक पत्रिका 'श्रद्धानंद' पत्रिका के जैसे ही भाषाशुद्धि की एक निष्ठ प्रसारक है। उस आश्रम के द्वारा छपे हुए अनेक ग्रंथों में भी विदेशी शब्द स्पर्श से विमुक्त सोज्वल शुद्ध और सतेज मराठी भाषा ही प्रयुक्त की जाती है। हमारे धर्मपीठों का तो यह विशेष कर्तव्य है कि वे अपने लेखन से अनावश्यक, पीछे के काल में म्लेच्छ शासन में हमारी भाषा में घुसे हुए विदेशी शब्दों का एकदम उच्चाटन करके अपने पुराने और नए स्वकीय शब्दों का प्रसार करें। 'महाभारत' के अनुवाद में या उस कथानक पर आधारित नाटक में जब ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाता है कि 'तब दरबारस्थ दुर्योधन ने उठकर धृतराष्ट्र से कहा कि 'बाबासाहब, खुदा की मेहरबानी से आज यह बाजी मैंने जीत ली है।' धर्म की तकदीर फूट गई है, अब बाकी दुश्मनों को भी मैं नेस्तनाबूद कर डालूँगा। बस! अब दरबार बरखास्त कीजिए।' तब यह अक्षम्य मूर्खता है। वैसे ही हमारे धर्मपीठ के पवित्र आज्ञापत्रों और लेखन में 'निसबत', 'जरूर', 'कायदे पंडित', 'तहाहयात', 'तहकूब' अथवा उसका ही भाई 'बेवकूफ' इत्यादि शब्द आचार्य पीठ के मराठी लेखन में प्रयुक्त करना भी लज्जास्पद बात है। इस दृष्टि से अभी-अभी प्रसिद्ध हुए श्री शंकराचार्य डॉ. कूर्तकोटीजी द्वारा 'केसरी' संस्था को भेजे गए आशीर्वचन की भाषा हमारे सभी धर्मपीठों के लिए अनुकरणीय है। 'केसरी प्रबोध' में दिए हुए उस परिच्छेद के विचारों के जैसे ही उनको व्यक्त करनेवाली भाषा भी हमारी उदात्त और उत्तम पुरातन संस्कृति की रक्षा करने का जिनका आद्य कर्तव्य है, ऐसे आचार्यपीठ के

लिए शोभनीय तथा सुयोग्य है। उस संपूर्ण परिच्छेद में नया या पुराना कोई भी श्रेष्ठ शब्द निष्कारण न आने से वह भाषा पंगु या दरिद्र न होते हुए उलटे कितनी श्रुतिसुखद, संपन्न और सुसंस्कृत हो गई है। हमें आशा है और विश्वास है कि श्रीमान आचार्यजी इसके आगे भी कम-से-कम अपने लेखन में धर्मभास्कर मसुरकरजी के जैसे ही अनावश्यक और निष्कारण घुसे हुए म्लेच्छ शब्दों के संपर्क से अपनी 'विबुधभाषा' को मुक्त करने का छत्रपति श्री शिवाजी महाराज द्वारा प्रारंभ किए हुए कार्य का यथासाध्य समर्थन करेंगे।

संघटन प्रचारकों में श्री पांचलेगाकर महाराज भी भाषाशुद्धि के समर्थक हैं। वे बोलते समय अपनी भाषा में उर्दू या अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग सावधानता से टालते हैं और दूसरों से भी इसी तरह का प्रयत्न करवाते हैं, ऐसा करते समय उन्हें थोड़ा कष्ट होता है, पर वे उन कष्टों को झेलते हैं। 'ज्ञानदेवी' मासिक पत्रिका के लेखों में से भी अथ से शर्त तक—प्रारंभ से अंत तक—प्रतिज्ञापूर्वक भाषाशुद्धि का व्रत स्वीकारा गया है। उसके संपादक श्रीमान आठवलेजी प्रारंभ से ही इस विषय के अभिमानी हैं। पुराने उर्दू या नए अंग्रेजी शब्द बहिष्कृत करते समय उनके स्थान पर एकदम सार्थ स्वकीय शब्द की अचूक योजना करने में वे सिद्धहस्त हैं। उनके सिवा चित्रकार और लिपिशोधक माननीय देवधरजी जैसे लेखक लिखने तथा बोलते समय भाषाशुद्धि का पालन व्रत एकनिष्ठा से करते हैं। रत्नागिरी की हिंदू सभा तो पहले से ही अपना संपूर्ण लेखन और मुद्रण शुद्ध भाषा में ही प्रकाशित करती आई है। अन्य कुछ हिंदू सभाएँ और संस्थाएँ भी भाषाशुद्धि की तरफ ध्यान देती हैं। हमने तथा हमारे बंधुद्वय ने लिखे हुए जन्मठेप, 'मलाकायत्याचे?' 'वीर बैरागी', 'गोमांतक काव्य', 'उःशाप', 'हिंदूपदपादशाही', 'नेपाल' आदि सभी छोटे-बड़े ग्रंथों में भाषाशुद्धि का ही अवलंब किया है। इतना ही नहीं, मराठी के हमारे सभी व्याख्यानों में, पत्र-व्यवहार में, संभाषण में और हर रोज के कामचलाऊ बोलने में गत पाँच-दस वर्षों में उर्दू, अंग्रेजी शब्द न आने देने का प्रयत्न किया है। हमारे जैसे ही इस व्रत का आचरण कट्टरता से करनेवाले सैकड़ों युवक और प्रौढ़ नारी-पुरुषों के उदाहरण हमें ज्ञात हैं।

आज से पाँच साल पहले भाषाशुद्धि का आंदोलन जब हाथ में लिया, तब उसके समर्थक अँगुलियों पर गिने जा सकते थे, परंतु वह सुधार आचरण में लाते ही जो प्रामाणिक आक्षेपक थे, वे अनुकूल होते गए और यहाँ-वहाँ उस आंदोलन का इतना बोलबाला और गौरव हुआ कि साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष के बाद अध्यक्षों को (कई अध्यक्षों के) प्रमुखता से उस सुधार का उल्लेख और चर्चा करना आवश्यक हो गया।

ऊपर बताए हुए प्रामाणिक आक्षेपकों में से पुणे के सन् १९२६ के साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष श्री श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकरजी ने इस आंदोलन के आधे हिस्से का—अंग्रेजी शब्दों के उच्चाटन का—अभिमानपूर्वक समर्थन किया और दूसरे आधे हिस्से—उर्दू शब्दों के उच्चाटन के बारे में उनकी पूर्ण अनुकूलता न होते हुए भी निष्पक्षता से यह माना कि 'विदेशी शब्दों के विरुद्ध होनेवाला आंदोलन एकदम निरर्थक नहीं हुआ, क्योंकि आजकल मराठी गद्य और पद्य में मुसलमानी शब्दों की जो भयंकर बाढ़ आई थी, इस आंदोलन का उदय होने से उस ज्वार का भाटा हो गया, इसके स्पष्ट चिह्न प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे हैं। मराठी शब्दों से मुसलमानी शब्दों को अगर अर्धचंद्र मिला तो भाषा में उपयुक्त शब्द अधिक बढ़ जाएँगे।'

श्री कोल्हटकरजी ने उर्दू शब्दों के विरुद्ध के आक्रमण के बारे में जो आक्षेप उनके भाषण में लिये थे, उनका भी समाधान 'श्रद्धानंद' के १९ जून, १९२७ के अपने लेख में हमने किया और इसलिए अनावश्यक उर्दू शब्दों के बारे में अपना मत पूर्ण रूप से अनुकूल हुआ है, इस तरह श्री कोल्हटकरजी ने एक व्याख्यान में बताया और स्वयं प्रयत्नपूर्वक स्वदेशी शब्दों की योजना करते-करते उर्दू शब्द भाषण में न ले आने का प्रयत्न भी उन्होंने इस प्रसंग में किया।

इसके आगे का साहित्य सम्मेलन बेलगाँव में सन् १९२८ में हुआ था। उस सम्मेलन के अध्यक्ष सुप्रसिद्ध 'काल' कर्ता देशभक्त शिवरास पंत परांजपे थे। उन्होंने भी भाषाशुद्धि के आंदोलन के बारे में कहा कि 'हमारी भाषा में आनेवाले मुसलमानी और अंग्रेजी शब्द हमारी भाषा पर भी अपनी प्रस्तुत राजनीतिक परतंत्रता की छाप हमेशा के लिए लगा देते हैं और इसी से ये शब्द हमें दुःसह हो जाते हैं, यह बात सच है। व्याख्यानों में से तो ठीक है, परंतु हम पत्र-व्यवहार में किं बहुना अपने घर की बातचीत में भी अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग अतिशय प्रमाण में करते हैं।' इस उद्वेजक स्थिति में अत्यंत उद्विग्न होर कै. राजवाडेजी ने 'इस अंग्रेजी जू और अत्याचार के बोझ के नीचे मराठी भाषा मर भी जाएगी—ऐसी 'अतिस्नेही पापशंकी' भीति प्रकट की है। उसी तरह जो मुसलमानों को भी हमारे जैसे ही कुचल रहे हैं ऐसी विकट राजकीय परिस्थिति में भी जो हिंदुओं से सहयोग नहीं करते, उनके मुसलमानी शब्द भी अपनी भाषा में हमें किसलिए चाहिए? इस दृष्टि से देशभक्त सावरकर और अन्य कुछ लोग अंग्रेजी के साथ-साथ मुसलमानी शब्दों का भी उच्चारण अपनी भाषा में करने का उद्योग कर रहे हैं। यूरोप के स्विट्जरलैंड और इटली देशों पर भी एक समय ऑस्ट्रिया का शासन था। उस परकीय राजसत्ता का जू फेंककर उन्होंने अपनी स्वतंत्रता जब प्रस्थापित करने का उन देशों की कुछ रियासतों द्वारा प्रयत्न प्रारंभ हुआ, तब उन्होंने भी अपने पर अत्याचार करनेवाले राज्य की

भाषा के शुद्ध अपनी भाषा से भाषा कोश से निकालने का कार्य ऐसे ही प्रारंभ किया था। सन् १९२६ में जब ग्रीक लोग तुर्की के अत्याचारों से मुक्त होने का प्रयत्न करने लगे, तब उन्होंने तुर्की शब्दों को अर्धचंद्र देना प्रारंभ किया। आज भी जर्मन लोग फ्रेंच भाषा का इतना तिरस्कार करते हैं कि जर्मन लोग फ्रेंच लोगों के प्रश्नों के उत्तर जर्मन में ही देते हैं, भले ही फ्रेंच जर्मन समझें या न समझें। वे फ्रेंच लोगों के साथ जर्मन भाषा के बिना दूसरी किसी भी भाषा में कभी नहीं बोलते। अत: पारतंत्र्य के आनंद की दृष्टि से विश्वनाथ पंत राजवाडेजी की चिंता और विनायकरावजी की उद्यमशीलता ध्यान देने योग्य है।' देशभक्त 'काल' कर्ता परांजपेजी ने जो दो-चार आक्षेप लिये हैं, उनपर आगे चलकर विचार होगा ही।

इसके आगे का साहित्य सम्मेलन सन् १९३० में गोवा में श्री प्रा.वा.म. जोशीजी की अध्यक्षता में हुआ। उन्होंने भी अपने भाषण में भाषाशुद्धि का उल्लेख किया और कहा, 'मराठी और फारसी शब्दों का संकर (सम्मिश्रण) बड़ा भाषा-दोष है।' यह कहकर उन्होंने श्री कोल्हटकरजी के मत से सहमत होने की बात कही। श्री कोल्हटकरजी के उपरिनिर्दिष्ट परिच्छेद के अनुसार इस आंदोलन का सुपरिणाम बहुतांश में उन्हें मान्य होना ही चाहिए।

गत पाँच वर्षों में भाषाशुद्धि के लिए जो सक्रिय प्रयत्न किए गए और उसका जो प्रसार हुआ, उसके संक्षिप्त समालोचन से इतना तो स्पष्ट होता है कि भाषाशुद्धि आंदोलन के कारण मराठी पर 'बहुत बड़ा अनिष्ट टूट पड़ेगा' यह पहले के अनेक लोगों के मन में होनेवाला भय पूर्ण रूप से नष्ट होकर उलटे अपनी भाषा से और अपने स्वाभिमान से अधिक पोषक होने का उसका सुपरिणाम अधिक संभवनीय है, इस तरह की सोच साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष से पाठशालाएँ और कॉलेज के विद्यार्थियों तक सब लोगों की हो गई है। अब सम्मेलन के अध्यक्ष और उपरिनिर्दिष्ट जो आक्षेप बीच-बीच में अपना सिर ऊपर उठाते हैं, उनमें भी नब्बे प्रतिशत भाषाशुद्धि के मूल हेतु मर्यादा का और नियमों का पूरा ज्ञान प्राप्त होते ही आप-ही-आप निरस्त हो जाएँगे। अत: उनको स्वतंत्र उत्तर न देते हुए भाषाशुद्धि का स्वरूप एकदम सूत्रमय रीति से यहाँ पुन: एक बार बताने से उनका समाधान आप-ही-आप हो जाएगा—यह जानकर वह स्वरूप यहाँ बताएँगे।

सन् १९२९ में हमने भाषाशुद्धि के मुख्य उद्देश्यों और मर्यादाओं का सार प्रकाशित किया। इस पुस्तक में प्रथम पृष्ठ पर जो संकलित किया है, उसका भावार्थ यह है—

१. हमारी भाषा में पुराने उत्तम शब्द होते हुए भी अथवा नवीन स्वकीय शब्द का उद्भावन करने की शल्यता होते हुए भी, जिन पुराने शब्दों को

लुप्त करनेवाले अथवा नए शब्दों के चलन पर निर्बंध लगानेवाले और इसीलिए एकदम अनावश्यक विदेशी शब्दों को—वे चाहे उर्दू के हों या अंग्रेजी के या अन्य किसी भी भाषा के—स्वभाषा में निष्कारण विचरण न करने दें। हमारा अपना स्वकीय शब्द नामशेष करके विदेशी शब्दों की भरमार कर देना शब्द-संपत्ति समृद्ध करने का मार्ग नहीं है। अपने वैध बच्चों की हत्या करके दत्तक पुत्र गोद लेना वंशवृद्धि का मार्ग नहीं है। (उदाहरण—लोकसभा, विधिमंडल, प्रजासभा आदि शब्दों के होते हुए भी ग्वालियर में 'मजलिस-ए-आम' शब्द को अपनाए रखना मूर्खता ही है।)

२. जो वस्तुएँ आज के पहले अपने यहाँ थी ही नहीं अथवा जिन नई वस्तुओं के लिए उतने अच्छे-अच्छे प्रतिशत निर्माण करना सुलभ नहीं है, ऐसो वस्तुओं के या पदार्थों के नाम, विशेषनाम के जैसे विदेशी शब्दों में ही व्यक्त करने के लिए कोई प्रत्यवाद नहीं है, ऐसे विदेशी शब्दों से सचमुच ही शब्द-संपत्ति बढ़ती है। जैसे—गुलाब, कोट, सदरा, बूट, कॉलर, स्टोव, पेंसिल, स्टीमर इत्यादि; परंतु इन शब्दों के लिए भी अगर किसी ने अच्छा सा प्रतिशब्द निर्माण किया तो वह वैकल्पिक रूप से उपयोग में लाया जाए। 'स्टीमर' को किसी ने अगर 'आगनाव' कहा था, जैसे कोंकण में कहते हैं—'वाफर (वाफ, भाव पर चलनेवाला)', अगर इस शुद्ध रूप को प्रचार में लाया गया तो उसमें क्रोधित होने की क्या बात है?

३. भाषाशुद्धि का ही नहीं, बल्कि सभी सुधारों का मर्म यही होना चाहिए कि स्वकीय संस्कृति में जो उत्तम, कार्यक्षम और हितावह है, उसका त्याग निष्कारण न किया जाए और विदेशी संस्कृति का—जो अपनी संस्कृति में नहीं है—जो उत्तम कार्यक्षम और हितकारक है, उसे सकारण स्वीकार करने में आनाकानी न करें।

इस समालोचना के पूर्वार्ध के अंत में भाषाशुद्धि के नियमों की ओर मर्यादाओं की जो संक्षिप्त रूपरेखा दी है, वह अच्छी तरह से समझ लेने के बाद यह सहज ही ध्यान में आएगा कि पहले लिये गए और जिसके स्वरूप के अधकचरे ज्ञान के कारण लिये जानेवाले अधिकांश आक्षेप आप-ही-आप विनष्ट होते हैं। इतना होने पर भी अगर किसी को वह आंदोलन कुछ कारणों के लिए आवश्यक लगता हो तो वे प्रथमतः हमारी 'भाषा शुद्धीकरण' नामक स्वतंत्र पुस्तक अवश्य पढ़ें, क्योंकि उसमें इन सभी आक्षेपों का निराकर पहले ही किया गया है। इस समालोचन के

आक्षेपों की वे ही उत्तर देने की पुनरुक्ति करने का हमारा बिलकुल उद्देश्य नहीं है और उसकी आवश्यकता भी नहीं है। गत पाँच वर्षों में इस आंदोलन के कारण अपनी भाषा का शब्दबल और आत्मविश्वास बढ़ गया है, यही इस आंदोलन का हितकारक तत्त्व सिद्ध करने का अखंडनीय प्रमाण है और इसलिए उसके इस सुपरिणाम का संकलित दिग्दर्शन करने जितना और किए हुए कार्य का समालोचन करके वही ध्येय लेकर आगे चलाना अत्यंत हितकारक है—यह दिखाने के लिए ही यह समालोचन किया गया है।

हमारी भाषा के बढ़े हुए शब्दबल की साधारण कल्पना की जाए, इसलिए आंदोलन के प्रभाव और विशेषत: 'श्रद्धानंद' पत्र के द्वारा जो सैकड़ों स्वकीय नवीन शब्द मराठी में लिखने और बोलने में प्रचलित, कम-से-कम परिचित हुए, उनमें से कुछ शब्द थोड़े से स्पष्टीकरण के साथ यहाँ दे रहे हैं—त्वर्य (Urgent); विधिमंडल (कायदे कौंसिल); विधिसमिति (लेजिस्लेटिव असेंब्ली); अधोरेखित (Under Lined); पुरस्कार, लेखन पुरस्कार (Honourarium, Remuneration); स्तंभ (कॉलम); आनुषंगक (डैश); निक्षेप (ट्रस्ट); विश्वस्त (ट्रस्टी, जैसे 'केसरी' संस्था का निक्षेप करके उसका विश्वस्त-मंडल नियुक्त किया गया।); दैनिकी, आन्हिकी (डायरी); क्रमांक (यह शब्द हमारे बड़े भाई ने अंदमान में सुझाया, नंबर), छेदक (पॅरिग्राफ); टाचण, बाड (फाइल); शुल्क (फी—यह शब्द हिंदी और बँगला भाषा में रूढ़ था); ग्रंथ विक्रेता (बुक सेलर); समास, कोर (मार्जिन); हुतात्मा (यह शब्द अंदमान में हमें सूझा। मराठी से वह हिंदी, बँगला प्रभृति भाषाओं में भी प्रचलित हुआ है। Martyr अंग्रेजी शब्द से या 'शहीद' उर्दू शब्द से उदात्ततर अर्थ 'हुत' पद के यज्ञ संस्था की ध्वनि द्वारा सूचित होता है। हिंदू भाषा संघ की एक बहुत बड़ी त्रुटि इस शब्द से दूर हुई है); प्रतिवृत्त (रिपोर्ट); धिक्कार (शेम—सभाओं में इस शब्द का उपयोग किया जाए, जो गर्जनानुकूल भी है); पुनश्च (वन्स मोअर, इस शब्द का नाट्य गृह में उपयोग किया जाए, यह भी गर्जनानुकूल है।); प्रमाणपत्र (सर्टिफिकेट); अर्थात् (उर्फ। जैसे माधवराव नारायण उर्फ सवाई माधवराव न कहते हुए माधवराव नारायण अर्थात् सवाई माधवराव कहा जाए।); इच्छुक (उमेदवार); उपस्थित, उपस्थिति (हजर, हजेरी—यह शब्द हिंदी, बँगला भाषा में प्रचलित है।); अनुपस्थिति (गैर हजेरी); निर्बंध, नैर्बंधिक, निबंध पंडित इत्यादि (कायदा, कायदेशीर, कायदेपंडित इत्यादि)। कायदा शब्द के जैसे समाज के मूल आधार का ही भाव प्रदर्शित करनेवाले पदार्थ के लिए हमारा स्वकीय एक भी शब्द आज प्रचलित नहीं है—इससे अधिक भाषा की परवशता और क्या हो सकती है? विदेशी शब्द स्वकीय शब्दों को आमूलात किस तरह नामशेष करते हैं, उसका यह उदाहरण है।

जिस भाषा और जिस राष्ट्र में 'तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्' उसमें जगत् का प्रथम-से-प्रथम Code—वे धर्मसूत्र, वे स्मृतियाँ रची गईं, उनको अब विदेशी शब्द के बिना 'कायदे' की कल्पना व्यक्त करना असंभव हो गया है। सारा हिंदू भाषा संघ दारिद्र्य! राज्यसत्ता जब परकीय हाथों में चली गई, तभी 'कायदा' गया वह शब्द, उसके अर्थ का शब्द भी हम बचा न सकें; अब वह कलंक शब्द तक तो धो डालेंगे। 'निर्बंध' शब्द ही 'कायदे' के लिए रखा जाए। आज वह उसी अर्थ में परिचित भी हो रहा है। 'केसरी' वृत्तपत्र से निर्बंध-भंग शब्द कायदे भंग के प्रतिशब्द के नाते आ जाता है। हिंदी में भी वह प्रचलित हो रहा है। अत: अब वही शब्द प्रचलित किया जाए।); निर्बंधशास्त्र (कायदेशास्त्र); राजवट-सत्ताकाल (कारकीर्द); स्थायीनिधि (कायम निधि); राजबंदी (पॉलिटिकल प्रिजनर। यह शब्द 'जन्मठेप' पुस्तक के द्वारा प्रचलित हुआ); प्रकट सभा (जाहीर सभा); अंतस्थ सभा (Private meeting); अंतस्थ व्यक्तिगत, घरेलू (Private) खानगी।

इस तरह और सौ-दो सौ स्वकीय शब्दों की वृद्धि गत पाँच वर्षों में प्रमुखत: इस भाषाशुद्धि आंदोलन के कारण हुई है। इन सबका वर्णन यहाँ देना असंभव है।

पुराने शब्दों का पुररुज्जीवन

भाषाशुद्धि द्वारा स्वकीय नए शब्दों का परिवर्धन करने का एक कार्य किया, वैसे ही हमारे जो पुराने शब्द निष्कारण प्राय: लुप्त होने लगे थे, उनका पुनरुज्जीवन करने का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य भी उतनी ही तत्परता से किया है। आजकल शिवाय, जरूर, कबूल आदि विदेशी शब्द घर-घर में प्रचलित हुए हैं और अपने तदर्थक अनेक पुराने शब्द 'संध्या, वाचून, विना, मान्य, संमत, अवश्य' गलती से भी बोलते समय काम में नहीं लाए जाते। बच्चियाँ लुका-छिपी खेलते समय भी 'रेडी' शब्द का प्रयोग करती हैं। पुराने खेल के सावधान, गिर गया, मार दिया इत्यादि शानदार शब्द आज बिलकुल नहीं चलते। आज 'रेडी' और 'आउट' यहाँ-वहाँ फैल गए हैं। उदाहरणार्थ—बेलगाँव के सम्मेलनाध्यक्ष के भाषण के एक पृष्ठ पर 'जरूर' शब्द चार-पाँच बार उपयोग में लाया गया है, परंतु पर्याय के रूप में भी अपना तदर्थक 'अवश्य' शब्द एक बार भी नहीं आया है। नीचे दी हुई टिप्पणी में दिग्दर्शनार्थ दिए हुए सभी विदेशी शब्द इसी प्रकार में आ जाते हैं। उनके पर्याय होनेवाले हमारे अपने पुराने शब्द नियमपूर्वक उपयोग में लाएँ और उनको नष्ट करके सिरचढ़े विदेशी शब्दों को बहिष्कृत करें, क्योंकि अगर भाषा से वे शब्द साफ निकल गए तो हमारी कुछ भी हानि नहीं होनेवाली है। पुराने स्वकीय शब्दों को नष्ट करके विदेशी शब्द निष्कारण उपयोग में लाना मूर्खता है। यही भाषाशुद्धि का मुख्य

उद्‌देश्य है।

बहिष्कार्य शब्दों के उदाहरण—बद्‌दल (संबंधी, विषयी), यही शब्द बेलगाँव के सम्मेलनाध्यक्ष के भाषण में प्रथम पृष्ठ पर चार पंक्तियों में चार बार आया है, परंतु तदर्थक स्वकीय शब्द 'संबंधी, विषयी' बिलकुल नहीं आए। शिवाय (विना, वाचून, व्यतिरिक्त, आणखी); कायम (स्थिर, स्थायी, नित्य); अगर (जरी, किंवा, या); अब्रू (लौकिक, मान, प्रतिष्ठा); इलाज (उपाय, साधन); इमानी (प्रामाणिक, विश्वास); इमारत (घर, बाड़ा, आलय, भवन, गृह, निकेतन, इस तरह कितने भी तदर्थक शब्द हैं, फिर भी जहाँ-तहाँ 'इमारत' शब्द बहुत ज्यादा प्रचलित हुआ है।); कबूल (मान्य, सम्मत); रोपत (सामर्थ्य, योग्यता, शक्ति); गुदस्ता (गतवर्षी); कमाल (धन्य, पराकाष्ठा, परिसीमा, परमावधि); किंमत (मूल्य, मोल, पुस्तक पर अगर 'कीमत' लिखी गई तो ही वह पुस्तक बिकने की अनुज्ञा प्राप्त होती है, ऐसा लोग समझते हैं। गलती से भी कोई प्रकाशन पुस्तक पर 'मूल्य' नहीं छापता, हर कोई 'कीमत' छापता है); हकीगत (वृत्त, वृत्तांत, माहिली); तर्फे (वतीने); दोस्त (मित्र, स्नेही, वयस्य, साथी, सवंगडी आदि अनेक टोकरी भर शब्द हैं, परंतु शायरों को 'दोस्त' कहे बगैर प्रेम की स्फूर्ति ही नहीं आती); दिलगिरी (दुःख, शोक, खेद अनुताप), अव्वल पासून अखेरे पर्यंत (अथ से इतितक); जमीन अस्मान (आकाश-पाताल); सालमजकूर (चालू वर्ष); सालगुदस्त (गतवर्ष); माजी (विगल); मंजूर (मान्य, संमत); हवामान (वायुमान, ऋतुमान); गरीब (दीन, बिचारा, सालस), मेहेरबान (कृपावंत); मेहेरबानी (कृपा, दया, आभार, उपकार)।

इस तरह के अनेक अनावश्यक विदेशी शब्दों का प्रचार गत पाँच वर्षों में खूब प्रमाण में कम हो गया है और अपने तदर्थक पुराने स्वकीय शब्दों का प्रमाण का पुनरुज्जीवन हो रहा है। इस तरह स्वकीय शब्द अधिक हो रहे हैं और पुराने शब्द भी पुनरुज्जीवित होकर अपनी भाषा का शब्द-सामर्थ्य इस आंदोलन से वृद्धिंगत हुई है। यह बात अनुभवों से निर्विवाद सिद्ध हो रही है। कुल मिलाकर सभी परिणामों को ध्यान में रखकर इस समालोचना से यह स्पष्ट होता है कि मराठी भाषा को विदेशी अनावश्यक शब्दों की मारक पीड़ा से मुक्त करके उसका स्वकीय शब्द-सामर्थ्य प्रवर्धमान करनेवाला ऐसा विस्तृत आंदोलन आजतक कभी नहीं हुआ था। मराठी भाषा में भरे हुए उर्दू शब्दों के रोग पर श्री छत्रपति शिवाजी महाराज के बाद इस आंदोलन से ही शस्त्र क्रिया होने लगी है।

प्रत्यक्ष अनुभवों से इतना हितकारक भाषाशुद्धि का व्रत अब इसके आगे भी हम सब दृढ़ निश्चय से आगे बढ़ाएँ। भाषा में जो विदेशी शब्द सिरचढ़े होकर बैठे हैं और स्वकीय शब्दों को नामशेष कर रहे हैं, वे भी नियत पद्धति से अपना काम

करते हैं। वह पद्धति इस तरह है कि हम कभी-कभी ढिलाई से आनाकानी करके, कभी निरुपाय होकर तो कभी-कभी केवल शान दिखाने के लिए कुछ विदेशी शब्द भाषा में प्रयुक्त करने लगते हैं। धीरे-धीरे वे इतने अधिक प्रमाण में प्रयोग में लाए जाते हैं कि हमारी भाषा के तदर्शक शब्द पीछे छूटने लगते हैं और वह भाव उस विदेशी शब्द से ही व्यक्त करने का अभ्यास हो जाता है, आगे ऐसा लगने लगता है कि वह भाव उस शब्द के बिना व्यक्त ही नहीं हो सकता और वे विदेशी शब्द धीरे-धीरे रूढ़ होने लगते हैं। एक बार वे रूढ़ हो गए तो वे पुराने, अपने ही हुए, अपने ही हैं—इस पागल ममत्व से उनको निकालने का कोई प्रयत्न करने लगा तो हमें वह अच्छा नहीं लगता; परंतु इसका परिणाम यह होता है कि हमारे स्वकीय शब्द नष्ट हो रहे हैं—क्या किसी को इसका कुछ भी खेद नहीं है? अत: विदेशी शब्द हमारे भाषागृह में जिस चोर-मार्ग से घुस गए, वह 'उपेक्षा, ढिलाई' का मार्ग अब हमें पूर्ण रूप से बंद करना चाहिए। इसके आगे हम पुराने निष्कारण घुसे हुए विदेशी शब्दों को निकाल देंगे और आज तक विदेशी शब्दों को हमारे घर में घुसने का जो चोर-मार्ग था (वह अब हमें मालूम हुआ है), उसपर कड़ा पहरा देंगे। हमारा स्वकीय शब्द होते हुए या संस्कृत के समान शब्द प्रसवक्षम और सुसंपन्न अपनी देववाणी-रत्नखान से वह निर्माण करने की शक्ति होते हुए विदेशी शब्द को उस 'ढिलाई' के चोर-मार्ग से अंदर आने नहीं देंगे। सभी को यह व्रत लेना चाहिए कि परिहास में भी क्षणिक अनुज्ञा देकर विदेशी शब्द को अंदर घुसने नहीं देंगे।

इस ढिलाई का एकदम ताजा उदाहरण है 'इनकलाब जिंदाबाद'। सुनिए, हिंदुओं में ही नहीं, मुसलमानों में भी अनेक लोगों को इसका अर्थ समझ में नहीं आया, परंतु मुसलमानों ने चिल्लाना प्रारंभ किया तो गाँव-गाँव में हिंदू भी वही चिल्लाने लगे। अभी-अभी हमने एक ख्यातनाम प्रौढ़ व्यापारी से पूछा कि 'अभी आप जो गर्जना कर रहे हैं—'इनकलाब जिंदाबाद', इसका अर्थ क्या है?'

उसने हँसकर उत्तर दिया, 'अर्थ? जिंदाबाद! हमारा आज का राष्ट्रीय झंडा (अंग्रेजों का) बाद हो—इस तरह से कुछ-कुछ होगा ऐसा मैं समझता हूँ!!'

पंजाब में सुशिक्षित हिंदुओं ने ऐसी ही 'ढिलाई' करने का पाप स्वयं करके उनकी मूल हिंदू भाषा निर्जीव होकर आज उर्दू ही सार्वजनिक बड़प्पन की भाषा हो गई है। इसी से वहाँ 'क्रांति चिरायु हो', 'क्रांति की जय-जयकार' इस गर्जना की अपेक्षा 'इनकलाब जिंदाबाद' गर्जना ही अधिक सुनाई देती है। मुसलमान तो 'वंदे मातरम्' भी नहीं कहेंगे, तो फिर क्रांति की जय-जयकार कैसे कर सकते हैं? उन्होंने यहाँ भी 'इनकलाब जिंदाबाद' की गर्जना की। मुसलमान हिंदू भाषीय गर्जना जानबूझकर टालते हैं तो उनके इस दुराग्रह पर प्रहार करने के लिए तो हम

अपनी स्वकीय गर्जना ही करेंगे—ऐसा हिंदुओं को कभी नहीं लगा। अगर इतना स्वाभिमान होता तो वे हिंदू कैसे? वे भी लगे मेमने की भाँति चिल्लाने 'इनकलाब जिंदाबाद!' 'क्रांति चिरायु हो!', 'चिरंजीव क्रांति की जय' अथवा 'क्रांति की जय', 'क्रांति की जय-जयकार' ये आज तक गूँजनेवाली अपनी स्वकीय गर्जना पीछे हटकर अब अगर 'इनकलाब जिंदाबाद' गर्जना फैल गई तो वह भावना उन्हीं शब्दों के साथ चिपक जाएगी और आगे चलकर हमारे ही सयाने लोग कहने लगेंगे कि उस जिंदाबाद के बिना यह भाव व्यक्त ही नहीं होता, हम भी क्या करें? और दस वर्षों के बाद सभी लोग कहने लगेंगे कि अब यह शब्द पुराना हो चुका है, अपना ही हो गया है, रहने दो उसे! परंतु उसके कारण अपना 'क्रांति चिरायु हो' यह शब्द पराया हो गया, नष्ट हो गया, उसका क्या करेंगे? इसीलिए हम पहले से ही 'क्रांति चिरायु हो' अथवा 'क्रांति की जय-जयकार' ये चैतन्यप्रद, गर्जनाक्षम और सभी तरह से सार्थक होनेवाले शब्द ही उपयोग में लाएँ, मुसलमानों को वहाँ चाहे जो चिल्लाने दें। इन गर्जनाओं की तरफ यहाँ हम भाषाशुद्धि की दृष्टि से ही देख रहे हैं, उनके राजनीतिक अर्थ से और उन गर्जनाओं की योग्यायोग्यता से यहाँ हमारा कोई संबंध नहीं है। गरजना है तो कम-से-कम अपनी ही स्वकीय भाषा में गरजो। स्वकीय शब्द के प्रचलन का ही विधेयक यहाँ प्रस्तुत है।

इस प्रकार की घातक ढिलाई इस भाषाशुद्धि की नाकाबंदी के कारण कवचित् ही घटित होती है, यह नई बात है, क्योंकि वह 'पिकेटर' शब्द देखिए। बँगला भाषा में विदेशी नए शब्द तत्काल बहिष्कृत होते हैं, वैसे 'पिकेटर' भी बहिष्कृत हुआ और उसके लिए 'निरोधक' और 'निरोधन' नामक फक्कड़ शब्द प्रयोग में लाया गया; उनकी मार्फत मराठी में भी पिकेटर पर पिकेटिंग हुआ और उसको विदेशी कपड़ों के गट्ठर के साथ झटपट बहिष्कृत किया गया। 'निरोधक' और 'निरोधन' दोनों शब्द बोलते-बोलते रूढ़ हो रहे हैं। इसी तरह की सावधानता हमें सतत रखनी चाहिए।

अब गत पाँच वर्षों के समालोचन के अंत में आनेवाले छठे वर्ष के लिए इस आंदोलन का धारण और कार्यक्रम क्या होना चाहिए, उसका भी दिग्दर्शन करके यह लेख समाप्त करेंगे—

१. विदेशी शब्द भी कब लेने चाहिए, उसका नियम हमने स्पष्ट रूप से पहले बता ही दिया है। वह अपवाद छोड़कर हम सब स्वकीय शब्द ही उपयोग में लाएँ। इसके आगे तो कोई अपने मित्र को 'फ्रेंड' बनाने का या भाई को 'ब्रदर' बनाने का अनौचित्यपूर्ण प्रयोग न करे। स्वकीय शब्द की परिभाषा यही है कि संस्कृतोत्पन्न जो अनेक प्राकृत भाषाएँ

अथवा तमिल प्रभृति द्रविड़ संघ की भाषाएँ अपने हिंदुओं में, जो इस देश में, मूलत: प्रचलित हैं, उस हिंदू भाषा संघ के सभी शब्द हमारे लिए स्वकीय ही हैं। यह सुनकर एक विद्वान् को हँसी आई और उसने मासिक पत्रिका के माध्यम से पूछा, 'क्योंजी? 'हिंदू भाषा संघ' यानी क्या? क्या भाषा का भी धर्म होता है?' उनको हम इतना ही कहेंगे कि आपने आगे चलकर उसी लेख में 'हिंदुस्थान' शब्द प्रयोग किया है। उस शब्द-प्रयोग से हमें भी हँसी आई और पूछने की इच्छा हुई कि 'हिंदुस्थान यानी क्या? स्थान को पत्थर मिट्टी को, पेड़-पौधों को या समुदाय का भी क्या धर्म होता है?'

परंतु वैसे कुछ न होते हुए भी हिंदू लोग परंपरा से जिसमें रहते हैं, वह स्थान हिंदुस्थान है। अगर आपने इस अर्थ से हिंदुस्थान शब्द प्रयुक्त किया हो तो हिंदू लोग परंपरागत जो भाषाएँ बोलते हैं, वह 'हिंदू भाषा संघ' है। यह समझ में आने जितनी विद्वत्ता आपके पास है, ऐसा हम मानते हैं।

२. जिस गाँव में बहुत सारे लोग मराठी जाननेवाले होते हैं, उस गाँव में 'वाशिंग कंपनी', 'हेयर कटिंग सैलून', 'वाच रिपेयरिंग'—इस तरह के नामफलक अनाड़ी दुकानदारों के द्वारा लगाने का जो अभ्यास हमें पड़ा है, वह तत्काल छोड़ देना चाहिए। वहाँ मराठी नामफलक लगाए जाने चाहिए। नामफलक लगाने का उद्देश्य—किस तरह की दुकान है—यह ग्राहक समझे—इससे पूरा होगा। केवल भाषाशुद्धि के लिए ही नहीं बल्कि उनके धंधे के हित की दृष्टि से भी मराठी भाषा के नामफलक अधिक उपयुक्त होंगे। वैसे ही ऐसे स्थान के विधिज्ञ अपने दरवाजे पर 'Out, In' इस तरह अंग्रेजी में लिखने की हास्यास्पद आदत छोड़कर 'बाहर', 'आंत' इस तरह मराठी में लिखें। केवल अपनी ही समझ में आने के लिए वे फलक न होकर अगर लोगों की समझ में आने के लिए हों, तो उन फलकों का क्या फायदा? जहाँ मराठी समझनेवाले बहुसंख्यक हों, वहाँ ऐसे शब्द मराठी में होने चाहिए—खेद है कि यह भी कहना पड़ता है। उसी तरह अपने नाम के आद्याक्षर मराठी में लिखें। एस.व्ही. फड़के लिखने का अभ्यास छोड़कर स.वि. फड़के ही लिखा जाए।
३. शब्दकोश मंडल प्रत्येक रूढ़ विदेशी शब्द देते समय उनके प्रतिशब्दों के स्थान पर एक या अनेक कोई-न-कोई तदर्थक स्वकीय शब्द अवश्य लिख दे और दूसरी बात यह है कि महानुभावादिक और मागधी महाराष्ट्रीय

साहित्य में जो पुराने शब्द आज के विदेशी शब्दों द्वारा लुप्त हुए हैं और जिनको आज प्रतिशब्द होने के योग्य होंगे, वे सारे पुनरुज्जीवित करके उन विदेशी शब्दों को प्रतिशब्द के नाते उनके आगे दे दें। इससे शब्द-संपत्ति के रक्षण के कार्य के साथ वह शब्दकोश मंडल सहज रूप से शब्दबल-विवर्धन का कार्य भी कर सकेगा। परिभाषा मंडल का भी यही ध्येय होना चाहिए।

४. अंत में जिन पुराने पत्रकारों और लेखकों ने अनावश्यक नए या पुराने विदेशी शब्द टालने के प्रयत्न पर अब भी ध्यान न दिया हो, वे आगे चलकर वैसे न करते हुए अपनी वाणी तथा लेखन में जो विदेशी शब्द प्रचलित हुए हैं, उन शब्दों का बहिष्कार करें। अनेक लेखक मन-ही-मन यह मानते हैं कि यह करना इष्ट है, पर उनका अभ्यास होने के कारण भाषा बदलना उनके लिए कठिन-से-कठिन होता है, इसलिए वे स्पष्ट रूप से इस बात का समर्थन नहीं करते, पर उनको हम अनेक स्थानों पर अनुभव से सिद्ध एक आसान पद्धति बताते हैं। सर्वप्रथम लेख सदा की भाँति लिख डालें। इससे लिखते समय विचारों में विघ्न नहीं होगा कि यह शब्द उर्दू है या अंग्रेजी। उसके बाद जैसा हम उपमुद्रितों (प्रूफ्स) का अन्वेक्षण करते हैं, वैसे ही वह लेखन केवल विदेशी शब्दों की दृष्टि से देख लेने से काम हो जाएगा। इससे जैसे शुभ्र चादर पर खटमल निश्चित पकड़ में आ जाते हैं, वैसे ही विदेशी शब्द मिल जाएँगे और लेखनी की फटकार से आप उनको आसानी से निकाल सकते हैं। इस तरह पाँच-छह बार करते-करते लिखते समय ही इन विदेशी शब्दों का आना बंद हो जाएगा।

५. ऊपर दी हुई सूचनाओं के अनुसार सभी लोग अधिकतम दृढ़ता और निश्चय से विदेशी शब्दों के बहिष्कार का व्रत भागानगरी (निजाम हैदराबाद), कहाड, विदर्भ, ग्वालियर, भड़ौच आदि प्रांतों और महाराष्ट्र के लोग अपने आचरण में लाने की आदत डालें, क्योंकि वहीं से मराठी में उर्दू आदि विदेशी शब्द घुसने का संकट आने की संभावना अधिक है।

टिप्पणियाँ : १. अपनी स्थानबद्धता के काल में रत्नागिरी में स्व. वीर सावरकरजी ने जो भाषाशुद्धि का आंदोलन फिर से शुरू किया, उसके पाँच वर्षों का समालोचन करनेवाला यह लेख 'केसरी' समाचार-पत्र में चार लेखांकों में १६ मई, १९३१ से २ जून, १९३१ तक के

अंकों में प्रकाशित किया गया था।

२. इस पुस्तक के १ से ४६ पृष्ठ तक 'मराठी भाषा का शुद्धीकरण' इस पुस्तक के पूर्वार्ध का पुनर्मुद्रण है।
३. यह लेख इस पुस्तक के पृष्ठ ५४ से ६१ तक पर छापा गया है।
४. यह लेख सन् १९३१ में वीर सावरकरजी ने लिखा। तब उनको राजनीति में हिस्सा लेने पर प्रतिबंध था, इसीलिए उन्होंने यह चर्चा शब्दों के अर्थ तक ही सीमित होने का स्पष्टीकरण दिया है।

□

हमारी राष्ट्रभाषा और भाषाशुद्धि

भारतीय राज्यघटना के ३४३ परिच्छेद (article) के अनुसार यह निर्धारित किया है कि 'देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा है।'

परंतु इस परिच्छेद के नीचे 'जर' (अगर), 'तर' (तो) तथापि, इत्यादि उपाधियों की इतनी जोंकें लगाई गई हैं कि अगर उन्हें वैसे ही रहने दिया जाए, तो उस मूल घोषणा को 'रक्त-क्षय' की बाधा हुए बिना नहीं रहेगी और अंत में हिंदी राष्ट्रभाषा न होकर वास्तव में वह हिंदुस्थानी राष्ट्रभाषा हो जाएगी और पचास-सौ वर्षों तक आज की अंग्रेजी ही राष्ट्रभाषा का पद हथियाए रहेगी।

उर्दूनिष्ठ पक्ष के आग्रह से हिंदुस्थानी का नाम निर्देश

लोगों में सामान्य समझ यह फैली हुई है कि घटना के अनुसार अंग्रेजी अधिक-से-अधिक दस-पंद्रह वर्षों तक राज्यभाषा के रूप में रह जाएगी, पर यह मिथ्या है। ऊपर के ३४३वें परिच्छेद के तीसरे अनुच्छेदक (clause) में ही अत्यधिक जोर देकर कहा है कि अगर लोकसभा को उचित लगा तो पंद्रह वर्षों के बाद भी अंग्रेजी ही राज्यभाषा रखी जाएगी। और यह कार्य घटनाबाह्य न होने के कारण निषिद्ध भी नहीं है। वही बात उर्दूनिष्ठ 'हिंदुस्थानी' की है। हिंदी ही राज्यभाषा है—ऐसा कहते-कहते आगे के परिच्छेद ३५१ में स्पष्ट रूप से लिखा है कि 'हिंदी भाषा को संपन्न और समृद्ध करने के लिए 'हिंदुस्थानी' भाषा की रूप, शैली और पद्धति हिंदी में आत्मसात् की जाए।' श्री नेहरूजी के उर्दूनिष्ठ पक्ष के आग्रह के कारण 'हिंदुस्थानी' का नाम निर्देशपूर्वक विशिष्ट उल्लेख हिंदी के साथ किया गया है, यह अलग कहने की आवश्यकता नहीं है।

यह प्रस्ताव इतना अनिश्चित कैसे हुआ?

राष्ट्रभाषा के बारे में होनेवाला यह प्रस्ताव इतना डाँवाँडोल और इतना

अस्पष्ट क्यों किया गया? इस बात को समझने के लिए इस विषय की पूर्व-पीठिका का थोड़ा सा ज्ञान होना आवश्यक है। साधारणत: श्रीस्वामी दयानंदजी से हिंदुस्थान की राष्ट्रभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होनी चाहिए, इस बात का प्रचार अनेक हिंदू नेताओं से हो रहा था, परंतु खिलाफत के आंदोलन को अंगीकृत करने का अक्षम्य अपराध जब कांग्रेस ने किया, तब से मुसलमानों का वर्चस्व कांग्रेस में बढ़ने लगा। इस अवसर का लाभ उठाकर मुसलिमों ने उनकी अन्य स्वार्थसाधु माँगों में यह भी माँग दृढ़ता से की कि अगर आप हिंदू-मुसलिम एकता चाहते हैं तो उर्दू ही हिंदुस्थान की राष्ट्रभाषा होगी, यह बात मान्य करनी होगी। हिंदी और उर्दू—दोनों पक्षों का समन्वय हम सहजसाध्य कर सकते हैं—इस आवेश में, जो अब तक केवल हिंदी ही राष्ट्रभाषा होगी—कहते आनेवाले—गांधीजी ने यह उपाय सुझाया कि उर्दू शब्द बहुल 'हिंदुस्थानी' नामक बोली लखनऊ के नजदीक सर्वसाधारणत: हिंदु-मुसलमान लोग अपने कामचलाऊ व्यवहार के लिए बोलते हैं, वह ही राष्ट्रभाषा तय की जाए और वह देवनागरी तथा उर्दू—दोनों लिपियों में लिखी जाए। समस्या का यह समाधान मुसलमानों को मान्य नहीं था, परंतु गांधीजी की ही अध्यक्षता में संपन्न हिंदी साहित्य सम्मेलन में गांधीजी के आग्रह से 'हिंदुस्थानी' ही राष्ट्रभाषा है।' इस तरह का प्रस्ताव मान्य करवा लिया गया। इतना ही नहीं बल्कि 'हिंदी यानी हिंदुस्थानी' इस तरह राष्ट्रभाषा का नामकरण भी किया गया। इससे उर्दू शब्द बहुल जो हिंदुस्थानी थी, उसे ही 'हिंदी' कहने की बारी आई, क्योंकि हिंदी साहित्य सम्मेलन ने ही वह प्रस्ताव पास किया था।

'संस्कृतनिष्ठ' विशेषण क्यों लगाना पड़ा?

जिस हिंदी को हम अपनी राष्ट्रभाषा बनाना चाहते हैं, वह भाषा यह हिंदी यानी 'हिंदुस्थानी' नहीं है, यह स्पष्ट रूप से जताने के लिए, हिंदी के सत्य स्वरूप को दर्पण की भाँति प्रतिबिंबित करने के लिए, उसके नाम के बारे में की गई सभी वैचारिक उलझनों का निराकरण करने के लिए और जिस हिंदी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं, उसकी पहचान झट से एक ही शब्द में करा देनेवाले 'संस्कृतनिष्ठ' व्यावर्तक विशेषण हमने ही प्रथमत: उसमें लगा दिया और घोषणा की कि 'संस्कृतनिष्ठ हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा है और देवनागरी हमारी राष्ट्रलिपि है।' तत्काल हिंदू सभा ने तथा अधिकांश हिंदुत्वनिष्ठ संस्थाओं ने इस घोषणा का समर्थन किया।

महाराष्ट्रीय लोगों का नेतृत्व

थोड़े ही दिनों में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' की बुद्धि ठिकाने पर आ गई और

'हिंदुस्थानी' के साथ गांधीजी को वह संस्था छोड़नी पड़ी। तब से एक तरफ 'संस्कृतनिष्ठ हिंदी' का प्रचार धड़ल्ले से हिंदुस्थान भर में प्रारंभ हुआ।

जिन प्रांतों की मातृभाषा ही हिंदी थी, उन प्रांतों के कांग्रेसी लोग भी अंदर से और श्रीयुत् टंडनजी जैसे नेता प्रकट रूप से संस्कृतनिष्ठ हिंदी का ही प्रचार एवं समर्थन करने लगे। वह स्वाभाविक भी था; परंतु मातृभाषा हिंदी न होते हुए भी हिंदीभाषीय प्रांतों जैसी ही कट्टरता से अगर किसी प्रांत ने संस्कृतनिष्ठ हिंदी का समर्थन और प्रचार किया होगा, तो वह हमारे महाराष्ट्र के हिंदुत्वनिष्ठ लोगों ने ही किया। अबोहर, हरिद्वार, जयपुर, मुंबई प्रभृति नगरों में जब हिंदी साहित्य सम्मेलन संपन्न हुए तो उन प्रसंगों में तथा अन्य प्रसंगों में भी 'उर्दूनिष्ठ' हिंदुस्थानी पक्ष की कूटनीति को नष्ट करने के कार्य में इन महाराष्ट्रीयनों का ही नेतृत्व होता था।

सच्चा वादकेंद्र अंग्रेजी नहीं है

अंत में राज्यघटना समिति में राजर्षि टंडनजी के नेतृत्व में संस्कृतनिष्ठ हिंदी को ही राष्ट्रभाषा बनाने के लिए प्रबल विद्रोह हुआ। उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी के पक्ष में आज जिनके हाथ में राजसत्ता है, ऐसे कांग्रेस अधिकारियों और मौलाना आजाद जैसे मुसलिम सदस्यों का पक्ष श्री नेहरूजी के नेतृत्व में उनको पराभूत करने का प्रयत्न करने लगे। राष्ट्रभाषा के प्रस्ताव के बाबत में सच्चा वाद केंद्र अंग्रेजी नहीं था, क्योंकि अंग्रेजी हमेशा भारत की राष्ट्रभाषा बनी रहे—इस तरह के पंजीकरण का साहस श्री नेहरूजी भी नहीं कर सकते थे। अंग्रेजी अंक उतने लेने ही चाहिए—इतने ही विक्षिप्त हठ पर उनको अपना संतोष करना पड़ा। अंग्रेजी का अभी आज ही निर्वासन करना राष्ट्रीय व्यवहार की दृष्टि से अनिष्ट और अशक्य है—यह बात हिंदी के समर्थक भी जानते थे। इसलिए अंग्रेजी ही राज-व्यवहार में और पंद्रह वर्षों तक रहने देने के प्रस्ताव को सभी ने निरुपाय होकर एकमत से स्वीकार किया। सच्चा मतभेद संस्कृतनिष्ठ हिंदी और उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी में ही था। यह बात सर्वश्रुत ही है कि वह वाद अंत में पराकोटि के विरोध तक पहुँच गया। अंत में निरुपाय होकर दोनों पक्षों को रोते-चिल्लाते 'जर', 'तर' तथापि 'परंतु' इत्यादि उपाधियों की चौखट में उस प्रस्ताव को ठूँसकर समझौते से वह वाद-विवाद मिटाना पड़ा और यह समझौता यानी राष्ट्रभाषा का प्रस्ताव। इन सभी कारणों से वह प्रस्ताव इतना अनिश्चित और अस्पष्ट हो गया है।

एक की विजय होने पर भी दूसरे की पराजय निश्चित नहीं है

'संस्कृतनिष्ठ हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा है' यह बात उसमें व्यावर्तक निश्चितता

से नहीं कहा गया है। 'देवनागरी लिपि में लिखी जानेवाली हिंदी' इतना ही कहा गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि आज भी सैकड़ों उर्दू शब्द देवनागरी में लिखे जा सकते हैं। उस प्रस्ताव में आगे कहा है कि 'हिंदुस्तानी भाषा के शब्द ही नहीं, बल्कि रूप, शैली, स्वरूप, ढंग आदि बातें भी हिंदी में आत्मसात् करें, भविष्य में संकट खड़ा करनेवाली इस तरह की एक बात कही गई है। इस राष्ट्रभाषा विषयक प्रस्ताव का बार-बार समीक्षण करके उसमें परिवर्तन करने के लिए अगर उचित लगे तो फिर से समीक्षण समितियाँ नियुक्त करने का जो अधिकार राष्ट्राध्यक्ष को दिया गया है, उसमें भी एक रहस्य ही है। स्थानाभाव के कारण उसका केवल उल्लेख करके इतना ही कहना ठीक होगा कि यह प्रस्ताव यद्यपि हिंदी के पक्ष की विजय है, फिर भी 'हिंदुस्थानी' पक्ष पराजय भी नहीं है। अगर 'संस्कृतनिष्ठ हिंदी' पक्ष ने इसके आगे भी प्रचार, आचार और प्रयत्नों का प्रबल आंदोलन दस गुने वेग से आगे नहीं बढ़ाया तो यद्यपि प्रस्ताव में उसका नाम 'हिंदी' रहा, फिर भी वह 'हिंदुस्थानी' बने बगैर नहीं रहेगी। पंद्रह वर्षों में अंग्रेजी को भी पदच्युत करना है, यह काम भी 'संस्कृतनिष्ठ हिंदी' पक्ष को ही करना पड़ेगा, इस बात को ध्यान में रखिए। इसका कभी विस्मरण न होने दीजिए कि श्री नेहरू, मौलाना आजाद आदि नेता अंग्रेजी को राज्य-व्यवहार में हर तरह से दीर्घायु चाहने वाले हैं।'

राज्यघटना को तुच्छ समझकर 'उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी' की चालबाजियाँ शुरू

हिंदी को राष्ट्रभाषा करने के प्रस्ताव की स्याही अभी तक सूखने नहीं पाई है कि 'हिंदुस्थानी' ही राष्ट्रभाषा है—इस घोषवाक्य का प्रचार करनेवाली एक अखिल भारतीय संस्था की स्थापना उस पक्ष ने की। आज उस संस्था में जिनके हाथों में राजसत्ता के सूत्र हैं, ऐसा उच्च स्तरीय मंत्रीगण और नृपांगणगत खलपुरुषों के समूह प्रांत-प्रांत में घुस गए हैं। निश्चित ही उनको मुसलमानी संस्थाओं का सहयोग प्राप्त होनेवाला है। कांग्रेस पक्ष के नेताओं के हाथों में होनेवाली अलग-अलग नामों की निधियों से इस संस्था को धन की भरपूर सहायता प्राप्त होनेवाली है। पाठशालाओं की पाठ्य-पुस्तकों में हिंदी के नाम पर उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी भाषा प्रयोग में लाई जाए। जिस प्रांत के शिक्षामंत्री उनके मत के या उनकी मुट्ठी में हैं, उन प्रांतों में वे ही पाठ्य-पुस्तकें पढ़ाई जाएँ और इस तरह आनेवाली पीढ़ी-की-पीढ़ी उर्दू शब्द बहुल 'हिंदुस्थानी' के साँचे में तैयार की जाए, इस तरह उनका यह षड्यंत्र प्रारंभ हुआ है। इसके मूल में होनेवाले विचारों की थोड़ी सी कल्पना कर सकें—इसलिए प्रमाण के रूप में कुछ उदाहरण दे रहे हैं। यह जानकारी वृत्तपत्रों के

वृत्तांतों से ली गई है। अतः उसमें न्यूनाधिक होने की संभावना है, पर अवांतर प्रमाणों से वस्तुस्थिति की यथावत् रूपरेखा तो मालूम होगी ही—यह निश्चित है।

मराठी के मध्यगृह में (माजघर—घर के अंदरूनी बीच के कमरे में) क्या चल रहा है?

हिंदुस्थानी का प्रचार करने के उद्‌देश्य से बता-जताकर निकाली हुई अखिल भारतीय संस्था की एक प्रतिकृति 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा' मराठी के मध्यगृह में ही स्थापित हुई है। इस सभा का अपना मत है कि राष्ट्रभाषा को हिंदी न कहते हुए 'हिंदुस्थानी' कहा जाए और राष्ट्रलिपि के स्थान पर देवनागरी के जैसे ही रोमन और अरबी लिपि का भी 'इस्तेमाल' किया जाए। मुंबई प्रांत के शिक्षा विभाग के वरिष्ठाधिकारी और मुख्यमंत्री माननीय बालासाहब खेर स्वयं 'हिंदुस्थानी कल्चर सोसाइटी, इलाहाबाद' संस्था के सदस्य हैं। इस संस्था का ध्येय भी यही है कि उर्दूमिश्रित हिंदुस्थानी राष्ट्रभाषा है और उर्दू लिपि तथा देवनागरी लिपि—दोनों राष्ट्रलिपियाँ हैं। मुंबई प्रांत के लिए जो पाठ्यक्रम समिति माननीय खेर की आज्ञानुवर्ती है, उसका निर्माण मुंबई के शिक्षा विभाग ने अभी-अभी किया है। उसके छह सदस्यों में से तीन सदस्य उपरोल्लिखित हिंदुस्थानीनिष्ठ 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा' के सदस्य हों और आज अनेक वर्षों तक हिंदी राष्ट्रभाषा का प्रचार महाराष्ट्र में अधिकृत रीति से करने के लिए भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन जैसी प्रमुख संस्था का अथवा महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा समिति के हिंदी प्रचार संघ पुणे के जैसे प्रांतिक संस्था का एक भी सदस्य उस पाठ्यक्रम समिति पर मुंबई सरकार के द्वारा नियुक्त न हो, इस तरह का अन्याय न होता तो ही आश्चर्य की बात होती! और मुंबई प्रांत में घटना द्वारा तय की हुई हिंदी राष्ट्रभाषा की शिक्षा विद्यार्थियों को देने के लिए जो अभ्यासक्रम और पाठ्य-पुस्तकें तय करने के लिए निर्माण की हुई समिति के अध्यक्ष के नाते किसकी नियुक्ति की? तो महामहोपाध्याय ह्.वा. पोतदारजी की! अभी-अभी पुणे में एक सभा में उन्होंने प्रकट रूप से बताया कि 'यद्यपि घटना में ऐसा कहा गया है कि हमारी राष्ट्रभाषा हिंदी है, तथापि उसका स्वरूप रहेगा हिंदुस्थानी ही और हमारी पाठ्यक्रम समिति का कार्य भी इसी नीति से चलने वाला है।'

यह वृत्तपत्र का वाक्य है। इसलिए यद्यपि हमारे मन में कोई शंका नहीं है, फिर भी कुछ लोगों को किंचित् आशा है कि यह भाषण मौलाना आजाद जैसे किसी नेता का होगा और किसी नटखट पत्रकार ने श्रीयुत् पोतदारजी के भाषण में उसे घुसेड़ दिया होगा। नहीं तो संस्कृतनिष्ठ हिंदी का इतना अनादर और उर्दूनिष्ठ हिंदी का इतना दुराग्रह पुणे के एक महाराष्ट्रीयन विद्वान् पंडित को ही नहीं,

महामहोपाध्याय महाशय के मन में हो, यह दुर्भाग्य की बात है; पर अगर यह भाषण सत्य होगा तो सरकारी समिति की तरफ से जो पाठ्य-पुस्तकें मुंबई प्रांत में हिंदी राष्ट्रभाषा के नाम पर नियुक्त की जाएँगी, वे बिहार सरकार ने उनके शिक्षामंत्री डॉ. सैयद अहमद से तैयार कराके पाठशालाओं में घुसेड़े हुए 'बादशाह राम', 'बेगम सीता' और 'उस्ताद वशिष्ठ' छाप की ही होगी, इसमें कोई शक नहीं है।

तथापि इन सभी बातों को मात किया है काका साहब कालेलकरजी ने! ये सद्गृहस्थ 'हिंदुस्थानी तालीम' आदि उर्दूनिष्ठ संस्थाओं के प्रमुख नेता हैं। पिछले महीने ही राजकोट की एक राष्ट्रीय पाठशाला की एक सभा में उन्होंने कहा कि 'यद्यपि घटना समिति ने 'हिंदी' भाषा पर राष्ट्रभाषा की मुहर लगाई है, फिर भी हम बापूजी (गांधी) के ही मार्ग पर चलेंगे। हिंदी नहीं, हिंदुस्थानी यानी उत्तर हिंद में जो उर्दू मिश्रित भाषा बोली जाती है, वह भाषा और वह 'हिंदुस्थानी' ही राष्ट्रभाषा है और उर्दू लिपि ही राष्ट्रलिपि है। बापू की दृष्टि यानी आर्षदर्शन! उनको यह साफ दिखाई देता था कि उर्दू लिपि और उसमें लिखी हुई उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी भाषा को स्वीकार करने से ही हिंद में संस्कृति का समन्वय सध जाता है।' इस वाक्य में गलती से दो-चार शब्द—हिंदी शब्द मुँह से निकलने की गलती को सुधारने के लिए उन्होंने तुरंत कहा, 'कौमी एकदिली है।' इतना ही नहीं, उनका मत है कि अगर हम उर्दू लिपि और उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी को राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि के नाते स्वीकार करेंगे तो उसके द्वारा हम 'संपूर्ण एशिया का संगठन कर सकते हैं।'

कुछ आया आपके ध्यान में? देखिए तो, 'संपूर्ण एशिया का संगठन।' उर्दू लिपि और उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी भाषा अगर हमने स्वीकार की तो कर सकते हैं। है न बड़ी बात? निःसंशय बापूजी के आर्षदर्शन ने अपना वरद्हस्त कालेलकर महाशयजी के सिर पर कभी-न-कभी रखा ही होगा।

परंतु जिन पर इस तरह का प्रसंग कभी आया ही नहीं, उनको इस तरह के विधानों का रहस्य समझ में नहीं आएगा, यह बुद्धि के लिए उचित ही है, क्योंकि आज के भूगोल के अनुसार एशिया के एक छोर पर मूल अरबी भाषा और लिपि को ही दंडनीय मानकर जिसने हिब्रू भाषा और लिपि राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्रीय लिपि तय की, वह इजराइल राष्ट्र है। वहाँ से सीधे जापान तक रशियन भाषा ही सभी कम्युनिस्टों की विश्वभाषा बनाने का बीड़ा उठानेवाले सोवियत रूस ने एशिया का सारा उत्तरी हिस्सा प्राप्त किया है। उसके आगे जापान और नीचे चीनी भाषाभाषी विस्तीर्ण चीन देश फैला हुआ है। इस तरह इस तीन बटा चार (३/४) एशिया खंड में उसकी लखनऊ के बाजार में बोली जानेवाली 'हिंदुस्थानी' बोली और उर्दू लिपि किस पेड़ का पत्ता है? यह भी किसी को ज्ञात नहीं है। बाकी बचे हुए बित्ते भर

भारत के बाहर के एशिया में अफगान, इरान, अरबस्थान और पाकिस्तान—ये बित्ते जैसे मुसलिम देश बाकी बचते हैं। उनमें भी एक पाकिस्तान छोड़कर बाकी लोगों को 'हिंदुस्थानी' उर्दू भाषा में लिखी हुई होने पर भी समझ में आना असंभव है। अत: संगठन को छोड़ दीजिए, पर विचार-विनिमय के उपयुक्त जितनी भी सारे एशिया में उर्दूनिष्ठ हिंदी अगर कोई समझ सकेगा तो वह बहुधा पाकिस्तान ही एकमात्र देश होगा। उस पाकिस्तान को ही बहुधा कालेलकर महाशय संबंध एशिया समझते होंगे, तभी ही 'उर्दूभाषा और उर्दूलिपि को स्वीकार करने से संपूर्ण एशिया का संगठन हो सकता है।' कालेलकरजी के इस वाक्य का क्या कुछ अन्वय समझ सकते हैं? उसका अर्थ समझने की अपेक्षा किसी के मन में नहीं है किं बहुना जिन संप्रदाय को 'खिलाफत' यानी 'स्वराज्य' यह राजनीतिक समीकरण स्वीकार हुआ, उनके ही आज 'पाकिस्तान यानी एशिया' में यह भौगोलिक समीकरण समझ में आ जाएगा और उसमें अधिक अनर्थक विक्षिप्तता कुछ भी नहीं है।

और एक कौतुक

तथापि जिनको 'हिंदू' के उच्चारण से ही बिच्छू के डसने जैसी वेदनाएँ होती हैं, स्वेदश को 'इंडिया' कहने से जिनकी जग प्रतिष्ठा बढ़ जाती है, स्वदेश को 'हिंदुस्थान' कहना जिनको अशिष्टता या कमीनापन लगता है, उन्हीं श्री नेहरूजी से काका कालेलकरजी तक निधर्मी संप्रदायवाले लोग आज राष्ट्रभाषा के प्रश्न के लिए भी क्यों नहीं 'हमारी राष्ट्रभाषा उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी, हिंदुस्थानी, हिंदुस्थानी' ऐसा जोर-जोर से चिल्लाते हैं। वह देखकर हमें बहुत कुछ कौतुक हुआ, कुछ धन्यता हुई और किंचित् आशा भी हुई। वाल्मीकि की कहानी तो आपने सुनी होगी। वह महान् पुरुष 'मरा, मरा, मरा, मरा' उलटा उच्चारण करते-करते 'राम, राम' उच्चारण करने लगा और उस अनजानी पुण्याई से उनका हृदय-परिवर्तन हुआ। वैसे ही कदाचित् उर्दूनिष्ठ भाषा के मिस से 'हिंदुस्थानी, हिंदुस्थानी' चिल्लाते-चिल्लाते उनके मुख से होनेवाले हिंदू, हिंदुस्थान—इस पवित्र नामघोष के उच्चारण से प्राप्त अनजानी पुण्याई से ये मार्ग भूले-भटके हमारे देशभक्त ही हिंदू-द्वेष के पाप से मुक्त होने का यह योगायोग तो नहीं है? कवि वामन पंडित ने कहा ही है—

न कलता पद अग्नीवरी पडे
न करि दाह असे न कधी घडे
अजित नाम ध्या भलत्या मिसे
सकल पातक भस्म करीतसे।

(अग्नि पर अनजाने भी क्यों न पैर पड़े, वह जलेगा ही, अनजान से पाँव पड़ा है, इसलिए जलेगा नहीं—ऐसे नहीं होगा। वैसे ही उस अजित भगवान् का नाम किसी भी कारण से क्यों न लिया जाए, वह सभी पापों को भस्म ही करेगा।)

उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी के वेग की रामबाण औषधि-भाषाशुद्धि

उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी को ही राष्ट्रभाषा और उर्दू को जोड़ या उपराष्ट्रलिपि करने के लिए जिन कूट प्रयत्नों का उल्लेख ऊपर किया गया है, वह केवल दिग्दर्शन के लिए है। इससे भी बहुत अधिक प्रमाण पर हिंदुस्थान भर में इस पक्ष के संगठित प्रयत्न चल रहे हैं। उनको आज के सत्ताधारियों में से अनेक का समर्थन प्राप्त है और अपने हाथों में होनेवाले सत्ता-केंद्रों के बल पर वे पाठशाला विभागों से उर्दू का प्रचार कर रहे हैं। ऐसे समय 'राष्ट्रभाषा हिंदी ही होनी चाहिए'—इस तरह की आत्मवंचक निश्चिति केवल घटना के प्रस्ताव के आधार पर अगर मानकर संस्कृतनिष्ठ हिंदी के समर्थक केवल चुपचाप न बैठें। वे भी अपनी प्रबल संघटना करें और उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी के प्रचार एवं प्रयत्न को समय पर ही नष्ट करने का प्रयत्न करें। वह नष्ट करने का परिणामकारक साधन है भाषाशुद्धि। भाषाशुद्धि का आंदोलन अखिल भारतीय स्तर पर प्रबलता से बढ़ना चाहिए। तभी संस्कृतनिष्ठ हिंदी वस्तुत: राष्ट्रभाषा हो सकती है। यह किस तरह से हो सकता है—इस बात का विवेचन आगे करेंगे।

यहाँ तक हमने बताया ही है कि 'उर्दूनिष्ठ हिंदुस्थानी' राष्ट्रभाषा और उर्दूलिपि को जोड़ राष्ट्रलिपि या उपराष्ट्रलिपि करने के लिए एक प्रबल गुट दृढ़ निश्चय से प्रयत्नशील है।

इस गुट को अगर छोड़ दिया तो 'संस्कृतनिष्ठ'—व्यावर्तक विशेषण से डरनेवाला और अपने को मध्यम कहलानेवाला एक दूसरा गुट भी है। उसको यह मान्य है कि हिंदी ही राष्ट्रभाषा और देवनागरी ही राष्ट्रलिपि होनी चाहिए; परंतु हिंदी यानी किस प्रकार की हिंदी, इसके बारे में उनकी कल्पना में काफी गड़बड़ी है। उदाहरणार्थ—राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने एक बार अपने भाषण में कहा कि 'जो जनसामान्य में बोली, लिखी जाती है, वह हिंद की राष्ट्रभाषा है।' परंतु जन सामान्य में यानी कौन से जनसामान्य में? लखनऊ के जनसामान्यों में बोली जानेवाली हिंदी में अरबी, पर्शियन शब्द पचास प्रतिशत तक पाए जाते हैं। वहाँ की लिखी जानेवाली हिंदी यानी करीबन देवनागरी में लिखी हुई उर्दू ही है। विवाह के लिए भी सर्वसाधारण लोग 'शादी' कहते हैं। और परमेश्वर को 'हे मालिक' या 'या खुदा!' उलटे बनारस के आस-पास बोली-लिखी जानेवाली हिंदी में संस्कृत

शब्दों का प्रमाण पिचहत्तर प्रतिशत है। वहीं हिंदी महाराष्ट्र, बंगाल आदि प्रांतों में केवल सुनकर भी बहुधा समझी जा सकती है। दूसरा उदाहरण मुंबई के गृहमंत्री श्री मोरारजी भाई देसाईजी हैं। उन्होंने अभी-अभी कहा था, 'अहो, संस्कृत शब्द हिंदी में लिये जाएँ यानी क्या? लेने ही चाहिए, परंतु भाषा में पहले से रूढ़ उर्दू और अंग्रेजी विदेशी शब्द बलपूर्वक निकाल देने चाहिए, इस मत का मैं विरोध करता हूँ।'

रूढ़ विदेशी शब्दों की मालिका

परंतु आज रूढ़ विदेशी शब्द यानी कौन से शब्द और कितने शब्द? हिंदी भाषिक प्रांतों के किसी भी नगर में पाँव रखिए। राजमार्ग के दोनों ओर 'क्लॉथ स्टोर्स', 'जनरल मर्चेंट्स', 'डेयरी', 'राजपाल एंड संस बुकसेलर', 'कृष्णमॅशंन' 'आई स्पेशलिस्ट', 'हेयर कटिंग सैलून' 'श्रीराम वाशिंग कंपनी'—इस तरह के नाम फलकों की पंक्तियों पर पंक्तियाँ दिखाई देंगी। 'कचेरी' में पाँव रखिए, 'कायदा, मामलेदार, फौजदार, हवालाल, जामीन, हुकुमनामा, वकील, फरियाद इत्यादि उर्दू शब्दों का एक ही ऊधम मचा हुआ दिखाई देगा।' कोर्ट में पाँव रखिए, 'लॉ पिनल-कोड, पिटीशन, अपीलेट, सेक्शन, जजमेंट, अपील, बाथरूम' आदि अंग्रेजी शब्दों की वर्षा होने लगेगी। घर में जाइए; पहले-पहल कमरे पर 'आउट', 'इन' के फलक, परिवार में 'मिसेज, मिस्टर, फादर, वालिद, औरत, वाइफ, मैरिज, सेरेमनी आदि शब्द नर-नारियों के मुँह में प्रचलित संभाषण में दो हिंदी शब्दों के बीच में से तीन उर्दू व अंग्रेजी शब्द खचाखच भरे हुए हैं—ऐसी हालत है। वहाँ विज्ञान की परिभाषा की क्या बात कहें?'

अंग्रेजी शब्दों के बिना विचार व्यक्त करना ही जहाँ नामुमकिन होता है, आज वे वैज्ञानिक विदेशी शब्द इतने रूढ़ हो गए हैं, तब 'आज रूढ़ हुए विदेशी शब्द मात्र राष्ट्रीय भाषा से बलपूर्वक न निकाल दें' कहना यानी अठारह अनाज के मिश्रण से बनाए हुए इस पदार्थ के बाजारू और भ्रष्ट हिंदी स्वरूप को ही राष्ट्रभाषा के प्रौढ़ और पवित्र पीठ पर स्थापित करें, कहने के जैसे होगा। इसलिए 'संस्कृतनिष्ठ' विशेषण से चौंकनेवाले इस मध्यम पक्ष के उस राष्ट्रभाषा के स्वरूप के बारे में होनेवाली व्याख्या भी ढीली और अस्त-व्यस्त है, तथापि हिंदी देवनागरी के स्वीकार के बारे में उनका मूलत: विरोध न होने के कारण 'संस्कृतनिष्ठ' हिंदी यानी क्या? इस बात का अधिक विश्लेषण करके बताया तो उनमें से अधिकतर समझ जाएँगे और 'संस्कृतनिष्ठ हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा होगी,' इस मत की तरफ झुकने की उत्कट संभावना है। यह विश्लेषण हम आगे दे रहे हैं।

उर्दू और हिंदी में होनेवाला मूलभूत प्रभेद

उर्दू और हिंदी में सच्चा भेद क्या है? यह बात स्पष्टता से कोई नहीं बताता। अत: बहुतांश लोगों को तो यही समझ में नहीं आता कि इन दोनों में से एक को चुनने के लिए इतना वाद-विवाद क्यों किया जाए? मराठी, तमिल या हिंदी भाषा में मूलत: उतना भेद नहीं है, परंतु उर्दू और हिंदी में मूलत: प्रभेद है। यद्यपि उन दोनों भाषाओं के व्याकरण में विशेष भेद नहीं है, फिर भी वे दोनों भाषाएँ भिन्न-भिन्न संस्कृति की प्रतीक हैं। उर्दू भाषा, जिसे 'हिंदुस्थानी' छद्मी नाम दिया गया है—मुसलिम संस्कृति से जनमी हुई है। अत: उस पर अरबी कुरान-पुराणों की, संदर्भों की, संकेतों की, मनोवृत्ति की गहरी छाया पड़ी हुई और वह स्वाभाविक भी है। उसमें अरबी, पर्शियन शब्दों की बहुलता होगी ही। उर्दू की पिंड ही मुसलिम-अरबी है, इससे हमें वह परायी लगती है। उसको हम अपनी हिंदुस्थान की, हिंदू राष्ट्र की राष्ट्रभाषा के रूप में कभी नहीं मानेंगे। उलटे हिंदी भाषा हिंदू संस्कृति की कोख से जनमी भाषा है, संस्कृत के अमृतोपम दूध पर उसका पालन-पोषण हुआ है। उसका पिंड, प्रवृत्तियाँ, संदर्भ, संकेत, कोश, काया—सभी हमारे भारतीय जीवन से जुड़े हुए हैं, समरस हुआ है। इसलिए हिंदी हमें अपनी स्वकीय भाषा लगती है। हम अत्यंत आनंद और हर्ष से उसे अपने हिंदुस्थान की राष्ट्रभाषा मान लेंगे। यह स्पष्ट रूप से बताना हमारा कर्तव्य है। इसलिए बता दिया है।

भाषाशुद्धि के सूत्र

ऊपर के परिच्छेद में हमने उर्दू और हिंदी में होनेवाले प्रभेद बताए हैं। वे प्रभेद समझ लेने पर आप-ही-आप यह समझ में आ जाता है कि राष्ट्रभाषा हिंदी संस्कृतनिष्ठ हिंदी क्यों होनी चाहिए और संस्कृतनिष्ठ का साधन है भाषाशुद्धि के मार्ग का अवलंबन करना।

सन् १९२४ में जब हमने भाषाशुद्धि का आंदोलन प्रारंभ किया था, तब 'भाषाशुद्धि' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की थी। उसके प्रथम पृष्ठ पर ही भाषाशुद्धि के मुख्य सूत्र स्पष्ट रूप से छापे गए थे। तब से उनकी यथेच्छ चर्चा महाराष्ट्र में अनेक बार हुई है और तब से हम बार-बार यह कह रहे हैं कि जब कभी हिंदी अधिकृत रूप से हमारी राष्ट्रभाषा घोषित की जाएगी, तब उसका गठन, उसकी रचना-शैली और विकास इन्हीं सूत्रों के अनुसार करने के लिए इस भाषाशुद्धि आंदोलन को अखिल भारतीय स्तर पर चलाना होगा। और वह चिरप्रतीक्षित समय आज आ गया है। अत: अब राज्यघटना के अनुसार ही अधिकृत राष्ट्रभाषा के रूप में तय हुई हिंदी के लिए भाषाशुद्धि के मुख्य सूत्र निम्नलिखित हैं—

१. गीर्वाण भाषा का सभी संस्कृत शब्द संभार और संस्कृतनिष्ठ तमिल, तेलुगु, कन्नड़ भाषाओं से कश्मीरी, असमी आदि जो हमारी प्रांतिक भाषा भगिनियाँ हैं, उन सबके मूल प्राकृत शब्द हमारी राष्ट्रभाषा के शब्दकोश का मूलधन हैं। वह स्वकीय शब्दों की पूँजी है।
२. जगत् की किसी भी भाषा की अपेक्षा हमारी संस्कृत भाषा की सृजनशक्ति इतनी सशक्त, इतनी अपरंपार है और उपसर्ग, प्रत्यय, संधि, समास, धातुसंपत्ति आदि साधन उसमें इतने विपुल हैं कि अर्वाचीन विज्ञान की विस्तृत परिभाषा सांगोपांग व्यक्त करनेवाले नए और सुविधाजनक सरल शब्द संस्कृत भाषा से सहज बनाए जा सकते हैं। अत: अध्ययन विज्ञान का अनुवाद करते समय विदेशी भाषा के शब्दों के लिए नए-नए संस्कृतोत्पन्न शब्द तैयार करके वैज्ञानिक अभिव्यक्ति करनी चाहिए। नए वैज्ञानिक शब्द संस्कृत भाषा से ही निर्मित किए जाएँ।
३. जगत् की किसी भी विदेशी भाषा में अगर अत्यंत अच्छी शैली, सुंदर वाक्प्रचार, सुगठित पद्धति, सरस या चटपटी विशेषताएँ दिखाई दें तो उसे भी आत्मसात् करके राष्ट्रभाषा में उनका अनुसरण अवश्य करना चाहिए।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि अनावश्यक एक भी उर्दू या अंग्रेजी आदि विदेशी शब्द, हिंदी में प्रचलित होते हुए भी, न रहने दिया जाए, नया विदेशी शब्द भी न आने दें; परंतु आवश्यक विदेशी शब्द प्रयुक्त करने के लिए कोई अवरोध नहीं है, वे शब्द चाहे पुराने हों या नए। आवश्यक शब्द कौन से और अनावश्यक शब्द कौन से—उनका परीक्षण इस लेख के प्रारंभ में दिए हुए सूत्रों के अनुसार किया जाए। आशा है कि मध्यम पक्ष का भी समाधान इन लक्षणों से हो जाएगा।

भाषाशुद्धि के ऊपर बताएं हुए नियमों के अनुसार जिसकी रचना हुई है, उसको हम 'संस्कृतनिष्ठ' हिंदी कहते हैं। हमारे भारत की राष्ट्र के रूप में वही भाषा शोभायमान होगी।

प्रयोगसिद्ध प्रमाण

भाषाशुद्धि पर आक्षेप-प्रत्याक्षेपों का तूफान महाराष्ट्र में प्रथम दस वर्षों में ही आ गया था, पर अब मराठी साहित्य में वह एक चिरस्थायी और सहज प्रवृत्ति बन गई है। हिंदी में यह आंदोलन इतनी तीव्रता से अभी ही शुरू हुआ है। अत: स्वाभाविक ही है। आज महाराष्ट्र में नष्ट हुए प्राथमिक आक्षेप हिंदी प्रांत में नए रूप

से उठ रहे हैं और वाद-विवाद निर्मित हुए हैं। 'संस्कृतनिष्ठता' अतिरेक है। संस्कृत परिभाषा बोझिल होती है, उससे भाषा क्लिष्ट होती है, संस्कृत के नए शब्द प्रचलित करना कठिन काम है, विदेशी भाषाओं को यथार्थ शब्द ही नहीं मिलते इत्यादि शंका-कुशंकाओं की लहर वहाँ जोरों पर है। यह लेख हिंदी में अनुवादित होने की संभावना होने के कारण इन आक्षेपों के बारे में हम इतना ही कह सकते हैं कि जिन आक्षेपकों को इस प्रकार का डर लगता हो, वे भाषाशुद्धि का मराठी भाषा पर जो सुपरिणाम हुआ है, उसका प्रयोगसिद्ध प्रमाण आगे दे रहे हैं, उनको देखने पर आक्षेपकों की भ्रांति दूर भागेगी। हमारे अपने अनुभव भी अगर देखें तो गत बीस वर्षों में भाषाशुद्धि की दृष्टि से चार-पाँच सौ स्वकीय शब्द हमने मराठी में नए रूप में निर्माण किए हैं और पुराने शब्दों का पुनः प्रचार किया है। इसका अर्थ यह हुआ कि उतने ही उर्दू, अंग्रेजी विदेशी शब्दों को निकाल दिया है। वे नए संस्कृतनिष्ठ शब्द बहुतांश मराठी में आज इतने प्रचलित हुए हैं कि वे शब्द हेतुतः गत दस वर्षों में नए रूप से हमने प्रचलन में लाए हैं, यह बात आगेवाली पीढ़ी को सच नहीं लगेगा। इसका थोक प्रमाण इतना ही दे सकते हैं कि सन् १९२४ के पहले के मराठी समाचार-पत्र और मराठी साहित्य को जरा उलटकर देख लीजिए। उस साहित्य में इन शब्दों में से जो शब्द हमने प्रचलित किए हैं—बहुतांश स्वकीय शब्द बिलकुल नहीं मिलेंगे और जो थोड़े से पाए जाएँगे, वे अपवाद-स्वरूप हैं। उन सैकड़ों शब्दों में से कुछ शब्द नमूने के तौर पर हम नीचे दे रहे हैं?

सौ-सौ वर्षों से मराठी भाषा में रूढ़ अनावश्यक शब्द नामशेष करके दस वर्षों में ये स्वकीय शब्द रूढ़ हुए हैं या नहीं? दृढ़ निश्चय चाहिए। इतना ही मराठी के इस प्रयोगसिद्ध प्रमाण से प्रोत्साहित होकर व्यर्थ के आक्षेपों को न उठाकर हमारे हिंदीभाषिक बंधु भाषाशुद्धि के आंदोलन को स्वदेशी आंदोलन के समान तूफानी वेग से हिंदी में फैला दें। उर्दू और अंग्रेजी की मजबूत पकड़ से हिंदी को छुड़ाकर उसको पूर्ण संस्कृतनिष्ठ और संपन्न बनाएँ। वैसे देखा जाए तो स्वामी दयानंदजी के काल से हिंदी लेखकों ने दृढ़ निश्चय से संस्कृतनिष्ठ हिंदी में लिखा है, परंतु वे प्रयत्न वैयक्तिक ही थे। अब संस्कृतनिष्ठता का सांधिक और अखिल भारतीय जागरण इतनी विशालता से करना चाहिए कि हिंदी यानी 'हिंदुस्थानी' के खिलाफ विद्रोह का झंडा 'न भूतो न भविष्यति' फहराया जाए।

डॉ. रघुवीर

अब हिंदी को संस्कृतनिष्ठ राष्ट्रभाषा का रूप देकर उसे समर्थ, संपन्न और सर्वांगपूर्ण बनाने का कार्य करने के लिए डॉ. रघुवीर के जैसे कार्यकर्ता आगे आ रहे

हैं। एक दृष्टि से यह भाषाशुद्धि के आंदोलन की सफलता ही है। संस्कृतनिष्ठ परिभाषा निर्माण करने के लिए जो गुण आवश्यक होते हैं, वे सभी गुण डॉ. रघुवीर में उत्कटता से विद्यमान हैं। डॉ. रघुवीरजी ने राज्यघटना का भी अनुवाद हिंदी में किया है। उन्होंने दैनंदिन राज्य-व्यवहार के लिए 'आंग्ल भारतीय प्रशासन शब्दकोश' का भी निर्माण किया है। उसी तरह महाराष्ट्र के वाई गाँव के निवासी तर्कतीर्थ लक्ष्मणशास्त्री जोशी ने राज्यघटना का अनुवाद संस्कृत में किया है। ये दोनों ग्रंथ भाषाशुद्धि की दृष्टि से आज बहुमूल्य हैं। उनका समालोचन करने के लिए एक स्वतंत्र लेख कभी लिखेंगे। अभी इतना ही कहना ठीक होगा कि अब हिंदी, मराठी, बँगला आदि सभी संस्कृतनिष्ठ संपादक, लेखक और भाषिकों को चाहिए कि विदेशी उर्दू, अंग्रेजी आदि शब्दों के लिए इन दो महापंडितों ने जिन संस्कृतनिष्ठ शब्दों की योजना की है, वे शब्द कंठस्थ करके अपने दैनिक लेखन और संभाषण में उनका प्रयोग करने की प्रतिज्ञा करें और अत्यंत दृढ़ निश्चय से उसको आचरण में लाएँ। इस तरह के दस सहस्र प्रचारक अगर हिंदुस्थान में आज ही निर्माण हो जाएँ तो देख लेंगे कि आगे के दस वर्षों में संस्कृतनिष्ठ हिंदी ही कैसे राष्ट्रभाषा नहीं होती।

टिप्पणियाँ : १. यह लेख 'केसरी' समाचार-पत्र में ७ और १४, जनवरी, १९५१ को प्रकाशित हुआ था।

२. मूल लेख में 'नमूने' के लिए जो शब्द दिए हैं, वे सभी और अब अन्य शब्द एकत्र करके इस पुस्तक के अंत में जो 'भाषाशुद्धि शब्दकोश' दिया है, उसमें एकत्र कर प्रकाशित किए हैं। पाठकगण कृपया वे शब्द अवश्य देखें।

□

प्राध्यापक क्षीरसागर और भाषाशुद्धि

बड़ौदा में गत जनवरी में चौहदवें वाङ्मय परिषद् का अधिवेशन संपन्न हुआ। अधिवेशन के अध्यक्ष प्रा. श्री के. क्षीरसागर थे। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने भाषाशुद्धि पर बहुत कड़ी आलोचना की। उसके बारे में हमारा क्या मत है, यह जानने की इच्छा अनेक लोगों ने और स्वयं क्षीरसागर महाशय ने भी खुले मन से प्रकट की। अत: इस लेख में हम अपना मत लोगों के सामने रख रहे हैं।

प्रा. क्षीरसागर महाराष्ट्र के मराठी विषय के ख्यातनाम प्राध्यापक हैं। मराठी में 'टीकाकार' शब्द का अर्थ आजकल सामान्यत: 'दोष-दिग्दर्शक' ही लिया जाता है। प्रा. क्षीरसागर इस अर्थ के टीकाकार नहीं हैं, तो किसी भी विषय का मार्मिक विलक्षण, दोषों के साथ-साथ गुणों का भी यथावत परामर्श करनेवाले संभावित समालोचक हैं। जैसे वे स्वयं ही बताते हैं, उसके अनुसार उनका प्रस्तुत भाषण मराठी भाषा और साहित्य के बारे में उनके मन में होनेवाली आस्था का द्योतक है।

इस भाषण में उन्होंने आज के मराठी साहित्य के पहलुओं के बारे में उद्बोधक चर्चा की है। इस क्षेत्र में घटित होनेवाले अनेक प्रभावों की टिप्पणी परिश्रम से तैयार करके उनको टालने के उपाय भी—जैसे उनको सूझे—बताए हैं। उनका भाषण अनेक मुद्दों की दृष्टि से मननीय है, तथापि कालाभाव के कारण और स्थानाभाव के कारण उनके भाषण के भाषाशुद्धि के विवेचन के ही हिस्से का परामर्श इस लेख में हमें लेना पड़ रहा है, इसके बारे में हमें भी खेद है। फिर इस विषय पर उन्होंने वैयक्तिक लेख लिखा होता तो बात और थी, परंतु यह भाषण उन्होंने एक वाङ्मय परिषद् के अध्यक्षीय आसन से दिया है, इसलिए वह थोड़ा महत्त्वपूर्ण हो गया है, इसीलिए हम उसकी एकदम उपेक्षा नहीं कर सकते।

प्रा. क्षीरसागर भाषाशुद्धि के पहले से ही कट्टर विरोधक हैं। प्रारंभ में ऐसा स्वाभाविक ही था। सन् १९२४ में जब हमने यह आंदोलन संगठित रूप से प्रारंभ किया, उस समय के साहित्यरथी समझे जानेवाले बहुतांश गृहस्थों ने भाषाशुद्धि के

बारे में विरोधी की भूमिका ही निभाई थी। साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष पद जिन्होंने कभी किसी समय भूषित किया था, ऐसे दो-तीन प्रख्यात साहित्यिकों के उदाहरण प्रमाण के रूप में दे दिए तो भी काफी होगा। कै.प्रा. माधवराव पटवर्धनजी ने तो उस समय भाषाशुद्धि विरोधकों का नेतृत्व स्वीकार किया था, परंतु हमारे लेख 'केसरी' वृत्तपत्र में सन् १९२४ में प्रकाशित होने के बाद वे भाषाशुद्धि के इतने एकनिष्ठ समर्थक बन गए कि उन्होंने उर्दू शब्दों के बहिष्कार में हमें भी पीछे छोड़ दिया। उन्होंने 'भाषाशुद्धि विवेक' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है—'(भाषाशुद्धि का महत्त्व) सावरकरजी की लेखमाला पर विचार करते समय प्रथम बार मेरी समझ में आया' (पृष्ठ २)। उस समय के दूसरे साहित्यरथी थे कै. श्रीपाद क. कोल्हटकर। उनके विरोधी लेखों का उत्तर हमने १६ जून, १९२७ के 'श्रद्धानंद' के अंक में दिया था। उस उत्तर को पढ़ने के बाद उन्होंने प्रकट रूप से यह प्रकाशित किया था कि 'अनावश्यक अंग्रेजी शब्दों के समान ही उर्दू शब्दों का भी बहिष्कार करना चाहिए, मैंने यह भाषाशुद्धि वाद का तत्त्व व्यवहार में लाने का निश्चय किया है।'

साहित्य सम्राट् तात्याराव केलकरजी की बात भी इसी तरह हुई। ऊपर निर्देशित पुस्तक में प्रा. पटवर्धनजी लिखते हैं, 'श्री नरसोपंत केलकर भी (भाषाशुद्धि के) मूलतः विरोधी थे, पर सन् १९३९ के आस-पास उनका विरोध समाप्त हो गया।' इतने आंदोलन के बाद महाराष्ट्र के इन अग्रसर लेखकों की भाषाशुद्धि के तत्त्वों को मान्यता प्राप्त हुई। श्री केलकरजी ने इतने वर्षों का अपना अभ्यास छोड़कर अनावश्यक (उर्दू और अंग्रेजी) शब्द यथाशक्ति उपयोग में न लाने के नए अभ्यास में अपने को लगा देने का निश्चय इस आयु में षष्टद्विपूर्ति के बाद किया है, यह उनकी तत्त्वनिष्ठा और प्रगतिशीलता का द्योतक है। (पृष्ठ ५ से ७ तक)

इस तरह अनेक साहित्यरथियों का विरोध शांत होता गया और भाषाशुद्धि मंडल के सक्रिय आंदोलन से मराठी पर उसका प्रभाव अधिकाधिक होता गया। तथापि उस समय उपसाहित्यिक के रूप में जिनकी गिनती की जाती थी, उन प्रा. क्षीरसागरजी का विरोध कम न होकर, बढ़ता ही गया। अपने विरोध की अभिव्यक्ति करने का उनका स्वातंत्र्य हमें भी मान्य है, परंतु इस प्रस्तुत भाषण में उन्होंने इस विषय के साथ संबंधित युक्तियुक्त आक्षेप कहीं भी नहीं लगाए हैं। आज के मराठी लेखन में, मुद्रण में, शिक्षा में, नभोवाणी के कार्यक्रमों में, भाषणों में उनको जो अनेक दोष दिखाई दिए, उनकी मिश्रित चर्चा की। यह सब करते-करते बीच-बीच में यों ही वे भाषाशुद्धि का नाम इस तरह उल्लेखित करते गए, मानो इन सभी दोषों का मूल कारण भाषाशुद्धि ही है। उनका यह धोरण सरल, सुसंगत और योग्य नहीं है। हमने ऊपर लिखा है कि अन्य विषयों के बारे में वे समलोचक की अच्छी

भूमिका निभाते हैं, परंतु भाषाशुद्धि के विषय में उनकी यह भूमिका डाँवाँडोल हो जाती है। इतना ही नहीं, वे टीकाकार के ही नहीं, एकदम वाहियात टीकाकार के निचले स्तर पर आ जाते हैं। अगर उन्होंने भाषाशुद्धि के अपने विवेचन या आक्षेप अलग और एकत्र दिए होते तो उनका उत्तर देना आसान हो जाता। भाषाशुद्धि के मूल सूत्र हम सन् १९२५ से बार-बार बताते आए हैं। फिर भी उसके बारे में कुछ न बोलते हुए 'भाषाशुद्धि की और राष्ट्रभाषा की अशास्त्रीय कल्पना' इस आक्षेप से 'इसी में मराठी का मरण है' इस आक्षेप तक उन्होंने केवल अभद्र विशेषणों की ही वर्षा की है। उसकी अपेक्षा भाषाशुद्धि के मूल सूत्र देकर वे कैसे अशास्त्रीय हैं—यह बताया होता तो उनकी चर्चा शास्त्रीय युक्तिवाद के अनुसार हो जाती। तथापि हम वही-वही कहने से उकता गए हैं। फिर भी प्रा. क्षीरसागरजी पुराने आक्षेप ही नए रूप में सामने लाए हैं तो इससे ऐसा लगता है कि साहित्यिकों की नई पीढ़ी को वे मूल रूप या उनपर लिये गए आक्षेपों के उत्तर मालूम नहीं हैं, और वे मालूम न होने से ये आक्षेप सत्य लगना संभव है। अतः हम वे मूल सूत्र साहित्यिकों के सामने फिर रखते हैं। उन कसौटियों पर उनका परीक्षण होते ही क्षीरसागरजी के आक्षेप आप-ही-आप झूठे पड़ जाएँगे। प्रचार की आत्मा ही पुनरुक्ति है तो भाषाशुद्धि का मर्म नई पीढ़ी को बताना हमारा अपरिहार्य कर्तव्य है। अतः हम भाषाशुद्धि के मूल सूत्र फिर से संक्षेप में बता देते हैं।

भाषाशुद्धि के मूलसूत्र

१. गीर्वाण भाषा के सभी संस्कृत शब्द-भंडार और संस्कृतनिष्ठ तमिल, तेलुगु से असमी, कश्मीरी, गौड़, भिल्ल जाति की बोलियों तक, जो हमारी प्रांतीय भाषा-भागिनियाँ हैं, उन सभी भाषाओं के मूल प्रांतिक शब्द हमारी राष्ट्रभाषा के शब्दकोश के मूलधन और स्वकीय शब्दों की पूँजी हैं।

२. अपने राष्ट्रीय शब्द-भंडार में जिन वस्तुओं के, विचारों के वाचक शब्द होते हैं या हैं या निर्माण कर सकते हैं, उस अर्थ के उर्दू, अंग्रेजी आदि विदेशी शब्द उपयोग में न लाए जाएँ। अगर वैसे विदेशी शब्द हमारी ढिलाई के कारण भाषा में घुस गए हों, तो उनको ढूँढ़कर निकालना चाहिए। अद्यतन विज्ञान की परिभाषा नए-नए संस्कृत प्राकृतोत्पन्न शब्द निर्माण करके अभिव्यक्त की जाए।

३. जो विदेशी वस्तुएँ हमारे यहाँ नहीं थीं या नहीं हैं, इसी कारण जिनको अपने स्वकीय पुराने शब्द नहीं मिलते और जिनके लिए विदेशी शब्दों के जैसे सरल स्वकीय शब्द निर्माण करना मुश्किल है, वैसे विदेशी शब्द अपनी भाषा में

जैसे-के-वैसे लेने में कोई आपत्ति नहीं है—जैसे बूट, कोट, जैकेट, गुलाब, जलेबी, बुमरंग, टेबल, टेनिस। तथापि इस तरह की नई वस्तुएँ अपने यहाँ आते ही अगर कोई उनके लिए स्वकीय नाम देकर प्रचलित करके दिखाएगा तो वह अत्युत्तम होगा।

४. उसी तरह जगत् की किसी भी विदेशी भाषा में कोई शैली या प्रयोग अथवा रूप सरस और चटपटा लगा तो वह भी आत्मसात् करने में कोई प्रतिबंध नहीं है।

शुद्ध झूठा अभियोग

इन मूल सूत्रों पर आधारित भाषाशुद्धि के आंदोलन पर क्या एक भी तात्त्विक विरोध प्रश्न प्रा. क्षीरसागरजी ने किया है? मराठी भाषा पर, उसपर हुए व्यावहारिक परिणामों के बारे में भी उस विषय से सुसंगत और तत्त्वबद्ध चर्चा क्या उनके भाषण के एकाध दूसरे परिच्छेद में है? जहाँ-जहाँ उन्होंने वैसी चर्चा करने का दिखावा किया है, वहाँ-वहाँ भाषाशुद्धि को जो कहना नहीं है, वह उसका कहना है इस तरह का विपर्यास करके, जो वे ले नहीं सकते, ऐसे प्रतिवाद उन्होंने किए हैं। अपने भाषण के प्रथम तीन-चार पृष्ठों में ही उन्होंने ऐसे अनामिक उदाहरण दिए हैं कि किसी वृत्तपत्र के किसी सोलापुर वार्त्ताहर ने 'उर्वरित' शब्द गलत अर्थ में उपयोग किया है, किसी साप्ताहिक में 'अंतर्मुख' शब्द के स्थान पर 'अंतर्भूत जीवन' शब्द का प्रयोग किया है। इस तरह के उदाहरण देकर कहा है, 'मेरी शिकायत अर्थशून्य और बोझिल शब्दों के प्रयोग की बौद्धिक विकृति के बारे में है। गत पच्चीस वर्षों में यानी भाषाशुद्धि के आग्रह के कारण अनाधिकारी व्यक्ति द्वारा शब्द-निर्मिति की सनद प्राप्त करने के कारण मराठी शब्द-संग्रह में बहुत बड़ी वृद्धि हुई है, परंतु शब्दों के शुद्ध रूप और शुद्ध उच्चारण की हानि हुई है।'

अब उनके द्वारा उद्धृत किए हुए उदाहरणों का भाषाशुद्धि से क्या संबंध है? भाषाशुद्धि के जो सूत्र ऊपर दिए हैं, उनमें यथाशक्ति स्वकीय शब्दों का प्रयोग करें, इतना ही आग्रह है। अर्थशून्य, बोझिल और अशुद्ध शुद्ध ही प्रयोग में लाने चाहिए, क्या ऐसा आग्रह उसमें किया गया है? गत पच्चीस वर्षों में (गिन लीजिए) किसी भी साप्ताहिक में या किसी भी वार्त्ताहर द्वारा अशुद्ध या गलत शब्द उपयोग में नहीं लाया गया है। शुद्ध और सार्थक शब्दों का वह सतयुग था और गत पच्चीस वर्षों के प्रथम ही दुष्ट दिन से क्या अशुद्धता का कलियुग शुरू हुआ है? क्या क्षीरसागरजी यही कहना चाहते हैं? वह भी मान लिया। फिर भी उसी दिन भाषाशुद्धिवाद ने अनधिकारी व्यक्तियों को भी शब्द्-निर्मिति की 'सनद' दी गई,

ऐसा क्षीरसागर कहते हैं। वह मूल सनद अथवा कम-से-कम उसकी दोयम प्रति क्या वे हमारे पास या भारत इतिहास संशोधन मंडल के पास भेजने की कृपा करेंगे? उसमें भी यह अच्छा हुआ है कि गत पच्चीस वर्षों में जो अनेक भूडोल हुए, वायुयान नीचे गिर गए, अतिवृष्टि हुई आदि सारी बातें इसी भाषाशुद्धि के कारण हुई हैं, क्योंकि वे बातें भी इन्हीं पच्चीस वर्षों में घटित हुईं और वृद्धिंगत हुई हैं। इतनी बात जोर से कहने में क्षीरसागर भूल गए। उनके ऊपर परिश्वेद का अंतिम वाक्य तो भाषाशुद्धि के खिलाफ उन्होंने किए हुए कोटिक्रम का कलश ही है। वे लिखते हैं, 'भाषाशुद्धि के आग्रह के कारण···शब्दों के शुद्ध रूप और शुद्ध उच्चारों की हानि हुई है।' क्या भाषाशुद्धि ने यह भी कहा था कि शब्दों के उच्चारण गलत कीजिए? यह सुनकर हमें भी उसके विश्वासघातकीपन का भय लगने लगा है। उस भाषाशुद्धि का और हमारा इतने वर्ष, इतनी आत्मीयता का परिचय होते हुए भी उसने हमें इतना ही बताया था कि 'मेरा संबंध मराठी शब्दों से ही है।' परंतु मराठी शब्दों के उच्चारण भी वह बिगाड़ने वाली है, उसके इस अंतस्थ दुष्ट हेतु का उच्चारण भी उसने हमारे पास किया नहीं था।

'छात्रो! आप 'यवन' शब्द के स्थान पर 'यौवन' और 'यौवन' शब्द के स्थान पर 'यवन' शब्द उपयोग में लाइए; मुद्रयोजको, आप छपाई के अक्षरों की जुड़ाई करते समय—विशेषत: क्षीरसागरजी का यह भाषण छापते समय, यथाशक्ति मुद्रण-दोष कीजिए। नभोवाणी के वक्ता, आप संस्कृत शब्दों का उच्चारण अशुद्ध रीति से कीजिए। नभोवाणी पर अयोग्य व्यक्ति की योजना की जाए। लोगो! आप 'घनश्याम' शब्द 'धन श्याम' आर 'शरच्चंद्र' शब्द 'शरश्चंद्र' और 'दृश्य' शब्द 'दृस्य' के जैसे अशुद्ध करके अपने फलक पर लिखने की गलती अवश्य ही कीज़िए।' इस तरह का उपदेश भाषाशुद्धि के प्रवर्तकों ने क्या कभी किया है? परंतु साहित्य के क्षेत्र में घटित होनेवाले इस तरह के नानाविध दोषों के परिगणन दस-पंद्रह पृष्ठों में करते-करते बीच में ही शांत होकर एकदम उछलकर क्षीरसागर कहते हैं, 'भाषा के दोष करनेवाले ये सारे लेखक एक विशिष्ट संप्रदाय के ही हैं, यह मेरा आज का प्रतिपादन है कि वह संप्रदाय ही बंद कर देना चाहिए।···इस क्षेत्र में हिंदुत्ववादी, गांधीवादी, समाजवादी और साम्यवादी भी समान रूप से अपराधी हैं। प्रारंभ भाषाशुद्धिवादी हिंदुत्वनिष्ठों ने किया है, इस दृष्टि से इस दोष के लिए वे अधिक उत्तरदायी हैं।'

इस पर क्षीरसागरजी को हमारा इतना ही उत्तर है कि जिनके जिस किसी छात्र ने 'यवन' शब्द के स्थान पर 'यौवन' शब्द उपयोग में लाया, वही दोष आप यहाँ 'प्रतिपादन' नामक तर्क शब्द विवेचन में ही शोभायमान होनेवाला शब्द प्रयुक्त

कर रहे हैं। भाषाशुद्धि के साथ 'बादरायण' भी संबंध न होनेवाले या ढेर सारे दोष भाषाशुद्धि के कारण ही घटित होते हैं, इस तरह का आभास निर्माण करने में आपकी एक अनाड़ी चपलता है, केवल बात का बतंगड़ है, एक झूठा आक्षेप है, 'प्रतिपादन' नहीं है।

यह 'जातिवंत' मराठी का अभिमान

'भाषाशुद्धि का बीड़ा हिंदुत्वनिष्ठों ने ही सबसे पहले उठाया,' यह दोष दिखाने के लिए भी क्यों नहीं, पर क्षीरसागरजी ने यह मान्य किया, इसी में हिंदुत्वनिष्ठ अपना गौरव ही समझेंगे। समाजवादी आदि अन्य पक्ष भी संस्कृतनिष्ठ शब्दों से मराठी की संपत्ति और शोभा वृद्धिगंत कर रहे हैं, यह तो आनंद की ही बात है। विरोधविकास, श्रम-मूल्य, वर्ग-विग्रह, शासन-संस्था, उत्पादक धन, भोग्य धन आदि अनेक नए, अर्थपूर्ण स्वकीय शब्द उन्होंने मार्क्सवाद पर लिखी हुई पुस्तक में प्रयुक्त किए हैं। 'लोकमान्य' पत्र के संपादक श्री गाडगिलजी का हमने एक बार इस विषय के लिए प्रत्यक्ष अभिनंदन भी किया था, परंतु क्षीरसागरजी की 'जातिवंत' मराठी का जी इससे मतलाने लगा है। अरबीनिष्ठ उर्दू और पार्लियामेंट, कौंसिल आदि जैसे अंग्रेजी विदेशी शब्द मराठी में लेने ही चाहिए—यह आग्रह क्षीरसागरजी अपने भाषण में स्पष्ट रूप से करते हैं और इसी को वे उदारता समझते हैं। वे ही क्षीरसागरजी हिंदी, बँगला जैसी हमारी भाषा-भगिनियों के समान उत्तरदायित्व, हार्दिक, साहित्यिक जैसे शुद्ध संस्कृत शब्द मराठी में भी जब उपयोग में लाए जाते हैं तो उनका निषेध करके 'आकुंचित' बन जाते हैं। 'संस्कृत' हमारी सभी प्राकृत भाषाओं का संयुक्त शब्दरत्नाकर है। हिंदी में मराठी के 'हुतात्मा', 'क्रमांक', 'दिनांक' आदि शब्द लिये जाते हैं। संस्कृतनिष्ठ हिंदी राष्ट्रभाषा होने पर हमारी मराठी को किसी भी तरह का भय नहीं है, भय है तो उर्दूनिष्ठ 'यानी हिंदुस्तानी' का। इतिहास के 'तवारिख' और शिक्षा के लिए 'तालीम' कहिए—यह हठ करनेवाली 'यानी हिंदुस्थानी' अगर राष्ट्रभाषा बन गई तो उर्दू शब्दों की बाढ़ मराठी में फिर से आ जाएगी, यही सच्चा संकट है; परंतु क्षीरसागरजी ने उस उर्दूनिष्ठ 'यानी हिंदुस्तानी' के विरुद्ध एक शब्द भी अपने मुँह से नहीं निकाला है, क्योंकि उनकी 'जातिवंत' मराठी के और 'यानी हिंदुस्थानी' के गोत्र समान ही हैं।

इसीलिए तो क्षीरसागरजी उपसंपादकों को धमका रहे हैं कि 'बौद्धिक, सामरिक, नौदल, सांसदिक, विधेयक, अवैध आदि शब्द दैनिकों की रातपाली में ऊँघते-ऊँघते आप क्यों उपयोग में लाते हैं?' ऊपर के जैसे शुद्ध प्रौढ़ और अर्थपूर्ण शब्द जो उपसंपादक और संपादक ढूँढ़कर प्रयोग में लाते हैं, वे ही लोग आज

मराठी का वैभव, शक्ति और सोज्ज्वलता में वृद्धि कर रहे हैं। अगर सचमुच इस तरह के उत्तम शब्द कोई उपसंपादक ऊँवते-ऊँघते भी लिख सकता है तो उसका वह ऊँघना भी, पार्लियामेंट के जैसे शब्द भी विदेशी भाषा से घर में रहने देंगे, कहनेवाली 'जातिवंत मराठी' के चंचल जागरण की अपेक्षा अधिक शुद्धि पर थी।

क्षीरसागर महाशयजी ने—अशुद्ध के रूप में हमारे द्वारा सुझाया हुआ 'अद्यावत' शब्द भी बलपूर्वक काम पर लगाया है और बताया है कि 'लगभग बीस वर्षों के बाद मुंबई सरकार ने वह 'अद्ययावत' इस तरह सुधार कर दिया।' यह जानकारी दोषपूर्ण है। हमने Uptodate शब्द के लिए प्रथम बार तीन शब्द सुझाए थे 'अद्ययावत, अद्यावत और अद्यतन।' ('प्रतिभा'—मासिक पत्रिका, नवंबर १९३५)। और तब से यह बार-बार बताया था कि मूल शब्द 'अद्ययावत' संस्कृतशुद्ध शब्द है, परंतु प्राकृत में उस भाषा की प्रवृत्ति के अनुसार 'अद्यावत' सरल और संक्षिप्त शब्द तैयार हुआ, प्राकृत में यह शब्द अशुद्ध नहीं है। प्राकृत में संस्कृत शब्द प्राकृत व्याकरण और रूढ़ि के अनुसार इसी तरह संक्षिप्त और सरल हो जाते हैं। उनके उदाहरण हमने प्रारंभ में ही दिए थे कि जैसे 'यच्चयावत्' मूल शब्द साधारणतः प्राकृत में उच्चारण करते समय 'यच्चावत' उच्चारित किया जाता है, वैसे ही 'अद्यावत' इस प्राकृत रूप के बारे में है। 'अग्न्यागार' का प्राकृत रूप 'अग्यारी' ज्ञानेश्वर का प्राकृत रूप ग्यानबा—हमने यह चर्चा पहले ही की थी। अतः 'बीस वर्षों के बाद मुंबई सरकार ने दोष सुधार दिया'—यह कहना मिथ्या है, पर अगर अशुद्धता की ही कठिनाई हो तो क्षीरसागरजी शुद्ध रूप 'अद्ययावत्' उपयोग में लाएँ अथवा 'अद्यतन' शब्द का उपयोग करें। ये दोनों शुद्ध शब्द भी हमने 'अद्यावत' रूप सुझाते समय बताए हैं। इसलिए वे शब्द अगर वे नहीं चाहते तो वे स्वयं अपना स्वकीय शब्द सुझाएँ, अगर वह अच्छा हो तो निश्चित ही उसका उपयोग करेंगे; परंतु अपटूडेट और 'आजातागाथल' के जैसे सम्मिश्र और भ्रष्ट शब्द जो क्षीरसागरजी की मराठी में चल सकता है—उपयोग में न लाएँ।

जिनको ग्रामीण कहा जाता है, उस मराठी में लोगों में जो स्वस्थ, स्पष्ट और मुँहतोड़ बोली बोली जाती है, उसी में सच्चे जीवंत, स्वकीय मराठी शब्द पाए जाते हैं। हमें वे बहुत ही अच्छे लगते हैं; परंतु क्षीरसागरजी इसी भाषण की मराठी से हमें ज्ञात हो गए जिसको जातिवंत मराठी वे कहते हैं, वह मराठी कैसी होती है।

यह जातिमान कैसी? यह तो पाकिस्तानी मराठी है

क्षीरसागरजी ने मार्ग में चलते समय रंगीन फलक पर 'घनःशाम्' इस तरह का अशुद्ध शब्द लिखा हुआ देखा और इससे वे चिढ़ गए। इसलिए अपने भाषण में

वे बताते हैं, वह तो ठीक है, परंतु उसी मार्ग पर क्लॉथ मर्चेंट, फ्रूट मार्केट से लेकर वाशिंग कंपनी, हेअर कटिंग सैलून तक जो सैकड़ों फलक लगे हुए होते हैं, उनसे क्षीरसागरजी को चिढ़ नहीं थी, अपने भाषण में उस भ्रष्ट प्रवृत्ति के बारे में वे एक शब्द भी नहीं बोलते, उनके अपने भाषण में 'त्या शिवाय', 'त्या खेरीज' शब्द चालीस-पचास बार आए हैं, कभी-कभी तो एक वाक्य में भी अनेक बार आए हैं, परंतु अगर उन उर्दू शब्दों के स्थान पर उन्होंने 'त्यावाचून, त्या विना इत्यादि स्वकीय प्रयोग किए होते तो क्या उनकी मराठी भ्रष्ट हो जाती? 'बद्दल' शब्द तो उनके भाषण में इतस्तत: खेल रहा है। 'बद्दल' के स्थान पर होनेवाले 'त्या विषयी', 'त्या संबंधी', 'त्या प्रकरणी' इत्यादि अनेक स्वकीय पर्याय को क्षीरसागरजी छूते तक नहीं है। जवाबदारी, बेजवाबदारी शब्द वे पचास बार उपयोग में लाते हैं, पर 'उत्तरदायित्व', 'दायित्वशून्य जैसे स्वकीय शब्द हिंदी, बँगला भाषा में से लिये गए हैं। उसी में मराठी का मरण है।' ऐसा उनको लगता है। उनको इस बात का खेद है कि 'कायदा' शब्द का स्वकीय प्रतिशब्द मराठी में बचा नहीं है, परंतु 'अवैध' शब्द सुनते ही वे त्रस्त होते हैं। भाषाशुद्धि की प्रवृत्ति के कारण शतावधि शुद्ध स्वकीय शब्द मराठी में प्रचलित हुए हैं, उसका कोई आनंद उन्हें नहीं है, उलटे उनमें कोई अशुद्ध शब्द तो नहीं मिल जाता, इसके बारे में उनकी लेखनी की काक-दृष्टि घात में बैठी रहती है।

तो भी कोई बात नहीं है, परंतु कायदेपंडित, कायदेशास्त्र, कायद्यात्मक, कायदा—इस तरह के अनेक विदेशी सम्मिश्र शब्द मराठी में आते-जाते उपयोग में लाए जाते हैं। तब उस अशुद्धता की दुर्गंध उन्हें छू तक नहीं जाती, उलटे 'विधिमंडल' शब्द मराठी में प्रचलित होते हुए भी वे अपने भाषण में 'कायदेमंडल' नामक मरणासन्न अशुद्ध विदेशी शब्द पुन:-पुन: उपयोग में लाते हैं। मथला, शीर्षक आदि स्वकीय शब्दों के होते हुए भी हेडलाइन, प्राध्यापक शब्द के होते हुए भी प्रोफेसर, जुळारी शब्द को छोड़कर कंपोजीटर—इस तरह के अंग्रेजी शब्द उनके साहित्यिक भाषण में शान से घूम रहे हैं। तन्हा, अंदाज, बेशुमार, मजदूर, खाजगी, खातर, लष्कर, खबरदारी, मतलब, शहर, पेश, नजर, इलाज, खास, कायम, अलिबाल, अहवाल, जरूर—इस तरह के अनावश्यक अरबी-उर्दू शब्दों की विपुलता उनके भाषण में हुई है। इन शब्दों के स्वकीय शब्द होते हुए भी भाषाशुद्धि का प्रतिशोध लेने का पंचमस्तंभीय समाधान उपभोग के लिए ही मानो ये अनावश्यक अंग्रेजी शब्द, उर्दू शब्द जानबूझकर पृष्ठ-पृष्ठ पर उपयोग में लाते हैं। यह है उनकी 'जातिवंत मराठी।' राष्ट्रभाषा में कम-से-कम ३३ प्रतिशत अरबी शब्द रखने ही चाहिए—इस तरह का हठ करनेवाले कुछ 'यानी हिंदुस्थानी' वालों के समान प्रा.

क्षीरसागरजी ने भी इस तरह की प्रतिज्ञा की है, 'भाषाशुद्धि वाले हो! तुम्हारी संस्कृतनिष्ठ मराठी को मैं पाकिस्तानी मराठी करके छोड़ूँगा। तभी नाम का क्षीरसागर, नहीं तो नाम बदल दूँगा।'

अगर ऐसा हो तो टीकाकार क्षीरसागरजी से हम कुछ भी प्रार्थना नहीं करेंगे, परंतु समालोचक क्षीरसागरजी के बारे में हमारे मन में आदर की भावना है, इसीलिए उनसे केवल एक ही प्रार्थना है, और वह भी राष्ट्रीय स्वाभिमान के कारण तथा स्वभाषा की प्रतिष्ठा के लिए ही करना चाहते हैं कि वे भाषाशुद्धि के बारे में उनके जो पूर्वग्रह होंगे वे एक सप्ताह भर तो एकदम अलग रख दें। समालोचक को शोभा देगी—ऐसी शांत और समाहित मन:स्थिति में भाषाशुद्धि के ऊपर दिए हुए मूल सूत्र अपने आगे रखें और अपने से पूछें कि परकीयों ने तलवार के बल पर हम पर जो परराज्य स्थापित किए, उस दु:खद और अवकाशकाल में हमारी भाषा में उस परदास्य के परिणामस्वरूप घुसे हुए इन दास्यता के सूक्ष्म रोगाणुओं को, हमारी मनोभूमि में परशत्रु ने खड़े किए हुए हमारे इन पराजय के सूक्ष्म स्मारकों को—इन अनावश्यक परकीय शब्दों को भी हम क्यों न उखाड़कर फेंक दें? क्यों अपने स्वकीय शब्द उपयोग में न लाएँ? कम-से-कम वैसे अगर कोई उपयोग में लाए, तो उसमें अनुचित क्या है?

इसी तरह की भावना से आयरलैंड ने अंग्रेजी को उखाड़कर गॅलिक भाषा पुनरुज्जीवित की, अरबी को उखाड़कर तुर्कों ने स्वकीय तुर्की भाषा जीवंत की और गत सहस्र वर्षों तक मृतप्राय हुई वह हिब्रू भाषा को केवल दस वर्षों में ज्यू लोगों ने फिर से केवल सजीव ही नहीं बनाई, बल्कि वह राष्ट्रभाषा और राज्यभाषा बनाकर यह तय किया कि परराष्ट्र दूतावासों में भी उसी भाषा का उपयोग करना चाहिए। इसी वीरोचित भावना से छत्रपति शिवाजी महाराज ने 'राज्य व्यवहार कोश' लिखाया। इसी वीरोचित भावना से प्रेरित होकर हमारी राष्ट्रभाषा का साहित्य-मंदिर संस्कृतनिष्ठता की पवित्र और सामर्थ्यवान नींव पर बनाना होगा।

टिप्पणियाँ : १. 'केसरी' समाचार-पत्र में दो लेखांकों में यह लेख मार्च १९५१ में प्रकाशित हुआ था।

२. यह उत्तर इसी खंड में पृष्ठ ५४ से ६१ पर प्रकाशित हुआ है।

३. बड़ौदा के चौदहवीं वाङ्मय परिषद् के अध्यक्ष पद पर से जनवरी १९५१ में प्रा. क्षीरसागरजी द्वारा दिया हुआ भाषण।

□

भाषाशुद्धि-शब्दकोश

स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी द्वारा परकीय या विदेशी शब्दों के, स्वयं बनाए हुए नए और पुराने, पर नए रूप में—प्रचारित कुछ स्वकीय प्रतिशब्द।

(उनमें से जो शब्द मराठी के लिए हैं उनके पहले 'मराठी' लिखा गया है। मूलत: यह कोश स्वातंत्र्यवीर सावरकर ने मराठी भाषा शुद्धीकरण के लिए लिखा है।)

विदेशी (परकीय)		स्वकीय

१. शिक्षा विषयक

स्कूल	:	शाला
हाईस्कूल	:	प्रशाला
कॉलेज	:	महाशाला, महाविद्यालय
फैकल्टी	:	ज्ञानशाखा
अकैडमी	:	प्रबोधिका
हेडमास्टर	:	मुख्याध्यापक
सुपरिंटेंडेंट हाईस्कूल	:	आचार्य
प्रिंसिपल	:	प्राचार्य
प्रोफेसर	:	प्राध्यापक
लेक्चरर	:	प्रवाचक
चेअर	:	अध्यासन, विद्यासन

२. उद्योग विषयक

वॉचमेकर	:	(मराठी) घडयाळजी, कालमापक यंत्रज्ञ
वॉशिंग कंपनी (लॉन्ड्री)	:	धवलकेंद्र, निर्मलकेंद्र, (मराठी) धुलाईकेंद्र,

		परीटगृह
हेअर कटिंग सैलून	:	केशकर्तनालय, (मराठी) केसकापव्याचे दुकान
डिस्पेंसरी	:	औषधालय
कंसल्टिंग रूम	:	चिकित्सालय
वकील	:	विधिज्ञ
वकीली	:	विधिज्ञकी
स्टेशनरी स्टोर्स	:	लेखन साहित्य भांडार
टेलरिंग शॉप	:	सिलाईगृह, (मराठी) शिवणगृह, शिवणकलागृह
बादशाही लॉजिंग बोर्डिंग	:	राजविलासी भोजन निवास गृह

३. युद्ध विषयक

वॉर	:	युद्ध
बैटल	:	लड़ाई, (मराठी) लढ़ाई
आरमिस्टिक	:	शस्त्र संधि
पीस, तह	:	संधि
बफर स्टेट	:	कीलक राष्ट्र
मोहिम	:	अभियान
कॅम्पेन	:	उपयुद्ध
फौज, लष्कर	:	सैन्य, सेना
पलटन	:	पृथना
स्करमिश	:	(मराठी) चकमक
कैंप, लष्कर	:	शिविर, छावनी, (मराठी) छावणी
वॉरशिप	:	रणतारी, युद्धनौका
सबमरीन	:	पनडुब्बी, (मराठी) पाणबुड़ी
हवाई दल	:	वायुदल, वायुसेना
एयर फोर्स	:	नभोदल
लैंडफोर्स	:	भूदल, (मराठी) पायदल
नेव्ही, आरमार	:	नौदल, जलसेना, सिंधुदल

४. मुद्रण विषयक

टाईप फौंड्री	:	टंकशाला
मैट्रेस	:	मातृका

लेड	:	शिसपट्टी
कंपोजिटर	:	मुद्रयोजक, (मराठी) जुळारी
प्रूफ	:	उपमुद्रित
प्रूफ करेक्टर	:	मुद्रित निरीक्षक
स्टॉप प्रेस	:	छापबंद, (मराठी) छापता-छापता, छपते-छपते
बाइंडिंग	:	पुस्तकावरण, (मराठी) बांधणी
मोनोटाईप	:	एकटंकक
लाइनोटाईप	:	पंक्ति टंकक
टाइपराइटर	:	टंकण यंत्र
डिग्री	:	अंश

५. डाक विषयक

पोस्ट	:	डाक, (मराठी) टपाल
बुक पोस्ट	:	पुस्त डाक, पुस्तक डाक, (मराठी) ग्रंथटपाल
मनीऑर्डर	:	धनादेश, (मराठी) धनटपाल
पार्सल पोस्ट	:	(मराठी) वस्तु टपाल
रजिस्टर	:	पंजी, पंजिका, (मराठी) पटांकन
रजिस्टर्ड	:	पंजीकृत, निबंधित, (मराठी) पटांकित
टेलीफोन	:	दूरध्वनि
ट्रंक टेलीफोन	:	परस्थ ध्वन
फोन नंबर	:	ध्वनि क्रमांक, (मराठी) ध्वन क्रमांक
टेलीप्रिंटर	:	दूरमुद्रक
टेलीविजन	:	दूरदर्शन

६. सभा विषयक

जाहीर	:	प्रकट
जाहीर सभा	:	प्रकट सभा
हैंडबिल	:	हस्तपत्रक
सर्क्युलर	:	परिपत्रक
वॉलपोस्टर	:	भित्तीपत्रक, (मराठी) भिंतीपत्रक
लाउडस्पीकर	:	ध्वनिक्षेपक
मेगॅफोन	:	ध्वनिवर्धक

शेम	:	धिक्-धिक्, धिक्कार
हिअर हिअर	:	ठीक-ठीक, (मराठी) एका
रिपोर्ट, अहवाल	:	प्रतिवृत्त, इतिवृत्त
रिपोर्टर	:	प्रतिवेदक
मुर्दाबाद	:	विनाश हो, नष्ट हो
जिंदाबाद	:	जय-जयकार, की जय, जय हो

७. निर्बंध विषयक

लॉ	:	निर्बंध, विधि
लेजिस्लेचर	:	विधिमंडल
उमेदवार, कँडिडेट	:	इच्छुक, स्पर्धक
पार्लियामेंटेरियन	:	संसद् पटु
बजट, अंदाजपत्रक	:	अर्धसंकल्प
खाता	:	विभाग
रेव्हेन्यू, महसूल	:	राजस्व
रेव्हेन्यू मिनिस्टर	:	राजस्व मंत्री
लॉ मिनिस्टर	:	निर्बंध मंत्री, विधि मंत्री
लेजिस्लेटिव्ह डिपार्टमेंट	:	विधि विभाग, निर्बंध विभाग
एक्सिक्यूटिव्ह डिपार्टमेंट	:	निर्वाह विभाग, कार्यवहन विभाग
ज्युडिशिअल	:	न्याय विभाग
अंमल बजावणी	:	बर्ताव, कार्यवाही

८. भौगोलिक विभाग

अहमदाबाद	:	कर्णावती
अरबी समुद्र	:	पश्चिम समुद्र, सिंधु सागर
हैदराबाद (दक्षिण)	:	भाग्यनगर
हैदराबाद (सिंध)	:	नगरकोट

९. चित्रपट विषयक

सिनेमा हाउस	:	चित्रगृह, चित्रपटगृह
फिल्म	:	चित्रावली, चित्रपट्टिका
सिनेमॅटोग्राफ सिनेमा	:	चित्रपट

मूव्ही	:	मूकपट
टॉकीज	:	बोलपट
इंटरव्हल	:	मध्यांतर
स्टुडिओ	:	कलामंदिर, कलागृह
शूटिंग	:	चित्रण
आउटडोर शूटिंग	:	बाह्य चित्रण
थ्री डायमेंशन	:	त्रिमितिपट
ग्रीनरूम	:	नेपथ्य
ड्रेसिंग	:	वेशभूषा
ड्रेसिंग रूम	:	वेशकक्षा
फोटोग्राफ	:	छायाचित्र
फोटोग्राफर	:	छायाचित्रक
कैमरा	:	छायिक
पोर्ट्रेट	:	व्यक्तिचित्र
पोजीशन	:	स्तर, श्रेणी, स्थान, (मराठी) ठाण
टेप रेकॉर्ड	:	ध्वनिमुद्रा, ध्वनिपट्टिका
सिनेरीओ	:	पटकथा, चित्रकथा
सिनेरीओ राइटर	:	पटकथक, चित्रकथक
भपका	:	आडंबर
ग्रामोफोन रेकॉर्ड	:	नादांकण
रेकर्डिस्ट	:	ध्वनिलेखक
टॉपिकल	:	प्रचारपट
न्यूज रील	:	वृत्तपट
ट्रेलर	:	परिचय पट
म्यूजिक डाइरेक्टर	:	संगीत नियोजक
डेमिनिटिव्ह	:	लघु रूप
डाइरेक्टर	:	सूत्रधार, दिग्दर्शक
एडिटर	:	संकलक
रिहर्सल रूप	:	अभ्यास कक्ष
रिहर्सल	:	पूर्वप्रयोग, सप्रयोग
स्टोअर	:	कोठार, भांडार
एस्टिमेट	:	व्यय संकल्प

अ

आइ विटनेस : दृक् साक्षी
अर्ज : आवेदन, अभ्यर्थन
अर्जदार : आवेदक, प्रार्थी, अभ्यर्थी
अगर : किंवा, अथवा, (मराठी) जर
अजिबात : आमूलात, (मराठी) मुलीच, अगदी
अक्कल : बुद्धि, मति, प्रज्ञा
अमल : सत्ता, अधिकार
इसम : व्यक्ति, मनुष्य
इमानी : प्रामाणिक, विश्वासू
इमान : विश्वास, वचन
इज्जत : प्रतिष्ठा, मान
रोपत : योग्यता, सामर्थ्य
रोवज : द्रव्य, सर्वस्व, धन
इशारा : चेतावनी
अस्सल : प्रत्यक्ष, (मराठी) समूल
अव्वल पासून अखेरपर्यंत : अथ से इति तक, (मराठी) आरंभापासून अंतापर्यंत
इनकार : नकार
एरव्ही : अन्यथा, (मराठी) नाहींतर
अंदाज : अनुमान, (मराठी) अटकल, आड़ाखा
एकजिनसी : एकरस, एकवस्तु
ऐनजिनसी : एकात्मक
उमेदवारी : इच्छुकता
एक्जामिनर : परीक्षक
इमला : भवन, घर, वास्तु
इमारती : भवन संबंधी, (मराठी) बाँधकाम संबंधी
इमारत : भवन, सदन, गृह
ओलीस, गहाण : तारण
अहवाल : प्रतिवृत्त, इतिवृत्त
उर्फ : उपाख्य, अर्थात् (उपाख्य शब्द श्री ग.वि. केतकरजी द्वारा उपयोग में लाया गया है और वह एकदम सुयोग्य है ।)

एक्सरसाइज बुक	:	रेखाबही, अभ्यासबही
ऑडिटर	:	गणनेक्षक, गणन निरीक्षक
अर्जंट	:	त्वर्य
ऑनरेरीयम	:	पुरस्कार, संभावना
अंडरलाइन	:	अधोरेखित
एजेंट	:	अभिकर्ता, (मराठी) अडत्या
इंस्पेक्टर	:	अन्वेक्षक
एंबुलेंस कार	:	रुग्णवाहन
इरादा	:	हेतु, (मराठी) बेल
उमर	:	आयु, (मराठी) वय
एअर कंडिशंड	:	शीतल, सुखशीतोष्ण, संयतवाल, समशीतोष्ण
अल्टीमेटम	:	अंतिमोत्तर
इनहेरंट	:	अंगभूत
इजीली एप्रोचेबल	:	सुलभ गम्य, सुलभ प्राप्त
अपील	:	अध्यर्थन

क

कमाल	:	धन्य, पराकाष्ठा, सीमा, (मराठी) अधिकातअधिक
कव्हर	:	आच्छादन, वेष्ठन, मलपृष्ठ, (मराठी) पुठ्ठा
कब्जात	:	अधिकार में, (मराठी) अधिकारात, हातात
काबीज	:	हस्तगत
कदर	:	मर्यादा, आतिथ्य, (मराठी) चिंता, जाणीव
कार्टून	:	व्यंग्यचित्र
कुश्ती	:	नियुद्ध, मल्लयुद्ध, (मराठी) झुंज, झोंबी
कर्ज	:	ऋण
कायम	:	स्थिर, स्थायी, (मराठी) नित्याचा
कायमनिधि	:	स्थिर निधि, स्थायी निधि
कोम	:	भ्रतार (सारा राज्य-कारोबार जब उर्दू में चलता था, तब हिंदू महिलाओं के नाम 'सीता कोम रामा गावकर' इस तरह लिखे जोते थे। अब भी वह पद्धति बंद नहीं हुई है। अतः 'कोम' शब्द को टालकर भ्रतार शब्द की योजना करें।)

कैदी	:	बंदी, बंदीवान
कैदखाना	:	कारागार, बंदीगृह
किंमत	:	मूल्य
कारकून	:	लेखनिक, कारणीक
स्टिरिओटाइप	:	स्थिरटंकी, (मराठी) कायमठशी
क्यूरेटर	:	ग्रंथाध्यक्ष
क्यूरेटर ऑफ म्यूजियम	:	वस्तुपाल
कोरम	:	गणसंख्या, गण
क्रॉस एक्जामिनेशन	:	प्रतिपृच्छा
कमीशन	:	दलाली, आयोग समिति, (मराठी) वटाव, अडल
कन्फेशन	:	स्वीकारोक्ति
कॉलम, रकाना	:	स्तंभ
कैलेंडर	:	कालदर्श, मितिपट
कवायत, ड्रील	:	संचलन
कॉपी	:	प्रत, अनुलेख

ख

खाता	:	विभाग
खलास	:	समाप्त, संपूर्ण, (मराठी) संपले
खास अंक	:	विशेषांक
खात्री	:	निश्चिति
खात्री पटली	:	(मराठी) निश्चिति पटली
शुष	:	प्रसन्न
खबरदार	:	सावधान, (मराठी) ध्यानात ठेवा
खराब	:	नीच, (मराठी) वाई, गदळ
खुनशी	:	घातक, (मराठी) कुढ़ा, आतलया गाठीचा
खुद्द	:	प्रत्यक्ष, स्वयं, स्वत:
खून	:	हत्या
खेरीज	:	व्यतिरिक्त, विरहित, (मराठी) सोडून, वाचून, आणखी
खुषी	:	इच्छा, (मराठी) लहर
खिदमत	:	परिचर्या
खजिनदार	:	कोषाध्यक्ष, कोषपाल, कोषधर

खाबंद	:	स्वामी, अधिप, धनी, सेठ
खैर	:	(मराठी) कल्याण, बरे, बरे झाले
खरीप	:	कार्तिकान्न, (मराठी) कार्तिकी पिके, पावसाली पिके
खबर	:	वृत्त, वृत्तांत, (मराठी) बातमी
खुलासेवार	:	स्फुट, स्पटीकृत, (मराठी) सुस्पष्टपणे, फुटकल
खुलासा	:	स्पष्टीकरण, स्फुटता, (मराठी) उलगडा
खाने सुमारी	:	शिरगणति, शिरगणना, गणना

ग

गैरहजर	:	अनुपस्थित
ग्यालरी	:	दीर्घिका, वीथिका
गोडाउन	:	कोठी, भांडार
गरीब	:	दीन, हीनदीन, (मराठी) बापडा, सालस
गुलाम	:	दास, बंदा
गुलामी	:	दास्य, पारतंत्र्य
गुदस्ता	:	गत वर्ष में, (मराठी) गतवर्षी
गुन्हा	:	अपराध, पाप
गुन्हेगार	:	अपराधी, पापी
गैर	:	अनुचित, (मराठी) वाईट

च

चैंपियन	:	प्रवीण, धुरंधर, धुरीण, पुरस्कर्ता
स्पेक्टेकल चश्मा	:	उपनेत्र
चैन	:	विलास, आराम, (मराठी) गंमत
चेहरा	:	मुद्रा, (मराठी) तोंडावळा

ज

जाहिरात	:	प्रसिद्ध, विज्ञापन
जमीन	:	भू, (मराठी) भुई
जमीन अस्मान	:	आकाश-पाताल
जामीन	:	प्रतिभू
जबर	:	प्रबल, (मराठी) दांडगा, बलाढय

जिमखाना : क्रीडांगण, क्रीडानगर
जरूरी : अवश्य
जबरी संभोग : बलात्कार, आस्कंदन
जुलूम : पीड़ा, प्रपीड़न, अन्याय, छल
जुलमी : पीड़ाजनक, छलक
जख्मी : आहत, (मराठी) घायाळ
जमीन जुमला : खेतीबाड़ी, (मराठी) शेतीवाडी
जासूद : हेर, चर, दूत
जहाज : जलवान, नौका, तारू
जबावदारी : उत्तरदायित्व, दायित्व, (मराठी) भार
जबानी : कथन, वक्तव्य
जिन्नस : वस्तु, पदार्थ
जबरदस्त : प्रबल, बलवत्तर, दंडम, (मराठी) दांडगा

ट, ड

ट्रस्ट : निक्षेप, न्यास
ट्रस्टी : अभिभावक, पालक, विश्वस्त
टेंडर : भावपत्र
ट्रस्टी डीड : निक्षेप पत्र
डिफमेशन : अपकीर्ति
डिपो : भांडार
डायनॉमिक : गतिमान, स्फोटक
डायनॉमिक लीडरशिप : गतिमान नेतृत्व
डैश (Dash) : अनुषंगक (यह शब्द लेखन में बार-बार आता है।)
डिस्पेंसरी : औषधालय, वितरणालय
ड्रेस : वेश
फुलड्रेस : भरवेश, संगतवेश
डायरी : दैनंदिनी, दैनिकी, (मराठी) आहिन्की
डिव्हिडेंड : भागांश, भाज्यांश

त

तयार : सिद्ध, पूर्ण, सज्ज, (मराठी) सन्नद्ध

पूर्व तयारी : पूर्व सिद्धता, पूर्व व्यवस्था, पूर्व सज्जता
तब्वेत : स्वास्थ्य, (मराठी) प्रकृति
ताबा : सत्ता
तूर्त : संध्या
ताबा घेणे : हस्तगत करना, (मराठी) हाती असणे
तहाहयात : आजीव, आजन्म, (मराठी) यावज्जीव
तारीख : दिनांक
तोतया, इंपोस्टर : मिथ्यारूपी
तपासणी : निरीक्षण, (मराठी) चौकशी
तक्रार : प्रतिवाद, (मराठी) गार्हणि, कुरकुर
ताकद : शक्ति, सामर्थ्य
तहाहयात : यावज्जीवन, आमरण, आजीव, आजन्म
तह : संधि, (मराठी) समेट
तपशील : विवरण, स्फुटीकरण
तूफान : आँधी, (मराठी) वादळ
तरह : रीति, प्रकार
तालीम : कसरत, अभ्यास, (मराठी) शिक्षण, व्यायाम
ताकीद देणे : सावधानी, (मराठी) आज्ञा देणे, सावधकरणें
ताजीम : अभ्युत्थान
तपास : खोज, अन्वेषण, (मराठी) शोध
तपासणे : (मराठी) शोधणे, अन्वषणें, निरीक्षणे
तपासनीस : निरीक्षक, परीक्षक
तक्त : सिंहासन
तपकीर : नस्य, नस
तसबीर : आलेख
तर्फे : द्वारा, (मराठी) वर्तीने, बाजूने
दुवा : धन्यवाद
दरम्यान : (मराठी) मध्यंतरी
दोस्त : मित्र, सुहृद्, वरस्थ, (मराठी) जिवलग
दवाखाना : औषधालय
दस्तुर खुद्द : स्वाक्षर, स्वहस्त
दर्या : समुद्र, (मराठी) नदी

दगलबाजी : कापट्य, विश्वासघात
दर्जा : प्रत, प्रतिष्ठा, स्थान
दिल : हृदय, अंत:करण, मन
दिलगिरी : पश्चात्ताप, दु:ख, विषण्णता

न

नकलाकार : अनकारिक, (मराठी) सोंगाडया
नेगेटिव्ह : अकारात्मक, अकरणात्मक, (मराठी) नकार घंटा
निर्लष्करीकरण : नि:सैनिकीकरण
नशिब : दैव
नकाशा : मानचित्र, आकृति
नंबर : क्रमांक, अंक
नशीब : दैव, भाग्य, कर्म
नाइलाज : निरुपाय
नजर, Present : उपायन, भेंट, उपहार, पुरस्कार
नजर करणे : (मराठी) सादर करणे
नुकसान : हानि, (मराठी) तोटा
नजीक : सन्निध, (मराठी) जवल
नेस्तनाबूद : विनष्ट, निर्मूल
निसबत : संबंध, संबंध में, (मराठी) संबंधी
नापास : अनुत्तीर्ण, असंमत (प्रस्ताव ३)
नरव्हस : भयाकुल, (मराठी) बावरणे, घाबरणे

प

पार्टी : प्रीतिभोज, (मराठी) पंगत (भोजनाची)
पास : उत्तीर्ण
पोषाख : वेष, वसन
पैराग्राफ : छेदक, अनुवाक
प्लैटफॉर्म : चबूतरा (स्टेशन आदि का), मंच (सभा मंच), वेदी, वाक्पीठ, उच्चासन
पेंशन : भृति, निवृत्तिवेतन, (मराठी) बिदागी, पोषण
पागा : अश्वशाला

पेंशनर	:	सेवानिवृत्त
पेटंट	:	निजस्व, रामबाण
पेंटर	:	रंगकार, चित्रकार, (मराठी) रंगारी
पार्लियामेंट	:	संसद्, लोकसभा
पोलीस	:	आरक्षक
प्रिॲम्बल	:	मुखबंध
पर्सनैलिटी	:	व्यक्तिमत्त्व, व्यक्तित्व
प्रिलिमिनरी	:	पूर्व परीक्षा
पब्लिक	:	सार्वजनिक, जनिक
प्रेस	:	मुद्रापीठ
प्रेस ॲन्ड प्लैटफॉर्म	:	मुद्रापीठ और वाक्पीठ
प्रॉमिसरी नोट	:	वचनपत्र
पेइंग गेस्ट	:	सशुल्क अतिथि, (मराठी) खाणावळया (मुंबई के कामगार लोगों में यह शब्द प्रचलित है।)

फ

फायदा	:	लाभ
फोनोग्राफ	:	ध्वनिलेख
फाउंटेन पेन	:	झरणी
फैशन	:	भूषाचार, लोकाचार, (मराठी) टूम
फाईल	:	धारिका
फाइल	:	(मराठी) टांचण, ओल, आवली, पंगत
फिकीर	:	चिंता, (मराठी) काळजी
फकत	:	केवल, मात्र
फत्ते	:	जय
फी	:	शुल्क (पाठशाला, न्यायालय आदि का), पुरस्कार, देय, (डॉक्टर आदि का) वेतन

ब

बेहतर	:	अनुकूल, ठीक, (मराठी) फार चांगले
बेइज्जत	:	अपमान, अमर्यादा, अप्रतिष्ठा
बेआब्रू	:	मानहानि, अप्रतिष्ठा

बेआब्रू की फिर्याद	:	अभियोग, (मराठी) मानहानीचा खटळा
बाजार	:	हाट
बिलकुल	:	समूल, (मराठी) अगदी
बख्शीश	:	पारितोषिक, उपहार, उत्तेजक
बेलाशक	:	निर्भयता से
खुशाल	:	नि:संकोच रूप से
बेहोष	:	बेभान, बेशुद्ध
बहाद्दर	:	वीर, शूर, (मराठी) पट्ठा
बिल	:	मूल्यवेदक, देयक, (मराठी) आकारणी
बाव	:	प्रकरण, विषय, (मराठी) गोष्ट
बाबत	:	संबंध में, विषय में, संबंधी, विषयी, प्रकरणी
बोनस	:	लाभांश
बजट	:	अर्थसंकल्प
बरोबर	:	सह, समवेत, (मराठी) ठीक
बरोबर	:	(मराठी) विषयीं, प्रकरणीं, संबंधी, गोष्टीत
बछल	:	(मराठी) संबंधी, विषयीं, प्रकरणीं
बदल	:	परिवर्तन, (मराठी) पालट
बेफिकीर	:	बेधड़क, निर्भय, निशंक, निर्धास्त, निडर, निर्भीक
बुकसेलर	:	पुस्तक विक्रेता
बुक डिपो	:	ग्रंथभांडार, पुस्तकभांडार
बड़तर्फ	:	पदच्युत
बेमालूम	:	अनजाने, (मराठी) नकळत
बरखास्त	:	विसर्जन

म

मालमत्ता	:	धन, संपत्ति, (मराठी) भत्ता, रिक्त
मार्फत	:	द्वारा, (मराठी) वतीने, विद्यमाने
मटन	:	मांसाहार, (मराठी) सागुती
मैदान	:	पटांगण
माजी	:	विगत, भूतपूर्व, (मराठी) मागील
मुद्दा	:	विद्येय
मुद्देसुद	:	सूत्रबद्ध

मुद्दाम	:	हेतुतः, हेतुपूर्वक
मुत्सद्दी	:	कारस्तानी
मजळ	:	गंतव्य, (मराठी) टप्पा
मरहूम	:	परलोकवासी, दिवंगत, मृत्युंगत
मेनू	:	पदार्थिका (उपहारगृह का)
मतलब	:	सारांश, मर्म, स्वार्थ
मसाज	:	संवाहन, मर्दन, संमर्दन, (मराठी) चोळणें
मैग्निफाइंग	:	दृक्वर्धक
मालबर	:	श्रीमंत, संपन्न
मोहिम	:	अभियान
म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन	:	महापालिका
मेयर	:	महापौर
मेयर (डेप्युटी)	:	उपमहापौर
मोनोपॉली	:	एकस्व, एकहाटी
मसाजिस्ट	:	संवाहक
मिनिट्स ऑफ ए मीटिंग	:	टिप्पण, सभाटिप्पण
मोनार्की	:	राजसत्ता
मेमोरेंडम	:	आवेदनपत्र
मास्टर	:	शिक्षक, गुरुजी
मास्टर	:	कुमार, किशोर
मिस	:	कुमारी, किशोरी
मार्जिन	:	समास, कोर
मौका	:	संधि, प्रसंग
मंजूर	:	सम्मत, अनुमत, मान्य
मुक्काम	:	निवास, (मराठी) टप्पा, ठिकाण
मेजबानी	:	भोजन, (मराठी) जेवणावल, पंगत
मुश्किल	:	कठिन
मोबदला	:	प्रतिमोल, विनिमय
मालक	:	धनी, स्वामी
मालकी	:	स्वामित्व
मुलुख	:	देश-विदेश
मुलुखगिरी	:	देशाक्रमण, स्वारी

मर्जी	:	इच्छा, (मराठी) लहर
मुकरर	:	स्थिर, निश्चित
मना	:	निषेध
मुबलक	:	समृद्ध, (मराठी) पुष्कळ
मुदल	:	अवधि
मातब्बरी	:	प्रतिष्ठा, (मराठी) थोरवी
मद्रल	:	सहाय्य, आधार
माफी	:	क्षमा
माल	:	वस्तुजात, (मराठी) सामान
मेहरबान	:	महाशय, कृपावंत
मेहरबानी	:	कृपा, दया, आभार
मजकूर	:	(मराठी) लिखाण, विषय, वक्तव्य, लेख्य, आशय
मेजबानी	:	भोज, भोजन, (मराठी) जेवणावळ
मिशन	:	प्रचारकेंद्र, प्रचारसंघ, कर्तव्य
मिशनरी	:	प्रचारक, नियोजित
मार्टिर, शहीद	:	हुतात्मा

य

यूनिफार्म	:	गणवेश, समवेश
यादी	:	स्मरणी, तालिका, (मराठी) टिपणी, टांचण
याद राख	:	(मराठी) ध्यानातधर, समजून ऐस/ध्यान में रखो

र

रियासत	:	सत्ताकाल, राजवट
रब्बी	:	वैशाखान्न, (मराठी) वैशाखी पिके
रेकॉर्ड (प्लेट)	:	ध्वनिमुद्रिका
रेकॉर्ड (प्लेट)	:	संग्रह
रेकॉर्ड (प्लेट)	:	उच्चांक, विक्रम
रिस्टवाच	:	कलाई घड़ी, (मराठी) हाथघड़ी
रेडियो	:	नभोवाणी
रीडिंग रूम	:	वाचनालय
रेफ्रीजरेटर	:	शीतगृह, (मराठी) शीतळी

रिपब्लिक	:	प्राजक, लोकसत्ता
रेकमेंडेशन	:	प्रशस्ति, अनुरोध, (मराठी) भलावण
रेजिग्नेशन	:	त्यागपत्र, (मराठी) राजिनामा
रोजनिशी	:	दैनंदिनी, आन्हिकी, दिनलेखा, दैनिकी
रिवाज	:	रीति, प्रधान, परिपाठ
रजा	:	अवधि, अवसर, (मराठी) सुट्टी, निरोप
खानगी	:	प्रेषण, (मराठी) पाठवणी धाडणें
रुजू	:	उपस्थित, (मराठी) दाखल
राजी	:	संतुष्ट
रंगीत तालीम	:	रंगप्रयोग, पूर्वप्रयोग
रुजवाल	:	मिलान, जाँच, (मराठी) मेळ, पड़ताळा, भेट
रेस्टोरेंट, होटल	:	उपाहारकृह, भोजनालय, (मराठी) खानावळ

ल

लवाजमा	:	परिवार
लायक	:	योग्य
लाइब्रेरी	:	ग्रंथालय
लाइब्रेरियन	:	ग्रंथपाल
लीव्ह, रजा	:	अवसर, अवधि, छुट्टी

व

व	:	नि, आणि, और
वगैरह	:	इत्यादि
वहिवाट	:	परिपाटी, प्रथा, (मराठी) भोगवटा, वापर
वसूली	:	उगाही, प्राप्ति, (मराठी) उगराणी
वहीम	:	संशय, शंका
वस्ताद	:	शिक्षक, गुरु, अध्यापक
वन्स मोअर	:	पुनश्च! पुनश्च!

श

शौक	:	विलास, छंद, (मराठी) हौस
शेम[२]	:	धिक्कार

शाहीर	:	राजकवि, भाट, कवि
शिताफी	:	कौशल्य, (मराठी) चळाखी
शाबूत	:	सुरक्षित, अखंड, अक्षुण्ण
शिकार	:	मृगया, (मराठी) पारध
शागिर्द	:	शिष्य, सेवक, अनुचर
शागिर्दी	:	परिचर्या, सेवा
शिकस्त	:	पराकाष्ठा
शिकारी	:	मृगयु, व्याध, आखेटक, (मराठी) पारधी
सिफारिश	:	प्रशस्ति, अनुरोध
सिफारिश पत्र	:	प्रशंसापत्र, प्रमाणपत्र
शाबाश	:	धन्य, वाहवा, (मराठी) भले
सिक्का	:	मुद्रा
शिवाय	:	विना, व्यतिरिक्त, (मराठी) वाचून
शर्यत	:	स्पर्धा, पैज, (मराठी) घोड़दौड़, चढ़ाओढ़

स

सनद	:	अधिपट (जहागीरी आदि का)
सनद	:	अधिपत्र (वैद्यकीय, विधिज्ञ आदि व्यवसायों की)
सल्ला	:	समादेश
सल्लागार	:	समादेशक
सुरु	:	शुरू, (मराठी) चालू
सुरवाल	:	प्रारंभ
सालीं	:	वर्ष में, (मराठी) वर्षी
सालाबाद प्रमाणे	:	प्रतिवर्ष की तरह, (मराठी) प्रतिवर्षा प्रमाणे
सदरहू	:	उपरोक्त, (मराठी) वरील
सही	:	स्वाक्षरी
साहेब	:	सेठ, महाशय
साहेब	:	राव, पंत (तात्या साहेब, अण्णा साहेब—ऐसा न कहते हुए तात्याराव अण्णाराव कहा जाए।)
सेक्रेटरी	:	सचिव
सेक्रेटरिएट	:	सचिवालय
सर्चलाइट	:	शोध ज्योत

स्ट्रेचर : तख्ता, डोला, परसन, (मराठी) पसरी
सोकॉल्ड : तथाकथित
सर्टिफिकेट : प्रमाणपत्र, प्रशंसापत्र, परिचयपत्र
स्टॉप : थांबा
स्टैंड : (मराठी) तिष्ठा, तळ, अड्डा
सिंबॉलिक : प्रतीकात्मक
स्टेशन : स्थानक
स्टेशनमास्टर : स्थानकपाल
सिग्नल : झंडी, झंडा, निशान, (मराठी) बावटा, बाहुटा
सस्पेंड : अपसृत
सस्पेंशन : अपसरण
सेकंड हैंड : पुराना, (मराठी) आडहाती, आड, गिप्हाइकी
स्टॉल : चीजें बेचने का छोटा स्थान, (मराठी) पाल, मांडणी
सालमजकूर : चालू वर्ष, वर्तमान वर्ष
साल गुदस्त : गत वर्ष
सुमारे : लगभग, (मराठी) जवळ जवळ, तर्काने
सीन-सीनरी : दृश्य, (मराठी) देखावे
स्टेज : रंगभूमि, रंगमंच
सनदशीर : वैद्य, नैबंधिक (राजनीतिक अर्थ में)
सॅनिटोरियम : आरोग्यालय

ह

हॉस्पिटल : रुग्णालय
हद्द : सीमा, पराकाष्ठा, मर्यादा
हवा : वायु, (मराठी) वारा
हवामान : वायुमान, ऋतुमान
हवापालट : ऋतुपालट, वायुपालट
हयात : विद्यमान, वर्तमान, अस्तित्व
हजर : उपस्थित, प्रत्यासन्न
हजेरी : उपस्थिति, विद्यमानता
हजाम : नापित, (मराठी) न्हावी
हजामत : श्मश्रु, (मराठी) डोईकरणें

हुशार : प्रज्ञावान, बुद्धिमान, (मराठी) चाणाक्ष, त्वरतरीत चळाख

हल्ली : सांप्रत, प्रस्तुत, (मराठी) संध्या, आजकाळ

हवाई : आकाशी, (मराठी) वायवी

हवापानी : जलवायु (हिंदी, बँगला में रूढ़)

हुकमत : स्वामित्व, प्रभुत्व, आज्ञाधिकार

टिप्पणियाँ : १. मुसलमानों ने हिंदुस्थान में पुणे, नासिक, काशी इत्यादि अनेक नगरों को मुसलमानी नाम दिए थे। अंग्रेज़ों ने तो मार्गों को भी अंग्रेजी नाम दिए थे। अब उन दोनों की ही राजसत्ता धूल में मिल गई है। अब वे सब परकीय नाम बदलकर अपने संस्कृतिनिष्ठ भौगोलिक नाम उन स्थलों को फिर से देना आवश्यक है। उदाहरण के लिए यहाँ कुछ नाम दिए गए हैं।

२. प्रथम आवृत्ति में इस शब्द पर जो टिप्पणी दी है, वह इस तरह है, 'स्वदेशी के निष्ठावान् समर्थक' किर्लोस्कर बंधु अपनी 'किर्लोस्कर खबर' मासिक पत्रिका का नाम क्या 'किर्लोस्कर वृत्त' रखेंगे? 'वर्तमान पत्र' शब्द जिन्होंने पहले-पहल प्रचलित किया, उन्होंने मूर्खता से 'खबर कागज' या 'अखबार' शब्द प्रयुक्त किया होता तो हम अपने सुंदर शब्द 'वृत्तपत्र' को खो बैठते और उत्तर में भी अखबार ही रूढ़ था। अब वह हटाए नहीं हटता।

स्वातंत्र्य वीर सावरकरजी की विनय के अनुसार अंत में 'किर्लोस्कर' के सुविध संपादकजी ने 'खबर' शब्द पत्रिका के नाम से निकाल दिया है।

३. आजकल सभाओं में 'शेम! शेम!' चिल्लाने की परिपाटी पड़ गई है, परंतु वह अंग्रेजी शब्द वहाँ बिलकुल आवश्यक नहीं है। 'शेम' के अर्थ से पुराना शब्द 'धिक्कार! धिक्कार!' उपयोग में लाएँ। धिक्कार शब्द अर्थानुकूल ध्वनि से युक्त है और गर्जनानुकूल है; इसलिए सभाओं में 'धिक्कार! धिक्कार! इस प्रकार ही विरोधार्थ चिल्लाएँ। उसी तरह 'हियर', 'हियर' चिल्लाने की भी विचारशून्य पद्धति नष्ट करनी चाहिए। 'रोका', 'रोका', 'सुनिए', 'सुनिए' यह कहना क्या कठिन है? हमें ऐसे भी लोग मालूम हैं, जिनको 'हियर' शब्द का अर्थ भी मालूम नहीं है, पर

वे यह शब्द चिल्लाते हैं। 'सुनिए' शब्द तो कम-से-कम सबकी समझ में आ जाएगा।

४. 'साहेब' शब्द का अर्थ है स्वामी। अब भी कोई बड़ा व्यक्ति आ जाने पर जैसे हम 'या साहेब, (आइए साहब)' कहते हैं वैसे ही मद्रास की तरफ 'आइए स्वामी! आप कैसे हैं स्वामी!' कहने की प्रथा है। हमारे यहाँ माधव, नारायण आदि शब्दों के पीछे 'राव' शब्द सम्मानार्थ में रूढ़ हैं, तो कभी 'पंत' भी लगाते हैं, परंतु उपनामों के लिए बहुधा वे नाम द्वक्षरी होने के कारण हमें 'साहब' शब्द का प्रयोग करने का अभ्यास हो गया है। जैसे— तात्या साहब, नाना साहब इत्यादि; परंतु यह अभ्यास छोड़ देना चाहिए। जैसे अन्य नामों के लिए लगाते हैं, वैसे ही 'राव' शब्द 'साहब' के स्थान पर लगाना चाहिए। जैसे तात्याराव, नानाराव, भाऊराव। अगर हम माधवराव, नारायणराव कहते हैं तो तात्याराव, नानाराव कहने में क्या कठिनाई है? ब्राह्मणों में भी माधवादि नामों के पीछे 'राव' लगाते ही हैं। उत्तरी हिंदुस्थान में सन् १८५७ के क्रांतियुद्ध के अंतिम नेता 'नाना साहब पेशवा' को नानाराव ही कहते हैं और उनके बंधु को बाळा साहब कहते हैं। हम भी बापूराव ही कहते हैं। तो फिर तात्या, भाऊ, दादा इन नामों के लिए ही 'साहब' नाम का विदेशी पंचगव्य पिलाने का आग्रह क्यों? स्वकीय हिंदू नाम के आगे म्लेच्छ प्रत्यय लगाना अपमानजनक समझा जाना चाहिए और तात्याराव, नानाराव— इस तरह का प्रयोग करना चाहिए। कुछ दिनों के उपहास के बाद वे शब्द भी रूढ़ हो जाएँगे, जैसे बापूराव, बाजीराव शब्द रूढ़ हो गए हैं।

□

परिशिष्ट

भाषाशुद्धि विषयक मराठी शब्दकोश

१. **राज्य व्यवहार कोश :** मुसलमानों के अनेक शतकों के आक्रामक शासनकाल में हमारी भाषा में और विशेषत: उनके शासन और प्रशासन विषयक विभाग में मुसलिमों की सामर्थ्य पर हमारी भाषा में अरबी-फारसी विदेशी शब्दों ने घुसकर घर कर लिया था। उन शब्दों को सुकरता या आसानी के लिए उर्दू नाम से ही संबोधित करते हैं। हेतुपूर्वक मराठी से निकालकर उनके स्थान पर हमारे संस्कृत या प्राकृतनिष्ठ स्वकीय शब्द स्थानापन्न करने के लिए सर्वप्रथम राजाज्ञा श्री छत्रपति शिवाजी महाराज ने जब उन्होंने म्लेच्छ राज्यों का उच्छेद करके हिंदू पदपादशाही की स्थापना की, तब निकाली थी। इस काम के लिए उन्होंने अपने अमात्यवर्य रघुनाथ पंडित को नियुक्त किया था। रघुनाथ पंडित ने 'राज्य व्यवहार कोश' की रचना की। उस 'राज्य व्यवहार कोश' को ही मराठी भाषा के प्रथम कोश का सम्मान देना होगा। उस कोश की प्रस्तावना में होनेवाले कुछ श्लोक हमने इस पुस्तक के प्रारंभ में दिए हैं। उसमें उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि मराठी भाषा में घुसे हुए म्लेच्छ शब्दों के उच्छेदनार्थ ही यह कोश रचा गया है।

यह कोश 'भारत इतिहास संशोधन मंडल, पुणे' ने बहुत पहले प्रकाशित किया था, आजकल वह एकदम दुर्लभ हो गया था; परंतु मराठवाड़ा साहित्य परिषद् ने वह कोश संपादित करके गत वर्ष ही (सन् १९५६ में) पुन: प्रकाशित किया है। इस प्रकाशन के लिए हम मराठवाड़ा साहित्य परिषद् का हार्दिक अभिनंदन करते हैं। उसका संपादन चिकित्सापूर्वक परिश्रम से करने के लिए श्री रा.गो. काटेजी भी प्रशंसा के पात्र हैं।

२. **स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी का शुद्ध लघु शब्द कोश :** श्री छत्रपति शिवाजी

के प्रोत्साहन से लिखे हुए 'राज्य व्यवहार कोश' के बाद विदेशी उर्दू शब्दों को मराठी से कठोरतापूर्वक निकालने की स्पष्ट प्रतिज्ञा करके दूसरा विद्रोह हुआ था और वह भाषाशुद्धि के प्रचार और आचार की धूमधाम मचा देनेवाला वीर सावरकरजी का भाषाशुद्धि आंदोलन था। इस प्रचार के लिए उन्होंने 'मराठी भाषा का शुद्धीकरण' नामक पुस्तिका सन् १९२६ में लिखी। उस पुस्तक के अंत में 'त्याज्य विदेशी शब्दों की टिप्पणी' नामक एक स्वकीय शब्दों का लघुकोश लिखा हुआ है। उस लघुकोश की विशेषता यह है कि उसमें केवल मराठी में घुसे हुए उर्दू शब्दों को ही नहीं, बल्कि अंग्रेजी शब्दों के लिए भी स्वयं सावरकरजी ने जिन स्वकीय शब्दों को पुनरुज्जीवित किया है, मुख्यत: उनका ही समावेश किया है। वही लघुकोश वीर सावरकरजी द्वारा सन् १९२६ के बाद निर्माण किए हुए और प्रचलित किए हुए नए शब्दों की वृद्धि करके इस पुस्तक के अंत में छापा है।

३. **शुद्ध शब्दकोश :** भाषाशुद्धि के आंदोलन के एक निस्सीम प्रचारक और रत्नागिरी के भाषालिपि शुद्धि मंडल के अध्यक्ष श्री अ.स. भिडे गुरुजी ने सन् १९३७ में बहिष्कार्य उर्दू शब्दों का और प्रयुक्त किए हुए तदर्थक स्वकीय मराठी शब्दों का एक लघुकोश प्रकाशित किया। उस कोश की प्रस्तावना वीर सावरकरजी ने लिखी है और यह कोश लिपि शुद्धि में छापा गया है।

४. **बहिष्कार्य शब्दों का कोश :** वीर सावरकरजी के भाषाशुद्धि आंदोलन के प्रथमत: एक प्रमुख विरोधी थे माधवराव पटवर्धन। आगे चलकर उस आंदोलन का मर्म उनकी समझ में आ गया और उनका हृदय-परिवर्तन हुआ। तब उन्होंने भाषाशुद्धि का प्रबलता से समर्थन करने का धैर्य दिखाया। कै. माधवराव पटवर्धनजी ने 'भाषाशुद्धि विवेक' नामक अत्यंत अभ्यसनीय पुस्तक सन् १९३८ में प्रकाशित की। उस पुस्तक के अंत में यह 'बहिष्कार्य शब्दों का कोश' प्रकाशित किया गया। आज मराठी में जितने विदेशी उर्दू शब्द घुसे हुए हैं, उनमें से बहुतांश शब्द इस कोश में दिए गए हैं और उन शब्दों के लिए यथायोग्य मराठी प्रतिशब्द दिए गए हैं। इस कोश के कारण 'अमुक उर्दू शब्द के लिए कौन सा स्वकीय शब्द प्रयोग में लाऊँ?' इस तरह की आलस्यपूर्ण बहानेबाजी करने का कोई कारण नहीं रह गया है।'

५. **श्री सयाजी शासन शब्द कल्पतरु :** इस कोश में राज्य शासन एवं प्रशासन के विषय पर केवल अंग्रेजी शब्दों के ही स्वकीय प्रतिशब्द दिए गए हैं और यही इस कोश का प्रकट उद्‌देश्य है। तथापि यह शब्दकोश इतना शब्दसंपन्न

और विस्तृत है कि इसका नामोल्लेख करना ही होगा और यह कोश जिनकी आज्ञा से और आश्रय से प्रकाशित हुआ है, वे श्रीमंत सयाजीराव महाराज गायकवाड (बड़ौदा रियासत के राजा) के वाङ्मय ऋण का स्मरण करना भाषाशुद्धि की दृष्टि से हमारा कृतज्ञ कर्तव्य है।

□□□

सी. का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। ऐसी अकादमी विश्व में एकमात्र है। तीनों
सेनाओं के कैडेट्स को एक साथ प्रशिक्षण देने से उनमें दोस्ती तो हो ही जाती है;

प्रथम राजनेता जिन्होंने विदेशी वस्त्रों की होली जलाई। (पुणे में ७ जुलाई, १९०५ को)

प्रथम भारतीय नागरिक जिन पर हेग के अंतरराष्ट्रीय न्यायालय में मुकदमा चलाया गया।

प्रथम छात्र जिनकी बैरिस्टर की उपाधि राजनिष्ठा की शपथ लेने से इनकार करने के कारण रोक ली गई।

प्रथम राजनीतिक बंदी जिन्हें दो जन्मों का कारावास मिला।

प्रथम साहित्यकार जिन्होंने, लेखनी और कागज से वंचित होने पर भी, अंदमान जेल की दीवारों पर कीलों, काँटों और यहाँ तक कि नाखूनों से विपुल साहित्य का सृजन किया और ऐसी सहस्रों पंक्तियों को वर्षों तक कंठस्थ कराकर अपने सहबंदियों द्वारा देशवासियों तक पहुँचाया।

प्रथम भारतीय लेखक जिनकी पुस्तकें, मुद्रित व प्रकाशित होने से पूर्व ही, दो-दो सरकारों ने जब्त कीं।

जिस देश में जन्म लिया और जिसका अन्न खाया, उसके ऋण से मुक्त हुए बिना अपने लिए स्वर्ग के द्वार कदापि नहीं खुल सकते।

स्वतंत्रता हमें मिली नहीं, स्वतंत्रता को बड़े-से-बड़ा बलिदान देकर प्राप्त किया गया है। 'स्वतंत्रता मिली' कहना सर्वथा मिथ्या है!

काल स्वयं मुझसे डरा है, मैं नहीं। फाँसी का फंदा चूमकर, कराल काल के स्तंभों को झकझोरकर मैं अनेक बार लौट आया हूँ। फिर भी जीवित रहा, यह शायद काल की ही भूल थी।

देवकार्य हेतु निर्वंश होनेवाली वंशलता अमर हो जाती है और उसकी लोकहित-परिमल की सुगंधि समस्त दिशाओं में व्याप्त हो जाती है।

देशद्रोहियों की प्रथम पंक्ति में खड़े रहने से कहीं अच्छा है देशभक्तों की अंतिम पंक्ति में खड़ा होना।

अपनी कुलदेवी माँ अष्टभुजा के चरणों में बैठकर शपथ लेता हूँ कि मातृभूमि का विदेशियों से मुक्त कराने के लिए आजीवन सशस्त्र क्रांति का ध्वज लेकर जूझता रहूँगा, चाहे इस प्रयास में हम तीनों भाइयों की भी वही नियति क्यों न हो जो चाफेकर बंधुओं की हुई।

ISBN 81-7315-330-2

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2008 प्रकाशक
www.prabhatbooks.com
₹ 600/-